गोस्वामी तुलसीदास

व्यक्तित्व कला साहित्य

गोस्वामी तुलसीदास

व्यक्तित्व दर्शन साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय से डी० लिट् उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

रामखेल भारद्वाज

डी लिट्०(दिल्ली) पीएच डी (दर्शन) एम०ए०(त्रय) एलएल बी

प्राध्यापक देशबन्धु कालिज दिल्ली विश्वविद्यालय

१९६२

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा दिल्ली

भारती साहित्य मन्दिर
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

रामनगर	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माई हीरां गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ
बैलिंग्टन रोड	बम्बई

मूल्य : १८ रुपये

मोरीशंकर शर्मा मैनेजर, भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एवं इण्डिया प्रिन्टर्स एस्प्लेनेड रोड दिल्ली में मुद्रित।

काव्य-पास की सुषमा-प्रतिमा
अभिनव पद्म-रत्न के आकर
रस-रक्षा-रत श्री नगेन्द्र को
'तुलसीदास' समर्पित सादर

भूमिका

परम पूज्य पिता (अब स्वर्गीय) पण्डित चौधरीलाल वर्मा से निरन्तर प्रेरित एवं प्रोत्साहित मैं लगभग पच्चीस वर्षों से गोस्वामी तुलसीदास-सम्बन्धी अनुसंधान में संलग्न रहा हूँ। इस दिशा में मेरी सर्वप्रथम रचना यह भूमिका है जो मैंने १९१७ ई० में 'रत्नावली सटीक दोहा संग्रह' के लिए लिखी थी। तदनन्तर मेरे दो लेख १९१८ ई० के 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुए, जिन्हें पढ़कर कतिपय विद्वान् सोरों-सामग्री का अवलोकन करने के लिए सोरों-कासगंज पधारे थे। तब से और भी अनेक लेख नवीन सामग्री का परिचय देने के लिए अथवा आलोचन प्रत्यालोचन के निमित्त लिखे गये। यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के कारण लेखों और पुस्तकों के प्रकाशन में मुझे कठिनता का अनुभव करना पड़ा तथापि साप्ताहिक 'नवीन भारत' के द्वारा इस विषय में प्रगति होती रही। 'तुलसी चर्चा' के प्रकाशन पर मुझे ऐसा लगा था कि तुलसी विषयक अनुसंधान की इति-श्री हो गयी पर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने उत्साहवर्द्धक शब्दों में यह आशा प्रकट की थी कि भविष्य में इस विषय में और भी अधिक प्रयत्न होगा और आज मुझे प्रसन्नता है कि उनकी भविष्य-वाणी सफल हुई, क्योंकि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आगरा विश्व-विद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ है।

सोरों-सामग्री के तीव्रालोचकों में प्रमुख हैं श्री चन्द्रबली पांडे और डॉ० माताप्रसाद गुप्त। उनकी आलोचनाओं के कारण विद्वत्समाज में ऊहापोह उपस्थित हुआ तथा सोरों-सामग्री को स्वर्ण की भाँति तपने और शुद्ध होने का अवसर मिला। तुलसी-जगत् में वे दोनों साधुवाद के पात्र हैं, क्योंकि यदि उनकी आलोचनाएँ प्रशंसात्मक होतीं तो कदाचित् कुछ भ्रान्तियों का निराकरण सुचारु रूप से न हो पाता।

मेरे सम्मुख जो सामग्री उपस्थित होती है मैं तब तक उसे प्रामाणिक मानता हूँ जब तक उसके विरुद्ध कोई अन्तःसाक्ष्य अथवा प्रबल बहिःसाक्ष्य उपलब्ध न हो। जन-श्रुतियों में भी सत्य निगूढ़ रहता है, ऐसा मेरा विश्वास है। सोरों-सामग्री से मेरा कोई व्यक्तिगत साहित्येतर सम्बन्ध नहीं क्योंकि न मैं सोरों का ब्राह्मण हूँ और न एटा जिले का निवासी ही। मेरा लक्ष्य तो सदैव सत्यानुसंधान रहा है। मैं इस दिशा में कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह मेरे विज्ञ पाठक समझ सकते हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यूरोपीय विद्वानों के (विशेषतः सर्वश्री ग्राउज, ग्रियर्सन और बीम्स के) अनुसंधानों की, तत्पश्चात् भारतीयों की (विशेषतः आदरणीय मिश्र-बन्धु, डॉ० श्यामसुन्दरदास एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल की) धारणाओं की चर्चा की गयी है, जिससे यह आभास मिलता है कि उनकी रचनाओं में गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त का समय-समय पर क्या रूप रहा। नवीन सामग्री की प्राप्ति पर धारणाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यद्यपि १८७४ ई० में प्रकाशित बुन्देलखण्ड गजेटियर में राजापुर की स्थापना गोस्वामीजी के द्वारा बतायी गयी और उन्हें स्पष्टतः सोरों का निवासी कहा गया था तथापि यह आश्चर्य है कि उक्त एवं अन्य सभी

अनुसंधाताओं की दृष्टि से तथ्य सर्वथा तिरोहित रहा।

द्वितीय अध्याय में प्राप्त साहित्य की आलोचना की गयी है। 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'वट रामायण' आदि रचनाएँ परीक्षा से खुद नहीं उतरतीं। अब तक तुलसी चरित' की बाह्य परीक्षा ही होती रही किन्तु उसके अन्तःपरीक्षण का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। 'वट रामायण' और 'गौतम चन्द्रिका' में मैंने कतिपय अन्यान्य इतिहास-व्यतिक्रमों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'तुलसी प्रकाश' सोरों-पक्ष का समर्थन करता है किन्तु परीक्षण के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह भी सर्वथा शुद्ध नहीं क्योंकि इसमें कुछ साभिप्राय प्रक्षेप विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय में सूकरक्षेत्र की सत्ता पर प्रकाश पड़ा है। गोस्वामीजी ने बाल्यकाल की अचेत अवस्था में यहाँ रामकथा सुनी थी जिसका उल्लेख उन्होंने 'राम चरितमानस' के आरम्भ में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी स्थिति सोंरा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर बतायी गयी किन्तु अन्य विद्वानों के विचार से यह एटा जिले में गंगा के उपकण्ठ पर विद्यमान है। मैंने दोनों मतों की पुष्टि में दिये गये प्रमाण-बाहुल्य पर विचार कर अपना स्पष्ट झुकाव तुलसी-पूर्व तुलसी-कालीन एवं तुलसी-परवर्ती बहुल साक्ष्य के आधार पर दूसरे मत की ओर प्रकट किया है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-स्थान की चर्चा है। इस विषय में राजापुर, काशी अयोध्या तारी, आदि अनेक स्थानों का उल्लेख किया जाता है। मैंने सभी स्थानों का पर उक्त स्थानों का विशेष विवेचन किया है। जन्म-स्थल-सम्बन्धी निर्णय के हेतु, मैं सोरों और रामपुर के मध्य डवलमाता था किन्तु जब से श्री चन्द्रबली पांडे ने इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी का एक अन्तःसाक्ष्य उपस्थित किया तब से मेरी धारणा रामपुर के प्रति दृढ़तर हो गयी। अब तक गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में मेरी प्रवृत्ति बाह्य साक्ष्य की ओर थी। अतएव पांडे जी से परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर मैं अन्तःसाक्ष्य की ओर झुका, और अब मैं इस साक्ष्य के आधार पर भी सूकर क्षेत्रान्तर्गत गंगोपकण्ठस्थ रामपुर को तुलसीदास की जन्म भूमि समझता हूँ।

पंचम अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-मरण से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों पर विचार किया गया है। सम्भवतः 'तुलसी-प्रकाश'-प्रदत्त जन्म तिथि अधिक युक्ति-युक्त एवं अन्तःसाक्ष्य के निकटतर प्रतीत होती है। निधन-तिथि के सम्बन्ध में प्राचीन जन-श्रुति ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

षष्ठ अध्याय में गोस्वामीजी की वर्णाकृति चित्र प्रतिमा एवं स्वभाव प्रकृति का उल्लेख अन्तःसाक्ष्य पर आधृत एवं सोरों-सामग्री से समर्थित है। किशनगढ़ से गोस्वामीजी का जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ उसका भी उल्लेख उनके अन्य चित्रों के विवरण के साथ किया गया है।

सप्तम अध्याय में सोरों-सामग्री का संक्षिप्त परिचय एवं हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण दिया गया है। इस सामग्री पर समय-समय पर आक्षेप होते रहे हैं यहाँ तक कि उसको जाली भी कह दिया गया है। मैंने सर्वप्रकार से इसका परीक्षण किया कराया, और विचारान्तर्गत पुस्तकों में केवल एक प्रतिलिपि के अतिरिक्त सभी को प्रामाणिक समझा है। मैंने इस बात पर भी विचार करने का प्रयत्न किया है कि

यदि सोरों-सामग्री न होती तो गोस्वामीजी की जीवन-गाथा का क्या रूप होता ? मेरा निष्कर्ष है कि यह सामग्री गोस्वामीजी से सम्बद्ध विकीर्ण जन-श्रुतियों पर प्रचुर प्रकाश प्रदान करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अष्टम अध्याय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली के आत्म-परिचय काव्य कौशल, उपदेश और दर्शन पर विमर्श उपस्थित किया गया है तथा परिशिष्ट में यत्रतत्र उपलब्ध उनकी रचना एवं जीवनी को अविकल रूप से पाठान्तर-सहित दे दिया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नावली के आत्म-परिचय से गोस्वामी जी के जन्म-स्थान गृह एवं परिवार का समुचित आभास मिलता है।

नवम अध्याय में गोस्वामीजी की जीवन-चर्चा उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर की गयी है जिन से उनके जन्म-स्थान मातृ-पितृ-नाम जाति एवं अन्य कतिपय विषयों पर अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध होता है। तन्निमित्त कुछ कूट और गूढ़ उक्तियों को भी प्रकाश में लाया गया है।

दशम अध्याय में गोस्वामीजी की साहित्यिकता का निरूपण है। उनके द्वारा उपस्थापित काव्य का स्वरूप दर्शाया है। उनका माध्यम मेरे विचार से प्रधानतः ब्रजी एवं अवधी भाषाएँ हैं। तुलनात्मक उद्धरणों के द्वारा मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उनके पितृव्यपुत्र महाकवि नन्ददास, भारतीय कवि कृष्णदास पत्नी रत्नावली, तथा अष्टछाप के अन्य कवियों की रचना से 'रामचरितमानस' की भाषा-शैली का प्रचुर साम्य है। गोस्वामीजी के द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्दों को इधर-उधर का बताया जाता रहा है, जिनका प्रयोग उनके उक्त सम्बन्धियों ने मथुरा और सोरों में किया है। अब तक गोस्वामीजी की रचना-शैलियों का जो उल्लेख होता रहा है उसमें कूट-शैली का निर्देश नहीं है। यह शैली सोरों में भी विद्यमान रही है जिसका दर्शन तत्रत्य कतिपय कवियों के छन्दों तथा पण्डितों की सूक्तियों में होता रहा है। कृतियों के काल और मूलपाठ के निर्णय में कवि की जन्म भूमि सहायक होती है, अतएव निरूपण के पश्चात् इन दोनों दिशाओं में प्रचलित धारणाओं का विपर्यास अप्रत्याशित नहीं।

एकादश अध्याय में मैंने गोस्वामीजी के प्रकीर्ण विचारों का सामञ्जस्य किया है। गोस्वामीजी को अब तक रामानन्दी माना जाता रहा है किन्तु सतर्क विवेचन पर वे रामानन्दजी के अनुयायी नहीं ठहरते। वे स्मार्त वैष्णव थे। यद्यपि वास्तव में वे किसी आचार्य के अनुयायी नहीं थे तथापि उनका स्थान श्री रामानुजाचार्य से सुदूर किन्तु जगद्गुरु श्री शंकराचार्य एवं महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के निकट मध्य है। 'द फिलॉसफी ऑव तुलसीदास' नामक शोध प्रबन्ध में ब्रह्म जीव परमार्थ आदि विषयों पर मैं तुलनात्मक अध्ययन कर चुका हूँ अतएव स्थान-संकोच से एवं विषयान्तर भय से मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक रूप को छोड़ दिया है। वल्लभाचार्यजी गोस्वामीजी के कैशोर में सोरों पधारे थे और वहाँ उनका पीठ आज तक विद्यमान है। नन्ददासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। यद्यपि गोस्वामीजी उस सम्प्रदाय में दीक्षित न थे, तथापि उसके कुछ सिद्धान्तों से उन्हें प्रभावित अवश्य किया था। आध्यात्मिक विचारों की चर्चा करते समय मैं उनके राजनीतिक विचारों को न छोड़ सका क्योंकि

अनुसंधाताओं की दृष्टि से तथ्य सर्वथा तिरोहित रहा।

द्वितीय अध्याय में प्राप्त साहित्य की आलोचना की गयी है। 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'वट रामायण' आदि रचनाएँ परीक्षा से शुद्ध नहीं उतरीं। अब तक 'तुलसी चरित' की बाह्य परीक्षा ही होती रही किन्तु उसके अन्त:परीक्षण का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। 'वट रामायण' और 'गौतम चन्द्रिका' में मैंने कतिपय अन्यान्य इतिहास-व्यतिक्रमों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'तुलसी प्रकाश' सोरों-पक्ष का समर्थन करता है किन्तु परीक्षण के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह भी सर्वथा शुद्ध नहीं क्योंकि इसमें कुछ साभिप्राय प्रक्षेप विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय में सूकरक्षेत्र की सत्ता पर प्रकाश पड़ा है। गोस्वामीजी ने बाल्यकाल की अचेत अवस्था में यहाँ रामकथा सुनी थी जिसका उल्लेख उन्होंने 'राम चरितमानस' के आरम्भ में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी स्थिति गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर बतायी गयी किन्तु अन्य विद्वानों के विचार से यह एटा जिले में गंगा के उपकण्ठ पर विद्यमान है। मैंने दोनों मतों की पुष्टि में दिये गये प्रमाण-बाहुल्य पर विचार कर अपना स्पष्ट झुकाव तुलसी-पूर्व तुलसी-कालीन एवं तुलसी-परवर्ती बहुल साक्ष्य के आधार पर दूसरे मत की ओर प्रकट किया है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-स्थान की चर्चा है। इस विषय में राजापुर, काशी, अयोध्या तारी, आदि अनेक स्थानों का उल्लेख किया जाता है। मैंने सभी स्थानों का पर उक्त स्थानों का विशेष विवेचन किया है। जन्म-स्थल-सम्बन्धी निर्णय के हेतु, मैं सोरों और रामपुर के मध्य डगमगाता था किन्तु जब से श्री चन्द्रबली पांडे ने इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी का एक अन्त साक्ष्य उपस्थित किया तब से मेरी धारणा रामपुर के प्रति दृढ़तर हो गयी। अब तक गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में मेरी प्रवृत्ति बाह्य साक्ष्य की ओर थी। अतएव पांडे जी से परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर मैं अन्त:साक्ष्य की ओर झुका, और अब मैं इस साक्ष्य के आधार पर भी सूकर क्षेत्रान्तर्गत गंगोपकण्ठस्थ रामपुर को तुलसीदास की जन्म-भूमि समझता हूँ।

पंचम अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-मरण से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों पर विचार किया गया है। सम्भवत: 'तुलसी-प्रकाश' प्रदत्त जन्म तिथि अधिक युक्ति-युक्त एवं अन्त:साक्ष्य के निकटतर प्रतीत होती है। निधन तिथि के सम्बन्ध में प्राचीन जन-श्रुति ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

षष्ठ अध्याय में गोस्वामीजी की वर्णाकृति चित्र प्रतिमा एवं स्वभाव-प्रकृति का उल्लेख अन्त:साक्ष्य पर आधृत एवं सोरों-सामग्री से समर्थित है। चित्रकूट से गोस्वामीजी का जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ उसका भी उल्लेख उनके अन्य चित्रों के विवरण के साथ किया गया है।

सप्तम अध्याय में सोरों-सामग्री का सचित्र परिचय एवं हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण दिया गया है। इस सामग्री पर समय-समय पर आक्षेप होते रहे हैं यहाँ तक कि उसको जाली भी कह दिया गया है। मैंने सर्वप्रकार से इसका परीक्षण किया कराया और विचारान्तर्गत पुस्तकों में केवल एक प्रतिलिपि के अतिरिक्त सभी को प्रामाणिक समझा है। मैंने इस बात पर भी विचार करने का प्रयत्न किया है कि

यदि सोरों-सामग्री न होती तो गोस्वामीजी की जीवन-यात्रा का क्या रूप होता ? मेरा निष्कर्ष है कि यह सामग्री गोस्वामीजी से सम्बद्ध विकीर्ण जन-श्रुतियों पर प्रचुर प्रकाश प्रदान करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अष्टम अध्याय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली के आत्म-परिचय काव्य कौशल उपदेश और दर्शन पर विमर्श उपस्थित किया गया है तथा परिशिष्ट में प्रचारित उपलब्ध उनकी रचना एवं जीवनी को अविकल रूप में पाठान्तर-सहित दे दिया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नावली के आत्म-परिचय से गोस्वामी जी के जन्म-स्थान, गृह एवं परिवार का समुचित आभास मिलता है।

नवम अध्याय में गोस्वामीजी की जीवन-चर्चा उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर की गयी है जिन से उनके जन्म-स्थान मातृ-पितृ-नाम जाति एवं अन्य कतिपय विषयों पर अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध होता है। तन्निमित्त कुछ कूट और पुराण उक्तियों को भी प्रकाश में लाया गया है।

दशम अध्याय में गोस्वामीजी की साहित्यिकता का निरूपण है। उनके द्वारा उपस्थापित काव्य का स्वरूप स्पष्ट है। उनका माध्यम मेरे विचार से प्रधानतः अवधी एवं ब्रजावधी भाषाएँ हैं। तुलनात्मक उद्धरणों के द्वारा मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उनके पितृव्यपुत्र महाकवि नन्ददास, भ्रातीय कवि कृष्णदास पत्नी रत्नावली तथा ब्रजमंडल के अन्य कवियों की रचना से 'रामचरितमानस' की भाषा-शैली का प्रचुर साम्य है। गोस्वामीजी के द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्दों को इधर-उधर का बताया जाता रहा है जिनका प्रयोग उनके उक्त सम्बन्धियों ने मथुरा और सोरों में किया है। अब तक गोस्वामीजी की रचना-शैलियों का जो उल्लेख होता रहा है उसमें कूट-शैली का निर्देश नहीं है। यह शैली सोरों में भी विद्यमान रही है जिसका दर्शन तत्रत्य कतिपय कवियों के लेखों तथा पण्डितों की सूक्तियों में होता रहा है। कृतियों के काल और मूलपाठ के विषय में कवि की जन्म भूमि सहायक होती है, अतएव निरूपण के पश्चात् इन दोनों दिशाओं में प्रचलित धारणाओं का विपर्यास अप्रत्याशित नहीं।

एकादश अध्याय में मैंने गोस्वामीजी के प्रकीर्ण विचारों का सामञ्जस्य किया है। गोस्वामीजी को अब तक रामानन्दी माना जाता रहा है किन्तु उनके विवेचन पर वे रामानन्दजी के अनुयायी नहीं ठहरते। वे स्मार्त वैष्णव थे। यद्यपि वास्तव में वे किसी आचार्य के अनुगामी नहीं थे तथापि उनका स्थान श्री रामानुजाचार्य से सुदूर किन्तु जगद्गुरु श्री शंकराचार्य एवं महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के निकट-मध्य है। 'द फिलॉसफी ऑव तुलसीदास' नामक शोध प्रबन्ध में ब्रह्म जीव परमार्थ आदि विषयों पर मैं तुलनात्मक अध्ययन कर चुका हूँ अतएव स्थान-संकोच से एवं विषयान्तर भय से मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक रूप को छोड़ दिया है। वल्लभाचार्यजी गोस्वामीजी के कैशोर में सोरों पधारे थे और वहाँ उनका पीठ आज तक विद्यमान है। नन्ददासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। यद्यपि गोस्वामीजी उस सम्प्रदाय में दीक्षित न थे, तथापि उनके कुछ सिद्धान्तों से उन्हें प्रभावित अवश्य किया था। आध्यात्मिक विचारों की चर्चा करते समय मैं उनके राजनीतिक विचारों को न छोड़ सका क्योंकि

आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव राजनीति पर पड़ता ही है। उनका कर्त्तव्याकर्त्तव्य-परक अथवा आचार-परक विचार एवं उनका मनोविश्लेषण हिन्दी-काव्य-जगत् को नवीन अमूल्य और अप्रतिम देन है जो आधुनिकतम सिद्धान्तों से भी सर्वथा अनुमोदित है।

परिशिष्ट में कुछ महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री को सुलभ्य में एवं उसके परीक्षण-विवरणों को, विद्वानों के अवलोकनार्थ उपस्थित किया गया है।

ज्ञाताज्ञात वे सभी महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं जो स्रोतों-सामग्री के संरक्षण संग्रह अथवा सम्प्रदान से सम्बद्ध हैं। मैंने एतद्विषयक नामोल्लेख यथा-स्थान किया है; किन्तु स्व० प० गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री श्री पं० भद्रदत्त शर्मा शास्त्री और आचार्य देवव्रत शर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। मैं पं० भद्रदत्त जी का विशेष आभारी हूँ।

दिल्ली
वसन्त पंचमी सं० २०१८ वि०

रामदत्त भारद्वाज

विषय सूची

प्रथम अध्याय अन्वेषण का उपक्रम १—३७

(क) यूरोपीय विद्वानों का अनुसंधान १ २२

प्राक्कथन १

(क) मिस्टन १ मिस्टन की सूक्तियाँ १ ग्रामीयर का उल्लेख २

(ख) ग्रास्ट ३-४ रामचरित मानस का अंग्रेजी अनुवाद ३ कुछ गलतियाँ ३ लोगों में लोकप्रियता ३

(ग) सर जॉर्ज ग्रियर्सन ४ ३२ प्रमुख गवेषक ४ सहयोग ४ सूक्तियाँ ४ संकलन-कार्य ५ जन-मति ६ जन्म-स्थान और शिक्षा स्थान ६ गुरु और सम्प्रदाय ६, शिष्य ७ विवाह विषयक ८, पत्रव्यवहार और व्यावहारिक शिक्षण ९ वृन्दावन-गमन ९ बर्लिन में दर्शन ११ साहबलोपीडिया ११ एन साइक्लोपीडिया १२।

(घ) शिव मैत्रो और कीने १३ १४ विंटेर शिव १६ मैत्रो १६ कीने १४।

(ङ) विदेशी मत का खिलाफोकरण १४ जन्मस्थान १४ जन्मतिथि १४ जन्म-निश्चय १६, पति-पत्नी १६, जन्म वर्ष १७, प्रसिद्ध संकलन १७ आरकर्ड १८ गवेषिका १८, गवेषकों का सार २ ।

(च) निष्कर्ष २१।

(ख) भारतीयों की गवेषणा २२-३७

प्राक्कथन २२

(क) मिश्रबन्धु २२ माता-पिता ने तुलसीदास को त्याग न का २३ दोहों में पति-पत्नी की बात-चीत विश्वसनीय नहीं २३, तुलसीदास के गुरु नरहरि २४ क्या तुलसीदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे ? २४ 'तुलसीचरित' में अनास्था २५ डॉ० दास और पं० शुक्ल का प्रभाव २६ ।

(ख) डॉ० श्यामसुन्दर दास २६ प्रारम्भिक मत २६ 'तुलसीचरित' का प्रभाव २७ मूल गोसाईं चरित की ओर झुकाव २८, विचारात्मक की पूर्ति जनश्रुति से २९ खटकने वाली बात २९ परिवर्तन ३ तुलसी चरित' की तीव्रालोचना ३१ 'मूल गोसाईं चरित' के सम्बन्ध में प्रथम तर्क ३१ द्वितीय तर्क ३२ सूकर क्षेत्र के सम्बन्ध में ३२ स्पष्टवादिता ३२।

(ग) पं० रामचन्द्र शुक्ल ३२ नाराणी जी को कान्यकुब्ज मानने पर आपत्तियाँ ३२ जन्म-तिथि ३३ शुक्ल जी का तर्क ३३ जन्म-स्थान ३४ बेतावली ३४ क्या जन्मदास जी चचेरे भाई थे ? ३४ विवाह ३४ गुरु ३५ राम गोला ३५ तुलसीदास जी अपने माता पिता से अलग हुए ३६, सूकरक्षेत्र साधु-मण्डली के संगम पर ३६, परिवर्तन ३७ शुक्ल जी का दृष्टिकोण ३७।

जगदीश मुखोपाध्याय ११८ (ङ) श्री चन्द्रमणी पाण्डे ११८ (ङ) कुछ पुस्तिकाएँ ११८ (छ) श्री मेघराम मित्र ११९ (ज) मानस की टीकाएँ ११९ (झ) सरकारी विवरण ११९
(ञ) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ११९ (ट) एटेंटिकल डिस्ट्रिक्ट एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट ११ (ठ) इम्पीरियल गजेटियर आफ ११ (ड) एण्ड डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ११ (ढ) ट्रेवर्स कंपैनियन १२१ (त) एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट १९११ ई० मन्दिर की प्राचीनता १२२
सूकर क्षेत्र की स्थिति १२२ सूकरक्षेत्र में चौतुरा, सोरंकी और सोरों १२३, सूकरक्षेत्र का विस्तार १२३।

चतुर्थ अध्याय जन्मस्थान १२५—१६७

प्राक्कथन १२५

राजापुर की सामग्री १२६ १३७

स्थिति-अवलोकन १२६, तीन अप्रामाणिक पुस्तकें १२६, एक पुस्तकों में परस्परिक विरोध १२७ ताम्र-पत्रादि १२७ राजापुर का अयोध्या आदि १२८ राजपुरीय विवरण १३१ राजापुर की स्थापना १३१ मन्दिर और प्रतिमाएँ १३३ राजापुर की सड़कें १३३ सन्त पर की गुप्त की कापत्तियाँ १३४ सन्तों अथवा-सिद्ध हैं १३४ रामलखिजुन अर्थ १३६, जनश्रुति १३६, निष्कर्ष १३७।

काशी का पक्ष १३८ १४२

जन्म-स्थान क्या की है निकट १३८ काशी का उल्लेख १३८ सोरंके का नवीन अर्थ १३८, जनश्रुति १३९ तर्क का प्रथम समाधान १४० द्वितीय समाधान १४० तृतीय समाधान १४२, निष्कर्ष १४१ काशी की सामग्री १४१।

अयोध्या १४३-१५३

प्राक्कथन १४३ (१) कवितावली १४३ १४४ (क) अवतरणिका पद १४३ (ख) तुलसी चौरा १४४ (ग) मानसी दास का तुलसीचरित १४६ तथा-कथित जन्मस्थान १४६ १५१ (२) अन्य प्रमाण १५१ (क) वास्तविक जन्मस्थान १५२ रामपुर की तथा १ १५३।

तारी : तुलसी की जन्मस्थली १५४ १६०

अभिलाषाराय की सूचना १५४ बाबाराय का लेख १५५, भ्रम क्यों ? १५६ संस्कृत पाण्डुलिपि १५६, रेवरेंड ग्रीव्स १५७ श्री सीताराम शास्त्री अवधप्रचार १५७ श्री शिवनन्दन सहाय १५७ तुलसी स्मारक तथा राजापुर का पत्र १५७ तारी कहाँ ? १५७, बालाजी के मत की आलोचना १५८ मेरी तारी-यात्रा १५८,

अन्तर्वेद की यात्रा १५८ मेरा निष्कर्ष १५९ यात्रा की महत्ता १६ ।

रामपुर तुलसीदास का जन्मस्थान १६१ १६७

महात्म प्रमाण १६१, बाबूजी के पक्ष में १६१, अन्य साक्ष्य १६२ रामपुर कहाँ ? १६२ रामपुर की स्थिति तुलसीदास जी का प्रमाण १६३ नरहरि दास के पुत्र का लेख १६४ रत्नावली का लेख १६४ सुरतीपुर चतुर्वेदी की स्पष्ट उक्ति १६४ रामपुर-यात्रा १६५, निष्कर्ष १६५ ।

पञ्चम अध्याय आविर्भाव-तिरोभाव १६८—१७३

(क) जन्म संवत् पड़ताल १६८ १७२

संवत् १५४४ वि १६८ १५६ वि १६९ १५८३वि १६९ १५८३वि १७० १६ वि १७० १५९८वि १७१ ।

(ख) मृत्यु : १६८० वि० १७२-१७३

श्रावणकृष्णा तीज १७२ श्रावणशुक्ला सप्तमी १७३ ।

षष्ठ अध्याय आकृति-प्रकृति १७४—१९०

(क) बाह्याकृति १७४ (ख) चित्र १७५, १८१

मुख चित्र १७५, ललाट चित्र १७५ नेत्र चित्र १७६ रूपे चित्र १७६, तत्कालीन समकालीन चित्र १७७ कल्पित चित्र १७७ कल्पित विक्रम-चित्र १७८, गुरु-चित्र १७८, पत्रकार १७९ विरागनाट्य यात्रा चित्र १८१ निष्कर्ष १८२ ।

(ग) स्वभाव और चरित्र १८१

दयालु और परोपकारी १८२ सुजन १८३ अदालु १८४ मातृ-सेवा १८४ निष्कामता १८५ विनम्रशील १८६, मानुष १८६, आत्म-परीक्षक १८६ आत्मवादी १८७ गुणग्राही १८७ तीव्रालोचक १८७ प्रकृति-प्रेमी और आदर्शवादी १८८, स्वाध्यायी और निर्भीक १८८, दृढ़-संकल्प १८८ अनाग्रह पवित्रता १८९ प्रतिभाशाली १९ ।

सप्तम अध्याय सोरों-सामग्री १९१—२५६

प्रथम भाग विहावलोकन १९१ २१३

सोरों-सामग्री का अर्थ १९१ सोरों-सामग्री के दो रूप १९२

१ गुप्त-सामग्री १९१-२१७—(क) भवनगुफा १९१ । १—रामपुर १९२ २—मुखिया मन्दिर १९२ ३—वराह-मन्दिर और घाट १९३ ४—तुलसीदास गृह १९३ ५—सीताराम जी का मन्दिर १९३ ६—कटरीग्राम १९३ (ख) बैराग १९३-२१४ (१) गुरु नरहरि के बैराग १९३ (२) मन्त्रदाता श्री के बैराग १९४ (३) जनश्रुति १९४ (४) लोक-शैली १९४ (५) लोकगायकों की का अटल परिचय १९५ (६) चरणु-लिपियाँ १९७ ।

जगदीश मुखोपाध्याय ११८ (ट) श्री चन्द्रबली पाण्डे ११८ (ठ) पुत्र पुष्पिकायें ११८ (ड) श्री मेवाराम मिश्र ११९ (ढ) मानस की टीकायें ११९ (ण) सरकारी विवरण ११९
(त) ऑर्केलोजिकल सर्वे ११९ (था) स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल अकाउण्ट १२ (द) इम्पीरियल गजेटियर आदि १२ (ध) फ्रा टिस्ट्रिक्ट गजेटियर १२० (न) ट्रेवर्स कंपैनियन १२२ (क) एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट १९१९ [illegible] मन्दिर की प्राचीनता १२२
सूकर क्षेत्र की स्थिति १२२ सूकरक्षेत्र में चौहान सोरों और सोरों १२३ सूकरक्षेत्र का विस्तार १२३।

चतुर्थ अध्याय जन्मस्थान १२५—१६७

प्राक्कथन १२५

राजापुर की सामग्री : १२६ १३७

सिंहावलोकन १२६, तीन आधारभूत पुस्तकें १२६, अन्य पुस्तकों में पारस्परिक विरोध १२७; लाला भगवान १२७ राजापुर का अयोध्या काण्ड १२८ शास्त्रीय विवरण १३१ राजापुर की स्थापना १३१ मन्दिर और प्रतिमायें १३१ राजापुर की सड़कें १३१ सरयू पर डॉ० गुप्त की आपत्तियाँ १३४ सरयू अन्यथा-सिद्ध है १३४ दर्शनाकिञ्चन अर्थ १३६, जनश्रुति १३६ निष्कर्ष १३७।

काशी का पक्ष १३८ १४२

जन्म-स्थान गंगा जी के निकट १३८ काशी का उल्लेख १३८ सोरों का नवीन अर्थ १३८, उपसंहार १४१ तर्क का प्रथम समाधान १४ द्वितीय समाधान १४ तृतीय समाधान १४१, निष्कर्ष १४१ काशी की सामग्री १४१।

अयोध्या १४३-१५३

प्राक्कथन १४३ (१) बहिःसाक्ष्य १४३ १४४ (क) ग्रन्थ-विवरण पर १४३ (ख) तुलसी चौरा १४४ (ग) मानसी दास का तुलसीचरित १४६ तथा-कथित अन्तःसाक्ष्य १४६ १५२ (२) काव्य प्रसार १५१, (३) वास्तविक अन्तःसाक्ष्य १५२ राजपुर की तथा १५३।

तारी तुलसी की जन्मस्थली १५४ १६०

बहिःसाक्ष्य की सूचना १५४ कल्पतरु का लेख १५५, क्रम क्या ? १५६ संस्कृत व्याख्याता १५६, रेवरेंड ग्रीव्स १५७ श्री सीताराम शास्त्री मानस प्रसार १५७ श्री शिवनन्दन सहाय १५७, तुलसी रामायण तथा राजपुर का पत्र १५७ तारी कहाँ ? १५७, आलाजी के मत की आलोचना १५८ मेरी तारी-यात्रा १५८

अन्तर्वेद की यात्रा १५८ मेरा निष्कर्ष १५९ यात्रा की समाप्ति १६०।

रामपुर : तुलसीदास का जन्मस्थान १६१ १६७

महत्तम प्रमाण १६१, पण्डे जी के पक्ष में १६१, अन्य साक्ष्य १६१, रामपुर क्यों ? १६२, रामपुर की स्थिति तुलसीदास का कर प्रमाण १६३ नन्ददास के पुत्र का लेख १६३ रत्नावली का साक्ष्य १६४ मुरलीधर चतुर्वेद की स्पष्ट उक्ति १६४ रामपुर-यात्रा १६५, निष्कर्ष १६५।

पञ्चम अध्याय आविर्भाव-तिरोभाव १६८—१७३

(क) जन्म संवत् पड़ताल १६८ १७२

संवत् १५४४ वि १६८ १५६०वि० १६९ १५८३वि १६९, १५८३वि १७०, १६ वि १७० १५६८वि १७१।

(ख) मरण १६८० वि० १७२ १७३

श्रावणशुक्ला तीज १७२ श्रावणशुक्ला सप्तमी १७३।

षष्ठ अध्याय आकृति प्रकृति १७४—१९०

(क) बाह्याकृति १७४ (ख) चित्र १७५-१८१

तुलसी चित्र १७५, तालाब चित्र १७६ व्यंग्य चित्र १७७ कुपे चित्र १७७, तत्कालिन समकालीन चित्र १७७ कल्पित चित्र १७७ कल्पित चित्र १७८ पूर्व-चित्र १७९, पश्चात्कार १७९ चित्रकार बाबा चित्र १८१ निष्कर्ष १८१।

(ग) स्वभाव और चरित्र १८१

दयालु और परोपकारी १८१ मृदुल १८२ अक्रोधी १८४ मातृ-प्रेम १८४ निरभिमान १८५ विनयशील १८५, सरल १८५, आत्म-परीक्षक १८६ सत्यवादी १८७ गुणग्राही १८७ सौजन्यलोचन १८७, प्रकृति-प्रेमी और आदर्शवादी १८८ राष्ट्रवादी और विश्वेक १८८ दृढ़-संकल्प १८८ अद्वैत पंडित १८९, प्रतिभाशाली १९ ।

सप्तम अध्याय सोरों-सामग्री १९१— २५६

प्रथम भाग सिंहावलोकन १९१ २११

सोरों-सामग्री का अर्थ १९१ सोरों-सामग्री के दो रूप १९१

१ गुप्त-सामग्री १९१ १९७—(क) भवनपाल १९१। १—रामपुर १९२ २—नृसिंह मन्दिर १९२ ३—नाह-मन्दिर और घाट १९३ ४—तुलसीदास गृह १९३ ५—सीताराम जी का मन्दिर १९५ ६—नरहरिधाम १९६, (ख) वंशज १९६-१९४ (१) गुरु नरसिंह के वंशज १९६ (२) मन्नरलाल जी के वंशज १९४ (ग) जनश्रुति १९४ (घ) माघ-शौचा १९४ (ङ) गोस्वामी जी का आत्म परिचय १९६, (च) पाण्डु-लिपियाँ १९७।

२ बाह्य-सामग्री १६७, (क) नाभादास का विवरण १६७, (ख) नाभादास की की प्रशस्तियाँ १६८, (ग) 'भक्तसुखावली' १६६ (घ) भारतेन्दु का पत्र २०० , (ङ) वैष्णव वार्त्ताएँ और वचनामृत २ ०,(१) अष्टछापी वार्त्ता २ १ (२) संवत् १७२२ की 'भाव प्रकाश' वाली वार्त्ता २ १ (३) 'भाव प्रकाश' २०१ (४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता २ २ (५) श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृत' २ ७, (६) श्री हरिराम जी महाराज का साखा २ ७ वार्त्ता-प्राग्भाव २ ८, (७) स्फुट प्रमाण २१ , (१) रानी कमल कुँवरि वैष्णव २१ (अ) टीकाकार और जीवनीकार २११ (ङ) विदेशी अनुसंधान २१२, (ज) जनश्रुति २१३।

द्वितीय भाग : हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन २१४ २२६

प्राक्कथन २१४

१ 'रामाज्ञा चरित' २१४ (क) सुरतीवर चतुर्वेद की प्रति २१४ (ख) रामचरण मिश्र की प्रति २१६
२. रामाज्ञा के दोहे : २१६ (क) गोपालदास की प्रति २१६ (ख) गंगाधर की प्रति २१६ (ग) रामचन्द्र की प्रति २१७ (घ) ईश्वरदास की प्रति २१८
३ 'रामचरित मानस' २१८ (क) बालकाण्ड २१६—(ख) अरण्यकाण्ड २१६
४ 'सूकरक्षेत्र माहात्म्य : २१६ (क) सुरतीवर चतुर्वेद की प्रति २१६ (ख) शिवलाल की प्रति २२०
५ 'कृष्णदास संग्रहावली' २२०
६ 'प्रेमरतिर' २२०
७. 'जन-यात्रा' २२१
८. 'सेवादास की टीका' २२१

तृतीय भाग : प्रश्नालोचन २२६ २४२

प्राक्कथन २२६

(अ) अंतरंग परीक्षा २२६
(आ) बहिरंग परीक्षा २२७ (१) 'रामचरित मानस' का बालकाण्ड २२७, (२) रामचरित मानस का अरण्य काण्ड २२८ (३) 'सूकरक्षेत्र माहात्म्य' अन्त २३ (४) 'रामाज्ञा' २३० (५) 'रामाज्ञा [illegible] दोहा संग्रह' २३३ (६) 'दोहा रामाज्ञा' २३३, (७) गोस्वामी तुलसीदास का घर २३४ (८) नाभादास का घराना २३५ (९) नरसिंह मन्दिर २३६, (१०) नरसिंह चौबेजी के उत्तराधिकारी २३७।
(इ) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आपत्तियाँ और उनका समाधान २३८ [illegible] २३८ अंक पत्र पर विचार २३९।

चतुर्थ भाग : यदि सोरों-सामग्री न होती तो ? २४३-२५६

प्राक्कथन २४३

(क) विवेचनात्मक प्रामाण्य २४३ (ख) व्यापारमक प्रामाण्य २५७।

अष्टम अध्याय रत्नावली तुलसी की पत्नी २५७—२८१

(क) आत्म-परिचय २५७-२६०

मायेरनेह २५७ पतिनाम २५७ पितृग्राम २५७ जन्मभूमि २५७ पति का जन्म-स्थान और डेरा २५७, उपालम्भ और खेद २५८ काल-निर्देश २५८ पश्चात्ताप २५८ देवर २५६ पति की राममति २५६, वियोग की उत्कण्ठा २५६ वियोग का जीवन २६ ।

(ख) रत्नावली की शैली २६०-२६२

रत्नावली का गौरव २६० वृत्त २६० धर्म-कर्मनीति २६० भाव २६१ अलंकार २६१ बिम्ब २६२ रस २६२ कौशल २६२ ।

(ग) रत्नावली के उपदेश २६३ २७२

नारी का आदर्श २६३ गृह-दक्षता २६६ रहस्य-रक्षा २६६ गुरुजनों के प्रति व्यवहार २६६, सपत्नियों के प्रति व्यवहार २६७ अन्य सम्बन्धियों के प्रति व्यवहार २६७ संयम-सामर्थ्य २६८, स्त्री-शिक्षा २६६, शिक्षा और परम्परा २६६, शिक्षा का उद्देश्य २७० मधुर भाषण २७० सन्मित्र २७० व्यावहारिक बातों की विचारणीयता २७० मित्रभाव २७१ दुष्ट-त्याग २७१ कुसंग-त्याग २७१, धन की गतिनी २७१ व्यवहार विज्ञान २७२ ।

(घ) रत्नावली के दार्शनिक विचार २७२-२८१

अन्धकार २७२ कामवासना २७३ मोह-निद्रा २७३ धन-निधन २७३ आत्म-सुधार २७४ सदभ्यास २७४ सरल जीवन उच्च विचार २७४ अनुभव २७५, पतिव्रता का धर्म २७५ पुत्र-सम्पर्क २७६ पति-महिमा २७७ दाम्पत्य-सामञ्जस्य २७८ दाम्पत्य के प्रतीक २७९ पति में पत्नी का ध्यान २७९ विलक्षण पुरुष २८० ।

नवम अध्याय जीवन गाथा २८२—३१८

(क) आत्म-कथा २८२ ३०७

जन्मस्थान २८२ जन्मस्थान का परिचय २८२ जाति २८४ आयुष्य २८७ नाम २८७, आध्यात्मिक नाम २८८ माता तुलसी २८९ गर्भवास-काल २८९ मातृ-पितृ-वियोग २८९ बचपन के कष्ट २९१ गुरुदेव २९२ शिक्षा-स्थान और पाठ्य विषय २९३ हनुमद्भक्ति २९४ सम्प्रदाय २९५, विवाह २९६, विरक्ति २९७ चित्रकूट निवास २९९ अयोध्या २९९ प्रयाग २९९ सीतामढ़ी २९९ काशीवास ३०० नित्य ३०१ विरोध ३०१, पद और उपाधि ३०२ काशी में दारिद्र्य और महामारी ३०३ व्यवस्था और समय ३०५, घर-बाँसी, मीन की सनीचरी, काशी की दीनता ३०६ ।

१ बाह्य-सामग्री १६७ (क) नन्ददास का विनयपद १६७ (ख) नाभा दास जी की प्रशस्तियाँ १६८ (ग) 'अयमनजापन' १६६, (घ) भारतेन्दु का पद १ , (ङ) वैष्णव वार्ताएँ और वचनामृत २ ०,(१) अष्टछाप की वार्ता २ १ (२) संवत् १७२२ की 'भाव प्रकाश' वाली वार्ता २०१ (३) 'भाव प्रकाश' २ १ (४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता २०२ (५) श्री गोकुलनाथ जी के चमत्कार २ ७, (६) श्री कल्याणदास जी महाराज का सायन २ ७ वार्ता-मामायण २ ८ (७) रघुवर समर्पण २१०, (१) रानी कमल कुँवरि देवगढ़ २१० (आ) दीवाकार और जैनीश्वर २११ (इ) विदेशी अनुसंधान २१६ (ई) जनश्रुति २१३।

द्वितीय भाग हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन २१४-२२५

प्राक्कथन २१४

१ रामाज्ञा चरित २१४ (क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति २१४ (ख) रामचन्द्र मिश्र की प्रति २१५

२. रामाज्ञा के दोहे : २१६ (क) गोपालदास की प्रति २१६ (ख) मनोहर की प्रति २१६ (ग) रामचन्द्र की प्रति २१७ (घ) ईश्वरदास की प्रति २१८

३ 'रामचरित मानस' २१८ (क) बालकाण्ड २१९—(ख) आरण्यकाण्ड २१९

४ 'सुन्दरसेन माहात्म्य : २१६ (क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति २१६ (ख) शिवनन्दन की प्रति २२

५ 'कृष्णदास पंचाध्यायी' २२

६ 'प्रेमरंगी २२

७. 'जय-पत्र' २२१

८ 'सिद्धान्त की टीका २२१

तृतीय भाग प्रत्यालोचन २२६-२४२

प्राक्कथन २२६

(अ) अंतरंग परीक्षा २२६

(आ) बहिरंग परीक्षा २३७ (१) 'रामचरित मानस' का बालकाण्ड २३७, (२) रामचरित मानस का अरण्य काण्ड २३८, (३) 'सुन्दरसेन माहात्म्य' भाग २३ (४) 'रामाज्ञा' २३ (५) 'रत्नावली बहु दोहा संग्रह' २३३ (६) 'दोहा रामाज्ञा' २३३ (७) गोस्वामी तुलसीदास का घर २३४ (८) नन्ददास का घराना २३५ (९) नरसिंह मन्दिर २३६, (१) नरसिंह चौकी के बनवारीलाल २३७।

(इ) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की व्याख्यानों और अन्य सम्पादन २३८ पत्र २३८ उक्त पत्र पर विचार २३९।

चतुर्थ भाग यदि लोरों-सामग्री न होती तो ? २४३-२५६

प्राक्कथन २४३

(क) निषेधात्मक प्रमाणन २४३ (ख) भावात्मक प्रमाणन २४७।

अष्टम अध्याय रत्नावली तुलसी की पत्नी २५७—२८१

(क) आत्म-परिचय २५७-२६०

नामोल्लेख २५७ पतिनाम २५७ पितृग्राम २५७ जन्मभूमि २५७ पति का जन्म-स्थान और पेशा २५७ जन्मकाल और खेद २५८ काल-निर्देश २५८ परलोकगमन २५८ देवर २५९, पति की रामभक्ति २५९, वियोग की तीव्रता २५९ वियोग का जीवन २६ ।

(ख) रत्नावली की शोभा २६०-२६५

रत्नावली का गौरव २६० वृत्त २६ अर्थ-गम्भीर्य २६० न्याय २६१ अलंकार २६१ विषय २६२, रस २६२ औदात्य २६३ ।

(ग) रत्नावली के उपदेश २६५ २७२

नारी का आदर्श २६५ गृह-दक्षता २६६ रहस्य-रक्षा २६६, गुरुजनों के प्रति व्यवहार २६६, सतर्कता २६६ पति के प्रति व्यवहार २६७ अन्य सम्बन्धियों के प्रति व्यवहार २६७ संतान-लालन २६८, स्त्री-शिक्षा २६६ शिक्षा और परम्परा २६६, शिक्षा का उद्देश्य २७० मधुर भाषण २७ सम्मित २७० अप्रासंगिक बातों की निरर्थकता २७० निरभिमान २७१ दुष्ट-त्याग २७१ दुर्जन-त्याग २७१, धन की महिमा २७१ व्यवहार-निकष २७२ ।

(घ) रत्नावली के दार्शनिक विचार २७२-२८१

भाग्यवाद २७ कर्मफलता २७३, मोक्ष-निष्ठा २७३ धर्म-निष्ठा २७३ ज्ञान-सुधार २७४ सदभ्यास २७४ सरल जीवन उच्च विचार २७४ अणुत्व २७५, व्यक्तित्व का रूप २७५, पुण्य-सम्पर्क २७६ पति-महिमा २७७ दाम्पत्य-सम्बन्ध २७८ दाम्पत्य के प्रतीक २७९ पति में पत्नी का रूप २७९ विश्व-बन्धुत्व २८ ।

नवम अध्याय जीवन गाथा २८२—३१८

(क) आत्म-कथा २८२-३०७

जन्मस्थान २८२ जन्मस्थान का परिचय २८३ जाति २८४ कुलपेशा २८७ नाम २८७, आध्यात्मिक नाम २८८ माता हुलसी २८९ जन्मकाल-काल २८९ मातृ-पितृ-वियोग २८९ बचपन के कष्ट २९१ गुरुदेव २९२ शिक्षा-स्थान और पाठ्य विषय २९३ हनुमद्भक्ति २९४ सम्प्रदाय २९५, विवाह २९६, विरक्ति २९७ चित्रकूट-निवास २९९ अयोध्या २९९, प्रयाग २९९, सीतामढ़ी २९९ कार्तिकास ३ ० निधन ३०१ विरोध ३०१, पद और उपाधि ३ १ काशी में दारिद्र्य और महामारी ३ ३ सन्यासवृत्ति और समय ३०५, रहस्यवाद, मौन की समीक्षा, काशी की श्रेष्ठता ३०६ ।

(ख) कूट और सुझाव ३०७-३१८

वंश परिचय ३०७ तुलसी और बारी ३०९ गुरु नरहरि ३०९ माता-पिता का नाम ३११ जनाबकाल ३११ गृह-त्याग और नाम ३१२ हनुमद्दर्शन ३१२ रामदर्शन ३१२ अयोध्या-गमन ३१३ कर्मनिष्ठ ३१३ चौरवाली ३१४ नैनम ३१४ अन्धाबाबा ३१५, राम की जन्मभूमिता ३१५ इष्टदेव के प्रति अनन्य भक्ति ३१५, गोकुल-दर्शन ३१६ एक साधु को चमत्कार ३१६, पत्रोत्तर ३१६, ग्रन्थ पर सही ३१७।

दशम अध्याय 'रामचरित मानस' का पाठान्तर तथा गोस्वामी तुलसीदास का हस्तलेख ३१९—३३४

(क) पाठान्तर ३१९ ३२२

पाठ-भेद के रूप ३१९ कतिपय उदाहरण ३२० विकृत रूप ३२१ शुद्ध पाठ ३२ सोरों-प्रति १६४३ वि० की ३२।

(ख) गोस्वामी जी का हस्तलेख ३२२-३२४

(१) अरण्य कुंड की प्रति ३२२ (२) बालकांड रामायण ३२२, (३) रामपुर का अयोध्या काण्ड ३२३ (४) रामगीतावली ३२३ (५) पंचमहायज्ञ ३२३ (६) सोरों का अरण्य काण्ड १६४३ वि ३२४।

(ग) रचना-समय ३२५ ३३४

प्राक्कथन ३२५

जानकी चालीसा कृतियाँ ३२५, प्रामाणिक पुस्तकें ३२६, विनय ३२६, दोहे ३२७ रामाज्ञा प्रश्न ३२७, कवितावली और बहुत ३२८ कृष्णगीतावली ३२९ रामचरित मानस ३३ विनय-पत्रिका ३३१ पार्वती मंगल ३३१ जानकी मंगल ३३२, गीतावली ३३२, रामलला नहछू ३३३ बरवै ३३३।

एकादश अध्याय गोस्वामीजी की साहित्यिकता ३३५—३६७

(क) काव्य का रूप ३३५ ३४०

शब्दार्थ की सम्पृक्तता ३३५, काव्यतत्त्व ३३५, साधन ३३६, मानस का रूपक ३३७ काव्य का प्रयोजन ३३७ शिल्प का माप ३३८ अनुभूति-मेधावीता ३३८, कवि का बल ३३९ रसात्मक काव्य ३३९ गोस्वामी जी का कवित्व ३३९।

(ख) भाषा ३४०-३३४

संस्कृत-निष्ठ ३४०, अवधी ३४१ जायसी और तुलसी की भाषा में अन्तर ३४३ अवधी पर अधिकार ३४४ तुलसी-भाषा का अवधी रूप ३४५, तुलसी-भाषा में क्रिया-रूप ३४७ नन्ददास की भाषा ३४८, सोरों के कृष्णदास की भाषा ३४९ तुलसी-पत्नी की भाषा ३५१ सुरतमिश्र चतुर्वेद की भाषा ३५२ भाषानुमान ३५३।

(ग) शब्द-चयन ३५४-३५८

निघंटु और प्रमाण-ग्रंथ ३५४ संस्कृत शब्द ३५४ तत्सम ३५४ तद्भव ३५४ देशज ३५४ बुन्देलखण्डी ३५५ भोजपुरी ३५५, अरबी ३५५, फारसी ३५५, मतभेद ३५५।

(घ) रचना-शैली ३५८-३६२

पदलिख शैलियाँ ३५८ छप्पय-पद्धति ३५८ गीत-पद्धति ३५९ कवित्त-सवैया-पद्धति ३५९ दोहा-सूक्ति-पद्धति ३५९ प्रबन्ध-पद्धति ३६ साम्य का अभिप्राय ३६ चौपाई-दोहे का स्रोत ३६ कुण्डलियाँ ३६१।

(ङ) दोष-दर्शन ३६३-३६७

प्रारम्भन ३६३ कथन-भाषा ३६३ प्रबन्ध-हीनता ३६३ कुछ अन्य अरोप ३६३ समाधान ३६४ निष्कर्ष ३६४ भाषा और शब्द की अनेकरूपता ३६५, कमियाँ ३६६, शंका-समाधान ३६६।

द्वादश अध्याय दार्शनिक विचार ३६८—४०५

(क) प्राक्कथन ३६८—३७२

उपक्रम ३६८ निवर्तन ३६८ ईसाई धर्म का प्रभाव ! ३६८ आर्नेस्ट ३६९, डॉ मैक्डूगल ३६९, गैरे जी और लाला जी ३६९ बिट्ठी जी और पाण्डे जी ३६९ डॉ दास और डॉ बड़थ्वाल ३७० गुप्त जी और अवस्थी जी ३७० डॉ० ज्ञान और डॉ नगेन्द्र ३७ चतुर्वेदी जी ३७ डॉ मिश्र ३७१ डॉ गुप्त ३७१ श्रीवास्तव जी ३७१, मेरा दृष्टिकोण ३७२।

(ख) प्रमाण ३७२

प्रत्यक्षादि ३७२ अनुमान ३७२।

(ग) ब्रह्म ३७२-३७४

निर्गुण ३७२ सगुण ३७२ निर्गुण-सगुण का अभेद ३७३, परात्पर राम ३७३ राम-नाम ३७४।

(घ) माया ३७४-३७७

ब्रह्म के रूप से ३७४ सत्य का तात्पर्य ३७५, व्यावहारिक रूप से ३७५, मनोमाया ३७५ विद्याऽविद्या ३७५, माया और ईश्वर ३७६, सत् असत् ! ३७६, तिलोमी जी का सुझाव ३७६ सुन्दरतम कल्पना ३७६ भक्ति और माया ३७७ माया को पार करने का उपाय ३७७।

(ङ) त्रिमूर्ति ३७७-३७८

राम के अधीन ३७७ त्रिमूर्ति-परिचय ३७८ राम और विष्णु ३७८, शैव वैष्णवों का ऐक्य ३७८।

(घ) कूट और दुरूहार्थ १०७-११८

वंश परिचय १०७ तुलसी और तारी १०९ गुरु नरसिंह १०९ माता-पिता का नाम ११० समाधिकाल १११ पृष्ठ-स्थान और काल १११ हनुमदर्शन ११२, रामदर्शन ११२ अयोध्या-गमन ११३ कलीसाल ११३ चौरासी ११४ पंचन ११४ अवधाना ११५, राम की अनादिसाता ११५ इष्टदेव के प्रति अनन्य भक्ति ११५, प्रेमोत्तम-दर्शन ११६ एक लघु को पल्लवार ११६, पयोरुह ११६, ग्रन्थ पर सभी ११७।

दशम अध्याय 'रामचरित मानस' का पाठान्तर तथा गोस्वामी तुलसीदास का हस्तलेख ११९—३३४

(क) पाठान्तर ११९ १२२

पाठ-भेद के रूप ११९ कलियुग अवतरण १२१ विहित रूप ११९ शुद्ध पाठ १२० सोरों प्रति १६४१ वि की १२।

(ख) गोस्वामी जी का हस्तलेख १२२-१२४

(१) बाबा कुंज की पोथी १२२ (२) बालकांड रामायण १२२
(३) रामपुर का अयोध्या काण्ड १२३ (४) रामगीतावली १२३
(५) पंचाक्षरमाला १२३ (६) सोरों का स्वरूप काण्ड १६४२ वि १२४।

(ग) रचना-समय १२५ १३४

प्राक्कथन १२५

लगभग चालीस कृतियाँ १२५, प्रामाणिक पुस्तकें १२६ निरूपण १२६, दोहे १२७ रामाज्ञा प्रश्न १२७ कवितावली और गजुक १२८ कृष्णगीतावली १२९ रामचरित मानस १३ विनय-पत्रिका १३१ पार्वती मंगल १३१ जानकी मंगल १३२, गीतावली १३२ रामलला नहछू १३३ सवैये १३३।

एकादश अध्याय गोस्वामीजी की साहित्यिकता १३५—३६७

(क) काव्य का रूप १३५ १४०

शब्दार्थ की सम्पृक्तता १३५, अलंकरण १३५, छायन १३६, मानस का रूपक १३६ काव्य का प्रयोजन १३७ शिवत्व का भाव १३८ अनुभूति-सेक्यीकता १३९, कवि का रूप १३९ रूपात्मक काव्य १३९ गोस्वामी जी का कवित्व १३९।

(ख) भाषा १४० १५४

संस्कृत-निष्ठ १४० अवधवाणी १४१ बाबरी और तुलसी की भाषा में अन्तर १४१ अवधवाणी पर अधिकार १४४ तुलसी-काव्य का भाषी रूप १४५, तुलसी-काव्य में विभक्ति-रूप १४७ शब्दरूप की रचना १४८ सोरों के हस्तलेख की भाषा १४९ तुलसी-पत्नी की भाषा १५१, सुखसागर चतुर्वेद की भाषा १५२, भाषानुशासन १५३।

(ग) शब्द-चयन ३५४ ३५८

निषाद और अमन्त्र-काव्य ३५४ संस्कृत शब्द ३५४ तद्भव ३५४ तत्सम ३५४ देशज ३५४ कुन्देलखण्डी ३५५, मालवी ३५५, अरबी ३५५, फारसी ३५५, गलमेल ३५५।

(घ) रचना-शैली ३५८ ३६२

पदबिन्ध शैलियाँ ३५८ छन्दस पद्धति ३५८ गीति-पद्धति ३५९, कवित्त-सवैया-पद्धति ३५९, दोहा-सूक्ति-पद्धति ३५९ प्रबन्ध-पद्धति ३६ छन्द का अभिप्राय ३६० चौपाई-दोहे का स्रोत ३६ कुण्डलियाँ ३६१।

(ङ) दोष-दर्शन ३६३ ३६७

प्राक्कथन ३६३ भाव-भाषा ३६३ प्रबन्ध-हीनता ३६३ कुछ अन्य आरोप ३६३ समाधान ३६४ विद्वानों ३६४, बहनों और शब्द की अनेकरूपता ३६५, कमाएँ ३६६, शंका-समाधान ३६६।

द्वादश अध्याय दार्शनिक विचार ३६८—४०५

(क) प्राक्कथन ३६८—३७२

उपक्रम ३६८ विवर्तन ३६८ ईसाई धर्म का प्रभाव ? ३६८ कार्पेंटर ३६९ डॉ मेकडानल ३६९, गौड़ जी और लाला जी ३६९ त्रिपाठी जी और पाण्डे जी ३६९ डॉ० दास और डॉ बड़थ्वाल ३७०, सुमन जी और अग्रवाल जी ३७०, डॉ लाल और डॉ भटनागर ३७० चतुर्वेदी जी ३७ डॉ मिश्र ३७१ डॉ गुप्त ३७१ व्यौहार जी ३७१ मेरा दृष्टिकोण ३७२।

(ख) प्रमाण ३७२

प्रत्यक्षादि ३७२, अनुमान ३७२।

(ग) ब्रह्म ३७२ ३७४

निर्गुण ३७३ सगुण ३७३ निर्गुण-सगुण का अभेद ३७३, परात्पर राम ३७३ राम-नाम ३७४।

(घ) माया ३७४ ३७७

प्रभा के रूप से ३७४ छल का अस्तित्व ३७५, तात्त्विक रूप से ३७५, मनोभाव ३७५, विषाक्तिता ३७५, माया और ईश्वर ३७५, तत् भक्ता भक्तु ? ३७६, त्रिपोषी जी का सुझाव ३७६, सुन्दरता भ्रमता ३७६, भक्ति और माया ३७७ माया को पार करने का उपाय ३७७।

(ङ) विभूति ३७७-३७८

राम के अवतार ३७७ विभूति-महिमा ३७८ राम और विष्णु ३७८ शैव-वैष्णवों का ऐक्य ३७८।

(च) अवतार ३७८ ३८०

अवतार का अर्थ ३७८, अवतार-शरीर का तत्त्व ३७९ अवतार का लक्ष्य और उद्देश्य ३७९ अवतार का परिवार ३७९ अवतार ३७९, राम के प्रति तुलसी का भाव ३८० ।

(छ) सुर-मुनुर ३८० ३८२

त्रिमूर्तियों के अधीन देव ३८० पंचदेव ३८० देवताओं का स्वतंत्र ३८१ तुलसी की उपासना ३८२ इंद्र का रूप ३८२ देवेतर योनियाँ ३८२ लोकपालादि ३८२ ।

(ज) जीव ३८३ ३८४

व्यापक के दो दृष्टिकोण ३८३ जीव और ईश्वर ३८३ तीन अवस्थाएँ ३८३ जीव-विभाजन ३८३ जीव के प्रकार और योनियाँ ३८४ पुनर्जन्म ३८४ मानव-शरीर की महिमा ३८४ निष्कर्ष ३८४ ।

(झ) मुक्ति ३८५ ३८७

मुक्ति का स्वरूप ३८५, मुक्ति के प्रकार ३८६, कैवल्य ३८६ अपुनरावृत्ति ३८६, मुक्ति और भक्ति ३८७ ।

(ञ) मुक्ति के मार्ग ३८७ ४०५

प्राक्कथन ३८८

(क) कर्म ३८८

कर्म की व्याख्या ३८८ भारत में कर्म का विकास ३८९ कर्म की अवधारणा ३८९ कर्म की उपादेयता ३९ कर्म-स्वरूप और उपार्जन ३९ निष्कर्ष ३९१ ।

(ख) ज्ञान ३९१

ज्ञान का स्वरूप ३९१ ज्ञान-विज्ञान ३९१ ज्ञान और सत्ता ३९२ ज्ञान के उपकरण ३९२ ज्ञान और भक्ति ३९२, ज्ञान-रहित भक्ति की अपूर्णता ३९३ ज्ञान पर मान्य ३९३ ज्ञानी का स्तर ३९४ ज्ञान-मार्ग की कठिनाई ३९४ ज्ञान-दीपक ३९४ ज्ञान दीपक की निष्प्रभता ३९५, सत्संग और ज्ञान ३९५, ज्ञान-साधन ३९५, ज्ञान : मानसीय और दिव्य ३९५ ।

(ग) भक्ति ३९६

(क) भक्ति के लक्षण ३९६, साधन पक्ष में भक्ति ३९६ साध्य भक्ति ३९६, भक्त वर्गीकरण ३९७ भक्ति-मुक्ति का सम्बन्ध ३९७ भक्ति-कर्म का सम्बन्ध ३९७ भक्ति और ज्ञान ३९८ भक्ति मार्ग से अपवादित ३९८ भक्ति-नीति ३९८ भक्ति साधन ३९९ भक्ति के उपकरण ३९९, भक्ति-भजन ४ साधु और सत्संग ४०० ।

(आ) प्रवृत्ति और प्रसार ४०

व्यक्ति भाव ४ प्रार्थना समन्वय ४ १ प्रवृत्ति का रूप ४ १ प्रवृत्ति के तत्त्व ४०१ तुलसीदास और प्रसार ४०२ रामकृष्ण ४ २ गुरु-कृपा से भगवत्कृपा ४०३ भगवत्कृपा का रूप ४०२, पुरुषार्थ का प्रभाव ४०४ अन्तःप्रवृत्ति अथवा पुरुषार्थ ४०४ निष्कर्ष ४ ५।

त्रयोदश अध्याय मनोविज्ञान ४०६—४२०

प्राक्कथन ४०६

तुलसी की देन ४०६, मानस-गुणी ४०६, मनःस्थान ४ ६ मन और शरीर ४०७ चार अवस्थाएँ ४ ७ समय का अनुभव-पूर्ण रूप ४ ८ समय और अनुभव ४०८, क्रमानुक्रम और परिस्थिति ४ ९ मूल प्रवृत्तियाँ ४ ९ पराधीनता ४१ वासना और वासना ४११ संवेग ४११ स्थायी भाव ४१३ प्रेम रस ४१३, काम ४१४ कामदेव के अधीन कौन नहीं ? ४१४ काम दो अंगे हैं ४१४ विवेक-हर काम ४१५, काम का प्रतिकार ४१५ राम को प्रेम प्यारा है ४१५, भक्ति का केंद्र ४१६, भक्ति रागात्मक है ४१६, कारक का विश्लेषण ४१६, अन्तःकरण सन्त की व्याख्या ४१७ रेचन ४१७ शक्ति उपासक ४१८ मनोविश्लेषण तुलसी ४१८ समय का रूप ४१८ व्यक्तियों के लिये एकमक्ति की एकमात्रता ४१९ मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण ४१९ काल-साक्षात्कार का सिद्ध सूत्र ४१९ तुलसीदास के दो योग ४२० निष्कर्ष ४२०।

चतुर्दश अध्याय आचार-शास्त्र ४२१—४३९

(क) प्रारम्भिक वक्तव्य ४२१

(ख) स्वतन्त्रता और नियति ४२१

क्या व्यक्ति स्वतन्त्र है ? ४२१ कर्म-सिद्धान्त ४२२ कर्म-सिद्धान्त में ईश्वरेच्छा की पूर्व-निहित ४२२ अहमन्यता ४२२ ईश्वरेच्छा के कुछ उदाहरण ४२३ भगवान सब को नचाते हैं ४२४ भाग्य की अनुपता और अपरिहार्यता ४२४ मनः शरीर का सामंजस्य ४२५, भाग्यवाद और भविष्यवाणी ४२५, तुलसी का आत्मबल ४२६, उपसंहार ४२६।

(ग) भला-बुरा ४२७

बुद्धिमान् सत्य ४२७ पाप-पुण्य-स्रोत ४२७, धर्माधर्म ४२८ प्रधान पुण्य ४२९ अवगुण विशेष ४२९ ईश्वर की आवश्यकता ४३० धर्म-चर्चा की सरलता और चर्याचरण की कठिनता ४३ सत्संग से पुण्यार्जन ४३ जीवन के तीन मार्ग ४३० निष्कर्ष ४३१।

(घ) स्थान और कर्त्तव्य ४३१

वर्णाश्रम ४३१ सामान्य और विशेष धर्म ४३२।

(च) अवतार ३७८-३८०

अवतार का अर्थ ३७८, अवतार-शरीर का तत्त्व ३७९, अवतार का समय और उद्देश्य ३७९, अवतार का परिकर ३७९, दशावतार ३७९, राम के प्रति तुलसी का भाव ३८०।

(छ) सुर मुनुष ३८०-३८२

विमूर्तियों के अधीन देव ३८०, पंचदेव ३८१, देवताओं का स्वभाव ३८१, तुलसी की भक्ति ३८२, देव का रूप ३८२, देवेतर योनियाँ ३८२, गोब्राह्मणादि ३८२।

(ज) जीव ३८३-३८४

व्याख्या के दो दृष्टिकोण ३८३, जीव और ईश्वर ३८३, तीन अवस्थाएँ ३८३, जीव-विभाजन ३८३, जीव के प्रकार और योनियाँ ३८४, पुनर्जन्म ३८४, मानव-शरीर की महिमा ३८४, निष्कर्ष ३८४।

(झ) मुक्ति ३८५-३८७

मुक्ति का स्वरूप ३८५, मुक्ति के प्रकार ३८६, कैवल्य ३८६, सायुज्यादि ३८६, मुक्ति और भक्ति ३८७।

(ञ) मुक्ति के मार्ग ३८८-४०५

प्राक्कथन ३८८

(क) कर्म ३८८

कर्म की व्याख्या ३८८, कारण में कार्य का निवास ३८९, कर्म की अनिवार्यता ३८९, कर्म की व्यापकता ३९०, कर्म-त्याग और रामार्चन ३९०, निष्कर्ष ३९१।

(ख) ज्ञान ३९१

ज्ञान का स्वरूप ३९१, ज्ञान विज्ञान ३९१, ज्ञान और सत्ता ३९२, ज्ञान के प्रकारत्व ३९२, ज्ञान और भक्ति ३९२, ज्ञान-रहित भक्ति की अपूर्णता ३९३, ज्ञान का मार्ग ३९३, ज्ञानी का स्तर ३९४, ज्ञान-मार्ग की बाधाएँ ३९४, ज्ञान-दीपक ३९४, ज्ञान-दीपक की निष्प्रभता ३९५, सदसत् और ज्ञान ३९५, ज्ञान-साधन ३९५, ज्ञान मानवीय और दिव्य ३९६।

(ग) भक्ति ३९६

(अ) भक्ति के प्रकार ३९६, साधन रूप में भक्ति ३९९, नवधा भक्ति ३९९, भक्त कोटिकरण ३९७, भक्ति-मुक्ति का सम्बन्ध ३९७, भक्ति-कर्म का सम्बन्ध ३९७, भक्ति और ज्ञान ३९८, भक्ति मार्ग से अभिमानित ३९८, भक्ति-भक्ति ३९८, भक्ति साधन है ३९९, भक्ति के प्रकारत्व ३९९, भक्ति-प्रपत्ति ४००, भक्त और भगवान् ४०।

(आ) प्रपत्ति और प्रसाद ४

आश्रित भाव ४ आर्पित समर्पण ४ ? प्रपत्ति का रूप ४ १ प्रपत्ति के तत्त्व ४ १ तुलसीदास और प्रसाद ४ २ रामकृपा ४ २, गुरु-कृपा से भगवत्कृपा ४ भगवत्कृपा का रूप ४ २ पुरुषार्थ का प्रभाव ४ ४ अन्तरात्मा अथवा पुरुषकार ४ ४ निष्कर्ष ४ ५।

अयोदश अध्याय मनोविज्ञान ४०६—४२०

प्राक्कथन ४ ६

तुलसी की देन ४ ६, मानस-मुनी ४ ६, स्व-स्थान ४ ६ मन और शरीर ४ ७ चार अवस्थाएँ ४ ७, मनस का अनुभव-पूर्व रूप ४ ८ मनस और अनुभव ४०८ वंशानुक्रम और परिस्थिति ४ ९ मूल प्रवृत्तियाँ ४ ९ पशुत्व-बल ४१० लालसा और वासना ४११ संवेग ४११ स्थायी भाव ४१३ प्रेम रस ४१६, काम ४१४ कामदेव के अधीन कौन नहीं ? ४१४ काम देव अंधे हैं ४१४ विवेक-हर काम ४१५, काम का प्रतिकार ४१५, राम को प्रेम पकड़ा है ४१५, ग्रन्थि का रूप ४१६, ग्रन्थि रोगकारक है ४१६ कारण का विश्लेषण ४१६, अवचेतन मन की शक्तियाँ ४१७ रेचन ४१७ उचित उपचार ४१८ मनोविश्लेषक तुलसी ४१८ समग्र का रूप ४१८ व्यक्तियों के लिये रामचरित की रामचरचा ४१९ मानसिक स्वास्थ्य का निकष ४१९ काम-साक्षात्कार का चित्र मूल्य ४२० तुलसीदास के दो योग ४२० निष्कर्ष ४२१।

चतुर्दश अध्याय आचार-शास्त्र ४२१—४३९

(क) प्रारम्भिक वक्तव्य ४२१

(ख) स्वतन्त्रता और नियति ४२१

क्या व्यक्ति स्वतन्त्र है ? ४२१ कर्म-सिद्धान्त ४२१ कर्म सिद्धान्त में ईश्वरेच्छा की पूर्व-निहितता ४२२ अहमवाद ४२३ दीक्षा के कुछ उदाहरण ४२३ अवचेतन मन को मनाने हैं ४२४ मन्त्र की अद्भुतता और अपरिहार्यता ४२४ मन शरीर का सर्वस्वरूप ४२५, मानवाद और भविष्यवाणी ४२५, तुलसी का आत्मबोध ४२६, उपसंहार ४२६।

(ग) मर्यादा-चूरा ४२७

मूर्तिमान् सत्य ४२७ पाप पुण्य-बोध ४२७ कर्माकर्म ४२८ प्रबल पुण्य ४२९ अनुपम निरोप ४२९ दण्ड की आवश्यकता ४३ धर्म-चर्चा की सरलता और धर्माचरण की कठिनता ४३० सर्वांग से पुरुषार्थ ४३ जीवन के तीन मार्ग ४३० निष्कर्ष ४३१।

(घ) स्थान और कर्तव्य ४३१

वर्णाश्रम ४३१ साधारण और विशेष धर्म ४३२।

(क) नारी का स्थान ४३२

नर-नारी का अन्तर्जीवन ४३२, नारी का प्राचीन स्तर ४३३ नारी गौरव का ह्रास ४३३, विदेश में नारी का स्तर ४३४ शास्त्र-निषेध ४३४, सरला ४३४ नारी के प्रति नारी ४३५, नारी के प्रति अनुराग ४३५ स्त्रीत्व के प्रति राम की कठोरता ४३५, कैकेयी और मन्थरा ४३५ नर-मानिका ४३६ नारी के कर्तव्य ४३६, नारी की वेदियाँ ४३७ तुलसीदास के पक्ष में तर्क ४३७ कठिनियों के दो कारण ४३८ निष्कर्ष ४३८।

(ख) आचार-परक निष्कर्ष ४३९

पञ्चदश अध्याय राजनीति रामराज्य ४४०-४६२

प्राक्कथन ४४०

व्यक्तिगत स्वतंत्र ४४० धर्मराज्य ४४१ ईश्वर का प्रतिनिधि ४४१ लोकमत का कठोराधिकार ४४१ राजा की योग्यता ४४२ भले-बुरे राजाओं के लिए कसौटी ४४२ राजसत्ता के सिद्धान्त ४४३ कुछ अन्य आदेश ४४३ तीन प्रकार की जनता ४४४ दक्षिण व्यवहार ४४४ राजमद ४४५, प्रजा के प्रति ४४५, मूर्ख-बहुल जनता ४४६ अधिकारियों पर दृष्टि ४४७, आडम्बर ४४७ राजकाज और राजा ४४७ सचिव की योग्यता ४४८, गुप्तचर ४४८ शत्रु के प्रति व्यवहार ४४८, सेना ४४९ राजाज्ञा ४५ युद्ध-कौशल ४५ व्यवहार-युद्ध ४५१ बाहुबल ४५१ युद्ध का समय ४५१ अहेरमक ४५२ धर्म-रथ ४५२, नीति ४५२ राज-मर्यादा ४५४ राजधानियों का वैभव ४५६ नगर की सभ्यता ४५६, समाज-मस्तिष्क के लिए राज-सम्मान ४५६ कल्याणमय प्रजा-सत्ता ४५७, राजा की महत्ता ४५८ राज्यतन्त्र के नियम और वैधानिक कर्म ४५८ राम की राजधानी ४५९ नागरिकों की सम्पन्नता ४५९ राम का राजनीतिक सिद्धान्त ४६ राम-राज्य का गौरव ४६ , निष्कर्ष ४६२।

परिशिष्ट ४६३-५८४

अध्याय सामग्री ५८५

नामानुक्रम ५८६-५९०

चित्र

(क) पांडुलिपि

रामचरित मानस बालकांड १६४३ वि
रामचरित मानस अरण्य काण्ड, १६४३ वि
गोस्वामी तुलसीदास जी का हस्तलेख, १६४३ वि
भ्रमरगीत, बालकृष्ण की प्रति १६७२ वि
श्री गोसाईं जी के सेवक चारि भाइयों तिनकी वार्ता १६९७ वि०
दोहा रत्नावली, गोपालदास की प्रति १८२४ वि
दोहा रत्नावली, गंगाधर की प्रति १८२६ वि०
रत्नावली लघु दोहा संग्रह, ईश्वरनाथ की प्रति, १८०६ वि०
रत्नावली चरित (मुरलीधर चतुर्वेद) १८२६ वि
रत्नावली चरित रामकल्याण मिश्र की प्रति १८६४ वि
श्री अष्ट सखामृत १८६६ वि
सूकरक्षेत्र माहात्म्य मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८ ६ वि
सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा शिवसहाय की प्रति १८७० वि
सूकरक्षेत्र माहात्म्य (श्री कवि कृष्णदास कृत), सम्वत् १६२० वि०
वर्णपत्र सूचनाम की प्रति १८७२ वि
मानमाल पर सेवादास की टीका
सं० १६१८ वि के मुद्रित सूकरक्षेत्र माहात्म्य का मुख पृष्ठ

(ख) स्थान

श्री वराह मन्दिर और घाट, सूकरक्षेत्र
गुरु नरसिंह का निवासस्थान (गीर्वाणार से पूर्व)
गुरु नरसिंह का निवासस्थान (गीर्वाणार के पश्चात्)
रामाश्रम
रामसर
रामपुर (रामपुर) की ग्रामदेवी
रामपुर के निवासी
रामपुर के निवासी
सारी का घाट
सारी की ग्रामदेवी,
सारी का घर और सारी के कुछ निवासी
सारी के कुछ निवासी
सारी के निकट टूंग
मंदिर सीताराम
तुलसीदासजी का गृह-स्थान
तुलसीदास जी की प्रतिमा सोरों

संकेत

इस प्रबन्ध में गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के संक्षिप्त नाम इस प्रकार हैं—

पा० = पार्वती मंगल जा० = जानकी मंगल रा० प्र० = रामाज्ञा प्रश्न रा म० = रामलला नहछू, कृष्ण गी० = श्री कृष्ण गीतावली ब० रा० = बरवै रामायण क० = कवितावली हनु० बा० = हनुमान बाहुक गी० = गीतावली वि० = विनय पत्रिका वै० सं० = वैराग्य संदीपनी दो० = दोहावली कृ० रा० = कृष्णलिला रामायण तु० स० = तुलसी सतसई।

प्रथम से एकादश तक के अध्यायों में गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'रामचरित मानस' के गुटके का किन्तु द्वादश से पञ्चदश तक के अध्यायों में डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'रामचरित मानस' के संस्करण का उपयोग हुआ है।

अन्वेषण का सूत्रक्रम

(क) युरोपीय विद्वानों का अनुसन्धान

प्राक्कथन—कुछ युरोपीय विद्वानों ने गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त पर जो प्राथमिक अनुसन्धान किया वह अधिकांश में विश्वसनीय और प्रशंसनीय है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले एच० एच० विल्सन थे तत्पश्चात् गार्सां द तासी ने इस विषय में कार्य किया किन्तु उन्होंने विल्सन का ही अनुगमन किया। एफ० एस० ग्राउज ने विल्सन की कतिपय त्रुटियों का उल्लेख किया। किन्तु सब से महत्त्वपूर्ण कार्य सर जॉर्ज ग्रार्बर ग्रियर्सन का है। रेवरेंड ई० पीन्ड्र डॉ० विंसेंट स्मिथ रेवरेंड एफ० ई० के और किसैन कीने आदि सभी ने उन्हीं का अनुसरण किया है।

(क) विल्सन

विल्सन की सूचनाएँ—विल्सन ने 'ए स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स् ऑव द हिन्दुज्' नामक अपना लेख एशियाटिक रिसर्च के लिए १८३१ ई० में लिखा था। यह लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और इस पुस्तक का नवीन संस्करण १८६१ ई० में हुआ था। जहाँ तक गोस्वामीजी के जीवनवृत्त का सम्बन्ध है इस नवीन संस्करण में लगभग वे ही सूचनाएँ हैं। हाँ गोस्वामीजी की निधन-तिथि के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रसिद्ध उक्ति पाद टिप्पणी के रूप में अवश्य दे दी गयी है :—

संवत सोलह सै असी, गंग (की) के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

गोस्वामीजी के सम्बन्ध में विल्सन के शब्द मनोरम हैं। वे कहते हैं 'भक्तमाल में तुलसीदास का जो विवरण है उससे विदित होता है कि तुलसीदासजी अपनी उग्र पत्नी के उपालम्भ के कारण राम भक्ति में प्रवृत्त हुए जिसमें वे इतने अनुरक्त थे। परिव्राजक होने के उपरान्त वे काशी पधारे और तत्पश्चात् चित्रकूट। चित्रकूट में उन्हें हनुमान्‌जी के दर्शन हुए, जिससे उन्हें कविता लिखने के लिए प्रेरणा मिली और अद्भुत कार्यों के करने की शक्ति भी। उनका यश दिल्ली तक पहुँचा जहाँ सम्राट् शाहजहाँ शासन करते थे। सम्राट् ने गोस्वामीजी को बुलाया और कहा कि हमें राम के दर्शन कराओ। तुलसीदासजी ने ऐसा करना अस्वीकार किया तो सम्राट् ने उन्हें कारागार में डाल दिया। सहस्रों कपि कारागार के चारों ओर एकत्र होकर उसका एवं निकटस्थ भवनों का विध्वंस करने लगे। निकटवर्ती लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिए सम्राट् से उन्हें स्वतन्त्र कर देने के लिए प्रार्थना की। शाहजहाँ ने इस कवि को मुक्त कर दिया और कहा कि आप उस अपमान के बदले जो आपको सहना पड़ा कुछ माँगें। तदनुसार तुलसीदासजी ने सम्राट् से निवेदन किया कि आप पुरानी दिल्ली

को भी कि भगवान् राम का निवास-स्थान है छोड़ दें। इस प्रार्थना के अनुसार सम्राट् ने उस स्थान को त्याग कर नवीन नगर की स्थापना की जो तब से साहजहाँबाद नाम से ख्यात है। तदुपरान्त तुलसीदासजी वृन्दावन पधारे और नाभाजी से मिले। वे वहाँ बस गये और उन्होंने राधा-कृष्ण की अपेक्षा सीताराम की अर्चना के लिए आग्रह किया।

हाजीपुर का उल्लेख—विल्सन कहते हैं कि इस यशस्वी लेखक की इन गाथाओं के अतिरिक्त हमें उसका कुछ अन्य ऐसा परिचय उसके ही ग्रन्थों तथा जन श्रुतियों से उपलब्ध है जो उक्त बातों से कुछ भिन्न है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण एवं चित्रकूट के निकट हाजीपुर के जन्मजात निवासी थे। प्रौढ़ होकर वे काशी में बसे और उसी नगर के राजा के दीवान पद पर सुशोभित हो गये। उनके दीक्षा-गुरु जगन्नाथदास थे जो अग्रदास के शिष्य एवं नाभाजी के गुरु-भाई थे। अपने गुरु के साथ वे वृन्दावन के निकटवर्ती गोवर्द्धन स्थान पर गये, तत्पश्चात् काशी पधार कर उन्होंने हिन्दी में १६३१ वि० में रामचरितमानस का प्रारम्भ किया। उस समय वे इकतीस वर्ष के थे। इस अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ के अतिरिक्त तुलसीदासजी ने कुछ और ग्रन्थ लिखे हैं, यथा —सतसई जो विभिन्न विषयों पर सात सौ दोहों का संग्रह है रामगुणावली जिसमें राम का गुणानुवाद है गीतावली और विनय पत्रिका जो भक्ति-प्रधान हैं और जिनमें सीताराम की विविध स्तुतियाँ हैं। तुलसीदासजी काशी में रहते रहे। वहाँ उन्होंने सीताराम का मन्दिर बनवाया और एक मठ की स्थापना की। ये दोनों आज तक विद्यमान हैं। उन्होंने १६८० वि० में जहाँगीर के शासनकाल में महाप्रयाण किया अतएव तुलसीदास और साहजहाँ का कालिक ऐतिहासिक व्यतिक्रम है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विल्सन महोदय तुलसीदासजी को हाजीपुर जात सरवरिया ब्राह्मण जगन्नाथ दास का शिष्य बताते हैं और इस बात का उल्लेख करते हैं कि रामायण प्रारम्भ करने के समय वे इकतीस वर्ष के थे तथा काशी-नरेश के दीवान थे। किन्तु विल्सन महोदय के इस लेख से किसी भी परवर्ती समर्थक को तनिक भी सन्तोष न हुआ जैसा कि यथा-स्थान निरूपित होगा।

(ख) ग्राउज

रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद—एफ० एस० ग्राउज ने समग्र रामचरितमानस का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। उन्होंने इस अनुवाद का सूत्रपात एक लेख के द्वारा किया जो १८७६ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ था। लेख का नाम है 'प्रोलोग टु द रामायण ऑव तुलसीदास ए स्पैसिमन ट्रांसलेशन'। इस लेख में तथा रामायण के अपने अनुवाद की भूमिका में ग्राउज लिखते हैं कि विल्सन के स्केच में अनेक विवरण छोड़ दिये गये और अन्य ऐसे सम्मिलित कर दिये गये हैं जिनका आधार गोस्वामीजी का काव्य नहीं है।

कुछ बाधाएँ—ग्राउज आगे कहते हैं हिन्दू विचारधारा सदा से ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा का तथा चमत्कार के प्रति श्रद्धा-विश्वास का, विचित्र उदाहरण है

यद्यपि भक्तमाल की टीका इस महाकवि की मृत्यु से एक शताब्दी के भीतर की होगी तथापि वह कवि के जीवन के सम्बन्ध में अल्पविश्वसनीय घटनाओं की सूचना देती किन्तु मिथ्या सूचनाओं का भी स्पष्टतः सम्मिश्रण कर देती है। उनकी पत्नी ने उन्हें सर्वप्रथम भौतिक प्रेम के बदले दिव्य भक्ति तथा रामार्चना के लिए प्रेरित किया था। इस घटना को सत्य समझा जा सकता है किन्तु 'भक्तमाल' में ऐसी अन्य गाथाएँ भी हैं जिनका महाकवि से घनिष्ठ सम्बन्ध है और जो बड़ी लोकप्रिय हैं, उनका आधार चाहे जो हो। कुछ गाथाएँ ये हैं —किसी प्रेत ने गोस्वामीजी का हनुमान्‌जी से साक्षात्कार कराया और उनके द्वारा राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए। गोस्वामीजी ने किसी हत्यारे से भगवान् का नामोच्चारण कराया और उसे पाप मुक्त कराया तथा किसी चितारोहिणी विधवा के पति को जीवन प्रदान किया। जब सम्राट् ने गोस्वामीजी से चमत्कार-प्रदर्शन के लिए कहा तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया अतः सम्राट् ने उन्हें कारागार में डाल दिया किन्तु हनुमान्‌जी के वानर-दल ने उन्हें मुक्त करा दिया और सम्राट् को यह स्थान त्याग देना पड़ा। एक बार भगवान् राम ने, जो गोस्वामीजी के निवास की चौकसी कर रहे थे चोरों को सेंध देने से रोका। तुलसीदासजी का दर्शनस्पर्श नाभाजी से वृन्दावन में हुआ था। गोस्वामी जी भगवान् कृष्ण की अपेक्षा भगवान् राम के अधिक भक्त थे, यद्यपि स्वयं भगवान् कृष्ण ने गोस्वामीजी को यह बता दिया था कि राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं।

ग्राउज यह भी बताते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में साधारण-सी घटनाएँ स्वयं गोस्वामीजी के ग्रन्थों से संकलित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ रामायण के उपोद्घात से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने रामायण की रचना का आरम्भ अयोध्या में १६३१ वि० में किया और वे इससे पूर्व कुछ काल तक सोरों में अध्ययन कर चुके थे। जाति से वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, और जैसा कि 'भक्ति सिन्धु' में लिखा है उनके पिता का नाम आत्माराम था और वे हस्तिनापुर में उत्पन्न हुए थे। ग्राउज के अनुसार 'भक्ति सिन्धु' कोई विशेष प्रामाणिक रचना नहीं, वह एक नवीन कविता है और उसके रचयिता घटना के अभाव में कल्पना का आश्रय ले लेते हैं। अन्य व्यक्ति गोस्वामीजी का जन्मस्थान चित्रकूट के निकट हाजीपुर मानते हैं। उनके जीवन का अधिकांश निश्चय ही काशी में व्यतीत हुआ यद्यपि उन्होंने कुछ वर्ष सोरों, अयोध्या चित्रकूट प्रयाग और वृन्दावन में व्यतीत किये और १६८० वि० में अपना नश्वर शरीर त्यागा।

सोरों में लालन-पालन—कदाचित् ग्राउज ऐसा समझते हैं कि 'भक्ति सिन्धु' के रचयिता ने इस बात का आविष्कार किया कि तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम था और उनका जन्मस्थान हस्तिनापुर था पर ग्राउज स्वयं यह सुचित करते हैं कि तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और सोरों में उनका लालन-पालन हुआ था। ग्राउज महोदय पहली बात के लिए किसी कारण का निर्देश नहीं करते किन्तु दूसरी के लिए उन्होंने रामायण के उपोद्घात की ओर इंगित किया है। गोस्वामीजी ने रामायण का लिखना किस अवस्था में प्रारम्भ किया, इस विषय में वे मूक हैं। गोस्वामीजी की निधन तिथि पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं। उन्होंने 'सोरों'

शब्द की व्युत्पत्ति की है उनके मत में 'सूकर ग्राम' (अर्थात् वराह नगर) का विकृत रूप 'सूअर गाउँ' हुआ और इन दोनों विकृत शब्दों के एकीकरण से 'सूअरखेत' बना और इससे 'सोरों'। यह व्युत्पत्ति कहाँ तक संगत है, इस सम्बन्ध में हम फिर विचार करेंगे।

(ग) सर जार्ज ग्रार्यर ग्रियर्सन

प्रमुख गवेषक—गोस्वामी तुलसीदास पर प्रमुख गवेषी सर जार्ज ग्रार्यर ग्रियर्सन हैं। १८८८ ई० में उन्होंने अपने ग्रन्थ 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' में हमारे महाकवि का परिचय इस प्रकार दिया है :—

तुलसीदासजी सरयूरिया ब्राह्मण थे जो पोहरी नदी में उत्पन्न हुए और १६२४ ई० में दीर्घायु पाकर काशी के असी घाट पर दिवंगत हुए जैसा कि इस प्रचलित दोहे से विदित होता है :—

संवत सोरह से असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥

'भक्त सिंधु' और 'बृहद्रामायण माहात्म्य' के अनुसार गोस्वामीजी के पिता आत्माराम थे माता हुलसी थी और वे कुछ विद्वानों के अनुसार चित्रकूट के निकट हाजीपुर में उत्पन्न हुए थे यद्यपि जनश्रुति यह है कि वे यमुनाजी के किनारे बाँदा जिले में उत्पन्न हुए थे। उनका बाल्यकाल सूकरखेत अर्थात् सोरों में व्यतीत हुआ और वहीं वे रामभक्ति में रत हुए थे। प्रियादास के अनुसार गोस्वामीजी अपनी पत्नी के उपालम्भों के कारण विरक्त होकर काशी चले गये वहाँ उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा समय व्यतीत किया। कभी-कभी वे अयोध्या मथुरा वृन्दावन कुरुक्षेत्र प्रयाग पुरुषोत्तम पुरी तथा अन्य तीर्थों में भ्रमण करने चले जाते। उनके जीवन की एक और घटना जिसका निश्चयपूर्वक उल्लेख हो सकता है यह है कि वे आनन्दराम और कन्हई नामक दो व्यक्तियों के अभियोग में पंच बने थे।

सहयोग—गोस्वामीजी के विषय में उन्होंने महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी और बाबू रामदीन सिंह जैसे विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया और उसी सहयोग के फलस्वरूप उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में कतिपय लिखित विवरणों एवं अधिकतर अलिखित अनुश्रुतियों का संग्रह किया। उनके प्रशस्त संग्रह ने उनके उत्तरवर्ती भारतीय और विदेशीय विद्वानों को गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में प्रभावित और प्रेरित किया। अतएव प्रस्तुत विषय पर ग्रियर्सन महोदय के उस संकलन का कुछ और उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।[1]

सुनाएँ—ग्रियर्सन लिखते हैं कि महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने जो बहुमूल्य घटनाएँ मुझे बताई मैं उन्हीं से प्रारम्भ करता हूँ। कुछ लोग कहते हैं कि कवि (तुलसीदास) कान्यकुब्ज थे और दूसरे कहते हैं कि वे सरयूपारीण थे। पहले प्रकार के ब्राह्मण भेंट लेना भिक्षा माँगना आदि बातों को बुरा समझते हैं किन्तु

---

१ मॉडर्न ऑव तुलसीदास (ऐंशियन्ट एण्टीक्वेरी, जिल्द २२, सन् १८९३ ई०)

तुलसीदासजी कवितावली में स्पष्ट लिखते हैं 'जायो कुल मंगना', अर्थात् मैं ऐसे कुल में उत्पन्न हुआ जो भिक्षा-वृत्ति करता है अतः तुलसीदासजी अवश्य सरयूपारीण रहे होंगे। जनश्रुति है कि वे उस उपजाति के पराशर गोत्री दूबे थे। अत्यन्त विश्वस्त विवरणों के अनुसार वे संवत् १५८९ में उत्पन्न हुए थे अतः रामायण आरम्भ करने के समय उनकी अवस्था बयालीस वर्ष की होनी चाहिए, यह बात ग्रन्थ से ही पुष्ट होती है। निश्चय ही यह ग्रन्थ किसी प्रौढ़ बुद्धि और ऐतिहासिक पुरुष का लिखा होना चाहिए।

अंग्रेजी शासन से पहले ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त में तथा मूल नक्षत्र के प्रारम्भ में जो बच्चे उत्पन्न होते थे उन्हें अशुक्त-मूलज कहा जाता और अशुभ समझा जाता था क्योंकि वे अपने पिता के जीवन के लिए अनिष्टकारक समझे जाते थे इस कारण उनके माता पिता उन्हें प्रायः त्याग दिया करते थे। यदि वात्सल्य के कारण वे इतने अमानुषीय न होते तो वे आठ वर्ष तक उनका मुख नहीं देखते थे। मुहूर्त चिन्तामणि' में जो तुलसीदासजी के समय में बनी होगी यह लिखा है कि "जातं शिशु तत्र परित्यजेद्वामुखम् पितास्याष्ट समा न पश्येत्"। पुराणों में नरान्तक का उल्लेख मिलता है कि रावण का यह पुत्र अशुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया गया था वह मरा नहीं बढ़ता रहा और उसकी बहुत-सी सन्तति-प्रसन्तति हुई किन्तु नारदजी की प्रेरणा से रावण ने उसे बुला लिया अतएव वह स्वयं राम से युद्ध कर नाश को प्राप्त हुआ।

तुलसीदासजी भी अशुक्त-मूल में उत्पन्न हुए थे। जब उनके माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया तो किसी परिव्राजक ने उन्हें उठा लिया क्योंकि भला, कोई भी आदरणीय गृहस्थ ऐसे बालक का क्या करता? स्वयं तुलसीदासजी विनयपत्रिका (२२७ २) में लिखते हैं 'जननी-जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधि हू सृज्यो अवडेरे। इसी प्रकार का भाव कवितावली (३० ७३) में मिलता है। गोस्वामीजी अवश्य बचपन में इस साधु के साथ रहे और भारतवर्ष में घूमे होंगे और उन्होंने उसी से तथा उसके साथियों से राम-कथा सुनी होगी जैसा कि उन्होंने स्वयं बालकाण्ड में लिखा है 'मैं पुनि निज गुरुसन सुनी'।

कदाचित् इस साधु ने अपनी प्रथा के अनुसार गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास रखा। जब कभी किसी व्यक्ति को दीक्षित किया जाता है तो उसे भगवान् विष्णु की मूर्ति पर चढ़ाया हुआ तुलसी-दल खाने के लिए दिया जाता है। यही बात इस अभागे बालक के सम्बन्ध में हुई होगी और इसी कारण 'तुलसी' नामकरण भी।

संस्कृत ज्ञान—लोगों की ऐसी धारणा है कि गोस्वामीजी गंभीर पण्डित थे किन्तु यह भूल है जैसा कि उनके ग्रन्थों से स्पष्ट है। संस्कृत में उनकी अनेक अशुद्धियाँ हैं। उदाहरणतः रामचरितमानस के उत्तरकाण्डीय प्रारम्भिक श्लोकों में 'केशी कण्ठाबनीसं' में 'केकि' 'चिन्तकस्य मन भृ गसंगिनो' में 'मनोभृ ग' और स्तोत्र के 'विग्रेन हस्तोपये' में 'तुष्टये' होना चाहिए था।

जनश्रुति—ग्रियसन ने इस जनश्रुति का उल्लेख किया है कि गोस्वामीजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और उनकी माता का नाम हुलसी था। उनका वास्तविक

नाम 'राम बोला' था जैसा कि उनकी कवितावली से विदित है। उनके दीक्षा गुरु नरहरि और श्वशुर दीनबन्धु पाठक थे। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली और पुत्र का नाम तारक था। निम्नलिखित दोहों में उक्त विवरणों का समावेश है —

> दुबे आत्माराम है पिता नाम जग जान।
> माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुत कान॥
> प्रह्लाद-उद्धरण नाम करि गुरु को सुमिरे साधु।
> प्रकट नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराधु॥
> दीनबन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
> रत्नावलि प्रिय नाम है सुत तारक पत होइ॥

गुरु के नाम का स्पष्ट उल्लेख बिना अपराध के नहीं होता किन्तु यह नाम भगवान् विष्णु के उस अवतार का द्योतक है जिन्होंने प्रह्लाद की रक्षा की थी अर्थात् नरहरि। अन्तिम पंक्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि के पुत्र का देहान्त बाल्यकाल में ही हो गया था। ये महाकवि भी अपने गुरु का नाम 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में रूपान्तर से प्रकट करते हैं 'बंदौं गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि'। गोस्वामीजी ने अपनी माता के नाम का भी उल्लेख पीछे किया है रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी तुलसीदास हित हिय हुलसी सी (रा १ ३ ६)

जन्म स्थान और शिक्षा-स्थान—कई स्थान गोस्वामी जी का जन्म-स्थान होने का गौरव करते हैं यथा अन्तर्वेद की तारी चित्रकूट के समीप हाजीपुर और बाँदा जिले में यमुनाजी के तट पर राजापुर। इन स्थानों में तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। बचपन में तुलसीदासजी ने 'सूकर क्षेत्र' अर्थात् वर्तमान 'सोरों' में अध्ययन किया जैसा रामचरितमानस के बालकाण्ड से स्पष्ट है। अपने पिता के जीवनकाल में उन्होंने विवाह किया और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे गृहस्थ की भाँति सन्तोषपूर्वक रहने लगे। उनके एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था।

गुरु और सम्प्रदाय—तुलसीदासजी रामानुजीय विशिष्टाद्वैत के उस रूप के अनुयायी थे जिसका रामानन्दजी ने प्रचार किया। किन्तु तुलसीदासजी को इस सम्प्रदाय का कट्टर अनुयायी कहना ठीक न होगा क्योंकि अयोध्या में वे वैरागी वैष्णव न थे स्मार्त्त थे और किसी सीमा तक महादेवजी की पूजा भी करते थे। राम चरितमानस में उन्होंने स्वयं लिखा है कि मेरा सिद्धान्त 'नाना पुराण निगमागम-सम्मत' है और वे जब-तब शंकराचार्यजी के उस निर्विशेष अद्वैत वेदान्त की ओर इंगित करते हैं जो माया और निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। गोस्वामीजी के एक घनिष्ठ मित्र भी शांकर वेदान्त के अनुयायी थे। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी का सिद्धान्त ऐसा विशिष्टाद्वैत था जिसमें अद्भुत तत्वों के सम्मिश्रण का अवकाश था। ग्रियर्सन महोदय को बाबा मोहनदास साधु से एक गुरु-परम्परा तालिका प्राप्त हुई। इसका प्रारम्भ श्रीमत्सारामपजी से हुआ जो शिष्य परम्परा में रामानुजाचार्य से बारह पीढ़ी पूर्व थे। ग्रियर्सन के पास इस तालिका के परीक्षण करने का कोई साधन न था। अतएव उन्होंने उसे उसी रूप में उपस्थित कर दिया है जिसमें उन्हें वह प्राप्त हुई थी। हाँ उन्होंने इस बात का उल्लेख अवश्य किया है कि यह

तालिका अधिकांश में जनश्रुतियों पर आश्रित है। उन्हें पटना से भी एक और नामावली प्राप्त हुई जो किन्हीं बातों में उक्त नामावली से भिन्न है और जिसका प्रामाण्य अज्ञात था। वे नामावलियाँ इस प्रकार हैं

क्रमांक	मोहनदास की सूची	पटनावाली सूची
१	श्रीमन्नारायण	ये ११ नहीं हैं
२	श्री लक्ष्मी	
३	श्री श्रीधर मुनि	
४	श्री सेनापति मुनि	
५	श्री करिसुमु मुनि	
६	श्री सैन्यनाथ मुनि	
७	श्री नाथ मुनि	
८	श्री पुण्डरीक	
९	श्री राम मिश्र	
१०	श्री परांकुश	
११	श्री यामुनाचार्य	
१२	श्री रामनीम स्वामिन्	श्री रामानुज स्वामी
१३	श्री शठकोपाचार्य	नहीं है।
१४	श्री कूरेशाचार्य	
१५	श्री लोकाचार्य	मोहनदास की सूची के समान
१६	श्री परांशराचार्य	"
१७	श्री वाकाचार्य	श्री मत्त् इन्द्राचार्य
१८	श्री लोकार्य	मोहन दास की सूची के समान
१९	श्री देवाचिराचार्य	
२०	श्री श्रीशैलाचार्य	
२१	श्री पुरुषोत्तमाचार्य	
२२	श्री गंगाधरानन्द	
२३	श्री रामेश्वरानन्द	श्री राम मिश्र
२४	श्री द्वारानन्द	मोहनदास की सूची के समान
२५	श्री देवानन्द	
२६	श्री श्यामानन्द	"
२७	श्री धनानन्द	
२८	श्री निरंजनानन्द	"
२९	श्री पूर्णानन्द	
३०	श्री हर्षानन्द	
३१	श्री अम्बानन्द	नहीं है।
३२	श्री हरिवर्यानन्द	मोहनदास की सूची के समान

क्रमांक	मोहनदास की सूची	पटनावाली सूची
३३	श्री राघवानन्द	मोहनदास की सूची के समान
३४	श्री रामानन्द	
३५	श्री सुरेश्वरानन्द	
३६	श्री माधवानन्द	"
३७	श्री नरहरिदासजी	श्री गरीबदास जी
३८	श्री लक्ष्मीदासजी	मोहनदास की सूची के समान
३९	श्री गोपालदासजी	
४०	श्री नरहरिदासजी	"
४१	श्री तुलसीदासजी	

संदेह—यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि विल्सन महोदय ने अपने 'रिलिजस सैक्ट्स् ऑव हिन्दूज' नामक पुस्तक में रामानुज और रामानन्द के बीच में अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक पीढ़ियों का उल्लेख किया है। पैंतीसवें पृष्ठ की प्रथम टिप्पणी में वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि रामानुज एकादश शताब्दी के अन्त में उत्पन्न हुए थे और द्वादश शताब्दी के प्रथमार्द्ध में आचार्य रूप से उनकी ख्याति स्थिर हो चुकी थी। २६वें पृष्ठ पर वे लिखते हैं कि लोग कभी-कभी ऐसा भी कहते हैं कि रामानन्दजी रामानुज के निजी शिष्य थे किन्तु यह बात भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त वे एक विशेष विवरण के आधार पर शिष्य-परम्परा का उल्लेख इस प्रकार करते हैं: रामानुज—देवानन्द—हरिनन्द—राघवानन्द—रामानन्द। इस सूची के अनुसार तेरहवीं शताब्दी के अन्त में रामानन्दजी का होना संभव है। 'भक्त माल' में उक्त सूची का चतुर्थ व्यक्ति छूट गया है। विल्सन को स्वयं अपनी सूची की सत्यता पर सन्देह है और उनकी ऐसी धारणा है कि रामानन्द जी चतुर्दश शताब्दी के अन्त में अथवा पंचदश शतक के प्रारम्भ से पूर्व विद्यमान नहीं थे इस प्रकार, उनके अनुसार, रामानुज और रामानन्द में तीन शताब्दियों का अन्तर होना चाहिए।

विवाह-विरक्ति—ग्रियर्सन महोदय सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी के श्वसुर दीनबन्धु पाठक रामभक्त थे। पाठकजी की कन्या भी राम की उपासिका थी और जब कभी साधु-सन्त उसके पिता से मिलने आते तो वह उनका आदर-सत्कार करती थी। बचपन में उसका विवाह तुलसीदासजी से हो गया था। बड़े होने पर वह अपने पति के साथ रहने लगी। उसके पतिदेव उसमें अत्यन्त अनुरक्त थे। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् एक दिन की बात है कि तुलसीदासजी घर आये ज्ञात हुआ कि पत्नी बिना बताये अपने पिता के घर चली गयी है। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और वे उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे किन्तु उसने उनका स्वागत निम्नलिखित दोहों से किया

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तो भवभीति॥

अर्थात् क्या आपको लज्जा नहीं आती कि आप मेरे पीछे यहाँ तक दौड़े चले आये हैं ? ऐसे प्रेम को धिक्कार है किन्तु, हे नाथ मैं आपसे क्या कहूँ। मेरा शरीर तो अस्थि और चर्म का बना हुआ है। यदि आपका यह प्रेम जो इस शरीर के प्रति है भगवान् राम के प्रति होता तो आपके लिए सांसारिक भय न होता।

इन शब्दों को सुनते ही गोस्वामीजी में तुरन्त परिवर्तन हो गया और वे अपने घर की ओर चल पड़े। उनकी पत्नी का ऐसा कोई विचार न था कि उनमें इतनी उत्कट प्रतिक्रिया उत्पन्न हो अतएव उसने उनसे लौटने टिकने और भोजन करने के लिए कहा जिससे वह भी साथ चलती। किन्तु झंझा के समक्ष व्यजन क्या कर सकता था ? उसी समय से तुलसीदासजी विरक्त हुए और घर बार छोड़ मुक्त पुरुष की भाँति रामभक्त हो परिव्राजक बन गये। उन्होंने पहले तो अयोध्या को तत्पश्चात् काशी को अपना प्रधान निवास-स्थान बनाया और वहाँ से वे यदा-कदा मथुरा वृन्दावन कुरुक्षेत्र प्रयाग और पुरुषोत्तम-पुरी के दर्शन करने चले जाते थे।

पत्र-व्यवहार और आकस्मिक मिलन—शिवसिंह आगे लिखते हैं कि गोस्वामीजी के गृहत्याग के पश्चात् निम्नलिखित पत्र पत्नी ने अपने पति को लिखा था

कटि की क्षीनी कमल सी रहत सखिन संग सोइ।
मोहि फटे की डर नहीं अनत फटे डर होइ॥

अर्थात् कमर की पतली स्वर्णकान्ति वाली मैं अपनी सहेलियों के साथ रहती और उन्हीं के साथ सोती हूँ। मुझे इस बात का तो डर नहीं कि मेरा हृदय फट जायगा किन्तु मुझे यह डर अवश्य है कि आप कहीं अन्यत्र फँस न जायँ। इसका उत्तर गोस्वामीजी ने इस प्रकार दिया था

कटे एक रघुनाथ संग बाँधि जटा सिर केश।
हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश॥

अर्थात् मैं तो केवल रघुनाथजी से प्रभावित हूँ मैंने सिर पर जटा-जूट धारण कर लिया और अपनी पत्नी के उपदेश से भगवत्-प्रेम-रूपी रस का आस्वादन किया है। इस उत्तर को प्राप्त करके पत्नी ने अपने पति के कार्य की प्रशंसा करते हुए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित की। वर्षों के पश्चात् जब तुलसीदास वृद्ध हो चुके थे वे चित्रकूट से लौट रहे थे। भक्ति में तल्लीन वे अपने श्वशुर के ग्राम में अनजान सा पधारे और उन्होंने भिक्षा चाही। उस समय उन्हें यह ज्ञात न था कि मैं कहाँ हूँ और यह गृह किसका है। उनकी पत्नी भी जो अब बहुत बूढ़ी हो गयी थी, प्रथा के अनुसार उस आदरणीय अतिथि का आतिथ्य करने के लिए बाहर आयी। उसने पूछा कि आप क्या भोजन पायेंगे ? वे बोले कि मैं खिचड़ी बनाना चाहता हूँ। अतएव उसने उनके लिए चौका प्रस्तुत किया और लकड़ी चावल दाल साग और घी सा उपस्थित किये। स्मार्त ब्राह्मणों की प्रथा के अनुसार उन्होंने स्वयं अपने हाथ से भोजन पकाना आरम्भ किया। जब उनकी पत्नी ने उन्हें एक-दो बार बोलते सुना तो उसने उन्हें पहचान लिया। उसे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे पति राम के इतने बड़े भक्त हो गये हैं किन्तु उसने अपने को प्रकट न कर केवल इतना कहा कि हे परमादरणीय स्वामिन् क्या मैं आपके लिए कुछ काली मिर्च लाऊँ ? वे बोले कि मेरे झोले में है। वह बोली

कि क्या कुछ मसाले ले आऊँ ? उत्तर मिला कि मेरे झोले में हैं। "आपके लिए कुछ कपूर ले आऊँ ?" "मेरे झोले में हैं।" तब उसने उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना उनके चरण धोने का प्रयत्न किया' किन्तु उन्होंने उसे ऐसा नहीं करने दिया। तब वह अपने मन में रात भर सोचती रही कि मैं इनके साथ रहने तथा अपने समय को अपने पतिदेव तथा भगवान् की सेवा में व्यतीत करने का क्या उपाय करूँ ? कभी ऐसा सोचती तो कभी ऐसा स्मरण भी कर लेती थी कि मेरे पति तो मुझे छोड़कर संन्यासी हो गये हैं और मेरे संग से उन्हें बाधा होगी। किन्तु अन्त में उसने यह सोचा कि मेरे पतिदेव मिर्च मसाले और कपूर जैसी उचिकर वस्तुएँ अपने झोले में रखते हैं तो मैं उनकी पत्नी भी उनके लिए बाधक नहीं हो सकती। तदनुसार प्रत्यूष में उसने तुलसीदासजी से साक्षात्कार किया और उनसे वहीं टिकने और भजन-पूजन करने के लिए आग्रह भी किन्तु उन्होंने उसकी सभी प्रार्थनाएँ अस्वीकार कर दीं। यहाँ तक कि वे भोजन करने के निमित्त और टिकने के लिए भी अनिच्छुक रहे। तब वह बोली कि 'हे आदरणीय स्वामिन् क्या आप मुझे पहचाने ? वे बोले : 'नहीं'। वह बोली 'जानते हैं कि यह कौन नगर है ?' वे बोले 'नहीं'। तब उसने अपना परिचय दिया और प्रार्थना की कि आप मुझे अपने साथ रखें किन्तु वे इस बात के लिए किसी प्रकार सहमत न हुए। तब वह बोली

> जरिया करी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याय।
> के जरिया मोहि मेल के भजन करो अनुराय॥

अर्थात् यदि आपके झोले में जरिया से कपूर पर्यन्त सभी वस्तुएँ विद्यमान हैं तो हे प्रिय, आपको अपनी पत्नी का त्याग उचित नहीं या तो आप मुझे भी अपने झोले में रख लें और अपने प्रेम को स्थायी बना लें या सांसारिक चिन्ताओं के प्रतीक इस झोले को त्याग कर भगवान् के प्रति अपनी भक्ति को और दृढ़ कर लें।[1] यह सुनते ही तुलसीदासजी चल पड़े और उन्होंने अपने झोले की सभी वस्तुएँ ब्राह्मणों को बाँट दीं और अपनी पत्नी के उपदेश से उनका विश्व ज्ञान पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गया।

वृन्दावन-गमन—प्रियर्सन ने एक और ऐसी घटना का वर्णन किया है जिसका उल्लेख उनके पूर्ववर्ती लेखकों ने भी किया था। वह यह है कि तुलसीदासजी दिल्ली से वृन्दावन गये और वहाँ भक्तमाल के प्रणेता एवं कृष्णभक्त नाभादासजी से उनकी भेंट हुई। एक दिन अन्य वैष्णवों के साथ अर्चना के लिए दोनों कवि गोपाल-मन्दिर में पधारे। एक वैष्णव ने व्यंग्यपूर्वक कहा कि इसने अपने इष्टदेव राम को त्याग दिया है और अन्य देव (अर्थात् कृष्ण) की पूजा करने आया है। इस पर तुलसीदास बोल उठे—

> का बरनौं छवि आज की भले बिराजे नाथ।
> तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बान लो हाथ॥

अर्थात् मैं किस प्रकार कृष्ण भगवान् की आज की शोभा का वर्णन करूँ वे वास्तव

---

१ वैष्णव साधुओं के झोले के लिए 'जरिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह जरबफ्त का बना होता है और कन्धों पर धारण किया जाता है। (प्रियर्सन)

में बड़े भले प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु तुलसीदास तो उन्हें अपना मस्तक तब नवायगा जब वे अपने हाथ में धनुष-बाण लेकर आविर्भूत होंगे। गोस्वामीजी ऐसा कह ही रहे थे कि भगवान् कृष्ण की मूर्ति में परिवर्तन हो गया। उनकी बंसी बाण बन गयी थी और छड़ी धनुष। इस चमत्कार से चकित होकर सब ने तुलसीदासजी की प्रशंसा की।

'जनल' में वृत्तान्त—१९०३ ई० में ग्रियर्सन ने 'जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सुसाइटी' में गोस्वामीजी का जो विवरण दिया है वह 'इण्डियन एंटिक्वेरी' वाले से किंचित् अर्थों में भिन्न होता हुआ इस प्रकार है

तुलसीदासजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उन्हें अयुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण उनके माता-पिता ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार त्याग दिया था। किसी घूमते-फिरते साधु ने उन्हें पुत्र उठा लिया और शिष्य बनाकर साधारण शिक्षा प्रदान की। हम उनके दीक्षा-गुरु तथा निकट सम्बन्धियों के नाम जानते हैं। उनका विवाह हुआ और एक पुत्र भी। उन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण की रचना अयोध्या नगरी में प्रारम्भ की थी जबकि उनकी अवस्था तेंतालीस वर्ष की थी। सहधर्मियों से झगड़ा हो जाने के कारण वे बनारस चले गये। ६२३ ई० में काशी नगरी में प्लेग नामक महामारी का प्रकोप हुआ और उसी वर्ष उनका देहान्त भी किन्तु प्रत्यक्षतः उस रोग से नहीं।

साइक्लोपीडिया—१९२१ ई० में ग्रियर्सन ने 'साइक्लोपीडिया' ऑव एथिक्स एण्ड रिलिजन' में गोस्वामीजी का परिचय इस प्रकार दिया है

तुलसीदासजी मध्यकालीन उत्तरी भारत के महत्तम कवि हैं। किन्तु दो-तीन तिथियों के तथा उनके लेखों में विद्यमान कतिपय आकस्मिक विवरणों के अतिरिक्त निश्चय रूप से उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक विदित नहीं। ऐसा कहा जाता है कि उनके मित्र तथा साथी बेनी माधवदास ने गोसाईंजी का जीवनवृत्त लिखा था जिसकी कोई प्रति अब विद्यमान विदित नहीं किन्तु जिसका उल्लेख १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में ग्रियर्सन ने किया है।

गोस्वामीजी का मुख्य निवास पहले अयोध्या था तत्पश्चात् वाराणसी। उन्होंने उत्तरी भारत में लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और रामभक्ति का प्रवचन किया। पहले तो उनका बड़ा विरोध हुआ किन्तु उनके पवित्र जीवन और आकर्षक व्यक्तित्व के कारण सभी बाधाएँ हट गयीं। यहाँ तक कि काशी नगरी में भी, जो शिवार्चन का केन्द्र है उनका सबने आदर होता था। कवि-रूप में उनका यश दूर-दूर तक फैल गया। उनके अनेक मित्र और अनुयायी हो गये जिनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं: आमेर के राजा मानसिंह सुप्रसिद्ध अब्दुर्रहीम खानखाना और काशी के टोडरमल नामक धनाढ्य जमींदार। ये वे टोडरमल नहीं जो अकबर के वित्त-मंत्री थे। कवि के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ हैं जिनमें से कुछ को अत्यन्त विश्वास के साथ स्वीकार किया जा सकता है। कहते हैं कि वे सन् १५३२ ई० में उत्तर प्रदेशीय बाँदापुर जिले के राजापुर में पराशर गोत्रिय सरयूरिया ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। उनका निजी नाम रामबोला

था। अपनी एक रचना में गोस्वामीजी ने लिखा है कि मेरे माता-पिता ने मुझे मेरे जन्म के पश्चात् त्याग दिया, अतः यह अधिक सम्भाव्य है कि वे उन्हीं अभागे बालकों में से थे जो मूल नक्षत्र के प्रारम्भ में अर्थात् अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए। कहते हैं कि ऐसा बालक अपने पिता का नाश कर देता है और उसका उपाय केवल यही है कि जन्म के समय उसका त्याग कर दिया जाय या कोई ऐसा उपाय कर दिया जाय जिससे माता-पिता अपने उस बालक का आठ वर्ष तक मुख न देख सकें। किसी घूमते हुए साधु ने उन्हें उठा लिया और पवित्र तुलसीदल के नाम पर उनका नाम तुलसीदास रख दिया। ये साधु अत्यन्त सम्भवतः उनके दीक्षा-गुरु थे। उनका नाम नरहरिदास था जिन्होंने सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भ्रमण किया था। इन गुरुदेव से उन्होंने राम-कथा सुनी किन्तु (संस्कृत के) अज्ञान के कारण वे पहले उस कथा की महत्ता नहीं समझ पाये थे किन्तु बार-बार सुनने पर उन्होंने अपनी मति के अनुसार अपने काव्य को लिखने का निश्चय किया। टोडरमल की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति बंटवारे के निमित्त झगड़ा हुआ और तुलसीदासजी को पंच बनाया गया। पंचनामा उन्हीं के हाथ का लिखा विद्यमान है, जिस पर संवत् १६६९ अर्थात् सन् १६१२ ई० पड़ा है। भारत में सन् १६१६ में सिल्टी वाली प्लेग का प्रकोप हुआ जो आठ वर्ष तक रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने गोस्वामीजी को आक्रान्त किया क्योंकि उन्होंने 'हनुमान् बाहुक' नाम की एक छोटी रचना में ऐसे ही किसी रोग का उल्लेख किया है। अस्थायी स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् रोग का पुनः आक्रमण हुआ और सन् १६२३ ई० में वे काशीधाम में स्वर्ग वासी हुए।

एनसाइक्लोपीडिया—सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के १९२९ ई० के संस्करण में एक लेख प्रकाशित कराया था। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे तुलसीकृत के सम्बन्ध में भारतीय लेखकों से प्रभावान्वित हो चले थे। तदनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण थे। जनश्रुति के अनुसार वे सन् १५१२ ई० में उत्पन्न हुए थे और इस बात की अत्यन्त संभावना प्रतीत होती है कि वे यमुना की के दक्षिण में बाँदा जिले के राजापुर में जन्मे थे। उनके माता पिता के नाम हुलसी और आत्माराम तथा उनकी पत्नी और पुत्र के नाम रत्नावली और तारक थे। गोस्वामीजी ने सूकरक्षेत्र में अध्ययन किया था। सूकरक्षेत्र का तादात्म्य प्रायः सोरों से किया जाता है जो कि उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित है किन्तु ग्रियर्सन को इस बात की अधिक सम्भावना होने लगी कि यह सूकरक्षेत्र वह वराह क्षेत्र है जो अयोध्या से तीन मील पश्चिम की ओर घाघरा नदी के तट पर विद्यमान है। वे यह भी सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी ने सन् १५७४ ई० में अपने ग्रन्थ (रामायण) को प्रारम्भ किया था और जब उन्होंने उसका तृतीय सोपान अर्थात् अरण्य काण्ड समाप्त किया तो अयोध्या के बड़ाथी वैष्णवों से अनबन हो गयी और उन्हें काशीजी जाना पड़ा वहाँ वे असी घाट पर बस गये मृत्यु के समय उनकी अवस्था ९१ वर्ष की थी। राजापुर में तुलसीकृत अयोध्या काण्ड की एक प्राचीन पाण्डु-लिपि विद्यमान है।

(ख) स्मिथ, मैकफ़ी, कीने

ग्रियर्सन की विचार धारा में स्मिथ मैकफ़ी और कीने आदि अनेक यूरोपीय हैं।

विंसेंट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'अकबर द ग्रेट मुग़ल' में गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख किया है।[1] वे कहते हैं कि 'यह हिन्दू अपने युग का भारत में महत्तम व्यक्ति था अकबर से भी महत्तर। किन्तु वे महापुरुष ब्राह्मणजात साधारण माता-पिता की संतति थे जिस दुर्मुहूर्त में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया गया था। एक चलते फिरते साधु ने उन्हें उठा लिया उनका पालन-पोषण किया और उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। वे कभी चित्रकूट और कभी राजापुर में रहे किन्तु उनके जीवन का उत्तर भाग अधिकतर काशी में व्यतीत हुआ और वहीं अधिकतर उन्होंने अपने काव्यों की रचना की। उनका साहित्यिक जीवन चालीस वर्ष की अवस्था तक प्रारम्भ नहीं हुआ था और चालीस वर्ष तक अर्थात् सन् १५७४ से १६१४ ई० तक रहा था। सन् १६२३ ई० में ९० वर्ष से ऊँची अवस्था में उनका देहान्त हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्मिथ ने गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का आधार ग्रहण किया। विंसेंट स्मिथ कहते हैं कि यद्यपि गोस्वामीजी की मैत्री आमेर के राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना से थी जो कि अकबर के अत्यन्त शक्तिशाली सरदार थे तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी सम्राट् अकबर अथवा अबुल फ़ज़ल की जानकारी में नहीं थे। अतएव गोस्वामीजी उक्त दोनों सरदारों के सम्पर्क में अकबर की मृत्यु के पश्चात् ही आये होंगे जो १६०५ ई० में हुई थी।

मैकफ़ी—वे एम० मैकफ़ी ने 'द रामायण ऑव तुलसीदास और द बाइबिल ऑव द नॉर्दर्न इण्डिया'[2] की भूमिका में गोस्वामीजी की जीवनी का उल्लेख करते समय ग्राउज़ और ग्रियर्सन का आधार ग्रहण किया है। रघुवंश शर्मा शास्त्री के आधार पर वे लिखते हैं कि जब तुलसीदास के पुत्र उत्पन्न हो चुका था तब गोस्वामीजी के श्वशुर ने कई बार यह इच्छा प्रकट की कि मेरी पुत्री को कुछ काल के लिए मेरे घर भेज दिया जाय, किन्तु गोस्वामीजी निषेध करते रहे। ऐसा हुआ कि एक दिन उसका भाई आकार उसे घर लिवा ले गया इत्यादि। सन्यास ग्रहण के पश्चात् गोस्वामीजी की पत्नी ने उन्हें एक पत्र लिखा था 'मोहि फटे का डर नहीं' इत्यादि। इसका उत्तर गोस्वामीजी ने लिख भेजा 'फटे एक रघुनाथ संग' इत्यादि। मैकफ़ी ने प्रियादास के आधार पर तुलसीदास के सम्बन्ध में उन कतिपय चमत्कारों का उल्लेख किया है जिनकी चर्चा ग्राउज़ और ग्रियर्सन आदि कर चुके थे यथा—हनुमद्दर्शन, रामदर्शन रामलक्ष्मण का धनुष-बाण लेकर चौकसी करना, शव को जीवित कर देना दिल्ली-सम्राट् को दिल्ली छोड़ने तथा नव-दुर्ग बनवाने के लिए बाध्य करना। गोस्वामीजी के निधन के सम्बन्ध से आवन सुनमा सप्तमी वाले दोहे की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

---

१ पृष्ठ ४१७—४२१ ४८६।

२ पृष्ठ भूमिका १६।

को आपत्ति है। उन्होंने सम्मेलन पत्रिका की बत्तीसवीं जिल्द के ७-९ अंकों में इस आशय का लेख लिखा कि गोस्वामीजी के कतिपय छन्द संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं और गोस्वामीजी का उक्त सोरठा तो बाबालि-संहिता के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है—

वन्दे गुरु पदाब्जं यो नर रूपं स्वयं हरिः।
महामोह तुम्पोदयत स्तमो नाशयति लाम्प्रतम् ॥

विद्यालंकारजी कहते हैं कि बाबालि संहिताकार ने जब उक्त श्लोक को लिखा तो उनके मन में तुलसीदासजी के गुरु की कल्पना थी, इस बात की सम्भावना प्रतीत नहीं होती। किन्तु क्या ऐसा सम्भव नहीं कि गोस्वामीजी ने जान-बूझ कर बाबालि संहिता में से वह छंद पसन्द किया जिसमें उनके गुरु का भी आभास मिलता था भले ही संहिताकार को उसकी कल्पना भी न हो। विल्सन का मत भी पुष्ट प्रतीत होता है क्योंकि उन्हें निम्नलिखित जनश्रुति का समर्थन प्राप्त है—

(प्रह्लाद) उदारण नाम करि, गुरु की तुलिये साधु।
प्रथम नाम नहिं कहत जन, कहे होत अपराधु ॥

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी ने अन्यत्र भी गुरु के नाम का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा यथास्थान की जायगी।

जन्म निधन—गोस्वामीजी से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों की भी चर्चा की गयी है। विल्सन और ग्राउज दोनों ने ही 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ का एवं उनके निधन के संवत् का उल्लेख किया है। संवत् १६३१ तो 'रामचरित मानस' में ही विद्यमान है, और निधन संवत् १६८० निम्नलिखित दोहे पर आश्रित है:

संवत सोलह सै असी असी गंग के तीर।
श्रावण सुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥

विल्सन ने १८३१ ई० में प्रकाशित 'ए स्केच ऑव द रिलिजस सैक्ट्स ऑव द हिन्दूज' में निधन-तिथि का उल्लेख नहीं किया था। १८६१ ई० में उक्त लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था उसमें उक्त दोहा है। ग्रियर्सन ने गोस्वामीजी के जन्म-संवत् का भी उल्लेख किया है वे उसे १५८९ वि० जनश्रुति के आधार पर मानते हैं। तदनुसार 'रामचरितमानस' की रचना का प्रारम्भ-काल गोस्वामीजी की बयालीस अथवा तेतालीस वर्ष की अवस्था में पड़ता है—विल्सन के अनुसार गोस्वामी जी उस समय इकतीस वर्ष के थे अतः उनका जन्म-संवत् लगभग १६० वि० होना चाहिए।

ग्रियर्सन के विचार से गोस्वामीजी का वेदान्त मिस्टी वाली ब्लेग से हुआ था। अनेक भारतीय विद्वानों ने इस विचार का प्रतिवाद किया है जो उचित ही प्रतीत होता है। विल्सन ने गोस्वामीजी की निधन तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १६८० बतायी।[1]

पति-पत्नी—ग्राउज ने नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की टीका के

---

१ गोस्वामीजी के आविर्भाव और तिरोभाव के सम्बन्ध में पीछे अध्याय देखिये।

आधार पर जिन बाधाओं का उल्लेख किया है उन्हें मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हाँ तुलसीदासजी की पत्नी ने अपने पति को डाट लगाकर जो उपदेश दिया वह औचित्य की मात्रा से अवश्य बढ़ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तविक घटना को नमक मिर्च लगाकर वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है यही बात लोरी-सामग्री में अत्यन्त मृदुल रूप से उपस्थित की गयी है। विरक्त होने के पश्चात् गोस्वामीजी और उनकी पत्नी के आकस्मिक मिलन की जो चर्चा की गयी है वह अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती क्योंकि किसी भी औचित्य के साथ यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि तुलसीदासजी अपनी पत्नी को नहीं पहचान पाये न अपने घर को और न अपने उस नगर को ही जहाँ वे वर्षों रह चुके थे। यह तो संभव है कि बहुत काल बीतने के पश्चात् वे अपनी पत्नी को न पहचान पाये हों और यह भी संभव है कि वे अपने घर को भी न पहचान पाये हों क्योंकि कालान्तर में पर्याप्त परिवर्तन हो गया हो, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि वे अपने नगर को भी न पहचान पाये वे मानो अलाउद्दीन के दीपक ने उनको अनजाने वहाँ लाकर पटक दिया था।

अन्य बातें—संन्यास से पूर्व एवं पश्चात्, पति-पत्नी में जो वार्तालाप हुआ उससे यह बात स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की पत्नी कविता कर लेती थी। लोरी-सामग्री में रत्नावली के दोहे तुलसी-पत्नी की काव्य शक्ति की पुष्टि करते हैं। गोस्वामीजी की पत्नी के मुख से निःसृत जो दोहे बताये जाते हैं और जिनका सर्वप्रथम उल्लेख ग्रियर्सन ने आज से ६६ वर्ष पूर्व किया था उनसे प्रतीत होता है कि उनकी पत्नी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले की न होकर किसी ब्रज भाषा-भाषी नगर या ग्राम की रही होंगी। इस विषय में सविस्तार विचार यथास्थान होगा। ग्रियर्सन महोदय तथाकथित देवी माधवदास कृत 'मूल गोसाईं चरित' का दर्शन नहीं कर पाये। उन्होंने केवल उस समय तक उसका नाम सुन लिया था जबकि १९२१ ई० में उन्होंने हमारे सन्त के विषय में 'एंसाइक्लोपीडिया ऑव एथिक्स एण्ड रिलिजन' में अपना लेख लिखा था। उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि राजापुर में 'रामचरित मानस' के अयोध्याकाण्ड की प्रति और काशी में 'पंचनामा' दोनों ही गोस्वामीजी के हाथ के लिखे हुए हैं। पंचनामे के सम्बन्ध में कोई सन्देह प्रकट नहीं किया जाता है यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस विषय में संदेह उपस्थित किया है कि राजापुर की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की है।

प्रशस्त संकलन—ग्रियर्सन महोदय ने वास्तव में गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त सम्बन्धी दन्तकथाओं, जनश्रुतियों एवं अन्य सामग्री का जो संकलन किया है वह अत्यन्त प्रशस्त है। उनके पूर्वकालीन के लेख जो अपेक्षाकृत स्वातंत्र्यपूर्वक लिखे गये थे तथ्य के अत्यन्त निकट हैं। पाठक को विश्वास न था कि गोस्वामीजी के पिता थे आत्माराम सुकुल माता थी हुलसी हरिपुर थे दीनबन्धु, पत्नी थी रत्नावली तथा पुत्र था तारक जिसका देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया था और गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव तथा गुरु नरहरि के शिष्य थे। तथापि ग्रियर्सन को यह मत मान्य था क्योंकि उन्होंने प्रियादास के आधार पर इस बात का भी उल्लेख किया है कि रत्नावली

अपने पिता के घर पति की आज्ञा के बिना चली गयी थी। उक्त सभी बातों का अधिकांश समर्थन सोरों-सामग्री के द्वारा भी होता है।

आश्चर्य—यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि गोस्वामीजी के निवास-स्थान के विषय में ग्राउज, ग्रीव्स और ग्रियर्सन भी अनुमान क्षेत्र में रहे। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने भी केवल यही लिखा कि गोस्वामीजी को राजापुर आने तथा यहां रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त किसी सज्जन को राजापुर आने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यदि प्राप्त होता तो उनकी जानकारी स्पष्टतर होती अथवा वे अपनी असम्मति प्रकट करते। रेवरेंड एडविन ग्रीव्स ने सन् १८९८ की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखा और उसमें गोस्वामीजी के जन्म और निवास के सम्बन्ध में इस प्रकार विवेचन किया "पर जन्म कहाँ हुआ? लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ पर गुसाईं जी ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई, और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा वह ताड़ी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर यह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ?"

गजेटियर—राजापुर सम्बन्धी सभी सरकारी गजेटियर इस बात का उल्लेख करते हैं कि रामचरित-मानसकार गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे और उन्होंने राजापुर की नींव डाली तथा वहाँ कुछ समय तक निवास किया। सब से प्रथम गजेटियर, जिसका सम्बन्ध प्रस्तुत विषय से है १८७४ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था और सब से पिछला १९०९ में किन्तु सभी में उक्त एक ही बात कही गयी है। गोस्वामीजी के सम्बन्ध में ग्राउज ने सर्वप्रथम १८७६ ई० में ग्रियर्सन ने १८९१ ई० में ग्रीव्स ने १८९८ ई० में एवं विंसेंट स्मिथ ने और भी पीछे अपने विचार प्रकट किये। किन्तु किसी ने भी अपने से पूर्व (अर्थात् १८७४ ई० में) प्रकाशित सरकारी गजेटियरों का उल्लेख नहीं किया यद्यपि वे कलकत्ता इलाहाबाद आदि स्थानों से ही प्रकाशित हुए थे और न उन्होंने उनका खण्डन ही किया। ये गजेटियर गोस्वामीजी के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं अतः उनके उद्धरण आवश्यक प्रतीत होते हैं।

(१) प्रथम गजेटियर में लिखा है

"Tradition has it that in *Akbar's reign* a *holy* man, Tulsidas a resident of Soron in Parganah Aliganj of the Etah District, came to the jungle on the banks of the Jumna, where Rajapur now stands, erected a temple, and devoted himself to prayer and meditation. His sanctity soon attracted followers who settled around him and as

their numbers increased they began to devote themselves (and with wonderful success) to commerce as well as to religion. There are some curious local customs peculiar to Rajapur derived from the precepts of Tulsi

Statistical Description and Historical Account of the North Western Province of India, Edited by Edwin T Atkinson B A., B C. S. Vol. I Bundelkhand Allahabad 1874 Pages 572 573

अर्थात् १८७४ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित और एडविन टी० एटकिनसन द्वारा संपादित स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट ऑव द नार्थवेस्टर्न प्रोविंस ऑव इण्डिया की बुन्देलखण्ड जिल्द १ के पृष्ठ ५७२-७३ पर इस प्रकार लिखा है —

"जनश्रुति है कि अकबर के शासनकाल में तुलसीदास नाम के एक पुण्यात्मा जो एटा जिले के परसना अलीगंज में सोरों के निवासी थे यमुना जी के किनारे उस जगह में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। वहाँ उन्होंने मन्दिर बनवाया और वे प्रार्थना और ध्यान में तल्लीन हो गये। उनकी साधुता ने तुरन्त अनुयायियों को आकर्षित किया और वे उनके चारों ओर बस गये। ज्यों-ज्यों उनकी संख्या बढ़ती गयी त्यों-त्यों वे आश्चर्यजनक सफलता से वाणिज्य और धर्म की ओर प्रवृत्त होने लगे। तुलसी-उपदेश-जन्य कुछ विचित्र स्थानीय प्रथाएँ हैं जो राजापुर में ही मिलती हैं।

(२) तत्पश्चात् 'इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया' की ग्यारहवीं जिल्द प्रकाशित हुई जिसका सम्पादन डब्लू० डब्लू० हंटर ने किया था। उसका द्वितीय संस्करण १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके ३८५ ३८६ पृष्ठों पर इस प्रकार लिखा है

Rajapur was founded in the reign of Akbar by Tulsi Das a devotee from Soron who erected a temple and attracted many followers."

अर्थात् अकबर के शासनकाल में तुलसीदास नामक एक भक्त ने सोरों से आकर राजापुर की नींव डाली। उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण कराया और बहुत से अनुयायियों को आकृष्ट किया।

(३) तदनन्तर १९०८ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित 'इम्पीरियल गजटियर ऑव इंडिया' यू० पी० २ (प्रोविंसल सिरीज) के पचासवें पृष्ठ पर लिखा है:—

'Rajapur is the name of the town and Majhgaon that of the Mauja or village area within which it is situated According to tradition, the town was founded by Tulsidas, the celebrated author of the Ramayana and his residence is still shown "

अर्थात् "राजापुर कस्बे का नाम है और मझगाँव उस मौजा अथवा ग्राम-प्रदेश का

जिसमें यह स्थित है। ऐसी जनश्रुति है कि रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास ने इस कस्बे की नींव डाली थी और यहाँ उनका निवास-स्थान अभी तक दिखाया जाता है।"

(४) चौथा गजेटियर बाँदा जिले का है जो 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑव द यूनाइटेड प्रोविंसेज' की इक्कीसवीं जिल्द में सम्मिलित है और जो १९०९ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके पृष्ठ २८५, २८६ पर इस प्रकार लिखा है —

> "It is said that in the reign of Akbar a holy man, named Tulsi Das, a resident of Soron in Kasganj Tahsil of the Etah district, came to the jungle on the banks of the Jumna where Rajapur now stands, and devoted himself to prayer and meditation His sanctity soon attracted followers, who settled round him and as their number increased they began to devote themselves to commerce as well as religion. This is, of course Tulsi Das the author of the Ramayana, and his house is still shown in the town. It was a low kacheha building, but has recently been rebuilt and contains a shrine and an old somewhat mutilated manuscript of the Ramayana. There is a small musjid attached to the shrine, but the present musjidars are ignorant and quarrelsome and do nothing to further the spirit of religious purity and lofty ideals preached by the venerable poet. The shrine also contains a stone figure said to be an effigy of the poet, of celestial origin and to have been found buried in the sands near Rajapur Local tradition says that Tulsi Das became acquainted with Rajapur through his having married into a Brahman family in Mahewa, tahsil Sirathu, district Allahabad. There are some peculiar customs in vogue at Rajapur derived from the precepts of Tulsi Das. No houses are allowed to be built of stone or masonry and even the richest live in mud houses only temples are made of masonry No barbers are ever allowed to settle within the town, and no dancing girls, except of the caste of Beriaha, are allowed to live within it. Kumhars are also interdicted from residence, and all gharas and pots are brought in from outside. The rules however are now so far relaxed as to be held to apply only to the precincts of Tulsi Das s house."

अर्थात् ऐसा कहा जाता है कि अकबर के राज्यकाल में तुलसीदास नाम के एक पवित्रात्मा जो एटा जिले की तहसील कासगंज में सोरों के निवासी थे यमुनाजी के किनारे उस जंगल में आए जहाँ अब राजापुर विद्यमान है और वे पूजा-ध्यान में प्रवृत्त हो गये। शीघ्र ही उनके पावित्र्य से आकृष्ट होकर उनके अनुयायी चारों ओर बस गये और जब उनकी संख्या में वृद्धि हुई तो वे वाणिज्य और धर्म में दत्त-चित्त

हो गये। वस्तुतः ये वे ही तुलसीदास हैं जिन्होंने रामायण की रचना की। कस्बे में उनका घर अब भी दिखाया जाता है। उसकी इमारत कच्ची और नीची थी किन्तु अभी हाल में उसका पुनर्निर्माण हो गया है और उसमें एक मन्दिर तथा रामायण की एक प्राचीन किन्तु किंचित् खण्डित पाण्डुलिपि विद्यमान है। मन्दिर से लगी हुई एक छोटी सी मुआफी है किन्तु वर्तमान मुआफीदार अपठित और झगड़ालू हैं और आदरणीय कवि ने जिन पवित्र और उच्च आदर्शों का प्रवचन किया था उनकी भावना को आगे बढ़ाने के लिए वे कुछ नहीं करते। मन्दिर में पत्थर की एक प्रतिमा है जिसे देव निर्मित तथा कवि की बताया जाता है। यह भी कहा जाता है कि यह राजापुर के निकट रेणुका में निकली मिली थी। स्थानीय जनश्रुति है कि तुलसीदास राजापुर से इसलिए विरक्त हो गये थे कि उन्होंने इलाहाबाद जिले की तहसील सिराथू में महेवा के एक ब्राह्मण कुटुम्ब में अपना विवाह कर लिया था। राजापुर में कुछ विचित्र प्रथाओं का प्रचार है जिनका उद्गम तुलसीदासजी के उपदेशों से है। यहाँ चूने पत्थर के घर बनाने की आज्ञा नहीं है और धनी से धनी भी कच्चे घरों में रहते हैं, केवल मन्दिर ही पक्के बन सकते हैं। नगर के भीतर नापितों को बसने की आज्ञा नहीं है और बेरिया जाति के अतिरिक्त किसी और जाति की नर्तकियाँ यहाँ निवास नहीं कर सकती हैं। कुम्हारों पर भी निवास का प्रतिबन्ध है घट और भाण्ड बाहर से मँगाये जाते हैं। किन्तु अब ये नियम शिथिल हो गये हैं और केवल तुलसीदासगृह-प्रतिवेश तक ही लागू हैं।"

गजेटियरों का सार—उपर्युक्त चारों गजेटियरों से यह स्पष्ट है कि राम चरितमानस के कर्ता गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे और उन्होंने अकबर के शासनकाल में यमुना-तीरस्थ राजापुर की स्थापना की एवं नव बसति की विशुद्धता के लिए कुछ नियमों का विधान किया। उनका निवासस्थान कच्चा था जिसका पुनर्निर्माण हुआ। गजेटियर में मुआफी और मुआफीदारों का भी उल्लेख है। सन् १८७६ ई० की अर्ज वाजिबुल अर्ज से स्पष्ट है कि मुआफीदार गोस्वामीजी के शिष्य बसवर हैं। एक महाशय उक्त गजेटियरों का प्रामाण्य नहीं मानते। उनका तर्क विचित्र है। उनके मत में गजेटियरों का सम्पादन अंग्रेज साहब बहादुरों ने किया जो लोग अपने चपरासियों पर अपने अनुसंधान के विषय में निर्भर रहते थे (अर्थात् वे जैसी सूचनाएँ देते थे साहब लोग उनको उसी रूप में मान लेते थे)। अतएव गजेटियरों का कोई प्रामाण्य नहीं। किन्तु हमारी विनीत सम्मति में गजेटियरों का कुछ न कुछ प्रामाण्य अवश्य है। और कुछ नहीं इतना तो स्पष्ट है कि सन् १८७४ ई० में अर्थात् आज से ८७ वर्ष पूर्व राजापुर का कम से कम एक व्यक्ति यह भी धारणा रखता था कि गोस्वामीजी सोरों के रहने वाले थे। सोरों और राजापुर में लगभग तीन सौ मील का अन्तर है और आज से लगभग वर्ष पूर्व रेलों का विस्तार नहीं था। अतएव राजापुर के किसी चपरासी को क्या पड़ी थी कि वह गोस्वामीजी का सम्बन्ध राजापुर में बैठकर सोरों से बिना बात जोड़ देता। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जन्मस्थल से अधिक मोह होता है और यह संभव है कि वह अपने स्थान का गौरव अतिशयोक्ति पूर्ण करे। चपरासी या कोई और व्यक्ति राजापुर की नींव उस व्यक्ति से क्यों बताता

जो सोरों का निवासी था। और यदि यह तर्क उपस्थित किया जाय कि गजटियर का तुलसीदास-सम्बन्धी उल्लेख पढ़े लिखे साहब बहादुर की कल्पना का उत्पादन है तो भी इस बात के समाधान की अपेक्षा रहती है कि राजापुर के निकट रहने वाले किसी विदेशी को इतनी दूरी पर स्थित सोरों से इतना मोह क्यों था। गजटियर में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राजापुर के नींव डालने एवं तुलसीदास के सोरों-निवासी होने से सम्बन्ध रखने वाली बातों का आधार राजापुर की ही जनश्रुतियाँ हैं।

(च) निष्कर्ष—विदेशी विद्वानों ने जो अनुसन्धान किये उनका सार इस प्रकार है गोस्वामीजी का कोई घनिष्ठ सम्बन्ध तारी से था। तारी नामक स्थान अन्तर्वेद में था। उनकी शिक्षा-दीक्षा सूकरक्षेत्र में हुई और यह सूकरक्षेत्र सोरों है जो एटा जिले की कासगंज तहसील में स्थित है। उनके पुत्र नृसिंह अथवा नरसिंहजी थे। पिता का नाम था आत्माराम, माता का हुलसी पत्नी का रत्नावली पुत्र का तारक और श्वसुर का दीनबन्धु पाठक। गोस्वामीजी जाति से ब्राह्मण और रामचरितमानस के कर्त्ता थे। सोरों से आकर इन्होंने बाँदा जिले में राजापुर नामक कस्बे की नींव डाली, वहाँ कुछ काल तक निवास किया और उसके निवासियों के लिए कुछ नियमों का विधान भी किया जिनमें से कुछ का पालन आज तक किसी न किसी रूप में होता आ रहा है। राजापुर में गोस्वामीजी के शिष्य-वंशधरों को मुआफी मिली हुई है। गोस्वामीजी अयोध्या और चित्रकूट में भी रहे अब्दुर्रहीम खानखाना और राजा मानसिंह के सम्पर्क में आये और अन्त में काशीसेवन कर संवत् १६८० वि में श्रावण शुक्ला सप्तमी को स्वर्ग सिधारे।

(छ) भारतीयों की गवेषणा

प्राक्कथन—अनेक भारतीय विद्वानों ने भी अपने जीवन का बहुत कुछ समय गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त और ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत किया है। जहाँ तक गोस्वामीजी के ग्रन्थों के अध्ययन तथा समालोचन का सम्बन्ध है वहाँ तक उनका कार्य अत्यन्त उपादेय है। किन्तु गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त पर उनका अनुसन्धान उतना उत्साहजनक नहीं रहा। इसका कारण है इतालोचना उदासीनता अथवा नवानुसन्धान के प्रति उपेक्षा। जिन यशस्वी लेखकों ने इस ओर अपना कलम उठाया है हैं आदरणीय मिश्र बन्धु, डॉ० श्यामसुन्दरदास पं० रामचन्द्र शुक्ल बाबू शिवनन्दन सहाय श्री रामदास गौड़ लाला सीताराम श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र श्री सीताराम शरण श्री भगवान प्रसाद डॉ० माता प्रसाद गुप्त पं० चन्द्रबली पाण्डे आदि जिनका उल्लेख यथा-स्थान होता रहेगा किन्तु प्रथम तीन की सेवाएँ, प्रारम्भिक एवं अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, अतएव उनका विवरण अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

(अ) मिश्रबन्धु

पं० गणेश बिहारी मिश्र, राबराजा रायबहादुर डॉ० श्यामबिहारी मिश्र तथा रायबहादुर पं० सुखदेव बिहारी मिश्र नामक त्रिबन्धुओं ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा

की है वह किसी से छिपी नहीं है। उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला वह भी अत्यन्त प्रशंसनीय है। 'हिन्दी नवरत्न' एवं 'मिश्र बन्धु विनोद' दोनों ही मिश्रबन्धुओं की संयुक्त लेखनी से १९१० और १९१३ ई० में क्रमशः प्रकाशित हुए थे।

माता-पिता ने तुलसीदास को त्याग न था—मिश्रबन्धु लिखते हैं गोस्वामीजी का जन्म राजापुर तहसील परवना झूंसी जिला बांदा में संवत् १५८९ में हुआ था। राजापुर एक अच्छा कस्बा है जो श्री यमुनाजी के किनारे करवी रेलवे स्टेशन (बी० आई० पी०) से १९ मील पर बसा है। यहाँ तुलसीदासजी की कुटी अब तक वर्तमान है जो गोस्वामीजी के शिष्य मधुपतिजी के उत्तराधिकारी ब्रजलाल चौधरी के आधिपत्य में है और वहाँ अंग्रेजों ने महात्माजी के स्मारक-स्वरूप समसरवर की एक तख्ती लगा दी है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु बैरागी होने पर इनका नाम तुलसीदास हुआ। इनका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था। जान पड़ता है कि इनके माता-पिता इनकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गए थे और ये दाने-दाने को 'बिलमाते' फिरते थे (देखिये 'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन जानत हौ चारि फल चारि ही चनक को' —कवितावली) कुछ लोग समझते हैं कि इनके माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया था पर यह बात ठीक नहीं। अवश्य ही अपनी कविता में इन्होंने ठौर-ठौर अपना माता पिता द्वारा त्यजा जाना लिखा है पर, मिश्रबन्धुओं के मतानुसार उससे उनके शीघ्र ही 'स्वर्गवासी' होने का तात्पर्य है।[1] मिश्रबन्धुओं ने अपनी इस धारणा के लिए कोई कारण नहीं दिया कि गोस्वामीजी के माता-पिता उनके शैशव में ही स्वर्गवासी हो गये थे यद्यपि इस धारणा की पुष्टि सोरों-सामग्री से अवश्य होती है।

जनश्रुति के आधार पर मिश्रबन्धु कहते हैं कि गोस्वामीजी का विवाह दीन बन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ जिससे इन्हें तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ पर वह बचपन में ही चल बसा। यह भी सुना जाता है कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर बड़ा प्रेम रखते थे और उसके नैहर जाने पर एक बार नहीं जा पहुँचे। इस पर स्त्री ने कहा कि यदि आप इतना प्रेम परमेश्वर से करते तो न जाने क्या फल होता। तब तो तुलसीदासजी की आँखें खुल गयीं और वे घर छोड़ चल दिये और बैरागी हो गये। इस कथा का उल्लेख प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका में किया है।

दोहों में पति-पत्नी की आकस्मिक विश्वसनीय नहीं—कहा जाता है कि साधु होने पर एक बार अपनी स्त्री से इनका यदाकदा साक्षात्कार हो गया पर इस अवसर पर जो दोनों में दोहों के द्वारा बात-चीत होना कहा गया है वह मिश्रबन्धुओं को विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती।[2] दीन बन्धु पाठक रत्नावली तारक आदि के विषय में उनका उल्लेख सोरों-सामग्री से समर्थित है, पति-पत्नी के आकस्मिक मिलन की चर्चा हमें भी विश्वस्त प्रतीत नहीं होती क्योंकि उसका उल्लेख सोरों-सामग्री में तथा अन्यत्र भी—तुलसीचरित मूलगोसाईं चरित आदि में—कहीं नहीं मिलता।

---

१ हिन्दी नवरत्न, पृ० २३। २ वही, पृ० २।

तुलसीदास के गुरु नरहरि—गुरु-स्थान के उपरान्त गोस्वामीजी रामानन्दजी के शिष्य नरहरिदास के शिष्य हो गये थे। इस समय वे पच्चीस वर्ष के होंगे निर्धन होने के कारण उस समय तक उनका विवाह न हुआ होगा न उन्हें पुत्र लाभ ही। रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने लिखा है कि मैंने सूकर क्षेत्र में अपने गुरु से राम कथा सुनी थी किन्तु उस समय मैं अबोध था और मैं उनके तात्पर्य को भली भाँति नहीं समझ सकता था, यद्यपि मेरे गुरुजी ने मुझे यह कथा बार-बार सुनायी, तथापि मैं तब उसका माहात्म्य अपनी शक्ति के अनुसार ही समझ सकता था। मिश्रबन्धु कहते हैं कि इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस समय बारह वर्ष के रहे होंगे और यह भी प्रतीत होता है कि उन्होंने विरक्त होने से पहले ही नरहरि दास से ही दीक्षा लेकर राम-कथा का श्रवण किया हो क्योंकि यदि हम ऐसा न मानें तो प्रियादास प्रदत्त उस विवरण में अविश्वास करना होगा जिसका सम्बन्ध गोस्वामीजी के विवाह से है। किन्तु निम्नलिखित तीन कारणों से प्रियादास के लेख पर अविश्वास नहीं किया जा सकता—प्रथमतः उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं। द्वितीयतः प्रियादासजी ने भक्तमाल पर अपनी टीका अपने उस गुरु नाभादासजी की प्रेरणा से लिखी जो कि भक्तमाल के कर्ता और गोस्वामीजी के घनिष्ठ मित्र और परिचित थे। तृतीयतः गोस्वामीजी के विवाह की वार्ता प्रचलित है। साक्ष्य के अभाव में प्रियादासजी की रचना को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता[1]। मिश्रबन्धुओं के उक्त तीनों ही तर्क युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं।

क्या तुलसीदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे?—मिश्रबन्धुओं के मतानुसार तुलसीदासजी के वंश के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद इस प्रकार है—कोई उन्हें कान्यकुब्ज मानते हैं तो कोई सरयूपारीण। अपने 'भक्त कल्पद्रुम' में राजा प्रतापसिंह ने उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है किन्तु 'शिवसिंह सरोज' में बेनी माधवदास के आधार पर सरयूपारीण ब्राह्मण लिखा है। रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार और विद्वान् पं० रामगुलाम द्विवेदी ने भी उन्हें सरयूपारीण बताया है और उन्हीं का अनुसरण डॉ० ग्रियर्सन ने किया है किन्तु मिश्रबन्धुओं के मतानुसार गोस्वामीजी को सरयूपारीण मान लेने में दो आपत्तियाँ हैं पहली तो यह कि समस्त बाँदा तथा राजापुर के निकटवर्ती प्रदेश में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का निवास है सरयूपारीणों का नहीं। अतएव यदि तुलसीदासजी द्विवेदी थे तो स्पष्टतः वे कान्यकुब्ज थे। दूसरी यह कि वे पाठकों में विवाहित थे जो ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं तत्पश्चात् द्विवेदियों का स्थान है। पाठकों की पुत्रियों का विवाह द्विवेदियों में नहीं हो सकता था क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह निम्नतर कुल में नहीं करता। किन्तु कान्यकुब्जों में पाठक द्विवेदियों की अपेक्षा नीचे समझे जाते हैं अतएव पाठक और द्विवेदियों का वैवाहिक सम्बन्ध औचित्यपूर्वक हो सकता था। सुतराम् मिश्रबन्धु, भक्त-कल्पद्रुम के लेखक से सहमत हो गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज मानते हैं[1]। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन तर्कों का निराकरण किया है जैसा कि हम आगे देखेंगे। इस सम्बन्ध में

---

१ 'हिन्दी नवरत्न' पृष्ठ ४। २. वही, पृ० ६१।

हमारा विनम्र निवेदन है कि सनाढ्य ब्राह्मणों में भी द्विवेदी, शुक्ल, पाठक आदि शाखाएँ होती हैं। रायबहादुर बाबा सीताराम ने गोस्वामीजी को राजापुर के निकट किन्तु सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है[1]। वैष्णव वार्त्ताओं में और सोरों-सामग्री में भी गोस्वामीजी को स्पष्टतः सनाढ्य ब्राह्मण माना गया है।

तुलसी चरित में अनास्था—मिश्रबन्धुओं ने जब 'हिन्दी नवरत्न' की रचना की थी तब तथाकथित 'तुलसीचरित' उपलब्ध न था। संवत् १९७१ वि० में सहसा उसका आविर्भाव हुआ किन्तु उसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव मिश्रबन्धुओं पर न पड़ा। 'हिन्दी नवरत्न' के तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् १९१३ ई० में उनका दूसरा ग्रन्थ 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रकाश में आया और इस महाकाय ग्रन्थ के अनुसार गोस्वामीजी का जीवनचरित इस प्रकार है: तुलसीदासजी बाँदा जिले के सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में संवत् १५८९ वि० में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का हुलसी। उनके माता पिता ने उनका नाम रामबोला रखा था किन्तु मिश्रबन्धु कहते हैं कि कुछ लोग 'तुलसीचरित' के आधार पर गोस्वामीजी की जन्म-तिथि और माता-पिता भाई आदि के नामों पर सन्देह करते थे, उसके अनुसार गोस्वामीजी ने अपनी अवस्था के इकहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस का प्रारम्भ किया और १२० वर्ष की आयु प्राप्त कर महाप्रयाण किया तथापि न वे निर्धन थे और न नन्ददास के चचेरे भाई। किन्तु मिश्रबन्धुओं के मत से गोस्वामीजी संभृत थे यह बात गोस्वामीजी की उक्तियों के विरोध में है, वे नन्ददास के भाई नहीं थे यह बात चौरासी वैष्णवों की वार्ता के समकालीन साक्ष्य के विरुद्ध है और उन्होंने इकहत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में रामायण का प्रारम्भ किया यह बात बुद्धिगम्य नहीं है। इसी प्रकार यह बात भी अनुमान विरुद्ध है कि उन्होंने १२० वर्ष की आयु पायी थी। मिश्रबन्धु 'तुलसी चरित' को प्रामाणिक नहीं समझते क्योंकि एक-आध सज्जनों के अतिरिक्त और किसी ने भी इस ग्रन्थ का दर्शन नहीं किया है, और जिन्होंने इस ग्रन्थ को देखा है वे बार-बार की प्रार्थना और प्रतिज्ञाओं के उपरान्त भी उसके दर्शन कराने के लिए इच्छुक अथवा प्रस्तुत प्रतीत न हुए[2]। अतएव मिश्रबन्धुओं का निष्कर्ष तदानीतन विद्वानों के आधार पर इस प्रकार रहा: तुलसीदासजी बचपन में निर्धन थे और उन्होंने प्रयत्न से कुछ ज्ञानोपार्जन किया, लगभग बीस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ और तारक नाम के पुत्र की प्राप्ति भी, जो कुछ ही दिनों के पश्चात् जाता रहा। गोस्वामीजी अपनी पत्नी में बड़े अनुरक्त थे। एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे कहा कि यदि इतना प्रेम तुम ईश्वर से करते तो सिद्ध हो जाते। उपदेश-प्राप्ति पर तुलसीदासजी ने घर छोड़ दिया और वे नरहरिदास के शिष्य बन गये। नरहरिदास ने गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास रखा और गोस्वामी जी ने उक्त गुरु की प्रेरणा से 'रामचरितमानस' की रचना की। उन्होंने अनेक तीर्थों

---

१ रामबरण अयोध्याप्रसाद (राजापुर संस्करण) जीवन चरित पृ० ('घ')।

२ मिश्रबन्धु विनोद, पृ० २९८–२९९।

के दर्शन किये और अन्त में काशी के असी घाट पर बस कर संवत् १६८० वि० में देह-त्याग किया।[1]

डॉ० दास और पण्डित शुक्ल का प्रभाव—यद्यपि मिश्रबन्धुओं पर 'तुलसीचरित' का कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० श्यामसुन्दर दास तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे *गम्भीर विद्वानों* ने तुलसी सम्बन्धिनी उन व्यक्तियों से उनके विश्वास को शिथिल कर दिया था। श्री अमीरन प्रसाद दीक्षित ने संवत् १९८५ वि० (अथवा १९२८ ई०) में 'माधुरी' की उनासीवीं संख्या में गोस्वामी तुलसीदासजी और उनकी जाति' नामक लेख लिखा जिसमें वे इस प्रकार लिखते हैं "मिश्रबन्धु महोदय पहले जितने प्रबल कान्यकुब्ज मानने के पक्ष में थे इस समय उतने नहीं हैं अपितु उनके भावों में कुछ शिथिलता सी हो रही है"[2]। मैं दीक्षितजी के इन शब्दों से सहमत हूँ और समझता हूँ कि मिश्रबन्धुओं के मन में इस विषय में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया था क्योंकि उन्होंने 'माधुरी' के उस अंक में जो १८ अगस्त १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ था स्पष्ट लिखा है कि आप *कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारीण ब्राह्मण थे।*[3] *सन् १९१९ में मिश्रबन्धुओं ने तुलसीदास* जी को कान्यकुब्ज घोषित किया था सन् १९१३ में सरयूपारीण और सन् १९२३ ई० में लिखा कि वे या तो कान्यकुब्ज थे या सरयूपारीण। ध्यान देने की बात है कि उन्होंने उक्त लेख में तथा 'मिश्रबन्धु विनोद' में रत्नावली और उसके पिता का उल्लेख नहीं किया है। यह लोपन आकस्मिक प्रतीत होता है क्योंकि मेरे पत्र के उत्तर में रायबहादुर डॉ० श्यामबिहारी मिश्र ने मुझे यह सूचित करने की कृपा की कि गोस्वामीजी का जन्म राजापुर में सं० १५८९ में हुआ उनके माता-पिता आत्माराम और हुलसी थे रत्नावली से उनका विवाह हुआ 'उनके श्वसुर का नाम सबको मालूम है हमें इस समय याद नहीं थे 'सरयूपारीण या कान्यकुब्ज ब्राह्मण—*गाना के मिश्र या द्विवेदी थे और उनका देहावसान काशी में श्रावण कृष्णा तीज* संवत् १६८० में हुआ था। रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी मिश्र ने 'मूल गोसाईं चरित' के सम्बन्ध में आपत्तियों की एकान्वी प्रस्तुत कर उस चरित को अस्वीकार किया है[4] जिसकी चर्चा यथा स्थान की जायगी।

मिश्रबन्धुओं का प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है। उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में प्राचीन किन्तु प्रचलित अनुश्रुतियों के संरक्षण के निमित्त स्तुत्य प्रयास किया और अपने निर्णय को निष्पक्ष तर्कों से सम्पन्न किया।

(आ) डॉ० श्यामसुन्दर दास

प्राथमिक मत—रायबहादुर डॉ० श्यामसुन्दर दास के प्राथमिक ग्रंथों में गोसाईं तुलसीकृत 'रामचरितमानस' नामक ग्रंथ भी है जिसका सम्पादन उन्होंने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की पंच-सदस्य-समिति की प्रेरणा से किया था और जो

---

१ 'मिश्रबन्धु विनोद' पृष्ठ २६६।

२ पृ० ८६। ४ सन् १८ दिसम्बर १९४ ई० अथवा २७ दिसम्बर १९४० ई०।

३ पृ० ८६। ६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका जिल्द ८ संख्या १९८४ वि०।

इंडियन प्रेस के द्वारा सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ और जिसकी भूमिका उन्होंने सेवा के भक्ति-रूप से काशी में ५ जून को १९०६ ई० में लिखी थी।

जिस समय उक्त ग्रंथ का सम्पादन हुआ उस समय न तो बाबा रघुवरदास के 'तुलसी चरित' का और न बाबा बेनी माधवदास के 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव हुआ था। अतएव डॉ० दास को उन जनश्रुतियों से ही सन्तुष्ट रहना पड़ा जिनका संग्रह ग्रियर्सन महोदय कर चुके थे। डॉ० दास लिखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे माता का हुलसी और उनका प्रथम नाम रामबोला था किन्तु डॉ० ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी से डॉ० दास इस बात में असहमत थे कि गोस्वामीजी को उनके माता पिता ने अशुभ नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया था। उनकी सम्मति में गोस्वामीजी के माता-पिता का स्वर्गवास बचपन में ही हो गया था और वे साधुओं के साथ घूमते फिरते थे क्योंकि यदि माता-पिता ने उन्हें जन्म से ही त्याग दिया होता तो गोस्वामी जी को कैसे पता चलता कि मैं ब्राह्मण हूँ और वे अपने विषय में 'दियो सुकुल जनम' न लिखते।[1]

डॉ० दास कहते हैं कि यह दृढ़ जनश्रुति है कि गोस्वामीजी के गुरु नरहरि दास थे और स्वयं उन्होंने रामायण में भी 'नर रूप हरि' का उल्लेख किया है। गुरु से सोरों में बचपन ही में रामायण का उपदेश लिया था। उनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ और उससे तारक नामक एक पुत्र भी जो शैशव में ही समाप्त हो गया था। तुलसीदासजी अपनी पत्नी से अत्यन्त स्नेह करते थे और जब वह अपनी माता के यहाँ चली गयी तब वे उसका वियोग न सह सके और उससे मिलने के लिए चल दिये।[2]

'तुलसीचरित' का प्रभाव—सन् १९१६ ई० में डॉ० दास ने रामचरितमानस की टीका की जिसका द्वितीय संस्करण इण्डियन प्रेस से १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ। उस समय तक तुलसीचरित नाम के ग्रन्थ का आविर्भाव हो चुका था जिसका प्रभाव उन पर कुछ कम न पड़ा। इनका पहले से ही विश्वास था कि गोस्वामीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इस नये ग्रन्थ ने उनकी धारणा को दृढ़ कर दिया। इस कारण वे 'हिन्दी नवरत्न' के लेखक मिश्रबन्धुओं से जो गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज बताते थे असहमत रहे। डॉ० दास ने गोस्वामीजी के माता-पिता के सम्बन्ध में भी अपनी धारणा में परिवर्तन किया ऐसा प्रतीत होता है। वे निम्नलिखित छन्द का उल्लेख करते हैं —

> सुर तिय नर तिय नाग तिय सब चाहत अस होय।
> गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय॥

इसके उत्तरार्द्ध को अब्दुर्रहीम खानखाना ने लिखा था। लोग कहते हैं कि 'हुलसी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है जिन में से एक गोस्वामीजी की माता

---

१. रामचरितमानस भूमिका पृ० ६। २. वही, पृष्ठ ११ १२।

का द्योतक है किन्तु डॉ० दास के मत में ऐसी धारणा का कोई आधार नहीं और यह केवल अनुमान है। अतएव उन्हें 'तुलसीचरित' के आधार पर गोस्वामीजी के प्रपितामह का नाम परशुराम मिश्र पितामह का शंकर मिश्र और पिता का हुलसी मिश्र बताना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ।*

गोस्वामीजी के नाम के सम्बन्ध में भी डॉ० दास ने 'तुलसीचरित' का आधार ग्रहण किया जिसके अनुसार हमारे महाकवि का नाम तुलाराम था और जिसे कुछ गुरु ने 'तुलसीदास' में परिवर्तित कर दिया। पीछे से गोस्वामीजी स्वयं अपने को 'तुलसीदास' बताने लगे। अतएव डॉ० दास का सुझाव है कि विनयपत्रिका के इस वचन का कि 'राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम' यह तात्पर्य होना चाहिये कि भगवान् रामचन्द्र ने गोस्वामीजी का नाम राम बोला रख दिया था।[1]

डॉ० दास कहते हैं कि 'तुलसीचरित' के अनुसार गोस्वामीजी विवाह के पश्चात् अपने माता-पिता से अलग हो गये थे जैसा कि तुलसीदासजी ने स्वयं लिखा है मातु पिता जग जाय तज्यो' और 'जननी जनक तज्यो जनमि'। उनके विचार से ये दोनों उक्तियाँ समान हैं क्योंकि दोनों ही के अनुसार माता-पिता और पुत्र का वियोग हुआ था। किन्तु यह वियोग कब हुआ था इस सम्बन्ध में दोनों उक्तियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। यदि समग्र 'तुलसीचरित' उपलब्ध होता तो कदाचित् समस्या सुलझ जाती किन्तु उसकी उपलब्धि के अभाव में तब तक गोस्वामी जी के वचनों को मानना पड़ेगा जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि तुलसीदासजी के उक्त वचन प्रक्षिप्त हैं अथवा उनकी लेखनी से निसृत नहीं हुए। किन्तु ऐसा प्रामाण्य नहीं। ऐसी परिस्थिति में डॉ० दासजी को कहना पड़ा कि या तो तुलसीदास जी के माता पिता ने उन्हें छोड़ दिया था अथवा संभवतः वे अपने माता पिता के जीवन-काल में ही किसी कारण अपने गुरु के साथ रहने लगे हों अतएव उक्त दोनों बातें सत्य हो सकती हैं। डॉ० दास के उक्त विचारों से स्पष्ट है कि उनका झुकाव 'तुलसीचरित' की ओर हो चला था।[2]

तुलसीदासजी के गुरु के विषय में डॉ० दास का मत है कि अनुमान की अपेक्षा 'तुलसीचरित' पर निर्भर रहना अधिक अच्छा है अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि गोस्वामीजी के गुरु रामदासजी थे और रामायण के मंगलाचरण में 'नरहरि हरि' से नरहरिदास का तात्पर्य ग्रहण करना अधिक समीचीन नहीं। एक पाद-टिप्पणी में डॉ० दास ने उस वंशावली में अविश्वास किया है जो डॉ० ग्रियर्सन को मिली थी और जिसमें तुलसी-गुरु 'नरहरिदास' का उल्लेख है किन्तु विचित्रता यह है कि उन्होंने रामचरितमानस के बालकाण्ड के पाँचवें दोहे की टीका में नरहरिजी को गोस्वामीजी का गुरु माना है। उनका तर्क है कि कुछ टीकाकार 'नरहरि हरि' से भगवान् नृसिंह का तात्पर्य ग्रहण करते हैं अतएव गोस्वामीजी को भी

---

* रामचरितमानस की टीका, द्वितीय संस्करण, प्रस्तावना पृ० १७।

१ वही। २ वही, पृष्ठ १८-१९।

नृसिंहावतार का भक्त समझते हैं। किन्तु मेरा निवेदन है कि गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के गंभीर अध्ययन से यह स्पष्ट है कि नरहरि नामक विद्वान् गोस्वामीजी के गुरु थे। 'नरहरिपहरि' इस अभिव्यक्ति से प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने अपने प्रतिभाशाली गुरु नरहरिजी को रामचरितमानस में प्रणामांजलि अर्पित की है जिसका अधिक विवेचन यथास्थान किया जायगा।

तुलसीदासजी के विवाह के विषय में डॉ० दास के विचार इस प्रकार हैं परम्परा से यह विदित है कि तुलसीदासजी ने दीनबन्धु की पुत्री रत्नावली से विवाह किया और उससे उन्हें तारक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो शैशव में ही जाता रहा किन्तु 'तुलसीचरित' के अनुसार गोस्वामीजी ने तीन विवाह किये और तीसरा विवाह रूचनपुर ग्राम के निवासी लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ जिसके कारण गोस्वामीजी विरक्त हुए। तुलसीदास और उनकी पत्नी के विरागोत्तर एवं आकस्मिक मिलन का उल्लेख डॉ० दास करते हैं, तथाच तत्कालीन उपलब्ध सामग्री के आधार पर गोस्वामीजी की जन्मतिथि का विवेचन भी जिसके सम्बन्ध में यथा स्थान विचार करेंगे।

'मूल गोसाईं चरित' की ओर झुकाव—उपरिलिखित उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि डॉ० दास का झुकाव कभी-कभी 'तुलसीचरित' की ओर था और किन्हीं-किन्हीं विषयों में तो वे उसको तुलसी-सम्बन्धिनी जनश्रुतियों से अधिक महत्त्व प्रदान करते थे किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया और हिन्दी साहित्य के प्रांगण में बाबा बेनी माधवदास कृत 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव हुआ वैसे-वैसे 'तुलसी चरित' का चमत्कार लुप्त होता गया। अतएव डॉ० दास इस आविष्कृति को महत्त्व प्रदान करने लगे। उनके विचार से महात्मा रघुवर दास का 'तुलसी चरित' गोस्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डालता तो है, किन्तु गोस्वामीजी के समसामयिक शिष्य बाबा बेनीमाधव का 'गोसाईं चरित' अधिक प्रामाणिक है। वास्तव में डॉ० दास का विश्वास 'तुलसी चरित' से हट गया था।

विवरणाभाव की पूर्ति जन श्रुति से—यद्यपि उन्होंने अपने उस महाकाय एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ हिन्दी भाषा और साहित्य' में स्पष्टतः कहना उचित नहीं समझा जो इंडियन प्रेस से सर्वप्रथम १९८७ वि० में प्रकाशित हुआ था तथापि उसमें उन्होंने 'मूल गोसाईं चरित' को ही महत्त्व दिया है और जब कभी आवश्यकता पड़ी तो विवरण के अभाव की पूर्ति जन श्रुतियों से की। उनका निष्कर्ष रहा कि आत्मारामजी तुलसीदास के पिता थे यद्यपि मूल 'गोसाईं चरित' में पितृ-नामोल्लेख नहीं है। डॉ० दास ने तुलसीदासजी को नरहरि और शेष सनातन दोनों का ही शिष्य माना है और इस बात का भी उल्लेख किया है कि पन्द्रह वर्ष तक विद्या प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे अपने युवाकाल में घर लौट गये थे। किन्तु इस सूचना का आधार मूल गोसाईं चरित' और जन श्रुतियों का सम्मिश्रण है।

खटकने वाली बात—एक बात जो अधिक खटकती है वह है डॉ० दास ने लिखा है कि 'गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' दोनों के ही अनुसार गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ वि० और मृत्यु संवत् १६८० वि० है किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य

है कि 'तुलसी चरित' में तो गोस्वामीजी के जन्म निधन की तिथियाँ विद्यमान नहीं हैं।

परिवर्तन—ऐसा प्रतीत होता है जब डॉ० दास ने १९०३ ई० में रामचरित मानस का सम्पादन किया अथवा १९१६ ई० में उसकी टीका की तो उनकी मनोवृत्ति ग्राहक रूप में थी और जब उन्होंने १९३० में 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ लिखा तो यह वृत्ति प्रालिक और आलोचक रूप को ग्रहण करने लगी। किन्तु जब उन्होंने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रन्थ लिखा जो हिन्दुस्तानी अकादमी से १९३१ में प्रकाशित हुआ तो यह वृत्ति आलोचनात्मक हो गयी। इसमें उन्होंने 'तुलसी चरित' को अस्वीकार और मूल गोसाईं चरित को स्वीकार किया है। उन्होंने प्रथम पुस्तक के विषय में सन्देह उत्पन्न करने के निमित्त बाबू शिवनन्दन सहाय का आधार ग्रहण किया और स्वयं भी लिखा "खेद है कि इस बृहद् ग्रन्थ के एक लाख सैंतीस हजार नौ सौ बासठ उद्धार छन्दों में से हमें केवल अयोध्या खण्ड की बयालीस चौपाइयाँ और ग्यारह दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायणजी ने उक्त लेख में दिया है 'सब उद्धार' छन्दों को जनता के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है। उक्त ग्रंथ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायण के अतिरिक्त और किसी लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति ने नहीं देखा है। सम्भवतः वह इसकी जाँच कराना पसन्द नहीं करते। उक्त विषय के पत्राचार से भी उन्हें आना-कानी है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह ग्रंथ कहाँ तक प्रामाणिक है (पृष्ठ १६)। आगे चलकर डॉ० दास अपने सन्देह की पुनरावृत्ति इस प्रकार करते हैं, 'यह ग्रंथ परम्परा तुलसी चरित में दी गई है पर इसका समर्थन और कहीं से नहीं होता। यह ग्रन्थ भी आलोचकों की दृष्टि से बचा कर रखा हुआ है। इसलिए खेद है कि हम इस परम्परा को मानकर नहीं चल सकते। (पृ २६ २७)। डॉ० दास आगे विचार करते हैं कि 'तुलसी चरित' में यह उल्लेख नहीं कि तुलसीदासजी जन्म के समय असाधारण लक्षणों से सम्पन्न थे अतएव उनके परित्याग का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत् 'चरित' से तो यह प्रत्यक्ष है कि तुलसीदासजी अपने माता पिता के साथ बहुत समय तक रहे थे। किन्तु यह बात स्वयं गोस्वामीजी की उक्ति के विरुद्ध है, अतएव अमान्य है।" (पृष्ठ ३५)

डॉ० दास अपनी धारणा से विचलित हुए प्रतीत होते हैं। रामचरितमानस की टीका में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि तुलसीरामजी और रामदासजी गोस्वामी जी के अध्यापक अथवा गुरु थे; तथाच गोस्वामीजी का पहला नाम तुलाराम था और यदि रामबोला नाम का कोई नाम था भी उसे भगवान् रामचन्द्र ने दिया था (पृ० ३५ ३७)। किन्तु कुछ ही पृष्ठ के अनन्तर वे लिखते हैं कि अनुमानतः रामबोला तुलसीदासजी का पहला नाम था जैसा कि तुलसीदासजी स्वयं अनेक बार इंगित कर चुके हैं। श्री नरहर्यानन्द के विषय में जो कि तुलसीदास के गुरुओं में से एक थे (दूसरे श्री शेष सनातन) डॉ० दास तुलसी-कृत बाल काण्ड के मंगलाचरण का उद्धरण और देवीप्रसाद दास कृत मूल गोसाईं चरित' एवं नाभादास कृत 'भक्त माल' का साक्ष्य उपस्थित करते हैं और डॉ० विवर्तन-द्वारा उपलब्ध उक्त मंगलाचरण को भी

जिसे वे 'रामचरित मानस के सटीक संस्करण की भूमिका के पृष्ठ १९ २० पर अस्वीकार कर चुके थे।

'तुलसी चरित' की तीव्रालोचना—'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार तुलसीदास का विवाह तारीपत के ब्राह्मण की कन्या से हुआ था और उसी के उपदेश से वे विरक्त हो गये थे। किन्तु डॉ० दास कहते हैं कि 'तुलसी चरित' तो उनके विवाह और विरक्ति के विषय में दूसरी ही बात कहता है। यदि हम 'तुलसी चरित' की बात मानें तो यह बात झूठ सिद्ध होगी कि तुलसीदास के माता पिता ने उन्हें त्याग दिया था जैसा कि गोस्वामीजी की ही उक्तियों से स्पष्ट है। अतएव 'तुलसी चरित' मानमीय नहीं। इसके अतिरिक्त रघुवरदास जी ने तुलसीदास की विरक्ति के समय उनका जो वर्णन किया है वह ऐसे व्यक्ति का नहीं प्रतीत होता जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हो गया हो। उनका हृदय तो विरागशून्य प्रतीत होता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति का जिसे बलात् घर से निष्कासित कर दिया हो। उस समय रघुनाथ पंडित ने उन्हें व्यथित भ्रान्त एवं त्रस्त देखा और समझा था और तुलसीदासजी ने भी अपनी पत्नी के बारे में इस प्रकार कहा था 'हे भगवन् मेरी पत्नी का अपराध है जिसके कारण माता भाई तथा सम्बन्धियों से वियोग हुआ है।' इस प्रकार की उक्ति ऐसे व्यक्ति के मुख से निष्कासित नहीं हो सकती जो विरक्ति से प्रपूर्ण हो।

'मूल गोसाईं चरित' के पक्ष में प्रबल तर्क—डॉ० दास ने 'तुलसी चरित' को अस्वीकृत किन्तु 'मूल गोसाईं चरित' को स्वीकृत किया है। यह विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि 'मूल गोसाईं चरित' को केवल इसलिए मान लिया जाय कि वह बाबा बेनीमाधवदास का लिखा हुआ है जिनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे बहुत समय तक गोस्वामीजी के सम्पर्क में रहे थे। तर्क इस प्रकार है 'मूल गोसाईं चरित' इसलिए प्रामाणिक है कि उसके लेखक अपने चरितनायक के साथ चौदह अथवा सत्तर वर्ष तक रहे थे। किन्तु मेरी विनीत सम्मति में इस प्रकार का तर्क पर्याप्त दोष का उदाहरण है क्योंकि यह कैसे सिद्ध हो कि उसके तथा-कथित रचयिता बेनीमाधव दास नाम के कोई व्यक्ति थे और वे सत्तर वर्ष तक गोस्वामीजी के साथ रहे भी थे?

द्वितीय तर्क—एक दूसरा तर्क भी है। 'मूल गोसाईं चरित' में जिन तिथियों का उल्लेख किया गया है वे सभी गणना से ठीक बैठती हैं। वे तिथियाँ भी पंडित गोरेलाल तिवारी की गणना से ठीक उतरती हैं जिन पर नागरी प्रचारिणी पत्रिका में (जिल्द ७ पृ० ३९३ ९८ और ४०१ ४०२) सन्देह किया गया था। किन्तु यह बात कहाँ तक ठीक है इस पर अग्रिम विचार किया जायगा। डॉ० दास स्वयं स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक में कुछ घटनाएँ अप्रामाणिक और असम्भव हैं किन्तु उनके समर्थन में वे कहते हैं कि महापुरुषों के विषयों में चमत्कारों का उदय स्वाभाविक है और शिष्य समुदाय उनमें विश्वास करने लगता है। वैज्ञानिक युग में भी शिष्य अपने गुरु के सम्बन्ध में ऐसा करते देखे जाते हैं फिर बेनीमाधवदास जी की तो बात ही क्या जो उन्नीसवीं शताब्दी के गुरु-भक्त थे और जो अपने गुरु के जीवन चरित का नित्य पाठ करना अपना कर्तव्य समझते थे।

विरोधी पक्ष से कहा जा सकता है कि तथा-कथित बेनीमाधवदास तो

गोस्वामीजी के निकट सम्पर्क में सत्तर वर्ष रहे, अतएव उनको अपने गुरु के सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में, कम से कम उनके उत्तरकालीन जीवन के सम्बन्ध में सत्य ज्ञान होना चाहिए था। प्राप्ति तो उन शिष्यों में होती है जो अपने गुरु के निकट नहीं रहते अथवा गुरु के देहावसान के पश्चात् परम्परा अथवा संप्रदाय में दीक्षित होते हैं। ऐसे ही शिष्य असम्भव चमत्कारों में विश्वास कर उन्हें अपनी भक्ति का केन्द्र बनाते हैं। किन्तु बेनीमाधवदासजी से ऐसी आशा नहीं होनी चाहिए कि वे असम्भव घटनाओं का उल्लेख करते क्योंकि ऐसा करना अपने गुरु के प्रति अपराध समाज के प्रति अन्याय और अपने प्रति प्रवंचना है। वे तो अन्तेवासी थे।

सूकर क्षेत्र के सम्बन्ध में—डॉ० दास ने सूकर क्षेत्र की सत्ता के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं। १९१३ ई० में रामचरितमानस की भूमिका में तथा उस ग्रंथ के उन्नीसवें पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में उन्होंने सूकर क्षेत्र को सोरों माना था। १९२२ ई० में भी रामचरितमानस के सटीक संस्करण की भूमिका के बाइसवें पृष्ठ पर सूकर क्षेत्र को सोरों का जिला माना था सम्भवतः 'सोरों जिला' से उनका तात्पर्य एटा के सोरों से था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पीछे से उन्होंने अपनी धारणा में परिवर्तन कर लिया था। कदाचित् इस विषय में उन पर 'मूल गोसाईं चरित' का प्रभाव पड़ा जिसमें सूकर क्षेत्र को सरयू और घाघरा के संगम पर बताया गया है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का भी प्रभाव इस विषय में उन पर पड़ा और उन्होंने 'रामचरितमानस' के अपने नवीनतम संस्करण (१९४० ई०) में शुक्लजी के शब्दों को इस अभिप्राय से उद्धृत किया है कि सूकर क्षेत्र सोरों नहीं है।

स्पष्टवादिता—डॉ० दास का झुकाव 'मूल गोसाईं चरित' की ओर इस कारण रहा कि उसकी उल्लिखित कतिपय तिथियाँ मिलती हैं। किन्तु १९४० ई० के रामचरितमानस के सटीक संस्करण के पञ्च पृष्ठ पर वे इतना अवश्य मानने लगे कि 'यदि यह बात है तो यह अयोध्या में नहीं रचा गया।' उनके इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि 'मूल गोसाईं चरित' में उनकी आस्था शिथिल हो गई थी किन्तु यह शिथिलता उनकी स्पष्टवादिता की ओर संकेत करती है जो अनुसन्धाता में होनी चाहिए।

(ग) प० रामचन्द्र शुक्ल

गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज मानने पर आपत्तियाँ—पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास को सरयूपारीण ब्राह्मण माना और इस विषय में मिश्रबन्धुओं ने जो आपत्तियाँ उठायी थीं उनका समाधान किया। पहली आपत्ति यह थी कि सम्पूर्ण बाँदा और राजापुर के आस-पास कान्यकुब्ज ब्राह्मण निवास करते हैं सरयूपारीण नहीं अतएव यदि तुलसीदासजी द्विवेदी थे तो वे अवश्य ही कान्यकुब्ज थे। दूसरी आपत्ति यह थी कि गोस्वामीजी का विवाह पाठकों में हुआ था। ब्राह्मणों में पाठक उच्चतम समझे जाते हैं, तत्पश्चात् द्विवेदी। पाठक-कन्या का विवाह द्विवेदी कुल से नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी पुत्री को अपने से नीचे कुल में नहीं देना चाहता। कान्यकुब्जों में पाठक द्विवेदी से नीचे होते हैं और पाठक औचित्य-

पूर्वक द्विवेदी-कन्या से विवाह कर सकता है। किन्तु शुक्लजी इन दोनों आपत्तियों को निराधार समझते हैं। उनका कथन है कि चित्रकूट से जबलपुर तक और उससे भी आगे सरयूपारीण ब्राह्मण निवास करते हैं और चित्रकूट तथा रायपुर के निकट तो ग्राम के ग्राम सरयूपारीणों से संकुल हैं। द्वितीय आपत्ति के सम्बन्ध में शुक्लजी का कथन है कि सरयूपारीण ब्राह्मणों का बच्चा-बच्चा यह जानता है कि सरयूपारिणों में पाठक चौबे और उपाध्यायों की कोटि निम्न है और ऊँची श्रेणी वाले सरयूपारीण उक्त कुलों में अपने पुत्रों का विवाह भी नहीं करते द्विवेदी तो पाठकों से कहीं ऊँचे समझे जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी के इन तर्कों ने मिश्रबन्धुओं के हृदय में घर कर लिया और कुछ नहीं उनके मन में संशय तो उत्पन्न कर ही दिया।

जन्म-तिथि—गोस्वामीजी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में शुक्लजी के विचार डॉ० श्यामसुन्दरदास के विचारों से मेल खाते हैं। अतएव उनकी सम्मति में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं जिसमें गोस्वामी तुलसीदास की जन्म-तिथि का उल्लेख हो। जनश्रुति के आधार पर पण्डित रामगुलाम द्विवेदी ने गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ वि० माना जिसे डॉ० ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है। किन्तु शिवसिंह सेंगर के अनुसार गोस्वामीजी १५८३ वि० के लगभग उत्पन्न हुए थे। पहले संवत् के अनुसार गोस्वामीजी की आयु इक्यानवें और दूसरे के अनुसार सत्तानवें वर्ष ठहरती है। विद्वानों ने अधिकतर १५८९ वि० को ही तुलसीदासजी का जन्म-संवत् माना है। शुक्लजी यह भी सूचित करते हैं कि शिव बालक पाठक काशी के एक विद्वान् थे जो गोस्वामीजी की शिष्य-परम्परावत चौथी पीढ़ी में थे। पाठकजी ने वाल्मीकि रामायण पर संस्कृत टीका की है संस्कृत व्याकरण पर कुछ पुस्तकें रची हैं तथाच 'रामचरित मानस' पर भी मानसमयंक नाम की टीका लिखी है। इस टीका में पाठकजी ने गोस्वामीजी का जन्म-संवत् इस प्रकार दिया है—

> मन[1] ऊपर हर[2] जानिये हर[3] पर दीन्हें एक[4]।
> तुलसी प्रकटे रामवत राम जन्म की टेक॥
> सुने पुरु के बीच हर[5] सन्त बीच मन[6] जान।
> प्रकटे सतहत्तर परे, ताते कहे बिरान॥

अर्थात् गोस्वामी तुलसीदास संवत् १५५४ वि० में उत्पन्न हुए और उन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में अपने गुरु से राम कथा सर्वप्रथम सुनी। तत्पश्चात् उन्होंने वह तब सुनी जब वे चालीस वर्ष के थे। जब गोस्वामीजी सतहत्तर वर्ष के हो चुके थे अर्थात् जब उन्होंने अपनी अवस्था के अठहत्तरवें वर्ष में पदार्पण किया तब उन्होंने रामचरितमानस का प्रारम्भ किया। संवत् १६३१ वि० में वे अठहत्तर वर्ष के थे और संवत् १६८० में संसार से चल बसे। इस प्रकार १५५४ वि० में सतहत्तर जोड़ने से १६३१ वि० संवत की उपलब्धि होती है। यदि १५५४ वें वर्ष को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो मानस रचना के समय गोस्वामीजी की अवस्था अठहत्तर वर्ष की और पूर्णायु १२७ वर्ष की ठहरती है।

शुक्ल जी का तर्क—शुक्ल जी तर्क करते हैं कि एक सौ सत्ताइस वर्ष तक

जीवित रहना असम्भव तो नहीं किन्तु यह सम्भव है कि मानस-मर्मज्ञ के छन्दों का पाठ अशुद्ध हो। यह पता नहीं कि 'तुलसीचरित' के लेखक महात्मा रघुवरदास ने गोस्वामी जी का जन्म-संवत् दिया भी है कि नहीं। इस परिस्थिति में यह विषय और भी संदिग्ध हो जाता है और इस पर निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निश्चयपूर्वक तो इतना ही कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी पोडशी सती के उदर भाग में उत्पन्न हुए और दीर्घजीवी रहे।

जन्म-स्थान—जन्म-स्थान के विषय में शुक्ल जी का कथन है कोई निश्चित प्रमाण नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान तारी या दूसरे कहते हैं कि हस्तिनापुर का किन्तु यह पता नहीं कि यह कौनसा हस्तिनापुर है। लोग यह भी कहते हैं कि यह स्थान हाजीपुर के निकट चित्रकूट है। अन्य लोग कहते हैं कि यह स्थान बाँदा जिले का राजापुर है। बहुमत तारी के पक्ष में है। किन्तु पण्डित राम सुभाग उसे राजापुर घोषित करते हैं। शिवसिंह सरोज मूल गोसाईं-चरित और तुलसी चरित में भी राजापुर लिखा है। राजापुर में तुलसीदास जी का आश्रम और मन्दिर भी विद्यमान हैं। अतएव शुक्ल जी के अनुसार राजापुर को ही गोस्वामी जी का जन्म-स्थान तब तक मानना चाहिए जब तक कोई विरुद्ध-प्रमाण दृष्टिगोचर न हो।

वंशावली—शुक्ल जी उस वंशावली को मानते हैं, जो 'तुलसी-चरित' में दी गयी है। इस के अनुसार तुलसीदासजी के प्रपितामह परशुराम मिश्र थे। इनके पुत्र शंकर मिश्र थे और उनके संतमिश्र और सनाढ्य मिश्र नामक दो पुत्र हुए। सनाढ्य मिश्र के चार पुत्र और दो कन्याएँ थीं। पुत्रों के नाम थे गणपति महेश तुलाराम और मंगल पुत्रियों के थे बाणी और विद्या। तुलाराम ही हमारे चरित नायक गोस्वामी तुलसीदास हैं। पर 'मूल गोसाईं-चरित' और 'तुलसी-चरित' के अनुसार वंश-विवरणों में नितान्त भिन्नता है।

क्या नन्ददास जी चचेरे भाई थे?—शुक्लजी यह मानने को प्रस्तुत नहीं कि महाकवि नन्ददास जी गोस्वामी तुलसीदास जी के चचेरे भाई थे। वे कहते हैं कि 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' के आधार पर यह बात प्रचलित हो गयी है कि 'रासपंचाध्यायी' के रचयिता नन्ददास जी गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई थे। बजनाथ दास ने भी इन्हें एक ही गुरु का शिष्य माना है। किन्तु, शुक्ल जी कहते हैं कि नन्ददास जी तो गोकुल के गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे पर गोस्वामी तुलसी दास के गुरु राम भक्त थे अतः ये दोनों बातें असंगत हैं। 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' में यह भी लिखा है कि तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे। अतएव शुक्ल जी आपत्ति करते हैं कि यह कैसे सम्भव है कि दो व्यक्ति एक ही विद्या-गुरु के और विभिन्न दीक्षा-गुरुओं के शिष्य हों।

विवाह—गोस्वामीजी के विवाह के सम्बन्ध में, डा० श्यामसुन्दर दास की भाँति शुक्ल जी लिखते हैं कि कुछ व्यक्तियों का अनुमान है कि तुलसीदास जी अविवाहित रहे। इस अनुमान का आधार है विनयपत्रिका का वाक्य—'ब्याह न बरेकी बात-पति न चाहत हौं'। किन्तु शुक्ल जी की सम्मति में यह वाक्य इस बात का प्रमाण नहीं कि गोस्वामी जी अविवाहित रहे क्योंकि इसका अर्थ तो यह भी हो सकता है कि 'मुझे

इस समय विवाह की इच्छा नहीं'। इसके अतिरिक्त प्रियादास सबसे प्रथम वे व्यक्ति हैं जिन्होंने 'भक्तमाल' पर अपनी टीका में गोस्वामीजी के विवाह का उल्लेख किया। तत्पश्चात् गोस्वामी जी के प्रत्येक जीवन-चरित में इसका उल्लेख मिलता है। प्रियादास तो तुलसीदास जी के कुछ समय पश्चात हुए थे अतएव हमें यह मान लेना चाहिए, शुक्ल जी लिखते हैं कि तुलसीदास जी का विवाह हुआ था। वे यह भी कहते हैं कि तुलसीदासजी के तीन विवाह हुए और उनकी तीसरी पत्नी कंचनपुर ग्राम के निवासी सदमन उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती थी। इस विषय में शुक्ल जी ने 'तुलसी-चरित' का आधार ग्रहण किया है। 'मूल गोसाईं चरित' में गोस्वामी जी की पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं है, और जनश्रुति तथा सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी की पत्नी दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली थी जिसके कारण वे विरक्त हुए थे। डॉ० दास की भाँति शुक्ल जी पति-पत्नी के आकस्मिक किन्तु विरामोत्तर मिलन सम्बन्धी कथानकों का उल्लेख करते हैं जिनका संग्रह ग्रियर्सन महोदय कर चुके थे।

गुरु—गोस्वामीजी के अध्यापक एवं गुरु के सम्बन्ध में डॉ० दासकी भाँति, शुक्लजी कहते हैं कि तुलसीदासजी ने अपने गुरु के नाम का उल्लेख कहीं नहीं किया है बस 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण में यह उल्लेख है —

बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रबि कर निकर॥

उक्त सोरठे में 'नर रूप हरि' से कुछ लोग उन नरहरिदास का तात्पर्य ग्रहण करते हैं जो तुलसीदास जी के गुरु एवं स्वामी रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से एक थे। ये स्वामी जी १४३० वि० के समयन विद्यमान थे। अतएव ऐसा संभव है कि उनके शिष्य नरहरिदास षोडशी सदी में विद्यमान रहे हों। किन्तु शुक्ल जी का कथन है कि यह केवल 'नर रूप हरि' के आधार पर अनुमान है। 'तुलसीचरित' के अनुसार रामदास जी तुलसीदासजी के गुरु थे अतएव अनुमान की अपेक्षा इस कथन को अधिक महत्व देना चाहिए। शुक्ल जी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि उनका झुकाव इस ओर था कि रामदास जी तुलसीदासजी के गुरु थे किन्तु यहाँ यह निर्देश कर देना उचित होगा कि नरहरि को गोस्वामीजी का गुरु अनुमानमात्र के बल पर नहीं अपितु प्राचीन जनश्रुति के आधार पर, माना जाता है। इस टिप्पणी की आवश्यकता नहीं कि 'तुलसी चरित' का प्रामाण्य सभी को अमान्य है। डॉ० ग्रियर्सन द्वारा अनुसंहित उस वंशावली को जिसका सम्बन्ध रामानन्द नरहरिदास और तुलसीदास से था शुक्लजी इस कारण से नहीं मानते कि शठकोपाचार्य रामानुज से पहले थे किन्तु वंशावली में यह नाम पीछे आया है (पृष्ठ २६ पाद टिप्पणी)। यह आलोचना बड़ी संक्षिप्त है नामोल्लेख का व्यतिक्रम तो कई कारणों से हो सकता है, यथा लिपिकार की असावधानी अपर्याप्त ज्ञान एक ही नाम के अनेक व्यक्ति।

'रामबोला'—हमारे महाकवि का नाम भी विवादास्पद है। शुक्ल जी कहते कहते हैं कि तुलसीदास जी ने स्वयं विनय पत्रिका में लिखा है—

'राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम'। ७६

इससे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का एक नाम रामबोला भी था किन्तु 'तुलसी

चरित' में उनका नाम तुलाराम है जिसको उनके कुलगुरु ने 'तुलसीराम' में परिवर्तित कर दिया यद्यपि विरचित के पश्चात् उनकी प्रसिद्धि 'तुलसीदास' नाम से ही हुई। अतएव शुक्लजी के अनुसार विनय पत्रिका की उक्ति का तात्पर्य तो केवल इतना है कि भगवान् राम ने उनको बुलाया और स्वीकार कर लिया। स्पष्टतः शुक्लजी का मुकाव 'तुलाराम' नाम की ओर रहा। इस विषय में 'तुलसी-चरित' के खण्डन की विशेष आवश्यकता नहीं, किन्तु यह निर्देश कर देना उचित प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी बचपन में 'राम राम' कहा करते थे जिससे उनका नाम 'रामबोला' पड़ गया।

तुलसीदास जी अपने माता-पिता से अलग हुए—कवितावली और विनय पत्रिका में कतिपय ऐसे वाक्य हैं जिनसे यह सन्देह उत्पन्न होता है गोस्वामीजी के माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया या अथवा वे पीछे से उनसे अलग हो गये थे। अतएव शुक्लजी ने गोस्वामीजी के इन वाक्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि—

मातु पिता जग जाइ तज्यो। जनक जननि तज्यो जनमि।

पं० सुधाकर द्विवेदी के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा था कि अशुभ मूल में उत्पन्न होने के कारण उनके माता पिता ने उन्हें त्याग दिया किन्तु यह तर्क भी किया था कि मूल-शान्ति के लिए शास्त्रों में उपाय भी बताये गये हैं और बच्चे इस प्रकार त्याग नहीं दिये जाते। अतएव, शुक्ल जी के अनुसार, 'तज्यो' का अर्थ यहाँ पर यह ग्रहण करना चाहिए कि माता-पिता ने यह देखकर कि तुलसीदास किसी काम-धन्धे में नहीं लगते हैं उन्हें अपने घर से अलग कर दिया अथवा वे उनके शैशव-काल में ही दिवंगत हो गये हों। शुक्ल जी का मुकाव पहली बात के लिए अधिक है और वे विनय पत्रिका से निम्नलिखित उद्धरण उपस्थित करते हैं:

इसारथ के साथिन तज्यो तिवारी को सो दोसक सीचत जननि ज्यों हेरो

'तुलसी-चरित' में भी लिखा है कि तुलसीदास जी अपने माता-पिता के दुर्ग्रहयोग के कारण अलग हुए थे। उनका मत है कि 'जनक जननि तज्यो जनमि' इस वाक्य में 'जनमि' का अर्थ 'जन्म के समय' न करना चाहिए; करना चाहिए 'वे लोग जिन्होंने जन्म दिया हैं'। किन्तु 'जनमि' की इस प्रकार संगति लगाने में शुक्ल जी परम्परागत अर्थ से दूर हो जाते हैं। इस विषय में उनकी कल्पना वही ही क्लिष्ट है जैसी कि 'रामबोला' का अर्थ करने में। इस प्रकार की क्लिष्ट कल्पना का प्रेरक 'तुलसी चरित' है जिससे वे प्रभावित थे।

सूकर क्षेत्र सरयू-घाघरा के संगम पर—शुक्ल जी ने सूकर-क्षेत्र की स्थिति को सरयू-घाघरा के संगम पर बताया है। सूकर-क्षेत्र सोरों है यह कहना शुक्ल जी को नहीं सुहाता। वे इस विषय में अपनी झुँझलाहट को इस प्रकार प्रकट करते हैं "सारे उपद्रव की जड़ है 'सूकर क्षेत्र' को भ्रम से सोरों समझ लिया गया है। 'सूकर क्षेत्र' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है। यहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने आते हैं और मेला लगता है। शुक्ल जी लिखते हैं कि सोरों की ओर सर्वप्रथम इंगित लाला सीताराम ने किया और उसके बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी। यहाँ हमारा निवेदन है कि लोग बहुत काल से सोरों को सूकर क्षेत्र मानते रहे हैं। रामचरित मानस की अतिप्राचीन टीकाओं में सूकर क्षेत्र का तात्पर्य

सोरों से किया गया है। अनेक पुराणों में सूकर क्षेत्र की स्थिति गंगा के किनारे बतायी गयी है। ग्राउज आदि अनेक पश्चिमी विद्वान् भी सोरों को ही सूकर क्षेत्र मानते रहे हैं। पर बाबा सीताराम तो उन व्यक्तियों में हैं जिन्होंने सूकर क्षेत्र को सोरों से हटा कर सरयू-घाघरा के संगम पर बताया है। शुक्ल जी ने संवत् १९८० वि० में काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा-द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग के प्रथम संस्करण की भूमिका के ५४वें पृष्ठ पर, पण्डित महादेव प्रसाद त्रिपाठी के मत का उल्लेख किया है जिन्होंने अपने 'भक्ति-विलास' में सूकर क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। कदाचित् शुक्ल जी को तब यह विदित न था कि उक्त संगम पर भी कोई सूकर क्षेत्र कहा जाता है नहीं तो वे उक्त त्रिपाठी जी को अवश्य आड़े हाथ लेते।

परिवर्तन—ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी जिसे पहले हीरक-ध्वनि समझते थे वह पीछे स्वर्णध्वनि, तत्पश्चात् कोकिल-ध्वनि, सिद्ध हुई। सर्वप्रथम वे 'तुलसी चरित' से प्रभावित हुए, किन्तु 'मूल गोसाईं-चरित' के आविर्भाव से 'तुलसी-चरित' का चमत्कार लुप्त हो गया। अतएव अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में उन्होंने उक्त 'तुलसी चरित' की उस महिमा का त्याग किया जो 'तुलसी ग्रन्थावली' की भूमिका में विद्यमान है। यद्यपि इस संस्करण में स्पष्टतः 'मूल गोसाईं चरित' की प्रशंसा नहीं की गयी है, तथापि उसके बड़े भाई 'तुलसी चरित' की अपेक्षा 'मूल गोसाईं चरित' को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। यह बात उल्लेखनीय है कि शुक्ल जी ने अपने पिछले ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि गोस्वामी तुलसीदास रामदास के शिष्य थे अथवा तुलसीराम उनके कुलगुरु थे। किन्तु वे 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर नरहरिदास और शेष सनातन को तुलसी दासजी का गुरुवतार लगे। जिस 'मूल गोसाईं चरित' की ओर शुक्ल जी अपने इतिहास के प्रथम संस्करण में झुके प्रतीत होते थे उसी को उन्होंने नवीनतम संस्करण में अस्वीकार प्रदान की और जाली घोषित किया।

शुक्ल जी का दृष्टिकोण—अतः शुक्ल जी ने यह अच्छा ही किया कि उन्होंने अपने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रन्थ से गोस्वामी जी का जीवन चरित निकाल दिया। इसके प्रथम संस्करण में जो १९८० वि० में लक्ष्मीनारायण प्रेस से प्रकाशित हुआ था उन्होंने गोस्वामी जी के जीवन-चरित के निमित्त एक सौ सत्तानवें पृष्ठ उपस्थित किये थे किन्तु जब उसका नवीन संस्करण इण्डियन प्रेस (इलाहाबाद) से प्रकाशित हुआ'—तो उन्होंने जीवन-खण्ड को निकाल दिया। १९९७ वि० में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुनः प्रकाशित हुआ और इस संस्करण से यह स्पष्ट नहीं होता कि गोस्वामी जी के जीवन-चरित के सम्बन्ध में शुक्ल जी की निजी धारणाएँ क्या थीं। उन्होंने 'मूलगोसाईं चरित' की स्पष्ट निन्दा की है और वे 'तुलसीचरित' के प्रामाण्य के विषय में भी संदिग्ध प्रतीत होते हैं। यद्यपि शुक्ल जी अपनी आलोचना में बड़े दृढ़ और प्रबल प्रतीत होते हैं तथापि ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि उन्होंने सत्य को अपनाने में संकोच न किया। यदि वे आज जीवित होते और सोरों की समस्त सामग्री का स्वयं अवलोकन कर उसे सत्य पाते तो उसकी भी भूरि भूरि प्रशंसा करते।

भ्रान्त-साहित्य

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन के सम्बन्ध में ६ भ्रान्त पुस्तकें हैं। ये हैं 'तुलसी चरित', 'मूल गोसाईं चरित', '—चटरामायन' 'गोसाईं चरित' 'गोतम चन्द्रिका' और 'तुलसी प्रकाश'। इनमें से प्रथम तीन तो तुलसीदास जी को राजापुर-जात बताती हैं। चतुर्थ और पंचम तुलसी-जन्म स्थान के सम्बन्ध में चुप हैं किन्तु द्वितीय से पंचम तक सभी पुस्तकें सूकरक्षेत्र की स्थिति सरयू-घाघरा के संगम पर बताती हैं। छठी पुस्तक सोरों-सिद्धान्त के अनुकूल होते हुए भी अप्रामाणिक है। अतएव उक्त सभी पुस्तकों का प्रसंग-प्रसंग विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

(क) तुलसी चरित परीक्षण

सूत्र-पात्र और परिचय—श्री इन्द्रदेव नारायण ने प्रयाग से निकलने वाली मर्यादा नाम की मासिक-पत्रिका की ज्येष्ठ संवत् १९६९ की संख्या में एक लेख प्रकाशित कराया जिसमें मिश्रबन्धु-कृत 'हिन्दी नव-रत्न' की विरोधात्मक समालोचना की गयी थी। इसी लेख के मध्य में तुलसी-चरित' नामक एक ग्रन्थ की सूचना इस प्रकार दी गई थी "गोस्वामी जी का जीवन चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुवरदास जी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम तुलसी-चरित है। यह बड़ा ही बृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं—(१) प्रथम (२) काशी (३) मर्यादा और (४) मथुरा इनमें भी अनेक उपखण्ड हैं। इस ग्रन्थ की छंद संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

एक लाख तेतीस हजारा जी सै बासठ छंद उदारा।

यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन-चरित-विषयक नित्यप्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तांत लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवरदासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्री रामचरित मानस के टक्कर की है और यह तुलसी-चरित बड़े महत्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है।"

शिवनन्दन सहाय जी का व्यंग्य—१९२१ में प्रकाशित माधुरी के तुलसी अङ्क के 'गोस्वामी-तुलसीदासजी' नामक लेख में शिवनन्दन सहाय जी तुलसी-चरित' की प्राप्ति पर इस प्रकार विचार करते हैं—

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारण) निवासी बाबू इन्द्रदेव नारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की एक लाख दोहे चौपाइयों में लिखी हुई गोसाईं जी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसका प्रचार न होने का शाप दिया था, किन्तु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय संवत् १९६७

निर्धारित कर दिया। तब तक उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गोसाईं जी को श्री हनुमानजी से मिलने का उपाय बताकर श्री रामचन्द्रजी के दर्शन की राह दिखाई थी। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर में पड़ी रही। एक मुंशीजी उनके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नक़ल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्षोभित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुंशी जी वहाँ से चंपत हो गये। वही पुस्तक किसी प्रकार अवधपुर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम स्वजातीय इस मुंशीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा नहीं करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नक़ल कर ली। तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची और अब आये तो अपने बोरिए बस्ते के साथ दीर्घकाय ग्रन्थ को लेते हुए। इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अभूतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची यह कुछ हमारे संवाद-दाता ने हमें नहीं बताया। जो हो जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ उसके साथ गोसाईं जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। धनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते उल्टे उसके माथे तीन सौ वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया।

मिश्र बन्धुओं और शुक्ल जी का असन्तोष—मिश्र-बन्धु विनोद में मिश्र-बन्धु लिखते हैं 'हम 'तुलसी चरित' को प्रमाण नहीं मानते हैं क्योंकि इस ग्रन्थ को अभी तक किसी एक-आध सज्जनों के और किसी ने नहीं देखा है और उन महाशय ने हम से कई बार वादा करने पर भी उस ग्रन्थ के दिखाने में कोई तत्परता नहीं की।" पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इस बात का उल्लेख 'तुलसी ग्रन्थावली' की प्रस्तावना में करते हैं कि 'इस पुस्तक को और किसी ने नहीं देखा है।

डॉ० दास और बड़थ्वाल की आपत्तियाँ—डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोस्वामी तुलसीदास नामक ग्रन्थ में 'तुलसी चरित' के विषय में इस प्रकार विचार प्रकट करते हैं—"खेद है कि इस बृहद् ग्रन्थ के एक लाख तेंतीस हजार नौ सौ बासठ उद्धार छंदों में से हमें केवल प्रथम खंड की ४२ चौपाइयों और ११ दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी ने उक्त लेख में दिया है। शेष उद्धार छंदों को जनता के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है। उक्त ग्रन्थ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी के अतिरिक्त और किसी सम्प्रतिष्ठ लेखक ने नहीं देखा है। संभवतः वे उसकी जाँच कराना पसंद नहीं करते। उस विषय के पत्रालाप से भी उन्हें आनाकानी है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह ग्रन्थ कहाँ तक प्रामाणिक है। आगे चलकर 'गोस्वामी तुलसीदास' के लेखक कहते हैं 'यह वंशपरम्परा तुलसी चरित में दी हुई है पर इसका समर्थन और कहीं से नहीं होता। यह ग्रन्थ भी आलोचकों की दृष्टि से बचाकर रखा हुआ है इसलिए खेद है कि हम इस परम्परा को मानकर नहीं चल सकते तुलसी चरित वाले कथानक को यदि सत्य मानते हैं तो पिता के द्वारा त्याग दिए जाने की कथा झूठी ठहरती है ---- अतएव तुलसी-चरित की विवाह-सम्बन्धी बातें

मानसीय नहीं है। इसके अतिरिक्त रघुवरदास ने तुलसीदास के घर से वैरागी होने के लिए निकलने पर जो दशा बताई है वह उस व्यक्ति की सी नहीं है, जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हुआ हो। उनका हृदय वैराग्य की अनुभूति से रहित जान पड़ता है। वे घर से जबरदस्ती निकले हुए से लगते हैं। इस समय रघुनाथ पंडित ने उन्हें 'बिलोक आतुर अति भारी' देखा था। इस पंडित से बुद्धिमती के विषय में तुलसीदास ने कहा था—

'अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोड़ाई।

यह ऐसे व्यक्ति का-सा वर्णन नहीं है जिसके हृदय में वैराग्य की अनुभूति हो। तुलसीदासजी का जो रूप उनके ग्रन्थों से प्रफुल्लित होता है वह उसके प्रतिकूल पड़ता है।"

पन्ना मिश्र का बेतुका दावा—'समाजजीवन' के तुलसी-स्मृति अंक में काव्य-कुञ्ज-कुसुमपुष्प पं० रामस्वरूप मिश्र ने भी तुलसीदास के काल्पनिक जीवन-चरित पर एक दृष्टि-पात' किया है। आप लिखते हैं—

'तुलसी चरित में रघुनाथ पंडित और गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रश्नोत्तर विचारणीय हैं। प्रायः अपरिचित व्यक्ति के परिचय के लिए उसका नाम धाम जाति वृत्ति तथा वर्तमान दशा का पूछना ही पर्याप्त होता है, इन बातों के ज्ञात हो जाने पर विशेष बातें किसी विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए ही पूछी जाती हैं, किन्तु रघुनाथ पंडित का साधारण परिचय भी न होते हुए सम्पूर्ण कुटुम्ब का वृत्तान्त पिता की पूर्व पीढ़ियों के साथ ससुराल आदि का परिचय प्राप्त करना अस्वाभाविक है और रघुनाथ पंडित का कथन तो सर्वथा उपहासास्पद ही प्रतीत होता है। 'लखौं चिह्न मिश्रन सम तोरा बिसुचि मंजु मम बोध किशोरा'। तुम्हारे चिह्न मिश्रों के समान देखता हूँ अतः तुमको मैं अपने पवित्र गोत्र का पुत्र अनुमान करता हूँ। यहाँ पर रघुनाथ ने गोस्वामीजी के मिश्र जान पड़ने वाले चिह्न नहीं दिए, शायद उस समय मिश्रों के कोई विशेष चिह्न होते हों जो अन्य आस्पदीय ब्राह्मणों में न पाए जाते हों किन्तु गोस्वामीजी ने अपनी कविता में अपने किन्हीं विशेष चिह्नों का संकेत नहीं किया है न अपने को मिश्र ही लिखा है। उन्होंने तो स्पष्ट रूप से अपना जन्म नक्षत्रों में लिखा है—

'लियो नक्षत्र जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को'

विद्वान् गोस्वामी जी ने रघुनाथ पंडित के प्रश्नों के विस्तृत उत्तर में अपने कुल-गुरु तुलसीराम द्वारा नामकरण रामदास गुरु से केवल तीन वर्ष में समस्त शास्त्र पुराणादि पढ़ना अपनी कुण्डली के ग्रहों के फल विवाह-बहेरू में हजारों रुपये लेना बीच बीच बास माय का अप्रासंगिक वर्णन अपने को धनी विद्यावान् तपस्वी तेजस्वी बुद्धिमान् वचनसिद्ध स्वरूपवान्, गौरवर्ण और विदेह-समान ज्ञानी बताना तथा पिता-द्वारा अपनी माता, भ्राता, भाभी, भावज भतीजे भतीजियों सहित अपना १६ व्यक्तियों के घर से निकाले जाना आदि कहने और न कहने योग्य सभी बातें तो एक अपरिचित पुरुष से बिना पूछे ही कह डालीं।" श्री शिवनन्दनसहाय की भाँति मिश्रजी भी इसबात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि गोस्वामीजी को ६,०००) बहेरू में मिले जो भी तीसरे विवाह में। पर ऐसा प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी को बालकपन में आर्थिक संकट

का सामना करना पड़ा, जैसा कि स्वयं उनकी ही उक्तियों से स्पष्ट है। मिश्रजी की धारणा है कि "वास्तव में यह 'तुलसी चरित' उनके किसी भी शिष्य का लिखा नहीं जान पड़ता यह अवश्य ही किसी स्वार्थसाधक नाना मिश्र का बेतुका गाना है।

पाठान्तर—'तुलसी चरित' 'मर्यादा' के अतिरिक्त 'तुलसी ग्रन्थावली' 'गोस्वामी तुलसीदास' 'रामचरितमानस सटीक' एवं 'तुलसीदास और उनकी कविता' में भी उद्धृत है, जो क्रमशः नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दुस्तानी एकेडेमी इण्डियन प्रेस और हिन्दी मन्दिर, से प्रकाशित हुए। त्रिपाठीजी ने कदाचित् डॉ० श्यामसुन्दर से नकल की है। यह ध्यान देने की बात है कि सभी उद्धरणों में पर्याप्त संशोधन भी हुआ है। अब तक बदल दिए गये हैं और कहीं-कहीं वाक्य-विन्यास में भी अन्तर है। ऐसा न जाने क्यों हुआ है?

अस्पष्ट स्थल—'तुलसी चरित' के अनेक स्थल ऐसे हैं जो अंधकारमय हैं, यथा—

> राजधानि ते जानिए, कोउ बिप्र अरु भूप।
> जन्म भूमि अरु और पुनि प्रगट्यो बौद्ध स्वरूप॥
> बोध स्वरूप बेंडते नारी। उपजत कम नहिं दीन उसारी॥
> जैनाभास चढ़यो मत भारी। रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
> अति आदर करि नृप बसावा। बाम मार्ग पथ सुद्ध चलावा॥
> स्वारथ त्यागि सिव शक्ति उपासी। जिनके प्रगट संभु गिरिवासी॥
> दोहा—राज योग बोध सुद्ध सु एहि हाँहि अनेक प्रकार।
> भये दया पुनीत को, लियो जन्म अवतार॥

ऐतिहासिक व्यतिक्रम—'बौद्ध-स्वरूप' और 'जैनाभास' मत क्या हैं? जैन और बौद्ध धर्म तो गोस्वामीजी की चार ऊँची पीढ़ियों से भी कम से कम एक-एक हजार वर्ष पहले प्रचलित थे। 'बाम मार्ग पथ सुद्ध' क्या है? बाम मार्ग भी बहुत प्राचीन है। अस्तु 'तुलसी-चरित' की निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेषतः विचारणीय हैं—

> पुनि आज्ञा अब गम हेता। किन्हो परम गुरुदेव सचेता॥
> पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रन्था। बहु अम्नाय शास्त्र कर पंथा॥
> दीक्षित ग्रन्थ समय विचारी। पढ़े कृपा गुरु ईश्वर भारी॥
> कौमुदादि महाभाष्य विचारी।
> बरष एक मह अवहिं जोई। पुनि षट् शास्त्रन्त महँ सोई॥
> सकल पुराणकाव्य अवलोकी। तीन बरष महँ भयो विशोकी॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास ने केवल तीन वर्षों में बहुत कुछ पढ़ लिया। एक वर्ष में सब पुराण एक वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण और एक वर्ष में छहों शास्त्र पढ़ लिये। चतुर से चतुर मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता। अष्टादश पुराणों के पारायणमात्र में बहुत समय लग जाता है। सुनते हैं कि अकेला व्याकरण ही बारह वर्षों में समाप्त होता था। गोस्वामीजी असाधारण मनुष्य थे, अतएव विचारार्थ हम मान लेते हैं कि उन्होंने केवल तीन वर्ष में ही सब व्याकरण शास्त्र और पुराण पढ़ लिये।

क्या भट्टोजी और नागेश के व्याकरण रचे जा चुके थे ?—किन्तु एक बात खटकती रहती है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने दीक्षित कौस्तुभ और शेखर पढ़ लिये। ऐसा कदाचित् मान भी लिया जाय कि उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि का महा भाष्य पढ़े थे, क्योंकि वे गोस्वामीजी से कहीं पहले के हैं, यद्यपि तुलसीदासजी की शीघ्र संस्कृत रचना से तो यही प्रकट होता है कि उन्हें संस्कृत व्याकरण का बोध अधिक न था' इस पर आगे प्रकाश डाला जायगा। पर गोस्वामीजी दीक्षित, कौस्तुभ और शेखर किस प्रकार पढ़ सकते थे जब कि ये रचनाएँ गोस्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् संसार को मिली हैं।

भट्टोजी दीक्षित का समय—स्मरण रहे कि सिद्धान्त कौस्तुभ और मनोरमा के कर्त्ता भट्टोजी दीक्षित जगन्नाथ पंडितराज के समकालीन थे अतः वे शाहजहाँ के शासनकाल में विद्यमान थे, जैसा कि श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ने 'हिन्दी रस गंगाधर' की भूमिका के पृष्ठ २२ २४ पर लिखा है जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से इण्डियन प्रेस ने १९८६ वि० में प्रकाशित किया। ए ए० मैकडोनल ने 'ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर' (१९१७-नवीन संस्करण) के ४१२ वें पृष्ठ पर भट्टोजी को सत्रहवीं शताब्दी का माना है। इसी प्रकार काशी-विश्वविद्यालय के प्रो० पं० सीताराम जयराम जोशी और पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज ने अपने 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (पृष्ठ २१४) में भट्टोजी को सप्तदश शतक के प्रारम्भ का माना है। श्री सदाशिव शर्मा जोशी ने स्वसंपादित एवं भट्टोजी दीक्षित-कृत 'प्रौढ़ मनोरमा' के प्रस्ताविकम् (१९२८ ई०) के चतुर्थ पृष्ठ पर भट्टोजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

'अस्य कर्त्तारःपूज्यपादाः खिस्ताब्दमानेन १६६० आगिरसेन्दु परिमिते संवत्सरे काशीनगरी-नास्तव्या महाराष्ट्र-ब्राह्मणा भट्ट-कुलावतंसाः श्री भल्लक्षमीधर पंडितवर-तनूजन्मानः श्रीमच्छेष-कृष्णामिश्रपुरोन्धरजाजुराचन-समासादित-बहुधी-मूर्धिताः सुगृहीतनामधेयाः दिक्षाकारिभिमचन-दीक्षिताः भट्टोजी दीक्षिताः इति विदितमेव समेषां विदुषाम्।

इससे स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६६० ईसवी में प्रकाश में आये थे।

नागेश भट्ट का समय—महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद और वासुदेव शर्मा पणशीकर ने 'रसगंगाधर' का संपादन १९१६ ई० में किया जिसमें उन्होंने नागेश भट्ट के विषय में इस प्रकार लिखा है—

अत्र पंडित-राजाद् द्वितीयः पुरुषो नागेश आसीदिति ज्ञायते। पूर्वं निर्णीतेः आसन्ने जगन्नाथपण्डितराज-समये १६६६ खिस्ताब्दे पुरुषद्वय-पर्याप्तानि चत्वारिंशद् वर्षाणि भोग्यन्ते चेत्तदा १७०६ खिस्ताब्दोऽयमासन्नो नागेश समयः समायाति। अत्र च जयपुर-महाराजाः श्री सवाई जयसिंह जयसिंहोऽपरनेव प्रसंगे नागेश-भट्टाय निमन्त्रणपत्रं प्रहितवन्तः। तदा नागेशेन 'अहं शेष-संन्यासं गृहीत्वा काश्यां स्थितोऽस्मि अतस्तां परित्यज्यान्यत्र गन्तुं न शक्नोमि'। इत्युत्तरं प्रहितम् एषा किंवदन्ती जयपुरेऽपुनाऽपि प्रसिद्धास्ति। श्री जयसिंह महाराजाश्च १७१४ खिस्ताब्दे ऽपरनेव इतवन्तः इत्युक्तमेव प्राक्। अयमपरमेवसंवत्सरोऽपि पूर्वोल्लिखित १७०६ खिस्तसंवत्सरात्पूर्वेति खिस्ता

श्रीकाष्ठ्यदस-सतक-प्रथम-तुरीयांशे नागेश भट्ट आसीदिति व्यक्त मेव ।"

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६३० ई० में प्रकाश में आये किन्तु सभी उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार गोस्वामीजी १६२३ ई० (अर्थात् १६८० संवत् वि०) में विद्यमान हुए थे। नागेशभट्ट-कृत 'परिभाषेन्दुशेखर' 'बृहच्छब्देन्दुशेखर' और 'लघुशब्देन्दुशेखर' तो और भी पीछे (अठारहवीं शताब्दी) की कृतियाँ हैं। अतः स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने तो 'सिद्धान्त कौमुदी' के कर्ता भट्टोजी दीक्षित और भट्ट नागेश कृत शेखरों के नाम भी न सुने होंगे पढ़ने की तो बात ही क्या ?

संस्कृत व्याकरण का साधारण ज्ञान—गोस्वामीजी के संस्कृत-ज्ञान की चर्चा कदाचित् अप्रासंगिक न होगी। 'रामचरितमानस' के श्लोकों की रचना देखने से अनेक विद्वानों की सम्मति अब तक यही रही है कि तुलसीदासजी संस्कृत-भाषा के साधारण पंडित थे *। वे बहुश्रुत एवं असाधारण पौराणिक थे किन्तु 'शेखर,' 'मनोरमा' आदि के ज्ञाता अथवा भाष्यान्त वैयाकरण नहीं थे, जैसा कि 'तुलसी-चरित' के लेखक ने लिखा है। गोस्वामीजी की संस्कृत रचना में कई अशुद्धियाँ हैं। आप प्रयोग कहकर इन त्रुटियों का भी समाधान किया जा सकता था यदि ये अशुद्धियाँ स्वल्पसंख्यक होतीं और गोस्वामीजी कालिदास आदि कवियों से पहले होते। किन्तु ऐसा नहीं। पद संख्या के देखे त्रुटियाँ कुछ अधिक और इतनी स्पष्ट हैं कि थोड़ा सा संस्कृत ज्ञान रखने वाला भी उन्हें सहज में जान लेता है। इससे इनके केवल साधारण संस्कृत-पाण्डित्य की पुष्टि होती है।

व्याकरण-व्यतिक्रम के उदाहरण—मानस के संस्कृत पद्यों की अशुद्धियाँ इस प्रकार हैं—

अयोध्या काण्ड के तीसरे श्लोक में 'सीता समारोपित वाम भागम्' लिखा है। यहाँ सप्तम्यन्त का पूर्व निपात होने से 'वामभाग समारोपितसीताम्' ऐसा पाठ होना चाहिए।

अरण्य काण्ड में 'नमामि भक्तवत्सलम्' यह अधिकृत स्तव है। इसमें कई प्रयोग खटकते हैं—

निषंगचापसायकं धरम्'—यहाँ 'निषंगचापसायकधरम्' ऐसा होना चाहिए।

मुनीन्द्र सन्त रंजनम्'—इसमें 'सन्त' शब्द का प्रयोग लौकिक व्यवहार के अनुसार है। व्याकरण से 'सत्' अथवा 'सज्जन' होना उचित है।

'त्वमेकमद्भुतं प्रभुम्'—यहाँ 'त्वम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए।

ततोऽहमुर्विजापतिम्'—यहाँ 'उर्विजा' के स्थान पर 'उर्वीजा' होना चाहिए।

'प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे'—इसमें 'ते' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए। और यदि 'ते' का सम्बन्ध 'पदाब्ज भक्ति' के साथ लगाया जाय तो

---

* मंगला-चरण और ग्रन्थ की समाप्ति में कुछ श्लोक शुद्ध संस्कृत के भी रखे हैं जिससे यह प्रकट होता है कि ये संस्कृत के ज्ञाता थे परन्तु संस्कृत के अच्छे कवि नहीं थे और संस्कृत व्याकरण में कच्चे थे—राम चरितमानस (सं० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित) इंडियन प्रेस, १९१५, पृष्ठ ७१-७२

हि वॉज नेवर ए गुड संस्कृत स्कॉलर एण्ड सम ऑफ हिज वर्क्स डू नॉट इवन बियर दि टेस्ट ऑफ ए सेकेंड क्लास मिनेरिश्यल स्कॉलर्स।—डॉ० ए० ए० मैकडॉनेल साइंसलोपीडिया ऑफ रलिजन एण्ड इथिक्स।

भी 'भक्ति' शब्द का निर्विभक्तिक प्रयोग चिन्त्य है। 'पदाब्जभक्तिम्' पाठ होना संगत है।

'नरादरेण ते पदम्'—यहाँ 'नरा' आदरेण' ऐसा पाठ होना चाहिए। सन्धि करने पर विसर्गों का लोप हो जायगा किन्तु दुबारा सन्धि नहीं हो सकती।

'त्वदंघ्रिमूल ये नरा'—यहाँ 'मूल' के स्थान पर 'मूलं' होना चाहिए।

किष्किन्धा-काण्ड के प्रथम श्लोक में 'विज्ञान धामों' के स्थान पर 'विज्ञान धामानौ' होना चाहिए। 'धाम' शब्द अकारान्त नहीं अजन्त है।

सुन्दर काण्ड के प्रथम श्लोक में 'ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यम्' पाठ है। 'ब्रह्मा' शब्द आकारान्त नहीं अजन्त है। समास में 'न्' का लोप हो जाने से 'ब्रह्मशम्भुफणीन्द्र सेव्यम्' होना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे श्लोक में हनुमान् जी की स्तुति में 'अतुलित बल धामम्' के स्थान पर 'अतुलित बलधामानम्' पद होना उचित है।

लंका काण्ड के तीसरे श्लोक में 'शंकरः सं तनोतु माम्' में 'माम्' का प्रयोग ठीक नहीं है। इसके स्थान पर 'मे' की आवश्यकता है।

'कोशलेन्द्र पद कंजमंजुलौ'—यहाँ 'पद' का निर्विभक्तिक प्रयोग व्याकरण सम्मत नहीं है। 'पद' शब्द नपुंसक लिंग है (पदं व्यवसितित्राण स्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु—अमरकोष) अतएव 'कोशलेन्द्र पदे' होना चाहिए और उसके विशेषणों में सर्वत्र नपुंसक लिंग का प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'कंज मंजुले'। अथवा अमरकोष पर भानुजी दीक्षितकृत 'व्याख्यासुधा' नामक टीका में पदोंघ्रिपदवरेणोप्रस्त्रियाम् के विवरण में उपन्यस्त 'स्वामी तु पदोंघ्रि' इति पठन्नकारान्तं न मन्यते' इस वाक्य के अनुसार 'पद' शब्द को पुल्लिंग भी माना जाय तो भी 'कोशलेन्द्रपदौ' तो होना ही चाहिए।

'मन भू पसंगिनी'—यहाँ 'मन' शब्द को अकारान्त माना गया है जबकि उसे सकारान्त होने के कारण 'मनोभू पसंगिनी' पाठ होना चाहिए।

'कुन्द-इन्दु-वर-गौर-सुन्दरम्'। यह अवश्य ही समासान्त पद है। समास में संधि नित्य होती है, किन्तु इस पद में व्याकरण के इस नियम का उल्लंघन स्पष्ट है। 'कुन्देन्दुवरगौर सुन्दरम्' ऐसा पाठ होना उचित है।

'काल्पीक कलकंजलोचनम्'—इसमें 'काल्पीक' शब्द के स्थान पर 'कालिक' होना चाहिए। पाणिनि के ४।४।६१ सूत्र के अनुसार कला और ठक् के संयोग से 'कालिक' शब्द ही सिद्ध होता है और कोष में भी ऐसा ही प्रयोग है (स्याद् दयालु कालिकः कृपालु सुरतः समाः अमरकोष ३।१।१५)

इसी काण्ड में छप्पय नामक प्रसिद्ध सुन्दर स्तुति है। इसमें व्याकरण की कई अशुद्धियाँ हैं। 'अघ सूसनिर्मूलनम्' को 'सूसनघनिर्मूलनम्' अथवा 'निसूसनिर्मूलनम्' होना चाहिए।

'पुरारी'—यह शब्द ईकारान्त नहीं है अपितु इकारान्त है।

'नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्'—इसमें 'शम्भु' के स्थान पर 'शम्भो' और 'तुभ्यम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए।

'प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी'—यहाँ 'मन्मथारे' का प्रयोग अपेक्षित है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसीदास और उनकी कविता' में अयोध्या काण्ड

के दूसरे श्लोक में 'मम्मे' शब्द की ओर ध्यान आकर्षित किया है वह संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'मम्मौ' होना चाहिए।

'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्मे वनवास दुःखतः।'

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के निम्नलिखित श्लोक में 'तोषये' शब्द आया है जो संस्कृत व्याकरणानुसार 'तुष्टये' होना चाहिए।

खाण्डवक मिदं प्रोक्तं विप्रेण हर तोषये
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भु प्रसीदति।

निष्कर्ष—अतः स्पष्ट है कि गोस्वामीजी को संस्कृत-व्याकरण का ज्ञान साधारण था, और उन्होंने व्याकरण का विशेष अध्ययन न किया होगा। सम्पूर्ण 'तुलसी-चरित' जैसा कि अनेक विद्वानों ने लिखा है जनता की दृष्टि से बचा हुआ है। यदि वह वास्तव में पूरा-पूरा विद्यमान है, तो सम्भव ही है कि वह अभी तक गुप्त निधि बना हुआ है क्योंकि यदि वह पूरा प्रकाशित होता तो उसमें विद्वानों को कदाचित् और भी असंगत बातें मिल जातीं किन्तु जैसा भी उपलब्ध है वह अपने वास्तविक रूप का द्योतक है। न तो उसकी भाषा परिमार्जित है और न उसकी बातें ही इतिहास के अनुकूल हैं। उसकी अप्रामाणिकता तो स्वयं-सिद्ध है।

(ख) मूल गोसाईं चरित

आलोचना

प्रथम उल्लेख—ठाकुर 'शिवसिंह सेंगर ने शिवसिंह सरोज' में गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित के विषय में लिखा है कि "इनके जीवन चरित्र की पुस्तक बेनीमाधवदास कवि पसका ग्राम निवासी ने जो इनके साथ रहे, बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं।" सेंगरजी ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५८३ लिखा है पर बाबा बेनीमाधव-कृत 'मूल गोसाईं चरित' में १५५४ इस प्रकार दिया गया है

पन्द्रहसौ चउवन बिषें, कालिंदी के तीर
सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर।

इससे प्रतीत होता है कि सेंगरजी ने बाबाजी की उक्त रचना देखी न थी नहीं तो वे गोस्वामीजी का जन्म संवत् स्वतन्त्र रूप से निश्चित न करते।

प्राप्ति की लालसा—शिवनन्दन सहायजी 'श्री गोस्वामी तुलसीदासजी' में (पृष्ठ १२६ पर) सूचित करते हैं कि बेनीमाधवदासजी के गोसाईं चरित की "प्राप्ति और पाठ के लिए गोसाईंजी के अनुरागी लोग बड़े ही लालायित हैं। सहायजी की आशंका सत्य निकली लालसाएँ पूर्ण हुईं।

मूल गोसाईं चरित के लिए खोज—बहुत खोज करने पर भी सर जॉर्ज ग्रियर्सन एफ० एस० ग्राउज एवं ग्रीव्स आदि तुलसीचरितान्वेषी महानुभावों को बाबा बेनीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं-चरित उपलब्ध नहीं हुआ। विद्यावारिधि पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र अपनी सटीक रामायण की भूमिका में लिखते हैं—"सुनते हैं कि

बेनीमाधवदास कृत एक गोसाईं-चरित ग्रन्थ है जो गोस्वामीजी के समय में ही रचा गया है परन्तु वह भी इस समय नहीं मिलता है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के विद्वान संपादकों ने श्रीरामचरित-मानस का शुद्ध संस्करण संपादित करते समय गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि पर विचार करते हुए लिखा है—"सबसे प्रामाणिक वृत्तांत बताने वाला ग्रन्थ बेनीमाधवदास कृत गोसाईं चरित है जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में किया है परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ कहीं मिलता है और न शिवसिंह सरोज-कार ने ही उसका संक्षिप्त वृत्तांत अपने ग्रन्थ में लिखा है।'

प्राविर्भाव—उन्नाव के वकील पं० रामकिशोर शुक्ल ने स्व-संपादित रामचरित मानस के प्रारम्भ में उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर १९२५ ई० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित कराया था, पर उक्त चरित की प्राप्ति पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। इसके पश्चात् १९३१ ई० में डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इसे 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तक में परिशिष्ट रूप दिया जो प्रयाग की हिंदुस्तानी एकाडेमी से प्रकाशित हुई है। यह 'चरित' 'मानसांक' के साथ गीता प्रेस गोरखपुर से और रामायणी श्रीरामबालक दास संशोधित 'श्री तुलसीदास कृत रामचरित मानस सटिप्पण' के साथ सेठ लक्ष्मीचंद छोटे लाल के द्वारा भी बम्बई पुस्तकालय, अयोध्या, से प्रकाशित हुआ। कब ? इसका कुछ पता नहीं क्योंकि इस पर संवत् नहीं छापा गया है। पुस्तक प्राचीन नहीं। कदाचित् यह उल्लेख उचित होगा कि "श्रीयुत गोस्वामी तुलसीकृत रामायण सम्पूर्ण लेपक सहित' पं० रामभद्र ने शुद्ध की और हरिप्रसाद अहीरवजी ने बम्बई के नवलेश्वर छापेखाने में सं० १९३९ में मुद्रित की और परमहंस सीताशरणजी की आज्ञा से लक्ष्मीचन्द छोटेलाल ने प्रकाशित की। इस पुस्तक में 'तुलसी-चरितामृत' की गद्य-पद्य मयी भूमिका है जो अधिकांश में 'मूल गोसाईं चरित' के अथवा 'गोसाईं चरित' के विषय से मेल खाती है। यही नहीं इसमें कई स्थानों पर 'मूल गोसाईं चरित' के छंद ज्यों के त्यों मिलते हैं, किन्तु यह कहीं भी नहीं बताया गया है कि ये छंद 'मूल गोसाईं चरित' के हैं अथवा बेनीमाधवदासजी के।

भूमिका—प्रस्तुत मूल गोसाईं चरित से विदित होता है कि—

'संवत सोलहसौ असी, असी गंग के तीर,
श्रावण-श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।"

और

"सोरहसौं उनतीस सित, नवमी कातिक—मास,
लिख्यो यहि हित पाठ हित बेनीमाधवदास।"

अर्थात् सं० १६८० में श्रावण की श्यामा तीज शनिवार को काशी में असी गंगा के तट पर गोस्वामी तुलसीदास ने शरीर त्याग किया और सं० १६८९ में कार्तिक शुक्ला नवमी को उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' नित्यपाठ करने के लिए बाबा बेनीमाधवदास ने लिखा और 'इमि यादव माधवबेनि उभय चित्सुख करनय आनंद-सदय' इस उक्ति के द्वारा यह प्रकट किया है कि बाबाजी १६०९ वि० के लगभग चित्रकूट पर गोस्वामीजी

सत्संगी जन-समुदाय में थे। अतः, स्पष्ट है कि वे गोस्वामीजी के समकालीन ही नहीं
प्रत्युत निकटवर्ती भी थे और उनके पश्चात् कम से कम सात वर्ष तक जीवित रहे।
सी दशा में बाबा-वाक्य को ही प्रमाण समझना उचित प्रतीत होता परन्तु खेद है,
क यह गहन विचार के पश्चात् सत्य की कसौटी पर नहीं टिकता।

गोस्वामीजी की जन्म-तिथि और जन्म-स्थान—उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' में
बाबा वेणीमाधवदास लिखते हैं

"बदए तुलसी उबबाट हिते।"

"सुकुली सतपाल सुखी सुखिया रहिमापुर राजपूत सुखिया।
तिनके घर हाहस आस परे जब कर्क के जीव हिमांसु धरे।
कुज सप्तम अष्टम भानु-तनय अभिजीतित सनि सुन्दर सीध समय।'

ऐसे सरवार, पतेवी (पत्नीजा) ग्राम निवासी पराशर गोत्रीय, कुरुवे आस्पदीय
ब्राह्मण कुल में यमुना-तटस्थ भूवन के पुरवा में, रहिमापुर के राजपूत की धर्मपत्नी
हुलसी की दक्षिण कुक्षि में १२ मास निवास कर संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ला ७
शनिवार को सायंकाल रहिमापुर में गोस्वामीजी ने जन्म लिया। उनके जन्म-समय
अभिजित नक्षत्र था और जन्म-पत्र में मंगल सप्तम तथा शनि अष्टम स्थान में एवं
कर्क के गुरु और चन्द्र थे। खेद की बात है कि जहाँ घरा-घरा बात का उल्लेख है
वहाँ गोस्वामीजी के पिता के नाम पर शून्य ही दिखाया गया है। यदि बाबाजी
गोस्वामीजी के संबंधी और समकालीन थे तो क्या वे उनके पिता के नाम का पता
नहीं लगा सकते थे? जनता में पुत्र की प्रसिद्धि पिता के नाम से होती है न कि
माता के नाम से। यदि बाबाजी गोस्वामीजी के पिता का नाम जानते होते तो उसका
उल्लेख करने से कभी न चूकते।

बाबा वेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५५४ में लिखा है और
देह-त्याग सं० १६८० में इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की आयु १२६ वर्ष की
होती है। जितेन्द्रिय वीतराग योगी महात्माओं की आयु इतनी या इससे भी अधिक हो
सकती है, परन्तु इस गणना से सं० १६३१ में, जबकि उन्होंने रामचरित मानस लिखा
था उनकी अवस्था ७७ वर्ष की होती है। इस अवस्था में रामचरित-मानस जैसे बृहत्
काव्य-ग्रंथ का निर्माण करना असम्भव प्राय जान पड़ता है क्योंकि इस अवस्था में
बल स्फूर्ति और स्मृति का ह्रास होना स्वाभाविक है।

जन्म-मुहूर्त—वेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी की जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी
शनिवार के सायंकाल में अभिजित् का होना लिखा है, किन्तु गणित से यह असत्य है
न तो उस दिन और न जन्म के समय ही अभिजित् नक्षत्र था। प्रतीत होता है उक्त
लेखक ने किंवदंतियों का आश्रय लिया अथवा कल्पना का। कदाचित् उन्हें गोस्वामीजी
की पूर्व जन्म पत्री का ज्ञान न था, यदि होता तो वे नवग्रहों के बदले केवल चार
ग्रहों के उल्लेख से ही सन्तोष न कर लेते, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है, वे अपने
ग्रंथों में घरा-घरा सी बातों का उल्लेख करते पाये जाते हैं।

अन्य तिथियों का उल्लेख—बाबा वेणीमाधवदास ने निम्नलिखित छः और
ऐसी तिथियों का उल्लेख किया है जिनकी परीक्षा गणना के द्वारा सम्भव है। वे हैं

माघ शुक्ला पंचमी को सरयू के तीर पर उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर और उन्हें अपना शिष्य बना वहाँ दस मास रहे। अब तुलसीदास ८ वर्ष ४ मास के हो गये थे। वहाँ से चलकर नरहर्यानंदजी और तुलसीदास सूकर-क्षेत्र आये और ६ वर्ष तक रहे। तुलसीदास १३ वर्ष ४ महीने के हो गये। फिर उन्होंने १५ वर्ष तक काशी एवं चित्रकूट में शेषसनातनजी से विद्याध्ययन किया और वे २८ वर्ष ४ मास के हो गये। विद्याध्ययन के पश्चात् वे अपने जन्म-स्थान को गये। २८ वर्ष १० मास के वय में उनका विवाह हो गया।

निष्कर्ष—इस प्रकार बेनीमाधवदासजी के लेखानुसार तुलसीदासजी को जन्म से विवाह तक किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होना चाहिए था। मुनिया अन्नपूर्णा पार्वती नरहर्यानंदजी एवं शेषसनातनजी इन्हीं चार व्यक्तियों ने तुलसीदासजी का पुत्र से भी अधिक स्नेह के साथ पालन-पोषण एवं शिक्षण किया। तुलसीदासजी को बाल्यकाल से द्वार द्वार जाकर दीन होकर जाति-कुजाति के टुकड़े खाने की आवश्यकता ही कब पड़ी, और कितने समय तक? पर गोस्वामी जी लिखते हैं

बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
जाति के सुजाति के पेटहि-पेट
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो। (कवितावली)
"दुखो ललात इस पात जाति करि सोच बाढ़ कोटों कनें।" (गीतावली)
"हा-हा करि दीनता कहो द्वार-द्वार बार-बार दुखी न द्वार।
बसन-बसन बिनु बावरी जहँ तहँ उठि धायो जैसे बायो।
(विनय-पत्रिका)

बाबा बेनीमाधवदासजी भी स्वर में स्वर मिलाते लिखते हैं—

"डोलत सो बालक द्वार-द्वार, बिलोकि तेहि बिधरत हिये।

किन्तु वे यह स्पष्ट नहीं करते कि ऐसा कब हुआ? तुलसीदास की देख भाल के लिए जब स्वयं भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वती-चिन्तित थे तब तो ऐसी कल्पना मिथ्या प्रतीत होती है। मुनिया के पश्चात् देवी पार्वती फिर नरहर्यानंदजी तत्पश्चात् शेषसनातनजी पर तुलसीदासजी के भरण-पोषण का भार रहा। क्या तुलसीदासजी इतने अकृतज्ञ थे कि वे अपने उपकारकों को एकदम भूल गये? यदि वे तुलसी का जिसका सुख उन्होंने नहीं देखा उल्लेख कर सकते थे तो उस मुनिया का भी करते जिसके पास वे पाँच वर्ष तक पुत्रवत् रहे और जो तुलसीदास को प्रसन्न रखने में कोई बात उठा नहीं रखती थी (जेहि ते बिधु रीझ हि सोद करै)।

सूकर-क्षेत्र की स्थिति—बाबा बेनीमाधवदास ने सूकरक्षेत्र की स्थिति सरयू घाघरा के संगम पर बतायी है:

"बहुत कथा इतिहास बहु आए सूकर-क्षेत।
संगम सरयू घाघरा संत जनन सुख देत।"

यह पुराण-प्रसिद्ध सूकरक्षेत्र के साक्ष्य तथा अन्य प्रमाणों के विरुद्ध है जैसा कि इस

ग्रंथ में अत्यन्त विस्तार से स्पष्ट किया जायगा।

तुलसी के गुरु—बाबा बेणीमाधवदास के अनुसार तुलसीदासजी के दो गुरु थे। वे लिखते हैं कि गोस्वामीजी गुरु नरहर्यानंद के साथ सूकरक्षेत्र से काशी आये। वहाँ शेषसनातनजी ने नरहर्यानंदजी से गोस्वामी तुलसीदास को चारों वेद, छः शास्त्र आदि पढ़ाने के लिए माँग लिया, और गोस्वामीजी भी उनसे १५ वर्ष पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो गये

विचरत, विहरत मुदित मन आये काशी धाम।
परम गुरु सुखधाम वर, आय कीन्ह विश्राम।

× × ×

तेहिहीं हते शेषसनातन कू गुरु दुरंत पुरा जन कू।

× × ×

तिमि रीति यह बहु ये जबही, पुर स्वामि सों सुन्दर बात कही।
निज शिष्यहि देहु मोहि मुनी, तिसुबुद्धि बुनी नहिं ज्ञानधुनी।
हों ताहि पढ़ावहुं वेद चहूं सब आगम दर्शन पाठ चहूं।

× × ×

"बहु पंडह्न अब जहाँ रहिकै पढ़ि आवत सर्व महिके माहिके।

आश्चर्य है कि भगवान् शिव की पसन्द के गुरु नरहर्यानंदजी कैसे निकले और शेषसनातनजी की आवश्यकता पड़ी। दूसरा आश्चर्य है कि स्वयं तुलसीदासजी भी अपनी कृतियों में शेषसनातनजी का उल्लेख करना भूल गये। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में जहाँ गुरु की महिमा एवं वन्दना लिखी है वहाँ उन्होंने केवल 'कृपासिंधु नर-रूप हरि' अर्थात् गुरु नृसिंह का ही उल्लेख किया है शेषसनातनजी का नहीं। क्या गोस्वामीजी ऐसा पक्षपात कर सकते थे?

मृगयावतोरण—बाबा बेणीमाधव लिखते हैं कि लक्ष्मण-पहाड़ी की गुफा में गोस्वामीजी निवास करते थे पुनः नरहर्यानन्द स्वामी की सम्मति से वे गुफा में से निकल कर सजे हुए मचान पर बैठकर नित्य सत्संग करते, विहार देखते तथा मृगया के कौतुक का अवलोकन करते थे

नित नित विहारहु देखत हैं मृगया कर कौतुक पेखत हैं।

किन्तु तुलसीदासजी जैसे कोमल-हृदय भक्त को मृगया का दृश्य रुचिकर प्रतीत होता होगा इसमें सन्देह है।

प्रियादास और नवल का आगमन—बाबा बेणीमाधव लिखते हैं कि संवत् १६०६ वि० में चित्रकूटस्थ तुलसीदास के पास श्री हितहरिवंशजी ने वृन्दावन से अपने शिष्य प्रियादास और नवल को भेजा। उन्होंने आकर जुहार किया और गुरु हितहरिवंशजी की दो हुई यमुनाष्टक राधासुधा-निधि एवं राधिका-तन्त्र-महानिधि नामक पुस्तकें और जन्माष्टमी की लिखी एक पत्रिका भेंट की। उसमें लिखा था हे वत्स महाराज की रजनी आ रही है, मेरा चित्त घोर लगता रहा है मैं शरीर को त्यागना चाहता हूँ मुझे आप आशीर्वाद दें तो मैं कुछ शान्त करूँ।

सुनि बिनती मुनिमान, एवमस्तु इति भाखेउ।
तनु तजि भए तमाय नित्य-कुंज प्रवेश करि।

अर्थात्, तुलसीदास ने इस विनती को सुनकर एवमस्तु कहा और हितहरिवंश जी नित्यकुंज में प्रवेश (शरीर-त्याग) कर समाध हो गये। किन्तु प्रथमतः सं० १६२२ वि० तक हितहरिवंशजी के जीवित रहने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि "ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी सं० १६२२ के समय आपके शिष्य हुए थे" जैसा कि पं० रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखते हैं। द्वितीयतः हितहरिवंश जी राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे उन्हें तुलसीदासजी से अनुत्थान की आज्ञा अथवा आशीर्वाद की क्या आवश्यकता पड़ी थी?

सूरदासजी का आगमन—बाबा बेनीमाधवदास सूरदासजी के विषय में लिखते हैं

सोरह सौ सोरह लगे, कामदगिरि ढिग बास,
सुनि एकांत प्रवेश महँ आए सूर सुदास।
बरए गोकुलनाथजी कृष्ण रंग में बोरि,
कवि सूर विलायेउ सागर को सुनि प्रेम कथा नटनागर को।
दिन सात रहे सतसंग-पगे, पद कंज गहे जब आन लगे।
महि बाँह गोसाँई प्रबोध किए, पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिए।

अर्थात् सं० १६१६ लगते ही कामदगिरि के समीप वास करते हुए तुलसीदासजी के पास (ब्रजभूमि से) श्री गोकुलनाथजी के द्वारा कृष्ण-रंग में बोरे और पगे हुए सूरदास जी आये। उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया और वहाँ सात दिन रहकर चलते समय गोस्वामीजी के चरण छुए। तब गोस्वामीजी ने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिए दिया। संवत् १६१६ में श्री गोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे और सूरदासजी ७६ वर्ष के। वे तो कृष्ण रंग में पहले ही रंगे हुए थे और वे वृद्धावस्था में ब्रज को छोड़कर कहीं जाते न थे नेत्रांध भी थे। डा० ब्रजेश्वर वर्मा को भी यह वृत्तान्त प्रमाण है।[1]

याज्ञवल्क्यजी से साक्षात्कार—बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार, सं० १६२८ में हनुमान्जी ने प्रसन्न होकर गोस्वामीजी से कहा कि तुम अयोध्या में आकर रहो। आज्ञानुसार गोस्वामीजी अयोध्या चल दिये। मार्ग में तीर्थराज प्रयाग पड़ा। वहाँ मकर-स्नान के पर्व का आरम्भ था। उस पर्व के ६ दिन पश्चात् वट की छाया में गोस्वामीजी ने दो मुनि देखे और दूर से ही उन्हें प्रणाम किया। उनमें से एक ने गोस्वामीजी को अपने पास बुलाया। वे भूमि पर ही बैठ गये। परस्पर परिचय हुआ। वहाँ वही राम-कथा हो रही थी जो तुलसी-गुरु ने सूकर-क्षेत्र में कही थी। इससे विस्मित होकर गोस्वामीजी ने मुनि से गुप्त-मत पूछा तब याज्ञवल्क्य मुनि ने बताया कि यह कथा शिवजी ने भवानी और काकभुशुंडि से कही एवं काकभुशुंडि से मैंने सुनी, पुनः मैंने भरद्वाज को सुनायी। इस प्रकार संतुष्ट हो गोस्वामीजी उस दिन

---

१ सूरदास पृष्ठ ४१

वहाँ से चले आये। वे पुनः उसी स्थान पर गये परन्तु वहाँ न तो वट की छाया थी और न वे दोनों मुनि ही इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ :

तेहि अवसर उत्तम बरन लागी मकर नहान
योगी, यती तपी सती, जुरे सयान-अयान।
तेहि पर्ब ते काशे गए दिन छै, बट छहि तरे जू लखी मुनि हैं।

× × ×

सोइ राम कथा तेहु होत रहो गुप सूकर खेत में औन कहो।
विस्मय-पुत कुम्भज गुप्त मता कहि जाज्ञवलिक मुनि दीन्ह बता।
हर रंचि जवानिहि दीन्ह सोई पुनि दीन्ह भुशुंडिहि तत्त सोई।
हौं आइ मुनुडि तें ताहि लहेउँ, भरद्वाज मुनी प्रति आई कहेउँ।

दूसरे मुनि कौन थे, कुछ पता नहीं। गोस्वामीजी और ऋषि याज्ञवल्क्य का साक्षात्कार खूब हुआ! सोचने की बात है, कब याज्ञवल्क्य और कब तुलसीदास!

राम जन्म-योग—बाबा बेनीमाधवदास लिखते हैं—

राम-जन्म तिथि बार सब जस त्रेता-युग मास।
तस पकतीसा महु जुरे, योग लग्न ग्रह रास।

अर्थात् त्रेता युग में राम-जन्म के समय जो तिथि, वार, योग लग्न ग्रह, राशि आदि एकत्र हुए थे वे ही सम्वत् १६३१ वि० की चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार को भी एकत्र हुए थे। यदि बाबा बेनीमाधवदास को यह बात ज्ञात थी तो गोस्वामीजी को भी अवश्य होती। यदि ऐसा होता तो गोस्वामीजी 'मानस' का आरम्भ करते समय तिथि, वार आदि के साथ-साथ इस बात का भी उल्लेख अवश्य करते, और बड़े गौरव से। ज्योतिष के किसी विद्वान् ने भी अभी तक यह बात ज्ञात नहीं की।

केशवदासजी से साक्षात्कार—बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार, संवत् १६४२ के लगभग तुलसीदासजी काशी के असी-घाट पर थे तब कवि केशवदास उनसे मिलने गये और एक ही रात्रि में उन्होंने 'रामचन्द्रिका' रचकर गोस्वामीजी को दिखायी

कवि केशवदास बड़े रसिया, मनस्यान सुमुख मन के बसिया।
कवि जानि के दर्शन हेतु गए रहि बाहर सूचन भेज दिए।

× × ×

रचि रामचंद्रिका रातिहि में जुरे केशवदास अति जातहि में।

परन्तु केशवदासजी स्वयं अपनी रामचंद्रिका में लिखते हैं

सोरहसै इकतालीसै कातिक सुदि, बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीनी अवतार।

अर्थात् १६४८ वि० के कार्तिक शुक्ल बुधवार को रामचंद्रिका अवतीर्ण हुई। बाबा बेनीमाधवदास पुनः लिखते हैं कि सं० १६४९ या १६५० के लगभग गोस्वामी जी को दिल्ली जाते समय ओरछा में कवि केशवदास के प्रेत ने उन्हें घेरा तब वे गोस्वामीजी की कृपा से बिना प्रयास प्रेत-योनि से मुक्त हो विमान पर चढ़कर स्वर्ग गये। पर कवि केशवदास ने संवत् १६५७ में विज्ञान-गीता और १६६६ में वीरसिंह-

भक्त-मंजिका की रचना की थी। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल केशवदासजी का जन्म संवत् १६१२ वि० में और मृत्यु १६७४ वि० के आस-पास मानते हैं।

नाभाजी से भेंट—बाबा बेनीमाधवदास गोस्वामीजी की ब्रज यात्रा के विषय में लिखते हैं कि तुलसीदासजी नाभाजी के साथ प्रसन्नतापूर्वक मदनमोहनजी के मंदिर में गये और श्री मदनमोहन ने उन्हें राम भक्त जानकर, धनुष-बाण धारण कर दर्शन दिया

> विप्र संत नाभा-सहित हरि-दर्शन के हेतु
> गए गोसाईं मुदित मन मोहन मदन-निकेत।
> राम-उपासक जानि प्रभु तुरत धरे-धनु-बान
> दर्शन दिए सनाथ किए, भक्तवछल भगवान।

प्रथमतः ध्यान देने की बात है कि नाभाजी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे डोम थे; किन्तु बाबा बेनीमाधवदास उन्हें 'विप्र-संत' लिखते हैं। द्वितीयतः दो-सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता में लिखा है सो नंददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हुते सो काशी सों नंददासजी कूं मिलिबे के लिए ब्रज में आए। जब नंददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करिबे कूं गए तब तुलसीदास हूं उनके पीछे गए। जब श्री नंददासजी ने मन में विचार कीनो यहां और गोकुल में हूं इनकूं श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराऊं, तब वे श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानेंगे। जब श्री नंददासजी ने श्री गोवर्धननाथजी सों विनती करी, सो दोहा

> आज की शोभा का कहूं अति विराजो नाथ!
> तुलसी मस्तक तब नवें, धनुष-बाण लेओ हाथ।

"जब श्रीगोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्र को रूप धरके तुलसीदास कूं दर्शन दिए तब तुलसीदासजी ने गोवर्धननाथजी कूं साष्टांग दंडवत करी।"

क्या नंददासजी कान्यकुब्ज थे?—संपूर्ण वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति ने नंददासजी की प्रार्थना पर धनुर्धर राम का रूप धारण कर गोस्वामीजी को दर्शन दिया था। यह भी ज्ञात होता है कि तुलसीदासजी महाकवि नंददास के जो सनाढ्य ब्राह्मण थे बड़े भाई थे और अपने छोटे भाई से ब्रज में मिलने आये थे। बाबा बेनीमाधव ने उक्त घटना का विशेष उल्लेख नहीं किया वे लिखते हैं

> नंददास कवीसिया प्रेम-मढ़े जिन प्रेम सनातन तीर पढ़ें।
> सिखा-सूत्रवन्त भए तिहि ते अति प्रेम सों आय मिले गहि तें।

अर्थात् नंददास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे देवसनातन जी के पास पढ़े थे। वे गुसाईं थे, अतः वे आकर प्रेमपूर्वक तुलसी से मिले। देवसनातनजी की सृष्टि और नंददासजी को सनाढ्य से कान्यकुब्ज बनाना यह सब क्यों? स्यात् इस कारण कि 'श्री गोसाईं चरित' के लेखक मयाशंकरदासजी ने श्री बरेली वाले नंददास और रामपुर वाले नंददास को भूल से एक समझ लिया था

> कान्यकुब्ज कुल विप्र नगर कनउज निवासी,
> श्रीगोसाईं सुत बंधु रहे श्रीकृष्ण उपासी।
> नंददास सुखधाम स्वयंभू इत पद लग पावै,
> और कुटुम्बी विप्र नगर (?) नहिं आवै।

विविध भाँति इरिषा करहिं, पार न पावै पंच मैं।
तब मृतक माइ निसि दास द्विज डारि मूषा कलेक है॥
भोर भये अपराध माइ सब निसि दिज घेरे,
कपमान होइ दास भक्त बरतन तन हूरे।
अब प्रभु कहु बिलाइ लाख बाने की करिये,
होइ भजन को मान भेष हम सोसति टरिये।
कमलाकर माइ बिचाइ तब दास मुजस जग बिस्तर्यो।
यत दास भाँति सब सेत हूँ जानि भक्त चरनन पर्यो॥
तब ते अधिक सर्मेव होइ कर कृष्न पुन गान
आनन्द सो बिचरत रहै मंदबास सुध-ग्यान।
सुनि आयमन गोसाईं की बृंदावन मों आइ
मिले पुलकि अति प्रेमसे आनँद उर न समाइ।
यह सुनाइ करि भेंट तहँ कियो हास मुसकाइ
लोला कृष्न बहुत करी राम अरप पुन माइ।
तब कर जोरि बिनै कह्यो बिबस दास अब दास,
तात बात सोंवहि कहु जोहि मति करि बिस्वास।
प्रथमहि तुम हो पर करेउ मंदबास अस नाम,
दसरथ दास न क्यों कह्यो रह्यो तिन पुन गाम।
दास कीन सरकार को कर दीन्हो तुम मोहि,
ताहि बजो इह-भेस करि यहै कृपा अब होहि।
सुनिकै अधिक प्रसन्न हूँ बिपुल प्रसंसा कीन्ह
इह (मन) भजन करो सदा बहुसिष आसिष दीन्ह।

पर स्वयं नाभादासजी ने कृष्ण-मूर्ति का राम-मूर्ति में परिवर्तित होने की और तुलसीदास को अपने सामने दर्शन देने की अद्भुत एवं अलौकिक घटना का वर्णन अपने ग्रन्थमाल में नहीं किया।

विद्वानों की सम्मति—यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि कतिपय प्रसिद्ध विद्वान् अब तक 'मूल गोसाईं-चरित' के विषय में क्या लिख चुके हैं। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (जिल्द ८, सं० १९८४ वि० पृष्ठ २२-२५) में डॉ० श्यामसुन्दरदास ने कुछ विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख किया है। यद्यपि रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'मूल गोसाईं-चरित' की प्रशंसा की है तथापि उन्होंने तुलसीदासजी की जन्म तिथि पर संदेह प्रकट किया है। रायबहादुर बाबू हीरालाल भी इस चरित की ओर झुके तो प्रतीत होते हैं, किन्तु वे इस प्रकार लिखते हैं "यह सत्य है कि देवीमाधव की सभी बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। उन्होंने अपने गुरु की महिमा इतनी बढ़ाई है कि उन्हें मुर्दा जिलाने, लड़की का लड़का बना देने आदि की शक्ति दे दी है।" स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"इसमें वर्णित अधिकांश घटनाएँ सत्य जान पड़ती हैं। अलौकिक और अनुष्यातीत जितनी बातें इसमें हैं उनकी सत्यता में सन्देह होता है।'—सर जॉर्ज ग्रियर्सन लिखते हैं— खेद है कि उन्होंने

(पं० रामकिशोर शुक्ल ने) इस बात की सूचना नहीं थी कि यह हस्तलिखित पुस्तक जिसका जिन्होंने सम्पादन किया कहाँ विद्यमान है और यह किस दशा में है "इस समय मैं मितियों के विषय में ज्योतिष-गणना करने में असमर्थ हूँ।"

पाठकजी की सम्मति—पंडित बीकर पाठक उक्त लेख में लिखते हैं कि "हमारी समझ में वेणीमाधव के मूल गोस्वामी-चरित में जो सामग्री गोस्वामीजी के सविशेष जीवन-चरित के लिए अधिकांश में प्रामाणिक और उपयोगी है केवल जन्म-संवत् की और जन्म-संवत् से रामगीतावली के संकलन के पूर्व तक की घटना काल दिये हैं उनकी सत्यता संदिग्ध प्रतीत होती है। यह कथन कि गोस्वामीजी का साहित्यिक जीवन उनकी ७४ वरस की उम्र में आरम्भ हुआ और ११८ वरस की वयस तक प्रवर्तित रहा—विश्वसनीयता की सामान्य सीमा के परे पहुँचता प्रतीत होता है। मरण-संवत् की प्रामाणिकता में संदेह का अवसर नहीं अतः निष्कर्ष निकलता है कि जन्म-सम्बन्धी दोहा मरण-सम्बन्धी दोहे के बाद उसकी नकल में बनाया गया है। तीर्थाटन समाप्त करके जब गोस्वामीजी चित्रकूट में बरसों के लिए बस गए तब उनके दर्शनार्थ दूर-दूर से साधु, महात्मा आदि आने लगे। उनमें वृन्दावन के हितहरिवंशजी के भेजे हुए उनके प्रिय शिष्य नवलदास जी थे जिनके हाथों उन्होंने 'यमुनाष्टक' 'राधा सुधानिधि' और 'राधा लग्न' की पुस्तकें नव संवत् १६०६ की जन्माष्टमी को लिखी हुई अपनी पत्नी के गोस्वामीजी की भेंट को प्रेषित की थीं। फिर सं० १६१६ में गोकुलनाथजी की प्रेरणा से गोस्वामीजी से मिलने महात्मा सूरदासजी आए और अपना प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ सूर-सागर उनको दिखाने के लिए साथ लाए। तदनन्तर मीराबाई के पत्रवाहक पत्र के आने का उल्लेख है। इस स्थल पर प्रश्न उठता है कि ये सब साहित्यिक संघर्ष की विशिष्ट घटनाएँ गोस्वामीजी के साधुत्व के कारण हुई थीं अथवा साधुत्व-सहवर्ती कवित्व की प्रसिद्धि उनका हेतु थी? क्या उनसे यह आभासित नहीं होता कि तुलसीदासजी ने ७४ वर्ष की उम्र के बहुत पहले साहित्यिक कर्मण्यता के साथ संपर्क स्थापित कर लिया था और जिस समय उन्होंने 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' का संकलन और रामचरितमानस का निर्माण किया था उस समय वे संवत् १६२४ के जन्मे बीस बरसवाली पुराने विशिष्टेतिहास, बीर्य-बीर्य बरस नहीं थे? मरण-तिथि जो मूल चरित में दी हुई है, ठीक मानी जा सकती है क्योंकि मूल चरित के कर्ता बाबा वेणीमाधवदास गोस्वामीजी की मृत्यु के समय उनकी सेवा में उपस्थित रहे होंगे परन्तु उपनयन विवाह, स्त्री-त्याग राम-दर्शन, सूरदास-आगमन, टोडरमल-मृत्यु इत्यादि घटनाओं की तिथियाँ बाबाजी को कहाँ से और कैसे प्राप्त हुईं? कहा जा सकता है कि जन्म-तिथि गोस्वामीजी के जन्म-पत्र से ली गई होगी या स्वयं गोस्वामीजी से मालूम हुई होगी; परन्तु क्या जन्म होते ही माता-पिता के त्यागे गए बालक का जन्म-पत्र बनाया गया होगा और जन्म-पत्र के अभाव में गोस्वामीजी को अपने जन्म के नक्षत्र, दिवस, तिथि संवत् का ठीक ज्ञान होगा? सम्भव है, पशोपवीतादि घटनाओं के संवतों का उनको ठीक ज्ञान रहा हो परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सब घटनाओं के संवत् वेणीमाधवदास को गोस्वामीजी से प्राप्त हुए थे। अब 'मूल चरित' के सम्बन्ध में कुछ वाङ्मय-विवेचना

अपेक्षित प्रतीत होती है। यह कहा जाता है कि इसके रचयिता बाबा बेनीमाधवदास गोस्वामीजी के पट्ट शिष्यों में थे और उनकी सेवा और सहवास में चिरकाल तक रहे थे। परन्तु एक महाकवि के सत्संग का साहित्यिक दृष्टि से उनको कोई प्रशंसनीय फल नहीं मिला, क्योंकि मूल-चरित सारा का सारा अनेक दोषों से परिप्लुत है। तोटक छन्द का उसमें अधिक बाहुल्य है और उसी छन्द में छन्दोभंग का प्रचुर प्राचुर्य है। सिवाय दोहों के शेष सभी छन्द रचनाएं न्यूनाधिक अशुद्ध हैं। पृष्ठ २० पर जो एक छाद्द सविवेचित किया हुआ है वह छन्द करके अभिहित है। हरिगीतिका को भी यही नाम प्राप्त है। आश्चर्य है कि जिन गोस्वामीजी ने 'निर्धन भाट तमोदरहि आछिय है कवि कीन्ह' उनकी शिष्यता में बरसों रहने पर भी बेनीमाधवदास को आदरणीय कविता बनाने की योग्यता प्राप्त नहीं हुई। प्रतीत होता है कि प्रकाशित होने के पहले मूल-चरित में कुछ संशोधन किये गए हैं।

मिश्रजी की सम्मति—रायबहादुर पंडित सुकवि बिहारी मिश्र की आलोचना इस प्रकार है—"इसकी साखी अनेकानेक अंशों में इतनी असम्भव और भ्रष्ट है कि इसके किसी अंश पर भी विश्वास करना बड़े ही अज्ञानी पुरुष का काम है। बेनीमाधव के 'मूल गोसाईं-चरित' में ओर से छोर तक असम्भव घटनाओं की भरमार है। कुछ उदाहरण लीजिए—

"(१) गोस्वामीजी जन्म के समय ही पाँच वर्ष के थे। वे रोए नहीं और पृथ्वी पर गिरते ही उन्होंने 'राम' कहा। उनके उसी समय बत्तीसों दाँत मौजूद थे।

"(२) जन्म-समय में पाँच वर्ष के होते हुए भी गोस्वामीजी ६५ महीनों में बोलने और डोलने के योग्य हुए। क्या दस वर्षों की आयु होकर बेचारे चल सके? राम नाम तो जन्म के समय ही लिया था फिर बोलने योग्य होने के लिए ६५ महीनों की कैसे आवश्यकता पड़ी!

"(३) बोलने-डोलने के योग्य तो ६५ महीनों में हुए, किन्तु यज्ञोपवीत १० की ही अवस्था में हो गया।

(४) उनकी स्त्री उन्हें पहले तो कुवाच्य कहकर उनके वैराग्य का कारण बनी, किन्तु पीछे से जब बनाने से वे वापस न हुए तो पुरुष बन गई। इस प्रकार लोग मरकर फिर नहीं पड़ा करते हैं। अन्य जातियों ने इसी स्त्री का बहुत पीछे गोस्वामीजी से साक्षात्कार लिखा है, जिसमें कई दोहों में बातचीत लिखी है। वे कुछ दोहे भी तुलसीकृत हैं।

"(५) मीराबाई संवत् १६०३ ही में मर चुकी थीं किन्तु उनका पत्र सं० १६१६ में गोस्वामीजी के पास आना लिखा है। काल विरुद्ध दूषण है।

"(६) सं० १६२८ में पहले-पहल ७४ वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी का जन्म-निर्धारण लिखा है। इतना बड़ा पंडित तथा सुकवि इतनी बड़ी अवस्था तक एक भी ग्रन्थ न बनाये और चार-छः बड़े ग्रन्थ बुढ़ापे में रच डाले—ऐसा मानना बड़े ही भोले आदमी का काम है।

(७) भगवान् की मूर्ति ने भोजन कर लिया तथा पत्थर से मनीषन ने

पास आ गी। जब इससे भी ज्यादा पास आने तब कोई समालोचक बीसवीं शताब्दी में ऐसे अनर्गल वाद को सच्चा साक्षी समझे।

'(८) केशवदास ने रामचन्द्रिका एक ही रात में बना डाली। ग्रन्थ में प्रायः ४० अध्याय हैं और पूरा ग्रन्थ अच्छे पद्यों में है। इतना बड़ा ग्रन्थ एक ही रात में बन गया—यह बड़ा ही असम्भव कथन है।

'(९) ब्राह्मणों ने सीधे के मार्ग में गोस्वामीजी का अपमान किया जिससे वे निर्धन हो गए। ठाकुर सितिपाल प्रणाम न करने से कंगाल हो गया तथा बुलाहट भेद देने से विपुल धन-धान्य पा गए। बादशाह जहाँगीर करामात दिखलाने का शौकीन होने से बानरों द्वारा पीड़ित हुआ।

"(१०) गोस्वामीजी ने एक चरित्र-मोचक शिला उत्पन्न कर दी तब एक स्त्री को पुरुष बना दिया। वास्तव में बेनीमाधवजी की निद्रा के आगे कोई बाई-बंदक नहीं है। ऐसे ही लोग असम्भव के उदाहरण में दस हाथ की हरड़ वाला कथन करने वाले कवि को भी मात करते हैं।

'(११) एक मरा हुआ मुर्दा आपने उसकी स्त्री के कारण जिला दिया। तीन लड़के आपका एक दिन दर्शन न पाकर मर ही गए और आपने उन्हें तुरन्त जिला भी दिया।

इस असम्भव एकादशी का वर्णन केवल तीस पृष्ठ के छोटे से ग्रन्थ में प्रस्तुत है। हनुमानजी तो गोस्वामीजी के पीछे ही पीछे फिरा करते थे और रामचन्द्र तथा महादेवजी ने भी इन्हें दर्शन दिए। ऐसे अनर्गल वादी का एक भी कथन एक मिनट के लिए भी विचारने योग्य नहीं। केवल तिथि-संवत् आदि लिखने से किसी अनर्गल एवं असम्भव-वादी के कथन प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकते। इस ग्रन्थ का कोई भी भाग मान्य नहीं है।

वाशिक जी—नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अष्टम भाग (सं० १९८४) में पंडित मायाशंकर वाशिक ने भी कुछ महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला है

(क) "संवत् १५१६ में गोकुलनाथजी की आयु केवल ८ वर्ष की थी। गोकुलनाथजी के पिता गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्वयं वहीं पर विराजमान थे। गोकुलनाथजी के तीन भ्राता भी मौजूद थे। सूरदासजी रहते थे विट्ठलनाथ के पास थे। फिर उनका पत्र न लेकर एक आठ वर्ष के बालक का पत्र लेकर सूरदासजी का आना संभव नहीं प्रतीत होता। बाबा बेनीमाधवदास ने इस सम्बन्ध में गोकुलनाथजी का नाम लिखने में कदाचित् भूल की है।

(ख) "नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट के विषय में जिस रीति से वर्णन 'मूल गोसाईं चरित' में किया गया है वह भी विचारणीय है। यद्यपि इस भेंट का कोई संवत् गोसाईं-चरित में नहीं दिया गया है फिर भी जिस क्रम से वर्णन किया गया है, उससे पाया जाता है कि बाबा बेनीमाधवदास के कथनानुसार यह भेंट संवत् १६४९ के पश्चात् हुई होगी क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास संवत् १६४९ में विट्ठलनाथ के मुकुल से मिले थे। उसके बाद सौरों वाराह विसिरिख होकर रामपुर पहुँचे और वहाँ से चलकर वृन्दावन आए और वृन्दावन में नन्ददासजी से मिले थे। इसलिए यह भेंट

१६४९ के बाद ही गोसाईं-चरित के अनुसार हुई होगी, परन्तु '२५२ वैष्णवन की वार्ता' से पाया जाता है कि नन्ददासजी का वैकुण्ठवास १६४९ से बहुत पूर्व हो चुका था। वार्ता में लिखा है कि तानसेन से नन्ददासजी का एक पद सुनकर अकबर ने नन्ददास जी से मिलने की इच्छा प्रकट की और उनको बीरबल द्वारा श्रीगोवर्द्धन में बुलवाया। नन्ददासजी की देह वहीं छूटी थी। जब यह समाचार विट्ठलनाथजी को विदित हुआ तो उन्होंने नन्ददासजी की बड़ी सराहना की थी। इससे स्पष्ट है कि नन्ददासजी की मृत्यु गो० विट्ठलनाथ और बीरबल दोनों से पहले हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ का गोलोकवास सं० १६४२ में और बीरबल का स्वर्गवास सं० १६४० के आसपास हुआ था। नन्ददास जी का देहावसान इससे भी पहले हुआ था। फिर गोसाईं चरित में सं० १६४९ के पश्चात् नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट होना लिखा गया है, यह ठीक नहीं मालूम होता है। २५२ वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर कुछ लोग नन्ददासजी को तुलसीदास का भाई मानते थे। वार्ता में नन्ददासजी को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है। वार्ता के देखने से उसमें किसी दूसरे सनाढ्य तुलसीदास का वर्णन नहीं पाया जाता किन्तु गोस्वामीजी का वर्णन पाया जाता है।

(ग) "केशवदासजी के प्रेत-योनि से छुड़ाने का जो समय गोसाईं चरित में लिखा है वह ठीक नहीं है। गोसाईं-चरित में लिखा है कि दिल्ली से बादशाह का सवाल गोस्वामीजी को बुलाने आया था। दिल्ली जाने के समय केशवदास को गोसाईंजी ने प्रेत-योनि से छुड़ाया था' दिल्ली से लौटकर काशी आने के कुछ समय बाद संवत् १६६९ की वैशाखी पूर्णिमा को गोस्वामीजी के मित्र टोडरमल की मृत्यु हुई थी। अतः केशवदास को संवत् १६६९ के पूर्व ही गोस्वामीजी ने प्रेत-योनि से छुड़ाया होगा परन्तु संवत् १६६९ तक केशवदासजी का जीवित रहना निश्चित है। इस संवत् में उन्होंने 'जहाँगीर यश-चन्द्रिका' निर्माण की थी।

(घ) "संवत् १६७० के अन्त में जहाँगीर का गोस्वामी से मिलने आना लिखा है, यह भी जाँच से ठीक नहीं ठहरता है। संवत् १६७० से बहुत पहले से गोस्वामीजी का अखंड वास काशी में ही था। इसलिए यदि जहाँगीर गोस्वामीजी से मिलने आया होगा तो काशी ही में आया होगा परन्तु जहाँगीरनामे के देखने से पाया जाता है कि संवत् १६६९ की चैत बदी ११ से आश्विन सुदी २ संवत् १६७ तक तो जहाँगीर आगरे ही रहा। इस मिति को अजमेर के लिए रवाना हुआ और अगहन सुदी ७ को वहाँ पहुँचा था। पाँच दिन कम तीन वर्ष अजमेर में रहकर कार्तिक सुदी ३ संवत् १६७३ को दक्षिण की ओर रवाना हुआ था। संवत् १६७० या उसके तीन वर्ष बाद तक जहाँगीर आगरा प्रयाग काशी की ओर रहा ही था कि गोस्वामीजी के काशी में अखण्ड वास करते हुए उनसे मिलने आया। गोसाईं चरित में संवत् १६७० के अन्त में उसका गोसाईंजी से मिलने आना लिखा है वह मानने योग्य नहीं है।"

डॉ० गुप्त—'मूल गोसाईं-चरित की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार' नामक लेख में डॉ० माताप्रसाद गुप्त निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालते हैं—

(क) हितहरिवंशजी ने (बेनीमाधवदास के अनुसार) १६ ९-वि० की महारास रजनी अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को शरीर त्याग किया

निश्चित है कि उनका देहान्त १६०९ वि० में नहीं हुआ क्योंकि ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यासजी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे।

(ख) नाभाजी को 'विप्र-संत' कहा गया है किन्तु नाभाजी डोम कहे जाते हैं। मन्दिर-दर्शन के विषय में बेनीमाधवदास और '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में सामंजस्य नहीं।

(ग) बेनीमाधवदास के अनुसार उदयसिंह को १६२९ वि० में साही सभाओं में सम्मान मिला किन्तु इतिहास-लेखकों का मत है कि सम्मान न उदयसिंह को मिला, न प्रतापसिंह को　　१६२८ वि० में उदयसिंह की मृत्यु हो गई।

(घ) बेनीमाधवदास के अनुसार टोडरमल के घर का बटवारा उनके दो लड़कों के बीच हुआ किन्तु पंचनामे से प्रतीत होता है कि वे चाचा-भतीजे थे।

त्रिपाठी जी—पं० रामनरेश त्रिपाठी सटीक रामचरित-मानस की भूमिका में लिखते हैं—"शिवसिंह (सेंगर) ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया है, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम यह हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन कागज पर लिखकर या लिखवाकर चतुर व्यापियों को तुलसीदास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का सुअवसर मिल गया।" 'मूल गोसाईं चरित' को मैं 'एक नव-निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है उसके एक-एक शब्द और मुहावरों पर विचार किया है, तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है। 'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा मुझे तीन-सौ वर्ष पुरानी मालूम नहीं होती। एक साधारण पुस्तक है, ढेर-जिम्मेदारी के साथ जो कुछ उसके मसाले में से निकला या निकलवाया गया वे-सिर-पैर के पन्नों में लिखकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिए? "मूल गोसाईं-चरित' हमें अप्रमाणिक और असत्य बातों से भरा मिलता है। हम उसे गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित के लिए बिल्कुल ही विश्वास-योग्य नहीं मानते, वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ जान पड़ता है। संभव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन अयोध्या हो।'

'तुलसीदास और उनकी कविता' नामक ग्रन्थ में त्रिपाठीजी इस प्रकार विचार करते हैं: 'उसकी भाषा तीन सौ वर्षों की पुरानी नहीं मालूम होती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

एक बार कही तेहि अवसर में काहू देव दुलाहट हैं घर में।

"हमें इस 'दुलाहट' के हठ को देखकर संदेह हुआ था, क्योंकि 'हट' प्रत्यययुक्त शब्द जैसे—घबराहट मुस्कराहट, चिल्लाहट आदि बहुत प्राचीन नहीं हैं कब से कब मुझे किसी प्राचीन कवि की कविता में अभी तक नहीं मिले। हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' को प्राचीन नहीं मानते।' "सत्यं शिवं सुन्दरं" ने तो मूल-चरित के आधुनिक रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया है। 'सत्यं शिवं सुंदरं' संस्कृत का प्राचीन वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों के हिन्दी-वाक्यों में इतने

प्रवेश पाया है। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे कलिस्त चेले की क्या बिसात थी जो इस वाक्य तक पहुँचता।

तुलसी—पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' * में इस विषय पर विचार किया है। उनका कथन है कि अयोध्या में एक ऐसा निपुण दल है जो समय-समय पर पुस्तकें प्रकट कराता रहता है। उनकी सम्मति में 'सत्यं शिवं सुंदरं' अंग्रेजी के 'द ट्रुथ द गुड द ब्यूटिफुल' का अनुवाद है जो ब्रह्म-समाज के द्वारा बंगाली साहित्य में और फिर हिन्दी में प्रविष्ट हुआ।

निष्कर्ष—तथ्य यह है कि 'मूल गोसाईं-चरित' परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरा है, भाषा और इतिहास की दृष्टि से भी खरा नहीं है। यह जिस समय का रचा हुआ बताया जाता है उससे कहीं पीछे का है। चमत्कारों असम्भवों घटनाओं और इतिहास-व्यतिक्रमों ने तो इसकी मौलिकता का अपहरण कर लिया है।

(ग) 'घट रामायन' की आलोचना

संस्करण—'घट रामायन' नामक पुस्तक हाथरस वाले तुलसी साहब की कृति बताई जाती है। इसका सर्व प्रथम प्रकाशन मुंशी देवीप्रसाद साहब उर्फ देवी साहब ने तत्पश्चात् रा० रायबहादुर बाबेश्वर प्रसाद ने 'अथम' उपनाम से कतिपय प्रतियों के आधार पर उसे संशोधित कर बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से १९११ ई० में प्रकाशित किया। तब से इसके तीन संस्करण हो चुके हैं। मेरे सामने १९३२ का चौथा संस्करण है।

तुलसी साहब का जीवन चरित—उक्त संस्करण में तुलसी साहब का जीवन-चरित भी सम्मिलित है। इससे पता चलता है इनके पिता ने इनका नाम श्यामराव रखा था। इनके छोटे भाई थे पेशवा बाजीराव द्वितीय और इनकी स्त्री का नाम था लक्ष्मीबाई। यद्यपि इनके पिता इन्हें ही गद्दी देना चाहते थे तथापि स्वभावतः विरक्त होने के कारण गद्दी पर बैठने के एक दिन पहले ही वे घर छोड़कर भाग गये। इनकी बड़ी खोज हुई, पर जब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर (पिता ने) राज्य को त्याग किया और अपने कुँवर बाजीराव को गद्दी पर बैठाया। तुलसी साहब कितने ही बरसों तक जंगलों पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हजारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में लगाया और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहीं अपना सत्संग जारी किया। घर से निकलने के बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव से बिठूर (जिला कानपुर) में मिले थे जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर संवत् १८७६ में भेज दिये गये थे। तुलसी साहब के उत्पन्न होने का संवत् 'सुरत बिलास' में नहीं दिया है, पर यह लिखा है कि उन्होंने अनुमान अस्सी बरस की अवस्था में जेठ सुदी २ विक्रमी संवत् १८९९ या १९०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह-धारण करने का समय संवत् १८२० के लगभग ठहरता

* १९४ ई० पृष्ठ १५० १५१

सम्मत सोलह सै अट्ठारा। छठी मोज पंच कियो बारा॥
भावों तुरी मंगल एकादसी। आरम्भ किनी प्रथमजनवासा॥ पृ० ४१७

पुस्तक को गुप्त करने के कारण—प्रश्न उठता है कि यदि यह पुस्तक तुलसी साहब ने गोस्वामी तुलसीदास के रूप में १६१८ संवत् में लिखी तो गोस्वामीजी की अन्य पुस्तकों की भाँति इसका पता लोगों को क्यों न था? इस शंका का समाधान स्वयं तुलसी साहब ने इसी ग्रंथ में करने का प्रयत्न किया है। आपका कथन है कि आपने 'घट रामायण' १६१८ में तो बनायी थी किन्तु काशी में लोगों ने इसका बड़ा विरोध किया। जब इसका बड़ा शोर मचा तो स्वयं गोस्वामीजी ने इसको गुप्त कर दिया और तुलसी साहब का चोला धारण कर पुनः प्रकट कर दिया।

अब अनुक कारन हम गाई। जो करि इहां राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेव सुनावें। तो जग नाहिं रहन नहिं पावें॥
तासे न्यारा भेव न भाखा। संत भेद हम गुप्त राखा॥
भेव पंथ में गुप्त लखावा। पुनि काहू की दृष्टि न आवा॥ पृ० १५३

काशी में भया शोर, तेरह को लिया चोर।
तुलसी यस लाल शोर, शोर नगर माँही।
तुलसी साथ रहत तेरह कीना अचेत।
वासे कीन करो न होत देत काहू जाई। पृ० १२४

घट रामायन सुनि जो शोरा। काशी नगर भया बल थोरा॥
पंच भेव जब लखन लखारा। घट रामायन परी पुकारा॥
यस तुम शोर भयो जब माँही। लहर पुस्तक पैठई नाँही॥
भेव पंथ में अचरज महा। बरनन भेव लखन को गहा॥ पृ० ३८६
काशी में कीन लड़ाई। तब हमने गुप्त छिपाई॥ पृ० ४१२
पंडित हिरदे से भयो मगरा। और भेव जब काशी सगरा॥
तब तुलसी मन कियो विचारा। घट रामायन गुप्तकरि डारा॥ पृ० ४१६
पुनि काशी में अचरज कीन्हा। शोर नगर में भयो अलीना॥
पंडित जन्म लेन और तुरका। भयो झगड़ा आइ काशी पुरका॥
पंडित भेव जब मिलि सारा। घट रामायन परी पुकारा॥
जो कुछ मगरा रीति जस भाँती। जब जस भया विरस सब राती॥
तासे ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घट रामायन बरनन न कीन्हा॥ पृ० ४१७-१८

संसार को भ्रम में डालने के लिए रामचरितमानस की रचना—उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'घट रामायण' में ऐसी खलबली मचा दी थी कि दिन-रात झगड़ा होने की आशंका रहती थी। अतएव गोस्वामीजी ने उसे गुप्त कर दिया। किन्तु यह बात विचारणीय है कि 'घट रामायण' का नाम क्या लहर, क्या नया-बीता ग्राम सभी जगह फैल गया था और लोग गोस्वामीजी के दर्शन के लिए आते थे जैसा कि उक्त उद्धरण से स्पष्ट है। प्रसिद्धि तो अच्छी बात थी पुस्तक तो विचार प्रचार की दृष्टि से ही लिखी जाती है। यदि घट-रामायण के कारण गोस्वामीजी के पास लोग दूर-दूर से दर्शन करने को आते थे तो वे काशी छोड़कर अन्यत्र जा

सकते थे। साधु के लिए क्या काशी क्या मथुरा क्या प्रयाग, क्या मगहर सभी बराबर हैं। गोस्वामीजी काशी के शोर से इतने डर गये कि उन्हें 'शठ रामायण' गुप्त कर देनी पड़ी। कबीर का भी बड़ा विरोध हो चुका था किन्तु वह महापुरुष तो अड़ा ही रहा। भक्तों के दर्शनार्थ आने पर भी काशीवासों के डर से 'शठ रामायण' उन्हें गुप्त करनी पड़ी। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। यहाँ तक भी प्रतीमत थी। उन्होंने एक काम और किया—उन्होंने 'शठ रामायण' के पश्चात् १६३१ में ऐसा रामचरित बनाया जिससे सारा संसार भ्रम में पड़ जाय। तुलसी साहब के वचन हैं—

तासे गुप्त हम कीन्हा। शठ रामायण जतन न दीन्हा॥
या से संत भले को रोति। अपुत अजान न जाने रोति॥
संवत् सोलासे इकतीसा। रामचरित कीन्ह पद ईसा॥
इस कम औतारी भाखा। कर्म भाव सब जगहिं सुनाखा॥
जग में पसारा जाना भाई। रावन राम चरित बनाई॥
पंडित भेद अपुत सब झारी। रामायन मुनि भये पुजारी॥
संका संसे विधि समझावा। पृ० ४१७-४१८

रावन राम कीन्ह संवादा। तब काशी में चली मर्यादा॥
तुलसीमता कोई नहिं कीन्हा। गुप्त भेद तब जग से कीन्हा॥
ये भौसागर अपुत अपारा। तुलसी मता भले कोनारा॥
जब में वस्तु कोई नहिं कीन्हा। या से ग्रन्थ गुप्त कर दीन्हा॥
रामचरित बनाय अपत भूल भ्रम ताहि में। पृ० ४१४

पर गोस्वामी तुलसीदास ने तो और भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिन सब में उनका दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः एकसा ही है और राम में उनकी अटल भक्ति उनके सभी ग्रन्थों में लक्षित होती है।

प्रस्तुत 'शठ रामायण' मूल रूप में है अथवा सार रूप में?—कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीसाहब गोस्वामीजी की शठ रामायण नहीं कह रहे हैं किन्तु उसका सार मात्र कह रहे हैं।

काल करे जिव हानि तुलसीदास तत सब रही।
शठ रामायण सार, अधि काया जिव शठ कही॥ पृ० २१
शठ रामायण सार, कहु शठ नाहिं पढ़ाइया।
शठ का मरम विचार, मिल करि करिया॥ पृ० २६
रामायण शठ सार, सुरति शब्द से लखि परै।
गगन कंज कर वास ऊपर चढ़ि जिव देखिया॥ पृ० ४६
शठ रामायण सार ये अपार गति यों कही।
बूझे बूझनहार जिन सतगुर पावै नहीं॥ पृ० ५६
सम्वत सोलासे अट्ठारा। शठ रामायण लिखि सारा॥ पृ० ४१२
शठ रामायण सार सोलहसे अठरा कही।
कही गई नहिं सार सार निकट काशी बसै॥ पृ० ४१३

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामीजी की 'घट रामायण' नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घट रामायण सार' होना चाहिए था। 'घट रामायण' नाम से तो भ्रम फैलता है क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामीजी की नहीं है वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामीजी के विचारों का सार भी है या नहीं यह तो पाठक सम्पूर्ण आलोचना को पढ़कर और गोस्वामीजी के ग्रन्थों का मनन और मंथन कर निश्चय कर सकते हैं।

घट रामायण का विषय—'घट रामायण' का विषय क्या है? इस पुस्तक में भेद पिंड और ब्रह्मांड और भेद बमन भेद सूक्ष्म त्रिकुटी भेद नाम भेद सुन्नि भेद जोगभेद सिद्धों के नाम प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण हैं। इसमें कुछ विरोधी पुरुषों के शुभनाम और विचार संवाद भी सम्मिलित हैं जिन्होंने संप्रमत स्वीकार कर लिया था, यथा—तकी मियाँ मानमिरि संन्यासी फूलदास कबीरपंथी गुसाईं प्रियेलाल और पलकराम नानक पंथी। डॉ० रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहब को प्राणायाम का प्रचारक बताया है। तुलसी साहब ने 'सार' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पंडितों से कहलाया है 'तुम्हरा साधनता तब जानी' पृष्ठ १२७। इनके दार्शनिक विचार का सार उस संवाद से अच्छा विदित होता है जो मानमिरि संन्यासी के साथ हुआ था।

तुलसी साहब के दार्शनिक विचार—"स्वामीजी तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं?

'ब्रह्म निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्त लोक है जहाँ सत्त साहब रहता है, यहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

"सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है महासुन्न से सुन्न सुन्न से शब्द शब्द से ब्रह्म ब्रह्म से जोति निराकार, निराकार जोति से मन मन से बस्त ब्रह्मा विष्णु, शिव वेद सब उत्पन्न होते हैं।" पृष्ठ १७६

अगले पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं—

"ब्रह्मा विष्णु और महादेवा। नाश भये सब अंत के सेवा॥
मन को नाश सुनो पुनि भाई। जब लगि नया निरंजन नाई॥
नाश निरंजन ब्रह्म समाना। ब्रह्म जो नसा शब्द में जाना॥
शब्द नाश जो सुन्न समाना। सुन्न नाश महासुन्न में जाना॥
यहाँ से उत्पति परलय होई। आगे भेद न जानै कोई॥
यहाँ से आवै यहाँ लै जावै। आगे भेद न कोई पावै॥
सत्त लोक महा सुन्न कहाई। तीन लोक सब सुन में जाई॥
तीनि लोक करता नहिं आवै। वा घर को कोई संत समावै॥

पहले कहा था कि 'महा सुन्न के परे सत्त लोक है' और 'सत्त साहिब की लहर से महा सुन्न' होता है, पीछे कहा है कि "सत्त लोक महासुन्न कहाई।

वेद और सनातन धर्म के विरोधी विचार—तुलसी साहब को कदाचित् वेद शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम-कृष्ण के नाम से चिढ़ थी जैसा कि आगे निर्दिष्ट

किया जायेगा। वे मूर्ति-पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जनियों पर इस विषय में आक्षेप किया है कि

जैनी जो जीव मन सुधै नाई। आतम को छांड़ि पुजै पाहन जाई॥ पृ० ९६

पुस्तक की भाषा—पुस्तक की भाषा प्रधानतः खड़ी बोली और ब्रजभाषा है किन्तु इसमें पंजाबी और फ़ारसी शब्दों का भी मिश्रण है। मैं भाषा पर गम्भीर विचार नहीं करना चाहता अतः पाठकों को निम्नलिखित कतिपय उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँ—जिवरा उद (उदर) जगत (जगत्) सुपन्न पलक, अलख बिलख प्रमातम (परमात्मा) समझ पिछाना (पहिचाना) मरजुन जतन (यत्न) तन मति (मति) बरन अभाव (अभाव) स्वाम (सवाम) कभी (कभी) तत (तत्त्व) निर्ब पिरमन्न (प्रथम) सुद (सुद) रब्ब (रब) मकल का पदीदा कीदा (किया) दुरबीन तमब इक तबक गहो कहो बाबी हतो बसेरो बेरो बचावो सुनावो रहो दिया किया हुआ, रहा आया। यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी में रहे जैसा कि 'घट रामायण' के अंत में लिखा है, तथापि उस कृति में प्रवधी का अभाव है।

अभूतपूर्व व्युत्पत्तियाँ—नीचे के उद्धरणों में वृन्दावन दशरथ लक्ष्मण कौशल्या कैकेयी मंथरा मन्दोदरी भरत शत्रुघ्न आदि रामचरित मानस के पात्रों की अभूत एवं अपूर्व व्युत्पत्तियाँ हैं जिन्हें कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास मान्यता प्रदान न कर सकते थे।

दिन ते बना बिद्रावन होई। जब के नहीं रहा सनोई॥ पृ० २८४
बिद्रावन बिद कोन्ह सोई सांचा। पुसाई पोथी के साथ बन बन नाचा॥
पृ० २८६

इंद्रजीत जीते मन ही को। सो इन्द्र जीत कहाई॥
रावन कहा बसै मन दीरो। ताको मन्दोदरी बनाई॥
मन की और को दूर बहावे। बिदुरी कहा कहाई॥
बस इंद्री रस बसरथ कहिये राम रमा मन जाई।
सत की सीता जतन तिया को कुमति कौसल्या बसाई।
मन थिर सुरति करे थिर कोई सो मन मथा कहाई।
यहाँ की बात कहो कौन सुनाई कर्म न थिर केकाई।
ते पे रस मन ही को भाई लछमन और कहाई।
सो मैं कह गरुड़ सिनाई भय से भसुंड सुनाई।
भय रस भरत भरत है सोई चाह चाह त्रिगुन सिनाई।
सो को नाम चतुर मन कहिये ये सब भेद बताई। पृ० २१२

अनास्था—तुलसी साहब को शुकदेव व्यास जनक नारद, वेद शास्त्र, ब्रह्मा विष्णु महेश ज्ञानी दत्त तीर्थ अवतार और संस्कृत में आस्था न थी पर तुलसीदासजी को तो थी।

काया खोज किया नहिं भाई। शुकदेव रहे भूल के भाई॥
व्यास जनक नारद नहिं भाई। कवि पुराण आतम गति नाई॥

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामीजी की 'घट रामायन' नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घट रामायन सार' होना चाहिए था। 'घट रामायन' नाम से तो भ्रम फैलता है, क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामीजी की नहीं है वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामीजी के विचारों का सार भी है या नहीं यह तो पाठक सम्पूर्ण आलोचना को पढ़कर और गोस्वामीजी के ग्रन्थों का मनन और मथन कर निश्चय कर सकते हैं।

घट रामायन का विषय—'घट रामायन' का विषय क्या है? इस पुस्तक में भेद पिंड और ब्रह्मांड, नीर भेद गगन भेद सुरत त्रिकुटी भेद नाद भेद सुन्नि भेद योगभेद सिद्धों के नाम प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण हैं। इसमें कुछ विरोधी पुस्तकों के सुमनाम और विचार संवाद भी सम्मिलित हैं जिन्होंने संतमत स्वीकार कर लिया था, यथा—तकी मियाँ मानगिरि संन्यासी फूलदास कबीरपंथी बुलाई त्रिवेनाम और पलकराम नानकपंथी। डॉ० रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहब को वाममार्ग का प्रचारक बताया है। तुलसी साहब ने 'साध' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पंडितों से कहलाया है 'तुम्हरा साधमता तब जानी' पृष्ठ १२७। इनके दार्शनिक विचार का सार उस संवाद से अच्छा विदित होता है जो मानगिरि संन्यासी के साथ हुआ था।

तुलसी साहब के दार्शनिक विचार—"स्वामीजी, तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं?

"ब्रह्म निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्त लोक है जहाँ सत्त साहब रहता है वहाँ प्रलय और महाप्रलय की बन नहीं।

"सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है महासुन्न से सुन्न सुन्न से शब्द शब्द से ब्रह्म ब्रह्म से जोति निराकार, निराकार जोति से मन मन से पवन ब्रह्मा विष्णु, शिव वेद सब उत्पन्न होते हैं।" पृष्ठ १७६

अपने पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं—

"ब्रह्मा विस्नु और महदेवा। नाद बिंद बन मन के सेवा॥
मन को नाद सुनी पुनि आई। मन नहिं नया निरंजन माई॥
नाद निरंजन ब्रह्म समाना। ब्रह्म जो नाद शब्द में जाना॥
शब्द नाद जो सुन्न समाना। सुन्न नाद महासुन्न में जाना॥
यहाँ से आतपति परलय होई। आगे भेद न जाने कोई॥
यहाँ से आगे यहाँ से जावै। आगे भेद न कोई पावै॥
सत्त लोक महा सुन्न कहाई। तीन लोक सब सुन में जाई॥
तीनि लोक करता नहिं जावै। वा पद को कोई संत समावै॥

पहले कहा था कि 'महा सुन्न के परे सत्त लोक है' और 'सत्त साहिब की लहर से महा सुन्न होता है, पीछे कहा है कि "सत्त लोक महासुन्न कहाई।

जैन और सनातन धर्म के विरोधी विचार—तुलसी साहब को कदाचित् वेद शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम-कृष्ण के नाम से चिढ़ थी जैसा कि आगे निर्देश

किया जायेगा। वे मूर्ति-पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जैनियों पर इस विषय में आक्षेप किया है कि

जैनी को जैन नैन सूझै नाई। आतम को छाँड़ि पूजै पाहन जाई ॥ पृ० ९६

पुस्तक की भाषा—पुस्तक की भाषा प्रधानतः खड़ी बोली और ब्रजभाषा है किन्तु इसमें पंजाबी और फ़ारसी शब्दों का भी मिश्रण है। मैं भाषा पर गम्भीर विचार नहीं करना चाहता अतः पाठकों को निम्नलिखित कतिपय उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँ—बिबरा उद्र (उदर) जस (जयद्) सुपम्म पलक अलम्ब, बिलमा, प्रमातम (परमात्मा) सलक पिछाना (पहिचाना) अरजुन्न अतन्न (मत्त) तप्प अति (पति) अरन्न ज्वाब (जवाब) स्वाल (सवाल) कभी (कभी) तत्त (तत्त्व) निर्ख पिरथम्म (प्रथम) कुद (कुद) रब्ब (रब) अक्कल का पहीदा कीदा (किया) दूरबीन तसब दस्क तबक गहो कहो जायी हुती बसेरो घेरो बचावो सुनावो रहो दिया किया हुआ रहा आया। यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी में रहे जैसा कि 'घट रामायन' के अंत में लिखा है, तथापि उस कृति में प्रथमी का अभाव है।

अमृतपूर्व व्युत्पत्तियाँ—नीचे के उद्धरणों में वृन्दावन दसरथ लक्ष्मन कौसल्या कैकेयी मथरा मन्दोदरी भरत सत्रुघ्न आदि रामचरित मानस के पात्रों की अमृत एवं अपूर्व व्युत्पत्तियाँ हैं, जिन्हें कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास मान्यता प्रदान न कर सकते थे।

जिन्ह ते बना बिहावन होई। जग के नाहीं रहा सनोई ॥ पृ० २८४
बिहावन बिन कोन्ह सोई सांचा। गुसाँई पोथी के साथ जग जग नाचा ॥
पृ० २८६

इंद्रजीत जीते मन ही को। सो इन्द्र जीत कहाई ॥
रावन बहु बसै मन दीरी। ताको मन्दोदरी बनाई ॥
मन की और को दूर बहावे। बिभूती बहा कहाई ॥
बत हंसी रत दसरत कहिये राम रमा मन जाई।
सत की सीता मतन बिया को सुमति कौसल्या बताई।
मन थिर सुरति करे बिर कोई सो मन मंथा कहाई।
बहाँ की बात कहो कौन सुनाई कर्म न थिर कैकाई।
ते छे रस मन हो को भाई सत्रुघन बीर कहाई।
यो में रूह मकह गिनाई मन ते असुंद भुलाई।
मन रत भरत भरत है सोई चाहु चाह त्रिपुन्न गिनाई।
सो को राम चतुर गुन कहिये ये सब भेद बताई। पृ० २१६

अनास्था—तुलसी साहब को शुकदेव व्यास जनक, नारद बेद शास्त्र, ब्रह्मा विष्णु महेश ज्ञानी बत तीन अवतार और संस्कृत में आस्था न थी, पर तुलसीदासजी को तो थी।

काया खोज किया नहिं भाई। शुकदेव रहे भूल के भाई ॥
व्यास जनक नारद नहिं भाई। कवि पुरान आतम गति पाई ॥

बानी चूके धर्म हैं, परम हंस बहु बार ॥
सास्तर संत बिचारिया, बहु कर्म की बार ॥ पृ० २१
तिमर्में रहै त्रिभवनी धाता । ब्रह्मा विष्णु न पावैं बाता ॥
संकर जोगी सिद्ध अनूपा । उनहूं न पायी सावन रूपा ॥ पृ० २५
ब्रह्मा बेद बखान बिस्नु सिव ना बर्नै । बर्नै नहीं बेराट कहुनि कहोंको बर्नै ॥ पृ० ६२
बानी नहिं बचना सपिन न मनना बेद भेद गति नाहिं लई ।
ब्रह्म नहिं बिस्नु राम न किस्नु, सिव सिद्धि नहिं पार लई ।
ब्रह्म बिस्नु भये महादेवा । इनकी उतपति मन मत भेवा ॥
सास्तर बेद सास्त्र बानी । ये सब मन मत गति उतपानी ॥
दस औतार अगत जग माया । यह मन और अनेक उपाया ॥
ऋषी मुनी जोगी सुर ज्ञानी । मन करता कर सब मिलि बानी ॥
तीरथ बरत बेद ब्योहारा । जब मूला मन जाल पसारा ॥ पृ० ६६

तुलसी साहब और तुलसीदास के दृष्टिकोणों में अन्तर—गीता कहती है 'त्रैगुण्यविषया वेदा' और गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है—'बिधि हरि संभु नचावन हारे'। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि गोस्वामीजी को 'राम' शब्द कितना प्यारा था। उनको दशरथ के सुत कितने प्यारे थे और तुलसी साहब का भाव राम-कृष्ण के प्रति क्या था ?

जिनको रटत बावन राम और रावन, निःअक्षर सार कही । पृ० १२
नहिं राम अरु रावन यह गति बावन अनुभव सबुन नुन नाहिं कही । पृ० २६
आठे नाम भेद नहिं जानै मनहिं राम को नाम बखानै ।
नाम गती है अगम अपारा ब्रह्म राम कोउ पावै न पारा ॥ पृ० ३६
रावन राम सकल परिवारा । ये सब भीतर चुनि चुनि मारा ॥ पृ० ८३
राम राम को अर्थ बखानै । जानी बनन अकारथ जानै ॥ पृ० १२१
राम करम इस जी के भाई । संत सबन घर नित प्रति जाई ॥
राम क्रोध बम की गत जाना । संत गती हीरा परमाना ॥
जो पंसे में बम के आवै । राम क्रोध मन जब को जावै ॥
संत अवन हीरा गति न्यारी । केहि बिधि पावै अगत बिचारी ॥ पृ० २४३
राम आप कर्मन बस परिया । कहो तातें जब कलकस तरिया ॥ पृ० २४८
जोग राम रित जैसा बापा । बुद्धि गई तु हुई आपा ॥ पृ० २४९
राम-कृष्ण दोऊ अवतारा । सिव ब्रह्मा मिलि कीनी बारा ॥ पृ० २६७
जैसा रामचन्द्र भये राजा । भूले मोहु देह सुख काजा ॥
सिरता काज कीन्ह संग्रामा । बन बन फिरे लछमन अरु रामा ॥
कुल आतम रावन को मारा । आतम हति लीन्हा सिर भारा ।
आतम पाप अनीती कीन्ही । बालिहि मारि काल गति लीन्ही ॥
ये अचर्ज कीन्हा अन्याई । आतम मारि दया नहिं आई ॥ पृ० ६३०
करता राम भया गति हीना । कबहु मिरग उनहूं नहिं कीन्हा ॥

तिरिया काज कीन्ह सब कामा। लीन्हा मोष कीन्ह सोई रामा॥ पृ० ३३०
रामकृष्ण बल हाथी जाना। सोउ बहु कर्म लपटाना॥ पृ० ३३१

क्या गोस्वामी तुलसीदास राम को 'बटमारा' 'मतिहीना' बताकर मार सकते थे अथवा उन्हें कीच समझकर उनकी अवहेलना कर सकते थे? क्या वे रावण को राम से कहीं अधिक अथवा बराबर मान सकते थे? तुलसी साहब की आस्था तो रावण पर राम से कहीं अधिक है। उनके 'घट रामायन' में रावण ब्रह्म है और त्रिकुटी लंका है। वे लिखते हैं—

रावन ब्रह्म कहा कोई। कुटी लंक ब्रह्म है सोई। पृ० ४२
रावन ब्रह्म बसै त्रिकुटी में। लंक त्रिकूट बनाई॥ पृ० २१६

रावण के परिवार तक की सुन्दर व्याख्या है। रावण की पत्नी मंदोदरी तो 'मन की दौर को दूर' बहाने वाली किन्तु रामपत्नी सिया असत् राम-माता कौशल्या कुमति और राम-पिता विषयी हैं—

रावन ब्रह्म बसै मन दौरी ताको मंदोदरी बनाई।
मन की दौर को दूर बहावै त्रिकुटी ब्रह्म कहाई।
दस इंद्री दस दसरथ कहिये राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को कुमति कौसिल्या बसाई॥ पृ० २१२

किन्तु गोस्वामी तुलसीदास को अवश्य इस उक्ति से असंतोष होगा।

रामनाम का विरोध—तुलसी साहब रामनाम के विरोध में इस प्रकार युक्ति देते हैं:—

राम लिखो पत्थर के माहीं, पानी माहिं देखि सो जाई।
जो पत्थर पानी माहिं डूबा, तो तुम जानो राम अमूबा।
पत्थर डूबे राम लिखे से। तो तुम डूबिहो राम कहे से।

पर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने सभी ग्रंथों में रामनाम की कितनी महिमा गायी है।

मिथ्या तिथियाँ—डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि तुलसी साहब ने सात तिथियों का उल्लेख किया है जिनमें से केवल तीन में वार दिया हुआ है, अतः अन्य तिथियों के तथ्यातथ्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। जिन तिथियों के तथ्यातथ्य का विवेचन हो सकता है वे हैं—

(क) जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ला ११ मंगलवार १५८९ वि० अर्थात् १० सितम्बर १५३२ ई० (ख) काशी में आगमन की तिथि चैत्र शुक्ला १२ मंगलवार १६१२ वि० और (ग) घटरामायन निर्माण की तिथि भाद्रपद शुक्ला मंगल एकादशी संवत् १६१८। किन्तु जन्म तिथि को छोड़कर और कोई भी ज्योतिषगणना के अनुसार ठीक नहीं उतरती।

ऐतिहासिक व्यतिक्रम—इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ऐतिहासिक व्यतिक्रम हैं जिनसे घटरामायन के साक्ष्य का महत्त्व एकदम कम हो जाता है। प्रथम व्यतिक्रम यह है कि पलटूराम नानक-पंथी से संवाद करते हुए घटरामायन-कार उस प्रथा की ओर इंगित करते हैं जो पंजाब में साधारण रूप से और घाटों में विशेष

कम से प्रचलित थी। विंसेंट स्मिथ * लिखते हैं कि लार्ड हार्डिंज के समय में पुत्रीवध पंजाब राजपूताना मालवा, कच्छ, काठियावाड़ तथा अन्यत्र भी व्यापक था और उक्त गवर्नर जनरल ने इसे रोकने का उद्योग किया।

बलकराम ये ऐसी रीती। साहिब जाये करें अनीती॥
लड़की मारि करें अजपूता। यह हत्या ब्राह्मन होइ सूता॥ पृ० ३०१
तुमि साहिब जायों की रीती। लड़की मारि जो करें अनीती॥
कन्या पाप करम को कुबती। सो साधु नहिं पावे मुक्ती॥ पृ० ३७७

बटरामायन कर्ता ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि

अस पुहुरब लड़की जो मारें। तासो जवुत अधम करि डारें॥ पृ० ३७२

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'आज' से क्या तात्पर्य है। इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि तुलसी साहब अपने उस समय की ओर इशारा कर रहे हैं, जबकि अंग्रेज लोग 'दुखरे-बुधी' को रोकने का उपाय कर रहे थे। 'आज' शब्द से प्रतीत होता है कि यह रचना गोस्वामी तुलसीदास की नहीं है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुंशी देवीप्रसाद ने बट रामायन का जो संस्करण निकाला था उसमें 'लड़की' के स्थान पर 'बकरा' शब्द रख दिया गया है।

दूसरा व्यतिक्रम यह है कि बटरामायन-कार ने कम से कम नौ स्थलों पर दरिया साहिब के नाम का उल्लेख किया है

बा घर कोई मरम न जाने। नानक दास कबीर बखाने॥
दादू दरिया रैदासा। नामा मीरा अधम बिलासा॥ पृ० ६५
दादू मीरा नामा आई। नानक दरिया सुर सुनाई॥ पृ० २१३
नानक और दादू दरिया साधू। मीरा सुर कबीर कही।
नामा भगत जाति भाखि बखानी। सुरति सबानी पार गई॥ पृ० २१०
दरिया जी दादू बतलाई। अलोमियाँ सुख साखि सुनाई॥ पृ० २३०
और कबीर दादू रैदासा॥ दरिया नानक अधम तमासा॥
सूरदास नामा अब मीरा। औरो संत अधम मति धीरा। पृ० २४०
ऐसे अंध अचेत अबूझा। गुरु दरिया पानी में सूझा॥ पृ० २६२
गुरु दरियाव रहहु नहिं जाना। हुसुवा पानी डार बखाना॥
मैं बाबे नहिं कहा बियाना। गुरु दरिया पानी में जाना॥ पृ० २६३
गुरु का घर दरयाव भाई। ताको गुरु दरियाव बताई॥ पृ० ३६३
अब गुरु घर दरियाव न चीन्हा। हुसुवा पानी डार जो दीन्हा॥ पृ० ३६३
दादू गुरु दरियाव न पावै। बिना संत कहाँ को बरसावै॥ पृ० ३६४
खंडा तत्त बिन बीच बिचारा। गुरु दरियाव गगन के पारा॥ पृ० ३६५
नानक और कबीर सुनाई। दादू दरिया सब मे गाई॥ पृ० ३७८

* लार्ड हार्डिंज — "इन मैजर्स फार सप्रेसिंग सती एण्ड इन्फैंटिसाइड एज ए मेटर रेलेट्स पृष्ठ ९५।

इन्फैंटिसाइड बोथ प्रेक्टिस्ड एक्सटेंसिवली एज ए पंजाब, राजपूताना मालवा कच्छ काठियावाड़ एण्ड एलसेवेर। पृष्ठ ६६ ए जोनसोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया विंसेंट स्मिथ-कृत।

यहाँ यह विचारणीय है कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में दो दरिया साहबों का परिचय दिया है। एक तो बिहार-वाले दरिया साहब जो संवत् १७३१ में जन्मे और १८३७ में मरे दूसरे थे मारवाड़ वाले दरिया साहब जिनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ। यदि यह ठीक है तो क्या १६८० में विद्यमान होने वाले गोस्वामी तुलसीदास दरिया साहब का उल्लेख कर सकते थे ?

तृतीय व्यतिक्रम यह है कि 'घटरामायण' के रचयिता ने पलकराम नामक पंथी के साथ संवाद में अनेक (कम से कम छः) स्थलों पर गुरु गोविन्द का उल्लेख किया है यथा—

गुरु गोविंद मुख भाखी बानी। बारहबाट दसमें सहदानी॥ पृ० ३४६
गुरु गोविंद की जाये कहिया। पातसाहु दसवाँ बतलइया॥ पृ० ३४६
गुरु गोविंद विधि कही बखाना। सो भी साँच-साँच कर भाखा॥ पृ० ३५६
गुरु गोविंद ग्रन्थ मधि भाखा। तामें विधी सब्द बतलाखा॥
सुनी सब्द मैं भाखि सुनाऊँ। गुरु गोविंद बानी मुख पाऊँ॥
पूजा मण्डल नहीं बताई। देखो गोविंद ग्रन्थ मंझाई॥
देखो ग्रन्थ में बानी साखी। एक सब्द तुलसी कहि भाखी॥ पृ० ३६६
येहि विधि गोविंद पंथ लखाई। देखो सब्द ग्रन्थ के माहीं॥
औरी सुनो मूल इक भाऊँ। गुरु गोविंद की साखि बताऊँ॥
गुरु गोविंद मुख अपने भाखा। ग्रन्थ विधी मैं देखि सुनाखा॥
कृष्न राम भगवान जो भाखा। नहीं काल ने उनको राखा॥
गुरु गोविंद ग्रन्थ मैं भाखा। भये भगवान काल ने चाखा॥ पृ० ३७०

ध्यान देने की बात है कि गोस्वामीजी और पलकराम का संवाद १६१६ संवत् में हुआ था जैसा कि उद्धरणों से स्पष्ट है और इसी संवाद में गुरु गोविन्द का भी उल्लेख है। इस बात के प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि गुरु गोविंदसिंह का आविर्भाव गोस्वामी तुलसीदास के देहावसान के पश्चात् हुआ। अतः यह असम्भव कल्पना है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने गुरु गोविन्दसिंह का उल्लेख अपनी रचना में किया होगा। 'घटरामायण' में गुरु गोविंद का जो उल्लेख है वह सब पीछे का है।

पूर्व जन्म की कथा—'घटरामायण' के परिशिष्ट में लिखा है कि तुलसी साहब अपने किसी पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे और तब इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला ११ संवत १२८६ वि० में यमुना के किनारे राजापुर में हुआ जो बुन्देलखण्ड में चित्रकूट से दस कोस की दूरी पर स्थित है। ये कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि ये अपनी पत्नी में आसक्त थे तथापि सत्संगप्रिय थे। श्रावण शुक्ला नवमी संवत् १६१४ को इनके 'जनम का सौदा' हुआ, इनकी समाधि सबसे बड़ी प्रसिद्धि हो गयी लोग दर्शनों को राजापुर आने लगे। काशी का रहने वाला हिरदे नाम का अहीर राजापुर में किसी के यहाँ नौकर था, वह नित्य प्रति दर्शन को आता था अतः इनकी उससे प्रीति बढ़ गयी। एक दिन ऐसा हुआ कि हिरदे को काशी गये बहुत दिन हो गये तो तुलसीदास व्याकुल हो स्वयं काशी जा पहुँचे हिरदे से मिले और काशी में गंगा के किनारे कुटी बना कर सत्संग में रहने लगे। यह बात चैत्र शुक्ला मंगलवार संवत् १६१६ की है। कार्तिक

कृष्णा पंचमी १६१६ में पंचकराम नामकपंथी से साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् इन्होंने भादों सुक्ला मंगल ११ सं० १६१८ को अवरामायण का प्रारम्भ किया। इस पुस्तक के काशी में बड़ी खलबली मची। अतः इन्होंने झगड़े के डर से इसे गुप्त कर दिया और सं० १६३१ में 'अंधा अगे विधि' समझाने के लिए रामचरितमानस का प्रारम्भ किया और सं० १६८० की श्रावण सुक्ला सप्तमी को असी नदी के किनारे महाप्रस्थान किया। इस विषय में आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं—

राजापुर जमुना का तीरा। जहँ तुलसी का जया शरीरा ॥ पृ० ४१५
विधि बुन्देलखण्ड जोहि देसा। जिन कोइ बीच दस कोसा ॥
संवत् पद्रा सें नवासी। भादों सुदी मंगल एकादसी ॥
तिरिया बरत मति मन राता। विधि-विधि रीति चित्त संग साता ॥
ज्ञान हीन रस रंग संग माता। कान्हकुअर बाहान कोरी जाता ॥
संत साच जोहि नीका भावै। ज्ञान अज्ञान एक नहिं आवै ॥
संवत् सोलासै बे चौथा। ता दिन भया अपन का सौदा ॥
सावन सुदी तीजो तिथि बारी। आधी रातिं भई गति न्यारी ॥
अंध गुरु ने राह बताई। देह गुरु से कछु नहिं पाई ॥ पृ० ४१६
ऐसे कइ दिन बीति तिरानें। राजपुरी जगत जब जानें ॥
लोग दरस को नित नित आवैं। दरस आच सब को उपजावैं ॥
हिरदे अहीर काशी का बासी। रहे राजापुर तीरथ पासी ॥
जोहु प्रतिदिन दरसन को आवै। प्रीति बड़ी हित कहा न जावै ॥ पृ० ४१७
रीति दिवस दिन-दिन रहै पासा। तुलसी बिना और नहिं आसा ॥
एक दिवस भई ऐसी रीति। काशी गये बहुत दिन बीती ॥
हमरा चित हिरदे में बासी। हम चलि गये तब वहँ काशी ॥
संवत सोलासै रहे पंद्रा। फागुन बारस तिथि मंगरा ॥
पहुँचे काशी नगर मंझाई। हिरदे सुनत दौड़ि चलि आई ॥
आये चरन लीन्ह परसादी। विधि-विधि रहन कुटी की साधी ॥
कुटी बनाय कीन्ह अस्थाना। काशी में हम रहे निदाना ॥
गंगा निकट कुटी जहँ कीन्हा। हिरदे नित आवै सो लीन्हा ॥
सोलासै सोला में सोई। कातिक बदी पंचमी होई ॥
आये पंचकराम इक सतो। रहे काशी में नामक पंथी ॥
अवरामायन ग्रन्थ बनावा। ताकी विधि जिपत सब पावा ॥
सम्मत सोलासै अट्ठारा। छठी मीन ग्रन्थ किपी सारा ॥
भादों सुदी मंगल एकादसी। आरंभ किओ ग्रन्थ मन भासा ॥
सुन काशी में अचरज कीन्हा। तोर नगर में भयो अलीना ॥
ताते ग्रन्थ गुप्त हम कीन्हा। अवरामायन चलन न दीन्हा ॥
सम्मत सोला सै इकतीसा। राम चरित कीन्ह पद ईसा ॥
जग में भमरा जाता भाई। रावन राम चरित बनाई ॥
पंडित भेद जपत सब भारी। रामायन सुनि भये सुखारी ॥ पृ० ४१८

संवा संवे विधि समझावा । बटरामायन गुप्त करावा ॥
सब कहो संत सयम अस्थाना । है सबो विधि कहौं विधाना ॥
सम्मत सोलासै असी नदी बरन के तीर ।
सावन सुकला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर ॥
मैं अपना बरतंत बताई समझ बूझ सुबधुप चित लाई ।
जस-जस भया विधि विधि लेखा तस-तस तुलसी कहा विसेखा ॥

परिशिष्ट पर विचार—तिथि वार संवत् और रचना घटना का बाहुल्य निस्संदेह तथाकथित तुलसी साहब की पूर्वजन्म-स्मृति का अद्भुत साक्षी है। पूर्वजन्म में इनके जो-जो संवाद अपने भक्तों से हुए थे वे सब संवतों के साथ ज्यों के त्यों स्मृति-पटल पर अंकित हैं उन सब भक्त स्त्री-पुरुषों के नाम स्मृत हैं, उन्होंने जो कहा वह भी इन्होंने जो उनसे कहा वह भी याद है। इनका पूर्वजन्म में कब जन्म हुआ वह सावन तीसे पाव रत्ती स्मरण रहा उनका जन्मस्थान कहाँ था किस प्रांत में और चित्रकूट से कितनी दूर था यह भी। उन्हें अपनी मरण-तिथि याद रही। इनके 'मगन का सौदा' कब हुआ वह तिथि मास संवत् यहाँ तक कि आधीरात में हिरवे की प्यास में काशी किस दिन पहुँचे इन्होंने 'बटरामायन' किस दिन प्रारम्भ की रामचरित मानस कब प्रारम्भ किया सब स्मृत है। और तो और इनको यह घटना भी याद है कि पलकराम नामक पंथी इनके पास किस संवत् में किस तिथि और वार को सर्वप्रथम मिला। पर इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि पूर्वजन्म में इनके पुण्यश्लोक माता-पिता का क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इनकी पत्नी का जिसमें वे अत्यन्त अनुरक्त थे क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इन्होंने पूर्वजन्म में गोस्वामीजी के रूप में 'बटरामायन' और 'रामचरित मानस' के अतिरिक्त कौन कौनसी पुस्तकें लिखीं। इन्हें 'विनय-पत्रिका' 'कवितावली' आदि सभी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें विस्मृत हो गयीं। इनकी स्मृति अविश्वसनीय होनी चाहिए, क्योंकि केवल जन्म तिथि को छोड़ कर अन्य कुछ तिथियाँ प्रथम तो घटना की कसौटी पर वार आदि के अभाव से कसी नहीं जा सकतीं और जो कसी भी जा सकती हैं वे असत्य हैं।

'सुधांशु' जी की और समालोचना—'बटरामायन' गोस्वामी तुलसीदास के विषय में महत्त्व की नहीं है। श्री लक्ष्मीनारायणसिंहजी 'सुधांशु' के शब्द हैं :—

हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी तुकड़ ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदासजी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है यह पुस्तक संतमत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे चौपाई आदि में वर्णित है। पर इसमें रामचरितमानस की तरह न सरसता है न सरलता और न अर्थ-गाम्भीर्य। छन्दोभंग की त्रुटियों से सारी पुस्तक यथाभाव भरी पड़ी है जैसे तैसे एक ही बात की बार-बार आवृत्ति कर पुस्तक के कलेवर की वृद्धि की गई है। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामीजी के पवित्र नाम में कलंक लगाने वाली है।"[1]

विवरण—'बटरामायन' कैसी भी पुस्तक हो उसका सम्बन्ध तुलसी साहब से है। तुलसी साहब किसी जाति के हों वे संत थे अतः वे आदर के पात्र हैं चाहे

१. तुलसीदास और रामायण, मथुरा, भाद्रपद २१८७ वि

सिद्धान्त की दृष्टि से मतभेद कितना भी हो । वे हाजरस के निवासी न थे किन्तु वहाँ आते-जाते रहते थे और उनकी एक पक्की समाधि वहाँ विद्यमान है । किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण पर उनका प्रभाव अधिक नहीं था । हाजरस की शिष्ट जनता आज उनको नहीं के बराबर मानती है कदाचित् यही कारण था कि १८७५ ई० में एटकिंसन महोदय ने जो गजेटियर छापा जिसमें अलीगढ़ जिला और हाजरस तहसील का विवरण है उसमें तुलसीसाहब का कोई उल्लेख नहीं और न १९०९ में छपे अलीगढ़ जिले के गजेटियर में ही । हाजरस में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं कि गो० तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ था ।

सन् १९२४ ई० में श्री श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र ने हिन्दी की पाण्डुलिपियों के अनुसन्धान का जो वार्षिक विवरण प्रकाशित किया उसके परिशिष्ट (संख्या १ पृष्ठ २३९ ४० पर) अपनी में यह आश्चर्य प्रकट किया है कि 'तुलसी साहब नये अनुसन्धान कवि हैं जो अपने प्रकाशित नामराशि से भिन्न हैं । वे हाजरस में रहते थे । पुस्तक कब रची इसका पता नहीं । पाण्डु लिपि १९५४ संवत् में अर्थात् १८९७ ई० की हाजरस के पण्डित दुर्गादत्त त्रिपाठी के पास विद्यमान है । इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री ग्रन्थ घटरामायन तुलसी साहेब का सम्पूर्ण मिती कातिक बदि ११ सं० १९५४ दसखत गुरमुखदास के शुभमस्तु ११११ ।"

गुरमुखदास कौन ?—'रत्नसागर के तृतीय संस्करण के द्वितीय पृष्ठ पर जो १९३० में प्रकाशित हुआ तुलसी साहब का जीवन-चरित दिया गया है, उसमें अन्य भक्तों के साथ उक्त गुरमुखदास अर्थात् गुरुस्वामी का उल्लेख इस प्रकार है 'राम किशुन नाम का एक गड़रिया तुलसीसाहब के नीचे आ बैठता था । एक दिन तुलसीसाहब को यह बात विदित हो गई उन्होंने पूछा तुम क्यों आते हो वह बोला कि आपकी वाणी बड़ी प्यारी लगती है । इस पर तुलसीसाहब ने क्या करके उसे एक पुस्तक दी और कहा कि पढ़ो । उसने उत्तर दिया कि मैं अपढ़ हूँ । किन्तु तुलसी-साहब के पुनः आज्ञा करने पर उसने जो पुस्तक ली और देखा तो धड़ाके से पढ़ने लगा । इसी प्रकार प्रसिद्ध है कि आपके गुरमुख (शिष्य) गुरुस्वामी थे जो निपट अपढ़ और अन्धाग्रज थे । उनको भी एक दिन तुलसीसाहब की आज्ञा हुई कि ग्रन्थ पढ़ो और उन्हें करने पर डाँटा तो उनकी आँखों में ज्योति आ गई और वे पढ़ने लगे ।"

निष्कर्ष—घट रामायन में तुलसीसाहब के पूर्व जन्म का जो परिचय है वह स्यात् गुरमुखदास अथवा अन्य किसी शिष्य का प्रक्षिप्त परिशिष्ट हो क्योंकि उस परिचय की भाषा शेष पुस्तक की भाषा से भिन्न है और जहाँ-जहाँ तिथियों का उल्लेख हुआ है वहाँ-वहाँ अन्त्यानुप्रास बिगड़ गया है और कहीं प्रथम पुरुष का तो कहीं उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है । तुलसी साहब के पूर्व-जन्म-संबन्धी घटनाओं के जो संवत् दिये गये हैं उनमें से कुछ तो तिथि-वार के अभाव से जाँच की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते, और जिनमें तिथि वार मिलते हैं वे केवल एक संवत् को छोड़ गणना से अशुद्ध हैं । जन्म-संवत् गणना से ठीक उतरता है किन्तु भ्रान्त विवरणों के बीच पुनरावर्त्त-न्याय से ही ठीक प्रतीत होता है क्योंकि सभी अन्य तिथियों में अंतरवार दिया गया है । 'घटरामायन' सर जॉर्ज ग्रियर्सन की टिप्पणियों से पीछे की

है अतः गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में महत्त्व की नहीं। डॉ० पीताम्बरदत्त[1] और श्री परशुराम चतुर्वेदी[2] दोनों ने ही 'रामायण' के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी परिशिष्ट को प्रक्षेप माना है।

(घ) गोसाईं-चरित्र विवेचन

चरित्र के रूप—गोस्वामी तुलसीदास के चरित के सम्बन्ध में निम्नलिखित कतिपय रचनाएँ नाभादास के 'गोसाईं चरित' की परम्परा में प्रतीत होती हैं —

(क) 'तुलसीदास चरित' बनकराज किशोरी शरण-लिखित। इसका निर्माण काल ज्ञात नहीं किन्तु लिपिकाल सं० १९३० है। यह प्रति राष्ट्रकवि डॉ० मैथिली शरण गुप्त (चिरगाँव, झाँसी) के संग्रह में विद्यमान है। खोज रिपोर्ट में इस चरित के आदि मध्य तथा अन्त के एक-एक छन्द भी दिये हुए हैं किन्तु जैसा कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं[3] उनमें न तिथियाँ हैं और न अन्य उपयोगी बातें लक्षित होती हैं।

(ख) 'तुलसीचरित' इसे जिला बहराइच में अलीपुर के निवासी रघुवीरसिंह ने सं० १९१ में रचा जिसकी प्रतिलिपि संवत् १९५२ की है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसकी विषय-सूची में वन्दना पवन-सुत-मिलन शिव-दर्शन हरिवालन्दन सन्त मुरारिदेव विद्या रामघाट मचान सरयू स्नान नामायमन आदि का समावेश है।

(ग) 'तुलसी चरित' दासान्यदासकृत। इस प्रति का निर्माण-काल अज्ञात है लिपिकाल १९२१ है। यह ठाकुर महेश्वरसिंह ग्राम विकौलिया डाकखाना विसवाँ, जिला सीतापुर के संग्रह में है।[4]

(घ) श्री गोसाईं चरित दासान्यदासकृत। कानपुर के प्रो० अयोध्यानाथ शर्मा की कृपा से मुझे एक 'गोसाईं चरित' की एक प्रतिलिपि के दर्शन हुए, जिसे डॉ० भगवतीप्रसादसिंह ने, आवेश भवन लंका बनारस में १९५६ ई० में ३ अक्तूबर के ८ बजे प्रातःकाल से ७ अक्तूबर के ९ बजे प्रातःकाल तक पूरा किया था। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है —

इति श्री गोसाईं चरित दासान्यदास विरचितायां सम्पूर्णम् शुभमस्तु।

इति श्री दसरथ मोहन शुक्ल के योगनी अस्थानगढ़े शुक्ल पक्ष तिथी संम्वं शुक्रवासरे संवत्त १९२१

राम राम राम राम राम राम
राम राम राम राम राम राम
राम

दोहा—शुक्रवार तिथि सप्तमी शुक्ल पक्ष बखान।
सवत बनइस सै मकईस को पाता संवत भाय॥

---

१ हिन्दी काव्य में विशुद्ध सम्प्रदाय पृ० ६ ६१
२ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० ६४८
३ तुलसीदास पृ० ६४ ४ वही, ५ वही

उक्त दोहा पुस्तक के १२१ वें पृष्ठ पर है। पुष्पिका से स्पष्ट है कि पुस्तक को किसी दासान्यदास ने लिखा और मोहन शुक्ल ने संवत् १६२१ में नकल किया। किन्तु हरिगीतिका संख्या १४ में भवानीदास का भी उल्लेख है जो इस प्रकार है:—

सब गुन रहित औगुन सहित तव चरन सिर बिस्वास है,
करि आस संग्या नाम की आवौं भवानी दास है।
झूठे पुरे निज दास की पंति लाज करि आये सबै
निज दिसि निहारि पुरारि प्रिय दिवि लीजिये अबहूँ अबै ॥१४॥

क्या दासान्यदास और भवानीदास एक ही व्यक्ति हैं? श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत से पता चलता है कि हाँ।[1]

श्री गोसाईं चरित के लिए प्रेरणा इस प्रकार मिली थी —

राम चरित रस पंग जे प्रभु पद दृढ़ असनेह
श्री गोसाईं अनुकूल तिन तिनहिं परम प्रिय नेह।
श्री अवधेस आज्ञा हुई भक्तन के गुन गाउ
सब तापर के तरन को नाहिन आन उपाउ ॥१९॥
ताते कछुक प्रसंग सुभ सुमेउ जो संत प्रसाद
संत सिरोमनि हू कई आगवा रामप्रसाद ॥२०॥
श्री स्वामी नन्दलाल ब्रह्मरत राम परायण
सुघर सलोनो दास ब्रह्म कुल के सुखदायन।
श्रीमत श्रीधराम जिनहिं कुल कमल दिवाकर
अथवा नाम प्रभु आपु भनी तन धरे कृपाकर।
प्रथम कछुक वंदन किये श्री गुरुदेव जो परमहित
अमित दानि नर रूप हरि तिन भगती की कहानित।
श्री रामचरन दास मुनीस प्रिय जन स्वामी के
तिनके गुन अविराम भरति सब विधिनीके।
श्री हीरामनिवास जो तिनके गुन मंडित
सात्त्विक रति राम ज्ञान आचारज पंडित।
तेहि कुल कैरव सुखानिधि रामप्रसाद प्रकास निय
हित चरन विषय रस अवध बसि श्री स्वामी के सुखि किय ॥२५॥
मोहि आपन कर जानि मानि कुल कानि पच्छ धर
नतब विषय अपराध सीन हो पात्र कृपाकर।
विविधि प्रसंग सुनाइ गोसाईं के सुखदायक
भो निसोच कर चरित करहु भाषा गुन गायक।
आज्ञा सिर धर लई जोरिकै तिन की कवि कोविद चरन
लखि चूक छमा कीनी अबुध जानि दास आपनी सरन।

सोरठा—यद्यपि सब बिधि हीन छोटो मोटो दीन अब
करहिं छोह परवीन जैसौं कैसो दास लखि।

---

१ सरस्वती भाग ४१ संख्या १ पृष्ठ ३१

इस प्रति में पचास विषय वर्णित हैं, यथा—गणेश, शिव राम वाल्मीकि सन्त और हनुमानजी की स्तुतियाँ, गोसाईं चरित निर्माण की प्रेरणा, स्वामी रामप्रसाद का आदेश गुरु परम्परा, स्वामी रामानन्द, अनन्तानन्द कृष्णदास तथा अग्रदास की वन्दनाएँ, माया हनुमान्‌जी, मीराबाई नन्ददास, वृन्दावन बंशीवट रामपुर, आदि के प्रसंग।

(ङ) डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने उस 'गोसाईं चरित' की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो १९२४ ई॰ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से रामचरितमानस पर, रामचरणदासजी की वृहट्टीका के तृतीय संस्करण के साथ प्रकाशित हुआ था।[1] श्री चन्द्रबली पाण्डे की आस्था इस चरित में अधिक थी और उन्होंने अपनी रचना "तुलसी की जीवन भूमि" के लिए इसका उपयोग बहुलता से किया है। इस चरित को भवानीदास ने स्वामी रामप्रसाद की प्रेरणा से लिखा अतएव बहुत संभव है कि यह चरित और वाल्मीकिदास वाला दोनों ही न्यूनाधिक समान हैं। चरित के लिए प्रेरणा कैसे मिली उसका निर्देश करने के लिए डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने जो उद्धरण दिया है[2] वह उक्त उद्धरण के "श्री स्वामी नन्ददास जाति दास अपनी शरण" के समान है यद्यपि कहीं-कहीं वर्तनी और नाम में किंचित् अन्तर भी है।

'चरित' का निर्माण काल ? डॉ॰ गुप्त ने ऊहा-पोह के अनन्तर इस चरित को अनुमान सं॰ १८१० की रचना माना है।[3] हमें भी उसे तत्कालीन रचना मान लेने में कोई आपत्ति-विशेष नहीं। उसकी प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता से तोरों-सामग्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि, जैसा कि डॉ॰ गुप्त लिखते हैं यद्यपि इसमें कवि के समकालीन अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का उल्लेख है तथापि उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में और उनसे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में हमें वह आवश्यक विस्तार नहीं मिलता जिसकी सहायता से उनकी ऐतिहासिकता का परीक्षण हो सके क्योंकि चरित भर में किसी तिथि का उल्लेख नहीं।

चरित के गद्यानुवाद उर्दू-नागरी में—'श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस जीवक के सरस्वती में[4] एक लेख लिखा। यह चरितामृत भवानीदास-कृत 'गोसाईं चरितामृत' का उर्दू गद्यानुवाद है जो काकोरी (लखनऊ) के निवासी लालजी कवि के द्वारा संवत् १९४३ वि॰ अर्थात् मई सन् १८८६ ई॰ पूर्ण हुआ। इसकी छपाई नवाबगंज (जिले बाराबंकी) में हुई। यह पुनः अयोध्या के कनक भवन के निकट तुलसीराम के द्वारा उर्दू से नागरी रूप को प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ, डॉ॰ वार्ष्णेय की सूचना के अनुसार, गोस्वामी तुलसीदास के हनुमद्दर्शन से आरम्भ होता है और भवानीदासजी ने तुलसीदास जी के जन्म जन्म-स्थान आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा किन्तु अनुवादक ने, अवश्य अपनी

---

१ सरस्वती भाग ४२ संख्या १ पृ ४०
२ वही, पृ॰ ४२
३ वही पृ॰ ४३
४ वही, पृ ४४
५ वही, पृ॰ ३२ ३६

और से तुलसीदासजी का जन्म राजापुर में संवत् १९८३ में और मरण काशी में १६८० वि० में लिख दिया है।[1]

चरित्र के प्रसंग—इस ग्रन्थ में साठ प्रसंग हैं जिनमें से कुछ ये हैं—हनुमद्दर्शन अयोध्या-निवास माधवमन माया से मिलने वृन्दावनगमन वृन्दावन में कृष्णमूर्ति का रामर्मूति में परिवर्तन तत्रस्थ ईर्ष्या वृन्दावन में राम की प्रस्तरमूर्ति की स्थापना; कन्नौज के कनौजिया और गोस्वामीजी के गुरु भाई नन्ददास का आना और ठहरकर वापस जाना अयोध्या-माहात्म्य सुनाकर तुलसीदासजी का अयोध्या से वृन्दावन लौट जाना अयोध्या में रामर्मूति के सामने नृत्य करने वालों को 'गीतावली' की भेंट कलि-कुचाल के कारण अयोध्या छोड़कर काशी जाना; रामर्मन्दिर-निर्माण और रामायण-प्रचार माया में 'रामचरित मानस' के निर्माण से काशी में पंडितों का विरोध मधुसूदन स्वामी की सम्मति और पंडितों की क्षमा याचना भैरव त्रास हनुमत्सहायता चोरों का प्रयत्न और राम-लक्ष्मण की चौकसी उपदेश के द्वारा धनिका जमींदार पंडित गोपी नीच आदि का उद्धार काशी से जनकपुर यात्रा और ब्राह्मणों को मार्ग में ग्राम दिलाना प्रत्यावर्तन जनकपुरी प्रेत की मुक्ति प्रेत के साथ नैमिषारण्य की यात्रा और कोष का उत्खनन कर तीर्थोद्धार में धन का व्यय काशी से चन्दारपट्ट विश्वाचल की तराई से प्रयाग मुरारिदास और मधुकरदास से भेंट; चित्रकूट-दर्शन रघुनाथजी की लीला और मृगया विहार से आनन्द प्राप्ति राम घाट में हरियानन्द से भेंट और राम-दर्शन चित्रकूट के एक ग्राम में किसी ब्राह्मण के दारिद्र्य का मोक्ष, चित्रकूट से दिल्ली बादशाह को करामात न दिखाने के कारण बन्धन और हनुमत्कृपा से मोक्ष शाहजहाँबाद की स्थापना किसी ब्याले की माया-मुक्ति वृन्दावन को प्रस्थान संदीले में नन्ददास से भेंट भीकम सिंह कानूनगो की उपेक्षा मलिहाबाद में रामोपासक वैष्णव भाट को 'राम चरित मानस' की प्रति की भेंट मलिहाबाद से रसूलाबाद बह्मावर्त संदीला पिहानी मिसरिख और रामपुर (मथुरा) होते हुए अयोध्या को प्रस्थान लाला भीकम सिंह की शरणागति काशी में हैजे का प्रकोप काशी-निवासियों को शरणापत्ति और हनुमत्स्तुति के द्वारा प्रकोप की शान्ति मीराबाई का पत्र तथा आगमन मंत्र कवि का व्यंग्य और बादशाह के हाथी के द्वारा उसकी मृत्यु जहाँगीर का आगमन और भेंट-स्वीकृति के लिए उसकी प्रार्थना तुलसीदासजी के शरीर में फोड़े और बादशाह की उक्ति कि मेरे साथ 'हकीम डाक्टर अँधेरज'[2] बहुत हैं उनकी दवा कर लें किन्तु गोस्वामीजी की असम्मति।

सूचना-बहुलता—महानीदास के गोसाईं चरित की विशेषता यह है कि उसमें गोस्वामी तुलसीदासजी की यात्राओं तथा प्रसंगों का वर्णन-बाहुल्य है। उनमें ऐतिहासिक क्रम का कहाँ तक पालन और उल्लंघन हुआ है यह स्वतन्त्र अनुसंधान और निर्णय का विषय है। फिर भी तुलसी-सम्बन्धी इन सूचनाओं में सत्यांश का आधिक्य होगा ऐसा हमारा अनुमान है।

---

१ श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, सरस्वती भाग ४२ संख्या १ पृ० ३४

२ वही पृ० ३६

संदिग्ध प्रामाण्य—फिर भी 'गोसाईं चरित' के प्रामाण्य को आँख मूँदकर मार्ग में स्वीकार कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि उसमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो तथ्य से सर्वथा दूर हैं और तिथियों के अभाव के अतिरिक्त वह कुछ कारणों से प्रमाण निरपेक्ष भी नहीं यथा —

(१) प्रथमतः भवानीदास ने रामपुर वाले नन्ददास का तादात्म्य बरेली वाले नन्ददास से कर दिया है जो अमोदावक है। इन दोनों के बीच 'शिवसिंह सरोज' में असम-प्रसंग विद्यमान हैं। नाभाजी ने स्वयं नन्ददास को रामपुर का बताया है और 'वैष्णव वार्ताओं' में रामपुर वाले नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का भाई (और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी दोनों को भाई) घोषित किया है जिसकी सविस्तर चर्चा तोरों-सामग्री के विवेचन के समय की जायगी।

(२) द्वितीयतः यह बात इतिहास के विरुद्ध है कि मंत्र कवि की मृत्यु हाथी के पैर से कुचल कर जहाँगीर के समय में हुई थी। उसे तो औरंगजेब ने सदोष कवित्व के लिये हाथी से कुचलवाया जैसा कि श्री संतुमसाद बहुगुणा[1] और डा० माताप्रसाद गुप्त[2] समझते हैं।

(३) तृतीयतः जहाँगीर के समय में 'अंग्रेज' डाक्टर बहुत कहाँ थे? क्या तब तक अंग्रेज डाक्टरों की और अंग्रेजी चिकित्सा की इतनी धाक जम गई थी कि जहाँगीर ने तुलसीदासजी को उनके इलाज का सुझाव दिया?

(४) चतुर्थतः शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में गोस्वामीजी के जीवन चरित का उल्लेख तो किया है किन्तु उसे बेनीमाधवदास की रचना बताया है भवानीदास की नहीं। यद्यपि मूल गोसाईं चरित में गोस्वामीजी का जन्म १२५४ में बताया गया और 'गोसाईं चरित' में गोस्वामीजी के जन्म की चर्चा ही नहीं तथापि शिवसिंह सरोज में जन्म संवत् १२८३ वि० दिया गया है। भवानीदास ने 'गोसाईं चरित' में बेनीमाधवदास के नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं किया।

(५) पंचमतः भवानीदास की रचना डॉ० गुप्त के अनुमान से संवत् १८१० के लगभग हुई। तब से उसके हिन्दी उर्दू गद्यानुवाद और छोटे-बड़े अनेक संस्करण भी हो गये। 'गोसाईं चरित' के दोनों बड़े संस्करणों में विषय का न्यूनाधिक्य परम विचारणीय है किसी में एकाध तो किसी में साठ[4]।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि 'गोसाईं चरित' का अपना महत्त्व है तथापि उसका प्रामाण्य निरपेक्ष नहीं।

(ङ) गौतम चन्द्रिका

प्रारम्भिक—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने २०१२ वि० की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'गौतम चन्द्रिका' का एवं तद्रचित गो० तुलसीदास के चरित का सोदाहरण

---

१ बेरिया पृ० २५१ आर्य १९५ २ तुलसीदास, पृ० ४४ ३३,३६
३ श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, सरस्वती भाग ४१ संख्या १, पृ० ३३
४ श्री गोसाईं चरित बाबाबरहा लिखित
५ श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत सरस्वती पृ० ३४, भाग ४१, संख्या १

परिचय हिन्दी जगत् के समक्ष विचारार्थ उपस्थित किया है। अतएव कुछ निवेदन है।

तुलसी-वृत्त की मुख्य बातें—मिश्र जी ने तुलसीदास-सम्बन्धी वृत्तान्त की कुछ बातें इस प्रकार अभिव्यक्त की हैं —

(१) काशी में शिव केदार के समीप आनन्द कानन ब्रह्मचारी रहते थे, उनके यहाँ 'गौतम चन्द्रिका' के (तथा-कथित) रचयिता कृष्णदत्त मिश्र भी पढ़ते थे। वर्षा ऋतु में, एक बार तुलसीदास आये और उन्होंने ब्रह्मचारी जी के चरणों में प्रणाम कर अपने गुरु नरहरि का एवं अपना वृत्तान्त बताया। (२) नरहरिजी अयोध्या से नर्मदा तट चले गये थे, और तुलसीदासजी ने यमुना तटपर यमुना नाम की किसी स्त्री से विवाह कर लिया था। (३) कृष्णदत्त ने तुलसीदास को अपना परिचय दिया और माता पिता के स्वर्गवासी होने की बात कही जिससे वे दुःखी हुए। (४) बाढ़ आने पर तुलसीदासजी ने गंगा जी को शान्त किया। (५) उधेनीदास ने सूर और मीरा के कृष्णभक्ति-सम्बन्धी पद गाये, और इस पर तुलसीदासजी ने भी कृष्ण की प्रशस्ति के पद गाये। (६) कृष्ण की कीर्ति-कथा कहकर तुलसीदासजी 'गोसाईं' हो गये लोगों ने उन्हें दोनों पतित पुनीत आदि कहना आरम्भ किया जिस पर उन्होंने राम के पतित-पावन होने की बात कही। (७) तुलसीदासजी ने एक बार मिथिला में जाकर विद्यापति के वंशज रमाबन्धु ठाकुर के किसी व्यंग्य के प्रत्युत्तर में कहा था कि आप तो जी जानकी जी के नाते हमारे मामा हैं और मिथिला मेरी ननसाल है। (८) तुलसीदासजी के सत्संगी थे वे काशीनाथ पंडित, जयसिंह राजपूत मंगाराम सत्संगी कैलासकवि उधेनीदास संगीतज्ञ भजनमाला चमराम नगरसेठ, छियाराम तपोनी नाथू नाऊ, राजू मल्लाह, केशवन रैदास, दोनी धोबी हरि हरवाह और छत्री बसन कुशाहा, मनवान् ब्राह्मण तोडर, कमच्छा के मेवा बसन आदि। (९) सरयू-घाघरा के संगम पर शूकरक्षेत्र में जो शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम है नरहरि स्वामी रहते थे जो शाण्डिल्य गोत्र के और तुलसीदास के गुरु थे और जो परिचित वय में नर्मदा तट रामेश्वर होते हुए शूकरक्षेत्र लौटे और बुढ़ापे के कारण काशी आ बसे तथा कैलास-वासी हुए; उनका श्राद्ध तुलसीदासजी ने किया। (१०) तुलसीदासजी २८ वर्ष की अवस्था में (जबकि कृष्णदत्त १८ वर्ष के थे) काशीनाथ पंडित, कैलास कवि मेघानन्द तथा अन्य लोगों के साथ मानसरोवर की यात्रा को गये और उन्होंने ३१ वर्ष के वय में लौटकर अयोध्या में 'रामचरित मानस' का निर्माण किया। (११) उन्होंने मैथिला रम्य गंगासागर और जगन्नाथ की यात्रा की रामेश्वर में गंगाजल चढ़ाया तथा द्वारका प्रभास कुरुक्षेत्र वृन्दावन नर्मदातट की यात्रा के अनन्तर काशी आकर रामायण के किसी व्याख्या को वाल्मीकि मानकर पूजन और रामराज लीला का विस्तार किया। (१२) तोडर की मृत्यु पर गोस्वामीजी उनके लिए दुःखी हुए। उन्हें (संवत् १६६८ के पश्चात्) आगे आषाढ़ में बाहु पीड़ा हुई, जो आगे आश्विन में दूर हो गयी थी। तदनन्तर तोडर के पुत्र जगंदराम तथा रामभद्र के पुत्र कन्हईराम के झगड़े में गोस्वामीजी ने पंच बनकर काशी से समुचित निर्णय कराया। (१३) (संवत् १६६८ के पश्चात्) रुद्रवीसी और मीन की सवीचरी में काशी की भयावह स्थिति हो गयी थी, किन्तु रामभजन के द्वारा गोस्वामीजी ने महामारी को शान्त कर दिया। (१४) संवत्

१६८० में तुलसीदासजी ने श्रावण कृष्णा तीज को ८० वर्ष की आयु पाकर नंदा लाभ किया। (१५) तुलसीदासजी की रचना का अष्टांग योग है रामगीतावली, पदावली कृष्णगीतावली बरवै दोहावली सुमुन (सगुन=सकुनावली=रामाज्ञा प्रश्न) कवितावली सोहिलो मंगल।

साधारण विवर्त—जिस प्रकार 'अटरामायन' में तुलसीदासजी का जीवन-वृत्त पुस्तक की समाप्ति पर दिया गया है ठीक उसी प्रकार 'गीतम चन्द्रिका' में भी वह अन्त में दिया गया है और जिस प्रकार पहला वृत्त भ्रामक है वैसा ही दूसरा भी। 'गीतम चन्द्रिका' की भाषा भी कहीं-कहीं ऐसी अटपट है कि यह स्पष्ट नहीं होता कि लेखक क्या कहना चाहता है। अस्पष्टता कभी-कभी सुचिंतित भी होती है, जिससे मनमाना अर्थ ग्रहण किया जा सके। एक अंग्रेजी उक्ति के अनुसार महान् वह है जिसकी बात समझ में कम आवे। इससे गीतमचन्द्रिका-कार को महाकवि कह देना स्यात् अनुचित न होगा। स्वाली पुस्तक न्याय से

'हमहूँ पुत्र आसन करि बासा। निचिंत करहुँ बेद अभ्यासा।

इस उद्धरण में 'हमहूँ 'करहुँ' को आर्ष (आर्केइक) प्रयोग मान लेना चाहिए, क्योंकि लेखक 'सामर' तो ये ही के स्वयं कहते हैं सामर कृष्णान्त मन माहीं। कतिपय खटकने वाले उल्लेख तथा प्रबल अन्तःसाक्ष्य 'गीतम चन्द्रिका' की चन्द्रिका का अपहरण कर लेते हैं, जिनकी चर्चा अभी की जायगी।

लिपिकरण की विलक्षणता—श्री चौधरी सुखीसिंह ने 'गीतम चन्द्रिका'-प्रणेता तुलसी-विवरण को अपनी बहियों के दाएँ-बाएँ पार्श्वों पर नकल किया था। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने चौधरी जी से पूछा था कि आपने बहियों पर क्यों लिखा? चौधरी जी ने उसका जो उत्तर दिया वह जचता नहीं। क्योंकि यदि पाण्डु लिपि ग्रन्थ-स्वामी के द्वारा ही गयी थी तो उसकी अनुपस्थिति में पुस्तक की प्रतिलिपि बहियों के हाशियों पर ही क्यों? वह तो यथावत् की जा सकती थी। यदि ग्रन्थ-स्वामी वहाँ उपस्थित रहता था और उसे यह अभीष्ट न था कि ग्रन्थ की प्रतिलिपि की जाय जैसा कि चौधरी जी का कथन है तो वह उसे वहीं पर भी क्यों नकल करने देता? क्या ग्रन्थ-स्वामी बोला जाता रहा और बहुत समय तक?

निर्माण काल—'गीतम चन्द्रिका' में उल्लेख है कि यह पुस्तक बो० तुलसीदास की वर्षी के दिन अर्थात् श्रावण कृष्णा तृतीया को संवत् १६८१ में, पूर्ण हुई। 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है

संवत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
श्रावण स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो सरीर।

इसके अनुसार तुलसीदासजी का स्वर्गारोहण श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को संवत् १६८० में हुआ। 'गीतम चन्द्रिका' स्यात् रूपान्तर से इसी का समर्थन इस प्रकार करती प्रतीत होती है

संवत सोरह सै एकासी तुलसी बरषी असी प्रकासी।
सावन कृष्णा तीजि तिथि बाई, यह गीतम चन्द्रिका बुराई।

यहाँ उद्धरण में वार का उल्लेख नहीं हुआ है, अतएव इस तिथि के शनिवार का प्रश्न

ही नहीं उठता। किन्तु 'मूल गोसाईं चरित' प्रदत्त तुलसी-निधन-तिथि तो बचना से अक्षुण्ण सिद्ध है जैसा कि निवेदन किया जा चुका है।

पूर्वापर-हीनता—'गौतम चन्द्रिका' में पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह नहीं है अतएव घटनाओं के इधर-उधर हो जाने का उत्तरदायित्व किस पर हो ?

पूर्वापर संगति रहित सब्द करत अति ग्रान।
लखन बचन हव जोरि अति तीनु सब्द अनमान॥

अतः 'चन्द्रिका' के ग्रन्थकार कृष्णदत्त मिश्र तो गोस्वामीजी के समकालीन ही नहीं, युद्ध-भाई भी थे। यदि वे गोस्वामीजी के विषय में 'प्रत्यक्ष' के आधार संगति-पूर्वक पूर्वापर का निर्वाह कर देते तो लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष के पश्चात् किसी अनुसंधित्सु को 'अनुमान' की क्या आवश्यकता पड़ती ? अनुमान तो अनुमान ही है।

युद्ध भ्रातृत्व—तुलसीदास जी को कृष्णदत्त मिश्र ने अपना युद्ध-भाई बताया है। काशी में शिव-केदार के निकट आनन्द कानन नामक वेदान्ती ब्रह्मचारी रहते थे। उन्हीं से कृष्णदत्त पढ़ते थे। गोस्वामीजी भी यमुना तटस्थ यमुना नामक पत्नी को छोड़कर ब्रह्मचारी जी की शरण आकर और अपनी युद्ध हम कहें प्रतिपालइ' कहकर उनके शिष्य बन गये।

'आनन्द कानन' कौन ?—पर 'आनन्द कानन' से क्या तात्पर्य ग्रहण किया जाय ? क्या यह नाम 'गौतम चन्द्रिका' के लेखक कृष्णदत्त मिश्र के गुरु का द्योतक है अथवा किसी वास-पार्क का ? युद्ध-रूप से परिचय इस प्रकार है

ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहत दक्षिनी द्विज कुलदीप।
आनन्द कानन लहत सिव केदार समीप॥
युद्ध देव देवाँव के चारंगत श्रीमान।
ब्रह्मसुख ज्ञाता परम नामत एहि समान॥

× × ×

बहुतक सिष्य ब्रह्मचारीके। सुमति सुसील सरल सुठि नीके॥
पूर्व मध्य उत्तर मीमांसा। सुनहिं सबन्हनहिं गुरु पासा॥
नाइ विपुल विद्या फल बानहिं। गुरु आनन्द कानहिं मानहिं॥
हमहूँ गुरु आनन्द करि नाता। विचिरत करहूँ वेद अभ्यासा॥

जब तुलसीदासजी के पहले युद्ध नरहरि नर्मदा से काशी आये तो कृष्णदत्त के शब्द हैं :

जय गज गंजन नरहरी सुकरवेत विहार।
आरम्भक सुकमा भरी काशी पहुँचे आइ॥
रमि रमाय आनन्दवन बए महा सिव लोक।
बुन्दाद उत्तर कृपा करि तुलसी भए असोक॥

अतएव संदेह होता है कि 'आनन्द कानन' किसी व्यक्ति का नाम है अथवा किसी वन का ? यदि कहा जाय कि आनन्द वन में निवास करने वाले व्यक्ति का तो प्रश्न उठता है कि क्या काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती का ही दूसरा नाम आनन्द-कानन है क्योंकि 'गौतम चन्द्रिका' में निम्नलिखित श्लोक आनन्द कानन जी के मुख से निःसृत हुआ है

"मुनि आनन्द कानतनु आवे। मंदन मन सहि मद अधिसावे॥
आनंद कानने हृदिमन् अंबजस्तुलसी तव
कविता मंजरी मम राम-भ्रमर-भूषिता।"

जनश्रुति के अनुसार तो यह श्लोक मधुसूदन सरस्वती जी के मुख से तुलसीदासजी की प्रशंसा में अभिव्यक्त हुआ था, जिसका उल्लेख अनेक विद्वानों ने किया है, रामदास गौड़जी ने भी [१]। जो हो, 'मौलव चन्द्रिका' में तुलसी प्रशंसक मधुसूदन सरस्वती का उल्लेख विवरण-साहित्य में विद्यमान नहीं। उनके श्लोक को अन्य व्यक्ति के मुख से कहलाने का क्या अभिप्राय है यह कृष्णदत्त मिश्र जानते होंगे।

सरयू-पावन पर नरहरि—'मौलव चंद्रिका' के अनुसार तुलसीदासजी के पहले गुरु शाण्डिल्य-गोत्रीय नरहरि स्वामी ने जो सरयू पावन के संगम पर बराहक्षेत्र में निवास करते थे। इन्होंने नर्मदा तट, रामेश्वर आदि तीर्थों में विचरण किया और अन्त में काशी में आकर मोक्ष लाभ। उसी समय कृष्णदत्त मिश्र के पुत्र भी ब्रह्म-पद लीन हो गये और तुलसीदासजी ने भी उनके चरणों की विधिवत् सेवा की थी।

सरऊ सरयू पावनी सोऊ। संगम तीर्थराज सम लोऊ
बसति क्षेत्र एकादसि माही। तहाँ विपुल नरहरि बहाही
तहँवा तरुन लोक विख्याता। सुखद मोक्षपुत्र निर्माता
सांडिल्य रिषि आसन बन पावा, कहँ-कहँ सरवारिन्ह कर बासा
राम-भक्त भूमि अधिकारी। कमलन बसन धर्म अनुसारी
सांडिल्य गोत्रज नरहरि स्वामी। ज्ञान निधान भक्ति पथ गामी
रमि नर्मदा कुटी अवराए। रामेश्वरहिं पुनि पुनि आए
बदरय प्रयागम धर्म विसर्जन। काहे करम मरति बस मर्जन
अब यह मंजन नरहरी सूकर क्षेत्र विहाइ
आरम्भक सुकमा भरी कासी बहुरि आइ
रमि रमाय आनंदवन गए महा शिवलोक
पुर पद उत्तर हृदय करि तुलसी भए असोक
अब गुरु भावन कृष्ण लहि भए ब्रह्मपद लीन
तिन्ह पद की आराधना तुलसिहुँ विधिवत कीन।

इन उद्धरणों में बराह क्षेत्र की स्थिति सरयू पावन के संगम पर बताई गयी है, और नरसिंहजी को शाण्डिल्य गोत्र का। सोरों-सामग्री के अनुसार सूकरक्षेत्र गंगातट पर और नरसिंहजी कनिष्ठ गोत्रीय और गुहस्थ थे। कृष्णदत्त अपने पुत्र की महिमा के लिए विशेष चिंतित और स्यात् तुलसीदास जी के द्वारा उनका चरण-स्पर्श कराके आनन्द लाभ करते-से प्रतीत होते हैं एक स्थान पर वे लिखते हैं

हेरेउँ गुरु पद कोजि न पाएउँ। तकि तव चरन सरन मैं आएउँ।
अब दृढ़ ज्ञान कछू बाँधिन आनहु। अनुपी गुरु हम कहँ प्रतिपालहु॥

---

१. 'रामचरित मानस की भूमिका' में तुलसी चरित चन्द्रिका पृष्ठ १६

अन्यत्र वे लिखते हैं

मय पुत्र मानव कुण्ड नहिं भए ब्रह्म पद लीन।
तिन्ह पद की आराधना तुलसिहुं विधिवत् कीन॥

उस समय तुलसीदासजी २८ वर्ष के थे और उन्होंने तब तक रामायण का निर्माण नहीं किया था क्योंकि कुण्डदत्त के अनुसार 'राम चरित मानस' के रचना काल के समय गोस्वामीजी ३१ वर्ष के थे। सूकर-क्षेत्र की स्थिति को सरयू-घाघरा के संगम पर बताना उसका अन्य परिचय देना वहाँ सरयूपारीणों की बस्ती का उल्लेख करना और उस भूमि को राम प्रवत्त बताना 'गौतम चन्द्रिका'-कार की दूरदर्शिता को प्रकट करता है, क्योंकि उनके इस लेख से तुलसी के सम-सामयिक कवि केशव का (कविप्रिया, २, १३ में) यह लेख झूठा सिद्ध हो जाता है कि सनाढ्य ब्राह्मण रामचन्द्रजी के पुरोहित थे और उन्हें उनसे बहुतर दान दान में प्राप्त हुए थे एवं जिसे के अंगातीरस्थ सूकरक्षेत्र का भी निराकरण स्वतः हो जाता है।।।

गौतम ब्राह्मण ?—कहीं तुलसीदासजी कुण्डदत्त मिश्र के कोई सगे-सम्बन्धी तो न थे ? क्योंकि प्रथम मिलन के अवसर पर जब तुलसीदासजी को कुण्डदत्त के वंश का परिचय मिला तो तुलसीदासजी व्याकुल होकर बोल उठे थे—

हम कर जोरे शीश नवाए, माथे बोल कुल पाँडे बताए
सुनी सहिदानी बानी तुलि, तुलसी व्याकुल बोल उठे पुनि
हा कुलदेव गौतमी माता तोहि उचित कस प्रसेउ कुल नाता।

यहाँ 'गौतमी माता' से क्या तात्पर्य है ? क्या गौतमी तुलसीदासजी की माता थीं ? स्यात् नहीं क्योंकि कुण्डदत्त आगे लिखते हैं

राम कृपा तुलसी जनित तुलसी विरचा सोइ
मैं हुलराविति सुरधुनी, जस संचल में होइ।

तो क्या गोस्वामीजी गौतम ब्राह्मण थे ? कुण्डदत्त मिश्र ने स्पष्ट तो कुछ नहीं लिखा। *किन्तु यदि ऐसा है तो यह कथन सोरों-सामग्री और राजापुर-सामग्री दोनों के ही विरुद्ध पड़ता है।*

तीर्थाटन—जब कुण्डदत्त और तुलसीदासजी का प्रथम साक्षात्कार हुआ तो उनमें से एक तो १८ वर्ष के थे और दूसरे २८ के।

तुलसी वय अठवीस बताई, मन बच बस सब भाव पनाई।

एक ने गृहस्थाश्रम संभाला तो दूसरे ने तीर्थाटन के लिये प्रस्थान किया

द्वितीयाश्रम आश्रित हम भए, तुलसी तीर्थाटन पथ गए।

यदि गोस्वामीजी २८ वर्ष की अवस्था में आनन्द कानन की शरण में आये और अनेक सुदूर तीर्थों में घूमने चले गये तो उन्हें गुरुदेव के लिए अवसर बहुत कम प्राप्त हुआ होगा। तीर्थाटन में उन्हें एकान्त भी बहुत कम प्राप्त हुआ होगा जो तुलसी-जैसे सन्त के लिए परम आवश्यक था। 'गौतम चन्द्रिका' के अनुसार तो मार्ग में भजन-कीर्तन कथा-वार्ता वादविवाद सभी कुछ होता था और तीर्थाटन में उनके साथ अनेक व्यक्ति भी रहते थे। अस्तु, केवल तीन वर्षों में उन्होंने हरिद्वार, नर-नारायण, शिव-केदार, गंगोत्तरी यमुनोत्तरी, कैलास मानसरोवर आदि दुर्गम

तीर्थों के दर्शन कर आये और लौटकर ३२ वर्ष की अवस्था में, अर्थात् संवत् १६३१ में 'रामचरित मानस' की रचना की। तदनन्तर वे प्रयाग, नैमिषारण्य, काशी गंगासागर, रामेश्वर, कन्याकुमारी, द्वारका प्रभास सुदामापाम स्यमन्तक कुरुक्षेत्र और पुष्कर पधारे थे। वे पुष्कर से वृन्दावन, नर्मदातट और गया होते हुए काशी लौट गये।

वल्लभ-प्रभाव—पुष्कर से तुलसीदास जी वृन्दावन आये थे।

तहँ ते चलि वृन्दावन आए, तुलसी रति जमुना उमगाए
छवि सिंगार मन दामिनि सोभा निरखत वृन्दावन मन लोभा।

यमुना के लिए 'रति' शब्द का प्रयोग कितना भावपूर्ण है! कृष्णदत्त के अनुसार यमुना' गोस्वामीजी की पत्नी थी जो यमुना-तट की रहने वाली थी। पता नहीं कृष्णदत्त क्या समझाना चाहते हैं वह राजापुर की थी अथवा वृन्दावन की? जो हो। गोस्वामीजी वृन्दावन में 'वल्लभ भक्ति' और 'वामवत' से परिपुष्ट हुए किन्तु गोस्वामीजी तो पहले से ही इन दोनों से प्रभावित हो चुके थे, जैसा कि 'रामचरित मानस' की रचना से भी स्पष्ट है। सोरों-सामग्री के अनुसार वल्लभाचार्यजी तुलसी के बचपन में एक-दो बार सोरों पधारे थे। कृष्णदत्त मिश्र ने इस आख्यायिका को भूल से अथवा जान बूझ कर छोड़ दिया है कि उनके निमित्त कृष्णमूर्ति ने राम के रूप में दर्शन दिया था। अस्तु। तुलसीदासजी वृन्दावन से काशी लौट गये और वहाँ उन्होंने (स्यात् कृष्णलीला के प्रचलन पर) रामलीला का प्रचार किया। वे भगवान् शिव कार्तिकेय विदुमाधव और हनुमान्‌जी की पूजा करते थे और जब वे दीपावली की शोभा का नाम करते तो कृष्णदत्त मिश्र नगाड़ा बजाते थे

दीपावलि लखि, तुलसी गावत, कृष्णदत्त दुन्दुभी बजावत।

अन्यत्र तो कृष्णदत्त मिश्र ने अपने लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग किया है।

सतसंगी—तीर्थाटन में गोस्वामी जी के साथ कई व्यक्ति रहते थे।

पंडित कमती कवि कैलासू नेमा जमत पजोंही दासू
साधु बृद्ध अरु बुधा अनेका तुलसी संग लये गहि टेका।

तुलसीदासजी के सतसंगियों की सूची इस प्रकार है

पंडित काशीनाथ महामति। समरसिंह रजपूत धनपति
पंचाराम परम सतसंगी। कवि कमाल कविरत उमंगी
पजनी संपति प्रवीना। भजन गोप हरिवंस कुलीना
नगर सेठ सीताराम उजागर। तांबूली सियराम सुनागर
नाबू नापित केवट रामू। अरु रैदास बेसावन नामू
बोधी गोड़ हरी हरबाहू। भाड़ी मीर, जसन जोलहाहू
कहाँ कहाँ लगि नाम गनाई। काशी विश्वनाथ प्रभुताई।

तुलसी साहब ने भी तुलसीदासजी के कुछ सतसंगियों का उल्लेख 'घट-रामायण' में किया है, जो 'मौलम चन्द्रिका' में नहीं है। इस विषय में दोनों के उल्लेख नितान्त भिन्न हैं। तुलसी साहब ने तुलसीदास के पट्ट शिष्य काशी-निवासी 'हिरदे अहीर' का उल्लेख 'घट-रामायण' में इस प्रकार किया है

हिरदे अहीर काशी का बासी, रहे राजापुर नौकर पासी ।
सोहू प्रति दिन दरसन को आवै, प्रीति बड़ी हित कहा न जावै ।
राति दिवस दिन-दिन रहै पासा, तुलसी बिना और नहिं आसा ।
एक दिवस यह ऐसी रीती, काशी गये बहुत दिन बीती
हमरा चित हिरदे में बासी, हम चलि गये तपमहुँ काशी ।

किन्तु 'मौक्तिक चंद्रिका' में 'हिरदे अहीर' का कोई उल्लेख नहीं, और तद्वर्णित सत्संगियों का 'घट रामायण' में नहीं यद्यपि दोनों रामायणियों का सत्व होना भी असंभव नहीं ।

प्रसंगति—एक बार जब बंगाली में बाढ़ आई थी तो कृष्णदत्त मिश्र के अनुसार, तुलसीदासजी ने अपनी प्रार्थना के द्वारा उसे शान्त किया था इससे गोस्वामी जी का गौरव बढ़ गया था । अतएव कोई आश्चर्य नहीं, यदि तोडर और कृष्णदत्त के पिता भगवान् भी गोस्वामीजी के भक्त और सत्संगी थे

ब्राह्मन काशीवार जो नाम पितु तनु भगवान
तोडर सबन समान जो तुलसी बाम बितान ।

कहने का तात्पर्य है कि पिता-पुत्र दोनों ही तुलसीदासजी के भक्त थे । पर भगवान् कब और कैसे भक्त हुए ? तुलसीदासजी तो सीधे यमुनातट से काशी आये थे और वहाँ उनका और कृष्णदत्त का जो वार्तालाप हुआ उससे स्पष्ट है कि कृष्णदत्त के माता-पिता मर चुके थे

हम सनि तुलसी पूछन लागे ।
कुलपति शासन सेवा आलक । तुम केहि कुलपालक के बालक ।
हम कर जोरे सीस नवाए । नाउँ गोत कुल नाँउँ बताए ।
सुनी सहिदानी बानी सुनि । तुलसी व्याकुल बोलि उठे पुनि ।
हा कुल देव गोसनी माता । तोहि सति कास प्रसेक कुल नाता ।
पितु सपना सुधुनि मह जाई । अति परिवाल सिमृति नसि जाई ।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्द हैं "श्री कृष्णदत्त ने अपना परिचय दिया और माता-पिता के स्वर्गवासी होने की बात कही" श्री कृष्णदत्त मिश्र के शब्द उद्धरण को स्पष्ट करते हैं कि साक्षात्कार के तुरन्त पश्चात् कृष्णदत्त मिश्र और तुलसीदासजी का परिचय हुआ और कृष्णदत्त मिश्र ने उन्हें अपने माता-पिता के विगत होने की सूचना दी । यदि यह बात ठीक है तो कृष्णदत्त के पिता भगवान् किस प्रकार और कब तुलसीदासजी के सत्संगी सिद्ध होते हैं ? किन्तु कृष्णदत्त ने अपने पिता की भक्ति तुलसीदासजी के सत्संगियों में की है। वे लिखते हैं

तुलसी सतसंगी बहुतेरे । सुहृदी सबन राम के चेरे
ब्राह्मन काशीवार जो नाम पितु तनु भगवान्
तोडर सबन समान जो तुलसी बाम बितान ।

यदि कल्पना की जाय कि प्रथम साक्षात्कार से पूर्व ही कृष्णदत्त के पिता भगवान् तुलसीदासजी के भक्त हो गए थे तो कब ? कृष्णदत्त उनसे नितान्त अपरिचित क्यों रहे ? तब तक गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' भी नहीं लिखा था, वे तो सीधे

यमुना तटस्थ यमुना नामक पत्नी को छोड़ कर आये हुए थे। अतएव द्वितीय कल्पना असम्भव-सी प्रतीत होती है।

'मानस' की प्राप्ति—दूसरी आपत्ति और है। वह यह है कि न पिता ने और न सुपठित पुत्र ने ही 'रामचरित मानस' की प्रतिलिपि को तुलसीदासजी के जीवन काल में, लेने की चिन्ता की। वे कैसे भक्त थे? वह रचना तो ऐसे सन्त की थी जिसकी प्रार्थना से नंदाजी की बाढ़ भी शान्त हो गयी थी और जिसके साथ उनकी घनिष्ठता भी थी। आश्चर्य है कि कृष्णदत्त मिश्र को 'रामचरित मानस' की उपलब्धि के लिए तोडर (टोडर) का घर टटोलना पड़ा।

तोडर घर ते पुस्तक पाई रामचरित मानस अपनाई।

यह द्राविड़ी प्राणायाम क्यों? उसकी प्राप्ति गोस्वामीजी से सीधे क्यों नहीं?

भ्रान्त संवत्—कृष्णदत्त मिश्र ने लिखा है कि १६६८ वि० के पश्चात् तुलसीदासजी को बाहु-पीड़ा हुई थी। किन्तु तुलसीदासजी के ही शब्दों में यह पीड़ा उन्हें रहविपत्ति के अन्तर्गत भीषण रूप में हुई

बीसी विश्वनाथ की विसाद बड़ी बारानसी। क० ७, १७०
एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। क० ७ १७७

यहाँ से सिद्ध है कि तुलसीदासजी का यह संकट-समय संवत् १६२३ से १६४२ तक बीस वर्ष रहा और इसी में मीन के शनि की थे। कृष्णदत्त मिश्र तो गोस्वामी जी के मुख भ्राता और समवयस्क होने का दावा करते हैं, उनकी उक्ति तथ्य-पूर्ण होनी चाहिए थी किन्तु उनके अनुसार १६६८ वि० के पश्चात्

बई यह बीसी बिधि सोरी, बई सनि मीन बसतक होरी।

जो ठीक नहीं है।[1] घनिष्ठता का यह कैसा दावा?

मौन?—घनिष्ठ और घनिष्ठ परिचय होने पर भी कृष्णदत्तजी को० तुलसीदास के जन्म-स्थान पितृ-नाम और वंश-परिचय के सम्बन्ध में नितान्त मौन हैं, यद्यपि उन्होंने अन्य विवरणों के उपस्थित करने में कोई संकोच नहीं किया है।

विवेचन का निष्कर्ष—'गौतम चंद्रिका' के तुलसी-विवरण की उपलब्धि संदेहातीत नहीं है। 'गौतम चंद्रिका'-कार ने बड़ी चतुरता से काम लिया है। उन्होंने संवत् पक्ष और तिथि का प्रयोग केवल एक बार किया है उसमें भी 'चार' का धारण किया है। बुद्धिमत्ता की दूसरी बात यह है कि उन्होंने घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध के उत्तरदायित्व का भार ही अपने सिर से हटा दिया। फिर भी भूल से उन्होंने यह लिख ही दिया कि सं० १६६८ के पश्चात् रहवीसी और मीन की सनीचरी का अवसान हुआ, यह प्रमाद-राहु 'चन्द्रिका' को ग्रस कर आत्मसात् कर लेता है।

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए अध्याय 'घटनाक्रम और रचना-समय'

(ख) तुलसी-प्रकास

(सोरों-सामग्री का दिठौना)

परिचय—'तुलसी-प्रकास' की मूल पाण्डु प्रति मुझे देखने को नहीं मिली। हाँ उसके कुछ छन्द कुरानशरीफ की आयतों की भाँति मुझे अंशतः मिलते रहे, जिन्हें मैं यथा-समय प्रकाश में लाता रहा। सन् १९४८ ई० में कुछ तो 'नवीन भारत' में प्रकाशित हुए और कुछ 'विशाल भारत' में भी। तब तक प्राप्त सभी छन्द 'तुलसीदास का दरबार' नामक ग्रन्थ में सन् १९४९ ई० में संकलित हुए।

उक्त सभी छन्द मुझे श्री भद्रदत्त शर्मा से प्राप्त हुए थे और उन्हीं से सुना भी कि 'तुलसी-प्रकास' की प्रति किन्हीं साधु रामदास ब्रह्मचारी के पास है जो गंगा तीरस्थ पड़िया रसूलपुर (जिला बदायूँ) में आते रहते थे। तब तक प्रकाशित सभी छन्द एटा के स्व० बाँकेलाल जी से भद्रदत्त जी को उपलब्ध हुए थे जिसका उल्लेख मैं यथा-समय करता रहा हूँ। पर इस प्रश्न का समाधान अभी तक नहीं हो पाया कि बाँकेलाल जी ने इतने ही छन्दों का संग्रह क्यों किया और गोस्वामी तुलसीदास के जन्मस्थान एवं जन्म-काल आदि महत्त्वपूर्ण बातों को क्यों छोड़ दिया। इसी बीच मैं गोस्वामीजी के दार्शनिक विचारों के अनुसन्धान में मेरे दत्तचित्त होने से यह जिज्ञासा शान्त सी हो गयी।

किन्तु वैद्यरूपक पं० भद्रदत्त शर्मा का एक लेख १७ अगस्त १९५३ को 'नवीन भारत' में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने राजापुर की नींव डाली'। उसमें आशा के विरुद्ध अविनाशराय का १६६ वाँ छन्द 'रावत राजा कुरी' 'नहीं है' नया दृष्टिगोचर हुआ। अतः मैंने वैद्यरूपक जी से आग्रहपूर्वक कहा कि आप समस्त पुस्तक को क्यों नहीं प्रकाशित कर देते सोरों सामग्री तो पहले से ही बदनाम है और अकारण कलंकित होगी। फलतः 'तुलसी प्रकास' का पुनर्विचार हुआ।

बाह्य परीक्षण—उक्त 'तुलसी प्रकास' के दो संस्करण लक्ष्मी प्रेस कासगंज से मुद्रित हुए हैं। इसका प्रथम संस्करण आयुर्वेदाचार्य श्री वेदव्रत शर्मा ने दिसम्बर १९५३ में प्रकाशित किया। तत्पश्चात् एक मास पश्चात् उसके द्वितीय संस्करण का आवमन हुआ। सोरों की तुलसी-समिति ने इसका प्रकाशन और श्री भद्रदत्त शर्मा ने सम्पादन किया तथा श्री गोविन्द वल्लभ भट्ट ने इसका परिचय दिया। जहाँ तक इस पुस्तक के संस्करणों का सम्बन्ध है वहाँ तक भूमिकादि और शीर्षक पृष्ठों को छोड़कर दोनों में कोई अन्तर नहीं। ये एक ही संस्करण के दो विभाजन हैं।

पाठ-भेद—पुस्तक का प्रथम संस्करण १९५३ ई० के दिसम्बर मास में और उसके तथाकथित द्वितीय संस्करण का सूत्रपात श्री गोविन्दवल्लभ भट्ट की परिचयात्मक भूमिका के अनुसार १ जनवरी १९५४ को हो चुका था। पुस्तक के दोनों ही मुद्रित संस्करणों तथा उसकी पाण्डु लिपि से भी भद्रदत्त जी का सम्बन्ध रह चुका था। परन्तु इन तथाकथित संस्करणों में और तुलसी प्रकास की पाण्डु-लिपि के संयुक्त अनुसन्धाता पं० भद्रदत्त शर्मा के उन लेख-वर्ती पाठों में अन्तर है जो 'तुलसी प्रकास'

के सम्बन्ध में पीछे प्रकाशित हुए। वर्मा जी का एक लेख था 'गोस्वामीजी ने राजापुर बसाया' दूसरा था 'गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित तिथियाँ'। ये दोनों लेख 'विशाल भारत' के फरवरी और मई १९५४ ई० के अंकों में प्रकाशित हुए हैं। पहले लेख को 'ब्रज भारती' में भी स्थान मिला है। वर्मा जी के उक्त प्रथम लेख में गोस्वामी तुलसीदास और अविनाशराय की भेंट का शक संवत् इस प्रकार उद्धृत किया गया है—

नग्न चन्द तत्व ईस कर्ज सित नौमि जीव
केरि किय संग एक मास अविनाश राय।

किन्तु 'तुलसी-प्रकाश' के मुद्रित संस्करणों में यह पाठ इस प्रकार है—

नग्न चन्द तत्व ईस कर्जसित नौमि कन्यु
जीव करि जीव संग १ मास अविनाश राय।

और इसका भी पाठान्तर दोनों संस्करणों की पाद टिप्पणियों में इस प्रकार है—

नग्न चन्द तत्व सोम कातिक अक्षय नौमि
सोम करि जीव सब मास अविनासराय।

पाठ-भेद की संगति नहीं मिलती। 'तुलसी प्रकाश' के मुद्रित तथाकथित दोनों संस्करण तो जनवरी १९५४ ई० तक प्रकाशित हो चुके थे। प्रथम लेख में जो फरवरी १९५४ में प्रकाशित हुआ था और दूसरे लेख में भी जो 'तुलसी प्रकाश' से सम्बन्ध रखता है पाठ भेद की ओर कोई संकेत नहीं किया गया। शुद्ध पाठ कौनसा है—पहला कि पिछला? यदि पहला तो पिछले का क्या आधार; यदि पिछला तो पहला कहाँ से प्राप्त हुआ? पहला पाठ तो प्राप्य असल की नकल है। इस की भूल हो ऐसा संभव नहीं क्योंकि 'विशाल भारत' और 'ब्रज भारती' दोनों में ही एकसा पाठ है और बेनीमाधवजी से जो पाठ मुझे २६ फरवरी १९५४ के पश्चात् प्राप्त हुआ था वह भी पिछले के ही अनुसार है। पाठान्तर वाली दो मूल प्रतियों का कहीं उल्लेख नहीं। अतएव यह पाठ भेद पाठकों के लिए पहेलिका है।

तिथि-तथ्यरोह—अविनाशराय ने चौबीस तिथियाँ शक संवत् में दी हैं। पच्चीसवीं 'तुलसी-प्रकाश' के प्रतिलिपिकार की है। वे इस प्रकार हैं —

(१) तुलसी जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी गुरुवार १४५३ अर्थात् १ अगस्त १५११ ई०

(२) गुरु नृसिंह-दर्शन आषाढ़ शुक्ला १५ बुधवार, १४४१

(३) तुलसी विवाह : कार्तिक शुक्ला ११ बुधवार १४५४ अर्थात् ७ नवम्बर, १५३२ ई०

(४) पितामही-मृत्यु फाल्गुन शुक्ला १३ शुक्रवार १४६२

(५) तारक-जन्म कार्तिक शुक्ला १० बुध १४६४ अर्थात् १८ अक्तूबर, १५४२ ई०

(६) रत्नावली के भ्राता का आगमन १४६६ शक संवत्

(७) गृह-त्याग भाद्रपद कृष्णा ३ शुक्रवार १४६६ अर्थात् २ सितम्बर १५४७ ई०

(८) रत्नावली का योगमार्गवास वैशाख शुक्ला ३ शुक्रवार १४७९ अर्थात् २ अप्रैल १५५७

(९) तुलसीदास का द्वितीय बार अयोध्यागमन चैत्र शुक्ला ५ गुरु १४८० अर्थात् २४ मार्च १५५८ ई०

(१०) नन्ददास-वैराग्य-सूचना ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरु १४८३ अर्थात् ३१ मई १५६१ ई०

(११) तुलसी की मथुरा-यात्रा माघ शुक्ला ५ मंगलवार १४९३

(१२) तुलसी का प्रयाग और अयोध्या में भ्रमण १४९५

(१३) रामचरितमानस प्रारम्भ १४९६ चैत्र शुक्ला ९ मंगल अर्थात् १० मार्च १५७४ ई०

(१४) रामचरितमानस की पूर्ति ज्येष्ठ कृष्णा ३ शुक्रवार १५००, अर्थात् २३ मई १५७८ ई०

(१५) चित्रकूटवास ज्येष्ठ १५०१

(१६) राजासाहु की कुटी में निवास ज्येष्ठ शुक्ला ७ शनिवार १५ ९ अर्थात् ३ जून १५८७

(१७) अविनाशराय का राजासाहु की कुटी में प्रवेश माघ कृष्णा ५ रविवार १५१७ अर्थात् ८ फरवरी १५९६ ई०

(१८) राजासाहु की मृत्यु फाल्गुन शुक्ला २ शुक्रवार १५१७ अर्थात् २० फरवरी १५९६ ई०

(१९) अविनाशराय का पुनर्मिलन कार्तिक शुक्ला ९ बुधवार १५१९

(२०) अविनाशराय का पुनर्मिलन श्रावण कृष्णा ३० सोमवार १५२२

(२१) अविनाशराय की तीर्थयात्रा भाद्रपद शुक्ला १५ शनिवार १५२८ अर्थात् ६ सितम्बर १६ ६ ई०

(२२) अविनाशराय का काशी में आगमन कार्तिक शुक्ला १५ बुधवार १५३४ अर्थात् २९ अक्तूबर १६१२ ई०

(२३) हरसिंह का देह-त्याग वैशाख कृष्णा ७ शनिवार १५३५, अर्थात् १ मई १६१३ ई०

(२४) 'तुलसी प्रकाश' की पूर्ति पौष कृष्णा २ शुक्रवार १५४२

(२५) ज्येष्ठ कृष्णा ३० अमावास्या सोमवार १५५९ वि० अर्थात् २८ जून १८०२ ई०

तिथि-प्रक्षेप—अविनाशराय प्रदत्त चौबीस तिथियों में से तीन में तिथिवार नहीं दिये गये अतएव उनके सत्यापन का प्रश्न नहीं उठता। शेष इक्कीस में से छः तिथियाँ सत्यापित नहीं होतीं। जिस तिथि-वार को अविनाशराय ने गोस्वामी तुलसीदास से भेंट की वह घटना से अयुक्त है, क्योंकि उस दिन सोमवार या गुरुवार नहीं। आश्चर्य है कि जो व्यक्ति औरों के सम्बन्ध में तिथि-वार दे वह स्वयं अपने सम्बन्ध में भूल करे। इसके अतिरिक्त जैसा कि निवेदन किया जा चुका है पाँच और तिथियाँ घटना से ठीक नहीं। इनमें से एक है आषाढ़ पूर्णिमा शुक्रवार शक संवत् १४४१,

अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी को अपने गुरु नृसिंह के दर्शन हुए। दूसरी है फाल्गुन सुदी त्रयोदशी शुक्रवार शक संवत् १४९२ अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी की पितामही का देहावसान हुआ। तीसरी है माघ सुदी पंचमी मंगलवार शक संवत् १४९६ अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी मथुरा पधारे थे।

अन्त अन्तिम तीनों तिथियाँ प्रचलित संवत् प्रणाली के और अन्य सब विगत प्रणाली के अनुसार हैं। अतएव यह विचारणीय है कि कोई लेखक अपने उसी ग्रन्थ में विगत और प्रचलित दोनों ही परिपाटियों का आश्रय लेकर संवतों का उल्लेख करे। अविनाशराय को पूर्ण स्वतन्त्रता थी कि वे शक संवतों का उल्लेख करते समय विगत प्रणाली का आश्रय लेते अथवा प्रचलित का। किन्तु उन्हें यह उचित न था कि संवतों के उल्लेख में कभी इसका आश्रय लेते और कभी उसका।

चौथी अशुद्ध मिति को अविनाशराय का गोस्वामीजी से पुनर्मिलन हुआ। पाँचवीं अशुद्ध मिति वह है जिस दिन अविनाशराय ने अपनी रचना 'तुलसी-प्रकाश' को पूर्ण किया। वह है पौष कृष्णा द्वितीया शुक्रवार शक संवत् १५८२। ये तिथियाँ तभी ठीक मानी जा सकती हैं जब संवत् को पूर्णिमान्त मानें। किन्तु आपत्ति होगी कि अन्य सब तिथियों के सम्बन्ध में संवत् को अमान्त क्यों माना जाय? एक ही स्थान और युग के संवतों के निर्धारण में पूर्णिमान्त अथवा अमान्त किसी एक ही प्रणाली का अवलम्बन संगत प्रतीत होता है।

डायरी की भूल-चूक—सुनते हैं कि भारतीयों में डायरी अर्थात् दैनन्दिनी रखने की प्रथा न थी। जो हो अविनाशराय ने इस भ्रम को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने तिथियों का बाजार लगा दिया है और गोस्वामीजी के सम्बन्ध में संवत्, तिथि और वार दिये हैं, और कभी-कभी तो वे नक्षत्र का उल्लेख करने से भी न चूके। तुलसीदासजी का जन्म कब उत्पन्न हुआ कब दिवंगत? उनकी दादी ने कब स्वर्ग-लाभ किया? तुलसीदासजी और नन्ददासजी ने यात्रा के लिए कब प्रस्थान किया? आदि छोटी-छोटी घटनाओं को भी वे नहीं भूले। किन्तु उन्हें नन्ददास और रत्नावली के जन्म-मृत्यु के तथा 'रामचरित मानस' और 'कृष्ण गीतावली' को छोड़ अन्य सब रचनाओं से सम्बन्ध रखने वाले संवत् कैसे विस्मृत हो गये? आश्चर्य है कि उन्होंने अपने से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों में भी भूल की। इस उल्लेख की विशेष आवश्यकता भी क्या थी कि वे अमुक तिथियों को गोस्वामीजी से और अमुक को राजा साहु से मिले। जैसे बाजार में सभी के मतलब की सभी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध रहती हैं वैसे ही अविनाशराय ने तिथियों का जो बाजार लगाया है उसमें प्रचलित विगत अमान्त, पूर्णिमान्त संवत्प्रणालियों का मयनाभिराम प्रदर्शन है।

अभीष्ट-साधन—अविनाशरायजी गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों के योग मार्ग मोहल्ले में स्थापित कर कुछ व्यक्तियों की साभिप्राय कल्पना की पुष्टि अवश्य करते हैं। किन्तु सोरों की जो सामग्री 'तुलसी प्रकाश' के उद्भव से पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी उसके अनुसार गोस्वामीजी का निवास तो सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में अवश्य था पर उनका जन्म-स्थान उस सामग्री के अनुसार रामपुर नामक ग्राम था जो सोरों के सलमन से बीस पूर्व है। इस विषय में पुरसीश्वर चतुर्वेद के

निम्नलिखित वे वचन स्पष्ट हैं जो उन्होंने १८२९ वि० में लिखे थे—

तबहिं भीत इक दई आस गुरु नृसिंह के आज पास ॥३६॥
रमारत बैरागव तो पुनीत सकल भेद आगम अतीत ॥६०॥
चक्र तीर्थ हिय पाठशाल तहाँ पढ़ावत विपुल बाल ॥६१॥
तहाँ रामपुर के सनाढ्य कुलज बंधवर हैं सुवाढ्य ॥६२॥
तुलसिदास अरु नंददास पढ़त करत विद्या विलास ॥६३॥
एक पितामह पौत्र दोउ चंद्रहास लघु अमर सोउ ॥६४॥
तुलसी आत्माराम पुत्र उदर हुलासी के प्रसूत ॥६५॥
गये दोउ ते अमर लोक बसी पीतहिं करि ससोक ॥६६॥
बसत कोप नारन समीप विप्रवंस कर दिव्यदीप ॥६७॥

(रत्नावली चरित)

चर्चै—एक पितामह सदन दोउ जनमे कुलि राजी।
दोउ एकहिं गुरु नृसिंह कुल अन्तेवासी।
तुलसिदास नन्ददास भये हैं सुरलोचारे।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक बसै सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे।
एक राम गाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥१॥
एक पिता के पुत्र दोउ बल राम मुरारी।
सुरति चक्र इक भयो एक हल मुसल धारी।
नीलांबर तनु एक एक पीतांबर धारी।
दोउन चरित उदार रहो भल न्यारो-न्यारो।
इमि कर्तव्य धरि भल प्रकृति जन-जन कीन लगाव अब।
बनमि एक हू पुहु नहीं निज स्वभाव अनुरूप सब ॥२॥

—रत्नावलीचरित (परिशिष्ट)

'तुलसी-प्रकास' अथवा 'तुलसीतत्व प्रकास'?—अविनाशराय की रचना का वास्तविक नाम क्या है—'तुलसी प्रकास' अथवा 'तुलसी तत्व प्रकास'? सन् १९३६ ई० के अक्तूबर में, 'कल्याण' में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था 'श्री गोस्वामीजी के नामराशि' और लेखक थे अयोध्यावासी म० बालकराम विनायक। उसमें विनायकजी ने किसी 'तुलसी तत्व प्रकास' का उल्लेख किया था। 'तुलसी-प्रकास' के दोनों संस्करणों के सम्पादकों ने उस ओर इंगित किया है। 'तुलसी प्रकास' के १९८वें छन्द में 'तुलसी प्रकास' का और १९९वें में 'तुलसी-तत्व प्रकास' का स्पष्ट नामोल्लेख हुआ है। यदि वाल्मीकिजी रामजन्म से पहले ही रामगाथा लिख सकते थे तो क्या अविनाशरायजी म० विनायकराव के जन्म से पहले सत्तिर्वों पूर्व विनायकरावजी की पुष्टि न कर सकते थे। पता नहीं इस नामकरण की क्या आवश्यकता पड़ी।

नवीन पुरातन का मिश्रण—हो सकता है 'तुलसी प्रकास' नितान्त नवीन रचना न हो नवीन-पुरातन का सम्मिश्रण हो। पर कितना नवीन और कितना

पुरातन यह तो उन वैद्यभूषण और आयुर्वेदाचार्य की ऐतिहासिकता का धर्मामीटर बता सकता है जिनके परामर्श से राजा साधु राजापुर की पर्णकुटी के रोगियों की चिकित्सा और परिचर्या करते थे। १५८वें छन्द में लिखा है—

लिखा नहिं लावै अवि साधु आइ जाये कोउ
नेह सों जिवावै चलें साधु भरत उपास
रोगी होइ साधु कोउ साधु उपचार करै
बूझि बूझि वैद्यु घोटि प्यावै अनक घास।

१७२ वें छंद का निम्नलिखित पाठान्तर भूलसुधार के निमित्त स्पष्ट प्रक्षेप है

नन्द नन्द तत्व सोम कातिक अष्टम नीमि
सोम केरि कीन सब मास अविनाशराय।

तुलसीदासजी का एवं अपना परिचय देने के पश्चात् अविनाशराय के निम्नलिखित छन्द को अप्रकरण प्रक्षेप ही कहा जा सकता है—

नन्द दास चंद्रहास सुत कृष्णदास कल चंद
गए बुलावन बार मह श्री तुलसिहि गंवनंद ॥११२॥

इसी प्रकार पुस्तिका के अन्त में १६६, २० और २०१ संख्यक छंद अनावश्यक प्रक्षेप हैं जो 'तुलसी-प्रकास' और 'तुलसी तत्व प्रकास' के तादात्म्य को सिद्ध करने के निमित्त निर्मित प्रतीत होते हैं। महाकवि कालिदास की उक्ति है कि पुरानी सभी बातें भली नहीं होतीं और न नवीन सभी बातें अवश्य होती हैं। अविनाशरायजी ने भी यह अच्छा ही किया कि उन्होंने एक ऐसे काव्य की सृष्टि कर डाली जो नवीन होता हुआ भी पुरातन है और पुरातन होता हुआ भी नवीन है। उन्होंने एक ऐतिहासिक महापुरुष का जीवन-वृत्त ऐसे रूप में उपस्थित किया है जो कालदिक की उपेक्षा कर सकता है। अविनाशराय ने 'तुलसी चरित' के कर्ता बाबा रघुवरदास तथा 'तुलसी गोसाईं चरित' के रचयिता बाबा बेणीमाधवदास की भाषा शैली और इतिहास-व्यतिक्रम में जो कतरा मात चलाया उसके लिए वे आश्चर्य के पात्र हैं।

तात्पर्यात— रामचरित मानस' में गोस्वामीजी ने भरतजी की प्रशस्ति में जो स्मरणीय शब्द लिखे हैं वे हैं

जो न होत जग जन्म भरत को, सकल धरम धुर धरनि धरत को
(२, २१२, १)

होत न भूतल भाउ भरत को, अचर सचर चर अचर करत को।
(२ २३० ४)

सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठनि हठि राम सनमुख करत को।
(अयोध्या कांड का अन्तिम छंद)

इस अविनाशराय ने भी गोस्वामीजी के लिए लिख दिया

होत न जो तुलसी जग में हिंदुआन को कानहि को बरतो।

वेद पुरानन की बरबा अरबा अविनास को आचरतो।
मोहमयी मदिरा मद मत्त अचेतन चेतन को करतो।
मानस राम पियूष पिआइ सो जीवन-जीवन को बरतो ॥१६४॥

अविनाशराय को यह गौरव प्राप्त था कि वे अकबर जैसे सम्राट् के काल में विराजमान थे। वे लिखते हैं—

अविनास अकबर से अवनीस रहै जिनकी जय कीरति कहानी ॥१६५॥

हिन्दुत्व के हामी और अकबर के प्रशंसक अविनाशराय की उक्त प्रशस्ति में पाठकों को विरोधाभास अथवा नवीनताभास भले ही मिले किन्तु उन्हें इस बात से संतोष होना चाहिए कि साम्य का आधार तो प्राचीन है। स्यात् अविनाशराय को इस 'क्रिट्' की आशा रही होगी कि उन्होंने गोस्वामीजी को जो 'ट्रिब्यूट्स' अर्पित किये हैं वे उनके कल्पना-अपहारी उत्तर-कालीन आलोचकों के लिए पथ-प्रदर्शक रहेंगे।

'सूर सूर तुलसी ससी' के आलोचक से कदाचित् पहले ही अविनाशराय ने लिख दिया था—

छहूँ ससीलो छिति छोर में छपाकर सो ॥१६७॥

गोस्वामीजी की गणना आजकल विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जा रही है। उनके रामचरितमानस का अनुवाद आजकल, हिन्दू और ऐटकिंस अंग्रेजी में कर चुके हैं और एनेक्सी वारालिकोव ने रूसी भाषा में किया है। ग्रियर्सन ने तथा अन्य अनेक विदेशियों ने तुलसी के गीत गाये हैं। इस प्रकार गोस्वामीजी की रचनाओं का सुख यूरोप और अमरीका में आँका जा रहा है। किन्तु अविनाशराय तो शताब्दियों पूर्व गोस्वामीजी के लिए भविष्यवाणी कर गये हैं

बनि अन्य भए तुलसी जग में जस कीरति जासु रहै चिर जाई ॥१६६॥

अतएव कहा जा सकता है कि अविनाशराय केवल कवरी-कार और कुशल पद्यकार ही नहीं थे किन्तु ज्योतिष के चमत्कार से भी चमत्कृत थे और आज उनकी रचना सोरों की सामग्री में विठौना के रूप से सुशोभित है।

निष्कर्ष—उक्त कारणों से मैं 'तुलसी प्रकास' को अप्रामाणिक ही समझता हूँ। इसके कुछ अंश अवश्य प्राचीन लगते हैं, पर पुस्तक में मिलावट अवश्य है। इसका कितना अंश प्रामाणिक और कितना अप्रामाणिक है, इसे छाँट देने में मैं इस समय अपने को असमर्थ पाता हूँ। इसमें तुलसीदासजी की जो जन्म-तिथि दी गयी है वह गणना से तो ठीक है जिसकी चर्चा किंचित् विस्तार से इसी ग्रंथ में अन्यत्र की जायगी। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसी सूचनाएँ भी हैं जिनसे तुलसी-जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ने की सम्भावना है। आशा है विद्वानों के गंभीर विवेचन के निमित्त 'तुलसी प्रकास' पुस्तक का सार दे देना तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के आगामी पृष्ठों में उसके कतिपय स्थलों का यथा-स्थान तुलनात्मक उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

'तुलसी-प्रकास' का सार—अविनाशराय के अनुसार, गोस्वामी जी के नाना अयोध्याराय दुबे गंगा के दक्षिण तट पर स्थित तारी ग्राम में निवास करते थे। गौत्र था कौशिल्य और व्यवसाय ज्योतिष। पत्नी दिवंगत हो चुकी थी पर उनकी चरठ विधवा

भगिनी सरस्वती साथ रहती थी। पुत्र तो कई हुए पर हुलसी कन्या ही जीवित रही जिसका विवाह आत्माराम सुकुल से हुआ। विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् ज्योतिषी जी ने अपने जामाता को बुलवाया और उन्हें अपनी सम्पत्ति अर्पण कर स्वर्गारोहण किया।

आत्माराम जी के पिता पं० सच्चिदानन्द आरद्वाज गोत्रीय सुकुल-सनाढ्य ब्राह्मण थे सनातन-धर्म के तथा तारी और सोरों के निकट रामपुर ग्राम के निवासी थे। वे अपने छोटे पुत्र जीवाराम का विवाह करने के पश्चात् दिवंगत हुए। जीवाराम की माता और पत्नी चम्पा में एक दिन वाग्युद्ध हो गया जिसके फलस्वरूप माता ने क्रोध-पूर्वक निश्चय किया कि मैं अब चम्पा के साथ न रहूँगी।

सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में आत्माराम की ननसाल का गृह सूना पड़ा हुआ था वह राजौरियों का घर कहलाता था। आत्माराम अपनी माता और पत्नी के सहित वहाँ जा बसे और सन्तुष्टता-पूर्वक रहने लगे। कुछ ही दिन पीछे वहाँ १४६१ शक मासव शुक्ला सप्तमी बुधवार को विशाखा नक्षत्र के द्वितीय चरण में तुलसीदास का जन्म हुआ। समारोहपूर्वक उत्सव मनाया गया। कुल-गुरु श्रीमसंकर ने आवश्यक संस्कार कराये। आत्माराम जी के पेट में तीन दिन बड़ी पीड़ा रही पर भगवान् रामचन्द्र की कृपा से शान्त हो गयी। पीड़ा-शान्ति के पश्चात् प्रातःकाल तारी में सरस्वती को बधाई भेजी गयी और उसने प्रसन्नतापूर्वक पारितोषिक भेजा।

शुभ दिन नामकरण हुआ। माता हुलसी तुलसी जी की पूजा किया करती थी अतएव बालक का नाम तुलसीदास रखा गया। जब तुलसीदास दस मास के हुए तो कुछ शब्द बोलने लगे।

इधर तारी में सरस्वती की मृत्यु हो गयी। सूचना पाकर दम्पति वहाँ गये श्राद्ध तथा ब्राह्मण भोजन कराया। लौटने का विचार हो रहा था कि हुलसी को अचानक हैजा (विषूचिका रोग) हो गया और वह चल बसी। आत्माराम जी उसका भी संस्कार कर पुत्रसहित सोरों लौट आये।

शोकाकुल तो थे ही, आत्माराम को ज्वर हो आया और अर्धमास कुञ्ज में काट वे भी चल बसे। उन की माता, भाई तथा चम्पा सभी दुखी थे। जीवाराम ने माता से रामपुर चलने के लिए कहा और चम्पा ने क्षमा माँगी पर माता सहमत न हुई। अतएव जीवाराम नित्य सोरों आकर तुलसीदास को खिलाकर माता का कुशल-क्षेम ले जाते थे। ३॥ वर्ष पश्चात् चम्पा ने नन्दवास को जन्म दिया। नामकरण हुआ और तुलसीदास की पट्टी भी पूजी। इसके दो वर्ष दस मास पश्चात् चन्द्रहास संसार में आये, पर जीवाराम जी रोगी हो शम से पंचत्व को प्राप्त हुए। उनकी मृत्यु के पश्चात् और दारिद्र्य ने परिवार को आ घेरा, खेती-बारी धन धान्य पूर्व-वैभव सब नष्ट हो गया। चाचा की मृत्यु से तुलसीदास को बड़ा शोक हुआ। दादी उन्हें सान्त्वना देती कि राम सदा करेंगे तू राम को भज। तुलसीदास राम-राम कहते जिससे लोग उन्हें राम-बोला कहने लगे। जो कभी अच्छा भोजन किया करते थे उन्हें अब कभी-कभी अधपेट ही भोजन मिलता, वे फटे-पुराने कपड़े पहनते याचियों से याचना करते पर कोई धैर्य न देता।

शक सं० १४४१ की आषाढ़ पूर्णिमा बुधवार को गंगा किनारे मुनिह जी ने

त्रिवेणी में स्नान कर उन्होंने भरद्वाज जी के आश्रम का अवलोकन किया। वहाँ से वे चित्रकूट पहुँच कर राम के भजन में लवलीन हो गये। उन्होंने राम भक्ति के निमित्त काशीपुरी में भगवान् शंकर के दर्शन किये तत्पश्चात् अनेक गिरि-वनों में बैठ कर सीताराम का भजन किया अनेक व्रत-जप-तप साधे एवं शीतोष्ण का सहन किया।

चैत्र शुक्ला ३ गुरुवार १४८० शक को गोस्वामी जी पुनः अयोध्या पधारे, सात मास वहाँ निवास कर पुनः तीर्थाटन के लिए चल दिये और १४८३ शक में काशी लौट आये। वे अपने निवास-स्थान पर कभी राम-कथा कहते और कभी शिव-कथा। यद्यपि वे कभी चित्रकूट कभी अयोध्या और कभी प्रयाग चले जाते पर वे अधिकतर काशी में ही निवास करते थे। सत्संग के लिए सन्तों और भक्तों की भीड़ लगी रहती थी।

ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार १४९१ शक को किसी यात्री ने कहा कि नन्ददास जी ने वैराग्य ले लिया है और वे घर छोड़ कर व्रज में रहने लगे हैं। यह सुन तुलसीदास जी प्रसन्न हुए। उनके मन में इच्छा हुई कि नन्ददास को कभी जाकर देख आऊँ और वे माघ शुक्ला ३ मंगलवार १४९३ शक को मथुरा पहुँचे। वहाँ नन्ददास जी ने उन्हें सूरदास जी के दर्शन कराये और तुलसीदास जी ने उन्हें प्रणाम किया। फिर नन्ददास जी तुलसीदास जी को लेकर गोवर्धन गये और वहाँ तुलसीदास जी ने भगवान् कृष्ण को भगवान् राम के रूप में देखा। तदनन्तर वे दोनों जी विट्ठल जी के दर्शन के लिए गोकुल गये और उन्हें अभिवादन किया। गोसाईं जी ने भी उनका आदर-सत्कार किया। विट्ठल जी के पुत्र का नाम था रघुनाथ और पुत्र-वधू का जानकी तुलसीदास जी ने उन्हें अपने इष्टदेव के नाम राशि समझ कर प्रसन्नतापूर्वक अपना मस्तक नवाया। तदनन्तर नन्ददास जी ने भगवान् कृष्ण से सम्बद्ध अनेक सुन्दर स्थल दिखाये जिन्हें देखकर तुलसीदास जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। तुलसीदास जी ने 'कृष्ण पदावली' की रचना की और तदनन्तर वे काशी चले गये। शक १४९३ की मकर संक्रान्ति में उन्होंने प्रयाग में स्नान और वहाँ से अयोध्या आकर चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार शक १४९६ को 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया और शक १५० की ज्येष्ठ-कृष्णा ३ शुक्रवार को उस की पूर्ति की। इस बीच में वे कभी काशी और कभी अयोध्या आते जाते रहे। पाँचवें वर्ष में उनके 'रामचरित मानस' की ख्याति होने लगी। श्रोतावर्ग बढ़ने लगे। तुलसीदास जी कभी काशी कभी अयोध्या कभी प्रयाग और कभी चित्रकूट रहते।

शक १५०२ के ज्येष्ठ मास में गोस्वामी जी चित्रकूट में निवास कर रहे थे कि वहाँ राजा नाम का भवन आया। वह नन्द बाबा का वंशज जाति का अहीर था किन्तु वह साधुओं का सेवक और अवधवासी का वासी था। उस का नाम था राजपीर, किन्तु लोग उसे राजा साधु कहते थे। उस का रंग श्यामल था उसके गले में तुलसी की माला शोभित रहती। वह सिर पर जटा, कटि में कौपीन और मस्तक पर ऊर्ध्व पुंड्र धारण करता और तुलसीदास जी के श्रीमुख से श्रद्धापूर्वक राम-कथा सुनता था।

एक दिन वह *प्रातःकाल गोस्वामी जी से बोला कि मेरी कुटी पर पधारिये* और मुझे कृतार्थ कीजिये। उसकी पर्ण-कुटी अरण्य में पयस्विनी और यमुना के संगम

के दक्षिण तट पर थी। अनेक पेड़ों से घिरा वह स्थान बड़ा रमणीक था। जो कोई वहाँ आता राजा साधु उसका बड़ा सत्कार करता और जो कोई रोगी होता उसकी औषधि का भी प्रबन्ध कर देता। वह बड़े सरल स्वभाव का था कभी क्रोध न करता।

प्रार्थना स्वीकार कर गोस्वामी जी ने उक्त संवत् की ज्येष्ठ शुक्ला ७ शनिवार को राजा साधु की कुटी में पदार्पण किया। स्थान रमणीक था तुलसीदास जी का मन लग गया। वे वहाँ यमुना जी में स्नान करते और सीताराम का भजन। वे राम कथा कहते और राजा साधु सुनता। वहाँ गोस्वामी जी का निवास सुनकर और लोग भी आने लगे। तुलसीदास जी का शरीर गौर और सुन्दर किन्तु स्थूल था। वे आजानु-बाहु थे और गले में माला कटि में श्वेत यज्ञोपवीत और यज्ञोपवीत मस्तक पर तिलक धारण करते तथा शिर और मूँछ मुंडित रखते। उन्होंने राजा साधु की सेवा से प्रसन्न हो राजापुर बसा दिया। उनका व्यक्तित्व भव्य था। संवत् १६१७ की माघ कृष्णा ५ रविवार को उक्त स्थान पर अविनाशराय तुलसी के भक्त-दरबार में उपस्थित थे।

किन्तु फाल्गुन शुक्ला द्वितीया शुक्रवार १६१७ संवत् को राजा साधु अचानक परमधाम सिधार गये। कुटी में अपार शोक छा गया। चारों दिशाओं के ग्रामवासियों ने एकत्र होकर उसका विमान निकाला और दाह-संस्कार किया। तुलसीदास जी ने समारोह-पूर्वक उसका श्राद्धादि किया और उसकी प्रस्तर मूर्ति बनवाकर हनुमन्मन्दिर में स्थापित कर दी।

अविनाशराय ने गो० तुलसीदास का दर्शन सर्वप्रथम चित्रकूट में तदनन्तर राजा साधु की कुटी में किया। गोस्वामी जी ने बड़े प्रेम से उसका परिचय लिया छाती से लगाया और अपना भी परिचय दिया। राजा साधु की मृत्यु के समय गोस्वामी के दर्शन अविनाशराय को पुनः प्राप्त हुए। कार्तिक शुक्ला ६ शुक्रवार १६१९ संवत् को एक मास तक वे तुलसीदास जी के साथ रहे। तदनन्तर सोमवती अमावस्या माघ १६२२ संवत् को सत्संग की अभिलाषा से वे गोस्वामी जी के पास गये और ढाई मास उनके पास रहे। गोस्वामी जी भी उसी वर्ष कार्तिक में काशी में चले गये और फिर अविनाशराय को उनके दर्शन न मिल सके। अविनाशराय भी भाद्रपद शुक्ला १५ शनिवार १६२८ संवत् को सिंहुड़ा छोड़कर, तीर्थाटन के लिए, भारत के दक्षिण पश्चिम और उत्तर में गये और कार्तिक शुक्ला १५ शुक्रवार १६३४ संवत् को अपने घर ताली में लौट आये। यात्रा में पहाड़ का पानी लगा अतएव वे ढाई वर्ष तक अस्वस्थ रहे किन्तु फिर ठीक हो गये। ताली के अधिपति हरसिंह बघेल कृष्णा ७ शनिवार १६३५ संवत् को स्वर्ग सिधारे और उनके सुयोग्य पुत्र कर्णसिंह ने कार्य-भार सँभाला। कर्णसिंह ने अविनाशराय को धन-धरती के साथ सम्मान प्रदान किया और तब से अविनाशराय ताली छोड़कर कहीं जाते न थे। वहाँ उनके लघु भ्राता और पुत्र भी थे। ताली की भूमि धन्य है जिसमें तुलसी-जैसे चारु-चरित्र दीक्षित हुए, तुलसी जैसी भक्त प्रसविनी और दुर्गा जैसी कर्णसिंह की वीर-जननी हुई। नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास और चन्द्रहास जी के पुत्र ब्रजनन्द थे। कृष्णदास तुलसीदास जी को बुलाने कई बार गये थे। यदि तुलसीदास जी न होते तो हिन्दुओं के मान और मर्यादा की रक्षा कौन करता?

मधिनाथराय की तरुणावस्था बुन्देल खण्ड में व्यतीत हुई। उन्होंने कालिंजर में और सिहुंडा में निवास किया। उन्हें बहुत दान मान और प्रेम भी प्राप्त हुआ। किन्तु उन्हें गोरखा-नरेश के समान सुभट, केशव के समान कवि, राजा के समान साधु, कहीं देखने को न मिला। सम्राट् जहाँगीर के एवं कर्णसिंह सौरंकी के समय में मधिनाथ राय ने पौष कृष्णा द्वितीया शुक्रवार १५४२ सक को कविवर गो० तुलसीदास जी का चरित जैसा पुरुषों से सुना और स्वयं देखा लिख दिया।

सूकर-क्षेत्र

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के बालकाण्ड में सूकर-क्षेत्र का उल्लेख इस प्रकार किया है

मैं पुनि निजगुरु सन सुनी कथा सु सूकर खेत

इससे स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा बाल्यकाल में 'सूकर खेत' में हुई थी। किन्तु यह सूकर-क्षेत्र कहाँ है—इस विषय में कुछ मत भेद है। कुछ के अनुसार यह एटा जिले का सोरों है दूसरों के अनुसार यह सरयू-घाघरा के संगम पर पसका नामक ग्राम है। आवश्यक अनुसंधान के पश्चात् प्रथम मत परम पुष्ट प्रतीत होता है जिसकी रूपरेखा आगामी पृष्ठों में दी जा रही है।

सूकर-क्षेत्र कहाँ ?

निष्कर्ष की आवश्यकता—कुछ आधुनिक लेखकों ने सोरों और सूकर क्षेत्र के तादात्म्य पर शंका उपस्थित की है। अतएव इसका विवेचन आवश्यक है।

यूरोपीय विद्वानों का दृष्टिकोण—यूरोपीय विद्वानों ने सोरों और सूकर-क्षेत्र के तादात्म्य को स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ रैवरेंड एडविन ग्रीव्स अपने एक लेख में जो १८७६ ई० में लिखा गया और जो १९२३ ई० में 'तुलसी ग्रन्थावली' में प्रकाशित हुआ था लिखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास अपने गुरु के साथ सूकर-क्षेत्र में निवास करते थे जो प्राचीन काल में ऊकल क्षेत्र और वर्तमान काल में सोरों नाम से विख्यात है। एफ० एस० ग्राउज महोदय ने भी अपने 'द प्रोलोग टु द रामायण ऑव तुलसीदास : ए स्पैसिमन ट्रांसलेशन' नामक लेख में सूकरक्षेत्र को सोरों माना जो बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पैंतालीसवीं जिल्द में, सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में उन्होंने यह निर्देश किया है कि 'सोरों' 'सूकर-ग्राम' का वर्तमान अपभ्रंश है। उनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है सूकर ग्राम=सूअर गाँव=सुअरौव=सोरों। किन्तु सूकरक्षेत्र के पर्याय 'सौकर' और 'सौकरव' से 'सोरों' शब्द की निष्पत्ति अधिक संगत है। ग्राउज ने गोस्वामीजी के दोहे का इस प्रकार अर्थ किया है "मैंने पुनः अपने गुरु से सूकर क्षेत्र अर्थात् सोरों में राम-कथा सुनी थी पर मैं उस समय अबोध बालक होने के कारण उसके तात्पर्य को नहीं समझ पाया। मुझ जैसा जड़ और सांसारिक अपवित्रताओं से संकुल जीव भला भगवान् राम की गूढ़ कथा को कैसे समझ सकता था, जिसके श्रोता और वक्ता दोनों ही ज्ञान के सागर हैं। श्री ग्राउज ने अन्यत्र लिखा है कि गोस्वामीजी ने सोरों में अध्ययन किया और अयोध्या में लिखना प्रारम्भ किया। ग्रियर्सन महोदय ने भी अपने लेख 'नोट्स ऑन तुलसीदास' में जो इण्डियन एण्टीक्वेरी में १८९१ ई० में प्रकाशित हुए, लिखा है कि गोस्वामीजी ने अपने बचपन में सूकर-क्षेत्र में अध्ययन किया था जिसे आजकल सोरों कहते हैं। इन उक्तियों से यह स्पष्ट है कि ग्राउज

भीष्म और पियर्सन के समय में सोरों और सूकर-क्षेत्र एक ही स्थान समझे जाते थे; और कारपेंटर, मैकफ़ी और हिल ने भी उनका अनुसरण किया।

लाला सीताराम का मत—सोरों और सूकरक्षेत्र के तादात्म्य में राय बहादुर लाला सीताराम का अविश्वास था। उन्होंने अपने 'राजापुर के अयोध्या काण्ड की भूमिका' में जो १९०२ में प्रकाशित हुई थी 'श्री अवध की झाँकी' में जो १९३३ में प्रकाशित हुई थी और अपने 'सिलेक्शंस फ्रॉम हिन्दी लिटरेचर, तृतीय पुस्तक तुलसीदास' नामक ग्रंथ में उल्लेख किया है कि तुलसीदास जी साधुओं के दल में सम्मिलित होकर सूकर क्षेत्र अर्थात् वराहक्षेत्र चले गये और वह क्षेत्र एटा जिले का सोरों नहीं है जैसा कि आजकल महोदय समझते हैं, किन्तु वह गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर स्थित है। यहाँ गोस्वामीजी ने नरहरिदास से वैष्णव धर्म में दीक्षा ली और रामायण की कथा सुनी थी।

गोसाईं चरित में सूकर क्षेत्र—मूल गोसाईं चरित' १९२९ ई० में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। उसके निर्माता ने कदाचित् लाला सीतारामजी के उक्त अनुसन्धान से अथवा भवानीदास के 'गोसाईं चरित' से प्रेरित होकर लिख दिया कि—

"बहुत कथा इतिहास बहु आए सूकर खेत।
संगम सरयू घाघरा, संत जनन सुख देत॥

इस दोहे में 'सूकर क्षेत्र' की स्थिति सरयू-घाघरा के संगम पर प्रकट की गयी है।

डॉ० दास का सुझाव—डॉ० श्यामसुन्दर दास और पं० रामचन्द्र शुक्ल के प्रभाव से इस मत का प्रचार हुआ किन्तु जैसा कि मैं पीछे के अध्यायों में लिख चुका हूँ डॉ० दास ने अपने उस 'रामचरितमानस' की भूमिका के तेरहवें पृष्ठ पर जो सन् १९१६ ई० में प्रकाशित हुआ था और उसी ग्रन्थ के उन्नीसवें पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में सोरों का सूकर क्षेत्र से तादात्म्य किया था। पुनश्च उस 'रामचरितमानस' की भूमिका के बाइसवें पृष्ठ पर जो १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था उन्होंने जिस सोरों का उल्लेख किया था वह कदाचित् एटा जिले का था। किन्तु पीछे से उन्होंने अपनी धारणा बदल दी और वे सूकर क्षेत्र को सरयू-घाघरा के संगम पर मानने लगे जैसा कि उनके उस ग्रन्थ 'गोस्वामी तुलसीदास' के उनतालीसवें पृष्ठ से स्पष्ट है जो १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ। वे इस विषय में शुक्ल जी से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने १९४० के 'रामचरितमानस' के संस्करण के सोलहवें और सत्रहवें पृष्ठ पर शुक्ल जी के कथन को उद्धृत किया है जिसका तात्पर्य है कि सूकर क्षेत्र' सोरों नहीं है।

शुक्लजी और सूकर क्षेत्र—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के १५६वें पृष्ठ पर शुक्ल जी लिखते हैं —'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत' को लेकर कुछ लोग एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक सीधे पश्चिम दौड़े हैं। पहिले पहल इस ओर इशारा लाला सीताराम ने अयोध्या काण्ड के स्वसंपादित संस्करण की भूमिका में किया था। उसके बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्म-स्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किये गये। सारे उपद्रव की जड़ है सूकरक्षेत्र को भ्रम से सोरों समझ लिया गया। सूकरक्षेत्र गोंडा

जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है। यहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने आते हैं और मेला लगता है।" डॉ० दास ने शुक्लजी का समर्थन किया और डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के कथन को इस प्रकार और अधिक स्पष्ट किया : 'पहले पहल लाला सीताराम ने अपने संपादित राजापुर वाले अयोध्या काण्ड के संस्करण में यह इशारा किया था कि सूकर क्षेत्र या सोरों तुलसीदास की जन्मभूमि हो या नहीं वहाँ वे रहे अवश्य थे। पर लाला सीतारामजी के सम्बन्ध में शुक्लजी और द्विवेदीजी द्वारा जो उल्लेख किया गया है वह तथ्य से दूर है, क्योंकि लालाजी ने तो सूकर क्षेत्र को गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर माना और इस बात का खण्डन किया कि सोरों ही सूकर क्षेत्र है जैसा कि उन्होंने राजापुर वाले अयोध्याकाण्ड के संस्करण में तथा अपनी अन्य कृतियों में व्यक्त किया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि १९२५ ई० से पहले जब 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव नहीं हुआ था शुक्ल जी को संगम वाले सूकरक्षेत्र का पता न था अन्यथा वे १९१५ ई० और १९२२ ई० में डॉ० दास की आलोचना अवश्य करते जिन्होंने सोरों को सूकरक्षेत्र समझा था और वे संयुक्त-सम्पादक के रूप से 'हिन्दी शब्द सागर' के ३६३६वें पृष्ठ पर सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य न करते। इसके अतिरिक्त शुक्ल जी राधाकृष्णदास बघेलाचार्य के 'सप्तशती' का अनुवाद करते समय कुछ तो लिखते जबकि राधाकृष्ण जी ने सूकरक्षेत्र की स्थिति कन्नौज के पश्चिम में गंगा के किनारे बतायी थी और वे पं० महादेव प्रसाद त्रिपाठी को भी साथ-साथ ले सकते थे जिन्होंने अपने 'सप्तशिखास' में सूकर क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है जिसका उल्लेख शुक्ल जी ने स्वयं 'तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग की प्रस्तावना में किया जो काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा के द्वारा सर्वप्रथम १९८० वि० में प्रकाशित हुआ था।

'पसका' की व्युत्पत्ति—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने जून १९४३ की सरस्वती में 'सूकरक्षेत्र' नामक लेख में सरयू-घाघरा-संगमस्थ 'पसका' ग्राम को सूकरक्षेत्र सिद्ध करने के लिए 'पसका' शब्द की व्युत्पत्ति की है कि पसका=पसु+का=पसु (वराह) का=वराह क्षेत्र अथवा पसका=पसुक=पसु इव इति (पसु प्रधान)=कुत्सित पसुः। किन्तु व्युत्पत्ति इस प्रकार भी तो हो सकती है पसका=पास+का अर्थात् गोंडा वालों के लिए पासका वराह तीर्थ क्योंकि सोरों वाला दूर पड़ता है। पर क्या इस प्रकार की व्युत्पत्तियाँ प्रामाणिक हैं?

संगमवाला वराहतीर्थ—मैंने गोंडावाले सूकरक्षेत्र के सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों से जो पत्र व्यवहार किया उसका निष्कर्ष इस प्रकार है गोंडा जिले में सूकर क्षेत्र है जो पसका के निकट सरयू-घाघरा के संगम पर स्थित है। वहाँ एक मन्दिर है जो वराह जी का कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि वहाँ उनका अवतार हुआ था। कहते हैं कि मन्दिर तीन सौ वर्ष प्राचीन है, इस मन्दिर से पहले भी एक मन्दिर था किन्तु अब उसके कोई चिह्न नहीं हैं। पौष माह में वहाँ मेला लगता है किन्तु मन्दिर की अपेक्षा अधिकतर संगम के उपलक्ष्य में ही। इस सूकरक्षेत्र का उल्लेख 'अयोध्या माहात्म्य' में उपलब्ध है। उक्त सूचना तहसील गोंडा के सबडिवीजनल ऑफिसर श्री बी० बी० सहाय से प्राप्त हुई थी। हमारी समझ में यह बातें विचार-

नीय है कि उक्त सूचना के अनुसार प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष अब विद्यमान नहीं और यह भी कि वार्षिक मेला मन्दिर की अपेक्षा संगम के उपलक्ष्य में लगता है। ऐसा कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त 'अयोध्या-माहात्म्य' में यह उल्लेख नहीं है कि वराह भगवान् का जन्म उक्त संगम पर हुआ और न 'सूकरक्षेत्र' अथवा 'सूकरक्षेत्र' शब्द का ही उल्लेख है क्योंकि वराह तीर्थ तो मथुरा आदि अनेक स्थानों में मिलते हैं जैसा कि वराह पुराण (६७-२३) में लिखा है और पण्डित बद्रदत्त शर्मा का आग्रह[1] भी है —

> तत्र स्नात्वा च हेरम्बं मूर्त्तयश्च चतुर्विधाः
> तीर्थे वराहसंज्ञेतु मथुरायां व्यवस्थिताः ॥

अयोध्या माहात्म्य में उल्लेख—अयोध्या माहात्म्य के कुछ आवश्यक उद्धरण नीचे दिये जाते हैं —

> ततः पश्चिमविस्तारे योजनद्वयसम्मिते । ३३ ।
> संगमो वर्त्तते देवि सर्वपापप्रणाशनः ।
>
> × × ×
>
> संगमे सलिले तस्मिन् नरः स्नात्वा विधानतः ।
> संतर्प्य पितृ देवांश्च दत्वा दानं च शक्तितः । ४३ ।
> हुत्वा वैश्वानरं मन्त्रैः विष्णु लोकं व्रजेन्नरः
> पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् । ४४ ।
>
> × × ×
>
> विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च [illegible] स्वर्गादि प्रतिष्ठितः
> नानास्नानं च मासादि तुरंगमेधफलम् ।४५ ।
> संगमे विधिवद् दत्वा संवाति परमां गतिम्
> वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्या यात्रा धर्मार्थतत्परैः ।४४ ।
> सर्वं तीर्थावगाहस्य फलं यादृक् स्मृतं सिद्धौ
> तादृक् फलं नृणां सम्यक् जायेत्संगम-मज्जनात् ।४५ ।
> पुरा कृतयुगे देवि पृथिव्युद्धरणं कृतम्
> तत्र निर्व्याजितं तीर्थम् वराहेण महात्मना ।४६।
> हत्वा युद्धं हिरण्याक्षं पृथिवीस्थापनं कृतम्
> अत्र देवाः सगन्धर्वाः हर्षनिर्भरमानसाः ।४७।
> समागम्य स्तुतिं चक्रुर्यज्ञ वाराह-तुष्टये ।४८।

देवा ऊचुः

> देवादिदेवाय नमो नमो विभो
> श्री यज्ञवाराह जयाच्युत प्रभो

---

१ वास्तविक सूकरक्षेत्र (मडैन मराठा, जनवरी १९४१) और सूकरक्षेत्र (नव भारती फाल्गुन २०११ वि.)

स्वयंभूयोद्धृत्य मही-प्रवर्तिने
कृपा-समुद्राय वर प्रदायिने ।५९।

श्री वराह उवाच

किं वो मनसि यो देवा मत्तस्तत्प्रार्थ्यतां ध्रुवम्
संगमेऽत्र महाक्षेत्रे भुक्ति मुक्ति-प्रदायके ।६०।

देवा ऊचुः

सकृतो न भवं तस्य न चक्रेऽत्र-वियोजनम्
संगमे मज्जनात् पुंसो गर्भ-वास-क्षयो भवेत् ।६१।

श्री वराह उवाच

एवमस्तु सदा देवा संगमे पापनाशनः
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिस्तत्र न संशयः ।६२।

श्री शंकर उवाच

इति श्रुत्वा तदा देवा पंचमुनयस्तदा
तत्रैव निवसन्तिस्म सर्वा हृत्वा विधानतः ।६३।

(स्कन्दपुराण हरगौरी संवाद अयोध्या खण्ड अध्याय २६)

'अत्र' और 'तत्र'—उक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि सरयू-घाघरा का संगम पौष मास में वार्षिक स्नान-दान के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है और सत्ययुग में देवता गण भगवान् वराह की स्तुति करने के लिए यहीं एकत्र हुए जिन्होंने अन्यत्र हिरण्याक्ष दैत्य को समाप्त कर पृथ्वी का उद्धार किया था। उक्त श्लोकों में 'तत्र' और 'अत्र' सार्थक हैं। इनमें से एक का अर्थ है 'अन्यत्र' अर्थात् वह स्थान जिसका 'संवाद' में निश्चित उल्लेख नहीं है स्यात् उसका तात्पर्य सोरों से है दूसरे का तो निश्चय ही उक्त संगम से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'अत्र' से अभीष्ट स्थान है सरयू-घाघरा का संगम एवं 'तत्र' से सोरों।

प्रो० रामनारायण का सन्देह—कदाचित् यह बात रोचक प्रतीत होगी कि बरेली कालिज के श्री रामनारायण ने उक्त उपन्यास के अट्ठावन तक के श्लोकों का अनुवाद आंग्ल भाषा में किस प्रकार किया था जो इण्डियन एण्टिक्वेरी में १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह अनुवाद इस आशय का है: "सत्ययुग के प्रारम्भिक काल में भगवान् वराह रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने हिरण्याक्ष को मारा और भूतल को दुष्टों से मुक्त किया। वे आये और यहीं रहे और उन्होंने तीर्थ की स्थापना की। देवता बन्धव और मुनि हर्ष-पूर्वक इस प्रकार स्तुति करने लगे। यह अनुवाद समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि यह अभिव्यक्ति कि 'वे आये और यहीं रहे' निराधार प्रतीत होती है। वे इस आशय से लिखते हैं कि "महाराज मानसिंह के अनुसार 'अयोध्या माहात्म्य' सूर्य-वंशी इक्ष्वाकु की रचना है। अयोध्या और सरयू की स्थापना उनके आध्यात्मिक गुरु श्री वशिष्ठ मुनि के कारण है जिन से अयोध्या के वाशिष्ठ ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। इसकी सृष्टि त्रेता युग में हुई थी और यह श्री रामचन्द्र के सुदर्शन चक्र पर स्थित है। किन्तु श्री उमादत्त पंडित के अनुसार

किया और यह जीर्णोद्धार शनिवार वैशाख सुक्ला द्वादशी को संवत् १२४६ वि० में पूर्ण हुआ।

(ख) पृथ्वीराज रासो और सोरों—और भी कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिनमें सोरों वाले सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत तीर्थों या मुहल्लों के नामों का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीराज रासो के इकसठवें समय में जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है सोरों के योगमार्ग मोहल्ले का उल्लेख है। इस में योगेश्वरजी का मन्दिर है जिसका उल्लेख सौकरव के वर्णन में वराह पुराण में किया गया है। निम्न लिखित उद्धरण से विदित होता है कि जयचन्द की पुत्री का हरण करके पृथ्वीराज कन्नौज से दिल्ली जाते समय सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में टिके थे। वहीं उन्हें युद्ध करना पड़ा था जिसका वर्णन चन्दबरदाई ने इस प्रकार किया है—

> जुरि जोध सब्ब सोरों समर चवत जुद्ध जब्ब : कहिय (२४०१)
> पुर सोरों संबह जरक जोग सब्ब तिय चित्त
> अद्भुत रस अतिवर भयो बंजन बरन कवित्त (२४०२)
>
> × × ×
>
> बेद कोस हुरसिय सर्व त्रिवत्त बड़ गुन्नर
> काम बान हुर नवन निरर बिहुर भुमि सुन्नर।
> अम्मन यह पलानि बन्ह बंधिय हुय पालह
> बन्ह बान द्रावसह सबल बिग्गा बनिय लह।
> भूंमार बिब्ब सलवह तुरुक नवन पहारति पंच बर्ष
> इतने सुर सब जुब्ब सहं सोरों पुर पृथिराज सब (२४०३)
> परयो पैपि बाहार राज कम्म बब्ब कोप किय
> यह सोरों पृथिराज निरब बिब्बो सुचिति हिय (२४०४)

(२) तुलसीकालीन प्रमाण—गो० तुलसीदास के समय में सूकरक्षेत्र की स्थिति बड़ाहाट पर मानी जाती थी और वह स्थान सोरों है। इस विषय में मुख्य प्रमाण हैं - वीर मित्रोदय और आईने अकबरी।

(क) वीर मित्रोदय—'वीर मित्रोदय' के लेखक-सम्पादक वीरमित्र हैं जिनका सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से रहा और जिन्होंने वहाँ के महाराज की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का निर्माण प्राचीन प्रमाणों के आधार पर किया। इन्होंने सूकरक्षेत्र के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है

> "अथ सूकरक्षेत्र माहात्म्यम् । वराह पुराणे वराह उवाच
> परं क्षेत्रं मुखं स्थानं स्थानं मुक्तिप्रदं परम्
> परं च सौकरं स्थानं सर्व-संसार मोचकम्।
> यत्र संस्था मया देवि हा मुक्तिः रसातलात्
> तत्र नारीरती गंगा मम क्षीरार्थ मागता॥
> ये मृतास्तत्र मुक्तोऽपि क्षेत्र सूकरके मम
> तारिताः सर्व संसारात् स्वेत द्वीपाय यान्ति ते।
>
> (वीर मित्रोदय तीर्थप्रकाश, पृ० १७५)

(घ) अबुल फजले अल्लामी ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि 'हिरण्याक्ष नाम के एक दैत्य ने बहुत काल तक भगवद्भक्ति और तपस्या की। एक दिन भगवान् दैत्य विग्रह में आविर्भूत हुए और उससे बोले कि तू क्या चाहता है? इस कृपापूर्ण शब्दों से हृष्ट हो दैत्य ने बहुत से हिंस्र पशु जिलाये और प्रार्थना की कि मैं उनकी हानि से मुक्त रहूँ और अखिल विश्व का सम्राट् बन जाऊँ। तत्पश्चात् शीघ्र ही अभीष्ट की प्राप्ति कर, उसने इन्द्र से स्वर्ग का आधिपत्य छीन लिया और उसे अपने किसी सम्बन्धी को दे दिया। देवगण और ब्रह्माजी सहायताय विष्णुजी के निकट गये। (दैत्य की) प्रार्थना में सूकर का नाम रह गया था अतएव (भगवान् ने) उत्तर दिया कि मैं उस रूप में प्रकट होकर उसके प्राण हरूँगा। तदनन्तर तुरन्त विष्णुजी ने उस रूप में आविर्भूत हो और उसकी राजधानी में प्रवेश कर उसका संहार कर दिया। यह (घटना) सोरों नामक स्थान में हुई बतायी जाती है।'[1] कर्नल एच० एस० पैरट तथा यदुनाथ सरकार तथा जगदीश मुखोपाध्याय आदि उक्त ग्रन्थ के टीकाकारों ने एवं गजेटियरों के लेखकों ने उक्त सोरों को उत्तर प्रदेश के एटा जिले में माना है।

३ अन्य प्रमाण—इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रमाण हैं यथा विष्णु स्वामि चरितामृत वल्लभदिग्विजय विलराम का शिलालेख सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा रत्नावली चरित।

(क) विष्णुस्वामिचरितामृत—हरिहर भट्ट कृत 'विष्णुस्वामी चरितामृत' में विष्णुस्वामीजी की जीवनी और यात्राओं का वर्णन है। इनका नाम रवि माधव भी है। इनके पौत्र ने गोकुल के श्री वल्लभाचार्य की पौत्री से विवाह किया था। एक बार विष्णु स्वामीजी ने अपने शिष्यों के साथ मुरादाबाद जिले के संभल से एटा जिले के सहसवान में सप्तस्रोत तक यात्रा की और वहाँ से वराह क्षेत्र पहुँचे। इस क्षेत्र में मुमान नामक किसी सनाढ्य ब्राह्मण को दीक्षा देकर वे आगरा जिले में यमुना तीरस्थ बटेश्वर पहुँचे थे जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है—

ततो जगामाशु रविनु पत्य सहस्रबाहो विल तीर्थ मुख्यम्।
यत्रार्जुनो दिग्विजयं च कृत्वा चकार राज्यं बलि कार्तवीर्य ।१२।
सप्तस्रोतस्तीर्थमुख्यं तु यत्र स्रोतोभि स्यात्सर्वभूतीसप्तभि सा।
सप्तानां वा प्रीतये भार्गवानां स्वरक्षणानां पञ्चानां गतानाम् ।१३।
बभूव यत्रा सुखजस्य पुत्रो ततो पुरापत्य सुदेव तीर्थम्।
× × ×
दृष्ट्वा प्रयाश्यन्ति जनस्तकामान् पीत्वा पुनीतान्य (भवन्ति) सर्वत।
मुक्तानि यस्मिन् विल सोमवासरे यास्यन्ति बहुन्पुर परात्परम् ।१५।
× × ×

---

१ आइने अकबरी और अबुल फजले अल्लामी जिल्द १ जेरेट-सरकार का संस्करण रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल १९४८ पृष्ठ १९०।

क्षेत्रं वराहस्य हरेर्ययाम दक्षं गंगां स च दुःखहारिणीम् ।
गुलाल नाम्नापि सनाढ्य आराद्दृष्ट्वा रविं श्यामं तनुं तदापात् ।२०।
× × ×
ततो जयामासु वटेश्वरं रविर्वर्षे तीर्थे तु कलिन्दजा तटे ॥२२॥
(उल्लास १४)

सूकरक्षेत्र और सनाढ्य ब्राह्मण—जिस वराह क्षेत्र का उल्लेख ऊपर हुआ है वह सोरोंवाला ही सूकरक्षेत्र है। यहाँ आज भी अधिकांश में सनाढ्य ब्राह्मण निवास करते हैं। यह गंगा के किनारे है और सहसवान से सात मील है। उपर्युक्त विष्णुस्वामी चरितामृत के तीसवें अध्याय में उस यात्रा का वर्णन है जो विष्णुस्वामी के पौत्र गोस्वामी रघुनन्दन ने की थी। ये गोस्वामीजी सात वर्ष तक प्रयाग में रहे और रमपाल के पुत्र से तथा सात मुद्राओं की भेंट स्वीकार कर अपने पुत्र कमल तथा परिवार के सहित मथुरा के लिए चले। वे प्रयाग से काशी अयोध्या और नैमिषारण्य पहुँचे। मार्ग में गोमती रामगंगा और शारदा गंगा के दर्शन कर और उन्हें पार कर वे मैनपुरी कन्नौज कम्पिल और वहाँ से वराह तीर्थ पहुँचे। वराह तीर्थ में गंगा-स्नान कर और निर्धनों को दान दे, मथुरा के लिए प्रस्थित हुए और दाऊजी तथा महावन के दर्शन कर अन्त में गोकुल जा पहुँचे जहाँ वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने कुछ समय तक उनका सत्कार किया। वचन इस प्रकार हैं —

इत्थं प्रयागे रघुनन्दनस्तु उवास वर्षाणि च सप्त सप्त ।
× × ×
ततो विनिसृत्य रमपालपुत्रं भेटं गृहीत्वा च सपादसप्तम् ।
पुत्रं कमलं किल जातिमुख्यैर्ययाम गोस्वामिसुतो मथीं पुरीम् ॥ २ ॥
काशीं च गत्वा किल विष्णुपादं त्रिस्रोतसं वीक्ष्य नवाह्न कन्दिकाम् ।
ययाययोध्यां नगरीं वरार्हह रघुनन्दनस्तत ॥ ३ ॥
श्री नैमिषं तत्र पुनर्विलोक्यम् सगोमतीं रामगरीं च बाहुदीम्
उत्तीर्य गत्वा च मनोपुरीं परां ददर्श मार्गे किल कान्यकुब्जकम्
स कम्पिलां तत्र पुनर्विलोक्य तीर्थे वराहस्य ततो ययाम
स्नात्वा च गंगां स ततो त्रिस्रोतसः दत्वा सुरत्नं प्रययौ मथोः पुरीम्
संकर्षणं वीक्ष्य बृहद्वनं च श्री गोकुलाख्ये नगरे ततः सः ।
गोस्वामिना वल्लभनन्दनेन सुपूजितस्तत्र निवासितश्च ।
(श्री विष्णुस्वामी चरितामृत, उल्लास १०)

(ख) वल्लभदिग्विजय—वल्लभ दिग्विजय[1] के अनुसार वल्लभाचार्यजी ने हरिद्वार से सूकरक्षेत्र तक यात्रा की और वहाँ से वे कन्नौज होते हुए प्रयाग पहुँच गये, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से प्रकट है

ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकर-क्षेत्रं समायाताः । तत्र
कृत्वाय गुरुवर्यानाज्ञां दत्वा कान्यकुब्जाध्वना प्रयागं समायाताः । (पृष्ठ ४६)

(ग) बिलराम का शिलालेख ७८२ वर्ष प्राचीन—कासगंज से सोरों तो

१ सुदर्शन कार्यालय मथुरा, १९७५ वि ।

आठ मील और बिलराम ढाई मील है। एक शिलालेख से* ऐसा विदित होता है कि बिलराम का शुद्ध नाम बलराम है। बलरामसिंह नाम का एक चौहान था जो कन्नौज की राज-सभा का सदस्य था। अपने नाम पर उक्त नगर बसा कर वह १०९५ शक संवत् में पंचत्व को प्राप्त हुआ। यहाँ उसने शाप स्थापे वह स्थान था सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरम। राजपूताने से आने वाले यात्री भी सोरों को सोरम कहते हैं। निम्नलिखित शिलालेख में जो मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी संवत् १०९५ शक का है सोरों और सोरम का तादात्म्य ध्यान देने योग्य है :

कालोत्तरिद्धनहरिन्नवभूविभागे शाकारि शैल वर बलराम संज्ञम्।
स्वर्गम् गतो ... अ धर्म भृतां वरिष्ठः चौहानवंशतिलको बलरामसिंहः।
श्रीकान्यकुब्ज-नरपाल-सभा-सदस्य श्रेष्ठाग्रगण्य सुधियां विदुषां कवीनाम्।
येन स्वकीयमयशो यवनीकृता भूः स्वयम् गतः स नृपतिर्बलरामसिंहः॥
मार्गाकशुक्लसप्तमि प्रमिते शकाब्दे शुक्रेऽग्रहायण दले च तिथौ दशम्याम्।
श्री सोरमे प्रमितलोकरवे तृतीये स्वयं गतः स नृपतिर्बलरामसिंहः॥

(घ) कवि कृष्णदास—महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास ने भी अपनी रचनाओं में सूकरक्षेत्र पर प्रचुर प्रकाश डाला है क्योंकि वे स्वयं सूकरक्षेत्र के निवासी थे। उन्होंने वयकल की रचना १६५७ वि में की थी जिसमें उन्होंने रामपुर-श्याम पुर का तादात्म्य और श्यामायन मन्दिर और श्यामसर तथा रत्नावली की जन्मभूमि बदरी का उल्लेख किया है जो उक्त संवत् में गंगा के प्रवाह में डूब गयी थी। उन्होंने यह भी बताया है कि बदरी गंगा-तीर पर थी। उनके वचन हैं

कीरति की मूरति जहाँ राजै अतिरवि की
तोरन वराह भूमि देवनु जे गाई है।
जाइ धाम रामपुर श्याम सर कीनो वास
श्यामायन श्यामपुर वास तुम्हराई है।

× × ×

सीतल अखाड़ बाड़ लाई बहि देवधुनि
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावली माता की।
नारी-नर डूबे बहु पैठ बड़ भाव रहे
बिहु मिट बदरी के दुख कथा ताकी।

'सूकरक्षेत्र माहात्म्य' में सूकर-क्षेत्र के इतिहास और माहात्म्य पौराणिक आधार पर बताये गये हैं। वराह भगवान् श्रोणी से कहते हैं :—

क्षेत्र सोकरव देव बखानो अगति मुकति दायक तेहि जानो।
जल बूड़ो लखि तुमहि पुकारी कहाँ रसतल सों उद्धारी।
कहाँ विषमता देखि पुहाये सोई सोकर क्षेत्र कहाये।
योजन पाँच तासु विस्तारा जहँ निज रूप वराह पसारा।

कृष्णदासजी ने उक्त महात्म्य में चक्रतीर्थ योगतीर्थ सोमतीर्थ आदि का वर्णन किया है और अनेक प्रकार से सूकर-क्षेत्र की महिमा गायी है। वे कहते हैं :

* दे सूकर क्षेत्र (वि ...) ब्रजभारती, अम्बुज २ ११ वि

सूकरखेत सुरसरी माहीं पितर अस्थि जे नाइ सिराहीं।
तासु पितर गन सद्गति पावें ते भनि सुत-सपूत कहावें।

(छ) रत्नावली-चरित में सूकरक्षेत्र का वर्णन—श्री मुरलीधर चतुर्वेदी ने १७४६ वि० में 'रत्नावली-चरित' लिखा और उसमें सूकर-क्षेत्र तथा बदरी का अच्छा वर्णन किया है :

विदित वेद अघ हरन हरि पतितनु पावन करन हरि।
सुरसरिता के दक्षिन कूल, मध्य धरनि आंवस्य मूल।
निज स्वभाव बस जगत नाहु हरि प्रगट्यो जहँ वपु वराहु।
तातों यह वराह क्षेत्र, अह मुनि सब सरन सेतु॥
तीरथ सूकरखेत नाम भयो विदित जग जगति धाम।
बहु तीरथ जहँ रहे राखि सिवत अघ बन जात भाखि।

× × ×

आदि तीर्थ जे जगत माहिं, सब तीरथनु फल है जहाहिं।
सुरसरि पुनि वराह क्षेत्र मथुर अरु पुनि कन्हु क्षेत्र।
जहँ वराह प्रभु सबन एक, सोहत सुर तरुहुँ अनेक।

× × ×

जहँ सुरसरि की बहति धारि, जनु वराह पद रहो दवारि।
सोरंकी नृप सोमवत्त भयो जहाँ मुनि धर्म मत्त।
तासु दुर्ग अवसेस माहिं, कछक चिह्न ताके लखाहिं।

× × ×

ताके पच्छिम दिसि कछार बहुत पुरातनि पंथवार।
तासु प्रतीची तीर धाम कबहुँ रहुते नयनाभिराम।
नाम अवरिका बन प्रसिद्ध, होत मुनादि न जहाँ सिद्ध।

× × ×

सोइ कालबस मुनिन धाम भयो पुहस्थनु बास धाम।

'रत्नावली-चरित' को सम्पूर्ण करते समय श्री मुरलीधर चतुर्वेद ने बताया है कि उन्होंने रत्नावली की कथा सूकर तीर्थ में वृद्धों से जैसी सुनी वैसी लिख दी। चतुर्वेद जी ने द्वादशश्रेणी जाति का इतिहास भी लिखा है और उसमें उन्होंने अपने को सूकरक्षेत्र निवासी सनाढ्य ब्राह्मण बताया है, जिससे सिद्ध होता है कि 'सूकर तीर्थ' 'वराह तीर्थ' 'सूकर क्षेत्र' 'सूकर क्षेत्र' और 'सोरों क्षेत्र' पर्यायवाची शब्द हैं।

(ज) चालुक्य वंश प्रदीप—'चालुक्य वंश प्रदीप' से भी सूकरक्षेत्र पर प्रकाश पड़ता है। इसे जीवदेव बघेला ने रचा था जो अतिरंजीपुर के रहने वाले थे और जो जैसा कि कहा जाता है, आमेर के राजा मानसिंह की सेवा में थे। इसमें लिखा है कि आदि चौलुक्य राजा हारीतदेव अर्बुद (अर्थात् आबू) से आकर सोरों में गंगा के तट पर बस कर उग्र तप के निमित्त कुछ समय तक तो दस चुल्लू जल पीकर ही रहे। तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें चौलुक्य पद प्रदान किया और जिस स्थल पर उन्होंने तपस्या की थी वह चुलुका नाम से अभिहित हुई। हारीत [illegible] की संतति

चौलुक्य कहलाये। उसका पुत्र बड़ा यशस्वी हुआ जिसने दो दुर्ग बनवाये जिनमें से एक तो सोरों है दूसरा अतिरंजी। भीमदेव बघेला के शब्द इस प्रकार हैं

सोरम गंगा निकट सुमठ निज कुटी बनाई
करत लग्यो अति तहाँ जप जप तप अधिकाई।
कर्यो साग आहार पियो बस चुलुक गंग जल
× × ×
बीते बारह बरस जब प्रगटे विधि द्विज रूप धरि।
चुलुक मान करि तब कर्यो तासों चौलुक भयो।
तपो भूमि चुलुका जहँ इमि वर दे निज बल गयो।
× × ×
चौलुक देव भुवाल पूत नृप बल प्रतापी
अतरंजीपुर दुर्ग नीव तिन हित करि थापी।
तिनहिं सोरम सीस दुर्ग दिढ़ दिव्य बनायो,
चहुँ दिसि देसन जीति राज्य चौलुक्य बढ़ायो।
रहि बराह पद जमति रत बरजा मुख करि जल लह्यो।
कास चक्र बल दुग्ध तिहिं आनु रूप डेरा भयो।

(ख) 'शशांक'—श्री राखालदास बंद्योपाध्याय ने जैसाकि निर्देश किया जा चुका है, शशांक नाम का ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अनूदित किया और काशी की नागरी प्रचारिणी-सभा ने १९२२ ई० में प्रकाशित किया। इस पुस्तक के पच्चीसवें से बत्तीसवें पृष्ठ तक इस बात का वर्णन है कि स्थाण्वीश्वर-नरेश राज्यवर्द्धन की मृत्यु भीड़ के शशांकगुप्त-द्वारा ६०६ ई० में गंगा जी के तट पर सूकरक्षेत्र में हुई। उपन्यासकार के अनुसार सूकर-क्षेत्र गंगाजी के पश्चिम में वह स्थान है जहाँ भगवान् वराह का अवतार हुआ था। वह अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है जहाँ यात्री आते रहते हैं। कुरुक्षेत्र की भाँति यह भी युद्धस्थल रहा है जिसने मध्यदेश के शासकों के भाग्य का निर्णय किया है। यह वही सूकर-क्षेत्र है जहाँ महाराजा जयचन्द ने मुहम्मद गोरी का सामुख्य किया। सूकर-क्षेत्र में शशांक को यह सूचना मिली कि राज्यवर्द्धन मालवा की ओर बढ़ रहा है अतएव अनेक चर भेजे गये। राज्यवर्द्धन मथुरा पहुँचा तो शशांक ने उसके पास अपना दूत भेजा जो अपमानित होकर लौटा। अतएव भण्डिवर्मा और माधववर्मा ने यह प्रस्ताव किया कि उसे यमुना जी पर ही रोक दिया जाय किन्तु शशांक सहमत नहीं हुआ। अन्त में जब सूकर-क्षेत्र में राज्यवर्द्धन का ससैन्य प्रवेश हुआ तो उसका और शशांक का सशस्त्र द्वन्द्व-युद्ध हुआ। शशांक के कई घाव आये किन्तु सहसा उसका खड्ग राज्यवर्द्धन की ग्रीवा पर जा पड़ा और उसका शरीर धूलि में लोटने लगा। राज्यवर्द्धन की मृत्यु का समाचार सुनते ही स्थाण्वीश्वर की सम्पूर्ण सेना आगे बढ़ी हुई और कान्यकुब्ज लौट गयी। 'शशांक' के उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वह सूकरक्षेत्र जहाँ वह युद्ध हुआ था कान्यकुब्ज और मथुरा के बीच गंगा-तट पर स्थित था अतएव उसका तादात्म्य सोरों से करना चाहिए।

(ब) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कमवाब' के रामायणांक में एक लेख दिया जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने सकल क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को शुक्ल क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के पूजनीय महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल जन्मस्थल अपितु पालन-पोषण भी यहाँ हुआ।

(ग) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८९वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(घ) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आइने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की 'बुढ़ गंगा' तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि बुढ़ गंगा बालीरथी गंगा का पुराना भंडार है, गंगाजी वहाँ से हट गयी हैं।

(ङ) श्री जगजती चौधरी—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित्र के पृष्ठ २१ से बालरीदास जी के माता-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री जमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। वहाँ बुढ़ गंगा जी का स्नान किया। वहीं भगवान् का भी वराहवतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम सकलक्षेत्र और दूसरा शूकरक्षेत्र है।"

(छ) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरणदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०१ शाके १७६८ तप वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ प्रथम तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों शूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केशवी पद्धति सोराहरण। संवत् १८६५ शाके १७६१ तप वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ६ षष्ठ्याम् भोमवासरे लिखितं विप्र सदारामेण कासगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। संवत्शुभमस्तु लिखितं विप्र सदारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फाल्गुन कृष्णा ३ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) जातकाभरण। इति श्री दैवज्ञ हुंडिराज विरचिते जातकाभरणे स्त्री जातकाध्यायः। ३१। १७१८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८६३ वासरेप्रिय श्रवणाद्य धूमिते मासे सित द्वितीयका तिथौ। यौनिपेऽर्क दिवसे शिवालिखे लिखितो

द्विजवरैश्च भाषणं । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरे. प्रसादात् समाप्तिम गात् ग्रन्थ जातकामरनाथस्य मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से १०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'वंशकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में मनीमिश्र कहलाती है। 'वंशकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कॉलिज के रजिस्ट्रार डॉ० मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई० में किया था। मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और संपादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

'वंशकौस्तुभ नामायं ग्रन्थः सूकरक्षेत्र (सोरों जि० एटा यू० पी०)
वासिना मिश्रवरेण श्री मेवारामभिधेन विरचित इति संवत्सरान्ते ८७ तमात्
इतोऽष्टादशवर्षान्ते अस्य निर्माणं प्रायेण शत-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवाभूदिति
श्री मेवाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना ।
मतो प्रीत्यै चित्रकाव्यः इतोऽयं वंशकौस्तुभः ॥ ८७ ॥

(ङ) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि० का और दूसरा १९२८ वि० का है। पहले में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि० वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड संकावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरकपहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिदास बाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु और छत्तीसवें पृष्ठ पर सूकर-क्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार है सूकर क्षेत्र=गंगातीर सोरों घाट जहाँ बराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों ही किया है जो १९५९ वि० में छपी थी।

(च) सरकारी विवरण—ब्रिटिश शासन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से होता है —

(अ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्कलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके २६६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा राज-पथ पर स्थित है। यह स्थान पहले ऊकलक्षेत्र कहा जाता था किन्तु बराहावतार द्वारा

(ब) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने सकल सन और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को सूकर क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के पूजनीय महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहाँ हुआ।

(स) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८९वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(द) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आईने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की 'बुढ़ गंगा' तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि बुढ़ गंगा भागीरथी गंगा का पुराना अंतर है गंगाजी वहाँ से हट गयी हैं।

(ह) श्री जनकजी पांडेजी—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित्र के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री जमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बुढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहावतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकलक्षेत्र और दूसरा सूकरक्षेत्र है।"

(ह) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरनदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १६०३ साके १७६८ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ अक्षय तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों सूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केसवी पद्धति सोदाहरण। संवत् १८९८ साके १७६३ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ९ षष्ठ्याम् भौमवासरे लिखितं मिश्र सदारामेन कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं मिश्र सदा रामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फाल्गुन कृष्णा ६ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) चातकामरण। इति श्री दैवज्ञ हुंडिराज विरचिते चातकामरणे श्री चातकाख्यम्। ३१। १७१८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९१ वत्सरेऽस्मिन् मलमास भूमिते श्रावणे सित द्वितीयया तिथौ। भौमेऽर्के दिवसे शिवान्विते लिख्यते

हिमकरैरव मामक । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे थी हरे प्रसादात् समाप्तिम
गतः ग्रन्थ जातकामरवाक्यं मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित हरिवल्लभ मौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से ३०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'वैष्णवीस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में पनीमिश्र कहलाती है। 'वैष्णवीस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कॉलिज के रजिस्ट्रार डॉ० गंगानाथ झा जी के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई० में किया था। मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और उन्होंने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

वैष्णवीस्तुभ नामार्थ उक्त्वा सूकरक्षेत्र (सोरों जि० एटा यू० पी०)
वासिना मिश्रवरेण श्री मेवारामविशेष विरचित इति संवत्समाप्तौ ८७ तमस्
श्लोकावबन्धते अस्य निर्माणं प्रावेश शत-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवामूदिति"
'श्री मेवाराम विशेष सूकरक्षेत्र वासिना ।
मतो श्रीमे चित्रकाव्य इतीदं वैष्णवीस्तुभ" ॥ ८७ ॥"

(ङ) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू मत के लिए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि० का और दूसरा १९२८ वि० का है। पहले में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों पंगावाट बताया गया है। १९२८ वि० वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड लंकावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरिहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिरूप वाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु और उन्नीसवें पृष्ठ पर सूकर-क्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार है 'सूकर क्षेत्र—गंगातीर सोरों घाट जहाँ वराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों ही किया है जो १९३६ वि० में छपी थी।

(च) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे, सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से होता है —

(अ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्कियॉलजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके २६६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के सम्पर्क पर स्थित है। यह स्थान पहले अकबरपुर कहा जाता था किन्तु वराहावतार

(घ) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख देखा जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने उक्त क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को शुक्र क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के पूजनीय कवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहाँ हुआ।

(ङ) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८१वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(च) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आईने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की 'बुढ़ गंगा' तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि बुढ़ गंगा मालीरथी गंगा का पुराना भंडार है गंगाजी यहाँ से हट गयी हैं।

(छ) श्री जगन्नाथ पाँडेय—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री जमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बुढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहावतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम सकलक्षेत्र और दूसरा सूकरक्षेत्र है।"

(ज) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयी। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरणदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०३ साके १७६८ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ अक्षय तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों शूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केशवी पद्धति सोदाहरण। संवत् १८९८ साके १७६३ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ६ षष्ठ्याम् भोमवासरे लिखितं विप्र सदारामेन कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं विप्र सदारामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फागुण कृष्णा ३ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) नाटकाभरण। इति श्री दैवज्ञ हुंडिराज विरचिते नाटकाभरणे स्त्री नाटकाध्यायः। ३१। १७३८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९३ वत्सरेऽस्मिन् नवनाम भूमिते श्रावणे सित द्वितीयया तिथौ। योगिनेऽर्के दिवसे शिवाभिते लिखते

द्विवर्षरेव मानक । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरे. प्रसादात् समाप्तिम यात् ग्रन्थ चातकामरनाम्नि मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से ३०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'वैद्यकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गजपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी सन्तति आज भी सोरों में गनीमिश्र कहलाती है। 'वैद्यकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कॉलिज के रजिस्ट्रार डॉ० मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई० में किया था। मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और संपादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

'वैद्यकौस्तुभ नामाय ग्रन्थ सूकरक्षेत्र (सोरों जि० एटा यू० पी०) वासिना त्रिपथगरेण श्री मेवारामभिधेन विरचित इति संवत्सरान्तौ ८७ तमात् श्लोकादवगम्यते अस्य निर्माण प्रायेण शत-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवामूदिति'

'श्री मेवाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना ।
मत्तो प्रीत्यै चित्रकाव्य कृतोऽयं वैद्यकौस्तुभ ॥ ८७ ॥"

(ङ) मानस की टीकाएं—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि० का और दूसरा १९२८ वि० का है। पहले में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि० वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड संकावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरिहरि' का अर्थ करते समय नरहरिदास बाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु और उन्नीसवें पृष्ठ पर सूकर-क्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार है सूकर क्षेत्र=गंगातीर सोरों घाट जहाँ बराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों ही किया है जो १९२२ वि० में छपी थी।

(च) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से होता है —

(छ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्कैलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके २६९वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राज-पथ पर स्थित है। यह स्थान पहले ऊकलक्षेत्र कहा जाता था किन्तु बराहावतार द्वारा

(घ) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख दिया जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने उकल क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को सूकर क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं — 'यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के पूजनीय कवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहाँ हुआ।

(ङ) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८१वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(च) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आइने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की बुढ़ गंगा' तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि वृद्ध गंगा भागीरथी गंगा का पुराना कंडार है गंगाजी यहाँ से हट गयी हैं।

(छ) श्री जमुनाप्रसाद पाँडेय—ने रामानुग्रहदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित्र के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री यमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ वृद्ध गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहावतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकलक्षेत्र और दूसरा सूकरक्षेत्र है।

(ज) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(झ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरनदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०३ साके १७६७ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ अक्षय तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों सूकर क्षेत्र समीपे।

(ञ) केशरी पद्धति सोदाहरण। संवत् १८९७ साके १७६३ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ६ षष्ठ्याम् भोमवासरे लिखितं विप्र सदारामेन कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(ट) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं विप्र सदारामेन ग्राम कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फाल्गुन कृष्णा ५ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ठ) जातकामरण। इति श्री दैवज्ञ ढुंढिराज विरचिते जातकामरणे स्त्री जातकाध्यायः। ११। १७३८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९३ वत्सरेऽस्मिन् नवनाग भूमिते माघमे सित द्वितीयाग तिथौ। यौनिमेऽर्के दिवसे लिखान्विते लिखते

द्विजवरैरेव मार्यते । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरे. प्रसादात् समाप्तिम गात् ग्रन्थ आतकामरयार्थं मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेघाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से ३०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेघाराम मिश्र ने 'वैद्यकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में पनीमिश्र कहलाती है। 'वैद्यकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कॉलिज के रजिस्ट्रार डॉ० गंगानाथ झा के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई० में किया था। मेघाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और संपादकों ने इस तथ्य का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

"वैद्यकौस्तुभ नामायं ग्रन्थः सूकरक्षेत्र (सोरों जि० एटा यू० पी०) वासिना त्रिपाठरेण श्री मेघारामशर्मणा विरचित इति ग्रन्थसमाप्तौ ८७ तमाद् श्लोकादवगम्यते अस्य निर्माणं प्रायेण सप्त-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवाभूदिति

'श्री मेघाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना ।
सतां प्रीत्यै चित्रकाव्य कृतोऽयं वैद्यकौस्तुभः ॥ ८७ ॥

(च) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि० का और दूसरा १९२८ वि० का है। पहले में सूकरखेत का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि० वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड शंकावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरकप्रहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिदास बाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु' और छब्बीसवें पृष्ठ पर सूकर-क्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार है 'सूकर क्षेत्र—गंगातीर सोरों घाट जहाँ बराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरक्षेत्र का अर्थ सोरों ही किया है जो १९३१ वि० में छपी थी।

(छ) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से होता है —

(अ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्कलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके २९६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राज-पथ पर स्थित है। यह स्थान पहले ऊकलतीर्थ कहा जाता था किन्तु बराहावतार द्वारा

दैत्य हिरण्याक्ष के वध के पश्चात् इसका नाम सूकर-क्षेत्र अर्थात् सुकर्म-क्षेत्र पड़ गया। सोरों में बहुत मन्दिर हैं उनमें से कतिपय प्राचीन हैं। किन्तु महत्त्वपूर्ण मन्दिर तो सीतारामजी का है जो बेड़े पर है और वराहजी का भी जो नगर के उत्तर-पश्चिम में विद्यमान है। द्वितीय मन्दिर के निकट मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को एक बड़ा वार्षिक मेला लगता है और इस मन्दिर में लक्ष्मी-वराह की प्रतिमाएँ हैं।

(आ) स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट—इसी प्रकार का विवरण 'स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट' (एम० डब्लू० पी० आयरा डिवीजन की चतुर्थ जिल्द में) १८७६ ई० में, तथाच कुछ अधिक सूचनाओं के साथ 'द इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया' में प्रकाशित हुआ। इस गजटियर का द्वितीय संस्करण १८८५ ई० में और नवीन संस्करण १९०८ ई० में हुआ था। द्वितीय संस्करण के सत्तावनवें पृष्ठ पर विवरण उपलब्ध है। नवीन संस्करण की तेइसवीं जिल्द से निम्नलिखित कुछ उद्धरण संचित प्रतीत होते

सोरों उत्तर प्रदेश के एटा जिले की कासगंज तहसील में एक कस्बा है जो बूढ़ गंगा के तट और २७°५४'३० तथा ७८°४५' पू० अक्षांशों पर स्थित है। १९०१ की जन-संख्या १२१७४ है। सोरों अत्यन्त प्राचीन स्थान है। जनश्रुति के अनुसार इसका नाम उकलतीर्थ था किन्तु विष्णुजी के वराहावतार-द्वारा हिरण्यकश्यप नामक दैत्य के वध के पश्चात् उसका नाम बदल कर सूकर-क्षेत्र रख दिया गया। 'सूकर' संस्कृत सूअर का पर्याय है। बेड़े पर सीतारामजी का मन्दिर और मुसलमान फकीर सख शमाल की समाधि है। औरंगजेब के शासन-काल में यह मन्दिर नष्ट कर दिया गया किन्तु पन्द्रहवीं शती के अन्त में एक धनी वैश्य ने इसका पुनरुद्धार कर दिया। सत्रहवीं शताब्दी तक गंगाजी उसी मार्ग से बहती थीं जिसे अब बूढ़ी गंगा कहते हैं। यात्री लोग मकुरा दर्शन के पश्चात् सोरों में स्नान के निमित्त आते हैं। यहाँ सरोवर, सुन्दर मन्दिर और घाट बने हुए हैं। आजकल इस सरोवर में कस्बे से जल आता है, किन्तु महत्त्वपूर्ण स्नान तो गंगाजी में ही होता है जो सोरों से चार मील उत्तर है।

(इ) इम्पीरियल गजटियर आदि—यह बात द्रष्टव्य है कि पहले दो विवरणों में 'सूकर' का अर्थ भ्रम से सुकृत कर दिया गया था किन्तु यह भूल तीसरे विवरण में सुधार दी गई थी अर्थात् 'सूकर' का अर्थ 'सूअर' कर दिया गया है किन्तु अन्तिम दो में एवं एटा-जिला गजटियर में भी भूल से हिरण्याक्ष के स्थान पर हिरण्यकश्यप लिख दिया गया है यद्यपि आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया में शुद्ध रूप ही था। इम्पीरियल गजटियर के द्वितीय संस्करण में लिखा है कि सोरों का विशेष महत्त्व वार्षिकता यात्रा और मेले से सम्बद्ध है।

(ई) एटा डिस्ट्रिक्ट गजटियर—१९०६ ई० में ई० डी० एटकिंसन ने एटा डिस्ट्रिक्ट गजटियर प्रस्तुत किया और १९११ में ई० आर० नीव ने एच० ओ० डब्लू० रॉबर्ट्स के बन्दोबस्त-विवरण तथा कतिपय जिलाधिकारियों की संग्रहीत सामग्री के आधार पर उसका संशोधन भी। जैसा कि होना चाहिए, इस संशोधित संस्करण में सोरों का इतिहास तथा अन्य विवरण अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से दिया गया है।

२२१वें से २२६वें पृष्ठ तक जो विवरण दिये गये हैं उनका कुछ आशय नीचे दिया जाता है

सोरों का मूल नाम उकल क्षेत्र था जो विष्णुजी के वराहावतार-द्वारा हिरण्यकश्यप के वध के पश्चात् सूकरक्षेत्र (अर्थात् वन्य सूअर का स्थान) नाम में परिवर्तित हो गया। प्राचीन बस्ती तो दुग के खेड़े पर बसा हुआ है। यह नगर गंगाजी के प्राचीन ऊँचे तट पर स्थित है जहाँ कि, कहते हैं यह नदी आई तो वर्ष पहले बहती थी। इस खेड़े पर सीतारामजी का मन्दिर और शेख जमाल की समाधि विद्यमान है। यह मन्दिर बड़े आकार की अनेक इष्टिकाओं से परिपूर्ण है और प्राचीरों की नींव सब दिशाओं में लक्षित होती है। जनश्रुति है कि ये राजा सोमदत्त के दुर्ग के अवशेष हैं। मूल वसति तो उनसे भी प्राचीनतर उस राजा वेन चक्रवर्ती की है जिसके विषय में उत्तर बिहार अवध और रुहेलखंड में गाथाएँ प्रचलित हैं। सोलंकियों की अनुश्रुति के अनुसार उसका स्थापक उन्हीं का एक नेता सोमसती था। यद्यपि बहुत से मन्दिर अत्यन्त प्राचीन कहे जाते हैं, तथापि सीतारामजी के एवं नगर के ईशान में स्थित वराहजी के मन्दिर की विशेष महत्ता है। इस मन्दिर में लक्ष्मी-वराह की प्रतिमाएँ स्थापित हैं और भगवान् वराह की स्मृति में मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को यात्रियों की भीड़ दर्शनार्थ आती है। कहा जाता है कि सीतारामजी के मन्दिर को औरंगजेब ने नष्ट कर दिया और १८०७ में एक अनाड्य व्यक्ति ने स्तम्भों को स्थापित कर और बकल भित्ति बनवाकर उसका पुनरुद्धार कर दिया था। इन स्तम्भों की पद्धति वैसी ही है जैसी दिल्ली में कुतुब मसजिद के अन्तिम कोणस्थ स्तम्भों की। एक स्तम्भ पर प्राचीन और स्पष्ट संवत् १२२६ उत्कीर्ण है, अतएव मन्दिर का निर्माण १००० ई० के पश्चात् नहीं होना चाहिए। जनरल कनिंघम ने उन पर यात्रियों के इन उत्कीर्ण लेखों के सम्बन्ध में लिखा है कि यद्यपि ये साधारणतः संक्षिप्त और अविहीन हैं तथापि संख्या में अट्ठाईस से कम नहीं हैं, और उन पर जो संवत् पढ़े हैं वे ११६९ ई० और १२११ ई० के अन्तर्गत हैं। अतएव मन्दिर के इतिहास का पता लगाने के लिए इनका महत्त्व है। मुसलिम विजय के पश्चात् सब से पहला विवरण सन् १२४१ ई० का है और तब से लेकर १२९० ई० तक कम से कम पन्द्रह ऐसे विवरण हैं जिनमें संवतों का उल्लेख है। अतः अवश्य ही गोरी वंश काल में जिसका अन्त १२०९ ई० में हुआ था अधिक यात्री सोरों आते रहे होंगे। किन्तु उसके पश्चात् खिलजी और तुगलकों के शासन काल का केवल एक उत्कीर्ण लेख १३७५ ई० का है जो फीरोज-कालीन है। इस काल के आधे भाग में निर्दय और निरंकुश अलाउद्दीन खिलजी ने एवं नृशंस उन्मत्त मुहम्मद तुगलक ने शासन किया था। अतएव ऐसी कल्पना उचित प्रतीत होती है कि मुसलमान शासकों के अत्याचार से धार्मिक यात्राओं में अड़चन पड़ी। दूसरा लेख १४२९ ई० का है और तब से १५११ ई० तक सोलह संवत्-लेख मिलते हैं। इनमें से तेरह बहलोल लोदी के शासन-काल के हैं। अतएव कनिंघम का अनुमान है कि सयद-वंश का शासन हिन्दुओं की धार्मिक यात्राओं के पक्ष में न था। यह भी अनुमान है कि यह मन्दिर धर्मांध सिकन्दर लोदी के शासन में नष्ट कर दिया गया होगा क्योंकि लेखों का क्रम १५११ ई० में अर्थात् उसके शासन

के अन्त से ठीक छः वर्ष पूर्व समाप्त हो जाता है। यदि यह मन्दिर सहिष्णु अकबर, जहाँगीर बहादुर और राजनीतिज्ञ शाहजहाँ की सती में विद्यमान होता तो निश्चय ही माता-सम्बन्धी कुछ विवरण मन्दिर के स्तम्भों पर उत्कीर्ण होता। इस कारण कनिंघम की धारणा है कि सोरों के विशाल मन्दिर का निर्माण असहिष्णु औरंगजेब से पूर्व ही मानना चाहिए।

(ङ) ट्रैवलर्स कम्पेनियन—रेलवे बोर्ड ने सन् १९१३ तक खोज कर 'ट्रैवलर्स कम्पेनियन' प्रकाशित की। इसमें सोरों का इतिहास उसी प्रकार दिया गया है जिस प्रकार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में। इसमें भी धर्मशाला सराय प्रस्तर, पीपल पेड़ आदि का एवं सोरों की भागीरथी पुष्प का उल्लेख मिलता है।

(क) एन्युअल प्रोग्रेस रिपोर्ट १९१९ ई० मन्दिर की प्राचीनता—हिन्दू और बौद्ध भवनों के अवशेषक राय बहादुर दयाराम साहनी ने ३१ मार्च १९१९ को समाप्त होने वाले सन् की 'एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट' में सोरों के सीताराम मन्दिर के ६६ उत्कीर्ण लेखों की सूची दी है। उनके विचार से सोरों का सबप्राचीन मन्दिर सीतारामजी का है। भवन रूप में मंडप विद्यमान है। देवायतन इसके पश्चिम में था जिसके अवशेष जनरल कनिंघम के समय में तो थे परन्तु अब लुप्त हो गए हैं यद्यपि खनन से नींव तो दृष्टिगोचर होती है। कनिंघम के विवरण से विदित होता है कि मंडप का पुनरुद्धार १८६७ में हुआ था। अब केवल एक छत अपने मौलिक रूप में विद्यमान है। छत पर चित्रकारी का विषय शिवलिंगोपासना है। इसमें सन्देह नहीं कि यह मन्दिर मूलतः शैव-परिवार का होगा। उसका नाम 'सीतारामजी का मन्दिर' आधुनिक है जिसका मूल मन्दिर से कोई सम्बन्ध नहीं। मन्दिर के उत्कीर्ण लेख से यह प्रतीत हो सकता है कि यह मन्दिर वराहजी का होगा। साहनीजी कहते हैं कि पहले तो मैं उक्त वैष्णव लेख से छन्द वाले अंकित शैव दृश्यों का समन्वय नहीं कर सका किन्तु मेरा सन्देह इस बात से दूर हो गया कि जिस स्तम्भ पर वैष्णव लेख है वह मूलतः मन्दिर से बाहर की वस्तु है जो जीर्णोद्धार के समय १८६७ ई० में वहाँ लगा दिया गया होगा। साहनीजी ने कनिंघम की इस धारणा को दूर किया है कि यह मन्दिर सिकन्दर लोदी के समय में नष्ट किया गया था। इसका कारण यह है कि साहनीजी को १६२१ विक्रम संवत् का स्तम्भ लेख प्राप्त हुआ है जो अकबर के काल का है। अतएव साहनीजी की सम्मति में यह मन्दिर अकबर के काल तक विद्यमान था जो संभवतः औरंगजेब के द्वारा नष्ट किया गया होगा जैसा कि सोरों-निवासी भी कहते हैं। मैं साहनीजी से सहमत हूँ कि मन्दिर मूलतः शैवों का रहा होगा क्योंकि जैसा कि 'चालुक्य वंश प्रदीप' में लिखा है सोरों और अतिरंजी दोनों को ही चौहुक नरेश ने बसाया था और अतिरंजी में चार बहुत बड़े और प्राचीन शिवलिंग विद्यमान हैं।

सूकर-क्षेत्र की स्थिति—सूकरक्षेत्र की स्थिति पुराणों के अनुसार भागीरथी गंगा के तट पर बतायी गयी है। 'वर्ग संहिता' ने उसे कौशाम्बी रामतीर्थ और कर्म-क्षेत्र के निकट बताया है। 'श्री विष्णुस्वामी चरितामृत' में यह स्थान संभल और बटेश्वर के बीच तथा कन्नौज कम्पिला और मथुरा के निकट बताया गया है। १०६२ शक वाले

विशेषतः से विदित होता है कि यह विसराम और कालीनदी के पास है। कम्पिल निवासी तोष मिश्र ने 'दीनविनयसत' में सूकरक्षेत्र को कम्पिल पुरी के निकट माना है।

पांचाली की टेर सुनि आय बढ़ायो चीर
हौं हूं तो पांचाल हरि क्यों न हरत मो पीर।
समुहें सूकरखेत सुनि पावहुं सीधी पाय
मध्य लसै कम्पिल पुरी जन्मभूमि अभिराम।

सूकरक्षेत्र में चौलुक्य सोरकी और बयेले—सोरों में लोग चुलुकिया अथवा चिलकिया नामक स्थान का निर्देश करते हैं। यह स्थान सोरों में उस स्थान के निकट है जहां एक टीले पर महाप्रभु वल्लभाचार्य की बैठक विद्यमान है और जहां उन्होंने कई बार भागवत की कथा कही थी। इन आचार्यजी के सोरों पधारने के उल्लेख भी वल्लभ-दिग्विजय में हैं। —सम्प्रदाय कल्पद्रुम' के पृष्ठ ३० और ३६ से भी स्पष्ट है कि ये आचार्य १५४६ वि० एवं १५५६ वि० में सोरों पधारे थे। चुलुकिया पर प्राचीन काल में एक ऋषि ने गंगाजी के किनारे निराहार केवल दस चुलुक जल पीकर बारह वर्ष तक घोर तपस्या की थी। जनश्रुति है कि चक्रवर्ती राजा वेन ने गंगाजी के किनारे सोरों में और कालीनदी के किनारे अतिरंजी में दो दुर्ग बनवाये। इस जनश्रुति का उल्लेख 'एटा गजेटियर' में है। 'नवीन भारत' में २१ सितम्बर १९४२ के लेख और तत्पश्चात् प्रकाशित 'चालुक्य वंश प्रदीप' से विदित होता है कि भीमदेव बघेला आमेर के राजा महाराज मानसिंह की सेवा में थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् अपनी जन्मभूमि में जो कालीनदी के तीर पर स्थित अतिरंजी खेड़े के निकट थी बस गये। बघेलाजी ने 'कच्छवाह कुल प्रदीप और 'चौलुक्य वंश प्रदीप' नाम की दो पुस्तकें लिखीं। उनके लेख से स्पष्ट है कि चौलुक्यों की एक शाखा गंगा तीरस्थ सोरम के नाम पर सोरकियों की शाखा बन गई, और उनकी एक उपशाखा 'बघेला' नामक ग्राम के नाम पर 'बघेला' नाम से विख्यात हुई। कुछ लोगों की कल्पना है 'सोरंकी' शब्द 'सोरों के सम्बन्धकारक का स्त्रीलिंग रूप है—सोरों+की। उनके लेख से यह भी स्पष्ट है कि आदि चौलुक्य का जिसे ब्रह्माजी ने वरदान दिया था वेणु नाम का पुत्र था जिसने सोरों और अतिरंजी में दुर्ग बनाये। बघेलाजी के समय में भी अतिरंजी खेड़ा इसी प्रकार विद्यमान था जैसा आज है। इतिहास साक्षी है कि चालुक्यों ने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण भारत तक किया। उनके झण्डों में गंगा यमुना और वराहजी की आकृतियां रहती थीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण भारत में दोनों वंशों की मुद्राओं पर भी भगवान् वराह की आकृति रहती थी।

सूकरक्षेत्र का विस्तार—काल-गणना के अनुसार हिन्दू आजकल श्वेत-वराह-कल्प में जीवन-यापन करते हैं। सूकरक्षेत्र का विस्तार सोरों से अतिरंजी एटा मथुरा और स्वात् अलीगढ़ तक है। अलीगढ़ का प्राचीन नाम कोइल संस्कृत के 'कोल' शब्द का स्मरण दिलाता है जिसका अर्थ वराह है। अलीगढ़ में मंकारी नाम का एक ग्राम है जहां से एक नवीन प्रकार की प्रतिमा प्राप्त हुई जिसका चित्र इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के अलीगढ़-अधिवेशन के विवरण में १९४३ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस विग्रह में विष्णु, नृसिंह और वराह की विभूति का समावेश है। सूकरक्षेत्र का

विस्तार समय पाकर केवल पाँच योजन रह गया जैसा निम्नलिखित श्लोक से विदित होता है —

पंच योजन विस्तीर्णं शूकरे मम मन्दिरे ।
अस्मिन्यातति को देवि नर्मदोऽपि चतुर्भुजः ।६।
त्रीणि हस्तसहस्राणि त्रीणि हस्तशतानि च ।
अयो हस्त विशालानि परिमाणं विधीयते ।७।

(पद्म पुराण, उत्तर खण्ड अ० १२१)

सूकरक्षेत्र का विस्तार, कहते हैं, पूर्व में गनेसपुर (सहावर) पश्चिम में परमोरा (बरवारा), दक्षिण में कासगंज और उत्तर में सहसवान तक है। किन्तु आज कल सामान्यतः उसका विस्तार सोरों कस्बे तक ही है। गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि रामपुर (अर्थात् श्यामपुर एवं श्यामसर) वराहजी के मन्दिर से दो मील है अतः सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत है। इस विषय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली की उक्ति कितनी सार्थक है :

प्रभु वराह पद पुत महि जनम-भूमि पुनि एहि ।
सुरसरि-तट महि स्याम सर भए राम प्रिय केहि ।२२।
तीरथ आदि बराह ब तीरथ सुरसरि पार ।
आही तीरथ आइ प्रिय भवहु जगत करतार ।२१।

जन्म-स्थान

प्राक्कथन

तुलसीदासजी के जन्मस्थान के विषय में मतभेद है। हाजीपुर, हस्तिनापुर, राजापुर, काशी, अयोध्या, तारी और सोरों के मौजमार्ग मुहल्ले का उल्लेख किया जाता है किन्तु हम देखेंगे कि सोरों के रामपुर ग्राम का पक्ष अत्यन्त प्रबल है।

गार्सिन द्तासी ने काशी को[1] और एच० एच० विल्सन ने 'स्केच ऑव द रिलिजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज' में चित्रकूट के निकट हाजीपुर को जन्मस्थान लिखा तदनन्तर, तदनुसार दासी द तासी ने भी ऐसा ही बताया[2] और एफ० एस० प्राउज[3] एवं ऑर्ज ग्रियर्सन ने भी उसका उल्लेख कर दिया है। इस विषय में सविद्वान प्रो० रामदहोरी शुक्ल कहते हैं कि "कुछ लोग चित्रकूट के पास हाजीपुर को उनका जन्म स्थान मानते हैं। फ्रांसीसी विद्वान् तासी और अंगरेज लेखक विल्सन ने इस मत का प्रवर्तन किया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है ऐसा कोई स्थान आजकल तो है नहीं। सम्भव है उन्होंने राजापुर को भ्रमवश हाजीपुर लिख दिया हो। यों तो भारत में अनेक हाजीपुर हैं किन्तु प्रतीत होता है कि विल्सन ने गोस्वामीजी के विषय में जहाँ अनेक भ्रान्त बातों की चर्चा की वहाँ हाजीपुर की भी की।

प्राउज ने लिखा है कि 'भक्तिविजय' के अनुसार गोस्वामीजी का जन्म हस्तिनापुर में हुआ था किन्तु उन्होंने इसे महत्त्व प्रदान नहीं किया।[4] ग्रियर्सन ने इस विषय में 'बृहद् रामायण' माहात्म्य का और उल्लेख किया किन्तु वे तारी और राजापुर की ओर ही अधिक झुके। डा० सीताराम के शब्दों में "कोई कहता है उनका जन्म राजापुर के पास हस्तिनापुर में हुआ था जिसे अब हस्तनाग कहते हैं।"[5] लालाजी तो स्वयं तारी के पक्ष में थे। हस्तिनापुर की स्थिति तो अमनुस्तीरथ (मेरठ) के निकट मानी जाती है यद्यपि डाक्टर बोपिन ने एक जर्मन ग्रन्थ के आधार पर उसे काली नदी के तट पर माना है।

राजापुर, काशी, अयोध्या, तारी आदि के सम्बन्ध में अलग-अलग और विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है, जो इस प्रकार है

---

१ An Account of the district Purnea in 1809-10 पृ० १०३

२ Tulsidas etait un Brahmane de la branche des Serwariah et natif de Hajipur pres de Chitrakuta —Histoire de la Litterature Hindoui et Hindustani.

३ रामचरित और तुलसीदास

४ द ऑर्ड ऑव्स्यूर सिद्धेज ऑव हिन्दुस्तान, पृ० १८

५ रामचरित और तुलसीदास, पृ० १२

६ द ऑर्ड ऑव्स्यूर सिद्धेज ऑव हिन्दुस्तान, पृ०-४४

७ अयोध्याकाण्ड (राजापुर)

राजापुर की सामग्री

समालोचनात्मक विवरण

सिंहावलोकन—राजापुर से गोस्वामी तुलसीदास का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित सामग्री का उल्लेख किया जा सकता है

(क) 'तुलसीचरित' मूल गोसाईं चरित', और 'वटरामायन' का परिशिष्ट
(ख) अयोध्याकाण्ड का तापस-प्रकरण
(ग) अयोध्याकाण्ड की हस्त-लिखित प्राचीन प्रति
(घ) शासकीय विवरण
(ङ) मन्दिर और प्रतिमाएँ
(च) माटी की दो सनदें
(छ) बर्तन वाजिबुल अर्ज
(ज) जनश्रुति

उपरिलिखित सामग्री का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

तीन अप्रामाणिक पुस्तकें—राजापुर-पक्ष के समर्थक तीन ग्रन्थों को प्रमाणस्वरूप उपस्थित करते हैं जो सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इनकी विस्तृत आलोचना द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है यहाँ उनका परिचय-मात्र अभीष्ट है।

प्रथम है 'मूल गोसाईं चरित' जिसकी श्री बीहर पाठक रायबहादुर सुकदेव बिहारी मिश्र श्री मायाशंकर याज्ञिक डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने खुली निन्दा की है एवं इसकी तिथि-सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर संकेत किया है जिनसे यह परिपूर्ण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल १९४० में प्रकाशित अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ १२ व १३१ पर लिखते हैं कि 'मूलगोसाईं चरित' का निर्माण अयोध्या के कनक-भवन में हुआ था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपने सटीक 'रामचरित मानस' की प्रस्तावना तथा 'तुलसीदास एवं उनकी कविता' के प्रथम भाग (१९३७ ई०) के पृष्ठ ७६-७७ पर, इसी तथ्य की सूचना दी है।

दूसरा है 'तुलसीचरित' जो बाबू शिवनन्दनसहाय पं० रामस्वरूप मिश्र डा० श्यामबिहारी मिश्र रायबहादुर पं० सुकदेव बिहारी मिश्र पं० रामनरेश त्रिपाठी डॉ० श्यामसुन्दरदास प्रभृति विद्वानों के द्वारा अप्रामाणिक सिद्ध किया जा चुका है। जब मैंने स्वयं उल्लिखित हस्तलिपि के प्रकाशित भाग का निरीक्षण किया तो उसे सत्य की कसौटी पर खरा नहीं पाया। स्वयं अन्त-साक्ष्य इसके विपरीत हैं। इतिहास व्यतिक्रम के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित वर्णन को लिया जा सकता है। 'तुलसी चरित' के अनुसार तुलसीदासजी ने अपना समस्त अध्ययन तीन वर्षों में समाप्त कर लिया था। एक वर्ष में उन्होंने वेदों का अध्ययन समाप्त कर लिया था, दूसरे वर्ष में समस्त पुराणों का ज्ञान प्राप्त किया। तृतीय वर्ष में वे दीक्षित कौस्तुभ तथा वेखर आदि व्याकरण-ग्रन्थों में पारंगत हो गये। इतने बृहद् ज्ञान को तीन वर्षों में प्राप्त कर लेना आश्चर्यजनक है। अस्तु, विचार-रक्षार्थ इसे स्वीकार किया जा सकता है परन्तु कठिनता यह है कि दीक्षित ने अपना व्याकरण तुलसीदासजी की मृत्यु के बाद

वर्ष पश्चात् प्रकाशित किया था। 'परिभाषेन्दुशेखर' 'बृहच्छब्देन्दुशेखर' तथा 'लघु शब्देन्दुशेखर' का प्रणयन १८ वीं शताब्दी में हुआ था। कोई व्यक्ति कितना भी भोला क्यों न हो इस अतथ्य पर विश्वास नहीं कर सकता कि तुलसीदास ने अपने बाल्यकाल में उन ग्रन्थों का अध्ययन किया था जो उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाश में आये।

तृतीय ग्रंथ और है जिस पर राजापुर-पक्ष के कुछ समर्थक विश्वास करते हैं यह पुस्तक सपरिशिष्ट 'बटरामायन' है जिसका सम्बन्ध किन्हीं तुलसीसाहब से स्थापित किया जाता है। उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें गो० तुलसीदास का अवतार मानकर उनके महत्त्व को बढ़ाने का प्रयत्न किया है। यह कहा जाता है कि 'बट रामायन' की रचना स्वयं गो० तुलसीदास की थी परन्तु उन्होंने स्वयं ही इसे दबा दिया क्योंकि काशी के निवासियों ने इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा और उन्हें धोखा देने के लिए 'रामचरितमानस' लिख डाला। विद्वानों ने इसकी परीक्षा की है, और जहाँ तक इसका सम्बन्ध गो० तुलसीदास से है उन्होंने इसे मिथ्या ही माना है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने स्पष्टतया इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध निर्णय दिया है और इसमें दोष निकाले हैं। मैंने स्वयं इसके अनेक ऐतिहासिक व्यतिक्रमों की ओर संकेत किया है जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह तुलसीदासजी की रचना नहीं है। तुलसीदासजी के जीवन-सम्बन्धी परिशिष्ट का निर्माण तो तुलसीसाहब के किसी अनन्य भक्त की रचना है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसकी ओर झुके हैं यद्यपि सम्पूर्ण हृदय से नहीं क्योंकि उन्होंने स्वयं इसमें कुछ विरोधी बातें पायी हैं। परन्तु श्री परशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपनी अपनी रचनाओं में 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा' पृष्ठ ६४८ पर तथा 'हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय' अध्याय २ के पृष्ठ ९० पर इसके विपरीत निर्णय दिया है।

उक्त पुस्तकों में पारस्परिक विरोध—स्पष्टतया उपर्युक्त तीनों पुस्तकों में सामंजस्य नहीं है। तुलसीदासजी की जाति कुल एवं विवाह-सम्बन्धी विवरण परस्पर प्रतिकूल हैं। गोस्वामीजी के माता-पिता तथा पत्नी के नामों में भी अनुकूलता नहीं है। गोस्वामीजी के जन्म-संवत् के विषय में मत-भेद है किन्तु जन्म-स्थान के सम्बन्ध में साम्य है जो कदाचित् पुनरावर-न्याय से हो।

तापस प्रकरण—अयोध्या काण्ड की निम्नलिखित पंक्तियाँ तापस-प्रसंग के नाम से ख्यात हैं

> तेहि अवसर एकु तापसु आवा, तेज पुंज लघु बयसु सुहावा।
> कवि अलखित गति बेषु बिरागी मन क्रम बचन राम अनुरागी।
> सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देव पहिचानि।
> परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि।
> राम लखन पुलकि उर लावा परम रंक जनु पारस पावा।
> मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ, मिलत धरें तनु कह सब कोऊ।
> बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा, लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा।
> पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही।
पिअत नयन पुट रूपु पिअूषा, मुदित सुअसगुन पाइ जिमि मूषा।

(रा० २ १०९ ११०)

श्री विश्वनाथ त्रिपाठी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्री रामबहोरी शुक्ल आदि अनेक विद्वानों ने अयोध्याकाण्ड के तापस प्रकरण पर आग्रह किया है। उसके आधार पर उन्होंने तापस को गोस्वामी तुलसीदास मानकर जिस स्थान की ओर इंगित किया है उसे राजापुर समझ कर गोस्वामीजी का जन्मस्थान घोषित किया है।

श्री चन्द्रबली पांडे किंचित् भिन्नता से लिखते हैं कि, 'इस बात का सदा से ही विचार रहा है कि वास्तव में तुलसीदास ने अपने आपको ही एक तापस के रूप में अंकित किया है। किन्तु अब इसका विचार रंचक भी यह नहीं रहा कि इस प्रसंग का कारण है राजापुर तुलसी का जन्मस्थान होना। कारण है यह कि यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता कि राम ने राजापुर के सामने जाकर जमुना को पार किया और पार कर पुरवासियों का सुख सोया। ध्यान देने की बात यहाँ यह है कि यदि 'राम' को राजापुर जाकर चित्रकूट जाना इष्ट होता तो प्रयाग से सीधे जलमार्ग से प्रस्थान करते और सखा निषाद की सहायता से बड़ी सरलता से वहाँ पहुँच जाते। परन्तु उन्होंने किया इसके विपरीत ही।'[1]

अन्य विद्वान् 'तापस' से नितान्त अन्य तात्पर्य ग्रहण करते हैं, यथा (१) तापसी रूप से रावण वध का संदेह संकल्प (२) अत्रि (३) चित्रकूट में निवास करने वाला अगस्त्य ऋषि का शिष्य (४) स्वयं कामदनाथ चित्रकूट वन।[2]

कुछ ऐसे विद्वान् भी हैं जो तापस प्रसंग को अप्रामाणिक समझते हैं। तापस-प्रसंग प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, किन्तु श्री सम्पूर्णानन्द जी ने ऐसी प्राचीन तेरह छपी हुई पोथियों का उल्लेख किया है (जिनमें से एक तो सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी है) जिनमें तापस प्रसंग नहीं है। चौबेजी तापस प्रसंग को प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं —

(१) यह प्रकरण सर्वथा अप्रासंगिक और असंगत है।

(२) किसी पौराणिक कथा से इसकी पुष्टि नहीं होती।

(३) सम्पूर्ण 'रामचरित मानस' की छन्द-संख्या मिलाते समय इसका ग्रहण करने से प्रामाणिक प्रतियों की पंक्ति संख्या में अन्तर पड़ता है।

चौबेजी की सम्मति में 'तापस' को गो० तुलसीदास मानने में खटकने वाली बात यह है कि गोस्वामीजी तापस वेष में राम सीता लक्ष्मण सबसे स्वयं मिले किन्तु निषादराज से जो भगवान् के साथ में था तब मिले जब कि पहले निषाद ने दण्डवत् किया और गोस्वामीजी ने उसे राम-सनेही जान लिया। 'सिया राम मय सब जग जानी' जिसका यह सिद्धान्त हो वह निषादराज से मिलने में संकोच करे!! किन्तु जो तुलसी निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख सकता है वह, भला स्वामिभानी किस प्रकार हो सकता है

---

१ तुलसी की जीवन भूमि पृष्ठ १९१

२ 'रामचरितमानस के प्राचीन लेखक' पृष्ठ २३९, नागरी प्रचारिणी पत्रिका ७६।३

तुलसी जाके बदन तें धोखे हु निकसत राम
ताके पग की पगतरी मेरे तन को चाम ॥ वै० ३७
आपु आपुने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम
ताके पग की पागही तुलसी तनु को चाम ॥ दो० ५९

इसके अतिरिक्त 'तेज पुंज' और 'मिसेज मुदित' अहंमन्यता-सूचक शब्द गोस्वामीजी अपने लिए न लिखते। काव्य की दृष्टि से 'रंक' और 'पारस' शब्दों का प्रयोग भी उचित प्रतीत नहीं होता। भक्त 'पारस' कदापि नहीं हो सकता और भगवान् के लिए 'रंक' शब्द का प्रयोग भी विस्मय है।[1] विवेचन का निष्कर्ष यह है कि तापस-प्रकरण प्रक्षेप है और यदि यह प्रक्षेप नहीं भी है तो यह आवश्यक नहीं कि 'तापस' से 'गोस्वामी तुलसीदास' का ही तात्पर्य ग्रहण किया जाय।

राजापुर का अयोध्याकाण्ड—राजापुर में 'रामचरितमानस' का अयोध्याकाण्ड है। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने इसे स्वयं अपने हाथ से लिखा था। पहले यह सातों काण्डवाली रामायण की पोथी थी जो तुलसी-मन्दिर में रखी रहती थी। एक बार एक पुजारी इसे चुराकर ले भागा तो गोस्वामीजी के शिष्यों को रात में स्वप्न हुआ। प्रातःकाल शिष्यों ने उसका पीछा किया। पुजारी पुस्तक ले नाव पर गंगा पार कर रहा था। उसी समय नाव लौटाने के लिए भेजे हुए व्यक्तियों ने मल्लाह को पुकारा। पुजारी सब बात समझ गया और उसने रामायण को गंगाजी के गर्भ में डाल दिया। जब यह समाचार काशीनरेश के महाराज को मिला तो उन्होंने जाल डलवाकर पुस्तक को निकलवा लिया और काण्ड तो गल गये केवल अयोध्याकाण्ड बच गया।

जनश्रुति इस प्रकार भी है कि गोस्वामी तुलसीदास ने काशी जाने से पहले बलभद्र मिश्र को अपने हाथ से लिखी रामायण की पुस्तक प्रदान की। एक दुष्ट साधु उस पोथी को ले भागा और जब उसका पीछा किया गया तो उसने उसे यमुना जी में डाल दिया। सम्प्रति पुस्तक में केवल अयोध्याकाण्ड शेष रहा है।

श्री चन्द्रबली पांडे उक्त जन-श्रुतियों के विषय में लिखते हैं कि 'घटना कुछ भी घटी हो पर पकड़ की बात है केवल अयोध्याकाण्ड का बचा रहना तो किसी प्रकार संभव नहीं दिखाई देती। स्मरण रखने की बात यह है कि इसके सभी पन्ने अलग-अलग हैं। अतएव इसकी संभावना कैसे की जाय कि बीच में होने के कारण इसका एक काण्ड बच गया? पानी में नीचे का भाग पहले डूबता है पर्न काठ की पट्टियों के बीच में बेठन से बँधे रहते हैं। अतः किसी ग्रन्थ का सर्वथा जल-मग्न होना कठिन होता है। हम जानना चाहते हैं कि क्या उक्त तुलसी-हस्तलिखित काण्ड में कोई भी चिह्न ऐसा है जिससे हम उसे अलग एक स्वतन्त्र काण्ड न मान किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ का अंश मानें।"[2]

मैं पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि उक्त दोनों

१ रामचरितमानस के अर्थान्तर लेखक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० २३०-२३१, वर्ष ४२ अंक ३ कार्तिक १९९८ वि०।

२ तुलसी की जीवन-भूमि पृ० ९० ९२।

जनश्रुतियों में से जिसका उल्लेख श्री चन्द्रबली पांडे ने किया है, एक में गंगाजी का उल्लेख है, दूसरे में यमुनाजी का। पर सोरों और काशी में गंगाजी हैं, राजापुर में यमुनाजी।

जनक अयोध्याकाण्ड के विषय में डॉ० माताप्रसाद गुप्त सूचित करते हैं कि यह प्रति 'पं० मुन्नीलाल उपाध्याय के पास है। इसका मकान तुलसीदास के मन्दिर के पास ही है। कहा जाता है कि पहले प्रति मन्दिर ही में रखी रहती थी। बाद को चोरों के डर से उपाध्यायजी इसे अपने घर में रखने लगे। प्रति में कोई पुष्पिका नहीं है इसलिए लिपि-काल के सम्बन्ध में कहना कठिन है। हस्त-लेख के सम्बन्ध में जनश्रुति यह है कि इसके लिपिकार तुलसीदासजी ही थे। प्रति हाथ के बने सफेद कागज पर है, जो पुराना होने के कारण कुछ भूरा पड़ गया है और स्याही काली है। प्रति साधारणतः अच्छी हालत में है केवल कागज के किनारों पर पानी से भीगने के दाग बने हुए हैं।[1] किन्तु यह 'तुलसीदास' की स्वहस्त लिखित नहीं है।[2]

श्री संतु नारायण चौबे के विचार से भी राजापुर की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की लिखी नहीं है। इसके लिए वे दो प्रमाण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः इस प्रति में 'तापस-प्रकरण' विद्यमान है जिसे तुलसीदास की जैसे निरभिमान व्यक्ति नहीं लिख सकते थे। द्वितीयतः निम्नलिखित अर्द्धालियाँ राजापुर की प्रति में विद्यमान नहीं हैं यद्यपि वे अन्य सभी प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों में तो हैं।

१ सकल सुकृत मूरति नर नाहू। राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू ॥२।१।२॥
२ प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहि राय देहु जुबराजू ॥२।४।३॥
३ कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाढ़ू। पिरि न मरै बिधि सटकि कुठाढ़ू ॥ २।१६।४॥
४ सहज सनेह बरनि नहिं जाई। पूछी कुसल निकट बैठाई ॥ २।४७।४॥
५ राम सनेह सुधा जनु पावे। लोग बियोग बिषम बिष धाये ॥२।१८३।१॥
६ कहु यह लाभु लोक परलोकू। दहौं कपट कर होइहि सोकू ॥२।२१४।२॥
७ । अरथ तजहिं बुध सरु बसवाते ॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिय लखन सहित रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। २, २३३, ९-४ ॥
८ । जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
सब सब लोग लहाइ लहाई। ॥ २।२७४।३
९ । रिषि करि गौर जनक पहिं आए ॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। ॥ २।२९०।२

जो हो इसमें सन्देह नहीं कि राजापुर का अयोध्याकाण्ड प्राचीन है और प्रमाणाभाव में प्राचीन जनश्रुति की अवहेलना उचित नहीं। यदि राजापुर की प्रति तुलसीदास जी के हाथ की नहीं है तो भी तत्सम आदरणीय है। हाँ, यह बात अवश्य है कि राजापुर में उसकी केवल विद्यमानता इस बात का कोई स्वतः साक्ष्य नहीं कि तुलसीदास जी राजापुर में जन्मे थे।

१ तुलसीदास—मातृप्रसाद गुप्त, पृ० १६६।
२. वही। पृ० १४८।

शासकीय विवरण—गोस्वामी तुलसीदास के विषय में राजापुर इतिहास के निम्नलिखित चार शासकीय विवरण अत्यन्त स्पष्ट हैं जिनका उल्लेख किया भी जा चुका है —

(अ) इनमें प्राचीनतम है 'स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल एकाउंट ऑव द नार्थ वेस्टर्न प्राविंसज ऑव इण्डिया' जिल्द प्रथम बुन्देलखण्ड जो कि एडविन टी० एटकिंसन के द्वारा सम्पादित तथा १८७४ ई० में प्रयाग से प्रकाशित है। इसके पृष्ठ ५७२-७३ पर ऐसा लिखा है—जनश्रुति है कि अकबर के शासन काल में एक पवित्रात्मा जो कि एटा जिले के अलीगंज परगने में सोरों नामक स्थान का निवासी था यमुना के किनारे उस जंगल में आया जहाँ आज राजापुर स्थित है। उसने एक मन्दिर बनवाया और वह प्रार्थना एवम् ध्यान में दत्तचित्त रहने लगा। उसकी साधुता ने शीघ्र ही अनुयायियों को आकृष्ट किया और वे उसके चारों ओर बस गये। जैसे जैसे उनकी संख्या बढ़ती गई उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता से अपने को व्यापार तथा धर्म में लगाया। यहाँ कुछ विचित्र स्थानीय परम्पराएँ हैं जिनका सम्बन्ध तुलसीदास जी से है।

(ब) इम्पीरियल गजटियर ऑव इंडिया' जिल्द १, डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर द्वारा संपादित १८८६ ई० में प्रकाशित दूसरे संस्करण के पृष्ठ ३८५-८६ पर यही तथ्य इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—सोरों के सन्त तुलसीदास द्वारा अकबर के शासन-काल में राजापुर बसाया गया। उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण कराया तथा अनेक अनुयायियों को आकर्षित किया।

(स) 'इम्पीरियल गजटियर ऑव इंडिया यू० पी० सेंट्रल प्राविंसिज सीरीज १९०८ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित पृष्ठ ५० पर लिखा है कि राजापुर कस्बे का नाम है और मेंढमांव उस मौजे अथवा ग्राम-मण्डल का जिसके समीप यह स्थित है। जनश्रुति के अनुसार यह कस्बा रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास जी के द्वारा बसाया गया था जिनका निवास-स्थान अभी तक दिखाया जाता है।

(द) 'डिस्ट्रिक्ट गजटियर ऑव बाँदा' १९०९ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके पृष्ठ २८५-८६ पर लिखा है—कहा जाता है कि अकबर के शासन-काल में तुलसीदास नामक एक भक्त जो एटा जिले की कासगंज तहसील में सोरों का निवासी था यमुना तट के उस जंगल में आया जहाँ आजकल राजापुर स्थित है और प्रार्थना तथा तप करने लगा। वे ही तुलसीदास हैं जो रामायण के रचयिता हैं जिनका घर कस्बे में अभी तक दिखाया जाता है।

प्रथम शासकीय लेख १८७४ ई० में प्रकाशित हुआ था तथा अन्तिम १९०९ ई० में। ये सब इस बात को स्पष्टतः प्रकाशित करते हैं कि तुलसीदास एटा जिले में सोरों नामक स्थान के निवासी थे तथा उन्होंने अकबर के शासन-काल में बाँदा जिले में राजापुर की नींव डाली। यह अविश्वसनीय है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन-काल में किसी नगर को बसाये और उसी में सम्मिलित भी हो।

राजापुर की स्थापना—उक्त गजटियरों से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों से आये और उन्होंने राजापुर की नींव डाली। श्री अयोध्या प्रसाद बाँदे क्षत्रिय

धार्मिक पुस्तकों की पुष्पिकाओं के आधार पर कहते हैं कि 'राजापुर का प्राचीन नाम विक्रमपुर था और कालान्तर में रजियापुर अथवा राजापुर हुआ'।[1] किन्तु श्री चन्द्रबली पांडे इस पर आपत्ति करते हैं कि उन पुष्पिकाओं में न तो राजापुर का नाम मिला और न राजापुर और विक्रमपुर का साथ साथ उल्लेख ही। 'यमुना के दक्षिण तट पर क्या एकमात्र राजापुर बसा है जो उसी को विक्रमपुर मान लें।'[2]

श्री राम बहोरी शुक्ल ने 'तुलसी चरित' में इलाही सन् ३ अर्थात् १६१६ संवत् के शाही फ़रमान की प्रतिलिपि दी है। फ़रमान फ़ारसी में है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने उक्त फ़रमान का हिन्दी रूपान्तर अपने 'तुलसीदास' में इस प्रकार दिया है—

सही फ़रमान ता० २५ माह शाबान इलाही सन् ३ यह है कि शाहबे सूबा और इलाहाबाद के हाल और मुस्तकबिल मुतसद्दी शाही इनायत के उम्मीदवार होकर बातें कि इस वक्त ऊजो वल्द बनपत ने हुजूर के दरबार में हाजिर होकर इस्तग़ासा दिया और फ़रियाद चाही है कि हुक्काम परगना गहीरा मकान व दूसरे उठा दिये गये साबरों की इस्तग़ासा में जो कि हुजूर की सल्तनत में मुआफ़ हैं मौजा विक्रमपुर के रहने वालों से और परगना मजकूर के दूसरे रहने वालों से वसूल कर रहे हैं और उन लोगों की हालत में मुजाहिमत कर रहे हैं। चाहिए कि मामले की हकीकत को समझ कर जिस तरह काम हो रहा है उसे न होने दें ताकि परगने मजकूर के हाकिमों और आमिलों में से कोई भी उन कामों को जो मना कर दिए गए हैं न करने पाए और लालच में आकर किसी किस्म की बेजा मांग न करे। इस बाबत निहायत ताकीद की जाती है और जो कुछ हुक्म दिया गया है उसके खिलाफ न जावें। तारीख सदर मजहूर सन् इलाही।

श्री अयोध्याप्रसाद पांडे ने एक पट्टे की प्रतिलिपि दी है जिसे डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस प्रकार देते हैं—

'श्री महाराज मैनार श्री दिवान हिन्दुपति चू देव पेते पं० सीताराम को पट्टा कर दिया। आपे के पट्टे पर हुकुम आपर मौजे विक्रमपुर में जो कुछ सालिक दस्तूर ताईं आये होइ सो हमेसा पावें जाहु। हुकुम हुजूर माह सुदि ६ सुक्र १८१२ मुकाम मसौनी।

डॉ० गुप्त एक और पट्टे की प्रतिलिपि उद्धृत करते हैं जो इस प्रकार है—

'श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा प्रमानसिंह चू देव पेते पं० श्री ७०८०८ सीताराम को सनदि कर दई श्री आपर मौजे मझिवाँ में कस्बा राजापुर बसतु है सु आवै ते पे जहाँ की राह रकम झाटफ़ की पाइ आये होइ सु पावें आइ पुरानी सनदि कर हुकुम हाल कोऊ आमिलु मैनार जिमीदार मुजाहिम न होइ हुकुम हुजूर पौष सुदि १५ सं० १८१३ मु० सुकवारी।"

उक्त फ़रमान और पट्टों से डॉ० गुप्त श्री अयोध्याप्रसाद पांडे की भाँति इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विक्रमपुर और राजापुर एक ही हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि संवत् १८१२ ११ में कस्बे का नाम विक्रमपुर से बदल कर राजापुर हो गया

१ तुलसी की जीवन-भूमि पृष्ठ ११५।
२. वही, पृष्ठ ११७।

यद्यपि प्राचीनता के पोषक पण्डित लोग कुछ पीछे तक पुराने ही नाम का उपयोग करते रहे। किन्तु इस विषय में प्रथमतः यह आपत्ति हो सकती है कि यदि संवत् १८१२ १३ में विक्रमपुर का नाम राजापुर कर दिया गया तो राजकीय पत्रों में इसका उल्लेख अवश्य होता। १८१२ और १८१३ दोनों ही संवतों के पट्टों में पण्डित सेवाराम का उल्लेख है। भाषा का साम्य भी है। पट्टा देने वाले अधिकारी तो भिन्न हैं ही। पर एक में विक्रमपुर का उल्लेख है तो दूसरे में राजापुर का। यदि विक्रमपुर का नाम राजापुर कर दिया गया होता तो उसका उल्लेख पट्टे में अवश्य होना चाहिए था। ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमपुर और राजापुर भिन्न-भिन्न स्थान हैं और पट्टा देने वाले भी। इस अनुमान का कोई आधार नहीं कि विक्रमपुर ही राजापुर नाम से अभिहित हुआ। द्वितीयतः यह भी विचारणीय है कि लटवारा निवासी श्री बलदेव प्रसाद की रचना "कानूनगोय कायस्थ वंशावली" भी राजापुर नाम की ओर झुकती है यद्यपि लटवारा से प्राप्त यह वंशावली प्राचीन रचना नहीं और डॉ० गुप्त की सम्मति में भी यह हाल की ही रचना प्रतीत होती है क्योंकि उसमें अंग्रेजी तक का उल्लेख हुआ है साथ ही उर्दू की दुर्लभ संज्ञाएँ। अभी तक केवल ग्यारह पंक्तियाँ इस वंशावली की प्रकाशित हुई हैं।

मन्दिर और प्रतिमाएँ—राजापुर में गोस्वामी तुलसीदास की स्थापित की हुई संकटमोचन नामक हनुमान्‌जी की मूर्ति विद्यमान है। एक कच्चे घर को गोस्वामीजी का निवास-स्थान बताया जाता है। वहाँ एक मूर्ति भी है जो लगभग पचास वर्ष पूर्व यमुनाजी के संगम-पुलिन से प्राप्त हुई थी जिसे लोग तुलसीदासजी की बताते हैं। परन्तु यह काले पत्थर की बनी हुई है अतः गौरांग तुलसीदासजी का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करती। सामान्यतः श्वेत प्रतिमा गौरवर्ण की प्रतीक होती है और कृष्ण प्रतिमा श्यामवर्ण की। अतः मेरे विचार में यह प्रतिमा राजा नामक एक साधु की है जिसके नाम पर गोस्वामीजी ने राजापुर का नामकरण किया था जैसा कि उनके समकालीन अविनाश राय भट्ट के एक पद से प्रकट होता है अथवा यह प्रतिमा भरतराम छीतूराम की हो जैसा श्री पत्रवली पाँडे समझते हैं।[1] यह स्वीकार करने पर भी कि यह प्रतिमा तुलसीदास की है उसका अस्तित्व केवल इस बात का यथेष्ट प्रमाण नहीं है कि उनका जन्म राजापुर में हुआ था। महात्मा गांधी की प्रतिमाएँ तो भारत के अनेक नगरों में विद्यमान हैं किन्तु इससे उनका जन्म उन सभी नगरों में नहीं माना जा सकता।

राजापुर की सनदें—राजापुर निवासी श्री रामबहोरी शुक्ल ने माटी की दो सनदों का उल्लेख किया है जो राजापुर में उस सरयूपारीण ब्राह्मण वंश के पास हैं जो अपने को गो० तुलसीदास के शिष्य गणपति उपाध्याय की सन्तति कहता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त को यह शिकायत है कि जब वे एक बार राजापुर गये थे तो उन्हें ये सनदें नहीं दिखायी गयीं अपितु सनद-वालों ने उनके वर्तमान अस्तित्व से इन्कार कर दिया था किन्तु पीछे श्री रामबहोरी शुक्ल ने 'वीणा' में उनका विवरण दिया था।

---

१ तुलसी की जन्म-भूमि पृष्ठ १ ७-१०१।

मैं स्वभावतः किसी वस्तु को तब तक असत्य अथवा अप्रामाणिक नहीं ठहराता जब तक उसके विरोध में सबल प्रमाण उपस्थित न हों। अतः मेरी विनीत सम्मति में उन दोनों सनदों को वास्तविक मान लेने में कोई हानि नहीं, जिन्हें गोस्वामीजी के विरुद्ध बंश उपस्थित करते हैं। किन्तु उन दोनों सनदों को वास्तविक और प्रामाणिक मान लेने से भी गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

एक सनद पन्ना नरेश श्री हिन्दुपति की दी हुई बताई जाती है जिस पर १०१३ संवत् पड़ा हुआ है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास का नाम तक नहीं है और न इसमें यह लिखा है कि इसे अकबर या जहाँगीर ने प्रदान किया था। इससे यह तनिक भी सिद्ध नहीं होता कि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म से पहले भी राजापुर विद्यमान था। यह सनद गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में सर्वथा चुप है। अतः प्रामाणिक हो अथवा अप्रामाणिक यह गोस्वामीजी के जन्म-स्थान निर्णय के सम्बन्ध में अन्यथा सिद्ध है।

दूसरी सनद फ़ारसी लिपि में लिखी हुई है। बीच-बीच में कागज कई जगह फट गया है। इससे जो कुछ पढ़ा जा सका है उसकी प्रतिलिपि श्री रामबहोरी शुक्ल के अनुसार नीचे दी जाती है

आमिलान हाल इस्तकबाल परगने पहोरा सिरक कालींजर सूबे इलाहाबाद के आबे प मदारीलाल साई तुलसीदास के सर्मा का महसूल साहर का लिहवा लिहव श्री बा कलारी बा गुबर श्री अमुनाबी राजापुर अमल पर बामूजब सनद बादशाही व सूबेदारान व राजा बुन्देलखण्ड है सो सिरकार में हाल है सो हसब मुबान के अमल सी मुजाहिम मा हुवे हरसाल नई सन मा बबो ता० २१ साबान सन् १२।

'सन् १७१६ अमुकाम बांदा।

इस सनद पर एक कोने में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हैं जो बहुत धूमिल होने से पढ़े नहीं जाते और उनके ऊपर उर्दू में लिखा है हुक्म हुआ २७ दिसम्बर सन् १८४१।

सनद पर डॉ० गुप्त की आपत्तियाँ—उक्त सनद के विषय में डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस प्रकार विचार करते हैं कि उत्तर प्रदेश में 'पं० मदारीलाल गोसाईं तुलसीदास' नाम का कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता। अतः पं० मदारीलाल और गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध को सूचित करने वाला कोई शब्द अवश्य आना चाहिए था जैसा कि सनदों में हुआ करता है, और दूसरे के 'सर्मा' का सम्बन्ध 'पं० मदारीलाल' से होना चाहिए न कि 'साईं तुलसीदास' से और तीसरे यदि पं० मदारीलाल का वंश राजापुर में चलता है तो उससे यह सिद्ध नहीं होता कि गोसाईं तुलसीदास का वंश भी राजापुर में चलता रहा। मैं अपनी ओर से यह कहूँगा कि श्री रामबहोरी शुक्ल ने के सर्मा का' के बीच में 'व' की पूर्ति अपनी ओर से सुझायी है। किन्तु 'वस' शब्द ठेठ संस्कृत का है और सनद के सभी प्रधान शब्द फारसी के हैं। अतएव शुक्लजी का सुझाव संगत नहीं।

सनदें अन्यथा-सिद्ध हैं—प्रथमतः, यह बात ध्यान देने की है कि गोस्वामीजी के तारापति नाम का पुत्र हुआ जो बचपन में ही जाता रहा जिसका उल्लेख सोरों-सामग्री

के अतिरिक्त सर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन ने भी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की जनश्रुतियों के आधार पर किया है। अतएव गोस्वामीजी के औरस वंशज संसार में कहीं नहीं मिलने चाहिएँ। हाँ सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी के चचेरे भाई महाकवि नन्ददास और चन्द्रहास के सन्तानें थीं और आज भी उनके वंशज सोरों में विद्यमान हैं।

द्वितीयतः राजापुर में सनद वाले महानुभाव स्वयं अपने को गोस्वामीजी के शिष्य का वंशज बताते हैं। इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? गोस्वामीजी के तो अनेक स्थानों पर अनेक शिष्य रहे होंगे। हो सकता है कि श्री मणपति उपाध्याय पट्ट शिष्य रहे हों और इस कारण वे गोस्वामीजी की तथाकथित राजापुर-वाली सम्पत्ति और अधिकार के उत्तराधिकारी रूप से आज भी विद्यमान हैं। इस बात से बड़ी प्रसन्नता है किन्तु शिष्य-वंश की उपस्थिति से तुलसी पुर का जन्म-स्थान अपने आप किस प्रकार सिद्ध हो सकता है?

तृतीयतः यदि यह सुझाया जाय (जिसका कि मुझपर ने प्रयत्न किया है) कि गोस्वामीजी से संबद्ध राजापुर वाली सम्पत्ति पहले गोस्वामीजी की सन्तान को मिली और उसके नष्ट हो जाने पर वह गोस्वामीजी के शिष्य के वंश को प्राप्त हुई तो यह सुझाव उपहासास्पद होगा क्योंकि हिन्दू-कानून के अनुसार साधु-संन्यासी की सम्पत्ति सीधे पट्ट शिष्य को मिल सकती है। इस कारण यदि गोस्वामीजी की सम्पत्ति सीधे श्री मणपति उपाध्याय को प्राप्त हुई तो न्याय-संगत है और तब से अब तक वह गोस्वामीजी के शिष्य-वंशजों के अधिकार में ही होनी चाहिए। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यदि सम्पत्ति गोस्वामीजी के किसी भी प्रकार के खानदानी की हो जाती तो उनके खानदान के नष्ट हो जाने पर वह गोस्वामीजी के शिष्यों को प्राप्त नहीं हो सकती थी। वह तो गोस्वामीजी के दूर के रिश्तेदारों को ही पहुँचती और उन रिश्तेदारों के अभाव में सरकार को मिलती।

चतुर्थतः किसी भी सनद से यह तनिक भी प्रकट नहीं होता कि ये सनदें अकबर या जहाँगीर की प्रदान की हुई थीं और उनसे यह भी सिद्ध नहीं होता कि गोस्वामीजी के जन्म से पहले राजापुर विद्यमान था क्योंकि स्वयं राजापुर के इतिहास बताने वाले सभी सरकारी गजटियरों में यह स्पष्टतः लिखा है कि रामायण के रचयिता और सोरों के निवासी गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के समय में राजापुर की नींव डाली।

हमें सनदों पर किसी प्रकार के आक्षेप करने की आवश्यकता नहीं यद्यपि श्री चन्द्रबली पाण्डे के अनुसार सन् और मास अशुद्ध पढ़ लिये गये हैं[1] जिससे सौ वर्ष का अन्तर हो जाता है। जब वे ही लोग जिनके पास सनदें हैं स्वयम् अपने को गोस्वामीजी के शिष्य का वंशधर बताते हैं तो उनकी बात मान लेनी चाहिए। वे और उनकी सनदें हमारे लिए गौरव की वस्तु हैं यद्यपि वे गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में नितान्त चुप हैं। सनदें राजापुर गजटियरों का विरोध भी नहीं करतीं। अर्थात्

---

१ तुलसी की जीवन भूमि पृ० ८।

उनका इस तथ्य से कोई विरोध नहीं कि 'रामचरितमानस' के कर्ता गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के समय में राजापुर की भेंट दाली और वे सोरों के रहने वाले थे।

दत्त वाजिबुलअर्ज़—मीर्जा मजहबी उर्फ राजापुर की दत्त वाजिबुलअर्ज़ १६ मार्च १८७६ ई० को प्रस्तुत की गयी जिसकी आवश्यक प्रतिलिपि नागरी लिपि में परिशिष्ट रूप से दी जा रही है। उसकी अन्तिम कतिपय पंक्तियों से स्पष्ट है कि गोसाईं तुलसीदास के चेले रामजियावन पमाईन रामलाल प्रजलाल माझीवार हैं और कटरा बजाजा बाजार, बंबई तथा गिरहाई से १८८।।।=) हक पाते हैं। इस लेख से उन लोगों के कथन की पुष्टि होती है जो अपने को गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य पमपति उपाध्याय का वंशज बताते हैं।

जनश्रुति— राजापुर के बड़े-बूढ़े यह कहते रहे हैं कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों या उसके समीपवर्ती किसी स्थान के निवासी थे और उनका जन्म राजापुर में नहीं हुआ था। जनश्रुति का उल्लेख गजेटियरों में हुआ है और अनेक विद्वानों ने भी इस प्रकार किया है

श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद १९१६ ई० में लिखते हैं 'राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं। श्री गोस्वामीजी का जन्म-स्थान श्री गंगा वाराह-क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में तरी नामक ग्राम या तारी था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया इसी से यहाँ गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमान्‌जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह बातें यहाँ वाले भली प्रकार निश्चय की हैं।'[1]

रेवरेंड एडविन ग्रीव्स १८९८ ई० में लिखते हैं 'पर जन्म कहाँ हुआ? पर लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्मभूमि है। इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं उनका जन्म यहाँ नहीं हुआ पर पुलाईजी ने यहाँ एक मन्दिर बनवाया था गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा तारी में जन्मे दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर वह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था।'[2]

श्री शिवनन्दन सहाय १९२३ ई० में लिखते हैं "जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के कुछ वृद्ध लोग कहते हैं कि यह गोसाईंजी का जन्मस्थान नहीं। विरक्त होने पर वह कुछ दिन रहे अवश्य थे और प्रायः आया करते थे।"[3] १९१६ ई० में उन्होंने लिखा था 'जिन कारणों से लोग राजापुर को इनका जन्मस्थान होना बताते हैं उनसे यह बात प्रमाणित नहीं होती। परन्तु राजापुर गोस्वामीजी को अपनाने की चेष्टा में बहुत तत्पर है। बहुत लोगों को

१ श्री भगवान्‌दास तरीन वार्षिक प्रकाशपुस्त, पृ० ७४१।
२ तुलसी ग्रन्थावली, निबन्धावली पृ० ४२।
३ माधुरी, जनवरी १९२३ पृ० २४।

निज पक्ष का प्रतिपादक बताता जाता है और उसने अपने निकटवर्ती बटवार ग्राम-निवासी बसदेव कवि से अपने माहात्म्य की कविता में अपने यहाँ यमुना के तट पर गोस्वामीजी का 'आगार' होना कहलाया है।"[1]

पण्डित गोविन्द वल्लभ भट्ट १९२९ ई० में लिखते हैं "श्री तुलसी-स्मारक तथा राजापुर के एक अधिकारी से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र-व्यवहार किया तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट तथ्य के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।"[2]

निष्कर्ष—राजापुर-वासियों से इतना स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे उनका जन्म-स्थान भी सोरों या सोरों के आस पास कोई स्थान था। विरक्त होने पर उन्होंने राजापुर की स्थापना की जहाँ आज भी उनके विश्व निवास और कुछ माफ़ी का उपभोग, तथा 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड की अति प्राचीन प्रति की संरक्षा करते हैं।

१ श्री गोस्वामी तुलसीदास जी (१९१६ ई०) पृ० ५।
२. आजकल १९२९ ई०।

काशी का पक्ष

जन्म-स्थान : बंगाली के निष्कर्ष—फ्रांसिस बुचानन ने तुलसीदासजी को काशी का सारस्वत ब्राह्मण लिखा है।[1] श्री रजनीकान्त शास्त्री के मत से भी गोस्वामी जी की जन्म भूमि काशी थी। अपने मत की पुष्टि में वे तुलसीदासजी के लेखों का निम्नलिखित प्रमाण देते हैं

> दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।
> जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को ॥
> यह भरतखंड समीप सुरसरि जत्र भली संगति भली।
> तेरी कुमति कायर कलप बल्ली बहुति बिलकस फली ॥ वि० १३२ (१)

'विनय-पत्रिका' के उक्त भजन का अर्थ शास्त्रीजी इस प्रकार करते हैं "गोसाईंजी अपने मन को समझाते हैं 'रे मन भगवान् रामचन्द्र ने मुझे अपने कुल में जन्म तथा सुन्दर शरीर दिया है जो अब धर्म काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति का कारण है तथा जिसको पाकर पंडितजन महादेव और विष्णु का उच्च-पद पाते हैं। फिर भरतखंड जैसी पवित्र भूमि और भगवती जाह्नवी का सामीप्य है और यहाँ की संगति भी अच्छी है। परन्तु हे कायर, तेरी दुर्बुद्धि रूपी कल्पवेलि जन्म-मरण-रूपी जहरीला फल फला चाहती है।

इस उद्धरण से शास्त्रीजी को स्पष्ट है कि गोसाईंजी का जन्म बंगाली के पास कहीं पर हुआ था न कि यमुना नदी के तट पर बसे हुए राजापुर में, जैसा कि अधिकांश लोग आजकल माना करते हैं। पर इस भजन से यह नहीं विदित होता कि बंगाली के पास वह कौन सा स्थान था जिसे गोस्वामीजी की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

काशी का उल्लेख—इस विषय में 'रामचरितमानस' के किष्किन्धा काण्ड का प्रथम सोरठा शास्त्रीजी की कुछ सहायता करता प्रतीत होता है। वह यह है —

> मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानि कर।
> जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ॥

शास्त्रीजी इस सोरठे का अर्थ इस प्रकार करते हैं — मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि ज्ञान की खान और पापों का संहार करने वाली जो काशी पुरी है, जहाँ शिव और पार्वती निवास करते हैं उसकी सेवा अवश्य करनी चाहिए।"

सोरठे का नवीन अर्थ—तत्पश्चात् शास्त्रीजी का तर्क इस प्रकार है "इस सोरठे में मुक्ति-जन्म-महि का अर्थ है 'मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि' न कि 'मोक्ष की जन्म भूमि'। जन्म और मरण से निवृत्त हो जाने का ही नाम मुक्ति है तो फिर मुक्ति का जन्म-मरण कैसा? यदि मुक्ति जन्म लेती है वह मरती भी जरूर होगी। काशी तो उसकी जन्म भूमि हुई पर उसकी मरण भूमि कहाँ है? क्या मुक्ति कोई प्राणी है जो जन्म लेती और मरती है? इस तर्क शैली से स्पष्ट हो जाता है कि मुक्ति-जन्म में द्वन्द्व समास (मुक्ति और जन्म) है न कि षष्ठी तत्पुरुष (मुक्ति का

---

१ एन अकाउन्ट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट पूर्णिया इन १८०९ १० पृ० १७१।

जन्म) है जैसा कि भूल से लोग माना करते हैं। उक्त दोनों उद्धरणों ('विनय पत्रिका' का 'दियो सुकुल जन्म' वाला भजन तथा 'रामचरितमानस' का 'मुक्ति-जन्म-महि' वाला सोरठा) को एक में मिला कर पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोसाईंजी का जन्म-स्थान गंगाजी के समीप अर्थात् गंगाजी के तट पर काशी पुरी थी"।

ऊहापोह—अपने तर्क की पुष्टि में शास्त्रीजी 'कवितावली' से निम्नलिखित उद्धरण उपस्थित करते हैं

देव सरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरेहीं
नाम रामही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछू
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं।
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो हूँ ओर करै
ताको ओर देव दीन द्वारें दुखरत हौं।
साह के उराहनो न दीजो मोहि
काल कला काशी नाथ कहैं निबरत हौं ॥ क १६५ उ० ॥

अर्थात् हे शिवजी मैं आपके गाँव काशी में गंगा का सेवन करता हूँ और रामचन्द्र के नाम से भीख माँग कर पेट पालता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि अगर मुझे किसी को देने की योग्यता नहीं है तो मैं किसी से कुछ लेना भी तो नहीं हूँ। और यदि मेरे भाग्य में किसी की भलाई करना नहीं लिखा है तो मैं किसी की बुराई भी तो नहीं करता। इतने पर भी अगर आपका कोई भक्त मुझे कष्ट दे तो हे देव मैं दीन होकर आपके ही पास उसका कष्ट देना निवेदन किए देता हूँ। यह उलाहना मैं आपको इस लिए देता हूँ कि इसे पाकर आप यह नहीं कहने पाएँगे कि तुमने मुझ से क्यों नहीं कहा। अतः हे काशीनाथ मैं कलिकाल की इस करनी को आपकी सेवा में निवेदन कर अपनी जवाबदेही से निवृत्त हो जाता हूँ।

"पर क्या कारण है" शास्त्रीजी का तर्क चलता है 'कि काशी वालों ने आप को इतना तंग किया कि आपको काशी से भागना ही पड़ा। कारण ढूँढने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। कहावत प्रसिद्ध है कि सोन्ती तसे का पूत सात पुरत का नाम जाने' गोसाईंजी के लेखों के आधार पर पूर्व में कह आया हूँ कि आपका जन्म बनारस भूमि में कहीं पर हुआ था और आपने अपने बाल्यकाल को रामबोला के नाम से वहाँ के अनाथ बालकों की तरह दर-दर भीख माँग कर अपना पेट पालते हुए बिताया था। अतः काशी वालों को आपकी जन्म-कहानी तथा आपका हेय प्रारम्भिक जीवन-काल बखूबी मालूम थे। पर घर-घर का टुकड़ा खाने वाला वही रामबोला अब अपना नाम तुलसीदास रखकर और महात्मा बन जाने का स्वाँग रच कर उन्हीं सोन्ती तसे के पूतों के ऊपर अपनी महात्मापिरी की धाक जमाने आया जो उनके लिए असह्य हो गया। काशी की जनता न ऐसी है और न कभी ऐसी थी कि कोई जाना हुआ व्यक्ति उस पर महात्मा रोब गाँठ सके। सारांश यह कि गोसाईंजी स्वकालीन जनता की दृष्टि में कभी भी प्रतिष्ठा के पात्र नहीं रहे। वह आपकी जाति पाँति के विषय में सदा संदिग्ध रहती थी तथा आपको दोष पूर्ण

अजाति आदि कहा करती थी"।

तर्क का प्रथम समाधान—शास्त्रीजी के उपर्युक्त तर्कों के उत्तर में इस प्रकार निवेदन किया जा सकता है :—

गोस्वामीजी के कतिपय लेखों के आधार पर शास्त्रीजी की धारणा है कि गोस्वामीजी किसी नीच कुल में उत्पन्न चारण सन्तान थे। केवल [illegible] बताएँ हैं। गोस्वामीजी के लेखों पर विश्वास किया जाय अथवा न किया जाय। यदि गोस्वामीजी ने समाज को धोखा देने के अभिप्राय से अपने विषय में यथा-कथा लिखा है तो उनके उन लेखों को प्रमाण न माना जाय और यदि उनके लेखों में श्रद्धा है तो जो कुछ उन्होंने लिखा है वह ठीक मान लिया जाय। यदि गोस्वामीजी के लेख अविश्वसनीय हैं तो विचार का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि वे लेख विश्वसनीय हैं तो विचार-धारा इस प्रकार प्रवाहित होती है :—

शास्त्रीजी ने 'विनय पत्रिका' का जो उद्धरण उपस्थित किया है उसमें गोस्वामीजी ने अपने लिए 'सुकुल' शब्द का प्रयोग किया है। उक्त भजन का अर्थ करते समय शास्त्रीजी ने 'सु' और 'कुल' में भेद नहीं माना है। 'सुकुल' शब्द का अर्थ है 'अच्छा' अर्थात् 'उच्च कुल' अथवा 'सुकुल नामक ब्राह्मण कुल'। दोनों ही अर्थों से इस निराधार धारणा का निराकरण हो जाता है कि गोस्वामीजी नीच कुल के थे। काशीवाले गोस्वामीजी का तिरस्कार इसलिए नहीं करते थे कि वे नीच कुल के थे, किन्तु इस कारण कि वे अपनी विद्वत्ता रचना तथा औदार्य के कारण ख्याति लाभ कर रहे थे जो तत्कालीन तथाकथित भक्त-प्रतिष्ठ कतिपय व्यक्तियों को असह्य प्रतीत होती थी। गोस्वामीजी की रचनाएँ तो सहृदयता से सर्वथा पूर्ण हैं। पर असूया आदि कुत्सित प्रवृत्तियाँ भी तो मानव-स्वभाव में विद्यमान रहती हैं और अकारण शत्रु भी संसार में रहते हैं। अतएव यदि गोस्वामीजी को कुछ लोगों ने अकारण कष्ट पहुँचाया तो कोई आश्चर्य न होना चाहिए। जनता को सदा अधिकार रहा है कि भगवान् कृष्ण को बाण से आघात पहुँचाय ईसामसीह को फाँसी पर लटकाय हजरत मोहम्मद को इधर-उधर भटकाय तथा सांख्य-शास्त्र प्रणेता को कपिल वैशेषिक दर्शनकार को कणाद न्यायशास्त्रकार को गौतम छन्दःशास्त्र के आचार्य को पिंगल आदि हेय कर्मों से अभिहित करे।

द्वितीय समाधान—शास्त्रीजी का कथन है कि गोस्वामीजी काशी में अथवा उसके निकट किसी स्थान में उत्पन्न हुए थे क्योंकि 'विनय-पत्रिका' के उक्त भजन में 'समीप सुरसरि धाम' अभिव्यक्ति का प्रयोग हुआ है। अपने मत की पुष्टि में शास्त्रीजी ने 'रामचरितमानस' के किष्किन्धा काण्ड का प्रथम सोरठा उद्धृत किया है और 'मुक्ति-जन्मभहिं' का तात्पर्य समझाने के लिए 'मुक्ति-जन्म' में द्वन्द्व समास का आश्रय लिया है, यद्यपि 'मानस' के सभी प्रसिद्ध टीकाकारों ने काशी को 'मुक्ति की जन्म-स्थली' माना है। शास्त्रीजी की यह आलंकारिक भाषा काव्य में निराधार खटकती है।

शास्त्रीजी की इस धारणा का पूर्ण निराकरण करने के निमित्त डॉ० माताप्रसाद गुप्त निम्नलिखित पंक्तियाँ कवितावली उत्तर काण्ड से उद्धृत करते हैं—

मेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर।
पायें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ॥१६६॥
जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि।
मालुम है तोहि मरबहु को रहत हौं ॥१६७॥

अर्थात् हे शंकर भगवन् मैं महाराज राम का दास हूँ, आपका सुयश सुनकर आपके चरणों में गंगाजी के तट पर आ बसा हूँ। हे दयालु महादेव मुझे जीवित रहने की इच्छा नहीं है आप जानते ही हैं कि मैं तो मरने के लिए (काशीपुरी में) रहता हूँ। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी कहीं से आकर काशी में वास करने लगे थे, जिस से यह स्वतः सिद्ध होता है कि वे वहाँ उत्पन्न नहीं हुए थे।

तृतीय समाधान—यदि शास्त्रीजी के इस सुझाव को थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि गोस्वामीजी काशी में उत्पन्न हुए थे तो भी चन्द्रबली पाण्डे गोस्वामीजी की अन्य उक्ति की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं वह यह है —

बानर बिभीषन की ओर के कमावहे हैं
सो प्रसंग सुनें अंग अरै अनुचर को।
राज रीति आपनी को होइ सोई कीजे, अति
तुलसी तिहारो घर बारो है घर को ॥क० ७ १२२॥

अर्थात् आप सुग्रीव के ऋणी हैं यह बात सुनकर दास का अंग अंग जलता है (कि आप मुझ पर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते ?)। अतः मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ अपने प्रण की रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घर का घर-जाया सेवक है। इस छन्द में गोस्वामीजी ने अपनी जन्म भूमि का निर्देश किया है जो स्पष्टतः काशीपुरी नहीं हो सकती।

निष्कर्ष—पाण्डेजी गोस्वामीजी के जन्म-स्थान को अयोध्या समझते हैं हम रामपुर जो गंगा तीरस्थ सूकर क्षेत्र (सोरों) से दो मील था। हमारी धारणा के अनुसार तो गोस्वामीजी के सभी उपर्युक्त उद्धरणों का समाधान हो जाता है कि सुकुल आस्पद तुलसीदास श्री गंगा तीरस्थ भगवान् राम के पुर के जन्म-जात एवं निवासी थे और वृद्धावस्था में काशी सेवन करने लगे थे जिससे कतिपय पण्डितम्मन्य आशंकित हो उन्हें कुछ समय तक कष्ट देते रहे। सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी पुराणों की कथा बाँच कर अपना निर्वाह करते थे अतः शास्त्रीजी ने भविष्य पुराण की जो निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं वे संगत ही हैं —

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषाकार्यां करिष्यति
विख्यातस्तुलसी शर्म्मा पुराण-निपुणः कविः। ३ २२

काशी की सामग्री—गोस्वामीजी का सम्बन्ध काशी से घनिष्ठ रहा यह निर्विवाद है और जैसा कि 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' से स्पष्ट है उनका बाल्यकाल यहीं बीता। तुलसी-घाट अभी और गंगाजी के संगम पर है। इस घाट के सन्निकट एक पुराना भवन है जिसकी एक कोठरी में हनुमान्जी की प्राचीन मूर्ति है। यहाँ सरकारी का एक खण्ड भी है जो गोस्वामीजी की उस नौका का अवशेष

कहा जाता है जिसमें वे गंगा-पार आया करते थे। एक चौड़ी सड़ाँड़ की और एक चित्र भी विद्यमान हैं जिन्हें गोस्वामीजी का बताया जाता है। गोपाल मन्दिर के अहाते में एक नीची कोठरी है जिसमें कहते हैं गोस्वामीजी ने विनय पत्रिका के कुछ पदों की रचना की थी। प्रह्लाद घाट पर नंगारामजी ज्योतिषी का स्थान है। जब गोस्वामीजी सर्वप्रथम काशी गये तो यहाँ ठहरे थे। गोस्वामीजी ने इनकी ज्योतिष सम्बन्धी सहायता की थी तब से वे गोस्वामीजी के मित्र बन गये। इस स्थान पर गोस्वामीजी का एक चित्र भी है जिसे, कहते हैं जहाँगीर सम्राट् ने बनवाया था यद्यपि रायकृष्णदासजी की सम्मति से यह सं० १६२५ का नहीं है।[1] इस सामग्री के अतिरिक्त काशी में हस्तलिखित सामग्री भी है। १६६९ वि० का पंचायतनामा जो पहले असीघाट के निवासी टोडर के उत्तराधिकारियों के पास था अब काशीराज के यहाँ है। टोडर गोस्वामीजी के मित्र थे जिसका उल्लेख इन पंक्तियों में हुआ है:

तुलसी बखाने बिमल टोडर बुधवन बाय
ये दोउ नेमव सींचिहौं समुझि समुझि अनुराय।
चार बीच को ठाकुरो मन को महा महीप
तुलसी या कलिकाल में अचए टोडर दीप।
तुलसी राम सनेह को सिर पर धारी भार
टोडर कीन्हा ना दियो तब कहि रहे उतार।
राम धाम टोडर गए तुलसी भए असोच
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥[2]

टोडर और राजा टोडरमल विभिन्न व्यक्ति हैं। टोडर के दो पुत्र थे आनन्दराम और रामभद्र। सं० १६६९ में जब रामभद्र मर चुके थे तो आनन्दराम और (रामभद्र के पुत्र) कंवई में झगड़ा हुआ। जमींदारी में पाँच ग्राम थे—मवैनी नवसर जिवपुर क्षीतपुर और लहरतारा जो काशी के ही मुहल्ले हैं। बँटवारे का झगड़ा हुआ तो दोनों दलों ने गोस्वामीजी को पंच बनाया और पंचनामा १६६९ वि० आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को काशी के समक्ष लिखा गया। पंचनामा तो फ़ारसी के अक्षरों में है पर, कहते हैं सर्व प्रथम जो श्लोक है वह गोस्वामीजी के ही कर-कमलों के द्वारा लिखा गया है। ११ पीढ़ियों तक तो यह पंचनामा टोडर के वंश में रहा तदनन्तर पृथ्वीपालसिंहजी ने इसे काशी-नरेश को सौंप दिया और अब तक वह वहाँ सुरक्षित है। काशी के सरस्वती भवन में वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की एक प्रति विद्यमान है जो १६४१ वि० की लिखी हुई है इसकी पुष्पिका में 'लि तुलसीदासेन' अंकित है।[3] १६६६ वि० में लिखी 'विनय-पत्रिका' की एक प्रति रामनगर के चौधरी चुन्नीसिंह के पास है। कहते हैं कि इस प्रति में जो संशोधन किये गये हैं वे स्वयं तुलसीदासजी के हाथ के हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि यद्यपि काशी गोस्वामीजी की जन्म-भूमि नहीं है तथापि उनके निवास और मोक्ष की भूमि होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१ तुलसीदास, पृ० ८०।
२. श्री रामचरितमानस की भूमिका पीछे की छपाई २१ २४।
३ इस सम्बन्ध में विचार दशम अध्याय में किया गया है।

अयोध्या

प्राक्कथन—गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में पण्डित चन्द्रबली पांडे ने अयोध्या की ओर इंगित किया है। उन्होंने जो प्रमाण संग्रह किया है उसका द्विविध विभाजन हो सकता है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत है अनन्य कवि की रचना तुलसी चौरा मोहल्ला साईं का स्थान तथा भवानीदास का लेख और अन्तःसाक्ष्य के आधार हैं स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरित मानस' 'कवितावली' और 'गीतावली'। पांडेजी का प्रयास प्रशंसनीय है यद्यपि रूपान्तर से उनके द्वारा सोरों-सिद्धान्त का ही समर्थन हो जाता है।

१ बहि- साक्ष्य

(क) अवनिधि का पद—जयपुराधीश्वर श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव ने (जिनका उपनाम अवनिधि है) किन्हीं अनन्य नामक कवि के पदों का संग्रह किया। इन अवनिधि की अन्य रचनाओं के साथ इन पदों का संकलन पुरोहित हरिनारायण शर्मा के द्वारा हुआ और उन्हें काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने संवत् १९९० में प्रकाशित किया। महाराज प्रतापसिंह (अवनिधि) का जीवन-काल है संवत् १८२१ से १८६० वि तक। अनन्य कवि कौन थे उनका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। चाहे वे अखर अनन्य हों अथवा अनन्य नागर अथवा अन्य कोई अनन्य हों इस से कोई विशेष प्रयोजन भी नहीं। किन्तु उनकी रचना का संग्रह-संकलन अवनिधि जी ने स्वयं किया अथवा उनके किसी उत्तराधिकारी ने यह स्पष्ट नहीं। अस्तु अनन्यजी ने गोस्वामी तुलसीदास की प्रशस्ति इस प्रकार की है —

> जय जय तुलसीदास गुसाईं। लिया राम हम बाईं बाईं
> रघुवर की वर कीरति गाई। जे अनन्य तिनसें मन लाई ॥८४॥
> गाई अनन्य अनहिं गुनीरति बिमल रघुवर राम की।
> अति विचित्र चरित्र बानी प्रकट कीनी भाव की।
> दुरित दलि के लोक तिन पै अति अनुग्रह तुम कर्यो।
> विविध तार संतान हिय को दया करि सब को हर्यो ॥८५॥
> जय जै श्री तुलसी तव जंगम राजई
> आनन्द जन के मांहि प्रगट छवि छाजई
> कविता मंजरी सुन्दर साजे।
> राम-अखर रमि रह्यो तिहि काज ॥८६॥
> रमि रहे रघुनाथ-अलि हूं सरस सोभा पाइके
> अति ही अमित महिमा तिहारी कहौं कैसे गाइके
> तुलसी तु बन्दा सखी को निज नाम तें बुन्दा सखी
> दास तुलसी नाम की यह रहति मैं मन में सखी ॥८७॥

कोसल देस उजागर कीनो। सबहिन को अद्भुत रस दीनो।
छिन-छिन उमगे प्रेम नवीनो। उमड़ि पुहुमि भर लह रंगीनो ॥८८॥
रंग की बरखा करी बहु जीव सन्मुख करि लिए।
अनक नंदिनि-राम-छवि में मिले मिले डोले कल हिये।
बस निरन्तर रहत जिनके नाथ रघुबर जानकी।
दास तुलसी करहु मो पर दया ईपति दान की ॥८९॥
सुन्दर सिया राम की जोरी। वारौं तिहिं पर काम करोरी।
बोल मिलि रंग महल में सोहैं। सब सखियन के मन को मोहैं ॥९०॥
सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
करो होवन चंचिर चलि सों गुजल को बानी कहौ।
दास यह तुव अनन्य तापर रीझि करुना कर परी।
यही तुलसीदास तुम्ह ही कृपा करि अपनी करी ॥९१॥[1]

उक्त प्रशस्ति में 'कोसल देस उजागर' कीनो' उल्लेखनीय ध्यान देने योग्य है। पाण्डेजी की समझ में यह अर्थ भासता है कि कोसल देश में जन्म लेकर तुलसी ने उसे धन्य कर दिया।[2] इसमें कोई सन्देह नहीं सभी जानते भी हैं कि तुलसीदासजी अयोध्या में रहे थे और वहीं उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ किया था। उनकी उस रचना से देश का कल्याण हुआ अतः कोसल देश धन्य है जहाँ उन्होंने कुछ काल तक निवास किया। पर 'कोसल देस' का तात्पर्य केवल अयोध्या नगरी से ही यह आवश्यक नहीं और केवल 'उजागर कीनो' से यह तात्पर्य ग्रहण नहीं किया जा सकता कि वहाँ उनका जन्म हुआ, जबकि भिन्न साक्ष्य भी उपलब्ध हो।

(ख) तुलसी-चौरा—अयोध्या में तुलसी चौरा नामक स्थल है जिसका उल्लेख मोहन लाई नाम के पुण्यात्मा ने एक गीत में किया है। उसका आशय यह है कि जहाँ आज तुलसी चौरा है वहाँ वट वृक्ष के नीचे एक योगिराज ने आसन जमाया था और जब गोस्वामी तुलसीदास काशी से वहाँ पधारे तो उसने योगबल से गोस्वामीजी का महत्त्व जान कर उन्हें सब कुछ सौंप कर योगद्वारा अग्नि उत्पन्न की और अपना शरीर त्याग दिया। जब संवत् १६६१ आया तो गोस्वामीजी ने रामगाथा लिखी और भगवान् विष्णु, सीता राम लक्ष्मण और हनुमान्‌जी की मूर्तियाँ स्थापित कीं। राजा मानसिंह ने वहाँ फर्श और छत्री बनवा दी। गीत सुन्दर है वह इस प्रकार है—

अवध की भूमी पवित्र सब है
पवित्रतम उसमें है तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका
विरंचि नारद महेश गौरा ॥१॥
यह पड़ी अजब थी कि जिस घड़ी, यह बरकत वट का जमा यहाँ।
उसी छाँव में वट के बुजुर्ग गुरु, उसे लेते कोई करे क्या।

---

१ अवधेश-मञ्जरी (हरिहर संग्रह) पृष्ठ २७८-७९।
२ तुलसी की जीवनभूमि, पृष्ठ ११४।

हुईं हुए सब देखकर कुदरत इलाही दर जहाँ।
न सुना मुअम्मा किसी से भी गोशीदा इसरारे निहाँ।
सुना न देखा किसी ने पहले जमा किया इतना सब को बोरी ॥२॥

अवध की भूमी०

जमाया आसन जहाँ के नीचे, प्रसिद्ध मुनि योगिराज जी ने।
वे जानते मर्म भीतरी के बता दिया था उन्हें किसी ने।
यहाँ पै काशी से जब गुसाईं पधारे श्री राम रत से भीने।
सुनाके आदेश अपने गुरु का उन्हें ही सौंपा सब उस थली में।
जला के तन योग अग्नि में तब सिधारा गुरु धाम वह धीरा ॥३॥

अवध की भूमी०

तपी जब इकतीसी राम मोजी गुसाईं जी ने कसम उठाई।
उछाह से राम ब्याह तेंतिस समाप्ति तिथि मानसी सुहाई।
हुई जो पूजा की धूम सुरगन ने राम पाया ये भी बड़ाई।
सुदिव्य मनि तीन शुचि अलौकिक सुपरता जिनकी कही न जाई।
सौंपा था उनमें समेत परिकर के रामजी का शबीह औरा ॥४॥

अवध की भूमी०

थी एक पर विष्णु जी की झाँकी व दूसरे पर थी राम सी की।
व तीसरे पर अनुज हनुमत विराजती मूर्ति सीय जी की।
उन्हीं की पूजा यहाँ पै होती बताई मानों गुसाईं जी की।
बना दिया मिरजा मानसिंह ने करम अनूपम व छवि ही की।
बहुत दिनों तक चहल-पहल थी बनट गया फिर समय का दौरा ॥५॥

अवध की भूमी०

चढ़ा था सैतान पूजा के सिर कि साधोजी की थी तपारी।
उपाद कर कहीं तख्त साजा पूजा के दिल थी बला के भारी।
वह तख्त पर बैठने न पाया पहुँच के मोरंग न जान मारी।
सुगन के घर रत्न कहीं छुपी गुमराह व लखनत उठने चकरा।
किए का फल हाथों हाथ पाया पहुँच गए बिस्तियाँ पिशोरा ॥६॥

अवध की भूमी०

रहा सहा पूजा चंदिका पुत्र जी का ही जिन्दा गवाह सब का।
बचा न वह भी बचे तो कैसे कि हिम गए जब कि लाखों तबका।
वह कैसा संवत् था बेवक्ता का कि नाम बारह उजास रब का।
जो जन्म लेता था कैसे मानें कि छपकरी तिथि हुमन की जबका।
सब ईंट की बेदिका बची है उसी पै सिर हुम पटकते बोरा ॥७॥

अवध की भूमी०

ए पाक बद में तो लाके तन हूँ बहुत ही था पाक नजरे दावन।
मगर तुम्हारे ही लाये में तो हुआ है मेरा हमेशः पावन।
इसी से पूजे का हक है हासिल दिला करो चितुदेव भगवन्।

कपीस मे मंद में तिवारें तुम्हारा तब की बने न ईंबन।
तुम्हारी आसक्ति घेरती है हृदय हमारा भवाके हीरा ॥८॥

प्रवन की भूमी०

तुम्हीं तो त्रेता के सोमवट हो तुम्हीं तो द्वापर के वंशीवट भी।
तुम्हीं बने कलि में बोध विरवा जो मानसी वट यहाँ प्रकट भी।
तुम्हीं अक्षय वट तुम्हीं अचल वट तुम्हीं हो कैलास तब पुकुट भी।
तुम्हीं हो नटराज वट अयुध में तुम्हीं मेरुवट सुवर के तट भी।
तुम्हारा गुन गावे साईं मोहन बनेगा जब तक अचल का कीरा ॥९॥

प्रवन की भूमी०

श्री चन्द्रबली पाण्डे की कल्पना है कि उक्त गीत में जिस छवी का उल्लेख है वह तुलसीदासजी के माता-पिता की होगी और यह चौरा ही तुलसीदासजी का जन्म-स्थान है। किन्तु उक्त गीत से ऐसी कल्पना को बल नहीं मिलता। उसमें स्पष्ट लिखा है कि गोस्वामीजी काशी से उस स्थान पर आये थे। छवियाँ तो स्थान को महत्त्व प्रदान करने के लिए अथवा निर्माता की अपनी ही स्मृति को बनाये रखने के लिए बनवा दी जाती हैं। घरों में, चबाहरबत, बराह-मन्दिर के समीप हर की पैरी पर अनेक सुन्दर प्रस्तरमयी छवियाँ विद्यमान हैं जिन्हें राजाओं ने स्मृति चिह्न-स्वरूप बनवाया था।

(ग) भवानीदास का 'तुलसी चरित्र'—पाण्डेजी ने भवानीदास कृत 'तुलसी चरित्र' में से कुछ उद्धरण दिये हैं। वे ये हैं:—

(अ) तहाँ ते चलि आए बहुरि, सौरोंक्षेत्र सुजान
बचन सराहे भाय निज करि आदर सनमान ॥४॥
मिलि तहु ताय सनेह करि, दीन बचन बहु भाखि
सोच प्रेम हुं अति सुखत, नाय चरन तर राखि ॥५॥
है करि आसिरबाद तिन आए आवर तीर।
जानि अवध सनमंध जिय नैमनु आयो नीर ॥६॥
अवध कथ छायो प्रिगन उमड्यो प्रेम अपार।
मगन ध्यान रस दंड जुग बहा सरीर बिसारि ॥१॥
पुनि विविध करि आरती अति ही प्रेम अधीर।
बस्तु भावना भवन भरि, चले नगर रघुबीर ॥२॥ (पृ० १०७)
आये वहाँ चलाइ बस्तु भरि बुद्ध चल जाना
सहु समाज चढ़ि चले करत रघुपति गाना।
सौ सब को एक ग्राम रामपुर नाम है ताको
रोकि आन्यमयी नाव अटाको है यह काको।
अब तिन अपाति नहिं छूटि है
कछो बहुत तिन नाव नहिं
जब जाति कुजाति समाति के
बाहु की अहि काम नहिं ॥३॥

असवारी को साथ अवै पहुँची तेहि ठाऊँ
साधन हूँ बहु कहौ बतायौ जद्यपि नाऊँ
ताहूपर नहिं मान तब तिन पूँछ गोसाईं
कहा ग्राम को नाम कौन मुहबर यहि ठाईं
कहौ हुजूरान को ग्राम यह
नाम रामपुर बिस्व भन।
अभी जाति तन तदपि है
रामदास मम नाम जन ॥२॥
तब निज मन अनुमान किय अब ऐसे सुम ठौर
आवै वस्तु सो काम तो हमहिं न चाहिय और ॥१॥
वस्तु अनेक अमोल अति अब बहु बिनिस सुदेस
तब आई क्यों मेट किय साथ नरेस अनेस ॥२॥(पृष्ठ १०६-७)

इन पद्यरचों का तात्पर्य है कि गोस्वामी तुलसीदास को अयोध्या से बड़ा प्रेम था और उसके नामशब्द से उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु आ जाते थे और वे स्वयं विभोर हो जाते थे। एक बार यात्रा करते वे एक ग्राम में पहुँचे जिसका नाम रामपुर था किन्तु वे उसे पहचानते न थे। वह न तो अयोध्या था और न ओरछे वाला रामपुर ही क्योंकि यदि वह इनमें से कोई होता तो वे उसे अवश्य पहचान लेते।

रामपुर यात्रा का वर्णन अन्यत्र भी मिलता है। श्री केवलराम श्री कृष्णदास ने अपने श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से संवत् १९२० अर्थात् १८६४ ई० में 'तुलसीकृत रामायणम्' प्रकाशित किया प्रारम्भ में तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र पद्य में दिया गया है उसमें तुलसीदासजी को रामपुर-निवासी बताया गया है और उक्त यात्रा का वर्णन पृष्ठ ९ १० पर इस प्रकार है—

एक समय श्री अवध को लै सब संत समाज।
नावहिं गावहिं चलत भये नाव भरोसे साज ॥१८॥
सरयू गंगा संगम आईं पहुँचे अवै गोसाईं तहँ
भूप आइ भेटी अब ग्रामा पूछ्यो तुलसी चाहिहु नामा
कहे लोक चलि के सिर नावत रामसिंह इत नृपति कहावत
रामदास यादी कर नाऊँ तथा रामपुर आवत गाऊँ
रामघाट यह पुन्यो गोसाईं लगत अमात इतै अरि आई
बिन कर दै कोउ आन न पावै तुमहूँ को देव उचित इत आवै
राम भये पुनि नाम लखन के लखत कोर में प्रभु नयन के
तुलसिदास बोले मुसकाई मैं अमात है ओर जवाई
पुन्यो गोसाईं आगत राजा आयो तुरतहिं सहित समाजा
बंदी तुलसिदास बदनंजन लिय उपदेश कुमति हग अंजन
विनय कियो अरि आनँद मानत होय नाव इतही अंदाजा
मेरे कठ देहु प्रभु कंठी कीजै जोहि अंतिम विकु हो।

तुलसीदास कीन्हें कृपा भंडारा तहँ तीन
नृपहु द्रव्य लगाय के अति उत्सव तहँ कीन ॥१९॥
तुलसिदास उपदेसते भूप सहित सब देस
रघुपति भक्त अनन्य भो सेयो संत हमेस ॥२०॥
तुलसिदास की पादुका भयो भूप गुरु आहि
इष्ट देव सम पूजिकै पायो मोद सराहि ॥२१॥
एक दिना निवसत तेहि काशी एक चरित्र भयो सुखराशी ॥"

रामपुर-यात्रा के वर्णन की समानता रखते हुए भी यह भिन्न है। एक में रामपुराधिपति का नाम हरिराम और दूसरे में रामसिंह दिया गया है। जगाति की बात और बाटी का नाम रामदास दोनों में दिया गया है, किन्तु इस यात्रा प्रकरण से भी गोस्वामीजी के जन्म-स्थान पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में कोई प्रकाश नहीं पड़ता। पांडेजी ने निम्नलिखित उद्धरण और दिया है —

ग्राम एक जो रामपुर सिलिरिय पुरब भाग
भूमिपाल तेहि ग्राम की निजी सो बड़ अनुराग ॥१॥
नाम सुनत अंरामपुर किमो गोसाईं छोह
तब तिन अपने दुख कहो नरहि दुखन के छोह ॥२॥
पति सहा कारन दुखद रहत हमारे प्राण
करन चारिए कृपा करि पूर्वे सब मन काम ॥ ॥
लखि सो प्रीति को नाम नाम को नातो मान्यो।
पर दुख दुखी दयाल सहज तहँ कीन्ह बखानो।
वृन्दावन जब रहे तहाँ एक सहज सुभाए
सूखि डार बट अरी सो प्रभु सहज हि रखवाए
कहि बंसीबट परसाव सो पाहि जमायो दियो जल
तह कर्यो बासना बट रुचिर व्याधि नास हित करि अचल ॥४॥
सम्वत सुकुला पंचमी राम भयहु उत्साह
सेवा रहत बट तर करेहु होइहि तव सुख लाह ॥५॥
एक दिन रहि तह कीन्ह पयानी बट लाखानि बिलहरि आनी
पसुहे लाम सो सुख सुवासा अरवकाल अहि लाम प्रकासा
प्रीति पेखि दुख दूर पराने मिटे ताप परितोष पराने
बट बढ़ि भो विस्तार अति छाया बिसद गंभीर
श्रुति मानो तेहि तर अजहु होत रहत सखी चीर ॥६॥ (पृष्ठ १०६ १)

उक्त उद्धरण का आशय है कि गोस्वामी तुलसीदास वृन्दावन (मथुरा) से वंशीवट की बाटी लाये। वह सूख गई थी किन्तु उन्होंने उसे अयरामपुर में बो दी याद दिया और उसमें पानी लगाया। समय पाकर वह बाटी जम आयी और अब वट वृक्ष के रूप में गोस्वामीजी के स्मारक-स्वरूप से विद्यमान है। गोस्वामीजी के इस चमत्कार के सम्बन्ध में हमें कुछ नहीं कहना किन्तु इससे गोस्वामीजी के जन्म-स्थान पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। इसका केवल इतना साक्ष्य है कि गोस्वामीजी कभी

मिसरिक भी बने थे जिनके लिए ऊहापोह की विशेष आवश्यकता नहीं।

२ तथा-कथित अन्त साक्ष्य

पाण्डेजी ने अपने मत की पुष्टि में गोस्वामीजी की रचना के कुछ ऐसे स्थलों की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनसे अनुमान होता है कि उनका सम्बन्ध उनके इष्टदेव भगवान् रामचन्द्र की जन्म भूमि अयोध्या से था यथा—

१ (क) जाकि नीके के निरखि कोऊ सुठि सुन्दर बटोही।
मधुर मूरति मदन मोहन जोहन-जोग
बदन सोभासदन देखिहौं मोही॥
साँवरे गोरे किसोर सुर मुनि चित चोर
उभय अंतर एक नारि तोही।
मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति
राजति तड़ित निज सहज बिछोही॥
उर धीरजहि धरि जग सकल धरि
सुनहि सुमुखि जनि बिकल होही।
को जाने कोने सुकृत लहौ है लोचन लाहु
ताहि तें बारहि बार कहति तोही॥
सखिहि सुसिख दई प्रेम मगन भई
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी
न जानैं कहाँ ते आई कौन की को ही॥
(गीतावली अयोध्याकाण्ड ११ १०४)

(ख) राम-राज बड़ कामधेनु नहिं दुख संपदा सोक छाए
जनम-जनम जानकी नाथ के पुनगन तुलसीदास गाए।
(गीतावली लंकाकाण्ड २३)

(ग) निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सब त्यागि॥
(रामचरित मानस ४ २६)

(घ) आई सों बहुत बात कौसिकहि लघुभ्रात
बोल बल थोर से बोलता थोर-थोर हैं।
लसमुख लखहि बिलोकत लखहि नीके
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं।
(गीतावली बालकाण्ड ७३ ६)

(ङ) भरत राम रिपुदवन लषन के चरित लरित अनूपवा
तुलसी तब के ते अजहुँ जानिबे रघुबर नगर बसेवा।
(गीतावली बालकाण्ड ९, ६)

उपर्युक्त उद्धरण [संख्या क)] का उद्देश्य यह है कि तुलसीदासजी ने स्वयं

अपने किसी पूर्व-जन्म में सीता-राम-लक्ष्मण के दर्शन किये। उस समय वे तो बटोही थे और तुलसीदास सखी थे। ऐसी कुछ लोगों की कल्पना है और पार्वतीजी की भी। अथवा उक्त छंदरत्न के चतुर्थ छन्द का अर्थ एक टीका में इस प्रकार है जो समीचीन प्रतीत होता है इस प्रकार सखी को सुधिसा दे वह प्रेम में डूब गयी और उसे अपनी सुधि जाती रही। तुलसीदास कहते हैं फिर तो वह पत्थर में गढ़ कर काढ़ी हुई मूर्ति के समान ज्यों की त्यों खड़ी रह गयी। फिर वह कौन जाने कि वह कहाँ से आयी थी और किसकी कौन लगती थी?" यदि तुलसीदासजी को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान होता तो वे यह न लिखते कि 'वह कौन जाने कि वह कहाँ से आयी थी और किसकी कौन लगती थी।' अतएव ऐसा अनुमान केवल क्लिष्ट कल्पना है कि तुलसीदास ने यह अपने ही विषय में लिखा है। सूरदासजी ने भी तो लिखा है

हौं तो तेरे घर की दासी सूरदास सौंहिं नाऊँ ॥३६॥
मैं तेरे घर की हौं दासी सो सुरि कोउ न जाय ॥३६॥[1]

तुलसीदासजी ने सूरदासजी की शैली का कुछ विषयों में अनुकरण किया है। उन्होंने बाल राम का वर्णन ठीक उस प्रकार किया है जिस प्रकार सूरदासजी ने बालकृष्ण का। साम्य इतना अधिक है कि साहित्य-स्तेय का आभास होता है। किन्तु तुलसीदासजी भगवद्भक्त थे उन्हें सांसारिक यशोलाभ की लिप्सा न थी और उनकी अपनी मौलिक रचनाएँ ही क्या कम थीं। उन्हें सूरदासजी से प्रेरणा मिली और उसके सुन्दर उपयोग के द्वारा उन्होंने सूर को चिरन्तन श्रद्धांजलि अर्पित की।[2]

(ख) (ग) और (घ) संख्यक उक्त छंदरत्नों का तात्पर्य यह प्रदर्शित करने का है कि गोस्वामी तुलसीदास और भगवान् रामचन्द्र का सम्बन्ध तो जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। इस विषय में भी गोस्वामीजी को सूरदासजी से प्रेरणा मिली है। सूरदासजी भी तो भगवान् कृष्ण के प्रति कहते हैं

हौं तेरो जनम-जनम की दासी सूरज दास कहावैं ॥३६॥[3]

दार्शनिक दृष्टिकोण से तो प्रत्येक मानव का भगवान् से जन्म जन्मान्तरों का सम्बन्ध है ही। इस दृष्टिकोण से सूर-तुलसी की कल्पनाएँ मनोरम तो हैं इतिहासमय नहीं।

(ङ)-संख्यक छंदरत्न में तो तुलसीदासजी भगवान् रामचन्द्र के निकट जनकपुरी में विद्यमान हैं अतः कल्पनाएँ हो सकती हैं कि गोस्वामीजी उस समय एडिकोङ् अथवा जर्नलिस्ट अथवा मिथिला-जात सम्भ्रान्त नागरिक के रूप में थे किन्तु ये तीनों ही कल्पनाएँ क्लिष्ट हैं और ऐसी ही जैसी 'तापस-प्रकरण' के 'तापस' की।

(छ)-संख्यक छंदरत्न का तात्पर्य यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् राम के नगर के वासी न केवल पूर्व-जन्मों में ही थे किन्तु वर्तमान जन्म में भी। किन्तु कुछ टीकाओं में इस बात का उल्लेख नहीं। इस छंदरत्न का अर्थ इस प्रकार किया गया

---

१. सूरसागर, प्रथम खंड, पृ. ३५-३६।
२. सूर की तुलसी की श्रद्धांजलि, रामरत्न चतुर्वेदी 'देश बन्धु', पृष्ठ २८।
३. सूर सागर, पृ. ३६।

तुलसीदासजी कहते हैं कि राम भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के चरित रूप सरिता में स्नान करने वाले जैसे तत्कालीन अवधवासी थे वैसे ही आज के भी समझने चाहिए। इससे तो कोई पता नहीं चलता कि तुलसीदासजी रघुवरनगर से अपने किसी सम्बन्ध की चर्चा कर रहे हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध अयोध्या से था तो उसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? उन्होंने अयोध्या में निवास और 'रामचरित मानस' का आरम्भ किया। 'रघुवर नगर बसैया' से 'रघुवर नगर' में जन्म सिद्ध नहीं होता।

२ अन्य प्रकार

श्री चन्द्रबली पाण्डे ने एक अन्य प्रकार से तुलसीदासजी के ही लेख से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि गोस्वामीजी अयोध्या में उत्पन्न हुए थे

> सुनु कपीस लंकेसा पावन पुरी रुचिर यह देसा
> जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना वेद पुरान विदित जगु जाना
> अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ, यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ
> जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि उत्तर दिसि बह सरयू पावनि
> जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा, मम समीप नर पावहिं बासा
> अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी मम धामदा पुरी सुखरासी
> हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी जय जय जय कृपाल बखानी
>
> रा ७ ११ २-७

पाण्डेजी के मतानुसार, इन पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् रामचन्द्र के मुख से अपनी जन्म भूमि की प्रशंसा सांकेतिक रूप से करायी है। अतः उनकी दृष्टि में वस्तुतः अवधपुरी ही तुलसी की जन्म भूमि और अवध ही उनका जन्म-देश है।[1] किन्तु अन्य अनेक कवियों ने भी इसी प्रकरण में इसी प्रकार लिखा है। सूरदासजी लिखते हैं—

> हमारी जन्म भूमि यह आई।
> तुमहू सखा सुग्रीव-विभीषन अवनि अयोध्या आई।
> देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाई।
> अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं सुरपुर मैं न रहाई।
> इहाँ के बासी अवलोकत हौं, आनन्द उर न समाई।
> सूरदास जो विधि न संकोचै तो बैकुण्ठ न जाई ॥१६३॥[2]

अध्यात्म रामायण-कार युद्धकाण्ड में लिखते हैं—

> एषा भागीरथी गंगा दृश्यते लोकपावनी
> एषा सा दृश्यते सीते सरयू पूत पालिनी ॥ (१४ १६)
> एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि
> एवं क्रमेण सम्प्राप्तौ भरद्वाजाश्रमं हरिः ॥ (१४,१४)

---

१ तुलसी की जीवन भूमि, पृष्ठ १२६।

२ सूरसागर सप्तम स्कन्ध १६६, दूसरा संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण १९८३ वि।

महर्षि वाल्मीकिजी रामायण के युद्धकाण्ड में लिखते हैं

एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ।
अयोध्या कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता । (१२३, ५२)

किंचित् अन्तर से तुलसीदास सूरदास, व्यास, वाल्मीकि सभी का भावसाम्य है तो गोस्वामीजी की उक्ति सब से अधिक भावुकतापूर्ण है क्योंकि 'यद्यपि बैकुण्ठ की महिमा सब लोग जानते हैं और वेद-पुराण में भी उसके माहात्म्य का वर्णन है तथापि वह बैकुण्ठ भी मुझे (राम को) इतना प्यारा नहीं जितनी अयोध्या, इस बात को सब नहीं जानते कोई-कोई ही जानता है।' यह है गोस्वामी तुलसीदास का वर्णन अपने इष्टदेव की जन्म-भूमि के प्रति प्रेम का। नायक की घटना भावना का आरोप ग्रन्थकार पर करना सर्वथा युक्ति-संगत नहीं होता। कवि तो तन्मय होकर लिखा करता है।

३ वास्तविक अन्तःसाक्ष्य

सागर में गोता लगाने वालों को कभी न कभी मोती मिल ही जाता है। श्री चन्द्रबली पाण्डे ने भी तुलसी रचना-सागर में गोता लगाकर एक रत्न ढूंढ़ ही लिया। उन्होंने गोस्वामीजी की 'कवितावली' में से एक ऐसी पंक्ति खोज ली जिसमें कवि ने अपनी जन्म-भूमि की ओर महत्त्वपूर्ण इंगित किया है। वह इस प्रकार है —

तुलसी तिहारो घर जायो है घर को। (१२२)

गोस्वामीजी भगवान् रामचन्द्र को उपालम्भ दे रहे हैं कि आप हनुमान् सुग्रीव अंगद विभीषण आदि वानर राक्षसों पर जो बाहर वाले हैं आरम्भ से ही अनुग्रह करते रहे हैं किन्तु आपने मुझ पर अपनी कोई कृपा नहीं की। मैं तो आपके घर का घरजाया नौकर हूँ। पाण्डेजी की खोज की उपेक्षा-सी करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त संत कबीर की निम्नलिखित पंक्ति का स्मरण दिलाते हैं —

कहि कबीर गुलाम घरका जो आइ जायै जाहि।

किन्तु जैसा कि पाण्डेजी लिख चुके हैं कबीर और तुलसी की उक्तियों में अन्तर है। तुलसी ने 'घर' शब्द की विवक्षा की है कबीर ने नहीं। कबीर के उपास्य हैं निर्गुण ब्रह्म जिसका न कोई घर है न कोई गुलाम किन्तु तुलसी के उपास्य हैं सगुण ब्रह्म श्री रामचन्द्र जिनके अनेक घर और नौकर-चाकर हैं। अतएव दोनों कवियों की उक्ति में भाव-साम्य नहीं।

'तुलसी तिहारो घर जायो है घर को'

इस पंक्ति के आधार पर पाण्डेजी घोषणा करते हैं कि तुलसीजी का जन्म-स्थान अयोध्या था। वे इस प्रकार अर्थ लगाते हैं आपका अर्थात् राम का घर अयोध्या है और तुलसीदास उस घर में उत्पन्न हुए घर के दास हैं अतएव तुलसीदास अयोध्या में जन्मे थे। हमारा दृष्टिकोण तनिक भिन्न है राम का घर रामपुर में और तुलसीदास वहाँ के घरजाये घर के दास, अतएव तुलसीदास भी रामपुर में उत्पन्न हुए।

रामपुर की सत्ता ?

तो रामपुर कहाँ ? क्या वह अयोध्या नहीं है ? 'रामपुर' नामक स्थान तो अनेक हैं, और अयोध्या को भी रामपुर कहते हैं। स्वयं गोस्वामीजी ने अयोध्या के लिए रामपुर शब्द का प्रयोग किया है, यथा—

> मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज
> बिगारि बिचारि जहाँ जहाँ आवी रही है
> पुर पाजें बारि हैं उघारि हैं तुलसी से जन
> जिन आनि के परसी पाड़ी पही है।
>
> (गीता० अयो० ४१ ४)

उक्त पुर 'रामचरित मानस' में स्पष्ट हो गया है

> पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन
> भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥
>
> (बालकाण्ड २८६, १-२)
>
> जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा।
> तब-तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
>
> (रा० ७ ११३ ख १२ ११)

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान भी रामपुर है और वहीं उनके पूर्व पुरुष रहते थे। किन्तु दोनों 'रामपुर' भिन्न स्थान हैं। भगवान् रामचन्द्र का जन्म-स्थान रामपुर अर्थात् अयोध्या है और गोस्वामीजी का जन्म-स्थान रामपुर ग्राम है। वह सोरों से दो मील पूर्व था। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन "रामपुर" नामक आगामी अध्याय में किया जायगा। सोरों-सामग्री में 'रामपुर' का उल्लेख श्री चन्द्रबली पाण्डे की भव्य कल्पना से पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। परन्तु पाण्डेजी के अनुसन्धान से सोरों-सामग्री को और अधिक स्पष्टता और पुष्टता प्राप्त हुई है, जिसके लिए हिन्दी-संसार उनका ऋणी रहेगा।

तारी तुलसी की जन्मस्थली

अविनाशराय की सूचना—कविराज अविनाशराय ने सन् १६२० ई० में 'तुलसी प्रकाश' नाम की पुस्तक लिखी थी जिस पर द्वितीय अध्याय में विचार हो चुका है। उसमें अविनाशराय ने अपनी जन्म भूमि तारी का, अपने वंश का, एवम् गोस्वामी जी की माता हुलसी का जो परिचय दिया वह इस प्रकार है —

गंगा दक्षिण कूल इक, तारी ग्राम सुजान।
सोरंकी हरसिंह जहँ, भूमिपाल मतिमान।
तहँ बसत भूभुज भूरि कछु बसत भूसुर सूरि।
कछु बास जन सुखकारि, कछु ग्राम पै जन हूरि।
अनिरुधि मेरी गेह, आनंद सुखद सब देह।
सिवराय जू कविराय मेरे जनक सुखदाह।
कौशिल मुनि गोत्री दुबे तहाँ विप्र सिरमौर।
बसत अवध्यानाथ कुल, एहि सम पमक न और।
पुत्र न कोउ जियो जनको, दुहिता हुलसी कछु जस भई।
ब्याहन योग भई जब ही वर ढूँढन में चितवृत्ति दई॥
सूकर क्षेत्र समीप तबै वर रामपुरे मधि देखि लयो।
आतमराम सुकुलहि के कर में हुलसी कर दान दयो॥
आत्माराम वर हाथ मातुहीन हुलसी सुता।
दई अवध्यानाथ लोक वेद कुल रीति करि।
जामातहि सुखदाह, बरस नए इक ब्याह सों।
निज सरवस्व पहाइ, तारी तजि सुरपुर गए।
तारी महँ बसि बरस इक पंडितु आत्माराम।
आइ बसे हुलसी सहित, सुखद रामपुर धाम।

उक्त उद्धरणों से पता चलता है कि अविनाशराय के समय में गंगा के दक्षिण किनारे तारी नाम का ग्राम था जहाँ हरसिंह सोरंकी शासन करता था। यह ग्राम छोटा तो था किन्तु मनोहर था। यह अविनाशराय का जन्म-स्थल था जिनके पिता का नाम सिवराय था। इन्होंने अपने पिता को कविराय बतलाया है जिससे यह अनुमान होता है कि यह ब्रह्मभट्ट होंगे। इस ग्राम में अवध्यानाथ नाम के ज्योतिषी भी रहते थे, जो अस्त्र के दुबे और गोत्र के कौशिल्य थे। उनका कोई पुत्र जीवित न रहा। इनकी पुत्री का नाम हुलसी था। विवाह-योग्य होने पर उन्होंने समीपस्थ सूकरक्षेत्र के रामपुर में आत्माराम सुकुल के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। विवाह के कुछ वर्ष पीछे अवध्यानाथ जी ने अपने जामाता पण्डित आत्माराम सुकुल को बुलाकर अपना सब कुछ सौंपकर स्वर्ग-लोक को गमन किया। पण्डित आत्माराम तारी में एक वर्ष रहे तत्पश्चात् वे हुलसी के साथ अपने ग्राम रामपुर में जा बसे।

कान्हराय का लेख—शाहजहाँ के शासन-काल में कान्हराय नाम के एक ब्रह्म भट्ट थे, जिनका जन्म-स्थान भी तारी था। उन्होंने 'कर्ण विलास' नामक ग्रन्थ में तारी का परिचय दिया है कर्णसिंह सोलंकी की प्रशंसा की है और तुलसी की जन्म-भूमि का उल्लेख किया है। कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं जो २३ सितम्बर १९४२ के 'नवीन-भारत' में प्रकाशित हुए थे —

तारी करन ताल तीर वाटिका विसाल सोहै
सोहै मन वंचित को देति विसराम है।
करन की करन ग्राम वैरी हू निर्भै होत,
करन की यही मानौं कल्प तरु लसाम है॥
भूखे को भोजन यहाँ कंचन कौं मान मिलै
विप्रन कौं दान मिलै पूर्ण सब काम है।
साहिजहाँ राज तब तुम्हारी हैं 'कान्हराय'
त्यौंही करन राज में तारी सुख धाम है॥
जाके दिसि उत्तर में गंग धुव राजि रहीं,
दक्षिन कछु कोस पै करै केलि कासी है।
तुलसी-मात तुलसी की जननी जे तासी भूमि
भूपसिंह वासी जासु रक्षक कपासी है॥
करनसिंह ज्ञानी अब दानी है करन जैसो,
बस मुरवारी धीरवीर बलसाली है।
जाही को वासी नित कवित करै कान्हराय
रैन दिन धंन करै वै वै कर तासो है॥
एक ही प्रहार में संहारति अनेक मुंड,
तब मुंड देखि देखि करत पयान है।
कराल महाकाल सी काली सी कुप्यासी सी
जासों करि डिठाई होत जय को महिमान है॥
दामिनि सी दमकनाति देखि वीर थरहरात,
कायर लुकाय जात जानत अहान है।
सबुहस करतनी वीर वीर हुरनी त्यों,
बरनी जे 'कान्हराय' करन कृपान है॥
भूमत बवंड बुन्द हींसत तुरंग बुध
दर्पदन भंकार जहाँ धरति सुनाई है।
जूझत अखारे में जुझारे बल मान तहाँ
होति नित राम कथा सन्त सुखदाई है॥
बड़े बड़े पंडित गुन मंडित कान्हराय
आवैं नित जाके द्वार पावैं पहुनाई है।
सोरंकी करन जैसो देखो ना उदार वीर
वैरी हू बरने जासु नीति निपुनाई है॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि तारी के किनारे कर्णताल और कोई विलास वाटिका थी। उस समय तारी का शासक कर्णसिंह नाम का कोई सोलंकी था, जो ज्ञानी, दानी और धर्म-धुरन्धर था। उसकी बड़ी सुन्दर थी। उन दिनों सम्राट् शाहजहाँ का राज था। तारी के उत्तर में दोनों गंगाएँ शोभा देती थीं और दक्षिण में कुछ कोस पर काली नदी बहती थी। भागीरथी गंगा और बूढ़ गंगा (बुढ़ गंगा) और काली नदी आज भी विद्यमान हैं। बुढ़ गंगा तो भागीरथी गंगा का प्राचीन प्रवाह-मार्ग है, वहाँ आज भी क्षीण धारा बहती है और भागीरथी गंगा कुछ हटकर बहने लगी है। यह तारी तुलसीदासजी की माता हुलसी की जन्म भूमि है।

भ्रम क्यों?—जैसे-जैसे समय बीतता गया हुलसी की जन्मस्थली तारी की वास्तविक स्थिति को लोग इधर-उधर बताने लगे क्योंकि एक ही नाम के अथवा समान नाम के ग्राम और कस्बे होते हैं जिनसे भ्रम का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। फिर भी सत्य नहीं छिपता। तारी को कुछ लोगों ने स्वयं गोस्वामीजी की जन्म भूमि माना है। भ्रम में भी सत्य छिपा रहता है। सर जी० ए० ग्रियर्सन ने १८९३ ई० में 'नोट्स ऑन तुलसीदास' नामक लेख प्रकाशित कराये जो 'इण्डियन एण्टीक्वैरी' की २२वीं जिल्द में समाविष्ट हैं। ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं—"गोस्वामीजी की जन्म-भूमि होने का दावा कई स्थान करते हैं यथा- तारी जो दुआब में है हस्तिनापुर चित्रकूट निकटस्थ हाजीपुर और बाँदा जिले में यमुना के किनारे बाला राजापुर। इनमें से तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। अपने बचपन में गोस्वामीजी ने सूकर-क्षेत्र अर्थात् वर्तमान सोरों में अध्ययन किया था।"

संस्कृत भक्त माला—संवत् १९८३ वि० में श्री खेमराज श्रीकृष्णदास ने भी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में मुद्रित कर "संस्कृत भक्त माला" प्रकाशित की। उसमें गोस्वामीजी के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। उसके कुछ श्लोक ये हैं :—

गंगा यमुनयोर्मध्ये देशः पुण्यतमो महान्।
अन्तर्वेदिरिति ख्यातो मुनिभिः परिसेवितः ॥१३१।२॥
तत्रैकोऽस्ति तरी नाम्ना ग्रामो ब्राह्मण संकुलः।
तत्रासीत् तुलसी नाम्ना सुकवि रत्नुपनामकः ॥६॥
कारयित्वा तद्विवाहं पिता तस्य दिवं गतः।
मातापि मृतवती तस्य स्वर्गति तस्य-तत्परा ॥४॥
अथो स तुलसी नाम्ना स्वपत्न्या सह नित्यशः।
रेमे पितृधनं प्राप्य दानभोग-समन्वितः ॥५॥
कालेन तस्य पुत्रोऽभूद् दृष्ट्वा तं जाति हर्षिता।
तुलसी तस्य पत्नी चेत्पुत्री पूर्वं जनीरथी ॥६॥
एकदा तस्य पत्नी तु समीपे मातु मन्दिरे।
समभूत्का बता बाल सोऽप्य दृष्ट्वा गृहे च ताम् ॥७॥
यथो तदैव श्वशुरगेहे पत्नीं दर्शयितुं।
दृष्ट्वा समागतं पत्नी जर्सीयन्ती वचोऽब्रवीत् ॥८॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि तारी की स्थिति गंगा-यमुना के अन्तर्वेद में थी और

निकट ही गोस्वामीजी का ससुरालय भी था।

रेवरेण्ड ग्रीव्ज—रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्ज ने 'तुलसी ग्रन्थावली' के ४५वें पृष्ठ पर लिखा है 'पर जन्म कहाँ हुआ? कुछ लोग बतलाते हैं कि राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ। पर गोसाईं ने वहाँ एक मन्दिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी जो चित्रकूट के पास है पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं है। फिर औरों ने कहा कि वह ताड़ी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं कि उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर वह तुलसीदास के उत्पन्न होने से पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब लों ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ।"

श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद—सन् १९१९ ई० में श्री अयोध्याजी प्रमोदवन कुटिया के निवासी श्री सीतारामशरण भगवान्प्रसाद ने अपने सटीक वार्तिक-प्रकाश-युक्त भक्तमाल के ७४१वें पृष्ठ पर लिखा है—"जन्म-स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा जिले में यमुना-तीर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं है। श्री गोस्वामीजी का जन्म-स्थान श्री पंपा वाराह क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में 'तरी' नाम ग्राम या 'ताड़ी' था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया है। इसीसे वहाँ श्री गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमानजी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह बातें वहाँ वाले भली प्रकार निश्चय की गई हैं।"

श्री शिवनन्दन सहाय—श्री शिवनन्दन सहाय ने अगस्त १९२३ ई० में 'माधुरी' के २४वें पृष्ठ पर लिखा है—"जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर और ताड़ी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ है तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोस्वामीजी का जन्म-स्थान नहीं है। विरक्त होने पर वह कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और प्रायः आया करते थे।

तुलसी स्मारक सभा राजापुर का पत्र—पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट ने १९२९ ई० की माधुरी में अपने पत्रोत्तर का उल्लेख इस प्रकार किया है—'श्री तुलसी स्मारक सभा, राजापुर के एक अधिकारी से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र व्यवहार किया था तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट रूप से साथ इस बात को स्वीकार किया है कि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।"

ताड़ी कहाँ?—ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि अब में भी कितना सत्य छिपा रहता है। रायबहादुर लाला सीताराम ने उक्त अन्तर्वेद वाली ताड़ी से उस ताड़ी को समझ लिया, जो राजापुर से आठ कोस यमुना किनारे बतायी जाती है। वे लिखते हैं—"गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के विषय में मतभेद है। कोई कहता है कि उनका जन्म राजापुर के पास हस्तिनापुर में हुआ था जिसे अब हस्तनाव कहते हैं। कोई राजापुर को ही यह गौरव देते हैं। पर अधिक छानबीन से यह सिद्ध हुआ

तारी की महत्ता—तुलसी हुलसी से सम्बद्ध होने के कारण तारी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका गौरव अविनाशराय के शब्दों में, इस प्रकार है—

तारों तें सुकुल बंस तारों तें कुबिल-बंस,
सास ससुर तारे तें तारी महतारी है।
कहै अविनासराय आपु तरी तारयौ बापु,
तारयौ पति रामपुर तारी तारी है॥
अजहूँ हुलसात जो हुलसी बन तेरो नाम
तुलसी सो जायौ पूत जगत अवतारी है।
धन्य मात हुलसी तें मोक्षद्वार-तारे की,
मुमुक्षुन हाथ गहैं तुलसी कम तारी है॥

रामपुर

तुलसीदासजी का जन्म-स्थान

बहुतम प्रमाण—गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में सब से बड़ा अन्तः साक्ष्य सर्वप्रथम श्री बलदेवजी पाण्डे ने खोजकर उपस्थित किया है इसका उल्लेख अयोध्या की चर्चा करते समय हो चुका है। पुनर्विचार के हेतु वह यह है

बानर बिभीषण की ओर के कनावड़े हैं
सो प्रतनु तुले संगु करै अनुचर को।
राखे प्रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि
तुलसी बिहारो पर आयो है घर को॥ क० १२२॥

अन्तिम पंक्ति में तुलसीदासजी ने अपने को राम के घर का बरजाया माना है। किन्तु यह अयोध्या है अथवा अन्य कोई स्थान? श्री बलदेवजी पाण्डे का अभिप्राय अयोध्या से है जहाँ भगवान् रामचन्द्र का जन्म हुआ था।

पाण्डेजी के पक्ष में—पाण्डेजी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने 'रामपुर' शब्द का प्रयोग अयोध्या के लिए 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' में एक दो बार किया और मुरलीधर चतुर्वेद ने भी इसका प्रयोग अयोध्या के लिए और 'श्यामपुर' का मथुरा के लिए अर्थ-गाम्भीर्य के साथ किया है यथा

राम-सखाल-सीता-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर बिहारी॥ वि० २७
पहुँचे दूत रामपुर पावन हरष नगर बिलोकि सुहावन॥ रा० १ २८१ १
तब तब जाइ रामपुर रहहूँ सिंधु सोता बिलोकि सुख लहहूँ॥ रा० ११६ख १३
तुलसीदास नन्ददास भले हैं मुरली धारे।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक चले सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे।
एक रामगाथा लिखी एक भागवत पद कहे॥ १ मुरलीधर

परन्तु तुलसीदासजी ने 'रामपुर' का प्रयोग गंगातीरस्थ रामपुर के लिए भी किया है और मुरलीधर चतुर्वेद ने भी इसका प्रयोग सूकरक्षेत्रान्तर्गत गंगातीरस्थ रामपुर के लिए किया जैसा कि आगामी पंक्तियों से स्पष्ट होगा।

अन्य साक्ष्य—पर अन्य साक्ष्य के आधार पर रामपुर का तात्पर्य सूकरक्षेत्र के रामपुर नामक ग्राम से है जहाँ तुलसीदासजी के पूर्व पुरुष रहते और नन्ददासजी उत्पन्न हुए थे। इस विषय में नन्ददासजी पर नाभादासजी की प्रशस्ति है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस कवित्त बुत बुद्धि भक्ति रस ज्ञान उजागर।
प्रचुर चमत्कारी सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।

चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रमुदित रंग भये ॥

प्रायेश कवि के अष्टसखामृत में उल्लेख इस प्रकार है—

रामभगत तुलसी प्रमुख नंददास ब्रज ख्यात।
पुत्र सनोढिया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदात ॥१॥
कर्यो राम तें स्याम निज बदलि इष्ट अब धाम।
रच्यो स्यामसर बाहुक हरि बलवाक्र बाम ॥३॥
सौंपि अनुज चन्द्रहास कर सुत बारा बय बाल।
आये सूकरखेत तजि तब तजि सेवत स्याम ॥४॥
कृष्ण राम के रूप भये नन्ददास मन आनि।
तजि तुलसी मन तजि रहे प्रान छोरि सुख पानि ॥७॥
रामायन भाषा बिरचि भ्राता करी प्रकास।
देखि रच्यो श्री भागवत भावा श्री नंददास ॥८॥

काका बल्लभजी महाराज ने 'भगवदीय नाम मणिमाला' में लिखा है कि—

नंददास सखा रामपुरी कहीयेरे
सात्विक चंपक लता चंद्रलेखा लहियेरे ॥३०॥

'भावप्रकाश' में हरिराय जी लिखते हैं—

'ये नन्ददास जी लीला में श्री ठाकुर जी के भोज सखा अंतरंग तिनको प्राकट्य है। सो ये पूरब में रामपुर ग्राम में जन्मे।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' काका बल्लभजी के 'बावन वचनामृत' और गोकुलनाथजी के 'वचनामृत' में गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि नन्ददास के भ्रातृत्व का स्पष्ट उल्लेख है। यह सब साहित्य १६४७ वि० और १७७२ वि० के मध्य का है। गोकुलनाथजी के वचनामृत की प्रति १७६६ वि० की है। 'श्री गुसाईंजी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता' इसकी एक प्रति संवत् १६६७ वि० की विद्यमान है। उसमें लिखा है "श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददास सनोढिया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत है। सो ये पूर्व में रहते तिनकी वार्ता। सो ये नन्ददास और तुलसीदास दोइ भाई हते तामें बड़े तो तुलसीदास छोटे नन्ददास।" इस प्रकार उक्त प्राचीन प्रमाणों से स्पष्ट है कि ये दोनों कवि भाई-भाई थे और रामपुर के निवासी थे।

रामपुर कहाँ ?—उक्त १६६७ वि० की प्रति में दोनों कवियों के भ्रातृत्व का उल्लेख तो है पर निवास के सम्बन्ध में इतना ही सूचित किया गया है कि ये पूर्व में रहते थे। यदि तुलसीदासजी और नन्ददासजी अयोध्या के होते तो नगर का उल्लेख अवश्य होता पर रामपुर तो एक छोटा सा ग्राम सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत था अतएव उसका नामोल्लेख आवश्यक न समझा गया। 'अष्ट सखामृत' में 'पूर्व' को अवश्य स्पष्ट कर दिया गया है। पूर्व शब्द श्री चन्द्रबली पाण्डे तथा अन्य कतिपय विद्वानों को खटका और रामपुर का तादात्म्य अयोध्या से करने के लिए उन्हें इस शब्द का बल मिला। 'अष्टसखामृत' में जिसमें केवल आठ ही वैष्णवों की चर्चा है नन्ददास का विवरण देते समय, रामपुर का निर्देश हुआ है। सन्निविष्ट श्यामसर बाहुक आज भी

सूकरक्षेत्रान्तर्गत रामपुर में विद्यमान है। 'भक्तमालामृत' और नाभादासजी के पद में नन्ददासजी के छोटे भाई चन्द्रहास का भी उल्लेख है। सनाढ्य जाति का उल्लेख तो १६६७ वि० की प्रति से लेकर पीछे की सभी वार्ताओं और वचनों की प्रतियों में विद्यमान है। तुलसी और नन्द का भ्रातृत्व एवं 'चन्द्रहास' 'सनाढ्य' 'रामपुर' 'सूकर क्षेत्र' आदि शब्द-समष्टि सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत रामपुर की ही पुष्टि करती है। उक्त वार्ता' 'वचनामृत' आदि की रचना करने वालों ने सोरों के क्या उत्कोच ग्रहण किया था कि वे जन्मस्थान और जाति विषयक उल्लेख में सोरों का पक्षपात करते? वस्तुतः वार्ताओं में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी की चर्चा है। जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण था उसे कान्यकुब्ज जो सारस्वत था उसे सारस्वत जो सनाढ्य था उसे सनाढ्य और जो गौड़ था उसे गौड़ ब्राह्मण लिख दिया गया। हाँ इतना माना जा सकता है कि सम्प्रदाय की महत्ता-वृद्धि के निमित्त नन्ददासजी का उत्कर्ष तुलसीदासजी की अपेक्षा ग्रन्थग्रन्थों में अधिक दिखा दिया गया हो किन्तु नाम जाति और स्थान के उल्लेख में पक्षपात के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

रामपुर की स्थिति तुलसीदासजी का प्रमाण—तुलसीदासजी ने विनयपत्रिका में अपने जन्मस्थान की स्थिति सरयूजी नदी के तट पर बतायी है—

> दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को
> सो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को।
> यह भरत खण्ड सनीप सुरसरि थल भली सपति भली।
> तेरी कुमति कायर कलप बल्ली बहुति बिष फल फली॥ १३६॥

उनकी यह इच्छा बनी रही कि जब-जब उनका जन्म हो तो गंगाजी के तीर ही हो—

> जब जाइहि बार सरीर परौं
> रघुबीर को हूँ तब तीर रहौंगो॥ क० ७, १४७

जब घर के गंगातट का त्याग कर अनेक गिरि काननों में घूमने से भी शान्ति न मिली तो उन्हें कुछ पश्चात्ताप हुआ होगा अतएव लेखनी से निःसृत हुआ :—

> सुखागत सुरसरि बिहाय सठ
> फिरि फिरि बिकल अकाज बिलोयो॥ विनय० २४५

यही कारण है कि उन्होंने विरक्त होकर स्थायी निवास के निमित्त गंगातटस्थ काशी को ही मनोनीत किया—

> चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर
> बाँयें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं।
> जीवे को न लालसा दयालु महादेव मोहि
> मालुम है तोहि बरबाद को रहत हौं॥

कवितावली ७ १६६ १६७

उक्त उद्धरणों से प्रतीत है कि तुलसीदासजी का जन्मस्थान गंगाजी के किनारे था और काशी में उन्होंने मोक्षलाभ किया।

नन्ददासजी के पुत्र का लेख—नन्ददासजी के पुत्र कवि कृष्णदास ने रामपुर

की स्थिति गंगाजी के किनारे और सूकरक्षेत्र के समीप बतायी है तथा उसमें अपने वंश के निवास का उल्लेख किया है —

> क्षेत्र वराह समीप सुचि गाम रामपुर एक ।
> तहँ पंडित मंडित बसत सुकुल बंस सबिसेक ॥१॥
>
> (कृष्णदास बघायली)
>
> कीरति की मुरति जहाँ राजै अघोरख की
> तीरथ वराह भूमि केवल जे पाई है
> जाही गाम रामपुर स्यामसर कीने तात
> स्यामायन स्यामपुर बास सुपदाई है
> सुकुल बिप्रबंस में बिप्र तहाँ जीवाराम
> तासु पुत्र नंददास कीरति कवित्तपाई है ॥ (वपफल)

अयोध्या तो सरयू के, और रामपुर गंगाजी के किनारे है। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि अपने जन्मस्थान के सम्बन्ध में गोस्वामीजी के लेख का अभिप्राय गंगातीरस्थ रामपुर से था।

रत्नावली का साक्ष्य—रत्नावली के दोहों से भी स्पष्ट है कि गंगाजी के किनारे सूकरक्षेत्र में उसके पति तुलसीदासजी की जन्म-भूमि थी। नन्ददास उसके देवर लगते थे और तुलसीदासजी की अनुपस्थिति में रामपुर स्यामपुर बन गया।

> प्रभु बराह पद पुत्र महि जनम लही पुनि एहि
> सूर सरि तट महि स्यामि बस भए धाम प्रिय केहि ॥२२॥
> मोहि दीनो संदेस प्रिय अनुज नंद के हाथ
> प्रेम समुद्रि जानि पृथक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ ॥२७॥
> तनक तनातन कुल सुकुल गेह भयो प्रिय स्याम
> रत्नावलि आवा यहै तुम बिन जन सम गाम ॥२७॥

मुरलीधर चतुर्वेद की स्पष्ट उक्ति—मुरलीधर चतुर्वेद ने १८२९ वि० में जो लिखा वह विषय को और भी अधिक स्पष्ट कर देता है—

> स्वारत वैष्णव सो पुनीत सकल वेद आगम प्रतीत ।
> चक्र तीर्थ द्विज पाठशाल तहाँ पढ़ावत विपुल बाल ।
> तहाँ रामपुर के समाढ्य सुकुल बंसधर पुनाढ्य ।
> तुलसीदास अरु नन्ददास पढ़त करत विद्या विलास ।
> एक पितामह पौत्र दोउ चंद्रहास लघु अपर सोउ ।
>
> (रत्नावली चरित ६० ६४)

तुलसी और नन्द दोनों एक ही बाबा के पौत्र थे। नन्द और चन्द्र दोनों सगे भाई थे। उनके पुत्र पुरुष रामपुर में रहते थे। बाबा के घर में ही तुलसीदास और नन्ददास का जन्म हुआ था जैसा कि मुरलीधर के इस उल्लेख से स्पष्ट है—

> एक पितामह सहन दोउ जनमें बुधिरासी ।
> दोऊ एकहि गुरु पढ़ि हुए बुध बलेवासी ।

तुलसीदास नन्ददास भले हैं पुरली धारे।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर नहीं रहे।
एक राम गाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥१॥

पुरलीधर को रामपुर की इकता के विषय में भ्रान्ति रही हो यह बात नहीं। उन्होंने स्वयं (अपने हाथ से) कृष्णदास बखावली की प्रतिलिपि की थी जो उनकी 'रत्नावली चरित' नामक पुस्तिका के साथ एक ही जिल्द में सम्मिलित है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कृष्णदासजी ने रामपुर ग्राम की स्थिति गंगातीरस्थ बराह क्षेत्र के निकट बतायी है।

रामपुर-यात्रा—यद्यपि मैं श्यामायन के दर्शन दो बार कर चुका था, तथापि श्यामपुर तक (जिसे पहले रामपुर कहते थे) आगे बढ़ने का अवसर दोनों बार मुझे प्राप्त न हो सका। अतएव अपने पूर्वविद्यार्थी श्री भगवानसिंह को साथ लेकर, मैं २ जून १९५४ को काशगंज से सोरों रेल के द्वारा और वहाँ से पैदल दो मील के लिये चल दिया। बीच में श्यामायन और श्यामसर का साधारण निरीक्षण करते हुए श्यामपुर पहुँचकर हमने जनसम्पर्क किया। श्यामपुर में पं० रामसहायजी रहते हैं उनके चार पुत्र हैं। पहले पं० सूबेदार, दूसरे पं० हरप्रसाद तीसरे पं० रामस्वरूप चौथे पं० रामभरोसे हैं। प्रथम दोनों पुत्र अपने पिता के पास श्यामपुर ही रहते हैं। संयोगवश रामसहायजी उस समय बाहर गये हुए थे। सूबेदारजी और हरप्रसादजी ने बताया कि गोस्वामी तुलसीदास इसी ग्राम के रहने वाले थे और यही उनकी जन्म भूमि है जैसा कि उन्होंने अपने पिताजी से सुन रखा था। उनका तथा अन्य कतिपय श्यामपुर-निवासियों का जो चित्र लिया गया उसमें यज्ञोपवीत धारण किये हुए श्री सूबेदार हैं और अँगोछेवाले श्री हरप्रसाद हैं।

निष्कर्ष—सोरों-काशगंज के बिच ग्रंथ[1] की धारणा है कि गोस्वामीजी सूकर क्षेत्र में उत्पन्न हुए। सूकरक्षेत्र का क्षेत्र पंचयोजन चारों ओर है और इस प्रकार रामपुर ग्राम जो सोरों से डेढ़ दो मील है उसके अन्तर्गत है। किन्तु यदि सूकरक्षेत्र का तात्पर्य केवल सोरों की वर्तमान बस्ती अथवा उसके योगमार्ग मोहल्ले से है, तो धारणा ठीक नहीं। सोरों का महत्त्व बढ़ाने के लिए 'तुलसी प्रकाश' में तुलसीदासजी का जन्म सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में बताया गया है। पुरलीधरजी के छप्पय में 'सदन' शब्द का अर्थ 'घर' या 'मकान' न करके 'धरामा' अथवा 'क्षेत्र' किया जाता है। यह उचित नहीं। पुरलीधरजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे जैसा कि उनके संस्कृत श्लोकों से विदित है। वे 'सदन' शब्द का अर्थ खूब समझते थे। श्री महादेव प्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है कि तुलसीदासजी की जन्म स्थिति तारी में हुई थी यह उन्होंने किसी प्राचीन जनश्रुति के आधार पर लिखा है और ठीक भी प्रतीत होता है। 'तुलसी प्रकाश' के अनुसार श्री गोस्वामीजी की माता हुलसी लगभग पाँच मील की दूरी पर तारी ग्राम की पुत्री थी और उनके पिता आत्माराम एक वर्ष तारी में रहे

---

१ पं० लेखिनरसिंह तथा पं० महदत्त शर्मा, एवं पं० देवदत्त शर्मा।

भी अतएव वहाँ पर्म स्थिति असम्भव नहीं। तुलसी के माता की मृत्यु के पश्चात् तुलसी के माता पिता रामपुर चले आये वहाँ उनका जन्म हुआ। जन्म होने के पश्चात् गोस्वामीजी सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में चले गये। पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट को तुलसी-स्मारक सभा (राजापुर) के अधिकारी ने जो लिखी पत्र भेजा था उसमें लिखा है कि 'गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए'। डॉ० मनीरथ मिश्र का निष्कर्ष ठीक ही है कि 'जन्मभूमि न तो राजापुर ही है और न सोरों ही वरन् सोरों या सूकरक्षेत्र के पास कोई स्थान गोस्वामीजी की जन्मभूमि हो सकती है।'[1] वह स्थान सोरों के निकट रामपुर है।

सोरों वाला रामपुर ही क्यों? उत्तर में निवेदन है कि स्वयं गोस्वामीजी की उक्ति-समष्टि का निर्णय। गोस्वामीजी का उल्लेख है कि मैंने गंगाजी के तट पर राम के घर जन्म लिया। उनकी कामना रही कि जब जब मेरा जन्म हो तो गंगाजी के किनारे और राम भक्ति प्राप्त हो। राम-जन्म स्थल-वाहिनी सरयू से उन्हें इतनी ममता नहीं थी। रामलला नहछू में भी गंगाजल के प्रति ही उनकी बाल्यकाल-निगूढ़-श्रद्धा यों ही प्रस्फुटित होती है —

> कनक कलसी गंगाजल भरी लाइय।
> चंदन चौका पुराइ प्रभु को नहवाइय॥

उन्होंने कवितावली में प्रकट किया—

> तुलसी बिहारो घर बापी है घर की॥७ १२३॥

और विनयपत्रिका में स्पष्ट किया—

> दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको
> जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को
> यह भरत खण्ड सनीप सुरसरि बास बली संपति भली॥१३५॥

जब कभी तुलसीदासजी ने 'रामपुर' का उल्लेख स्वयं किया अथवा उन्हें अन्य किसी रामपुर नामक स्थान के वर्णन करने का अवसर मिला तो उन्हें किसी निगूढ़ हर्ष सुख अथवा किसी सात्विक भाव का अनुभव अवश्य हुआ। 'विनय पत्रिका' और 'बरवै रामायण' में तुलसी की भावना गंगा-तीर और रामपुर के लिए कैसी उत्कट है—

> भरत कहत सब-सब कहँ सुमिरहु राम।
> तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम॥
> तुलसी रामनाम सम मित्र न आन।
> जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान॥
> नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
> जनम-जनम रघुनंदन तुलसिहिं देहु॥
> जनम-जनम जहँ-जहँ तनु तुलसिहिं देहु।
> तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु॥ बरवै ७ ६५, ६८
> जब बारहिं बार सरीर परी।
> रघुबीर को ह्वै तब तीर रहौंगी॥ क० ७, १४७

---

१. तुलसी स्मारक पृष्ठ ६६।

यदि सरयू और अयोध्या में गोस्वामीजी का इतना गहरा लगाव होता तो वे गृहत्याग के उपरान्त १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ अयोध्या में कर, वृद्धावस्था व्यतीत करने और मरने के लिए काशी का सेवन न करते। सोरों और सन्निकट रामपुर में पुनः आ बसने से तो लोकाचार सम्बन्धी झेंप का जटिल प्रश्न उत्पन्न हो सकता था किन्तु अयोध्यावास करने में तो कोई आपत्ति न होनी चाहिए थी। वातावरण जैसा काशी का वैसा अयोध्या का था स्यात् अयोध्या का अपेक्षाकृत अनुकूल भी। जब जीवन-काल में ही वे अपना शरीर अयोध्या को भेंट न कर सके तो मृत्यु के पश्चात् उसे वहाँ पहुँचवा देने की लालसा असंगत प्रतीत होती है। तुलसीदासजी का राम प्रेम संकीर्ण न था उनके राम तो अयोध्यावासी दशरथ-नन्दन और भगवान् विष्णु के अवतार ही नहीं अपितु निर्गुण-सगुण एवं तदतीत परमातिपरम सत्ता हैं, जो अयोध्या में रहते हुए भी भगवान् शिव के हृदय में एवं अन्यत्र सर्वत्र विराजते हैं। वे शिव हृदयवासी राम को गंगाजी के किनारे अधिक चाहते थे। यदि सोरों में गंगातट पर सोमेश्वर नाम के हृदय में राम विराजते थे तो काशी में गंगातट पर बिन्दुमाधवजी के हृदय में राम थे। तुलसी के लिए दोनों स्थान पवित्र थे एक का लगाव था जन्म से तो दूसरे का मरण से। तुलसीदासजी अपनी पत्नी भाई और भतीजे के आग्रह को टालते रहे। उन्हें अपने आवेश पर कुछ पश्चात्ताप भी हुआ होगा जैसा कि उनके उन कतिपय वचनों से विदित होता है जिनकी चर्चा अन्यत्र की गयी है। पर जो हो गया वह हो गया। सोरों में रामपुर नामक अपनी जन्मभूमि को न भेंट आने के लिए वे लोकाचार के कारण विवश थे पर उनका यह तो करुणा के द्वारा हो आ सकता था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू की धर्मपत्नी का देहान्त हुआ योरुप में और अन्तिम संस्कार तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी तट पर। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब उसकी स्मृति जन्मस्थान और बाल्यकाल की घटनाओं की ओर ललचाती है। अतएव गोस्वामीजी के द्वारा मंगातीरस्थ रामपुर का उल्लेख मार्मिक एवं स्वाभाविक है।

आविर्भाव-तिरोभाव

(क) जन्म-संवत् बहुल्लेख

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-संवत् के विषय में निम्नलिखित छः उल्लेख हैं :—

१५५४ वि०—'मूल गोसाईं चरित' के कर्ता वेणीमाधवदासजी गोस्वामीजी की जन्म-तिथि लिखते हैं—

पन्द्रह सौं चउवन विषे कालिंदी के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी धरउ सरीर॥

इसमें तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं है अतएव इसकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता था। परन्तु वेणीमाधवजी आगे लिखते हैं—

तिनके घर द्वादस मास परे
जब कर्क के जीव हिमासुधरे
कुज सप्तम अष्टम भानुतनय
अभिजीवित अति सुन्दर सौम्य समय।

इस पर दो आपत्तियाँ हैं प्रथम तो यह कि गोस्वामीजी तुलसी के गर्भ में द्वादश मास नहीं केवल दश मास ही रहे। तुलसीदासजी स्वयं विनयपत्रिका में लिखते हैं—

गर्भ-वास दस मास पालि पितु मातु कष्ट हित कीन्हों ॥१०१॥

दूसरे तिथि का जो विस्तार किया गया है वह शुद्ध नहीं उतरता जैसा कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने गणना करके बताया है।[1]

'मानस मयंक' के रचयिता ने भी उक्त संवत् इस प्रकार माना है :—

४ ५ ५ १

नभ अम्बर कर जानिये सर कर कीन्हें एक।
तुलसी प्रकटे रामवत राम जनम की टेक॥[2]

यदि १५५४ वि० ठीक मान लिया जाय तो गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष होती है। उन्होंने 'रामचरितमानस' १६३१ वि० में अर्थात् सतहत्तर वर्ष की अवस्था में लिखा जो पं० रामनरेश त्रिपाठी और डॉ० माताप्रसाद गुप्त को असम्भव सा लगता है इसी प्रकार १६६९ वि० में अर्थात् एक सौ पन्द्रह वर्ष की अवस्था में पंचायत नामे पर मंगलाचरण लिखना भी। १२६ वर्ष की अवस्था असम्भव तो नहीं बाहर के देशों में १५० वर्ष के कुछ लोग जीवित सुने गये हैं। जिला बुलन्दशहर के अनूप शहर में भी तोताराम और उनकी पत्नी क्रमशः १११ और १०० वर्ष के जीवित थे जैसा कि मई १९५७ की 'चेतावनी' से विदित हुआ है। पोला पोकर्णनाथ के तीर्थ

---

१ तुलसीदास, पृ० १९९ तथा २०९-२११ तृतीय संस्करण।
२. तुलसी और उनका काव्य पृष्ठ ५२।

मोहल्ले में मेरे सन्निकट धर्मशाला के अध्यक्ष श्री जिन्द बाबा १९५८ ई० में ११० वर्ष के थे। मुझे उनके दर्शन करने का सौभाग्य हुआ वय के हेतु उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था वे पदम चलते-फिरते और भजन करते थे। इंगलैंड के स्व० बर्नार्ड शॉ तो नब्बे वर्ष की अवस्था में लिखते पढ़ते थे। यदि गोस्वामीजी ने १२६ वर्ष की अवस्था पायी तो यह असम्भव नहीं। हाँ यह अवश्य माना जा सकता है कि इतनी दीर्घ आयु बहुत कम होती है, अतएव सम्भावना न्यूनातिन्यून है। परन्तु जब सं० १५५४ वाली जन्म-तिथि ही प्रमुख है तो सम्भावना का और भी अधिक ह्रास हो जाता है। श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में जन्म-संवत् १५८३ वि० माना है और १५५४ वि० का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उनकी सूचना का आधार तो गोसाईं चरित है जिससे उन्होंने एक उद्धरण भी उपस्थित किया है। अतएव १५५४ की धारणा भ्रान्त और स्वतः विरोधात्मक है।

१५६० वि०—स्व० जगन्मोहन वर्मा ने गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५६० माना है। उनके मत का आधार है रामगुलावली की निम्नलिखित पंक्ति —

पवन तनय सो सन कहो पाँच बीस अब बीस।

इसको जन्म-संवत् मान लेने से गोस्वामीजी की आयु १२० वर्ष की होती है। यह भी दीर्घ आयु है जिसके सम्बन्ध में वैसी ही सम्भावना-न्यूनता है जैसी कि १५५४ वि० के विषय में। डॉ० माताप्रसाद ने 'रामगुलावली' का निरीक्षण भली-भाँति किया है और उसकी शैली विचारधारा और छन्दोयोजना के आधार पर उनका विश्वास है कि यह गोस्वामीजी की कृति नहीं है। इसके अतिरिक्त 'पाँच बीस अब बीस' का अर्थ ५+२०+२०=४५ हो सकता है। यदि इसका अर्थ २०×५+२०=१२० किया जाय तो डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार, यह पंक्ति गोस्वामीजी ने १२० वर्ष की अवस्था के पश्चात् लिखी होगी।[1] अतएव इस जन्म संवत् का उल्लेख केवल अनुमान के बल पर है।

१५८३ वि०—शिवसिंह सेंगर ने गोस्वामीजी का जन्म-संवत् १५८३ माना है। वे 'शिवसिंह सरोज' में लिखते हैं 'यह महाराज स० १५८३ के समकक्ष उत्पन्न हुए थे'।[2] सेंगरजी ने अपनी सूचना का आधार 'गोसाईं चरित' लिया है और उससे एक उद्धरण भी दिया है। गोसाईं चरित' में तो १५५४ वि० दिया है अतएव इसका उल्लेख न कर उन्होंने १५८३ वि० का उल्लेख क्यों किया? हो सकता है कि उन्होंने १५५४ वि० को उचित न समझकर उसे त्याग दिया अथवा उनके सामने 'गोसाईं चरित' का कोई पुराना संस्करण रहा हो जिसमें जन्म-संवत् का उल्लेख न किया गया था और जिसका अद्यतन (अप्डेट) संस्करण मूल गोसाईं चरित' के नाम से पीछे हुआ हो। अस्तु सं १५८३ वि का उल्लेख किसी जनश्रुति के अथवा अनुमान के आधार पर हो सकता है जिसकी पुष्टि किसी अन्य प्रमाण से नहीं होती। इस संवत् के सम्बन्ध में वे तथाकथित असम्भावनाएँ नहीं हैं जो पहली और दूसरे के सम्बन्ध में दीर्घ आयु के कारण थीं।

---

१ तुलसीदास पृ १११।
२ शिवसिंह सरोज, पृ ४२०।

१५८९ वि०—ग्रियर्सन ने 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' में १५८९ संवत् का उल्लेख इन शब्दों में किया है कि सब से अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म १५८९ वि० में हुआ'। पर उन्होंने यह नहीं बताया कि वे विश्वस्त विवरण कौन से हैं। तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग के पृष्ठ १८ पर उल्लेख है कि स्व० रामगुलाम द्विवेदी अपने को गोस्वामीजी की शिष्य-परम्परा में और वे १५८९ वि० को उनका जन्म संवत् मानते थे। ग्रियर्सन की पुष्टि तुलसीसाहब की 'घट रामायन' से भी होती है। यदि ग्रियर्सन महोदय को घटरामायन-प्रदत्त जन्म-तिथि का ज्ञान होता तो वे पूरी जन्मतिथि और उसके आधार का उल्लेख करते, अतएव उनका आधार अनुमित ही होगी। तो क्या 'घटरामायन' के उल्लेख का आधार ग्रियर्सन का लेख है? हो सकता है क्योंकि घट रामायन' की प्राचीनतम पाण्डुलिपि १८४२ संवत् अर्थात् १८९९ ई० की है। घट रामायन' में लिखा है —

संवत् पंद्रा सै नवासी। भादौं सुदी मंगल एकादसी (पृ० ४१६)

इस पुस्तक में सात तिथियों का उल्लेख है जिन में से चार में वार का उल्लेख नहीं अतः उनका परीक्षण नहीं हो सकता। अन्य तीनों में वार का उल्लेख है इस से उनका परीक्षण हो सकता है। डॉ० माताप्रसाद ने सब का परीक्षण स्वयं किया है और उनकी गणना से जन्मतिथि को छोड़ कर अन्य दोनों तिथियाँ विगत या वर्तमान किसी भी प्रणाली से शुद्ध नहीं। जन्म तिथि भाद्रपद शुक्ला ११ मंगलवार सं १५८९ शुद्ध प्रतीत है।[1] पर यह विचारणीय है कि सभी परीक्षणीय तिथियों में मंगलवार का ही उल्लेख है और अनेक विद्वान् 'घट रामायन' के उस परिशिष्ट को जिसमें तुलसीदासजी का विवरण दिया गया है प्रक्षिप्त मानते हैं।

श्री चन्द्रबली पाण्डे का झुकाव १५८९ के पक्ष में है। वे लिखते हैं उपलब्ध सामग्री में मूँड मारने से जो कुछ सूझ पड़ा उसका निष्कर्ष यह निकला कि तुलसी का आविर्भाव हुमायूँ के शासन में सं० १५८९ में अयोध्या में हुआ'। पाण्डेजी ने अपने कथन की पुष्टि में लिखा है कि १५७३ में बाबर का सिपहसालार मीर बाँका राजा साँगा की हार के कारण भगवान् राम के जन्म-स्थान पर बाबरी मसजिद का निर्माण हुआ जिसमें गोस्वामीजी कभी बैठे हों ऐसा कि उन्होंने लिखा है —

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो
लैबो को एक न दैबो को दोऊ॥ क० उ० १०६॥

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं पाण्डेजी को अपने तर्क पर विश्वास कम था। उनके कथन हैं कोई चाहे तो १५७३ को भी तुलसीदास की जन्मतिथि मान सकता है अन्यथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त को मान्य है सं० १५८९ ही'। पर गोस्वामीजी का जन्म अयोध्या में नहीं अन्यत्र हुआ था जैसा कि अन्यत्र विवेचन हुआ है। तीरों में मुसलमानों का सान्निध्य था और वहाँ भी मसजिदें उपलब्ध थीं। अतएव पाण्डेजी के विश्वास में और भी न्यूनता हो जानी चाहिए थी।

१६०० वि०—'ए स्केच ऑव द रिलिजस लिटरेचर ऑव द हिन्दूज' में विलसन

---

१ तुलसीदास पृ० ४४ और ५१६ ५१९।

का लेख है कि तुलसीदासजी ने इकतीस वर्ष की अवस्था में 'रामचरितमानस' का लिखना प्रारम्भ किया।[1] तर्क कुछ इस प्रकार हो सकता है १६३१—३१=१६०० अर्थात् १६०० वि० में गोस्वामीजीका जन्म होना चाहिए। पार्सी व ताशी ने भी इस विषय में बिलसन का अनुसरण किया है। गौतम चन्द्रिका के अनुसार १६०० वि० उपलब्ध होता है।[2] पर डॉ०माताप्रसाद गुप्त को यह संवत् इसलिए ठीक नहीं प्रतीत होता कि केवल ३१ वर्ष की अवस्था में 'रामचरित मानस' जैसे विद्वत्तापूर्ण महान ग्रन्थ का प्रणयन असम्भव जान पड़ता है। महापुरुषों के लिए ऐसी बात असम्भव तो नहीं क्योंकि स्वामी शंकराचार्य ने तो कहते हैं सब कार्य ३१ वर्ष की अवस्था तक कर डाला था और 'गौतम चन्द्रिका' का प्रामाण्य सन्देहातीत नहीं।[3] पर सं० १६०० हमें भी ग्राह्य नहीं क्योंकि अन्य प्रमाणों से इस संवत् की संगति नहीं बैठती। सोरों-शासनी के अनुसार गोस्वामीजी १६०४ वि में सोरों छोड़ कर चले गये थे जबकि उनकी पत्नी २७ वर्ष की थी। अतएव उसके अनुसार उस संवत् में तुलसीदास को भी कम से कम २७ वर्ष का होना चाहिए।

१५६८ वि०—जन्म-संवत् के सम्बन्ध में छठा उल्लेख अविनाशराय के 'तुलसीप्रकाश' में इस प्रकार —

राम राम उच्चार महा तक सत सावन मास
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषत बिसाखा बास ॥२५॥

इसके अनुसार तुलसीदासजी का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार शक संवत् १४३३ (तदनुसार १ अगस्त १५११ ई०) में हुआ। उस समय विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। तिथि वार नक्षत्र आदि गणना से शुद्ध हैं। परन्तु जैसा कि मैंने 'तुलसी प्रकाश' की आलोचना में प्रकट किया है यह पुस्तक संदिग्ध है और इसकी कुछ तिथियाँ अशुद्ध भी हैं। अतएव यह प्रमाण भी सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। इसके माने लेने से गोस्वामीजी की आयु ११२ वर्ष की बैठती है। 'रामचरितमानस' साठ वर्ष की अवस्था में लिखा गया होगा और पंचायतनामे की चौपाइयाँ निन्यानवे वर्ष की अवस्था में।

यद्यपि मुझे 'तुलसीप्रकाश' का प्रामाण्य सर्वथा स्वीकृत नहीं तथापि मैंने उटकमण्ड के सरकारी एपिग्राफिस्ट से विदित किया कि श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार १५६८ वि० को ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी —सप्तमी का प्रारम्भ गुरुवार को १८ पर और अवसान शुक्रवार को २४ पर हुआ था। उस दिन मघा नक्षत्र में सिंह

---

१ ५ ४१।

२ (क) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृ० २ ४ रामखेलावन शुक्ल और मार्तण्ड मिश्र कृत हिन्दी भवन १९५६।

(ख) सोरह अनुमान अनी बर तुलसी सहित कुमार। राम राम कहि तिन्ह ही अनी तेज बिन बार॥

तबहि सोरह सौ बहत्तरी तुलसी बरसी अनी प्रकासी। सावन कृष्ण तीज तिथि सोमै वह गौतम चन्द्रिका पूर्व। गौतम चन्द्रिका में तुलसीदास का वृत्तान्त, श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २० ३२।

३ गौतम चन्द्रिका का अवतरण टिप्पणी में अन्यत्र दिया गया है।

राशि पर सूर्य १°२ चल चुका था चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में तुला के २१ ६ पार कर चुका था। मंगल पुष्य में कर्क के ८°६५°, बुध वक्री होकर मघा में सिंह के १०°२ गुरु वक्री होकर शतभिषा में कुम्भ के ७°२°, शुक्र पूर्वाफाल्गुनी में सिंह के १५ ८°, और शनि चित्रा में कन्या के २७°७° पार कर चुका था।

जन्म के समय विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। अतएव उक्त आधार पर तीन जन्मपत्रियाँ सम्भव हैं, जिनमें से तीसरी तुलसी की जीवन घटनाओं का समर्थन करती है —

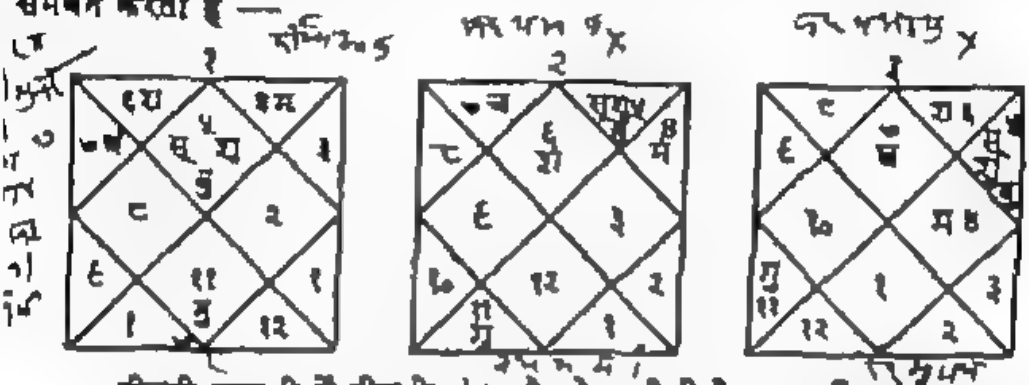

तीसरी कुण्डली में नीच के मंगल ने गोस्वामीजी के माता पिता और पुत्र का अपहरण कर लिया। पंचम स्थान में गुरु और ग्यारहवें में शुक्र विद्या और काव्यशक्ति प्रदान करते हैं और शुक्र दीर्घ जीवन भी प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त एक विचित्र संयोग का उल्लेख करने के लिए मुझे आन्तरिक प्रेरणा हो रही है। वह यह है यदि तुलसीदासजी का जन्म-संवत् वास्तव में १५६८ वि० था तो उनकी निम्नलिखित उक्ति उन्हीं के जीवन पर यथार्थ घटती थी है :

जनमें एक संग्रह हूँ रामचरन सहतीन
तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मती प्रवीन ॥

सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी ने सं० १६०४ में गृह-त्याग किया, तब वे (सं० १६०४—१५६८ अर्थात्) ३६ वर्ष के थे। जब उन्होंने अयोध्या में भगवान् राम के चरणों में बैठकर 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया तो वे (सं० १६३१—१५६८ अर्थात्) ६३ वर्ष के थे।

(ख) मृत्यु १६८० वि०

गोस्वामीजी के देहावसान का संवत् १६८० है। इस विषय में कोई मतभेद नहीं है। श्रावण मास में वे दिवंगत हुए यह बात भी मतभेद रहित है। पर श्रावण के किस पक्ष में और किस तिथि को इस विषय में मतभेद अवश्य है।

श्रावण कृष्णा तीज—'मूल गोसाईं चरित' में बेनीमाधवदासजी गोस्वामीजी की मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में लिखते हैं

।। । सि असी असी गंग के तीर
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तजे सरीर

'मौक्तिक चन्द्रिका' में लिखा है—

सोरह सतु सतु असी सय तुलसी सहित सुजान।
राम राम कहि बिरा हूँ, असी गंग किय बास ॥

और उक्त 'गौतम चन्द्रिका' में तुलसीदासजी की वर्षी के विषय में मूल गोसाईं चरित की पुष्टि का आगे यह उल्लेख है

संवत सोरह सौ एकासी तुलसी बरषी असी प्रकासी
सावन कृष्ण तीजि तिथि पाई, यह गौतम चन्द्रिका पुराई ॥

'गौतम चन्द्रिका' के लेखक ने वार का उल्लेख कहीं नहीं किया अतएव इस तिथि का परीक्षण सम्भव नहीं। परन्तु जैसा कि द्वितीयाध्याय में बताया जा चुका है वार का अनुल्लेख सुचिन्तित है। अस्तु। तुलसीदासजी ने सं० १६८० की श्रावण कृष्णा तीज शनिवार को स्वर्गलाभ किया। श्री विजयानन्द त्रिपाठी अपने मानस की भूमिका में सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी के मित्र टोडर के उत्तराधिकारी गोस्वामीजी की स्मृति में इस तिथि को सीधा बाँटते और वर्षी मनाते हैं यद्यपि गणना से उन्होंने यह तिथि अशुद्ध ही मानी है।[1] श्री रजनीकान्त शास्त्री भी स्वतन्त्र गणना कर के इसी निश्चय पर पहुँचे हैं।[2] मैंने इस तिथि का परीक्षण भारतीय पुरातत्त्व विभाग के उप-कर्णधार डॉ० एन० पी० चक्रवर्ती से कराया और उन्होंने भी यही निर्णय दिया कि यह तिथि गणना से ठीक नहीं उतरती।

श्रावण शुक्ला सप्तमी—प्रचलित तिथि निम्नलिखित जनश्रुति में विद्यमान है—

संवत् सोरह से असी असी गंग के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥[3]

इस तिथि का उल्लेख 'श्रावण श्यामा तीज शनि' की अपेक्षा प्राचीनतर है पर वार का उल्लेख न होने से इसका परीक्षण नहीं हो सकता। लोक में यह बात प्रचलित है कि गोसाईंजी की जो मृत्यु-तिथि है वही उनकी जन्म-तिथि भी थी। बाबा बेनी माधवदास और अविनाशराम दोनों के ही अनुसार जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी है।

पंद्रह से चउवन विषे कालिन्दी के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर ॥ मूल गो०॥
राम राम सावर मही शकसित सावन मास
रवि तिथि भृगु दिन तुलिय वह नवत बितावा मास ॥ तु० प्र० ॥

और अनुभूत दोहाई है

श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।

एक ओर जनश्रुति की रक्षा और दूसरी ओर टोडर-कुटुम्ब की परम्परा। व्यक्ति तो विस्मृति आदि के कारण इतने लम्बे काल में धोखा खा सकता है पर जनश्रुति तो बहुत से लोगों की जिह्वा पर विराजती रहती है। अतएव मेरा झुकाव 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' की ओर ही है।

---

१ तुलसीदास, पृ० २८६ और ३१४ १६।
२ कालन मीमांसा पृ ८६ ८४।
३ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायणम्' में श्री रघुवंश शर्मा-कृत श्री गोस्वामी तुलसी राम चरितामृत पृ ४३।

आकृति-प्रकृति

(क) वर्णाकृति

गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' में अपने सम्बन्ध में लिखा है—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को ॥१३५॥

हौं सुवरन सुवरन कियो ॥२६६॥

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि तुलसीदासजी शरीर से सुन्दर और और वर्ण के थे। पुरुषोत्तम चतुर्वेदी ने उनके विषय में रत्नावली-चरित में लिखा है कि वे गौर वर्ण के थे

गौर बरन विद्या निधान। विविध शास्त्र पंडित महान ॥६६॥

'प्रेम रामायण' भी ऐसा ही कहती है —

गौरं 'रा' पदमात्र संभवकलोम्भुद् भूतरोमाङ्कुर

कल्पं श्री तुलसी प्रकल्प पुटिका मासं पठी शालिनम्

बारंबारमिदं पदं 'मरतु मे दास' इति पाठं स्वरम्

गायन्तं नर कपिर्च कम्पितं वंदे प्रभावं हितम् ॥[1]

अविनाशराय ने 'तुलसी प्रकास' में शिशु तुलसीदास के विषय में लिखा है —

गोरो तन मुख भार छवि, सुलक्षन बाहु बिसाल ॥२६॥

और राजापुर में निवास करते हुए बीरराय तुलसीदासजी का चित्रण उक्त 'प्रकास' में इस प्रकार हुआ है —

सुन्दर सुजान मतिमान आजान बाहु

भक्त भव प्रधान तेहि पासे मास मानिये ॥

मान परहीन हरि ध्यान लवलीन कवि

विषय विकार हीन छीन तिय जानिये ॥

मुंडित सीस मुच्छ सो सेत सेत केस बेस

चीन देह सूख कटि मोर त्यों बखानिये ॥

कहै अविनास मास तिलक तुलसिदास

सेत कटि अवोवास तासु पहचानिये ॥१६३॥

'गीतम चन्द्रिका' के अनुसार —

अतन मधुकरी कपिस पट तिपा सुभ जंघान।

करति तुलसिका मान सुचि रुचि रुचि सेवनी प्रधान ॥

---

[1] मानस' की रूपी भूमिका, पृष्ठ १ ।

(क) चित्र

गोस्वामी तुलसीदासजी के उपलब्ध सभी चित्र उक्त विषय के अनुरूप हैं। कुछ चित्र ऐसे भी हैं जो कला की दृष्टि से अथवा अन्य किसी कारण से प्रामाणिक नहीं समझे जा सकते। अतएव इस विषय में कुछ विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

मुख्य चित्र—वाराणसी के भारत-कला भवन के उपाध्यक्ष श्री उदयशंकर शास्त्री ने डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास के चित्रों के सम्बन्ध में बहुमूल्य परामर्श दिया। वे संख्या (१) से (८) तक इस प्रकार सूचित करते हैं—

(१) प्रह्लाद घाट पर गोस्वामीजी का एक प्राचीन चित्र है जो सम्राट् जहाँगीर का बनवाया हुआ बताया जाता है। शैली के अनुसार तो वह चित्र जहाँगीर कालीन नहीं होना चाहिए, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ का अवश्य है। उस्ताद रामप्रसाद ने उसकी एक प्रतिकृति प्रस्तुत की जो रामकृष्णदास जी के निजी संग्रह में है और इसी की प्रतिकृति उत्तर प्रदेश के संग्रहालय में भी है।

(२) उक्त चित्र से मिलता-जुलता एक चित्र कला भवन में है जो सत्रहवीं शती के अन्त एवं अधिक से अधिक अठारहवीं शती के आरम्भ से इधर का नहीं हो सकता। यह चित्र और प्रथम संख्यक चित्र दोनों एक ही मूल पर अवलम्बित हैं।

(३) मानिक-बन्धुओं के संग्रह में भी एक चित्र है जिसका समय अठारहवीं शती के पश्चात् नहीं हो सकता। वह भी चित्र-संख्या एक या दो के मूल पर अवलम्बित है। इस प्रकार ये तीनों ही चित्र किसी एक मूल की परम्परा में हैं।

(४) भारत-कला भवन में जो सचित्र किन्तु अपूर्ण 'बाल काण्ड' है और जिस का समय अठारहवीं शती का प्रारम्भ है उसमें गोस्वामीजी का जो चित्र है उसका साम्य चित्र संख्या एक और दो से है।

(५) काशीराज के यहाँ 'रामायण' की एक सचित्र प्रति है जो अठारहवीं शती की है। इस में गोस्वामीजी का जो चित्र है वह संख्या एक और दो के समान है। काशी में अठारहवीं शती की लिखी की हुई 'रामचरित मानस' की कई प्रतियों में तथा अन्य ग्रन्थों में भी उसी अनुहार के चित्र मिलते हैं।

(६) सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'रामचरितमानस' के अपने सम्पादित संस्करण में गोस्वामीजी का जो चित्र दिया है वह उन्हें अयोध्या के किसी अखाड़े से प्राप्त हुआ था। यह चित्र उसी समय का प्रतीत होता है जिसका सम्बन्ध उपर्युक्त चौथे चित्रों से है।

स्थान्य चित्र—(७) असी घाट पर गोस्वामी तुलसीदास के निवास-स्थान में एक दाढ़ी वाला चित्र मिलता है किन्तु वह आधुनिक है जिसे पिछले चालीस वर्ष के भीतर उस्ताद रामप्रसाद के भतीजे ने उस स्थान के महन्त स्वामी नारायण की इच्छानुसार जिन से चित्रकार की मैत्री थी बनवाया था। उन्हीं के देने से प्रतीत चित्रकार ने संख्या १ पर दाढ़ी का आरोपण कर दिया था। स्थान देने से प्रतीत

होता कि इस दाढ़ी वाले चित्र के भीतर वही हनु सन्निहित है जो चित्र संख्या एक में विद्यमान है। इस प्रकार दाढ़ी की यह कल्पना चालीस वर्ष के भीतर की है अतएव गोस्वामीजी के चित्रों पर विचार करते समय सर्वथा त्याज्य है।

व्यंग्य चित्र—(८) डॉ० कुमार स्वामी ने इण्डियन ड्राइंग नामक अपनी पुस्तक में एक व्यंग्य चित्र दिया है जिसमें कई मैप्पल हैं। उस में गोस्वामीजी का जो चित्र है वह चित्र संख्या १ का विडम्बन है।

छपे चित्र—(९) (क) डॉ० श्यामसुन्दरदासकृत और इण्डियन प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हिन्दी भाषा और साहित्य में एक चित्र है जिसमें गोस्वामीजी अधेड़ अवस्था के प्रतीत होते हैं। वे गले में कण्ठी और दो मालाएँ कन्धे पर लम्बा यज्ञोपवीत और दुपट्टा दाहिने हाथ में एक माला मस्तक वक्षःस्थल उदर और भुजाओं पर केवल एक-एक तिलक तथा कटि में अंगरखा धारण किये पेड़ के नीचे कुशासन पर, सुखासन-पूर्वक समधु रहित विराजमान हैं।

(ख) डॉ श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीतम्बर बड़थ्वालकृत तथा हिन्दुस्तानी एकादमी द्वारा प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तक के चित्र में गोस्वामीजी के सिर पर घनी चोटी है दाढ़ी मूछ नहीं है। वे गले में एक कण्ठी और दो मालाएँ, दाहिने हाथ में माला दक्षिण स्कन्ध पर दुपट्टा बायें पर लम्बा यज्ञोपवीत मस्तक उदर और वक्षःस्थल पर एक-एक और भुजाओं पर दो-दो तिलक तथा कटि में अंगरखा धारण किए हुए खुले स्थान में पेड़ के नीचे कुशासन पर विराजमान हैं। गोस्वामीजी की अवस्था अपेक्षाकृत कम है।

श्री उदयशंकर शास्त्री की धारणा है कि डॉ श्यामसुन्दरदास की पोथी का चित्र उक्त चित्र संख्या १ पर अवलम्बित एक तैल चित्र की प्रतिकृति है। परन्तु डॉ० श्यामसुन्दरदास ने मुझे लिखा था कि 'हिन्दी भाषा और साहित्य' तथा 'गोस्वामी तुलसीदास' में जो चित्र दिये गये हैं वे दोनों एक ही हैं केवल ब्लॉक में अन्तर होने से भिन्न जान पड़ते हैं। वे चित्र उस चित्र के फोटो से बने हैं जो पण्डित गंगाराम के यहाँ हैं। इन्हीं गंगारामजी के लिए गोस्वामीजी ने 'राम शकुनावली' लिखी थी और वे प्राय नित्य सनक मिलते थे।

(१०) श्री रामनरेश त्रिपाठीकृत और हिन्दी-मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'राम चरितमानस' के प्रथम संस्करण की भूमिका के पूर्व एवं तुलसी और उनकी कविता के प्रथम भाग में गोस्वामीजी के तीन चित्र हैं —

(क) पहले चित्र में गोस्वामीजी के सिर के बाल श्वेत हैं और दाढ़ी भी श्वेत तथा छोटी है। वे मस्तक वक्षःस्थल और भुजाओं पर एक-एक और पेट पर तीन तिलक गले में एक कण्ठी और दो मालाएँ लम्बा यज्ञोपवीत दाहिने कंधे पर दुपट्टा और कटि में धोती धोती धारण किए, तकिए के सहारे चार खाने के आसन पर (कदाचित् गृह के खुले भाग में) विराजमान हैं। यह चित्र काशी में प्राप्त एक प्राचीन प्रति की नकल है।

(ख) दूसरा है संवत् १६५५ का कहा जाने वाला चित्र। यह अधेड़ किन्तु वृद्ध अवस्था का प्रतीत होता है। इसमें घर का स्थान अधिक सुन्दर है नरा तकिया

बूटेदार है तिलक भेद अस्पष्ट है। यज्ञोपवीत नहीं है। यह प्रह्लादघाट निवासी श्री रणछोर लाल के पास है। रामकृष्णदासजी इस चित्र को इसकी इमारत के कारण बहुत पीछे का मानते हैं। इस से मिलते-जुलते कई चित्र विभिन्न संग्रहों में मिलते हैं। उनमें से एक तो प्रसिद्ध पुस्तक संग्रहीता मायाशंकर याज्ञिक के पास है और एक भारत-कला भवन काशी में है।

(ग) तीसरा चित्र जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। यह कलकत्ता विलास प्रेस से प्रकाशित और ग्रियर्सन महोदय के अनुसंधान का फल है। इसमें गोस्वामीजी के केश लम्बे और पीछे की ओर को पड़े हैं। उनके मस्तक पर मोटी बिन्दी सी प्रतीत होती है। गले में दो कण्ठियाँ तथा मालाओं से मालाएँ हैं। दक्षिण स्कन्ध पर दुपट्टा है और कटि में पूरी धोती। गोस्वामीजी कालीन पर, बिना यज्ञोपवीत और उपधान के किन्तु दोनों हाथ जोड़े बैठे हैं।

तथाकथित समकालीन चित्र—(११) 'भारत में अंग्रेजी राज्य (१९३८ ई० का संस्करण) के पृ० १०१ के सामने गोस्वामीजी का रंगीन चित्र है जो श्री बहादुर सिंहजी सिंघी कलकत्ता की कृपा से नवाब मुर्शिदाबाद के यहाँ की एक हस्तलिखित फ़ारसी रामायण के समकालीन चित्र से उपलब्ध हुआ है। इसमें गोस्वामीजी भव्य गृह के सामने सुकेश तकिया लगाये गले में मालाएँ डाले बनलबन्दी पहने और उसी पर यज्ञोपवीत धारण किये टोपी लगाये चौपुती में हाथ डाले टिकटी पर बैठे हुए हैं। बाईं ओर चौकी पर खुली पुस्तक और दाहिनी ओर ऊँची बदन का (कदाचित् पीतल का) कमण्डलु है।

कल्पित चित्र—(१२) मिश्रबन्धु-कृत 'हिन्दी नवरत्न' के प्रारम्भ में तुलसी बाबाजी का एक चित्र लगा हुआ है। इसमें गोस्वामीजी खड़ाऊँ पहने और पोथी हाथ में लिये मृगछाला बगल में दबाये—रामनामी दुपट्टा ओढ़े गले में मालाएँ डाले पूरी किनारीदार धोती बाँधे, मस्तक पर रामानन्दी तिलक लगाये श्वेत और लम्बी दाढ़ी मूँछ एवं बदन बालों का जूड़ा धारण किये पत्थर की सीढ़ियों से घाट पर उतर रहे हैं। आकृति सौम्य है। डॉ० श्यामबिहारी मिश्र से पूछने पर विदित हुआ कि यह चित्र काल्पनिक है जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक के लिए बनवाया था।

(१३) 'कल्याण' के मानसांक में गोस्वामीजी का रंगीन चित्र उपर्युक्त चित्र संख्या एक और दो से मेल खाता है। आकृति अपेक्षाकृत दुबली है अवस्था भी कम प्रतीत होती है। गले में दो कण्ठियाँ और दो मालाएँ सुशोभित हैं। गल की मालाएँ भिन्न हैं। आसन गलीचे के समान बेल-बूटों से युक्त है। गोस्वामीजी आधी धोती बाँधे, पैर के अधिक निकट बिना दाढ़ी मूँछ के हैं। विशेषता यह है कि वे यज्ञोपवीत धारण किए हुए नहीं हैं। पूछने पर 'कल्याण' के सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार ने स्पष्ट किया कि यह चित्र नागरी प्रचारिणी सभा के चित्र के आधार पर तैयार कराया गया था।

(१४) गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'रामायणांक' के सादे चित्र में गोस्वामीजी की दाढ़ी काली और लम्बी है। सामने छोटी चौकी पर खुली पुस्तक रखी है। उसके खुले पन्ने बायें हाथ में पढ़ने के लिए विद्यमान हैं किन्तु दक्षिण हाथ

में माला भी है। गोस्वामीजी नाभिपर्यन्त यज्ञोपवीत धारण किये और माथी बो पहने नदी-तट के समीप शीतल पट्टी पर विराजमान हैं। बायीं ओर दूँधा है कन्धे पर दुपट्टा नहीं है। मस्तक वक्षःस्थल और उदर पर एक-एक तथा भुजाओं पर दो-दो तिलक सुशोभित हैं। श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का कहना है कि काली दाढ़ी वाला यह चित्र मथुरा के एक सज्जन को प्राप्त किसी प्राचीन चित्र के आधार पर बनाया गया था। उन्होंने इस चित्र को प्राप्त करके उसके आधार पर श्री गोस्वामीजी की मूर्ति संगमरमर की बनवायी थी। यह बात आज से लगभग २८ वर्ष पहले की है। पोद्दारजी को उन सज्जन का नाम स्मरण नहीं रहा। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने मुझे लिखा कि 'असी घाट वाले चित्र के विषय में मैं नहीं जानता। एक काली दाढ़ी वाला चित्र बनावटी है। जिन्होंने उसे बनवाया था उन्होंने मुझसे कहा था'।

कल्पित विक्रय-चित्र—(१६) श्री मदनमोहन शर्मा के उद्योग से तुलसी सेवक समाज (सीता मन्दिर, मथुरा) से जो रंगीन चित्र प्रकाशित हुआ था वह चित्र संस्था चौखट से बहुत कुछ मिलता है। इसमें गोस्वामीजी लाल रंग की माथी धोती बाँधे, एक कण्ठी पहने दाहिने हाथ में माला लिये सुखासन से जप कर रहे हैं। उनका बायाँ हाथ बायें घुटने पर स्थित है सिर की जटा सुव्यवस्थित दाढ़ी काली और मूँछें घनी हैं। शीतल पट्टी कुछ भिन्न है कमण्डलु दरियाई है मस्तक वक्षःस्थल और उदर पर एक-एक तथा भुजाओं पर दो-दो तिलक अंकित हैं। शर्माजी ने कहा कि यह चित्र किशनगढ़ राज्य में किसी सुरक्षित चित्र की प्रतिलिपि का परिवर्द्धित संस्करण है और मूल चित्र की एक प्रति काशी नरेश के यहाँ तथा गोस्वामीजी की उस बैठक में है जो काशी में असी घाट पर है और जिसमें उनकी माला खड़ाऊँ आदि सुरक्षित हैं। श्री राधाकृष्णदास की सम्मति में काशी के असी घाट वाले तुलसीदास के स्थान में उनका दाढ़ी वाला जो चित्र है वह एक आधुनिक चित्रकार की कृति है और सर्वथा कृत्रिम है।

पुस्तक-साक्ष्य—श्री मदनमोहन शर्मा से यह भी विदित हुआ कि सन् १९२१ में अयोध्या के डिप्टी कमिश्नर होबर्ड के सरसंघ में तुलसी-सेवा समिति नाम की एक संस्था इसलिए स्थापित हुई कि वह तुलसीदासजी के उस स्थान का जीर्णोद्धार करावे जहाँ उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना प्रारम्भ की थी। इस संस्था के मुख्य कार्यकर्ता थे स्वर्गीय रामरघुवीर लालजी रईस फतेहाबाद। संस्था के निमित्त धन एकत्र करने के लिए उक्त शर्माजी ने देशी राज्यों में भ्रमण किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें गोस्वामीजी का एक चित्र किशनगढ़ नरेश से देखने को मिला और उसके अनुसार जयपुर सरकार ने स्कूल ऑव आर्ट जयपुर में गोस्वामीजी की एक मनुष्याकार ऐसी पाषाण-प्रतिमा बनवाकर इन्हें प्रदान की थी जो अद्भुतघाटस्थ गोस्वामि प्रतिमा से भिन्न है। शर्माजी ने थोड़ा-थोड़ा करके पाँच-छः सहस्र रुपया भी एकत्र किया था जिसमें से अधिकांश उक्त रामरघुवीरलालजी के द्वारा इलाहाबाद बैंक में जमा कर दिया गया था और जयपुर से प्राप्त मूर्ति भी जो साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर भरतपुर भेज दी गयी थी उन्हीं के यहाँ विद्यमान है। कुछ रुपया शर्माजी के पास भी रहा। इसी सम्बन्ध में अयोध्या के महात्मा श्री पंडित रामबल्लभ शर्मा की अध्यक्षता

में सभा की एक बैठक हुई और निश्चय हुआ कि एक उपसमिति तुलसी-चौरा के मध्यस्थ में उस स्थान का जीर्णोद्धार कराने के लिए अनुमति प्राप्त करे। तब से फिर न जाने इस संस्था का क्या हुआ। उक्त विवरण कहाँ तक ठीक है यह नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त चित्र और प्रतिमा के विषय में शर्माजी को जो पत्र जयपुर और किशनगढ़ राज्य से अंग्रेजी में प्राप्त हुए थे उनका हिन्दी में अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :—

पत्र-व्यवहार

महकमा खास जयपुर

प्रस्ताव संख्या ६ जो १५ नवम्बर, १९२४ को मुबारक महल में, महकमा खास की बैठक में स्वीकृत हुआ।

तुलसी-सेवा-समिति के अवैतनिक संयुक्त मंत्री का आवेदन-पत्र गोस्वामी तुलसीदास स्मारक के निमित्त दान के लिए पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि अधिक से अधिक २५०) रुपए संगमरमर की मूर्ति के लिए स्वीकृत किया जाय यदि वह स्कूल ऑव आर्ट के द्वारा जयपुर में ही बने।

सं० २४५६। मिति जयपुर २४ नवम्बर ई०। इस प्रस्ताव की एक प्रति पं० मदनमोहन शर्मा अवैतनिक संयुक्त मंत्री तुलसी-सेवा-समिति एडवर्ड मेमोरियल, जयपुर के पास सूचनार्थ भेजी जाती है।

एस० डी० मजूमदार
मंत्री महकमा खास, जयपुर।

मेमोरेंडम नं० ८७

प्रेषक	सेवा में
प्रिंसिपल स्कूल ऑव आर्ट, जयपुर	पं० मदनमोहन शर्मा तुलसी-सेवा समिति जयपुर

ता० २४ अक्तूबर १९२५ ई०। विषय गोस्वामी तुलसीदास की श्वेत प्रस्तर मूर्ति।

प्रिय महोदय

काउंसिल आव स्टेट जयपुर के फाइनेंस एण्ड होम डिपार्टमेंट के मंत्री के इसी मास के पत्र नं० ५१ के अनुसार मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी सुविधा के अनुसार शीघ्र पधार कर मूर्ति को ले लेने की कृपा करें।

भवदीय
एच० राय चौधरी प्रिंसिपल।

फूल महल किशनगढ़ राजपूताना
१४ जनवरी १९२५ ई०

प्रिय पण्डितजी

तुलसी-सेवा-समिति के काम के निमित्त श्रीमन् महाराज प्रदत्त

का पे-आर्डर भेजी है। कोष के अधिकारी को आदेश दे दिया गया है कि वह गो० तुलसीदासजी का अभीष्ट चित्र आपको दिखला दे। आपका परिचय कराने के लिए एक परिपत्र भी सब विभागों के अध्यक्षों के पास भेज दिया गया है। अब आप मुझकर चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं।

भवदीय
सोहनलाल निजी सचिव

यहाँ मैं यह निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि बर्मीजी ने किशनगढ़ के मूल चित्र की प्रतिलिपि मुझे नहीं दिखायी क्योंकि वह जैसा कि वे कहते हैं उनसे खो गयी है। मैंने इस विषय में और अन्वेषण करना चाहा अतः पहले किशनगढ़ और फिर वाराणसी राज्य को लिखा। वाराणसी से मुझे अंग्रेजी में यह उत्तर मिला था —

प्रासाद सदस्य सं २०१ | किला रामनगर व० दि०
बनारस रियासत | ता अक्तूबर २६, १९४०

प्रिय महाशय

आपका पत्र ता० २ सितम्बर, १९४० का हि० हा महाराजा साहब बहादुर बनारस के लिए। मुझे यह सूचित करते खेद है कि गोस्वामी तुलसीदास का चित्र इस सरस्वती भंडार में अप्राप्य है। कृपया इसे नोट कर लें। मुझे वास्तव में खेद है कि आपको निराश होना पड़ा।

भवदीय
के० पी० एन० सिंह प्रासाद सदस्य

किशनगढ़ को लिखने पर एक ही चित्र की दो परिवर्द्धित फोटो प्रतिलिपियाँ मूल्य से प्राप्त हुईं जो चित्र संख्या १४ १५ से सर्वथा भिन्न हैं। वहाँ से एक पत्र भी अंग्रेजी में प्राप्त हुआ जिसका अनुवाद नीचे दिया जाता है —

प्रेषक | सेवा में
चीफ मेम्बर काउंसिल | पं० रामदत्त भारद्वाज
किशनगढ़ | कासगंज

सं० ११५२ एम० १९४०। किशन गढ़ ३० अगस्त १९४०।
विषय गोस्वामी तुलसीदासजी के मूल चित्र की प्रतिलिपि।
प्रकरण आपके पत्र ६ जुलाई और ३ अगस्त १९४० के।

प्रिय महोदय

मैं यह कहने के लिए लिखता हूँ कि जो सूचना आप चाहते हैं वह नीचे दी जाती है —

१ मूलचित्र पोस्ट कार्ड के आकार का है और रंगीन नहीं है

२ यह ज्ञात नहीं कि इस चित्र का बनाने वाला कौन था और इस राज्य में किस प्रकार आया।

३ शब्दकोष में गोस्वामीजी के और कोई चित्र नहीं हैं न कोई चित्र दाढ़ी वाला ही है।

भवदीय
बी० आर० गुप्त
कुले चीफ मेम्बर बोर्ड काउंसिल किशन गढ़

किशनगढ़ वाला चित्र—(१६) किशनगढ़ से जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ है वह लगभग १२"×६ इंच की परिवर्द्धित फ़ोटो प्रतिलिपि है। इसमें गोस्वामीजी की आकृति चित्र-संख्या १० क अर्थात् १६४५ वि० के कहे जाने वाले चित्र की आकृति से बहुत कुछ मिलती है। उसमें गोस्वामीजी पूर्वाभिमुख हैं तो इसमें पश्चिमाभिमुख। उसमें दो कंठियाँ और दो मालाएँ हैं तो इसमें एक कंठी और एक माला है। इसमें यज्ञोपवीत है उसमें नहीं। इसमें पेट विशेष निकला हुआ प्रतीत होता है। उसमें कोई पुस्तक नहीं थी इसमें एक पुस्तक गलीचे से हटकर चौकी पर और दूसरी कपड़े में लिपटी और बँधी गलीचे पर है। दोनों में गोस्वामीजी जप कर रहे हैं नेत्र खुले हुए हैं सामने की ओर दृष्टि है। उसमें तकिया, कालीन और इमारत का अंश था इसमें केवल एक गलीचा है जो उस कालीन से भिन्न है। गोस्वामीजी का अंगवस्त्र भी भिन्न है। दोनों में गोस्वामीजी मुटमुण्ड किन्तु शिखा-युक्त हैं चन्दन-त्रिपुंड्रादि एक से हैं। बैठने का ढंग समान है चरण की बनावट भी। इस चित्र का शीर्षक है तुलसीदासजी गुसाईं श्री रामायण।

निष्कर्ष—उक्त सभी चित्रों के विमर्श से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चित्र संख्या १ तथा उसी वर्ग वाले सभी चित्र गोस्वामीजी के वास्तविक चित्र हैं। इनका मूल अवश्य उनका समकालीन रहा होगा। काशी में प्रह्लाद घाट के जिस ब्राह्मण के पास यह चित्र संख्या १ है उन्होंने अपने उद्योग से उसी चित्र के आधार पर जो एक मर्मर प्रस्तर की मूर्ति बनवायी है, वह अनेक अंशों में सन्तोषजनक प्रतिकृति कही जा सकती है। विभिन्न चित्रों को देखने के पश्चात् भारत पुरातत्व विभाग के कर्मचारी रायबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित के परामर्श से, सोरों में वराह मन्दिर के सम्मुख हर-की-पैरी नामक ताल में गोस्वामीजी की मानवाकार प्रतिमा, उच्च पीठिका पर, १९४१ ई० में एटा जिलाधीश श्री वी० एम० लोबो-प्रभु ने स्थापित की थी। यह प्रतिमा मर्मर प्रस्तर की लगभग सात फीट ऊँची है। इसमें गोस्वामीजी का वय उस समय का अंकित किया गया है जब उन्होंने सोरों को छोड़ा था। प्रतिमा के एक हस्त में 'रामायण' सुशोभित है, दूसरा उपदेश मुद्रा में है। तुलसीदासजी पंडित-वेश में धोती काछे, दुपट्टा ओढ़े वैष्णव तिलक लगाये कमण्डल मालम धारण किये हुए, सुन्दर आकृति के हैं।

(ग) स्वभाव और चरित्र

दयालु और परोपकारी—गोस्वामी तुलसीदास प्रकृति से दीनों के प्रति दयालु थे। वे अपने बाल्यकाल में कष्ट और संकटों का पर्याप्त अनुभव कर चुके थे अतएव वे

यह भली भाँति जानते थे कि कष्ट कितने दुःखद होते हैं और विपत्ति में सान्त्वना-सहानुभूति का क्या महत्त्व है। वे वीतराग थे उदासीन थे अतएव यदि वे दूसरों के पूर्वकृत कष्टों को देखकर आँख मींच लेते अथवा उन कष्टों के कारणों को भाग्यविधान अथवा पाप कह कर टाल देते तो क्या था ? पर उनका हृदय तो कोमल और दयामय था। यद्यपि काशीवालों ने उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये थे तथापि जब काशी में महामारी का प्रकोप हुआ और उन्होंने अपनी आँखों से बहुत से व्यक्तियों को मृत्यु के घाट उतरते देखा तो उनका हृदय द्रवित हो गया। वे इतने करुणापूर्ण हुए कि उन्होंने उस प्रलयंकरी महामारी की शान्ति के लिए भगवान् शंकर की आराधना की। वे यदि कभी किसी के भविष्य पर प्रकाश डालते और 'रामाज्ञा प्रश्न' से समाधान करते तो कभी किसी हत्यारे को और किसी वेश्या को पाप से निवृत्त करते थे। यदि कोई दरिद्र अपनी कन्या के विवाह के लिए द्रव्य चाहता तो वे उसके लिए धन की कोई व्यवस्था कर देते। जब अनेक लोग अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर आस-पास से तदनन्तर दूर-दूर से आते और राम-भजन में अधिक बाधा पहुँचती तो वे पुरुष में चले जाते। फिर भी वे किसी की प्रेत-बाधा को दूर करते, किसी की पुत्री को पुत्र बनाते और किसी के पति को प्राणदान देते थे। उनके मूल मंत्र थे

हित तौं हित रति राम सों रिपु सों बैर बिहाउ
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ॥ दो० ६३
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥ वि० १७२

मृदुल—गोस्वामीजी ने मृदुलता का परिचय अपनी रचनाओं में भी दिया है। पाठकों को पात्रों के चरित्र में जो उग्रता वाल्मीकि और व्यास के द्वारा मिलती है वह तुलसी के द्वारा नहीं। उदाहरणार्थ से निवेदन है कि वाल्मीकि रामायण में श्रीराम से वनवास की सूचना मिलने पर माता कौशल्या के उद्गार बड़े स्वाभाविक हैं —

न दृष्टपूर्वं कल्याणं तुभ्यं वा पति-गौरवे।
अपि पुत्रे विपत्तेयमिति राजान्वितं मया ॥ २, २० ३८
सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम्।
अहं श्रोष्ये तवलोलामवराणां परा सती ॥ २ २० ३९
अतो दुःखतरं किन्तु प्रभवाणां भविष्यति।
मम शोको विलापश्च बाहुयोरिव मन्तकः ॥ २, २ ४०
त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे ॥ २, २० ४१
आयन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता
परिवारेण कैकेय्याः सतावाप्यवमानना ॥ २ २०, ४२
यो हि मां सेवते कश्चिदवमत्यानुवर्तते।
कैकेय्या पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥ २, २० ४३

न चायन्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्
विहाय शोक-सन्तप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥ २ २१ २२

किन्तु तुलसीदासजी कितने कोमल हो गये हैं

रानी सुतहि करौं अनुरोधू । धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू
कहौं जान बन तौ बड़ हानी । संकट सोच बिबस भइ रानी ।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका
सो केवल पितु आयेसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ माता
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तो कानन सत अवध समाना ॥२ ५४ ५५

सुमन्त्र के लौटने पर वाल्मीकिजी कौसल्या से दशरथ के प्रति कहलाते हैं महाराज यह दूत दुष्कर कार्यकर्त्ता रामचन्द्र का संदेश लाया है । इससे आप क्यों नहीं बोलते ? रहने जीवन अपराध करके अब आप इतने क्यों दुःखित हो रहे हैं ? जिसके डर के मारे आप रामचन्द्र के समाचार नहीं पूछते वह कैकेयी यहाँ नहीं है । आप किसी बात की शंका मन में न रखें जो कुछ कहना चाहें कहें (२ ३८ २६ ३१) । पर तुलसीदासजी कहलाते हैं—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम बियोग पयोधि अपारू
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू
धीरज धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू
जौं जियँ धरिअ बिनय प्रिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥
(२ १५३ ४-७)

वाल्मीकिजी के अनुसार मारीच ने मरते समय 'हा सीता हा लक्ष्मण' कहा था । आश्रम में सीताजी ने ज्योंही वह आर्तनाद सुना तो उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा 'वत्स लक्ष्मण दौड़ो । ज्ञात होता है कि आर्यपुत्र पर कोई संकट आया है और वे तुम्हें पुकार रहे हैं । जाओ दौड़कर उनकी रक्षा करो' । पर रामाज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण अपने स्थान से विचलित नहीं हुए । तब सीताजी ने अत्यन्त क्रोध से कहा— लक्ष्मण जान पड़ता है कि तुम्हारे मन में मेरे विषय में कोई पाप है इसी कारण तुम श्रीराम की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो । उन पर जो संकट आया है प्रतीत होता है तुम उन से प्रसन्न हो इसलिए चुपचाप बैठे हो । तुलसीदासजी ने इस घटना का उल्लेख केवल इतना किया है —

लखन कठोर बीर हठ भाषा । हमहिं प्रेरित संघिनि मम दोसा ॥ ३ २७ ५

कैकेयी के मर्मोपम वचनों को सुनकर श्रीराम ने वन जाने के लिए वचन दे दिया किन्तु कहा 'देवि मुझे एक बात खटकती है कि राजा ने अभी तक अपने श्रीमुख से यह नहीं कहा कि मैं भरत को राज्याभिषेक देने के लिए प्रसन्न हूँ ।

अतीव मानसं त्वेकं हृदयं दहति मम
हृदयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ २ १९ ६

पर आगे चलकर कुछ उष्णता से राम बोले कि 'हे देवि मैं साधारण मनुष्यों की भाँति धर्म-लोभी नहीं मुझे ऋषियों के तुल्य गुरु धर्म पर अटल जाना । (२ १९, २) पर मृदुल-स्वभाव तुलसीदासजी श्रीराम के मुख से कहलाते हैं —

पुछी मधुर बचन महतारी।
मोहि कहु मात-तात दुख कारन। करिअ जतन जेहि होइ निवारन
× × ×
मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा
मुनि गन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
(रा २ ११ ४२)

कहने का तात्पर्य है कि चाहे वाल्मीकि रामायण में अथवा अध्यात्म रामायण में जहाँ-जहाँ कटु प्रसंग आये हैं, वहाँ-वहाँ तुलसीदास-द्वारा या तो उनका उल्लेख छोड़ दिया गया है, अथवा कटुता को शिष्टता से आवृत कर दिया गया है। यदि वाल्मीकि जी और व्यासजी ने वास्तविकता को चित्रित किया तो तुलसीदासजी ने आदर्श को उपस्थित किया है क्योंकि राम के अनन्य भक्त होने के कारण वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि कौसल्या राम सीता आदि के मुखारविंद से ऐसा कोई शब्द निःसृत हो जो आदर्श से नीचा उतरे।

श्रद्धालु—अपने गुरु माता और पिता में गोस्वामीजी की बड़ी श्रद्धा थी। अनेक बार स्पष्ट और गुप्त रूप से गुरु नरसिंह और माता हुलसी का तथा कूट-द्वारा पिता आत्माराम का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार वल्लभाचार्यजी का भी। गुरु को मानस में प्रणाम किया गया है और विनय' में ब्रह्मा-विष्णु की पंक्ति में माता-पिता की चर्चा की गयी है, जिससे विदित होता है कि तुलसीदासजी इन औपनिषद वाक्यों का पालन करते थे आचार्य देवो भव पितृ देवो भव। सूकरक्षेत्र का स्पष्ट और स्वाद् सारी का कूटोल्लेख हुआ है।[1]

मातृ-प्रेम—गोस्वामीजी ने कौसल्या सुमित्रा सीता अनसूया आदि नारियों की चर्चा बड़े आदर भाव से की है। तुलसी का नारी-चरित्र-चित्रण इतना उग्र नहीं है जितना कि 'वाल्मीकि रामायण' 'अध्यात्म रामायण' और 'हनुमन्नाटक' में उपलब्ध है। तथापि उनकी कुछ उक्तियाँ नारी-जाति के विरोध में अवश्य हैं। पार्वतीजी स्वीकार करती हैं कि स्वभावतः नारी मूर्ख और ज्ञान रहित है (रा १ १४३ २)। इसी प्रकार अनसूयाजी सीताजी से कहती हैं कि नारी स्वभावतः अपवित्र है (रा ३ ८) शबरी भी मानती है कि नारी नीचातिनीच है (रा ३ ४३ १ २)। ये उक्तियाँ स्वयं नारियों के मुखों से निःसृत हुई हैं। पुरुषों में रावण ने मन्दोदरी को नारी के दोष गिनाये हैं (रा ५, ३६ १ ६, २२ १ २)। पर वे मूलतः इस प्राचीन श्लोक पर

---

१ तु० १ ३० क० १ १११ ९।

आधारित है :—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ शुक्रनीति ३ १६३

स्वयं भगवान् राम ने नारी के अवगुणों की ओर ध्यान आकर्षित कर उसे सब दोषों की खान बताया है (रा ३ २६ २७)। कहते हैं कि तुलसीदासजी को पत्नी से डाँट मिली अतएव उन्होंने नारी चरित्र को कुत्सित रूप में चित्रित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने 'दोहावली' (२६८) में लिखा है कि नारी कलह और मृत्यु का कारण है और कदाचित् इसी कारण जन्म-पत्री में उसका स्थान शत्रु और मृत्यु के मध्य पड़ता है और वह भगवद्भक्ति में बाधा पहुँचाती है (रा ३ ६०)। किन्तु तुलसीदासजी नारी के प्रति ऐसी भावना के लिए दोषी नहीं हैं। वे तो अपने समय के प्रतिनिधि हैं। उनके पीछे स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कामिनी-कांचन-त्याग पर आग्रह किया और उनके पूर्व कबीर भी कुछ ऐसा ही लिख चुके थे। योगवासिष्ठ के अनुसार हम अपने अज्ञान के कारण नारी को सुन्दर समझते हैं, (१ २१ ८) और भगवद्गीता में उसका उल्लेख पाप योनियों में (अथवा उनके साथ) हुआ है (९, ३२ ३३)। गोस्वामी जी ने समुद्र के मुख से कहला दिया कि 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' (रा ५, ५८, ६)। यह उक्ति भी 'अर्थ संहिता' के इस श्लोक का अक्षरशः अनुवाद है :—

दुष्टाः शिक्षिताः दासाः दुष्टाश्च परदाराः स्त्रियः
ताडिताः मारणं यान्ति नते सत्कारभाजिनः।

उनके समकालीन महाकवि शेक्सपीयर ने सहस्रों मीलों की दूरी पर नारी की जो अभद्र तुलना की है उसका तो उल्लेख भी अवांछनीय है। अतएव गोस्वामीजी को दोषी ठहराने से पूर्व कई बार विचार कर लेना अत्यन्त होगा। गोस्वामीजी ने अपनी माता का उल्लेख विभूति के साथ किया अतएव वे यह उपदेश करते प्रतीत होते हैं कि मातृ देवो भव। नारी के विषय में तुलसी भावना पर अधिक विवेचन अन्तिम अध्याय में किया जायगा।

विश्वास—'आराध्य की ऐसी एकनिष्ठ भक्ति, ऐसा अनन्य विश्वास और इतनी अखण्ड आस्था संसार के इतिहास में दुर्लभ है[1] जितनी गोस्वामीजी में। एक स्त्री ने नदी में स्नान करते समय उन्हें राम की शपथ दिलाकर कहा था कि जब तक मैं न कहूँ तब तक पीठ फेरे खड़े रहो और वे प्रातःकाल से सायंकाल तक जल में पीठ फेरे खड़े रहे। राम के नाम पर वे क्या नहीं कर सकते थे? यदि चमत्कारों में आस्था कर ली जाय तो कहा जा सकता है कि अनन्य विश्वास के कारण ही उन्हें हनुमद्दर्शन शिवदर्शन और रामदर्शन हुए तथा उनके ग्रन्थ पर दिव्य 'सही' पड़ी। उन्हें अपने किसी सम्बन्धी अपने किसी सुकृत अथवा अपने शरीर पर भरोसा न था :—

बाप न किसान स्याम तोरब न तन को
भाई को भरोसो न करो सो बर बेटी हू को
बल अपनो न हित अनको अनक को ॥ क ७ ७७

१ हिन्दी साहित्य पृ २२०।

पर उन्हें राम का भरोसा अवश्य था।

भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥ क० ७ १०७

विनयशील—वे विनय के तो मानो अवतार थे। विनय पत्रिका[1] विनय प्रार्थनाओं से परिपूर्ण है। अन्य सभी ग्रन्थों में यत्र-तत्र विनीतता का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके कुछ पदों में उपालम्भ भी है जो उच्च भक्ति का द्योतक है तथापि उनकी रचना दास्य से ओत-प्रोत है। वे इतने नम्र हैं कि अपने को कवि नहीं समझते और बार-बार घोषित करते हैं: *कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू* (रा १ ११ ९) कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू सकल कला सब बिद्या हीनू (रा १ ८ ८) निज दुचिबल भरोस मोहि नाहीं (रा १ ७घ ४) कबिहहिं सज्जन मोर ढिठाई (रा १ ७घ ८) कबित बिबेक एक नहिं मोरे (रा १ ८ ११) भाषाभनिति मोरि मति मोरी (रा १ ८ ४)। सीय राम मय सब जग' को जानकर वे हाथ जोड़ कर सब को प्रणाम करते हैं इष्ट देव को पंचदेवों को संतों को और खलों को भी। यजुर्वेद में कुत्स ऋषि ने भी शिव के दर्शन कुछ इसी प्रकार किये थे नमो वंचते परिवंचते स्तेनानां पतये नमो नमो निषंगिणेऽइषुधिमते तस्करानां पतये नमो नम सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमो सिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नम ॥१६ २१॥

भावुक—गोस्वामीजी बड़े भावुक और रसिक थे। पत्नी में उन्हें गाढ़ आसक्ति थी और भावावेश में वे गंगाजी को अर्द्धरात्रि के समय पार कर उससे मिलने श्वसुरालय पहुँचे थे। पत्नी के उपदेश से उस आसक्ति का मार्गान्तरीकरण हो गया रति भक्ति बन गई। वे बड़े रसिक थे पर उनका रसास्वाद संयत रहता था। शृंगार में अश्लीलता से दूर रहते पर उत्सवों पर स्त्रियों की गालियाँ सुनने के रसिक भी थे और उन्होंने अनेक स्थलों पर स्त्रियों के गाली गाने का रसद उल्लेख किया है। वे विनोदप्रिय भी थे और अवसर आने पर मीठी चुटकी लेने से चूकते न थे। विन्ध्याचल के तपस्वियों पर कैसा मधुर व्यंग्य कसा है। कवि और सभीतज्ञ[2] प्रायः भावुक रसिक और विनोदी होते ही हैं, तुलसीदासजी ऐसे ही थे पर शालीनता और संयम के साथ।

आत्म-परीक्षक—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी जो कार्य करते थे उसे कर लेने के पश्चात् उसके औचित्य और अनौचित्य पर विचार करते होंगे। पत्नी के उपदेश से वे घर छोड़ बैठे थे उन्होंने आवेश में ऐसा किया था। इसमें उन्हें तो कष्ट मिले ही उनकी पत्नी भी दुःखी रही। क्या घर छोड़े बिना वे रामभक्ति न कर सकते थे क्या ऐसा किये बिना तुलसीदास तुलसीदासजी न बन सकते थे? मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोग तो सपत्नीक उच्चतम जीवन व्यतीत करते थे। कदाचित् गोस्वामीजी को पश्चात्ताप रहा होगा कि उनके विरक्त हो जाने से उनकी अपूर्वा पत्नी रत्नावली को कितना दुःख हुआ था? अतएव 'दोहावली' में जहाँ पत्नी की एक उक्ति उल्लिखित है वहाँ उन्होंने लिखा है कि घर पर रह कर ही भगवद्भक्ति अभ्यस्कर है (२५५, २५६)।

---

१ तुलसीदासजी सतीक थे जैसा कि उन राग-रागिनियों से स्पष्ट है जिनका उल्लेख 'विनय पत्रिका' और 'गीतावली' में हुआ है।

एक बार विरक्त हो जाने पर घर लौट कर आ जाना लोकापवाद-जनक था। रत्ना बनी को पत्रोत्तर में लिखा था कि यदि तू राम का भजन करती है तो मुझे अपने से पृथक् मत समझ (र० च० २७) अपने विषय में उनकी कुछ उक्तियाँ हैं जिनसे विदित होता है कि वे आत्म-परीक्षण करते रहते थे —

> किए अंगीकार ऐसे बड़े दयाबाज को ॥ क०
> तुलसी से कूर को कहत जग राम को ॥ क०
> अपनायो तुलसी सों पोच जबजूतरी ॥ क०
> मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥ क०
> स्वारथ को साँच न समाज परमारथ को ॥ क०
> मोसो दगाबाज दूसरो न खल जाल है ॥ क०
> मोसो जैसो कूकर न खर को न खाट को ॥ क०
> राम सों बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो ॥ वि०
> राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ॥ वि०

लोक-व्यवहारी—गोस्वामीजी और उनकी पत्नी ने जो कुछ लिखा है उससे विदित होता है कि वे दोनों लोक-व्यवहार से सुपरिचित थे। किन्तु दोनों ही ने अपने व्यवहार में अतिक्रमण किया क्योंकि दोनों ही कवि अतएव भावुक थे। गोस्वामीजी चाटुकारिता से दूर, स्पष्टवादी थे। कदाचित् इन दोनों गुणों के कारण वे बार-बार संघर्ष में आकर संकटापन्न होते रहे यद्यपि अपनी प्रतिभा विद्वत्ता और साधुता के कारण उन्हें रामप्रसाद प्राप्त था और तज्जन्य सुरक्षा और सफलता भी। जिन गंगाराम और टोडर को छोड़ उन्होंने किसी व्यक्ति का उल्लेख तक न किया यहाँ तक कि अपने गुरु और माता पिता का भी स्मरण कूट-द्वारा ही किया है। वे नर प्रशंसा से दूर रहे कदाचित् इस कारण उनकी कविता को और भी सौष्ठव प्राप्त हुआ। राग-द्वेष से रहित वे सबसे समान व्यवहार करते थे—

> तुलसी ममता राम सों समता सब संसार
> राग न रोष न दोष दुख दास भये भव पार ॥ दो० ६४

गुणग्राही—तुलसीदासजी गुणग्राही थे। उन्होंने बौद्ध और जैन मतों की उचित प्रशंसा की है यों उन्होंने मतभेद भी प्रदर्शित किया है। पुष्टिमार्ग से उन्होंने भगवान् के बालरूप के महत्त्व को ग्रहण कर उसका वर्णन 'रामचरितमानस' 'कवितावली' और 'गीतावली' में किया है। सूरदास के कतिपय कृष्ण-परक पद 'गीतावली' में राम-परक हो गये हैं (१ ३१ ४०)। यह साहित्य स्तेय नहीं क्योंकि उनके द्वारा उन्हें न तो पद का भजन करना था और न प्रतिष्ठा की प्राप्ति। यह तो महाकवि सूरदास के प्रति उनकी चिरस्मरणीय श्रद्धांजलि है।

लोकालोचक—गोस्वामीजी प्रायः अपनी ही बात कहते थे और दूसरों पर आक्षेप न करते थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे कभी-कभी दूसरों का खण्डन करने के लिए बाध्य भी हो जाते थे। सैयद सालार जंग मसऊद गाजी की दरगाह पर उनका व्यंग्य है

कही अंगिल कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइब जाइ ॥ दो० ४६६

'दोहावली' (१६) और 'तुलसी सतसई' (४, ४६) में 'असत असत' कहने वाले फ़क़ीर को कड़ी डाँट पिलायी गयी है। इन की तुलना श्वान से की गयी है (रा० १ १२५, २ ३ १, ८)। जो राम का भजन नहीं करते वे शृंग पुच्छ-रहित पशु हैं (दो० १३८)। जो दूसरे की कीर्ति को मिटा कर स्वयं प्रसिद्ध होना चाहते हैं उनके मुख पर कालिमा पुतेगी (दो० १८६)। गोसाईं चरित में लिखा है कि उन्होंने लाला मीलमसिंह से अप्रसन्नता प्रकट की और एक चटकी के गर्व का खण्डन किया।

प्रकृति-प्रेमी और आदर्श-वादी—गोस्वामीजी भक्त-कवि थे अतएव वे प्रकृति को भी 'सियाराममय' के चश्मे से देखते थे। हिमगिरि, चित्रकूट प्रयाग अयोध्या तथा पुष्प-वाटिका वर्षा और शरद के वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं। गंगाजी से तो वे बड़े प्रभावित थे। कमल चातक, चक्रवाक चकोर मृग मीन और खंजन का उपयोग उपमा देने के लिए अधिकतर हुआ है, किन्तु परम्परागत पद्धति के अनुसार। बहुधा 'फूले फले न बेत' के तथ्य पर आपत्ति उठायी गयी है और 'बेत' को 'बिवत्' (आकाश) का अपभ्रंश मान कर कुछ टीकाकारों के द्वारा पाठ का समाधान किया गया है। उनके समय में वर्णाश्रम की क्या दशा थी उसका वर्णन यथावत् हुआ है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी मानव-स्वभाव के विशेषज्ञ थे। उनके पात्र राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न दशरथ कौशल्या कैकेयी सीता हनुमान्, रावण, सुग्रीव आदि के चरित्रों का चित्रण कितना मनोमोहक और आदर्श कितना उन्नायक हुआ है इस पर दो सम्मतियाँ नहीं हो सकतीं। वे आदर्शवादी ही नहीं, आदर्श-स्रष्टा भी थे।

स्पष्टवादी और निर्भीक—भगवान् राम ने अयोध्या के पुरजनों को बताया कि मैं उस व्यक्ति को अपनाता हूँ जो कुटिलता का त्याग कर स्वाभाविक सरलता से व्यवहार करता है (रा० ७ ४३, २)। गोस्वामीजी भी सरल प्रकृति के थे। उन्होंने अपने बचपन के दैन्य और तारुण्य के दोषों का स्पष्ट उल्लेख 'कवितावली' 'बाहुक' और विनयपत्रिका में अनेक स्थलों पर किया है। प्रायः सरल व्यक्ति स्पष्टवादी और स्पष्टवादी निर्भीक होते हैं। अयोध्या और काशी में वैरागियों और पण्डितों से एवं ठगों और चोरों से अनेक बार संकट उपस्थित हुए। पर वे निडर होकर डटे रहे। मानव-हृदय ही तो था एकाध बार वे घबड़ाये भी। पर विकट परिस्थिति में उनका विश्वास और प्रयत्न उनकी सहायता करते एवं सदा-सदा हनुमान् जी शिवजी और रामजी थे। अतएव उन्हें था

लोक को न डर परलोक को न सोचु ॥ क० ७ ७७
कीन को त्रास करै तुलसी जो पै राखिहैं रामु तो मारि हैं कोरे ॥
क० ७ ४८

मेरें तो न डर रघुबीर तुमो सोची कहौं ॥ क० ७, ७१
हैं काके हैं लीन हैं के जो हठि जन की लीन करै
तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ॥ वि० २३७

दृढ़ संकल्प—गोस्वामीजी जो विचार लेते उस पर दृढ़ रहते थे। दृढ़-

त्याग कर देने पर वे पुनः लौट कर नहीं आये, यद्यपि उनकी पत्नी ने उनके पास संदेश भेजे और उनके भाई-भतीजे ने रामपुर-ओरछे में पधारने की प्रार्थना की। अधिकारियों के स्वयं सम्राट् के आग्रह पर भी वे चमत्कार दिखाने के लिए प्रस्तुत न हुए। उन्होंने बंधन का कष्ट तो सहा किन्तु जो मुख से निकल गया उस पर अटल रहे। रामानन्दियों एवं पुष्टि-सम्प्रदाय वालों के प्रलोभनों और धमकियों एवं तथा-कथित पंडितों के उत्पीड़नों के मध्य अपने सिद्धान्त पर अटल रहने के लिए उनमें दृढ़ संकल्प की सत्ता थी। गोस्वामीजी के हठयोगी होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं। वे कहते हैं

ज्ञान कोन तप तप कियो न तमाई लोप ॥ क० ७ ७७

पर वे ज्ञान-योगी और राजयोगी अवश्य थे।

अगाध पण्डित—दीर्घ जीवन के अनुभव पर्यटन और सत्संग के कारण गोस्वामीजी बहुश्रुत थे। उनका अध्ययन भी विशाल था। गृहत्याग से पूर्व वे कर्मकाण्डी पुरोहित और कथावाचक थे। उनकी रचनाओं में जो अन्य कथाओं का बहुत निर्देश है उससे प्रतीत होता है कि वे पुराणों में निष्णात थे। उनकी सूक्तियाँ श्रुति-स्मृति-परक हैं। उनके दर्शन की सूक्ष्मता से प्रकट है कि वे तत्कालीन आचार्यों के मतों से अवगत थे। 'राम-चरित मानस' के प्रारम्भिक सप्तम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट किया है कि मेरी रचना अनेक पुराण आगम निगम तथा अन्य ग्रन्थों पर आधारित है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे ये हैं:

बसुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥ रा० ४ १४, १

यह पंक्ति ऋग्वेद (७ १०३ १ १०) का स्मरण दिलाती है। उन्होंने रामनाम-महिमा स्कन्द पुराण के नागर खण्ड से पायी और राम की व्युत्पत्ति 'रामनाम चन्द्रिका'[1] 'राम पटल'[2] और 'महारामायण'[3] के आधार पर की। राम की उच्चादर्शपूर्ण कल्पना 'रामपूर्व तापिनी, रामोत्तर तापिनी' 'रामरहस्य', और 'कलिसंतरण' आदि उपनिषदों से प्राप्त की। सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन निन्दा का आधार कादम्बरी से लिया। गोस्वामीजी ने कथावस्तु के लिए 'पद्मपुराण'[4] विष्णुपुराण, 'महाभारत' 'मूल रामायण' 'संक्षेप रामायण' 'अध्यात्म संहिता'[5] 'भुशुण्डिरामायण'[6] 'बालरामायण' और 'उत्तर राम चरित' को देखा होगा किन्तु 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्नराघव'[7] और 'रघुवंश'[8] का कुछ उपयोग भी किया है। यह तो निश्चय है कि गोस्वामीजी के सम्मुख आदि-काव्य से 'वाल्मीकि रामायण' उपस्थित थी किन्तु उपयोग के लिए 'अध्यात्मरामायण' को ही अधिक अपनाया गया। सीताजी को मायासीता मानने का आधार 'अद्भुत रामायण'[9] प्रतीत होता है। वेदान्त-सम्बन्धी ज्ञान के लिए गोस्वामीजी 'योगवासिष्ठ' के अधिक

---

१ २ ३ तुलसी-दर्शन पृष्ठ २०८ २६२।

४ वही, पृष्ठ २३।

५-६ पद अध्यात्मरामायण और व रिलिजस लिटरेचर ऑव इंडिया पृष्ठ १८८ ११ २४४ २५२, ३ ८।

७ ८ ९ तुलसीदास पृष्ठ ३१६ ३२६ ३१।

१ आर्य मुनि रामायण २३ ४३ २४ २४ २५ २।

जूनी प्रतीत होते हैं, जिसका पठन-पाठन तब और अब भी विरक्त पुरुषों में प्रचलित है। भक्ति के विषय में उन पर गीता और भागवत का और बालोपासना में वल्लभाचार्यजी के पुष्टिमार्ग का प्रभाव पड़ा। गोस्वामीजी स्वयं भी ने जैसा कि 'रामाज्ञा प्रश्न', 'दोहावली' और 'तुलसी सतसई' से विदित होता है।

प्रतिभाशाली—तुलसीदासजी को जो 'अभूतपूर्व सफलता'[1] मिली उसका कारण है उनकी "अपूर्व समन्वय शक्ति"[2]। "उनकी रचनाओं में विशेषकर 'रामचरितमानस' में लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु वैराग्य और गार्हस्थ्य का भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृत का निर्गुण और सगुण का पुराण और काव्य का भावावेग और भावासक्त चिंतन का ब्राह्मण और चाण्डाल का पंडित और अपंडित का समन्वय है।"[3] श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह ने अपने ग्रन्थ 'गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना' के द्वितीय भाग में उनके साध्य-समन्वय साधन-समन्वय उपास्य-गुण-समन्वय उपासक-गुण-समन्वय वृत्ति-समन्वय भाव-समन्वय सर्वदेव-समन्वय दर्शन-समन्वय द्वैताद्वैत समन्वय निर्गुण-सगुण-समन्वय की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। प्राचीन काल में भी यह समन्वयात्मक प्रवृत्ति कुछ पुराणों और महाभारत में तथा पृथ्वीराज रासो में भी मिलती है तुलसीदासजी ने विष्णु-शिव ज्ञान भक्ति और निर्गुण-सगुण के सामंजस्य पर पुनः आग्रह कर लोक-कल्याण किया। भावों के अतिरिक्त भाषा में भी उनकी प्रतिभा अप्रतिहत है। उनकी भाषा विषयानुकूल तथा वक्ता और श्रोता के अनुसार हो जाती है। परिचारिका की भाषा और रानी की भाषा में अन्तर है निषाद की भाषा जितनी ही सरल और अकृत्रिम है वशिष्ठ की भाषा उतनी ही वैदग्ध्यमंडित और परिष्कृत। तुलसीदास के पहले किसी हिन्दी कवि ने इतनी मार्जित भाषा का प्रयोग नहीं किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तो वे कमाल करते हैं। उनकी विनय पत्रिका में भाषा का जैसा ओरछार प्रवाह है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गंभीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मंडरा कर प्रतिपादित सिद्धान्त को ग्रहण कर लेता है'। गोस्वामीजी की संतुलित प्रतिभा ने वह महान् साहित्य दिया जो संसार के इतिहास में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता।[4]

---

१ हिन्दी साहित्य पृष्ठ २११। २ वही, २१२। ३ वही, २१५। ४ वही, पृष्ठ २१६-२४०। ५ वही, पृष्ठ २४२।

सोरों-सामग्री

प्रथम भाग सिंहावलोकन

सोरों-सामग्री का अर्थ—सोरों-सामग्री इस शब्द-द्वय का अभिप्राय उस सामग्री से है जो सोरों में अथवा उसके निकटवर्ती स्थानों से उपलब्ध तथा संगृहीत है और जो गोस्वामी तुलसीदास कालीन रचनावली और नन्ददासजी के जन्मस्थान वंश और रचनाओं पर प्रकाश डालती है एवं वह सामग्री जो उक्त सामग्री का समर्थन करती है। प्रथम प्रकार की सामग्री पर अनेक आक्षेप हैं जो अन्ततोगत्वा उपादेय ही सिद्ध हुए हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपने से स्वर्ण का मल हट जाता है और उसकी कान्ति बढ़ जाती है ठीक उसी प्रकार आक्षेपों से सत्यशोध को सहायता ही प्राप्त हुई। आलोचन और प्रत्यालोचन से पूर्व सोरों-सामग्री का वर्तमान रूप उपस्थित करना अभीष्ट है।

सोरों-सामग्री के दो रूप—सोरों-सामग्री के दो रूप हैं (क) गृह्य और (ख) बाह्य। गृह्य सामग्री प्रचुर तथा पर्याप्त है। भवन वंशज जनश्रुति भाषाशैली गोस्वामीजी के वचन और अन्य कवियों की पाण्डु लिपियाँ इस सम्बन्ध में प्रबल साक्ष्य उपस्थित करती हैं। बाह्य सामग्री भी न्यून नहीं। इसके अन्तर्गत हैं—विकीर्ण जन श्रुतियाँ जो पूर्वी जिलों में प्राप्त हैं ग्रियर्सन ग्राउस वीन्स आदि यूरोपीय विद्वानों की गवेषणाएँ अन्यान्य वार्ताएँ तथा अन्य लेख जिनसे सोरों की गृह्य-सामग्री की पुष्टि होती है।

(१) गृह्य-सामग्री

(क) भवन साक्ष्य

इस विषय में निम्नलिखित साक्ष्य उल्लेखनीय हैं —

(१) रामपुर नामक ग्राम सोरों से डेढ़ मील पूर्व स्थित था और है। इसके निकट एक टीले पर बलरामजी का मन्दिर बना हुआ है जिसकी भित्तियों में कहीं कहीं अंकित कलश प्रस्तर चिने हुए हैं जो गोस्वामीजी से भी कहीं पुरातन भवनों के अवशेष हैं। प्रतीत होता है कि बलरामजी के उपलक्ष्य में ग्राम का नाम रामपुर रखा गया। मन्दिर के समक्ष एक पक्का सरोवर था जिसकी बहुत सी ईंटें लोग अपने घर बनाने के लिए उखाड़ कर ले गये हैं किन्तु तनिक ध्यान देने पर घाट का अवशिष्ट भाग लक्षित हो सकता है। वर्षा ऋतु में अब भी उसमें जल भर जाता है जैसा कि इस चित्र से भी प्रकट है जो चौदह वर्ष पूर्व मैंने लिया था। वहाँ बलदेव-घाट को मेला लगता है और निकटवर्ती ग्रामों के निवासी दर्शन करने आते हैं। नन्ददासजी ने कृष्ण भक्ति के आवेश में रामपुर का श्यामपुर मन्दिर का श्यामाश्रम और सर का श्यामसर नाम रख दिया। इस नामकरण का उल्लेख कृष्णदासजी के 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' 'कृष्णदास रचनावली' और 'बलराम में रत्नावली की 'दोहा रत्नावली' में और बाद

कृष्ण की 'भ्रमर-गीत' वाली प्रति की पुष्पिका में हुआ है। यह रामपुर तुलसीदास और नन्ददास दोनों की जन्म भूमि है।

(२) नृसिंह मन्दिर—यह स्थान गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददासजी के गुरु नृसिंहजी का विद्याभवन था जो सोरों के चक्रतीर्थ मोहल्ले में आज भी विद्यमान है। इसमें पहले हनुमान्‌जी की मूर्ति भीतर थी जिसे पीछे से बाहर लाकर इसके चबूतरे पर प्राचीन वटवृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया गया। जिस अधिकारी ने ऐसा किया वह इस कुकृत्य के कारण अन्धा हो गया था ऐसी लोक-श्रुति है। इसी हनुमत्प्रतिमा की अर्चना नन्द तुलसी और उनके गुरुदेव करते थे। गुरुदेव के वंशज अब भी विद्यमान हैं। मन्दिर के सम्मुख गली के कोने पर एक कूप है जो नृसिंहजी का कहलाता है। लगभग बारह वर्ष हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ जिससे उसके पूर्व रूप में अन्तर हो गया है जो चिह्नों से स्पष्ट है। भीतर का भाग प्राचीन है।

(३) वराह मन्दिर और घाट—यहाँ गोस्वामीजी के समय में और पीछे तक बंगाली बहुती थी जिसका साक्ष्य रम्य भव्य घाट आज भी दे रहे हैं, यद्यपि बंगाली अब यहाँ से चार मील दूर हट गयी हैं। नवीं शताब्दी में यहाँ सोमवंशी राजा सोमदत्त राज्य करते थे। कुछ ध्वंसावशेष अभी तक पाये जाते हैं। राजा टोडरमल, महाराजा जयपुर, अलवर नरेश एवं अनेक सेठों के बनवाये पक्के घाट अतरिक्षा कुंज और धर्मशालाएँ हैं। वराहजी का मन्दिर पीछे का निर्माण है और श्वेत प्रस्तर-निर्मित भगवान् वराह की प्रतिमा भी अपेक्षाकृत नयी है। सूकरक्षेत्र का माहात्म्य 'पद्म पुराण' 'वराह पुराण' 'वर्गसंहिता' आदि पुराणों में वर्णित है। श्री नन्ददास-पुत्र कृष्णदासजी ने भाषा में 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' लिखा है। सूकर-क्षेत्र (सोरों) का उल्लेख 'आइने अकबरी' और 'पृथ्वीराज रासो' में भी मिलता है। यहाँ प्रतिवर्ष वराह भगवान् के उपलक्ष्य में मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक बड़ी मेला लगता है। सूकरक्षेत्र का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

(४) तुलसीदास गृह—सोरों के सोमवार्य मोहल्ले में तुलसीदासजी का निवास था। पहले इस घर में तुलसीदासजी की दादी की नमसाल थी और इसको राजौरियों का घर कहा जाता था। गृह-कलह से पीड़ित हो दादी और माता पिता शिशु तुलसी को लेकर उसमें आ बसे थे। आज यह घर कच्चा टूटा-फूटा है न जाने तब से कितनी बार नया बन गया होगा। पहले यह नलकटियों के बीच स्थित था और अब मुसलमानों के अधिकार में है। रत्नावली विवाहित हो यहाँ रही थी उसकी और उसके पति की पवित्रता के कारण लोग अब भी कलवर रोग की शान्ति के लिए इसकी दीवाल को खुर्च कर मिट्टी से लाया करते हैं जिसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेदी ने 'रत्नावली चरित' ५८ में किया है। इस घर से कुछ हटकर अलग घर में नन्ददासजी के वंशज रहते हैं।

(५) सीतारामजी का मन्दिर—यह बहुत प्राचीन भवन है। इसका विवेचन सूकरक्षेत्र नामक अध्याय में किया गया है। यहाँ हरिहर स्वामी नाम के साधु रहते थे जिन्होंने तुलसीदासजी और नन्ददासजी को संगीत की शिक्षा दी थी।[1]

१ तुलसी प्रकाश ६२।

(६) सोरों के सामने पक्के सरोवर के पार बदरिया नामक छोटा सा ग्राम है जिसमें तुलसीदासजी का श्वसुरालय था। श्वसुरालय वाला घर जो रामनरेश त्रिपाठीजी ने देखा था अब एक मंदिर के रूप में है। १६२७ वि० में गंगाजी में बाढ़ आयी थी जिसमें बदरिया डूब गयी अतः वर्तमान मकान को प्रतीक-मात्र समझना चाहिए।

(ख) वंशज

(अ) गुरु नरसिंहजीके वंशज—गुरु नरसिंहजी की पाठशाला के सन्निकट एक भव्य गृह है जिसमें आज भी नरसिंहजी की सुसम्पन्न संतति निवास करती है। नरसिंहजी वसिष्ठ-गोत्री और बिर्थरिया चौधरी आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनकी वंशावली इस प्रकार है —

होडिलजी तारनजी रामोदरजी और धाराजीतजी चार भाई थे। होडिलजी के नाम पर होडलपुर ग्राम बसा जो सोरों के निकट है। उनके वंशज होडलपुर के चौधरी कहे जाते हैं। तारनजी की संतति मिश्र ब्राह्मणों के यहाँ दत्तक होने से मिश्र हो गयी। धाराजीतजी के दो पुत्र हुए, जिनमें एक चमनावत ब्राह्मण वंश के प्रवर्तक हुए, दूसरे बरवारिया वंश में चले गये।

रामोदरजी के पुत्र चक्रपाणिजी उनके श्रीधरजी और उनके बंशीधरजी हुए जो अनेक राजाओं के द्वारा सम्मानित रहे। बंशीधरजी के तीन पुत्र हुए—हरिहरजी नरसिंहजी और हरिसुखजी। हरिहरजी आगीरथ मंदिर के अधिकारी थे फ़रीदनगर की जमींदारी चौधरी वंश के अधिकार में थी। हरिसुखजी के वंश के विषय में कोई उल्लेख नहीं।

नरसिंहजी महाराज ने तुलसीदासजी और नन्ददासजी का संरक्षण और अध्यापन किया। ये जयपुर आदि अनेक राजाओं के तीर्थ-गुरु एवं सर्व-सम्मानित रहे। इनके पुत्र थे श्रीकरजी उनके मुकुन्दजी उनके जयराजी और उनके फूलचन्दजी। फूलचन्दजी के तीन पुत्र थे—उत्तमचन्दजी दासचन्दजी और दीपचन्द जी।

दासचन्दजी के पुत्र राधाकृष्णजी उनके मोलानाथजी और मुरलीधरजी मोलानाथजी के पुत्र अयोध्यारामजी और उनके पुत्र। मुरलीधरजी के दो पुत्र हुए—देवरियाजी और फ़कीरचन्दजी और फ़कीरचन्दजी के दो पुत्र गंगानाथजी और रघुवीरजी इनमें रघुवीरजी के पुत्र प्यारेलालजी और उनके रामनिवासजी थे।

दीपचन्दजी के तीन पुत्र हुए, एक से इमलिया के नवधा का चौधरी वंश चला दूसरे से कुरे चौधरी वंश और तीसरे से होली का रामनारायणजी का चौधरी वंश।

उत्तमचन्दजी के पुत्र जवाहरलालजी थे और उनके चार—प्रयागीलालजी पूरनमोरामजी शिवदानजी और शिवनारायणजी। प्रयागीलालजी के पुत्र मनसुखजी और छोटेलालजी और छोटेलालजी के सत्यनजी गयाजी और रामलालजी। रामलालजी के हरिकिसनजी उनके निमाई रामगोपालजी (कोचवाली) और उनके श्रीनाथजी (सस्त) और पर्वजी। श्रीनाथजी के पुत्र प्रेमनाथजी हुए।

भुवानी शंकरजी के पुत्र जगन्नाथजी थे।

शिवदानजी के पाँच पुत्र हुए—बदरीनाथजी बैजूजी दुर्गाजी, चतुर्भुजजी और हरदेवजी। इनमें बदरीनाथजी के पुत्र मनोहरजी और उनके सामसलालजी जिन के दो पुत्र प्रेमीजी और नारायणजी हुए। दुर्गाजी के दो पुत्र थे—गोविंदरामजी और रामोदरजी। गोविंदरामजी के चार पुत्र हुए—गोपीनाथजी, सीताराम जी किशनलालजी और हरनाथजी। किशनलालजी के हुए शिवस्वरूपजी पातुजी बालूजी और बल्लभजी। बल्लभजी के प्यारेलालजी और उनके बल्लाजी। हरनाथजी के दो पुत्र हुए टीकारामजी और रघुवीरजी जिनमें टीकारामजी के सिवारामजी और श्यामलालजी और रघुवीरजी के गंगाराम (झड़)।

जवाहरलालजी के पुत्र नारायणजी का वंश इस प्रकार चला नारायणजी के तीन पुत्र थे—बलदेवजी, फूलनाथजी निम्बुरामजी। बलदेवजी के पुत्र थे गौरीशंकर, और उनके रामरत्न। फूलनाथजी के दो पुत्र हुए—द्वारकानाथजी और फूलकिशोर जी। द्वारकानाथजी के तीन पुत्र हुए—रंगनाथजी बीजूजी और रामाजी और रंगनाथजी के पुत्र हैं—बदरीनाथ चौधरी (पिस्ते) जी। फूलकिशोरजी के हुए भीष्म। जवाहरलालजी के पुत्र निम्बुरामजी के तीन पुत्र थे—किशनजी बर्फीजी और मक्खनजी।

नरसिंह पाठशाला के प्रथम चित्र में रंगनाथजी जो अब विद्यमान हैं तिवरी के प्रथम द्वार के आगे मुंडासा बाँधे बैठे हैं, पुत्र नरसिंहजी इनके पिता से दसवीं पीढ़ी में थे।

(आ) नवदाजी के वंशज—इस समय इस वंश में श्री बलभू शुक्ल के पौत्र और श्री बालसिंह के पुत्र पण्डित बाबूराम शुक्ल और उनके भतीजे अर्थात् स्व० पं० मुरारीलाल शुक्ल के पुत्र श्री शिवनारायण शुक्ल वर्तमान हैं। उनकी वंशावली अभी तक मुझे प्राप्त नहीं हो सकी है, किन्तु सुना गया है कि वह विद्यमान है।

(ग) जनश्रुति

लोगों में जनश्रुति है कि रत्नावली जिस घर में निवास करती थी उसकी रज धारण करने से आरोग्य लाभ होता है। कवि मुरलीधर चतुर्वेद ने भी 'रत्नावली चरित' में लिखा है —

चरन सदन रज जासु कोइ। परत देह सब रहित होइ ॥१५८॥

एक लोक-चर्चा यह है कि गोस्वामीजी का घर कसाइयों के निकट था

तुलसी तेरी झोंपड़ी कसकटियन के पास
जीव करे सोई भरै तू कत होत उदास[1]

नरसिंह मन्दिर के विषय में लोग कहते हैं कि इस में नरसिंहजी की पाठशाला थी। तारी (एटा) में यह जनश्रुति है कि वहाँ गोस्वामीजी की ननसाल थी जिसका उल्लेख कुछ विस्तार से अन्यत्र किया गया है।

(घ) भाषा शैली

गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' की भाषा और शैली का साम्य लोगों के

१ तुलसी और उनका काव्य, पृ० ७१।

तत्कालीन अन्य कवियों की भाषा और शैली से है। महाकवि नन्ददास और कवि कृष्णदास ने भी जो क्रमशः गोस्वामीजी के चचेरे भाई और भतीजे लगते थे चौपाई दोहों में रचना की है और वह भाषा-शैली की दृष्टि से न तो तत्कालीन ठेठ ब्रज ही है और न अवधी ही किन्तु ब्रजावधी है। तुलसी-पत्नी के उन दोहों की जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में जनश्रुति के रूप में मिले हैं, तथा 'दोहारत्नावली' की रचना ब्रजावधी है। कवि मुरलीधर चतुर्वेद की ब्रजभाषा भी अवधी से समिश्रित है। सोरों की विशेषतः उसके आस-पास के ग्राम-वासियों की भाषा भी ब्रजावधी है। पं. गोविंद वल्लभ भट्ट और पं० रामनरेश त्रिपाठी तुलसीदासजी के कुछ ऐसे शब्दों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं जिनका प्रयोग उनकी समझ से सोरों में ही होता है अन्यत्र नहीं। वे शब्द ये हैं तायो (जाँघ) और को (आदि का) चकडोरि, कुटिलकीट (केंचुए की जाति का एक कीड़ा जिसे सोरों में कुटीला कहते हैं यह कीट अपनी माँ के पेट को फाड़ कर निकलता है और वह उसके जन्म लेते ही मर जाती है) और तिजरा (इसका अर्थ कुछ टीकाकारों ने तिजारी ज्वर किया है पर सोरों में यह शब्द पसली चलने के रोग को कहते हैं और इसकी शान्ति के निमित्त लोग आटे का पुतला बनाकर चौराहे पर डाल कर चले जाते हैं और उसे फिर नहीं देखते।) उक्त शब्दों से सम्बद्ध वचन इस प्रकार हैं

> श्रवन नयन मन लग लये सब अंगपति तायो (विनय)
> हौं तो बिनरावस और को (विनय)
> लेलत अवध खोरि मोसी भँवरा चकडोरि (गीतावली)
> तनु जनेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पितहू (विनय)
> स्वारथ के साथिन तज्यो
> तिजरा को सो डोलक औचट उलटि न हेरो (विनय)

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भौंरा और चकडोरी के सम्बन्ध में अपनी शंका की है कि 'जैसा हमने देखा है राजापुर के समीपवर्ती कहते हैं कि ये खेल राजापुर में ही विशेष प्रचलित हैं। साथ ही यदि आज इन खेलों का प्रचार उपर्युक्त स्थानों में अत्यन्त कम हो—अथवा न हो—तो इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि तुलसीदास के समय में भी इन स्थानों में उपर्युक्त खेलों की परिस्थिति यही थी'।[1] गुप्तजी का कथन सत्य हो सकता है यद्यपि उनके तर्क के पूर्वापर वाक्य विरोधात्मक प्रतीत होते हैं। 'तायो' 'और को', तिजरा' तथा 'कुटिल कीट' के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार प्रकट नहीं किये हैं।

त्रिपाठीजी ने कुछ और शब्दों का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग मारवाड़ में होता है यथा माय जायो, मींजो (हाथ फेरा) मैन (मैल मोम) मौसे (झरोखे) माट (पड़ा) मौंसी (चूप) मूरी (छोड़ी) बियो (दूसरा गुजराती बीजा) म्हाको (मुझको) बाक (बाहर) नारि, नार (नाड़ नसें)। तुलसीदासजी की पंक्तियाँ ये हैं—

> तोसे माय जायो को (विनय०)। मींजी गुड़ पीठ (विनय०)

---

१ तुलसीदास, पृ १६४।

नैन के बसन कुलिस के कोरक (श्रीकृष्ण गी०)
नयन कोस मन्दिर के मोल (गीतावली)
बियसे हैं ग्रीव माल मानो पिय के (गीता०)
सौंपी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो (गीता०)
मन मानि मलानि कुबानि न जूझी
कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है (कवितावली०)
मन्द मति कन्त सुत मन्त महाको (कवितावली०)
काल तोपची तुपक महि बाक अनल कराल (दोहा०)
बिगत न लाई लारि जलकन जन तजि दूसरहि (दोहा०)

उपर्युक्त मारवाड़ी शब्दों में से अनेक तो आज भी सोरों कासगंज हाथरस, मथुरा में बोले जाते हैं। सोरों और मथुरा में राजपूताने से यात्री आते रहते हैं। कुछ शब्दों का प्रयोग नन्ददासजी ने भी अपनी रचनाओं में किया है। अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग-बाहुल्य से त्रिपाठीजी ने यह अनुमान किया है कि गोस्वामीजी पश्चिमी प्रान्त के निवासी थे।[1] राजापुर पक्ष के समर्थक अपने पक्ष के समर्थन में राजापुर अथवा उसके आस-पास प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों का उल्लेख करते हैं कुर पनही, मजुमार, महतारी फरसा कबराहु, किवाँ पुचकारे, ओहार दुराई, बिमाना समेटा माहुर, चिराव, इत्यादि।[2] पर 'किवाँ' का प्रचुर प्रयोग तो सूरदासजी की रचनाओं में भी है, और पनही महतारी, फरसा ब्याना समेटा पुचकारे का प्रयोग अवधीभाषा में बिल्कुल तक मिलता है। गोस्वामीजी लगभग ३६ वर्ष की अवस्था में सोरों को त्याग कर पूर्वी जिलों में पश्चिमी तथा अयोध्या राजापुर चित्रकूट और काशी में निवास करते रहे। उन्होंने अपनी आयु के लगभग ६६ वर्ष पूर्व में व्यतीत किये। इतने दीर्घ काल में यदि उन्होंने कतिपय अवधी-मैथिली शब्दों को अपना लिया तो क्या आश्चर्य? कुछ विद्वानों के मतानुसार गोस्वामीजी की इष्टभाषा (इष्टदेव की भाषा) अवधी भले ही हो पर उनकी अपनी भाषा ब्रजी ही थी जिसका उपयोग उन्होंने विनयपत्रिका में अपने हृदय की आर्त भावना को स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने में किया है। तर्क के निमित्त यदि उन्हें जन्मतः राजापुर या अयोध्या का मान लिया जाय तो यह आपत्ति हो सकती है कि गोस्वामीजी पश्चिमी प्रान्त में तो कुछ ही समय के लिए पधारे थे वह भी ब्रज-यात्रा करने अतएव इतने थोड़े समय में वे मारवाड़ी ब्रजी और अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग कैसे करने लगे? यद्यपि गोस्वामीजी की केवल भाषा यह निर्णय नहीं कर सकती कि वे कहाँ उत्पन्न हुए थे तथापि कारण समष्टि में भाषा का साक्ष्य सहयोग-दायक अवश्य है।[3]

(ङ) गोस्वामीजी का आत्मपरिचय

गोस्वामीजी के कुछ वचन और कूट आत्मपरिचयात्मक समझे जाते हैं जिनका विवरण नवम अध्याय में यथास्थान उपलब्ध है।

---

१ तुलसी और उनका काव्य, पृ० ७६।
२ तुलसीदास मानसपरिचय गुप्त पृ० १३०।
३ अधिक विवेचन के लिए देखिये अध्याय १ क ख, ग।

(च) पाण्डुलिपियाँ

पण्डित दशरथ शास्त्री[1] एवं उनके शिष्य पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट को तथा अन्य कतिपय व्यक्तियों को भी कुछ हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुईं जिनसे तुलसीदास रत्नावली नन्ददास और कृष्णदास की जीवनियों और रचनाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये पुस्तकें मुख्यतः एटा और बदायूँ जिलों से प्राप्त हुई थीं और सर्वथा अज्ञात रहीं। सन् १९३९ ई० के फ़रवरी और जून के 'विशाल भारत' में मुझे रत्नावली और नन्ददास पर कुछ लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब से हिन्दी-जगत् की विशाल जनता को इनका आभास सर्वप्रथम मिला। उस समय से कतिपय और भी पाण्डुलिपियाँ मेरे देखने में आयी हैं। उन सबका समालोचनात्मक विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा। उसमें जिन हस्त-लिखित पुस्तकों का निर्देश है उनमें से ६ और ७ संख्यक पुस्तकें कासगंज के हरगोविन्दजी पण्डा से और ८ संख्यक पुस्तक पं० वेदव्रत शर्मा से प्राप्त हुई थीं। मुझे तो अन्य सभी का यथेच्छ दर्शन पण्डित भद्रदत्त शर्मा के प्रभूत साहाय्य से हुआ।

(२) बाह्य सामग्री

निम्नलिखित सामग्री ऐसी है जो भारत में यत्र-तत्र बिखरी हुई है और गोस्वामीजी के विषय में खोजों-सामग्री पर प्रकाश डालती अथवा उसका समर्थन करती है, यथा —

(क) नन्ददास का विनय-पद

इस पद में नन्ददासजी ने अपने बड़े भाई तुलसीदासजी की वन्दना की है। इससे प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी शैव-सनातन वंश के थे और नन्ददासजी के समय में ही संत-जन उन्हें वाल्मीकि का अवतार कहने लगे थे। 'रामचरितमानस' का बड़ा आदर हो चला था। भगवान् शिव ने उनकी पुस्तक पर 'सही' लिख दिया और भगवान् कृष्ण ने उन्हें भगवान् राम के रूप में दर्शन दिये तथा नन्ददासजी पर तुलसीदासजी का बहुत प्रभाव पड़ा था। पद इस प्रकार है

श्रीमत्तुलसीदास स्व गुरु भ्राता पद वन्दे।
शैव सनातन विपुल ज्ञान जिन बाढ़ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमल हारी।
करि सीची वर सही आखरन आप पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदन मोहन बनवारी।
वाल्मीकि अवतार कहत तेहि सन्त प्रचारी॥
नन्ददास के हृदय भवन को सोवेइ सोई।
उज्जवल रस उपकाय दियो जानत सब कोई॥

श्री रामचन्द्र वैद्य शास्त्री इस वन्दना को अप्रामाणिक समझते हैं। उन्होंने यह जानकारी प्राप्त की कि यह वन्दना १९८७ वि० में रामायणांक के एक लेख में प्रकाशित हुई जिसे बालकराम विनायक जी ने लिखा था। तदनन्तर 'मानसांक' के मुखपृष्ठ पर

१ वर्तमान भारत २६ १०-१९६२।

यह कविता प्रकाशित हुई थी। वैद्यशास्त्री जी की धारणा है कि इस वन्दना में तुलसीदास जी को नन्ददासजी का गुरु-भ्राता 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर सिद्ध माना है। 'गुरु-भ्राता' का अर्थ है गुरु-भाई अर्थात् गुरुजी का पुत्र जो साथ रहा या पढ़ा हो। दूसरी आपत्ति है 'शेष सनातन' की विद्यमानता पर, क्योंकि 'मूल गोसाईं चरित' में इन्हें तुलसीदासजी का गुरु माना गया है[1]। सोरों-सामग्री के अनुसार शेष और सनातन गोस्वामी के पूर्वज[2] थे और 'गुरु' शब्द का अर्थ है 'बड़ा' और उस समय भी इसका इस अर्थ में प्रयोग प्रचलित रहा है। वन्दना की भाषा भी प्रवाहमयी है। रत्नावली ने भी कहा है

शेष सनातन कुल सुकुल गेह भयो प्रिय स्याम ॥१७॥

फिर भी कुछ विद्वानों की धारणा है कि नन्ददास ग्रन्थावली में अनुपलब्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है, मुझे भी इस पद पर कोई आग्रह नहीं।

(ख) नाभादासजी की प्रशस्तियाँ

नाभादासजी ने भक्तमाल में तुलसीदासजी और नन्ददासजी पर जो प्रशस्तियाँ लगभग १६६० वि० में लिखीं वे सोरों-सामग्री का समर्थन करती हैं।[3] तुलसी-प्रशस्ति में तुलसीदासजी को वाल्मीकि का अवतार बताया गया है, जिससे नन्ददास जी के उपर्युक्त पद की पुष्टि होती है। यह है

बेता काव्य निबन्ध करी शत कोटि रमायन।
इक अक्षर उच्चरै ब्रह्म हत्यादि परायन।
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम-चरन-रस मत्त रहत अहि निसि ब्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो॥

इस पर प्रियादास जी ने अनेक छन्दों में टीका की है। एक यह है

तिया सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई।
मुनी सुधि देह भजे बाही ठौर आये हैं।
बधू अति लाज भई रिस सों निकस गई।
प्रीति राम भई तन हाड़ चाम छाये हैं॥

उक्त छन्द में 'बाही ठौर' को स्पष्ट करते हुए सेवादासजी अपनी टीका में इस प्रकार लिखते हैं

सुनो सखि गेह उमड़्यो तिय-सनेह जिय
रत्नावली बड़ी हेत मन अकुलाये हैं।
भादों की अंधेरी राति चंचला चमकि जाति
मग मग बिन्दु परें और घन छाये हैं

---

१ तुलसी सन्तोस्य दरान अपना मानी विस्तार पृ० ८४-८५।
२ नन्ददास ग्रन्थावली।
३ 'हो सो आपन हैं भगत बानी' में विस्तृतोल्लेखात्मक अध्ययन, पृ० ६।

ऐसे में तुलसी यत सूकर सों मोद भरे
चवत चास चलत चाह गगधार आये हैं।
राम पै सवार हूँ पंगधार पार करो
बदरी समुरारि आय बोरिया जमाये हैं॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि पत्नी के पीहर चले जाने पर तुलसीदास जी सूकर-क्षेत्र से गंगाजी पार कर अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने ससुराल बदरिया पहुँचे थे। उस समय भादों की अर्द्ध रात्रि थी और मन्द-मन्द वर्षा हो रही थी। सामाजी ने नन्ददास जी के विषय में भी निम्नलिखित पद्‌पंक्ति उपस्थित की है

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत युक्ति भक्ति रस ज्ञान उजागर।
प्रचुर पयधरी सुजस रामपुर धाम निवासी।
सकल सुकुल संकलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद प्रेम पथ में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रमुदित रंग मगे॥

इससे स्पष्ट है कि महाकवि नन्ददास बड़े विद्वान् थे और रामपुर धाम के निवासी सुकुल आसरी तथा चन्द्रहास के बड़े भाई थे। अतएव यह सूचना सोरों-सामग्री के अनुकूल पड़ती है। उक्त पद्‌पंक्ति के आरम्भ में सेवादास ने लिखा है तुलसीदास जी कही अब में मति आहि। अब निधि कुछ फिरि आयहो आयहो कहाँ तुलसीदासजा को उत्तर दीयो।

(ग) अष्ट सखामृत

राम भगत तुलसी अनुज नन्ददास उजरयात।
कुल सनोढ़िया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदात॥ १
कर्यो राम तें स्याम निज बदलि इष्ट अब आय।
रच्यो स्याम तर बाटिका हरि बसराऊ धाम॥ २
सौंपि अनुज चन्द्रहास कर सुत दारा धन धाम।
आये सूकर खेत तजि ब्रज बसि सेवत स्याम॥ ४
कृष्ण राम के रूप भए नन्ददास मन आनि।
लखि तुलसी मन चलि रहे प्रान छोरि जुग पानि॥ ७
रामायन भाषा विरचि भाखा करी प्रकास।
देखि रच्यो श्री भागवत भाषा श्री नन्ददास॥ ८

प्राचीन कवि के[1] उक्त लेख से स्पष्ट है कि नन्ददासजी रामभक्त तुलसीदासजी के अनुज जाति से सुकुल आसरीय सनाढ्य ब्राह्मण तथा सूकर-क्षेत्रान्तर्गत रामपुर धाम के निवासी थे। उनके इष्टदेव पहले राम थे फिर कृष्ण हो गये और उन्होंने कृष्ण-भक्ति के आवेश में अपने धाम का नाम भी परिवर्तित कर दिया। सूकरक्षेत्र को

१ अष्टछाप भाग २० पृ० १४।

त्याग और घर का सब भार छोटे भाई नन्ददास को सौंप वे व्रज में निवास करने लगे। जब देखा कि बड़े भाई तुलसीदासजी ने हिन्दी भाषा में 'रामचरितमानस' लिखा है तो उन्होंने भी 'भागवत' के व्रज का हिन्दी रूपान्तर कर दिया। प्रामेय कवि ने नाभादासजी का अनुमोदन और भी अधिक सूचना के साथ किया है। 'अष्ट सखामृत' की एक प्रति चैत्र कृष्णा ३ शुक्रवार १८६५ वि की पं० रामलाल वैद्य गोकुल से प्राप्त है। गणना से यह तिथि १ अप्रैल १८ ८ ई० है। इसकी एक प्रति पौष कृष्णा ३० शनिवार सं० १७६७ को गोवर्धन में वैष्णव व्यासदास ने की जो अब बम्बई के गोस्वामी गोकुलनाथजी महाराज (बड़ा मन्दिर) के पास है।

(घ) भारतेन्दु का पद

श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो भक्तमाल लिखा है उसमें नन्ददासजी की इन प्रशस्तियों से प्रकट है कि नन्ददासजी तुलसीदासजी के छोटे भाई एवं श्री विट्ठलनाथजी के सेवक थे और उन्होंने भागवत का भाषानुवाद किया जिसको उन्होंने बुआजी के कहने से और ब्राह्मणों की आजीविका-नाश के भय से जल में प्रवाहित कर दिया।

तुलसीदास के अनुज भक्त विट्ठल पदचारी।
अष्टादश हरि सखा नित्य जेहि प्रिय गिरधारी॥
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।
पुत्र आगे द्विज कथन सुनत जल माँहि डुबाई॥
पंचाध्यायी हठ करि रखी तब सुत घर द्विज भय हरत।
श्री नन्ददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करत॥८०॥ उत्तरार्द्ध[1]

श्री तुलसीदास प्रताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे
नन्ददास अग्रज द्विज कुल अति सुध मन मंडित
कवि हरिजस गायक प्रेमी परमारथ पंडित
रामायन रचि राम-भक्ति जग थिर करि राखी
थोरे में बहु कह्यो जगत सब याकी साखी
जब लीन बीज हू जा हुपा जस न रामचरित हि तबे
श्री तुलसीदास॥ १७२[1]

(ङ) वल्लभ वार्ताएँ और वचनामृत

भारतेन्दुजी के 'भक्तमाल' से भी कहीं प्राचीनतर साक्ष्य वैष्णव वार्ताओं और वचनामृतों का है। वार्ताओं में चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताएँ हैं। वचनामृतों में उल्लेखनीय हैं श्री गोकुलनाथ जी के और बाबा बल्लभजी के। इस 'भक्तनिधि' के संचय एवं परिरक्षण का श्रेय जहाँ श्री गोकुलनाथजी को दिया जा सकता है, वहाँ उसके वर्गीकरण और सज्जीकरण का श्रेय हरिरायजी महानुभाव

---

१ २ भा तेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा भाग उत्तरार्द्ध भक्तमाल भा० प्र सम्वत २ १० वि उत्तरार्द्ध भक्तमाल प्रकाशक रा० ब० श्री रामदास गिरवरसिंह, काशी विलास यंत्र, १९२० हरिश्चन्द्राब्द ४१।

को समर्थित होता है।[1] वार्तामृतों से तुलसीदासजी और नन्ददासजी का भ्रातृत्व स्पष्ट है और यह भी विदित होता है कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे और रामपुर नामक ग्राम में जन्मे थे। अब वैष्णव साहित्य से आवश्यक उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं —

(१) अष्टछापी वार्ता—श्री गोकुलनाथजी के समकाल की सबसे प्राचीन प्रति विद्या विभाग काँकरौली में उपलब्ध है।[2] चौरासी वैष्णव वार्तान्तर्गत 'गोसाईंजी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता' की प्रतिलिपि कुन्नीलाल नामक सनाढ्य ब्राह्मण ने गोकुल में यमुना तट पर चैत्र सुदी ५ को १९२७ वि० में की थी। इसमें लिखा है "अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददास सनोढिया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हैं सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता॥ सो वे नन्ददास और तुलसीदास दोइ भाई हुते॥ तामें बड़े तो तुलसीदास छोटे नन्ददास॥ सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हुते॥ और तुलसीदास तो रामानन्दी के सेवक हुते॥ सो नन्ददासजी को हू रामानन्दी के सेवक कीए हुते। सो नन्ददास को तो लौकिक विषे बहुत आसक्ति हुती। सो जो कहूँ भजैया गावते सो तहाँ जाय बैठते॥ और जो कोऊ बातें तहाँ बाइकें सुनते॥ अपनो काम काज छोड़ि के राग रंग सुनते॥ तब बड़े भाई तुलसीदास बहुत समझावते और कहते जो तू जहाँ तहाँ भटकत फिरत है सो आछो नाहीं॥ परि नन्ददासजी मानें नाहीं।" इस अष्टछापी वार्ता के अनुसार तुलसीदासजी बड़े भाई थे और नन्ददासजी छोटे। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे नन्ददास बहुत पढ़े-लिखे थे। वे पहले पूर्व में रहते थे। इस 'पूर्व' शब्द को लेकर कुछ लोगों की कल्पना की उड़ान अयोध्या या काशी तक जा पहुँचती है किन्तु सूरदासजी ने गोकुल की गोपियों के द्वारा 'पूर्व' का प्रयोग 'मथुरा' के लिए करवा दिया है जब हरि गवन कियो पूरबहीं तब तिहि जोग पठायो।[3] इन 'पूर्व' का स्पष्टीकरण अवर्णित एवं नीचे के भी कतिपय उद्धरणों तथा विचार-विमर्श में उपलब्ध है।

(२) संवत् १७३२ की 'भाव प्रकाश वाली वार्ता—यह प्रति परीख द्वारकादास के पास है। इसमें लिखा है "अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर में रहते जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं तिनकी वार्ता। सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हुते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नन्ददासजी हैं। सो वे नन्ददासजी पढ़े बहुत हुते। और तुलसीदास तो रामानन्दीन के सेवक हुते।

(३) भाव प्रकाश—श्री हरिरायजी (१६४७ १७३२ वि०) ने दो सौ बावन वैष्णव वार्ताओं का सम्पादन किया और यत्र-तत्र भाव को स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से सं० १७२९ के पश्चात् टीका लिखी। नन्ददासजी की वार्ता पर यह टीका इस प्रकार है—

---

१ दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता अष्टम खण्ड आगुरा की कन्दर्पदास वाली।

२. वही।

३ भ्रमर गीत सार पद १०४।

४ दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, खण्ड १ की कन्दर्पदास वाली।

'अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर में रहते जिनके पद अष्टछाप में माहात्म्य है तिनकी वार्ता को भाव कहत हैं :—

भाव प्रकाश—ये नन्ददासजी लीला में श्री ठाकुरजी के 'भोज सखा' अंतरंग तिनकी प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये 'भोज' सखा हैं, और रात्रि की लीला में श्री चन्द्रावलीजी की सखी 'चन्द्र रेखा' इनको नाम है। सो चन्द्ररेखा 'चंपकलता' तें प्रगटी है। तातें उनके सात्विक भावरूप है। सो ये पूरब में 'रामपुर' ग्राम में जन्मे।'[1]

औरंगजेब के उपद्रव के कारण श्रीनाथजी का देवविग्रह ब्रज से मेवाड़ ले जाया गया था। उसी समय हरिरायजी भी मेवाड़ चले गये। 'भाव प्रकाश' का निर्माण मेवाड़ में हुआ और 'रामपुर' मेवाड़ से पूर्व में है ही।

(४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इसका सम्पादन गोस्वामी हरिरायजी ने १७३० वि० के लगभग किया।[2] इसकी दो सौ इक्यावनवीं वार्ता नन्ददासजी की है और उसमें तुलसीदासजी का भी उल्लेख नन्ददासजी के भाई के नाते अनेक स्थलों पर हुआ है जिससे विदित होता है कि नन्ददासजी और तुलसीदासजी भाई भाई और सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदासजी नन्ददासजी के लिए चिन्तित रहते, नन्ददासजी ने उन्हें कृष्णजी के दर्शन भगवान् राम के रूप में कराये। दोनों भाइयों का पत्र व्यवहार बड़ा मनोरम है। 'वार्ता' के आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं

सो ये तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हुते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नन्ददासजी हुते। सो ये नन्ददासजी पढ़े बहुत हुते। तुलसीदासजी रामानंदीन के सेवक हुते। सो नंददास हू कों रामानंदीन को सेवक कर दीयो। उन नंददास कों लौकिक विषय में प्रीति थोड़ोइ हती। जो कहूं अवसर मिलि तो तहां जाय कें ठाढ़े रहें सुनवे लगें। सो तुलसीदासजी नन्ददास कों थोड़ोइ समुझावें जो यहां तहां तू मति बैठ्यो करे। सो ये नन्ददास मानते नाहीं।

'सो कछुक दिन में एक संग पूरब की चल्यो तहां तें श्री रनछोड़जी के दरसन कों श्री द्वारकाजी कों चल्यो। तब नंददास ने मन में विचारी जो बने तो मैं ऐसे संग में श्री रनछोड़जी के दरसन करि आऊँ। तब नन्ददास ने तुलसीदासजी सों कह्यो जो तुम कहो तो मैं या संग में श्री रनछोड़जी के दरसन करि आऊँ। तब तुलसीदासजी ने नन्ददास कों थोड़ोइ समझाये जो कहूं मति जाय मारग में दुख थोड़ोइ है। अनेक दुःख हैं। जो जायगो तो तू भ्रष्ट होय जायगो। तातें तू श्री रनछोड़जी ताईं न पहुंच सकेगो बीच ही में रहेगो। तातें श्री रघुनाथजी को स्मरण कर और अपने घर में बैठ्यो रहे। तब नन्ददास ने तुलसीदासजी सों कह्यो जो मेरे तो श्री रघुनाथजी हैं परि मैं एक बार श्री रनछोड़जी के दरसन कों अवश्य करि के आऊँगो। तुम कोटि उपाय करो पर मैं न रहूँगो। तब तुलसीदासजी ने जान्यो जो

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० १५६ गुसाईंजन एजेंसी अंबरोली।

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तृतीय संस्करण पृ० १५६-५७ : हरिराय-प्रणीत, सम्पादक गो० आत्मजनुराय शर्मा और द्वारकादास परीख, प्रकाशक : गुसाईंजन एजेंसी, अंबरोली, प्रथम संस्करण १९१० वि०।

यह न रहेगो तब संग में जो मुखिया सिरदार हुतो ताके पास नंददास कों ले कें तुलसीदासजी गये। और मुखिया सों नंददासजी की समासन तुलसीदासजी ने कीनी जो यह नंददास तुम्हारे संग आवत है। तातें तुम मारग में याकी खबरि राखियो। ऐसो करियो जो इहां फेरि नंददास आवे काहु गाम में रहि न जाय। तब वा मुखिया ने कह्यो जो आछो या बात की चिन्ता मति करो। ता पाछे वह संग चल्यो सो वाके संग नंददास हू चले ॥ (वार्ता प्रसंग १)

और एक समय श्री मथुराजी को संग पूरब कों चल्यो यमाभाद्र करिके कों। ता संग में दस पांच वैष्णव हू हुते। तब तुलसीदास ने सुन्यो जो संग आयो है। तब वा संग में तुलसीदासजी ने आइ के पूछी वा एक नंददास ब्राह्मन इहां तें गयो है सो मथुराजी में सन्यो है। सो तुम ने कहुं देख्यो होय सो कहो। तब एक वैष्णव ने कही जो तुलसीदासजी एक नंददास तो श्री गुसाईंजी को सेवक भयो है। सो वह नंददास पहले तो अत्यन्त विषयी हुतो सो अब तो बड़ा ही कृपापात्र भगवदीय भयो है। तब तुलसीदासजी अपने मन में विचारे जो ऐसो तो वही नंददास है सो श्री गुसाईंजी को सेवक भयो है। जो अब तो उनको मेरी चिंता न लगेगी। तब तुलसीदासजी ने उन वैष्णवन सों कह्यो जो मैं तुम कों एक पत्र लिखूं तापरी बुलाय तुम मोकों मंगाय देइये? तब उन वैष्णवन ने तुलसीदासजी सों कही जो काहि मेरो मनुष्य श्री गोकुल को चलेगो। जो तुम को पत्र लगो होय तो लिख के लेवि तैयार करियो। तब तुलसीदासजी ने ताही समें पत्र लिखि कें तैयार कियो। तामें लिख्यो जो तू पतिव्रत धर्म छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो सो आछो नाहीं कियो। अब तू आवे तो कैरि तोकों पतिव्रत धर्म बताऊं। सो वह पत्र तुलसीदासजी ने वा वैष्णव के हाथ दियो। सो वह पत्र अपने पटन में धरिके वा वैष्णव ने कासिद के हाथ दियो। सो वह पत्र लेकें श्री गोकुल आयो। तब कासिद ने दंडवत् करि कें वे पत्र श्री गुसाईंजी के आगे धरे। तब उन पटन में नंददास के नाम को जो पत्र हुतो सो निकस्यो। तब श्री गुसाईंजी ने वह पत्र बांचिकें नंददास को बुलाय के दियो। तब नंददास ने वह पत्र लेके बांच्यो। पाछें वा पत्र की प्रति उतार लिख्यो जो मेरे तो प्रथम रामचन्द्र जी सों विवाह भयो हुतो। सो बीच में श्री कृष्ण दौरि आइ कें लूटि ले गये। सो रामचन्द्रजी में जो बल होतो तो मोकों श्री कृष्ण कैसे ले जाते? और श्री रामचन्द्रजी तो एक पत्नीव्रत हैं। सो दूसरी पत्नी कों कैसे संभार सकेंगे? एक पत्नी हू बराबरि सँभारि न सकें सो रावण हरि कें ले गयो। और श्री कृष्ण तो अनन्त ऐश्वर्यान के स्वामी हैं और इनकी पत्नी भये पाछें कोई प्रकार की भय रहे नाहीं है। एक कामाकल्पित अनन्त पत्नीन कों सुख देत हैं। जानों मैंने श्री कृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो अब तन मन धन यह लोक परलोक श्री कृष्ण को दीनो है। (और) अब तो मैं परवस होइ कें पर्यो हूं। ऐसो नंददास ने तुलसीदासजी कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद—

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब तें श्रवन सुन्योरी आलो भूली री हों तो बावरी भई री।
हरि हरि आवे नैन चित न चरत चैन मुख हू न आवे बन।

भक्त हित श्री राम कृष्ण तु धर्यो नर अवतार।
दास तुलसी कोउ आता कोउ उधारो पार॥

ता पाछें तुलसीदासजी ने श्री गोसाईं जी सों दंडवत् करि के कह्यो जो महाराज नन्ददास तो पहले बड़ो विषयी हतो सो अब तो या कों बड़ी अनन्य भक्ति भई है ताको कारन कहा है? तब श्री गुसाईं जी ने तुलसीदासजी कों कह्यो जो नन्ददास उत्तम पात्र हुते यातें पुष्टिमार्ग में आय के प्रवृत्त भये। और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है। सो अब ये दृढ़ भये हैं। तब श्री गुसाईं जी के श्री मुख के वचन सुनिकें तुलसीदासजी प्रसन्न होय श्री गुसाईं जी कों दंडवत् करि के पाछें आप विदा होय काशी आये" "॥ (वार्ता प्रसंग ४)

यह वार्ता प्रसंग सं० ४ अनवय १६२६ वि० का प्रतीत होता है। श्री गोकुल नाथ वचनामृत के अनुसार तुलसीदासजी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के १६ वर्षीय पुत्र रघुनाथ जी को प्रणाम किया था जो १६११ वि० में जन्मे थे। १६२६ वि० के लगभग नन्ददास जी विरक्त हो कर सूकरक्षेत्र से पुन ब्रज मे पधारे। अविनाशराय ने नन्ददास की विरक्ति का संवत् १६२० दिया है जो संगत नहीं किन्तु जिस से यह अनुमान होता है कि तुलसीदास जी ब्रज में जो बस रहे होंगे। उस समय तक उनकी विशेष ख्याति नहीं हो पायी थी।

सो एक दिन नन्ददास के मन में ऐसी आई, जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा किये हैं। तैसे हमहू श्री भद्भागवत भाषा करें। पाछें नन्ददास ने श्रीमद्भागवत दसम भाषा संपूरन कियो। तब मथुरा के सब पण्डित मिलिकें श्री गुसाईं जी सों विनती कीनी जो महाराज हम श्रीभागवत की कथा कहि के निरवाह करत हुते। सो तुम्हारे सेवक नन्ददासजी ने भाषा में भागवत कही है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो तातें अब हमारी जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है। तब श्री गुसाईं जी ने नन्ददास को बुलाय के कह्यो जो नन्ददास तुमने जो श्रीमद् भागवत भाषा में कीनो है सो इन ब्राह्मन की जीविका में हानि होत है। ताषों तुम ब्रज लीला तो पंचाध्याई तोई की राखो और श्री यमुनाजी में पधराय देउ। सो नन्ददास ने श्री गुसाईंजी की आज्ञा प्रमान मानि के ब्रज लीला ताई (भागवत) राखी और सब श्री यमुनाजी में पधराय दीनो। सो ये नन्ददास जी श्री गुसाईं जी के ऐसे आज्ञाकारी और बड़े कृपा पात्र हुते ॥ (वार्ता प्रसंग ५) इस प्रसंग संख्या ५ से अनुमान होता है कि जो तुलसीदास "रामचरितमानस" की पूर्ति के पश्चात् (जो अविनाशराय के अनुसार १६३५ वि० में हुई थी) द्वितीय बार ब्रज में पधारे और नन्ददास जी को 'रामचरितमानस' से 'भागवत' के भाषानुवाद की एवं तुलसीदासजी को 'विनयपत्रिका' से 'पार्वती-जानकी मंगलों' की प्रेरणा मिली। अतएव डॉ० दीनदयालु गुप्त का यह अनुमान कि गोस्वामीजी १६३६ वि० में मथुरा पधारे थे ठीक प्रतीत होता है।[1]

---

१ अध्यात्म और वास्तव सम्प्रदाय पृ २१०।

२ श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत—१७६६ वि की इस हस्तलिखित प्रति से भी तुलसीदासजी और नन्ददासजी के भ्रातृत्व की पुष्टि होती है। लेख है—

एक बार श्री मुखे बातन प्रसंगे आज्ञाकारी जो तुलसीदास मर्यादा मार्गी हुते। पर टेक कैसी हुती ते ऊपर दोहो कह्यो ॥ दोहा ॥ बनें तो रघुवर ते बनें। बिगरें तो भरपूर ॥ तुलसी ओरन के बने ता बनिबे में धूर ॥ १ ॥ जीव को सर्वथा अनन्यता चाहिये। ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हुते ॥ ता दिन श्री रघुनाथ जी को विवाह हुतो ॥ सो ठौर ठौर आनन्द होय रह्यो हुतो ॥ तब तुलसीदासजी नें पूछो जो कहा है ॥ ठौर ठौर, आनन्द दीसत है ॥ तब कोई व्रजवासी बोल्यो ॥ जो जानें नाही जो श्री रघुनाथ जी को विवाह है ॥ तब तुलसीदास नें कही जो कौन से विवाह है श्री रघुनाथजी को ॥ तब व्रजवासी नें कह्यो जो श्री जानकीजी सों विवाह है ॥ सो तुलसीदास श्री रघुनाथ जी और जानकी जी को नाम सुनिक विह्वल है गये ॥ कह्यो श्री रघुनाथ और जानकी कहां ॥ तब काहू व्रजवासी नें श्री गुसाईं जी को घर बतायो ॥ सो जहां चले आये तब श्री गुसाईं जी नें श्री रघुनाथ जी सों कह्यो देखियो जो तुलसीदास आवत है तिन को अनन्य छत न जाय ॥ तब श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास कों श्री रामचन्द्र जी के दर्शन दीये ॥ तब दर्शन होत मात्र साष्टांग दंडवत कीये ॥ ता समै श्री रघुनाथ जी बय पहै के हुते ॥ सो पचीस बय की बात श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास कों श्री रामचन्द्र जी के दर्शन दीये ॥ तब दर्शन होत मात्र साष्टांग दंडवत् कीये ॥ श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास सों कहीं ॥ जो फलानें फलानें दिन अमुक्या म तैंनें हम कों सांमिसी समर्पी हुती सो सो कों इहां दे हैं तब तुलसीदास विस्मै होय गये ॥ कह्यो जो मैं जाकों परम तत्व जानत हो ॥ सो तो श्री गुसाईं जी के घर सहज ही दर्शन भए ॥ तब एक बधाई करि कै गाई ॥ बरनौं अवध गोकुल गाम ॥ नंददास जी अष्ट काव्य वारे सो तुलसीदास के छोटे भाई ॥ तुलसीदास बड़े भाई ॥ सो नंददास जी जब श्री गुसाईं जी के सेवक भए ॥ तब तुलसीदास नें कह्यो ॥ भाई तब विमीचार कीयो ॥ तब नंददास जी नें कह्यो ॥ विमीचार तो कियो परतु तुम बहुत पायो ॥ २१ ॥ (पृष्ठ ५३ ५५)।[1]

६ श्री काका बल्लभजी महाराज का लेख—(क) इन महाराज का प्रादुर्भाव संवत् १७ ३ वि० है।[2] इन्होंने अपने पचासवें वचनामृत में गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददास का उल्लेख किया है उस से भी दोनों के भ्रातृत्व की प्रबल पुष्टि होती है—

'जो मर्यादा मार्ग में श्री रामचन्द्र जी के भक्त तुलसीदास बहोत बड़े भक्त हुते ताके अनेक पद हैं। रामायण ग्रन्थ पदबन्ध कवित्त बन्ध चौपाई बन्ध ऐसे अनेक कीने हैं उन के भाई नन्ददास जी बहोत विद्वान हुते श्री गोकुल आये के श्री गुसाईं जी की सरन आये और अष्ट छाप में प्रख्यात भये पिछ तुलसीदासजी

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में प्रकाशित श्री गोकुल नाथ जी वचनामृत के अन्तर्गत ५, ६ और ७ में अविकल उद्धरण। गुसाईंन बनेजी की कोठरी।

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता कलश ३, प्रथम संस्करण (सिद्धान्त-मार्तण्ड कार्यालय) पृ० ७।

भाई की खबर सेवै ब्रज में आये। सो एती राम उपासी हुते और ब्रज में तो सब ठिकाने कृष्ण कृष्ण की धुनि सुनी। तब तुलसीदास ने एक साखी कही पाछे भाई सों मिले तब कहो जो तैंने व्यभिचार धर्म क्यों कीनो अपने प्रभुन को छोड़ि अन्य धर्म के आचरन क्यों करत है। अब पिछों चालि" ॥

(ख) काका बल्लभजी महाराज ने भगवदीय नाम मंजिमाला' संवत पौने तीन सौ वर्ष पूर्व लिखी, जिसमें २५२ वैष्णवों का नामोल्लेख गुजराती बोलों में किया है और इस में नन्ददासजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

नंददास तथा रामपुरी कहीये रे सात्विक वैष्णवता बतलेवा लहिये रे[1] ॥६ ८॥

स्पष्टतः नन्ददासजी के जन्म-स्थान रामपुर का उल्लेख कर महाराजजी ने 'अष्टछाप वृत्त' 'भाव प्रकाश' आदि की सूचनाओं का समर्थन किया है।

वार्ता-प्रसंग—भगवान् कृष्ण ने तुलसीदासजी को भगवान् राम के रूप में दर्शन दिये। किस की इच्छा से ? कहते हैं कि जब मसखरों ने तुलसीदासजी की खिल्ली उड़ाई कि तुम रामभक्त होकर कृष्णजी के दर्शन करने क्यों आये तो तुलसीदासजी भी अड़ गये और कृष्णजी को उनकी हठ पूरी करनी पड़ी अगत्यात्मक तो थे ही। स्यात् तथ्य यही हो जो वार्ताओं और वचनामृतों में किंचित् फेर से है अर्थात् नन्ददासजी की प्रार्थना से कृष्णजी ने तुलसीदासजी को राम के रूप में दर्शन दिये और मोकुलनाथ जी के पुत्र रघुनाथजी और जानकीजी को तुलसीदासजी ने प्रणाम किया इन दोनों बातों में सम्प्रदाय की गंध आ सकती है। एक और तीसरी उक्ति यह है कि महाराष्ट्र के संतजन जसवंत की प्रार्थना पर कृष्णजी ने राम के रूप में तुलसीदासजी को दर्शन दिये।

तीसरी उक्ति असंगत सी है। भगवान् राम की आज्ञा से जसवंतजी तुलसीदासजी को गुरु बनाने पंचवटी से काशी पधारे और उन्होंने गुरु-मन्त्र लिया। कहा जाता है कि उन्होंने अपने गुरु तुलसीदासजी के साथ मथुरा की यात्रा की। मथुरा पहुँच कर जसवंत ने तुलसीदास से श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रार्थना की तब तुलसीदास ने कहा—

मेरो मन तुमको जसवंता मेरो मन और नाँय तुमंता
राम बिना दूसरो नहिं कोई राम बिना दूसरो नहिं कोई
और नयन सो जो दूसरो काहूं कर और जो स्वरूं।

इस पर जसवन्त ने मराठी में उत्तर दिया—

जो राम तो कृष्ण असे, यांत कांही संशय नसे ॥

अर्थात् जो राम है वही कृष्ण है इसमें कुछ भी संशय नहीं। जसवन्त ने यह भी कहा कि मैं आप को श्रीकृष्ण के मंदिर में ही राम के दर्शन कराऊँगा। इतना कह कर जसवंत तुलसीदासजी को कृष्ण मंदिर में ले गये वहाँ जसवंत ने प्रार्थना की—

---

१ वही, सात्विक वैष्णव ६।

मोर मुकुट मीठे धरो, (और) किरिट मुकुट धरो शीस।
अनुप बाग करमो धरो (गुरु) तुलसी नमावत शीस॥

बसवन्त की इस प्रार्थना पर श्रीकृष्ण और राधाजी ने श्रीराम और सीताजी का रूप धारण कर तुलसीदासजी को दर्शन दिये। इसके पश्चात् गुरु-चेले गोकुल वृन्दावन जगन्नाथपुरी आदि स्थानों के दर्शन कर अयोध्या पहुँचे वहाँ चार महीने रहकर पुनः काशी लौटे। कुछ समय व्यतीत होने पर तुलसीदासजी ने बसवंत को घर लौट जाने की आज्ञा दी साथ ही अपने गले की माला और हनुमान्‌जी की एक मूर्ति प्रदान की, और बसवन्त गुरु-प्रसाद लेकर घर लौट गये।[1] गुरु गुड़ और चेला शक्कर। बसवन्त ने भगवान् राम की आज्ञा से तुलसीदासजी को गुरु बनाया था पर शिक्षा दी शिष्य ने गुरु को। इसको क्या कहा जाय—सम्प्रदाय भावना या आत्मदर्शाया? हाँ यह सम्भव है कि जब गोस्वामीजी मनुष्य गये थे तो बसवंत भी उनके साथ दर्शक-रूप में रहे हों।

न जाने बाबरों में गुटकी किसने मिलायी। अस्तु। पं रामचन्द्र शुक्ल[2] और पं० चन्द्रबली पाण्डे ने[3] वार्ताओं को सन्देह की दृष्टि से देखा है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को (चौरासी वार्ता को छोड़कर) दो सौ बावन वार्ता के श्रीगोकुलनाथ कृत होने में सन्देह है। किन्तु श्रीद्वारकादास परीख श्रीकण्ठमणि शास्त्री और डा० दीनदयालु गुप्त उसे प्रामाणिक मानते हैं। इन्होंने इसकी प्रामाणिकता के विषय में जो तर्क दिये हैं उनका उल्लेख श्री प्रभुदयाल मित्तल ने कुछ इस प्रकार किया है[4]:—

(१) वार्ताओं की सभी प्रतियों में जो उपलब्ध हुई हैं ऐसा मिला मिलता है 'श्री गोकुलनाथजी रचित' 'श्री हरिरायजी कृत'। किसी तीसरे व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं।

(२) 'चौरासी वार्ता' की जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें चैत्र शुक्ला पंचमी सं० १६६७ की लिखी हुई सब से प्राचीन है और काँकरोली विद्याभवन में विद्यमान है। यह प्रति श्री गोकुलनाथजी के दिवंगत होने से एकाध मास पूर्व उनके जीवन काल में लिखी गयी थी अतएव प्रामाणिक है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ये वार्ताएँ १६६७ वि० तक लिखित रूप में प्रकाशित हो चुकी थीं।

(३) 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' पर 'भावप्रकाश' नामक टीका भी प्राप्त है। 'भावप्रकाश' को हरिरायजी ने लिखा और हरिरायजी गोकुलनाथजी के बड़े भाई के पौत्र होने के नाते अंतेवासी और समकालीन थे। 'भावप्रकाश' की रचना का अनुमान १७२६ और १७३० वि० के मध्य समझा जाता है। सं० १७२२ की लिखी चौरासी और अष्टसखान की वार्ता की भावना-संयुक्त प्रति पाटन से मिल

---

१ गुरुभक्त के महाकाव्य शिष्य-संतोष जनक डॉ विश्वनाथ शर्मा। आगरा प्रचारिणी पत्रिका पृ ३४ संख्या २ १३ वर्ष २ अंक १।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ १४ ३२२।

३ विकर सिर्ता में वैष्णव की वार्ता लेख, पृ १ ३ १३०।

४ हिन्दुस्तानी पत्रिका १९३२ ई०।

५ भावना परिचय पृ ३३-३४ भावना मित्र मथुरा द्वितीय संस्करण, २००६ वि।

चुकी है अतएव यह स्वयंसिद्ध है कि १७५२ वि० तक 'भाव प्रकाश' की रचना अवश्य हो चुकी थी।

(४) श्री गोकुलनाथजी के समकालीन श्री देवकीनन्दनकृत प्रभुचरित चिन्तामणि' में वार्ताओं का उल्लेख है। चौरासी वार्ता का 'संस्कृत मणिमाला' नामक संस्कृतानुवाद उपलब्ध है जो अनुमानतः १७२७ वि० के लगभग रचा गया होगा।

(५) हरिरायजी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट ने सं० १७२९ में 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' रचा। इसमें गोकुलनाथजी के रचे हुए ग्रन्थों में वार्ताओं का उल्लेख इस प्रकार है—

> वचनामृत चौरासी किय देवी जन सुखदान।
> वल्लभ विट्ठल वार्ता प्रकट कीन गुप्त मान॥

इसके अतिरिक्त गोकुलनाथजी के समय में लिखी हुई 'चौरासी वार्ता' की प्राचीन प्रति मिली है। उसमें सं० १७५२ लिखा हुआ है और 'भावप्रकाश' भी प्राप्त है।

"उपर्युक्त विवेचन से वार्ताओं की प्राचीनता और प्रामाणिकता के अतिरिक्त उनका गोकुलनाथजी एवं हरिरायजी द्वारा रचित होना भी सिद्ध है।"[1] अतएव जीवन-घटनाओं के सम्बन्ध में उनका उपयोग होने में आपत्ति न होनी चाहिए। यह माना जा सकता है कि सम्प्रदाय के नाते उनमें नन्ददासजी को तुलसीदासजी की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान किया गया हो। किन्तु अब से शताब्दियों पूर्व जबकि तुलसीदास और नन्ददास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई विवाद उपस्थित न था वार्ताकारों और वचनामृत पिलाने वालों को क्या पड़ी थी कि व्यक्तियों की जाति स्थान आदि के विषय में मिथ्या प्रचार करते? ऐसा करने में उनका क्या स्वार्थ था?

(च) स्फुट समर्थन

'रामचरित मानस' की कतिपय टीकाओं में एवं अन्यत्र कुछ ऐसे वचन बिकीर्ण और प्रच्छन्न मिलते हैं जिनसे छोरों-सामग्री की पुष्टि हो जाती है यथा—

(अ) रियासत सरीला जिला हमीरपुर की श्रीमती रानी कमल कँवरि देवजू ने गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित लिखा। इसकी १९५२ वि० की छपी हुई प्रति का उल्लेख श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० ४९ पर किया है। रानी ने जीवन चरित चौपाई दोहों में दिया और नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई लिखा है। गुरुभाई का उल्लेख मिथ्या नहीं क्योंकि तुलसीदास और नन्ददास दोनों ही गुरु नृसिंहजी से पढ़ते थे और ताऊ-चचा-जात भाई भी थे। त्रिपाठीजी ने जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं वे हैं—

> द्विज सनौढ़िया पावन जानो राजापुर में जन्म बखानो
> संवत सौ तेरासी जन्म भयो तुलजाल सोरा सौ अस्सी बरस हो गए अन्तरधान।
> बनिता से अति प्रेम लगायो मंदिर माँहि सोच उर छायो
> सुरसरि पार गये उबराई एक मुरदा की नाव बनाई।

इस उद्धरण में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे

---

१. भावप्रकाश परिचय पृ० ६९।

और गंगाजी को पार कर ससुराल गये थे। पर राजापुर में गंगाजी कहाँ ? सरयोग छिपा हुआ है।

(आ) टीकाकार और जीवनीकार (१) रामायण बालकाण्ड १। दर मतब हिंदू प्रेस लाला प्यारेलाल के एहतमाम से छपी सं० १९२८ वि०। इसमें 'नर रूप हरि' का अर्थ नर हरि दास वाराह क्षेत्र निवासी' पृष्ठ ४ पर, और 'सूकर क्षेत्र' का अर्थ 'गंगा तीर सोरों घाट जहाँ बारह अवतार भया' पृष्ठ २६ पर किया गया है।

(२) असीमपुर-सीरी के पण्डित सीताराम मिश्र ने गोस्वामी तुलसीकृत रामायण की टीका में लिखा है—

'नन्दास सनोढिया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहने वाले थे। गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था। तारक नाम का पुत्र हुआ था।

(३) श्री सूरजभान अग्रवाल ने 'रामचरित मानस रामायण टीका सहित' में लिखा कि तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से कर लिया।

(४) पं० रामेश्वर भट्ट ने १९०२ में तुलसीकृत रामायण में लिखा कि दीनबन्धु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य भक्त जानकर अपनी युवती कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।

(५) विद्यावारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने तुलसी-कृत रामायण की अपनी संजीवनी टीका में लिखा कि 'इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।

(६) पं० बाबूराम मिश्र 'रामचरितमानस सटीक' में लिखते हैं कि 'ये (तुलसीदास) स्मार्त वैष्णव थे।'

(७) इसी प्रकार डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इस उक्ति की पुष्टि की कि 'तुलसीदासजी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे।

(८) असीमपुर-सीरी के निवासी और रामायण के टीकाकार पं० नारायण प्रसाद मिश्र के १९३० ई० के वचन हैं कि 'प्रसिद्ध है कि दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका (तुलसीदास का) विवाह हुआ था जिसके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।

(९) संवत् १९५९ वि० की ज्ञानसागर प्रेस बम्बई में छपे 'रामचरित मानस' के प्रारम्भ में प्रदत्त जीवन-चरित के पृष्ठ ३ और ४३ पर 'सूकर क्षेत्र' का अर्थ गंगा किनारे का सोरों' किया गया है।

(१०) मानस के अनन्य प्रेमी राजबहादुर लाला सीतारामजी ने तुलसीदास जी को सारी में उत्पन्न सनाढ्य ब्राह्मण माना है[1] यद्यपि सारी की सत्ता के विषय में उनकी धारणा निर्भ्रान्त नहीं रही। महात्मा कपकलाजी ने भी उनका जन्म सारी में माना है।[2]

---

१ रामपुर का अयोध्याकाण्ड भूमिका।

२ तुलसी, रामबोली तुलसी पृ० ३।

(११) तुलसी के अनन्य भक्त रामदासजी गौड़ भी गोस्वामीजी को तारी जात समझते थे।

(१२) पण्डित गोविन्द वल्लभ भट्ट ने १९२९ ई० की माधुरी में जो लेख लिखा था उसमें इस बात का उल्लेख है कि 'श्री तुलसी-स्मारक-सभा, राजापुर के एक अधिकारी ने जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र-व्यवहार किया, तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट रूप से साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।

(१३) शिवनन्दन सहायजी ने अगस्त १९२१ में 'माधुरी' के २४ वें पृष्ठ पर अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के बड़े बूढ़े लोग कहते हैं कि यह गोसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होने पर वे कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और आया जाया करते थे।"

(१४) अब से लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व श्री अयोध्याजी प्रबोधवन-कुटिया निवासी श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद का सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त श्री भक्त माल नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से १९११ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके ७४१ वें पृष्ठ पर उन्होंने अपने अनुसन्धान का निष्कर्ष इस प्रकार दिया है

"जन्मस्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा जिले में यमुना तीर राजापुर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर आपका जन्मस्थान नहीं है। श्री गोस्वामीजी का जन्मस्थान श्री गंगाराम क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में तरी नामक ग्राम था तारी था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया इसी से श्री गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमान् जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह बातें वहाँ का के भली प्रकार निश्चय की है, राजापुर में श्री गोस्वामीजी आज्ञा कर गये हैं कि देव-मंदिर छोड़ अपने रहने को पक्का गृह कोई न बनवावे ऊपर छपरे छवावे और वैसा नहीं बनावे"—इत्यादि।

(घ) विदेशी अनुसंधान—(१) अंग्रेजों ने १८२७ ई० के पश्चात् अपनी राज्य सत्ता को सुदृढ़ करके भारत के विभिन्न स्थान, प्रान्त मण्डल जिले आदि के विवरण लेख जनश्रुति आदि के आधार पर प्रस्तुत किये। १८७४ ई० में श्री एट किन्स ने 'स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउण्ट ऑव द नार्थ प्रॉविंस ऑव इण्डिया' बुन्देलखण्ड जिल्द १ सम्पादित की। १८८६ ई० में डब्लू० डब्लू० हण्टर ने 'इम्पीरियल गजेटियर ऑव इंडिया' जिल्द ११ का सम्पादन किया। १९०८ ई० में 'इम्पीरियल गजेटियर ऑव इंडिया प्रू० पी० २ प्रॉविंशल सीरीज और १९०९ ई० में बाँदा जिले का 'गजेटियर' प्रकाशित हुआ। इन के उपयुक्त सङ्कलन ग्रन्थ यथास्थान दिये जा चुके हैं, जिनका सार यह है कि सम्राट् अकबर के काल में 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदासजी सोरों के निवासी थे, उन्होंने

वहाँ से आकर राजापुर की नींव डाली और जनता को भगवद्भक्ति की ओर प्रेरित किया।

(२) सर ज्यौर्ज ए० ग्रियर्सन ने महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी आदि कतिपय भारतीय विद्वानों के साहाय्य से गोस्वामीजी की जीवनी और रचना पर स्वयं अनुसंधान कर इस ओर भारतीय तथा अभारतीय विद्वानों को प्रेरित किया। उनका अनुमान था कि गोस्वामीजी का जन्मस्थान वह तारी ग्राम था जो अंतर्वेद (दुआब) में स्थित है। राजापुर के निकटवाला तारी ग्राम अंतर्वेद में नहीं है परन्तु सोरों के निकट वाला तो है, वहाँ सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी की जन्मभूमि थी। ग्रियर्सन महोदय की गवेषणा के अनुसार, गोस्वामीजी के पिता आत्माराम माता हुलसी पुत्र नृसिंह श्वसुर दीनबन्धु पाठक पत्नी रत्नावली, और पुत्र तारक था जो उन्हीं के समय दिवंगत हो गया था। श्री एफ० एस० ग्राउज ने १८७६ में लिखा कि गोस्वामीजी की शिक्षा सोरों में हुई। तदनन्तर अनेक विदेशी लेखकों ने गोस्वामीजी की जीवनी के सम्बन्ध में इन्हीं दोनों का न्यूनाधिक अनुसरण किया है।

(ज) जनश्रुति

पूर्वी जिलों से प्राप्त निम्नलिखित जनश्रुति है जिसका उल्लेख ग्रियर्सन कर चुके हैं —

> पूर्वे आत्माराम है पिता नाम जग जान
> माता हुलसी कहत सब तुलसी के गुन गान।
> ग्रह नाम रामबोला नाम करि पुत्र को सुनिये साधु
> प्रगट नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराधु।
> दीन बन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
> रत्नावलि तिय नाम है पुत्र तारक जत होइ॥

सारों-सामग्री

द्वितीय भाग हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन

प्राक्कथन—एटा-बदायूं जिलों से कुछ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका उल्लेख सोरों-सामग्री के अंतर्गत होता है। ये गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं। अतएव तत्सम्बन्धी चौदह हस्तलिखित पोथियों का समालोचनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

(१) रत्नावलीचरित—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—'रत्नावली चरित' को मुरलीधर चतुर्वेद ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। यह छोटी सी जिल्द है जिस में लेखक की अन्य रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। पुस्तक का प्रारम्भ संस्कृत में गणेश-स्तव से होता है इस के लिखित पूर्व पृष्ठ पर छात्र पंक्तियों का उपयोग हुआ है। अगले पृष्ठ पर श्री गणपति और सरस्वतीजी के लिए प्रकृति और संस्कृत में तुलसीदासजी के लिए प्रशस्ति है। तत्पश्चात् १०॥ पृष्ठों १०१ पंक्तियों एवं १६३ हिन्दी-पद्यों में रत्नावली का जीवन चरित है। फिर छः छप्पय हैं जिन में से दो में श्री तुलसीदास और नरहरिदासजी के जन्मस्थानादि का उल्लेख है तीन में चतुर्वेदजी के जन्मस्थान सूकरक्षेत्र की महिमा है, और अन्तिम में उनकी जरावस्था का वर्णन तथा आयु के ८१ वें वर्ष में प्रवेश का उल्लेख है। छप्पय-षट्क में १८ पंक्तियाँ हैं। तत्पश्चात् दस पंक्तियों में कृष्णदासकृत वंशावली के दस दोहे हैं।

अन्त में छप्पय चतुष्टय में वर्ष के वार और इष्ट के घटीपल निकालने की क्रिया का वर्णन है। साथ ही चतुर्वेदजी ने कार्तिक सुदी १० बुधवार संवत् १८२६ को अपने ८१वें वर्ष में जो प्रवेश किया उस का लग्नचक्र और पंचवर्गी चक्र, तथा चन्द्र-भवना के सम्बन्ध में संस्कृत की दो पंक्तियाँ दी गयी हैं।

यह पुस्तक सिली हुई तथा कत्थई रंग के देशी कपड़े की जिल्द से युक्त है। इसमें दस पत्र और अठारह लिखित पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ का आकार ८·६×५·० इंच और लिखित अंश ६·७×३·१ इंच है। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६ शब्द हैं। आदि और अन्त अनेरिक से चर्चित हैं। आरम्भ पृष्ठों को छोड़कर सभी पर एक एक काली रेखा के दो हाशिए हैं। कागज देशी और टिकाऊ तथा मसि काली और चमकीली है। यद्यपि पुस्तक भले प्रकार रखी हुई प्रतीत होती है तथापि उस पर काल की छाप और दीमक के कुछ छिद्र लक्षित होते हैं। इसकी वर्तमान दशा बुरी नहीं कही जा सकती।

लिपि देवनागरी है और अपने समय की अन्य लिपि के समान है। 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग हुआ है पर संस्कृत-शब्दों में 'ख' का भी। अधिकांश अक्षर आकर्षक हैं किन्तु निम्नलिखित अक्षरों के रूप विशेषतः द्रष्टव्य हैं र, ध, ग, च और ण्य। शब्द परस्पर सटे हुए हैं उनमें व्यवधान नहीं। विराम-चिह्न

लिखित है—एकाकी खड़ी पाई और खड़ी पाई का प्रयोग। जहाँ-कहीं कोई अक्षर अथवा शब्द छूट गया है वहाँ हंसपद (फुटनोट) का प्रयोग हुआ है और छूटा हुआ शब्द-अक्षर उसके ऊपर लिख दिया गया है।

रामचन्द्र तो संस्कृत के महाकवि भवभूति का स्मरण दिलाता है। 'रामायणी चरित' में जो छन्द प्रयुक्त है वह मधु किन्तु मंजुल है। छन्दों का भी उपयोग हुआ है। चरित की भाषा ब्रजभाषी है पर छन्दों की प्रवहमाया या निश्छन्द संस्कृत और स्वाभाविक है।

पुस्तिका केवल 'रामायणी चरित' से विदित्त है। यह इस प्रकार है 'इति श्री रामायणी चरित संपूर्णम् शुभम। संवत १८८९ मासोत्तम शुक्ल १ प्रतिपदायाम शुक्र वासरे निशिथम् चतुर्वेद मुरारीदेव सौरों सत्र शुभ भवतु। पुस्तिका में उक्त तिथि का ३१ जुलाई १७७२ ई० संवत है।

(ख) रामचन्द्रम की प्रति—उक्त 'रामायणी चरित' की 'लिखित रामायणी' शीर्षक से भी उपलब्ध है। पुस्तिका में लिखित है कि मुरारीदेव चतुर्वेद के लिए रामचन्द्रम लिख ने सौरों में मासोत्तम शुक्ल १ रविवार १८६८ वि० संवत्सर २ लिखकर १८०७ को यह प्रतिलिपि प्रस्तुत की थी। लिपिकार संवत्सर में ठीक है।

पाण्डुलिपि में १ पत्र अथवा १७ पृष्ठ हैं जिनमें एक शीर्षक पृष्ठ भी सम्मिलित है। पृष्ठ का आकार है १० इंच / ६ ३ इंच और लिखित भाग है ९ ५ / ६ ७ इंच। सामान्यतया प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १ शब्द है।

पत्र देशी और कागज चिकना है। किनारे लिखे हुए हैं। पारम्भिक प्रतियों पुस्तिकाएँ तथा पंक्तियाँ इस विशेष चिह्नों के लिखित रामायण का प्रयोग हुआ है। बीच के पृष्ठ पर विशेष चिह्नों के दाहिनी हाशिये है।

देवनागरी लिपि सुवाच्य है। प्रत्येक अक्षर स्पष्ट और सुन्दर है यद्यपि शब्द परस्पर संबद्ध हैं। लिपिकार ने मूल प्रति के ए ऐ ओ औ ल्ल ल्ह को ए, ऐ, ओ, औ, ल्ल ल्ह आधुनिक वर्तनियों में परिवर्तित कर दिया है। कुछ अक्षर भ्रा है जो उचित नहीं। उदाहरण मूल 'ड' का 'ध' में कर दिया गया है यथा ब्राह्मण बाद। पाद 'ध' को 'ध' कर दिया गया है जो रामायणीय परिपाटी के विरुद्ध प्रतीत होता है। यद्यपि 'ध' और 'ध' दोनों अपने अनुचित रूप में हैं, तथापि मूल का रूप लिखा गया है।

यह पुस्तक पंडित रामचन्द्र की तत्कालीन लिखित रूप में उपलब्ध पाण्डुलिपि रूप पाठ के लिखनी पंडित मुरारी विहारी बाहुर का उपलब्धि रूप में प्राप्त हुआ १० मई १९६३ वि० संवत्सर १० फरवरी १९३७ ई० को प्रकाशित हुई।

यह बात स्पष्ट देख पाता है कि लिपि में मुरारीदेव की मूर्ति पर कवित्त बनाने की प्रवृत्ति प्रकाशित की है। प्रतियों में जैसा कि निर्देश किया जा चुका है परिवर्तन किया गया। लिपिकार ने प्रति की १६वीं पंक्ति का प्रारम्भ 'कवित्त' शब्द से प्रारम्भ किया। यह देवनागरी में लिखना भूल गया है। यहीं नहीं लिपि में मानुष के छन्द तथा मुरारीदेव के कवित्त छन्दों को भी छोड़ दिया। अन्त में अथवा मानुषाकार ? उन्होंने मुरारी के मूर्तिक चरण और चरण छन्दों को छोड़ कर लिखे और उनके

सारों-सामग्री

द्वितीय भाग हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन

प्राक्कथन—*एटा-बदायूं जिलों से कुछ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख सारों-सामग्री के अंतर्गत होता है। ये गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं। अतएव तत्सम्बन्धी चौदह हस्तलिखित पोथियों का समालोचनात्मक विवरण दिया जा रहा है।*

(१) रत्नावलीचरित—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—'रत्नावली चरित' को मुरलीधर चतुर्वेद ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। यह छोटी सी जिल्द है जिस में लेखक की अन्य रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। पुस्तक का प्रारम्भ संस्कृत में गणेश-स्तव से होता है इस के लिखित पूर्ण पृष्ठ पर सात पंक्तियों का उपयोग हुआ है। अगले पृष्ठ पर श्री गणपति और सरस्वतीजी के लिए प्रशस्ति और संस्कृत में तुलसीदासजी के लिए प्रशस्ति है। तत्पश्चात् १०॥ पृष्ठों १०१ पंक्तियों एवं १६३ हिन्दी-पद्यों में रत्नावली का जीवन-चरित है। फिर छः छप्पय हैं जिन में से दो में श्री तुलसीदास और नन्ददासजी के जन्मस्थानादि का उल्लेख है तीन में चतुर्वेदजी के जन्मस्थान सूकरक्षेत्र की महिमा है और अन्तिम में उनकी जरावस्था का वर्णन तथा आयु के ८१ वें वर्ष में प्रवेश का उल्लेख है। छप्पय षट्क में १८ पंक्तियाँ हैं। तत्पश्चात् दस पंक्तियों में छप्पनसंख्यक पंचावली के दस दोहे हैं।

अन्त में छप्पय-चतुष्टय में वर्ष के चार और इष्ट के चटीपल निकालने की क्रिया का वर्णन है। साथ ही चतुर्वेदजी ने कार्तिक सुक्ला १० बुधवार संवत् १८२६ को अपने ८१वें वर्ष में जो प्रवेश किया उस का लग्नचक्र और पंचवर्षी चक्र तथा चन्द्र-भवना के सम्बन्ध में संस्कृत की दो पंक्तियाँ दी गयी हैं।

यह पुस्तक लिखी हुई तथा कत्थई रंग के देशी कपड़े की जिल्द से युक्त है। इसमें दस पत्र और अठारह लिखित पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ का आकार ८ ६×५ ० इंच और लिखित अंश ६·७×३ ६ इंच है। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६ शब्द हैं। आदि और अन्त अवेरिक से अंकित हैं। आद्यन्त पृष्ठों को छोड़कर सभी पर एक एक काली रेखा के दो हाशिए हैं। कागज देशी और टिकाऊ, तथा मसि काली और चमकीली है। यद्यपि पुस्तक भले प्रकार रखी हुई प्रतीत होती है तथापि उस पर काल की छाप और दीमक के कुछ चिह्न लक्षित होते हैं। इसकी वर्तमान दशा बुरी नहीं कही जा सकती।

लिपि देवनागरी है और अपने समय की अन्य लिपि के समान है। 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग हुआ है पर संस्कृत-शब्दों में 'ख' का भी। अधिकांश अक्षर आकर्षक हैं किन्तु निम्नलिखित अक्षरों के रूप विशेषतः द्रष्टव्य हैं ट, ठ, ण ष और ष्य। शब्द परस्पर सटे हुए हैं उनमें व्यवधान नहीं। विराम-चिह्न

लिखित है—एकाकी खड़ी पाई और खड़ी पाई का युग्म। जहाँ-कहीं कोई अक्षर अथवा शब्द छूट गया है वहाँ हंसपद (केरेट) का प्रयोग हुआ है और छूटा हुआ शब्द ऊपर उसके ऊपर लिख दिया गया है।

मनोमस्तव तो संस्कृत के महाकवि जयदेव का स्मरण दिलाता है। 'रत्नावली चरित' में जो छन्द प्रयुक्त है वह लघु किन्तु सप्रवाह है। छप्पय का भी उपयोग हुआ है। चरित की भाषा ब्रजभाषी है पर छप्पयों की ब्रजभाषा जो नितान्त सरस और स्वाभाविक है।

पुष्पिका केवल 'रत्नावली चरित' में विद्यमान है। वह इस प्रकार है इति श्री रत्नावली चरितं संपूर्णम् शुभम्। संवत् १८२६ आषाढ़ शुक्ल १ प्रतिपदायाम् शुक्र वासरे लिखितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्र शुभ भवतु'। परीक्षा में उक्त तिथि को ३१ जुलाई १७७२ ई० संगत है।

(ख) रामवल्लभ की प्रति—उक्त 'रत्नावली चरित' की प्रतिलिपि 'रत्नावली' शीर्षक से भी उपलब्ध है। पुष्पिका से विदित है कि मुरलीधर चतुर्वेद के शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने सोरों में माघशीर्ष शुक्ला ६ शनिवार १८६४ वि० तदनुसार ५ दिसम्बर १८०७ को यह प्रतिलिपि प्रस्तुत की थी। तिथि-वार गणना से ठीक है।

पाण्डुलिपि में ६ पत्र अथवा १७ पृष्ठ हैं जिनमें एक शीर्षक पृष्ठ भी सम्मिलित है। पृष्ठ का आकार है ९·० इंच × ६·२ इंच और लिखित भाग है ६·५ × ६·७ इंच। सामान्यतया प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३ शब्द हैं।

पत्र देशी और मसि अंकित है। किनारे घिसे हुए हैं। प्रारम्भिक प्रणति पुष्पिकांश तथा अधिकांशतः हल विराम चिह्नों के निमित्त रक्तमसि का प्रयोग हुआ है। बीच के पृष्ठ पर विराम नहीं है। सभी पृष्ठों पर रक्त त्रिरेखाओं के दो-दो हाशिए हैं।

देवनागरी लिपि सुवाच्य है। प्रत्येक अक्षर स्पष्ट और अलग है यद्यपि शब्द परस्पर संलग्न हैं। लिपिकार ने मूल प्रति के ल ग ज्ञ क्ष त्र स्व को छ, ग ज्ञ क्ष, त्र आदि कोमल ध्वनियों में परिवर्तित कर लिया है। कुछ अपवाद भी हैं जो अधिक नहीं। बहुधा मूल 'ष' को 'ष' में कर दिया गया है यथा जाइ—जाय। प्रायः 'ष' को 'स' कर दिया गया है जो तत्कालीन परिपाटी के विरुद्ध प्रतीत होता है। यद्यपि 'ष' और 'च' तो अपने आधुनिक रूप में हैं तथापि 'मु' को 'स' लिखा गया है।

यह पुस्तक अलीगढ़ की तहसील खिरखिया राज के अन्तर्गत पोरहा ग्राम के निवासी पण्डित मुरलीधर किशोर पोहार को उड़ेमरी ग्राम से माघ शुक्ला १० सं० १९९३ वि० तदनुसार २० फरवरी १९३७ ई० को प्राप्त हुई।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिष्य ने गुरुदेव की कृति पर कलम चलाने की अक्षम्य धृष्टता की है। अक्षरों में जैसा कि निर्देश किया जा चुका है परिवर्तन किया गया। लिपिकार मूल प्रति की १२वीं पंक्ति को अर्थात् 'चरन सरन रज जासु कोइ। परम देहकर रहित होइ' लिखना भूल गया है। यही नहीं शिष्य ने संस्कृत के छन्द तथा गुरुदेव के कतिपय छप्पयों को भी छोड़ दिया। भूल से अथवा जानबूझकर? उन्होंने पुस्तकी के तृतीय चतुर्थ और पंचम छप्पय तो छोड़ कर लिये और प्रथम

द्वितीय तथा षष्ठ छोड़ दिये। षष्ठ का सम्बन्ध गुरुदेव के व्यक्तिगत जीवन से था अतः वह कदाचित् शिष्य को अग्राह्य रहा। अस्तु। किन्तु प्रथम और द्वितीय सम्भव शिष्य को क्यों अग्राह्य हुए? स्यात् इसलिए कि लिपिकार को गोस्वामीजी की अपेक्षा सोरों के माहात्म्य में अधिक रुचि थी, पर कहीं इसलिए तो नहीं कि रामपुर का उल्लेख उसकी समझ में सोरों की अभीष्ट महत्ता को, अतएव पण्डाओं की आय को भी कुछ न कुछ कम कर देने की आशंका प्रदान करता हो।

ब्राह्मणों की आजीविका-नाश के भय से नन्ददासजी को भागवत का अनुवाद रोक देना पड़ा और रामायण को हिन्दी में उपस्थित करने के कारण गोस्वामीजी को कष्ट सहना पड़ा था। अतएव रामबल्लभ मिश्रजी अपनी 'सूर-दयिता' से प्रेरित प्रतीत होते हैं।

(२) रत्नावली के दोहे—रत्नावली के दोहों के दो संस्करण हैं अर्थात् रत्नावलीकृत—'दोहा रत्नावली' और 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह'। पहले की दो प्रतियाँ और दूसरे की भी दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं जिनका परिचय नीचे दिया जा रहा है —

(क) गोपालदास की प्रति—'दोहा रत्नावली'—यह रत्नावली के २०१ दोहों का संग्रह है। पुष्पिका के अनुसार गोपालदास ने मुंशी माधोराय के लिए उसकी प्रतिलिपि भाद्रपद अमावस्या सोमवार १८२४ वि अर्थात् २४ अगस्त १७६७ ई० को पूर्ण की। गणना से यह तिथि ठीक है। पुष्पिका के नीचे उर्दू में लिखा है कि मुंशी माधोराय इस प्रति के स्वामी थे जो जाति के सक्सेना कायस्थ एवं बदायूँ नगर के निवासी थे। यह प्रति बदायूँ के पं० शिवनारायण (लल्ला) वैद्यराज से बाबू बलभद्रप्रसाद गुप्त को प्राप्त हुई थी।

इसमें १६ पत्र अथवा ३० पृष्ठ हैं जिनमें आवरण-पृष्ठ भी सम्मिलित है। श्वेत और टिकाऊ कागज के बने प्रत्येक पत्र का माप है ८ ६ इंच × ६ ३ इंच और लिखितांश है ५ ५ इंच × ४ ३ इंच। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ और दो रक्त रेखाओं के बीच-बीच हाशिए हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में ६ शब्द हैं। मंगलाचरण पुष्पिकांश एवं विराम-चिह्न चमकीली लाल स्याही के हैं शेष पुस्तक चमकीली काली स्याही में है। प्रति की दशा बुरी नहीं है। लिपि देवनागरी स्पष्ट है जिसका प्रत्येक अक्षर पृथक है यद्यपि शब्द व्यवधान रहित हैं अक्षरों की शिरोरेखाएँ अंकित हैं। कुछ अक्षरों की बनावट जटिल अथवा आकर्षक है यथा क ल त ग प य ख क की। ध्यानाकर्षक बात यह है कि पृष्ठ ७ में शिरोरेखा पर विलोम हंसपद विद्यमान है और छूटा हुआ शब्द हाशिए पर लिखा गया है।

(ख) बगावर की प्रति—'दोहा रत्नावली'—दो-सौ एक दोहों के संग्रह की यह प्रतिलिपि बंगावर ब्राह्मण ने की। इसकी पुष्पिका है "इति श्री लापसी रत्नावली की दोहा रत्नावली संपूरनम् शुभम् संवत् १८२९ माघी शुदि ३ चन्द्रे लिखितम् बंगावर ब्राह्मण ओल मारग स्थीपे बारह खेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।" उक्त तिथि शुक्र है जो ३१ अगस्त १७७२ ई० को पड़ी थी।

इस पाण्डुलिपि में १० पत्र अथवा १८ पृष्ठ हैं। पूर्व पृष्ठ पर कुछ वर्ष हुए श्वेतवर कागज सुरक्षा के निमित्त चिपका दिया गया था। प्रति में देशी टिकाऊ कागज

का उपयोग हुआ है। इसकी दशा बुरी नहीं है। प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर दो-दो रेखाओं के हाशिए हैं। विराम-चिह्नों के तथा कतिपय हाशियों की रेखाओं के निमित्त कदाचित् पीले से लाल मसि का भी प्रयोग हुआ है किन्तु वह इतनी फीकी हो गई है कि काली सी प्रतीत होती है और काली भी फीकी पड़ गई है। मंगलाचरण एवं पुष्पिका यैरिक से अंकित है।

पत्र का आकार १ ६ इंच×६ ३ इंच और लिखितांश का ९ इंच×४ ३ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में लगभग १२ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग १४ शब्द हैं। अन्तिम पृष्ठ पर पुष्पिका के पश्चात् लाल-सी मसि से किन्तु भिन्न सुलेख में मुरलीधर चतुर्वेद-कृत संस्कृत छन्दों में तुलसीदासजी की प्रशस्ति है। इसे (मोहल्ला चौंसठ सोरों के निवासी) पं रामस्वरूप निगेरिया ने अपने कागजों में से ढूँढ़कर प्रदान किया। इन्हीं से अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्ड के भी कुछ अंश चन्द कृष्णा ११ गुरुवार तदनुसार १६ माघ १९३९ को मिले।

देवनागरी लिपि अशुद्ध है किन्तु पर्याप्त रूप से पढ़ी जा सकती है। अक्षराकार परस्पर सटे हुए हैं। लिपिकार ने ककार और उकार की पुच्छों को बहुत बढ़ाया है जो पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि लिपिकार ने रत्नावली के ४२वें दोहे के द्वितीय शब्द को अशुद्ध पढ़ा। उसने दक्षिण हाशिए पर 'ससि' शब्द के 'सि' के लिए 'सी' लिखा है। प्रतीत होता है कि उसे स्वयं दोहे के संवत् का निश्चय करने में सन्देह रहा होगा और ऐसा ही सन्देह उसके पाठकों को भी। किसी पाठक ने तो कदाचित् उसे शोधने के निमित्त पकार को ककार में परिवर्तित करना भी चाहा हो कुछ सावधानी एवं संकोच के साथ क्योंकि 'पर' का कुछ अर्थ नहीं निकलता। मसि से प्रतीत होता है कि ककार की पुच्छ पीछे की बनी है। यदि पकार को ककार में परिवर्तित कर दिया जाय तो संवत् १६२४ का अंक भासित होने लगेगा। पर यह संवत् ठीक नहीं। गोपालदास का प्राकृत पाठ शुद्ध है जो इस प्रकार है

सागर य रस ससी रतन
संवत भो दुवदाह
पिय बिछोग जननी मरन
कारन न जूझ्यो जाइ ॥४२॥

यहाँ ससी=१ रस=६ य=० और सागर=४ अतएव गोस्वामी तुलसीदास के गृह-त्याग का संवत् १६०४ वि० था।

(घ) रामचन्द्र की प्रति— रत्नावली लघु दोहा संग्रह'—अर्थात् रत्नावली के बनाये १११ दोहों का छोटा संग्रह। इसकी प्रतिलिपि बदरिया ग्राम में पंडित रामचन्द्र ने चैत्र कृष्णा १६ शुक्रवार १८७४ वि० को की।

इस प्रति में १२ पत्र अथवा २४ पृष्ठ हैं जिनमें से अन्तिम तो कोरा है और प्रथम मुखपृष्ठ है जिस पर कहते हैं गंगाराम्जी शर्मा के हाथ से लिखा है 'दोहा रत्नावली और संवत् १९२५ वि० भी पड़ा है। लिपि देवनागरी है।

पत्र दशी और टिकाऊ है जिसका आकार है ६ १ इंच×६ ३ इंच और पृष्ठ

का लिखितांश है ४·१ इंच×४·० इंच। पृष्ठ में लगभग ११ पंक्तियाँ और पंक्ति में लगभग ८ शब्द हैं। कुछ पर्वों को दीमक ने भेद डाला है अन्यथा प्रति की अवस्था ठीक है। पुष्पिका के कुछ भाग और दोहों की संख्याओं को पेज से रख दिया गया है।

इस प्रति के विषय में तीन आपत्तियाँ उपस्थित हैं। प्रथमतः इसकी लिखावट सुन्दर पर आधुनिक है। प्रत्येक पृष्ठ के हाशियों पर रक्तांकित मसि से चारों ओर बेलबूटे बनाये गये हैं जिनसे पुरातत्त्व के कलाकार रा० ब० काशीनाथ नारायण दीक्षित को इसके तत्कालीन होने में सन्देह हुआ था। द्वितीयतः यद्यपि आरम्भिक शब्दावली 'अब रतनावली हुत दोहा लिख्यते' में सकार के स्थान में षकार विद्यमान है तथापि पीछे अनेक स्थलों में सकार सकार ही लिखा गया है जो तत्कालीन तथा तत्स्थानीय प्रथा के विरुद्ध था। तृतीयतः जिस तिथि को यह प्रतिलिपि समाप्त हुई वह गणना से अशुद्ध है क्योंकि उस दिन शुक्रवार नहीं सोमवार था। अतएव यह प्रति अप्रामाण्य है।

(घ) ईश्वरनाथ की प्रति—'रतनावली लघु संग्रह'—की एक और प्रति है जिसमें १११ दोहे हैं। लिपिकार हैं ईश्वरनाथ पंडित। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री रतनावली लघु दोहा संग्रह सम्पूरनम् ॥लिखितम् ईस्वरनाथ पंडीत सोरों की मिती माह सुदी तेरसि १३ सोमवार सवतु १८७५ में ॥गंगा॥" यह तिथि गणना से ठीक है उस दिन ८ फरवरी १८१९ ई० थी।

इस पाण्डुलिपि में १० पत्र अथवा २० पृष्ठ हैं जिनमें से प्रथम और अन्तिम पर पुस्तक का नाम है और पत्र-संख्या भी। प्रथम से यह भी विदित होता है कि लिपिकार इसके स्वामी थे।

इसका पत्र देशी और टिकाऊ है आकार है ८·७ इंच×५·४ इंच और पृष्ठ का लिखित भाग ६·० इंच×४·१ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में सामान्यतया १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ९ शब्द हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर तीन-तीन रेखाओं के हाशिए हैं, जिनमें से मध्य रक्त और शेष दो अंकित हैं। प्रति के किनारे घिसे हैं अन्यथा उसकी दशा ठीक है।

लिपि तो देवनागरी है, किन्तु इतनी भद्दी कि देखनेमात्र से ही ऊब जाय अवाच्य तो नहीं किन्तु इसके वाचने में परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। सभी अक्षर और शब्द एक दूसरे से सटे हुए हैं। सप्तम पृष्ठ पर एक शब्द लिखने से छूट गया था जो भिन्न हस्त के द्वारा रक्तिम मसि से लिख दिया गया है मूल मसि चमकीली काली है। दो बातें विशेष द्रष्टव्य हैं। प्रथम तो यह है कि प्रथम पृष्ठ की आठवीं पंक्ति में दो शब्द छूटे हैं। छूटे हुए स्थानों पर हंसपद लगाकर हाशियों में शब्द लिख दिये गये हैं। दूसरी बात यह है कि मकार के नीचे प्रायः बिन्दु लगाया गया जो अंग्रेजी भाषा के 'ण' का स्मरण दिलाता है। यह प्रति पण्डित पाहा (सोरों) के पण्डित बशीधर पचौरी के प्रपौत्र और श्री गोपालजी के पुत्र पं० प्यारेलाल कवि के पुस्तकालय से बीच सुखला १४ मंगलवार अर्थात् ७ जनवरी १९३६ को प्राप्त हुई।

(३) रामचरित मानस—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' की दो प्रतियाँ अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट की थीं, जिनमें से स्यात् एक

रत्नावली के निमित्त थी। दोनों के एक-एक काण्ड शेष हैं वे भी खण्डित रूप में। वे हैं —

(क) बालकाण्ड—यह पाण्डुलिपि देशी कागज पर लिखी हुई है जिसका आकार ११ इंच × ५·४ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में सामान्यतः ३७ अक्षर हैं। विषय सुबोध्य है। लिखने के लिए काली मसि का और विराम चिह्नों के लिए लाल का प्रयोग हुआ है। किनारे दग्ध हैं। इस काण्ड के ३१ पत्र नन्ददासजी के वंशज मुरारीलालजी के यहाँ से सोरों में कार्तिक सुदी ९ शनि १९९२ वि० तदनुसार २ नवम्बर १९३५ को प्राप्त हुए थे। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल (वै) राग्य संपादिनी नाम १ सोपान समाप्त' संवत् १६४३ साके १५०८ काशी नंददास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथ दास ने काशी पुरी में। यह पुस्तक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है और इसमें दीमक ने यत्र-तत्र छिद्र कर दिये हैं। इसका पाठ परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

(ख) अरण्य काण्ड—यह प्रति देशी पत्र पर है जिसका आकार है ११ ३ इंच × ५·७ इंच। इसके अक्षर काले हैं और शीर्षनाम रक्त हैं। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में दश पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३७ अक्षर हैं। किनारे घिसे हुए हैं। लिपि सुबोध्य है। इसका पूर्ण पाठ परिशिष्ट-रूप से दिया जा रहा है। यह प्रति गोस्वामी तुलसीदास के आदेशानुसार सोरों निवासी उनके भतीजे कृष्णदास के लिए काशी में गोस्वामीजी के शिष्य लक्ष्मणदास ने आषाढ़ सुदी ४ सुक्रवार १६४३ वि० तदनुसार १० जून १५८६ ई० को प्रस्तुत की थी। मात्रा से लिपि शुद्ध है। इस प्रति के १३ पत्र उक्त बालकाण्ड के साथ उपलब्ध हुए थे।

(४) सूकरक्षेत्र माहात्म्य—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—मुरलीधर चतुर्वेद ने यह प्रतिलिपि १८०१ वि० में की। इसके केवल दो पत्र ८·७५ इंच × ४·२५ इंच के उपलब्ध हैं। प्रारम्भ के पृष्ठ पर निम्नांकित कोष्ठकों के अन्तर्गत अंश को छोड़ कर यह लिखा हुआ है।

> गनपति गिरा गिरीश गिरिजा गंगा गुरु चरन
> बंदहुँ पुनि जगदीश छवि बराह अहि बहुरन ॥१॥
> बंदहुँ तुलसीदास पितु बड़ भ्राता पद बरनउ।
> जिन निज बुद्धि बिलास रामचरित मानस रच्यौ ॥२॥
> सानुज श्री नंददास पितु की बंदहु चरन रज
> कीनो सुजस प्रकास रास पंच अध्याय भनि ॥३॥
> बंदहुँ कृपा निकेत पितुपुर श्री नर सिंह पद
> बंदहुँ शिष्य समेत बल्लभ आचारज सुपद ॥४॥
> बंदहुँ कमला मात बंदहुँ पद रतनावली
> जासु चरन जल जात सुमिरि लहहिं तिय सुर भली ॥५॥
> सुकुल बंश कुल भूस पितरन पद बरसिज (नमहुँ
> रहहिं सदा अनुकूल कृष्णदास निज बंस भनि ॥६॥)

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सुकुल ब्राह्मणवंशीय तुलसीदासजी रामचरितमानस के

कीरति की मूरति जहाँ राजै अयोध्या की
तीरथ बराह भूमि बेनु जे बाई है
जाही ग्राम रामपुर स्याम सर कीने तात
स्यामायन स्यामपुर बास सुखदाई है।
सुकुल बिप्रबंस मे बिप्र तहाँ जीवाराम
तासु पुत्र नंदबास कीरति कवि पाई है।
ता सुत हौं कल्यदास बर्षफल भाषा रच्यौ
चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है ॥१॥
सोरह सौ सत्तावनि बिक्रम के बर्ष माह
भई अति कोपदृष्टि बिस्व के बिधाता की
बीतत अषाढ़ बाढ़ आई बढ़ि [illegible] चूनी
बूड़ी जल जन्म भूमि रत्नावलि माता की
नारी नर बूड़े जल सेस बड़ भाग रहे
बिन्हुमिट बदरी के कुपद कथा ताकी
सासु मम कल्य मास तेरसि सनि कल्यदास
बर्षफल पूरी भई दया जीव-दाता की ॥२॥

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि फलित ज्योतिष की इस पुस्तक को कल्यदासजी ने अपने विद्वान् पितृव्य चन्द्रहास की इच्छा से लिखा था। पुस्तक को समाप्त करने से पूर्व उन्होंने अपने वंश के विषय में संकेत किया है कि मैं उन नन्ददासजी का पुत्र हूँ जो जीवारामजी शुक्ल ब्राह्मण के पुत्र थे और मेरे पिता ने अपने ग्राम का नाम रामपुर से बदलकर श्यामपुर रख दिया था। उन्होंने कुछ के साथ इसका भी उल्लेख किया है कि रत्नावली की जन्मभूमि बदरी को गंगाजी की उस बाढ़ ने नष्ट कर दिया जो १६५७ वि० के आषाढ़ मास के अन्त में आई थी। उपर्युक्त तिथि वार गणना से शुद्ध है।

इस वर्षफल की प्रतिलिपि जो उपलब्ध है छन्नूलाल ने की थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री कवि कल्यदास विरचित भाषावर्ष फल सम्पूर्णम् संवत् १८७२ मार्गसिर कृष्णा तृतीया ३ गुरु वासरे सहसवान नगरे। शुभम्। शुभम्।" इसके अन्तिम अर्थात् १८वें पन्ने पर यह पुष्पिका है 'इति भृगुवा दशा विचार। गुरुवर भानुदत्त शिष्येन उपाध्याय सोमनाथ पुत्रेन छन्नालालेन लिखितम्। सं० १८०२ मार्गसिर कृष्णा ४ पितृवासरे'। कदाचित् उक्त छन्नलाल को अपने गुरु भानुदत्त और पिता सोमनाथ के नामानुसार गुरुवासर और पितृवासर शब्दों से रविवार और सोमवार अभीष्ट थे।

इस पाण्डु लिपि में १८ देशी पत्र हैं। यह अन्त प्रभावित प्रतीत होती है। इसकी जिल्द कभी नहीं बँधी, यद्यपि ऐसा करने का विचार रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। इसके पत्र ६"७ इंच×४"३ इंच और लिखित अंश ४"३ इंच×३ ३ इंच हैं। इसके प्रत्येक पृष्ठ में सामान्यतः ६ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में सात शब्द। दो-दो लाल रेखाओं के हाशिए दोनों ओर हैं। छन्द-विरामचिह्नों के निमित्त रक्तमसि का उपयोग

हुआ है। पृष्ठ १३ और १६ पर कुछ शब्द और पृष्ठ १७ पर अन्तिम शब्द लालमसि के हैं। मंगलाचरण शीर्षक और लिपिकार की पुष्पिका पर गेरू फेर दिया गया है।

लिपि देवनागरी है जो नितान्त सुवाच्य है। शिरोरेखाएँ ऐसी ही क्रमिक हैं जैसी कि 'रत्नावली चरित' की उस प्रति में जो गोपालदास के द्वारा प्रस्तुत है। प्रथम पृष्ठ पर विलोमित हंसपद के द्वारा चकार के स्थान चकार ऊपर लिख दिया गया है। असंख्यात द्वितीय पृष्ठ पर अशुद्ध रकार के ऊपर शुद्ध रिकार लिखा गया है। कभी कभी हाशिए का उपयोग छूटे हुए शब्दों के लिए हुआ है। एक स्थल पर विकृताक्षर पर मुद्रा का चिह्न अंकित कर दिया गया है और उसका उचित रूप हाशिए पर लिखा गया है। पृष्ठ १७ पर छूटा हुआ सकार विलोम हंसपद के साथ हाशिए में लिख दिया गया है और उस स्थल पर शिरो रेखा के निकट विलोम हंसपद दे दिया गया है।

(८) सेवादास की टीका—नाभादास कृत 'भक्तमाल' पर प्रियादास ने 'भक्तिरस बोधिनी' टीका की उस पर सेवादास ने अपनी टीका मार्गशीर्ष शुक्ला १० बृहस्पतिवार सं १८९४ वि० तदनुसार ७ दिसम्बर १८३७ ईसवी को पूर्ण की जो गणना से ठीक है।

पाण्डुलिपि में पृष्ठ के दोनों ओर तीन-तीन रक्त रेखाओं के हाशिए हैं। निर्देश चमकीली रक्त मसि में लिखे गये हैं शेष पुस्तक काली मसि में है। प्रधान विषय तो पृष्ठ के मध्य में दिया गया है और टीकाएँ मूल के ऊपर-नीचे हैं। अधिक टिप्पणियाँ छोटे अक्षरों में हाशिए पर लिखी गयी हैं।

जिस कागज का उपयोग हुआ है वह देशी और टिकाऊ है। सब मिलाकर २१८ पत्र हैं १२२ १९२ १९५ और १९६ संख्यक पत्र विद्यमान नहीं हैं। प्रथम और अन्तिम पृष्ठों पर सुरक्षा के हेतु, कागज चिपका दिया गया है। पत्र का आकार १२·७ इंच × ६·७ इंच है और लिखितांश का १० · ० इंच × ५ · ६ इंच। सामान्य रूप से प्रत्येक पृष्ठ में १६ से २० तक पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग १९ शब्द हैं।

लिपि देवनागरी है शब्दान्तर सटे हुए हैं। इस प्रति के १४३वें पृष्ठ पर नन्ददासजी का और १६३वें पृष्ठ पर तुलसीदासजी का उल्लेख है। वर्तना की भयंकर किन्तु मनोरम भूलें विद्यमान हैं यथा ऐसे के लिए 'वैसे'। मुम्बई के वेंकटेश्वर श्री कृष्णदास ने १९५७ वि० में भक्तमाल सटीक प्रकाशित किया है उसमें और प्रस्तुत प्रति में आश्चर्यजनक साम्य है किन्तु उस में सेवादास का नामोल्लेख नहीं है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि श्रीदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य को पण्डित कुंजबिहारीलाल वैद्य और सोरों के राजारामजी के द्वारा स्व० पण्डित गंगाराम शास्त्री के पूर्वज प्राप्त पुस्तकालय से २५ जनवरी १९४० ई० को उपलब्ध हुई थी

नाभादासजी ने 'भक्तमाल' में गोस्वामी तुलसीदास के विषय में केवल एक छंद लिखा है वह यह है

> जता काव्य निबन्ध करी शत कोटि रमायन
> इक अक्षर उच्चरै ब्रह्म हत्यादि नसायन
> अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी
> रामचरन रस मत्त रहत अहर्निशि ब्रतधारी

सोरों-सामग्री

तृतीय भाग प्रत्यालोचन

प्राक्कथन— 'विशाल भारत' में तुलसी-सम्बन्धी लेखों को पढ़कर सोरों-सामग्री का अवलोकन करने लखनऊ विश्वविद्यालय के डॉ॰ दीनदयालु गुप्त १९३९ ई॰ में तत्पश्चात् प्रयाग विश्वविद्यालय के डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त उसी वर्ष व्यक्तिगत रूप से सोरों-कासगंज आये। दीनदयालुजी एक वर्ष पश्चात् सोरों-सामग्री की परीक्षा करने के लिए पुनः आये और दोनों बार उन्हें सामग्री प्रामाणिक प्रतीत हुई किन्तु माताप्रसादजी ने इस पर कुछ सन्देह प्रकट किये हैं। डॉ॰ उदय नारायण तिवारी पं॰ चन्द्रबली पांडे आदि विद्वानों ने कतिपय शंकाएँ उठायी हैं। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने 'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की 'बहिरंग परीक्षा' और 'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की अन्तरंग परीक्षा' नामक दो लेख लिखे जो 'सम्मेलन पत्रिका' में संवत् १९९७ वि॰ के श्रावण भाद्रपद और फाल्गुन, चैत्र के अंकों में तदनन्तर 'तुलसीदास' नामक उनके प्रबन्ध में भी प्रकाशित हुए। अतएव उन एवं अन्य शंकाओं पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

(अ) अन्तरंग परीक्षा

गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली ने अपनी पुस्तक 'दोहा रत्नावली' में ४२वाँ दोहा इस प्रकार दिया है—

सागर पर रस ससी रतन संवत जो दुपदाइ।
पिय बियोग जननी मरन करन न मुख्यो जाइ ॥४२॥

इस दोहे के प्रथम चरण में, ससी=शशि=१ रस=६ प=ख=आकाश=०, सागर=४। रत्नावली इस प्रकार अपने पति-वियोग और मातृ-मृत्यु का संवत् १६०४ वि॰ देती है। 'दोहा रत्नावली' की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं एक तो गोपालदास की जो १८२४ वि॰ की है और दूसरी मंगाधर की जो १८२९ वि॰ की है।

मंगाधर ने उक्त दोहे के प्रथम चरण का जो पाठ दिया है वह इस प्रकार है— सागर पर रस सशि रतन। उन्होंने पाठान्तर रूप से हाशिये पर 'सशि' का इकार दीर्घ कर दिया है। प्रतीत होता है कि उन्हें स्वयं संवत् अस्पष्ट था। किसी पाठक ने शकार में पूँछ लगाकर उसे ककार बनाने की चेष्टा की है किन्तु कुछ हिचकिचाहट के साथ जैसा कि स्याही से स्पष्ट है। प्रति की मूल स्याही काली है और पूँछ लाल-सी मसि में लगाई गयी है। गोपालदास का पाठ शुद्ध और स्पष्ट है उनकी प्रति मंगाधर की प्रति से कुछ पुरानी है किन्तु वह कुछ पीछे लिखी थी। 'तुलसी प्रकाश' के एक छन्द में 'निधि रस सिन्धु इन्दु संवत् का उल्लेख है, उसमें इन्दु=१, सिन्धु=४, रस=६

निधि=निधि=२ अर्थात् १४६९। यह शक संवत् है और रत्नावली के दिये हुए १६०४ वि० संवत् से मेल खाता है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इटावा की छपी दोहा रत्नावली का उपयोग किया और उन्हें 'सागर कर रस ससी रतन' का अशुद्ध पाठ ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने 'सागर' का अर्थ 'सात' किया है 'चार' करना चाहिए था अतएव उन्होंने सम्पूर्ण चरण से १६२७ वि० संवत् ग्रहण किया है। उनकी 'अंतरंग परीक्षा' का मूलाधार यह अशुद्ध संवत् ही है। रत्नावली में जो संवत् दिया है वह वास्तव में १६०४ वि० है। मूल के शोध लेने पर 'अन्तरंग परीक्षा' के तर्क और कल्पना पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

(आ) बहिरंग परीक्षा

सोरों की दस-विध सामग्री पर डॉ० गुप्त ने विचार किया है। यद्यपि उन्होंने समस्त पुस्तकों की प्राचीनता को स्वीकार किया है और उन्हें उन्हीं शताब्दियों की लिखी बताया है जिनकी वे लिखी हुई हैं फिर भी अनेक स्थलों पर उन्हें निम्न लिखित सन्देह उत्पन्न हुए हैं —

(१) रामचरितमानस का बालकाण्ड। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है— 'इति श्री रामचरित मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने विमल राम संपादिनी नाम १ सोपान समाप्त' संवत् १६४१ साके १५०८ वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथदास ने काशीपुरी में। डॉ० गुप्त मानते हैं कि देखने में प्रति इतनी काफ़ी पुरानी जान पड़ती है कि वह विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जा सके फिर भी उन्हें ये तीन सन्देह उत्पन्न हुए हैं —

(क) "पुष्पिका की अंतिम पंक्ति और अन्त से दूसरी पंक्ति के बीच में एक छोटी आड़ी रेखा इस प्रकार खींची गई कि उससे जान पड़ता है कि पुष्पिका उसके ऊपर ही समाप्त हो गई थी। इस शंका के समाधान में कहा जा सकता है कि दो विषयों के पार्थक्य को दिखाने के लिए ही आड़ी रेखाएँ खिंची प्रतीत होती हैं अर्थात् काण्ड की समाप्ति के और प्रतिलिपि के विवरण के पार्थक्य को। यदि पुष्पिका को आड़ी रेखा से पूर्व तक ही मान लिया जाय तो भी प्रति १६४१ वि अर्थात् १५०८ शक संवत् की लिखी हुई स्पष्ट है।

(ख) दूसरी शंका है कि 'अंतिम पंक्ति की लिखावट शेष प्रति और पुष्पिका की लिखावट से पूरा-पूरा मेल नहीं खाती।' यद्यपि 'अक्षरों के बीच के फ़ासले और उनकी बनावट में साम्य दिखाई पड़ता है' तथापि 'अन्तिम पंक्ति में अक्षरों के ऊपर स्याही फेरकर उन्हें बिगाड़ दिया है अतः इन लिखावटों का मिलान गोलाई और अंत की हल्लियों से नहीं किया जा सकता।

इसके समाधान में निवेदन है कि मैंने 'बाल काण्ड' की उक्त प्रति के सभी उपलब्ध पृष्ठों को देखा है। उसमें अनेक स्थलों के अक्षर पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति के अक्षरों के समान हैं। फ़ोटोग्राफ़िक किरणों के द्वारा विदित हुआ कि पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति पर स्याही फेरी हुई नहीं है। सन्देह का कारण देश और जल का प्रभाव

हो सकता है। किरणों से यह भी प्रकट हुआ कि समस्त पुष्पिका के नीचे और कुछ लिखा हुआ नहीं और न पहली किसी लिखावट को मिटा कर नयी ही लिखी गयी है। प्रधान बात तो यह है कि हस्तलेख के विशेषज्ञ की सम्मति में समस्त उपलब्ध काण्ड और उक्त दोनों पुष्पिकाएँ एक ही लेखक के हाथ की लिखी हुई हैं (देखिये परिशिष्ट)। इसी प्रकरण में यह कह देना आवश्यक है कि काशी के एक तथाकथित लिपि-विशेषज्ञ प्राध्यापक की आपत्ति है कि उन दिनों 'कृष्ण' और 'विष्णु' आदि शब्दों के 'ष्ण' को 'ष्न' नहीं लिखा जाता था पर रामचरितमानस के प्राय सभी प्रामाणिक छपे और हस्तलिखित संस्करणों में 'ष्न' विद्यमान है और यथावधि सर्व मान्य अयोध्या के 'बालकाण्ड' में भी। यह रूप 'सूरसागर' में भी उपलब्ध है यथा अनाथ के नाथ प्रभुहरन स्वामी (२१४) कृष्न कृपा सब ही तै न्यारी (३७२०)। अतएव आपत्ति नितान्त निराधार है।

(ग) संकाकार को पुष्पिका में संवत् १६४३ के '६' और '४' का एवं 'शाके' और १५०८ के बीच के अन्तर अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं किन्तु ध्यान देने की बात है कि पुस्तक में अन्य स्थलों पर इसी प्रकार के फासले हैं। यदि ऐसे अन्तर पुस्तक के अन्य स्थलों में न होते और केवल पुष्पिका में ही होते तो बात विचारणीय थी। '६' और '४' में इतना अन्तर रखने से लिपिकार का स्वार्थ-साधन भी क्या हो सकता था। विरल लेख तो उसका अभ्यास है। ऐसा प्रतीत होता है कि १५०८ को 'शाके' से इतना हटा कर लिखते समय लिपिकार की मनोवृत्ति हाशिये तक पहुँचने की थी। यों तो वह इस निमित्त खड़ी पाइयों का भी उपयोग कर सकता था किन्तु समय पर जो सूझ जाय वही ठीक है। उसे क्या पता था (और चिन्ता भी क्या थी) कि लगभग पौने-चार सौ वर्ष पश्चात् उसकी लिखावट पर सहानुभूति-रहित आक्षेप भी होगा।

(२) रामचरित-मानस का आरण्य-काण्ड। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है

१ इति श्री रा

२ मायणे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्ये संपादिनी पट सुजन संवादे राम वन चरित्र

३ वर्णनो नाम तृतियो सोपान आरंण्यकांड समाप्त ॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञासों जन

४ के भ्रातानुज बलभद्रास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखितं सज्जिमनदास काशीजी मध्ये सं

५. वत् १६४३ असाढ़ सुद ४ सुक्र इति ॥

इस विषय में डॉ० गुप्त मानते हैं कि 'देखने में यह प्रति इतनी काफी पुरानी जान पड़ती है कि विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जा सके' पर वे शंका करते हैं कि इस पुष्पिका में यह ध्यान देने योग्य है कि 'इति' से '॥३॥' तक का अंश पहले लाल स्याही से लिखा हुआ था पीछे से उस पर चमकदार स्याही फेरी गई है। इस पुनरुज्जन में केवल 'इति' और 'ये' के एकार की मात्रा अपने पहले रंग में बने हुए हैं शेष सभी काले कर दिये गए। इस अंश के अनन्तर 'श्री' से 'इति' तक का अंश

चमकदार काली स्याही से लिखा हुआ है। इस पर फिर स्याही नहीं फेरी गई है केवल संवत् का १६४' पुनर्लेखन का परिणाम जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त शंका चलती है कि "श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम 'इति' तक की लिखावट मेघ प्रति और पुस्तिका की लिखावट से शैली मति और अक्षरों के आकार के विषय में भिन्न ज्ञात होती है यद्यपि वह गोलाई और खत अक्षरों के बीच के फ़ासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में एकसी जान पड़ती है। 'क' 'ह' १ और '६ की और इकार की मात्रा की बनावट में दोनों अंशों में कुछ अन्तर ज्ञात होता है।

समाधान में कहा जा सकता है कि बात ऐसी नहीं है। 'श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम इति' पर्यन्त सभी मति और अक्षरों के आकार में भिन्नता नहीं जान पड़ती और इतना तो सकाकार भी मानते हैं कि लिखावट (गोलाई, खत अक्षरों के बीच के फ़ासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में) एकसी जान पड़ती है। हस्तलेख विशेषज्ञ की सम्मति में भी पुष्पिका और समस्त उपलब्ध काण्ड एक ही व्यक्ति के हाथ के लिखे हुए हैं (दे० परिशिष्ट)।

"इति' के देखने से ज्ञात होता है कि लाल मसि फीकी थी। अतः जान पड़ता है कि इति' को छोड़ पुष्पिका के समस्त लाल अक्षरों को पुनः काली स्याही से लिखा गया। 'वैराग्य' पर जो लाल मसि में चूक से एकार की मात्रा लग गयी थी वह काली स्याही के फेरते समय यों ही छोड़ दी गयी। वास्तव में वहाँ 'म्ये' अशुद्ध था और 'म्य' शुद्ध है।

जब यन्त्र के द्वारा इस पुष्पिका का परीक्षण किया गया तो विदित हुआ कि लाल अक्षरों पर काली मसि से लिखा गया और यन्त्र से यह भी विदित है कि "श्री" से 'निवासी" तक काले अक्षरों के सहारे लाल भी स्पष्ट है किन्तु "हेत" से अन्तिम इति" तक लाल अक्षर स्पष्ट नहीं और संवत् "१६४३ में से केवल '४' के नीचे लाल ४ भी चमकता है। वैज्ञानिक परीक्षक का अनुमान है कि रक्त मसि फीकी हो जाने के कारण पुनर्लेखन की आवश्यकता पड़ी होगी' मिटाया कुछ नहीं गया (दे० परिशिष्ट)।

हमारा तर्क है कि डॉ० गुप्त संवत् १६४३ के ३ को तो ठीक ही समझते हैं। '४' के नीचे '४' यंत्र के द्वारा चमकता ही है। 'रामचरितमानस' १६३१ वि० में लिखा गया और शंका सर्व-प्रथम १९९७ वि० में उत्पन्न हुई; अतएव ३ अपरिहार्य है। इसमें संदेह नहीं कि ६ अपेक्षाकृत बड़ा है यद्यपि लिपिकार '६ को बड़े आकार का भी लिखता था जैसा कि पुस्तक के अन्य स्थल से स्पष्ट है।

यदि यह बात थोड़ी देर के लिए मान ली जाय कि ६ के स्थान पर कोई अन्य अंक था तो यह जानना चाहिए कि उसके स्थान पर कौनसा अंक हो सकता था। यह तो असम्भव है कि '६ के स्थान पर ५ अथवा इससे भी पूर्व का और कोई अंक रहा हो क्योंकि 'मानस' १६३१ वि० में लिखा गया था। इसलिए १६३१ के पूर्व किसी भी संवत् की कल्पना निरर्थक है। '६ के स्थान में यदि हो सकता था तो वह अंक '७ ८ अथवा ९ होता। और यदि इनमें से कोई था तो उससे बने संवतों की मिति, पक्ष वार आदि का मेल भी होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं

है। मुझे भारत-सरकार के एपिग्राफिस्ट एवं पुरातत्व विभाग के संयुक्त-कर्मचारी से विदित हुआ है कि पुष्पिका की तिथि आषाढ़ शुक्ल ४ शुक्रवार संवत् १६४३ गणना के अनुसार ठीक है, और १७०३ १७४३ १८०३ १८४३, १९०३ अथवा १९४३ संवत् में उक्त तिथि पक्ष मास वार का योग न था पर यह योग १६४३ में था। अतः उक्त पुष्पिका के संवत् में किसी प्रकार के संदेह का अवकाश नहीं।

इसके अतिरिक्त यह और ध्यान देने योग्य है कि उक्त पुष्पिका में 'श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों' के नीचे भी लाल मसि के ये ही अक्षर, जैसा कि उल्लेख हो चुका है मूल-प्रति स्पष्ट हैं। तुलसीदासजी की आज्ञा तो उन्हीं के जीवन काल में अर्थात् १६८० वि० तक प्राप्त हो सकती थी। अतः ये शब्द भी उक्त प्रति की प्रामाणिकता के द्योतक हैं।

"शुद्ध' शब्द को लेकर कुछ विक्षिप्त कल्पना कर डाली गयी है। उसका समाधान तो किसी भी कोष से हो सकता है। 'शुद्ध' का अर्थ है शुक्ल पक्ष। एक विद्वान् की पुष्पिका में 'उनके' शब्द पर आपत्ति है कि खड़ी बोली का यह शब्द ब्रजभाषा में क्यों आ विराजा? निवेदन यह है कि यह शब्द चाहे ब्रजभाषा का हो चाहे खड़ी बोली का किन्तु उसका प्रयोग ब्रजभाषा के 'जाइयो' एवं तुलसीदासजी के समकालीन महाकवि नन्ददास ने 'भ्रमर गीत' में इस प्रकार किया है

"जो उनके गुन नाहिं जीव गुन भये कहाँ ते"। (२०)

तुलसीदासजी ने भी स्वयं 'गीतावली' (२ ३१) में 'उनकी' को इस प्रकार प्रयुक्त किया है

"उनकी कहनि नीकी रहनि लषन-सी की"

सूर और तुलसी दोनों ने ही 'उन' का प्रयोग किया है यथा—

"उन सो करी पाछिले की मति मन तीनो बिच जाए" सू सा० १,१७५

इस प्रकार यह पुष्पिका वैज्ञानिक एवं साहित्यिक परीक्षण से सर्वथा प्रामाणिक सिद्ध होती है।

(३) सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा—डॉ० गुप्त को 'देखने में प्रति इतनी पुरानी जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १९वीं शताब्दी का कहा जा सके किन्तु उसके प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से अलग लिखा जाना प्रत्येक शब्द में आने वाले अक्षर को शिरोरेखा के नीचे लिखा जाना और उन्हें प्रत्येक दूसरे शब्द के अक्षर-समूह से अलग रखा जाना खटकता है। प्रति का लिपि-काल संवत् १८७० दिया गया है इस समय के लगभग की एक भी प्रति शंकाकार के देखने में नहीं आई है जिसमें उपर्युक्त लेखन-शैली बर्ती गई हो। उत्तर में यह निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पुस्तक की एक और खण्डित किन्तु प्राचीनतर प्रति विद्यमान है जिसे पण्डित मुरलीधर चतुर्वेद ने सं० १५ ९ विक्रमी में नकल किया था और जिसकी लिपि-शैली निःसंदेह प्राचीन है। इसके अतिरिक्त कहा जा सकता है कि सूकरक्षेत्र माहात्म्य १९२७ वि० में अर्थात् आज से ९१ वर्ष पूर्व छप भी चुका था।

(४) रत्नावली—इसके विषय में डॉ० गुप्त मानते हैं कि देखने में प्रति इतनी पुरानी अवश्य जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १९वीं शताब्दी की कहा जा

सके। फिर भी शंका चलती है कि "रत्नावली अब दो संस्करणों में प्रकाशित है। एक पं० महादत्त की वैद्यभूषण काशमंत्र से प्राप्य है और दूसरा पं प्रभुदयालु शर्मा शर्मामिश्र इटावा से प्राप्य है। उसमें जो चौथा छप्पय दिया हुआ है वह अवश्य 'रत्नावली' प्रति में नहीं है।

कथन वस्तुतः सत्य है, किन्तु शंकाओं के बीच यह कुछ भ्रमोत्पादक हो गया है। अतः इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। मुरलीधर चतुर्वेद ने 'रत्नावली चरित' लिखा था। उसकी नकल उनके शिष्य रामबल्लभ मिश्र ने की। जिस छप्पय का उल्लेख है वह चतुर्वेदजी की प्रति में अन्य अनेक छप्पयों के साथ विद्यमान है किन्तु मिश्रजी ने 'रत्नावली' सम्पूर्ण करने के पश्चात् केवल तीन छप्पय दिये हैं जिनमें यह नहीं है। वैद्यभूषण वाली 'रत्नावली' का उपादान श्री नाहरसिंह सोलंकी ने किया और उन्होंने उस छप्पय को भी सम्मिलित कर दिया। या तो उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था अथवा उन्हें वहाँ पाद-टिप्पणी दे देनी चाहिए थी। शंकाकार ने इस ओर इशारा कर अच्छा ही किया। मैंने उचित समझा कि सोरों की सामग्री को मूल रूप में जनता के समक्ष रख दिया जाय। इसी दृष्टि से 'तुलसी चर्चा' नामक पुस्तक में मई १९४१ तक की प्राप्त सभी आवश्यक सामग्री यथासम्भव वर्षों की त्यों मैंने उपस्थित कर दी थी और प्रस्तुत प्रबन्ध में भी वह सब एवं तत्पश्चात् प्राप्त अन्य सामग्री उपस्थित की जा रही है।

मुरलीधर चतुर्वेद की रचना-शैली के विषय में भी शंका इस प्रकार उठायी गयी है— जब हम मुरलीधर चतुर्वेद-कृत 'रत्नावली' की जाँच करते हैं तो हमें एक बात उसमें खटकती है। वह है उसकी शैली और शब्द-विन्यास का अपेक्षाकृत आधुनिक होना। नीचे लिखी पंक्तियों में यह बात ध्यान देने योग्य है

> तीन प्रेम तुम करी पार नाथ प्रेम के तुम अधार
> मम सुप्रेम निज हिये धार उतरे प्रिय सुरसरित पार।
> जय अधार पद प्रेम धार जात मनज भव उदधि पार
> प्रेम हीन जीवन असार नाथ प्रेम महिमा अपार॥

शंकाकार ने यह निर्देश नहीं किया है कि उक्त उद्धरण में आधुनिकता किन कारणों से है और न यह दिखाया कि अमुक शब्द छन्द या भाव उन दिनों प्रयुक्त नहीं होता था जिन दिनों की यह कृति है। नीचे कुछ प्राचीन छन्द उद्धृत हैं जिनकी शैली मिलती-जुलती है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ५६, अंक १ संवत् २००८) में श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज नामक लेख में बेचनाथ या बेपू की कविता का कुछ अंश दिया है जिसका रचना-काल १५५७ वि० और लिपि-काल १७२७ वि० दिया गया है —

> इहि संसार न कोऊ रह्यो। भान कुवर बेपू सों कह्यो
> माता पिता पुत्र संताक। यहि सब दीसे माया जाल
> जाहि नाम का कलजुग रहै। जीव सदा सुखी की कहै
> कहा बहुत करि कीजै आनु। जो जानै गीता को ग्यानु॥

उक्त पत्रिका के वर्ष ५७ अंक १ संवत् २००९ में श्री वासुदेव गोस्वामी ने हरिराम

व्यास को सत्रहवीं शताब्दी का माना है और उनकी रचना में से निम्नलिखित त्रिपदियाँ उद्धृत की हैं—

कहौ भागवत सुक अनुराग
कैसे समझै बिनु बड़ भाग
श्री गुरु सरन कृपा करी ॥
व्यास दास करि बरनौं रास
चाहत है वृन्दावन बास
करि राखै इतनी कृपा ॥
निजु दासी अपनी करि मोहि
नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहि
नव निकुंज सुख पुंज में ॥
हरि बंसी हरि बासी जहाँ
मुहि कहना करि राखौ तहाँ
नित्य बिहार अपार है ॥
कहत सुनत बाढ़ै रस रीति
मोतहि बरनहि हरिपद प्रीति
रास रसिक गुन गाइहौ ॥३०॥

इसके अतिरिक्त महाकवि सूरदास के गीतानुवाद की छन्द भाषा-शैली सुरसीधर चतुर्वेद की शैली से कितनी अधिक मिलती है। ब्रज भारती के वर्ष १० संख्या ४ ६ में श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने 'सूरगीता' का परिचय दिया था उसमें

धृतराष्ट्र उवाच

अति धर्म्म क्षेत्र कुरु क्षेत्र भव्य। सुत मेरे सब पांडव अतिरिक्त ॥
युध हेतु जुरे जे सरव आय। सो करत कहा संजय बताय ॥

संजय उवाच

देखो पांडव सेना उदार। करि व्यूह रचन सम्यक प्रकार ॥
दुरजोधन आचारज समीप। ए जाकि कहे सुनिये दृपीप ॥
पांडव सेना वीरय विचारि। द्रोनाचारज सीखन निहारि ॥
है धृष्टिद्युमन सब जिय बलिष्ठ। तिहिं करी बिहु रचना प्रतिष्ठ ॥
अति सूर धनुरधर बपु प्रचण्ड। अरजुन भीम जोधा अखण्ड ॥
जुजधान और भूपति बिराट। संग्राम बिसारन सत्रु घाट ॥

इस शैली की तुलना 'रत्नावलि चरित' से कीजिये

बर्यौ बिरद बरास हंस। बर्यौ सनकादिक मुनीस ॥
सती सारद हि सीस नाइ। सावित्री सिय पुनम पाइ ॥
अरुन्धती दमयन्ति नारि। अनसूया पुनि गान्धारि ॥
सती भई जे जगत माय। तिनहि सबनु बहुँ करि प्रनाम ॥

पार्वती-विवाह सम्बन्धी सूरसागर की निम्न लिखित पंक्तियों पर और विचार कीजिये :

सती हियें धरि सिव को ध्यान।
रज्जु जड़ में छोड़े प्रान॥ ४२

और अन्त में साम्यकेनिपत्ति गोस्वामी तुलसीदास की ही शैली का अवलोकन कीजिये—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर भीर
भय कछु तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ
तेहि अवसर हम निज पानि। फिरे मरन मन ठानि
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष कर संधानि
छाड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन
चिक्करत लागत बान। धर परत कुबर समान
भट करत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड
खग कंक काक सृगाल। कट कटहिं कठिन कराल।

रा० ३ १९ क १ १३

(३) रत्नावली लघु दोहा संग्रह—इसकी दो प्रतियाँ हैं। एक तो पं० रामचन्द्र बरहिया वाले के हाथ की सं० १८७४ में लिखी हुई और दूसरी ईश्वरलाल पण्डित के हाथ की संवत् १८७५ की लिखी हुई। डा० गुप्त दोनों प्रतियों को इतनी पुरानी मानते हैं कि वे १९वीं शताब्दी की ही कही जा सकें। वे यह भी लिखते हैं कि 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य हमें कोई सन्देहजनक बात ज्ञात नहीं होती। फिर भी उनकी संज्ञा इस प्रकार प्रस्फुटित होती है—"पर सोरों में मिली हुई प्रत्येक अन्य सामग्री के सन्देहातीत न होने के कारण इस 'लघु दोहा संग्रह' के सम्बन्ध में भी यदि किसी को पर्याप्त विश्वास न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।" इसके उत्तर में केवल यही निवेदन है कि यह सका आयका-माप है। इस लघु संग्रह के २ ४ ७ ९, ११ १३, १६ १७ १८ और ९९ संख्यक दोहे ही रत्नावली-तुलसीदास के जन्म-स्थान तथा अन्य परिचय के लिये पर्याप्त हैं।

(४) दोहा रत्नावली—डॉ० गुप्त लिखते हैं कि 'दोहा रत्नावली" की यदि कोई प्राचीन प्रति है तो हमें देखने को नहीं मिली इसलिए उसके सम्बन्ध में हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं।" वे अन्यत्र कहते हैं कि पं० प्रभुदयाल वाले संस्करण का आधार कोई हस्तलिखित प्राचीन प्रति है या नहीं यह कहना कठिन है।"

यदि कोई वस्तु अकाधार को देखने को न मिल सकी तो क्या वह संसार में हो नहीं थी? लखनऊ विश्वविद्यालय के डॉ दीनदयालु गुप्त उनसे पहले ही सोरों हो गये थे। तत्पश्चात् उन्होंने 'तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली' नाम का लेख लिखा जो जनवरी १९४ की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में छपा। उस अंक के द्वितीय पृष्ठ पर वे लिखते हैं 'रत्नावलि के दोहा संग्रहों में से एक में १११ दोहे हैं,

और दूसरे में २०१ दोहे हैं। इन्होंने महात्मा तुलसी के जीवन पर भी एक नया प्रकाश डाला है। इन ग्रंथों की प्रामाणिकता की मैंने सोरों जाकर जाँच की है और मुझे इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर सन्देह करने का विशेष कारण नहीं ज्ञात होता है। हिन्दी के विद्वानों से निवेदन है कि वे इस सामग्री की निष्पक्ष रूप से जाँच करें।" ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० दीनदयालु गुप्त के मन में किन्हीं लोगों ने कुछ सन्देह उत्पन्न किये क्योंकि वे सकाकार के एक वर्ष पश्चात् दोबारा सोरों-सामग्री की परीक्षा करने आये। किन्तु फिर भी उन्होंने सोरों-सामग्री को प्रामाणिक ही पाया। जनवरी १९४१ की 'हिन्दुस्तानी' में उन्होंने महाकवि नन्ददास का जीवन चरित लिखा। उसके २९५वें पृष्ठ पर उन्होंने लिखा कि 'मैंने दो बार सोरों जाकर इन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मुझे ग्रन्थ प्रामाणिक जान पड़े हैं। 'दोहा रत्नावली' की एक और प्रति बदायूं से प्राप्त हुई जिसको गोपालदास नामक व्यक्ति ने गवाधर से भी पहले १८२४ वि० में नकल किया था। इन दोनों की और लघु-दोहा-सवहों की प्रतिलिपियाँ पाठान्तर, सहित 'तुलसी चर्चा' में और प्रस्तुत प्रबन्ध में संकलित हैं।

एक विद्वान् को रत्नावली की रचना में 'हृदयेस" और 'वा" खटकते हैं। वे पहले शब्द को बँगला के और दूसरे को आर्य समाज के साहित्य से प्रेरित प्रभावित मानकर उस रचना को रत्नावली के समय की नहीं समझते। समाधान-रूप से निवेदन किया जा सकता है कि जिन शब्दों का प्रयोग तुलसीदास जी ने किया है क्या उनका प्रयोग उनकी पत्नी नहीं कर सकती थी? तुलसीदास जी ने लिखा

"सब बहुत अनुज हृदयेसा", रा० उ० ११० ख २
'तिन्ह के सब वैभव वा बिबेका", रा० उ० १६क ७

रत्नावली ने भी लिखा

हाय सहज ही हौं कही सहजो जीव हिरदेस। दो० र० १
बिबस दुखित ह्वै चलि गये रतनावलि कर भूप। दो० र० २
जाके कर में कर दयो मात पिता वा भ्रात। दो० र० ११६

(७) गोस्वामी तुलसीदास का घर— मुहल्ला जोग मारग (योग मार्ग) में कुछ यही नामक एक मुसलमान ख्वाजे (?) का कच्चा मकान है। कहा जाता है कि उसी मकान के स्थान पर पहले गोस्वामीजी का मकान था। यह मकान किसी पुराने मकान के अवशेष पर बनाया हुआ जान पड़ता है। चहार दीवारी का फाटक स्पष्ट ही किसी पुराने फाटक के भग्नावशेष पर बनाया हुआ है मुसलमानों की एक बस्ती है जिसमें कसाई भी हैं।" कवि के घर के सम्बन्ध में सोरों में एक जनश्रुति है 'तुलसी घर मरपट्ट में मन कटियन के धाम। अपनी करनी आप संग तू क्यों होय उदास। ऊपर हमने जिस मकान की स्थिति देखी है उसके सम्बन्ध में यह जनश्रुति मान्य हो सकती है इसमें सन्देह नहीं। इस मकान के साथ एक और परम्परा सदी चली आती है। सोरों के लोगों का यह विश्वास है कि इस मकान की मिट्टी कन्दर (कर्णमूल प्रदाह) नामक रोग में गुणकारी होती है और इसीलिए वे अब भी इसे ले जाते हैं और कर्ण रोग में इसका प्रयोग करते हैं।' इस विषय में डॉ० गुप्त की शंका है कि "इस

परम्परा से यह बात सिद्ध नहीं होती कि यह मकान, जिसकी मिट्टी लोग इस प्रकार से खाते हैं तुलसीदास का था।" किन्तु इस विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त तथ्य निरी परम्परा ही नहीं इसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेद ने सं० १८२६ में अर्थात् आज से १७६ वर्ष पहले 'रत्नावली चरित' में इस प्रकार किया है—'चरन सदन रज बासु कोइ बरत बेह रज रहित होइ।

डॉ० गुप्त आगे लिखते हैं इस मकान के सम्बन्ध में एक और बात है जिसे सोरों को तुलसीदास की जन्मभूमि मानने वाले लोग प्रकाश में नहीं लाते। मुझे स्थानीय जाँच से यह बात हुआ है कि उपर्युक्त मकान उससे मिले-जुले कुछ मकान भी पहले राजोरियों के थे (शुक्लों के नहीं) और वे राजोरिया घराने भी धीरे-धीरे नष्ट हो गए हैं यह बात लेखक को कुछ कठिनाई के बाद ज्ञात हुई क्योंकि सोरों का अधिकांश जन समाज यह चाहता है कि सोरों तुलसीदासजी की जन्म-भूमि मानी जाय और यह बात कदाचित् उसके मार्ग में बाधक होती। फलतः जब तक इस बात का कोई यह विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिल जाता कि यह घर शुक्लों का था प्रस्तुत लेखक उसे राजोरियों का ही मानेगा।"

समाधान रूप से निवेदन है कि जब तुलसीदास सोरों के थे ही तो सोरों का अधिकांश जन-समाज क्यों न चाहे कि सोरों गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि समझी जाय। यह इच्छा तो स्वाभाविक और उचित थी। योग-मार्ग के वे सभी मकान राजोरियों के थे शुक्लों के नहीं यह तथ्य नहीं। उस मोहल्ले में तो और भी आस्पद वाले ब्राह्मणों के घर थे और हैं। लेखकार कुछ दिन तक भाषा-विज्ञान के अनुसार 'राजोरिया' शब्द को 'राजापुरिया' का विकृत रूप समझते थे किन्तु उन्होंने अपनी यह धारणा पीछे से बदल दी। लेखकार ने स्वयं बताया है कि राजौरा आगरे जिले में आगरा शहर से बत्तीस मील की दूरी पर है यद्यपि एटा जिले में भी राजौर नामक स्थान है। अतएव यदि राजोरियों का निकास राजौरा अथवा राजौर से मानें तो इसमें सिद्धांत की क्या हानि हुई? दिल्ली अथवा लखनऊ का रहने वाला कलकत्ते में भी बैठकर अपने को दिल्लवी अथवा लखनवी कहता है। आगरे के रहने वाले हमारे परिचित एक सुनार और एक जजी अपने नाम के आगे राजौरा लगाते हैं। मथुरा का मूल-निवासी मथुरिया कहा जाता है, तो राजौरा अथवा राजौर का मूल-निवासी राजोरिया कहा जा सकता है। पर क्या यह नितान्त आवश्यक है कि राजोरिया शुक्ल नहीं हो सकता। क्या यह आवश्यक है कि राजोरिया ब्राह्मण ही हों और क्या यह असम्भव है कि राजोरियों के मकान में शुक्ल नहीं रह सकते अथवा शुक्लों के घर में राजोरिया नहीं रह सकते? समय के बीतने पर राजोरियों का मकान शुक्लों का कहलाने लगता है अथवा शुक्लों का मकान राजोरियों का।[1]

(ब) महाकवि नन्ददास का घराना। इस विषय में डॉ० गुप्त इस प्रकार लिखते हैं — 'यहाँ पर सनाढ्य शुक्लों का एक घराना है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह नन्ददास की वंशपरम्परा में है। इस समय इस कुल में एक पंडित बाबूराम हैं

१ 'तुलसी प्रकाश' के अनुसार, बोलचाल तुलसीदास के पिता पंडित आत्माराम दुबे रामपुर से आकर राजोरिया बंशीधर मनसाराम के खेत पर में खेती का करते थे।

और उनका एक भतीजा है जो उनके भाई उन स्वर्गीय मुरारीलाल का पुत्र है जिनसे मानस की उपर्युक्त प्रतियों की प्राप्ति बताई जाती है। शंका इस प्रकार है "इस बात का यथेष्ट प्रमाण कोई नहीं है कि बाबूराम शुक्ल और उनके घर वाले नन्ददास के वंशज हैं। स्वर्गीय मुरारीलाल का कथन-मात्र इस सम्बन्ध में प्रमाण नहीं हो सकता। सोरों यात्रा में मैंने बाबूरामजी से मिलना चाहा पर वे बाहर चले गये थे। इसलिए मिलना न हो सका। पर जो कुछ मैंने उनके सम्बन्ध में वहाँ सुना उससे मुझे सन्देह हुआ कि वे भी अपने को नन्ददास का वंशज कहते हैं या नहीं।

गुप्तजी ने यह नहीं लिखा कि बाबूरामजी के विषय में उन्होंने क्या सुना जिस देना उचित था। न जाने उनका 'यथेष्ट प्रमाण' से क्या तात्पर्य है? राजा-महाराजाओं एवं कुछ समृद्ध वंशों को छोड़कर बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने पुरखों की बीस-बीस पीढ़ियों का विवरण दे सकें। जनश्रुति में तो कुछ न कुछ विश्वास करना ही पड़ता है। गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों था इसमें केवल जन-श्रुति ही तो प्रमाण नहीं है स्वयं गोस्वामीजी की कृतियाँ एवं अन्य सामग्री भी है। अतएव अनुकूल जनश्रुति तो प्रमाण ही समझी जायगी। हम कल्पना नहीं कर सकते कि बाबूराम जी के भाई स्व० मुरारीलाल जी का कथन क्यों प्रमाण नहीं हो सकता। और यदि बाबूरामजी उस समय जबकि शंकाकार सोरों आये थे, कहीं बाहर गये हुए थे तो शंकाकार सन्तोष के लिए और कुछ समय सोरों में ठहर सकते थे। पण्डित बाबूराम तो अपने को नन्ददासजी का वंशधर बताते हैं और सोरों के बहुत से लोग इस कथन में विश्वास करते हैं—यह क्या कम बात है?

(६) सोरों का नरसिंह मंदिर। इसके विषय में शंकाकार लिखते हैं—"सोरों में चौधरियों के मुहल्ले में पक्के मकान का एक खंडहर है। यह नरसिंहजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्राचीन खंड पूर्व और पश्चिम का है दक्षिण का खंड अपेक्षाकृत नवीन है और उत्तर की ओर कोई बनावट नहीं रह गई है। इसमें अब केवल हनुमानजी की एक मूर्ति है और कुछ नहीं।" शंकाकार को यहाँ दिशा भ्रम हुआ है। शंका आगे चलती है—'नरसिंहजी के मन्दिर के सम्बन्ध में जाँच करते हुए मैं उस स्थान के पटवारी मुन्शी विश्वेश्वरकर से मिला और उनसे मैंने उक्त मंदिर की खतौनी जमाबन्दी प्राप्त की। उस खतौनी में लिखा है 'मन्दिर नरसिंह जी महराज। प्रश्न यह है कि क्या यह शब्दावली इस बात की सूचना देती है कि उक्त मन्दिर किन्हीं नरसिंह चौधरी का था? कम से कम प्रस्तुत लेखक तो इस शब्दावली का आशय यही लेता कि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का न कि किन्हीं नरसिंह चौधरी का था। 'जी और महाराज शब्द तो कम से कम इसी ओर संकेत करते हैं।

गुप्तजी ने यह बहुत अच्छा किया कि उन्होंने पटवारी से यह सूचना प्राप्त की कि यह स्थान 'मन्दिर नरसिंह जी महाराज' के नाम से ज्ञात है नहीं तो यह सन्देह बना रहता कि कदाचित् यह मन्दिर ईश्वर के चतुर्थावतार नृसिंह भगवान् का ही हो। 'जी' का प्रयोग तो मनुष्य प्रायः एक-दूसरे के लिए करते हैं। यह शब्द

आदरसूचक है और क्या मनुष्य क्या देवता सभी के लिए प्रयुक्त होता है कदाचित् मनुष्यों के लिए अधिक क्योंकि 'विष्णुजी' की अपेक्षा 'विष्णु भगवान्' ऐसा कहना कहना अधिक आदर-पूर्ण प्रतीत होता है। और महाराज शब्द तो राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है यथा महाराज हर्षवर्धन महाराज कश्मीर। 'महाराज' शब्द ब्राह्मणों के लिए भी प्रयोग में आने लगा और इतना अधिक कि अब तो यह शब्द रसोइया अथवा पानी पिलाने वाले ब्राह्मण का भी द्योतक है। 'जी' और 'महाराज' दोनों शब्द मिलकर इस बात के साक्षी हैं कि गो० तुलसीदास के गुरु नरसिंह (अथवा नृसिंह) जी एक आदरणीय ब्राह्मण व्यक्ति थे जो अपने समाज में चौधरी समझे जाते थे।

एक बात और है। यदि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का होता तो इसमें नृसिंह भगवान् की मूर्ति भी होती। यह कैसे हो सकता है कि हनुमान्जी की मूर्ति तो बनी रहती और नृसिंह भगवान् की प्रधान मूर्ति जिनके नाम पर यह मन्दिर प्रख्यात होता वहाँ से हट जाती। अतः संकाकार को इस विषय में फिर से विचार करना चाहिए।

(१०) सोरों में नरसिंहजी चौधरी के उत्तराधिकारी। गुप्त जी इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं 'इसी मुहल्ले में चौधरियों के कुछ घर हैं जो हमारे कवि के पुत्र नरसिंहजी चौधरी के वंशधर बताए जाते हैं। पंडित रंगनाथ आजकल इनके मुखिया हैं। अपनी सोरों यात्रा में मैं पंडित रंगनाथ चौधरी से मिला था। उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि उन्हें केवल अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम ज्ञात हैं और इनमें से नरसिंह चौधरी नहीं हैं। उपर्युक्त मन्दिर अवश्य उनके घराने के अधिकार में चला आ रहा है। किन्तु केवल इतनी बात से यह सिद्ध नहीं होता कि उनके कोई पूर्व-पुरुष नरसिंह चौधरी नाम के थे जो तुलसीदासजी के समकालीन थे या इतना भी कि मन्दिर का नाम 'नरसिंहजी महाराज का मन्दिर' उनके किन्हीं पूर्व पुरुष के नाम से सम्बन्धित होने के कारण पड़ा। एक बात अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि पंडित रंगनाथ और पंडित बाबूराम के घरानों में कुछ पूर्व-काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। मानीरपी पुरा में जो मौजा होडलपुर में है दोनों घरानों का हिस्सा है। पंडित बाबूराम उसके बढ़े हुए द्रव्य का तीन-चौथाई और पंडित रंगनाथ एक-चौथाई लिया करते हैं। यह बात प्रस्तुत लेखक को उस ग्राम के पटवारी मुंशी महावीर शंकर से भी ज्ञात हुई थी।"

उक्त शंकाओं के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह क्या गम है कि उस समय पंडित रंगनाथजी ने अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम बता दिये थे। संसार में कितने व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने से चार पूर्व-पुरुषों के नाम स्मरण हैं। सोचने की बात है कि *कुछ नरसिंहजी का नाम रंगनाथजी की आठ-पीढ़ियों में कैसे हो सकता था* जिन्हें आज साढ़े-तीन सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं? अतएव रंगनाथजी ने अपने से आठ पूर्व पीढ़ियों में नरसिंहजी का उल्लेख नहीं किया तो उन्होंने सत्य का ही पालन किया। क्या रंगनाथजी अपने को नरसिंहजी का वंशधर नहीं मानते? यदि वे अपने को नरसिंहजी का वंशधर न मानते होते तो शंका की बात भी थी। किसी वंश में यदि कोई अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति हो जाता है तो उसमें उसकी चिरस्मृति 'प्रवर' रूप से बनी रहती है और यह आवश्यक नहीं कि उसके आगे-पीछे के सभी पुरुषों के

नाम स्मरण रहें। प्रकृत बात तो ऐसी ही है। शंकाकार बताते हैं कि पंडित रंगनाथ और बाबूरामजी के घरानों में सम्बन्ध भी चला आ रहा है। नरसिंहजी और नन्ददासजी का सम्बन्ध तो गुरु-शिष्य का था ही अतः तब से अब तक यह सम्बन्ध क्यान्तर से बना हुआ है। इसमें न तो कोई आश्चर्य की और न किसी विशेष महत्त्व की बात है। महत्त्वपूर्ण बात तो यही है कि स्वयं पंडित रंगनाथजी अपने को गुरु नरसिंहजी का वंशधर मानते और कहते हैं और सोरों के अन्य व्यक्ति भी उन्हें उस गुरु का वंशज मानते हैं। इस बात में अविश्वास करने का कारण भी क्या जब अन्य प्रमाणों से भी नरसिंहजी का सोरों में होना सिद्ध होता है? वस्तुस्थिति यह है कि सोरों के पण्डे अपनी सम्पत्ति के क्षेम के निमित्त अपनी पूर्व वंशावली को प्रकट करने में आनाकानी किया करते हैं। आग्रह करने पर हमें जो पूर्व वंशावली प्राप्त हुई वह यथास्थान दी जा चुकी है। अतएव गुरु नरसिंहजी के वंशजों के सम्बन्ध में उक्त शंका निराधार है।

(६) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आपत्तियाँ और उनका समाधान

पत्र संख्या २६७४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
मिति सौर १३ १ संवत् २००५
ता० २६ ४ १९४८

प्रियवर भारद्वाजजी

सस्नेह नमस्कार!

आपका १८ ४ ४८ का कृपापत्र मिला। धन्यवाद। सोरों-सामग्री की विस्तृत जाँच प्रयाग विश्वविद्यालय के लेक्चरर तथा मेरे सहयोगी डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है। अन्त में गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह सामग्री जाली है। इसी सम्बन्ध में पं० चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए० के भी कई लेख हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित होने वाली 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं उन अकाट्य तर्कों को आप अपनी पुस्तिका में अन्यथा सिद्ध नहीं कर पाये हैं। ऐसी अवस्था में सोरों की सामग्री को जाली के अतिरिक्त क्या कहा जाय? मैं भाषा-शास्त्र का एक साधारण विद्यार्थी हूँ। मेरे अध्ययन का विषय भोजपुरी तथा अवधी है। रामायण की भाषा की परीक्षा के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके लेखक की मातृभाषा अवधी के अतिरिक्त दूसरी नहीं थी। सोरों तो स्पष्ट ब्रजक्षेत्र में है। इस सम्बन्ध में पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने अपने इतिहास के नवीन संस्करण में जो प्रमाण दिए हैं, वे एक प्रकार से अकाट्य हैं।

परम्परा से गोस्वामीजी की जन्मभूमि राजापुर ही बतलायी जाती है। हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्साँ द तासी भी गोस्वामीजी की जन्म भूमि बाँदा जिले ही में मानते हैं। यह पुस्तक उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक भाग में पेरिस में फ्रेंच भाषा में छपी थी। जब तक आप इन सब बातों को अन्यथा सिद्ध न कर दें तब तक गोस्वामीजी की जन्मभूमि आप सोरों सिद्ध नहीं कर सकते।

गोस्वामीजी इस देश के महान् व्यक्तियों में से थे। गांधीजी की भाँति यदि

प्रत्येक नगर में भी उनका स्मारक बनाया जाय तो यह थोड़ा ही होगा। ऐसी स्थिति में आप उनके स्मारक के लिए जो उद्योग कर रहे हैं उसके लिए आपको अनेक बधाइयाँ।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

भवदीय
सदनारायण तिवारी
एम० एम० डी० सिद्
प्रधान मन्त्री

उक्त पत्र पर विचार

१ (क) डॉ० माताप्रसाद गुप्त के लेख (सोरों सामग्री की परीक्षा पर) सम्मेलन-पत्रिका के कुछ अंकों (संवत् १९९७ वि) में तथापरान्त तुलसीदास' नामक उनके शोध-प्रबन्ध में प्रकाशित हुए थे उनमें गुप्तजी ने सोरों-सामग्री पर कुछ सन्देह तो उपस्थित किये हैं, किन्तु उन्हें जाली नहीं बताया है,[1] प्रस्तुत उसके कुछ अंश तो उन्हें ठीक भी लगे हैं।

मैंने डॉ० गुप्त के लेखों की प्रत्यालोचना सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजी थी और उसमें मैंने उनके सभी सन्देहों का सविस्तर समाधान किया था और यह भी बताया था कि गुप्तजी ने वे लेख किन परिस्थितियों में लिखे थे। किन्तु हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने मेरी वह प्रत्यालोचना नहीं छापी। इसकी भी एक कहानी है। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने भी वह लेख, बिना कोई कारण दिये लौटा दिया था। आलोचन और प्रत्यालोचन एक ही पत्र में छपने चाहिए थे। जब नहीं छपा तो मैंने वह लेख नवीन भारत' में प्रकाशित करा दिया उसका कुछ अंश १९४१ ई० में और कुछ १९४६ ई में छपा था। प्रस्तुत प्रबन्ध में उसका केवल वह अंश है जिसका सम्बन्ध साहित्य से है व्यक्तिगत आक्षेप और जाँचली से नहीं।

(ख) श्री चन्द्रबली पाण्डे ने सोरों की तुलसी-सामग्री का अवलोकन मूलरूप में कभी नहीं किया। उनकी आलोचना का मुख्य आधार डॉ माताप्रसाद गुप्त के ही विचार हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा रत्नावली के दोहों की भावुकता से प्रभावित हुए हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त रत्नावली के दोहों में वियोग-वेदना की स्वाभाविक व्यंजना सरसता और चित्रता का अनुभव करते हुए लिखते हैं कि "रत्नावली के काव्य की तुलना केवल मीरा के काव्य से ही की जा सकती है अन्य कवयित्रियों के जैसे दयाबाई सहजोबाई, ताज आदि के काव्य उसके काव्य की तुलना में बहुत साधारण दर्जे के हैं।"[2] किन्तु श्री पाण्डेजी की राय में रत्नावली के दोहे कृत्रिम नीरस और शुष्क हैं। उत्तर में निवेदन है "जाकी रही भावना जैसी।

मुझे आशंका है कि उस समय तक पूर्ण रूप से सोरों-सामग्री पाण्डेजी तक नहीं पहुँच पायी थी। 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' के विषय में यह स्मरणीय है कि यह १६७ विक्रम संवत् में कृष्णदास द्वारा लिखा गया और १८७ ईसवी में अर्थात् अब से लग

---

१ इस शोध प्रबन्ध के प्रथम संस्करण में 'जाली' शब्द नहीं। किन्तु तृतीय संस्करण में जो उक्त पत्र के पश्चात् प्रकाशित हुआ इसका उल्लेख है।

२. हिन्दुस्तानी पृष्ठ १८ जनवरी १९४०।

नाम स्मरण रहें। प्रकृत बात तो ऐसी ही है। शंकाकार बताते हैं कि पं
और बाबूरामजी के घरानों में सम्बन्ध भी चला आ रहा है।
और नन्ददासजी का सम्बन्ध तो गुरु-शिष्य का था ही अतः तब से
सम्बन्ध क्यासर से बना हुआ है। इसमें न तो कोई आश्चर्य की
विशेष महत्त्व की बात है। महत्त्वपूर्ण बात तो यही है कि स्वयं पं
अपने को गुरु नरसिंहजी का वंशधर मानते और कहते हैं और सोरों
उन्हें उस गुरु का वंशज मानते हैं। इस बात में अविश्वास करने
जब अन्य प्रमाणों से भी नरसिंहजी का सोरों में होना सिद्ध हो
यह है कि सोरों के पण्डे अपनी सम्पत्ति के क्षेम के निमित्त अपना
प्रकट करने में आनाकानी किया करते हैं। आग्रह करने पर
प्राप्त हुई वह यथास्थान दी जा चुकी है। अतएव गुरु नरसिंह
में उक्त शंका निराधार है।

(६) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आपत्तियाँ और

हिन्
मिनि

पत्र संख्या २६७४

प्रियवर भारद्वाजजी

सस्नेह नमस्कार!

आपका १८-४-४८ का कृपापत्र मिला। आ
पाँच प्रयाग विश्वविद्यालय के लेक्चरर तथा मेरे सा
हैं। अन्त में गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मा
पं चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए० के भी कई लेख
वाली 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुके
पुस्तिका में अन्यथा सिद्ध नहीं कर पाये हैं।
वाली के अतिरिक्त क्या कहा जाय? मैं भा
मेरे अध्ययन का विषय भोजपुरी तथा अवधी
पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनक
दूसरी नहीं थी। सोरों तो स्पष्ट अवधी
शुक्ल ने अपने इतिहास के नवीन सं
अकाट्य है।

परम्परा से गोस्वामीजी की ज
साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सां
जिन्हीं मैं मानते हैं। यह पुस्तक
फ्रेंच भाषा में छपी थी। जब तक
तक गोस्वामीजी की जन्मभूमि था।
गोस्वामीजी इस देश के

इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। गोस्वामीजी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'विनय पत्रिका' समझी जाती है, जो शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रजी में है उनके लोक-प्रिय रामचरित मानस की भाषा ब्रजावधी है जो सोरों की भी है और उनके पार्वतीमंगल और जानकी मंगल ब्रजावधी में हैं। गोस्वामीजी को तो दोनों भाषा-बोलियों पर अधिकार था। श्री सच्चिदानन्द राय कृष्णन् अथवा डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अंग्रेजी भाषा पर जो अधिकार है या था उसकी धाक स्वयं अंग्रेज विद्वान् भी मानते हैं किन्तु कालान्तर में उनकी भाषा मात्र के आधार पर उन्हें इंगलैंड-जात सिद्ध करने की चेष्टा कितनी उपहासास्पद होगी। अतएव किसी कवि के जन्मस्थान के निर्णय के निमित्त भाषा के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों पर भी विचार अपेक्षित है।

(घ) यदि पं० रामचन्द्र शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में भाषा-सम्बन्धी सुन्दर और तर्क कल्पनाएँ की हैं, तो साथ ही पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों के पक्ष में अनेक तथ्य और तर्क उपस्थित किये हैं। डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव अपने प्रबन्ध में लिखते हैं कि "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके आस-पास रहे"।[1]

(च) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने रामायण के 'सूकर खेत' को सरयू-घाघरा संगम पर माना है। उस विषय में उन्हें जितनी सूचना तब प्राप्त थी उससे अधिक का उल्लेख तो पूर्वपक्ष रूप से मैंने सूकरक्षेत्र-सम्बन्धी अध्याय में कर दिया है। किन्तु जिस सूकरखेत का उल्लेख 'रामचरित-मानस' में है उससे केवल सोरों का तात्पर्य है। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। डॉ० श्यामसुन्दरदास के प्राचीन लेखों से यह बात स्पष्ट है कि सूकरखेत सोरों है पं० शुक्ल और डॉ० दास 'मूल गोसाईं चरित' के आविर्भाव से पूर्व सूकरक्षेत्र को सोरों ही मानते रहे।[2] १९४४ की 'सरस्वती' में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने रामायण के सूकरखेत से सोरों का ही अर्थ ग्रहण किया है। पं० भद्रदत्त शर्मा ने 'तुलसी-चर्चा' में सूकरखेत का विशद विवेचन किया है, और मुझे भी 'तुलसी के परिवार' में और प्रस्तुत ग्रन्थ में और अधिक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ है।

(ङ) डॉ० उदयनारायण तिवारी ने वार्सा द तासी (१८३९ ई०) का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे विलसन (१८३१ ई०) का उल्लेख करना भूल गये हैं, किन्तु उक्त दोनों लेखकों की कृतियाँ तो गोस्वामीजी का जन्मस्थान हाजीपुर बताती हैं, राजापुर नहीं। तिवारीजी का स्वयं उक्त कृतियों में आस्था नहीं यदि होती तो वे गोस्वामीजी के जन्मस्थान-स्मारक का प्रस्ताव हाजीपुर के लिए करते राजापुर के लिए नहीं। क्या हाजीपुर में गोस्वामीजी का जन्म-स्थान मान लेने से उनका जन्म स्थान राजापुर में सिद्ध हो जाता है? विलसन ने तुलसीदासजी के विषय में जहाँ अनेक प्रामाणिक बातों का उल्लेख किया है वहाँ उनका जन्मस्थान भी है। जो आधार न वादी के लिए प्रमाण है और न प्रतिवादी के लिए ही उसके सिद्धान्तिद करने से लाभ भी क्या?

---

१ तुलसीदास की भाषा पृ० २६२, २६७।

२ दे० पृ० [illegible]।

अब ६० वर्ष पहले छप भी गया था। यह 'माहात्म्य' अकेला ही गोस्वामी तुलसीदास नन्ददास सूकरक्षेत्र (सोरों) गुरु नरसिंह रत्नावली, रामपुर-रामपुर आदि के विषय में साक्ष्य रूप से पर्याप्त है। १८७४ ई० का छपा बाँदा गजटियर भी स्पष्ट रूप से बताता है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों (जिला एटा) के थे और उन्होंने राजापुर (जिला बाँदा) की नींव डाली थी राजापुर के बड़े-बूढ़े भी ऐसा ही कह चुके हैं।

(ब) कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डॉ० दीनदयालु गुप्त सोरों-सामग्री की परीक्षा करने दो बार, एक बार डॉ० माताप्रसाद गुप्त से कुछ पहले और दूसरी बार उनसे एक वर्ष पश्चात् पधारे थे और दोनों बार उन्होंने उस सामग्री को प्रामाणिक समझा। सामग्री का जो भाग माताप्रसादजी को देखने को न मिल सका उसे दीनदयालुजी पहले ही देख चुके थे। अतः इस विषय में सन्देह के लिए कोई अवसर नहीं है।

२ "गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तिका का जो उल्लेख हुआ है उसके विषय में केवल यह निवेदन है कि वह पुस्तिका तुलसी-स्मारक समिति कासगंज ने प्रकाशित करायी थी। उसमें तुलसीदासजी का सोरों सिद्धान्त के अनुकूल सरस परिचय-मात्र था और टिप्पणी-रूप से उक्त सामग्री के कुछ प्रमाण उद्धरण भी थे। वह पुस्तिका तो अण्डन-मण्डन से नितान्त दूर है। हाँ 'तुलसी चर्चा' नामक पुस्तक में जिसकी प्रति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय में पत्र से पहले ही विद्यमान थी खण्डन-मण्डन अवश्य है और विस्तृत खण्डन-मण्डन एवं अद्यतन अनुसन्धान का समावेश प्रस्तुत प्रबन्ध में भी हुआ है।

३ (क) सोरों की सामग्री इतनी प्रचुर है कि गोस्वामीजी के जन्म-स्थान निर्णय के विषय में कोरी कल्पना को महत्त्व नहीं देना चाहिए। मेरी विनीत सम्मति में 'रामचरितमानस' की भाषा की वास्तविक परीक्षा के लिए, पहले उसका एक ऐसा संस्करण तैयार होना चाहिए जिसमें सभी प्रसिद्ध हस्त लिखित प्रतियों के पाठान्तर और बर्तनी मिल सकें। मैंने जब सोरों के 'अरण्य काण्ड' की स्वयं नकल की और तत्पश्चात् उसका काशिराज की प्रति से मिलान किया तो मुझमें उपर्युक्त इच्छा का उदय हुआ। श्री संतुनारायण चौबे ने अच्छा काम किया है किन्तु इस दिशा में अभी बहुत कुछ शेष है। यदि 'रामचरितमानस' का ऐसा संस्करण तैयार हो जाय तो तत्कालीन बर्तनियों और पाठान्तरों का ही नहीं अपितु गोस्वामीजी के मानसिक विकास का क्रमिक परिचय भी प्राप्त हो सकेगा ऐसी मेरी प्रबल धारणा है। इस सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार दशम अध्याय में व्यक्त कर रहा हूँ।

(ख) एक बात और है। मान भी लिया जाय कि 'रामचरितमानस' की भाषा अवधी ही है तो इससे यह निर्णय नहीं हो जाता कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान एटा जिले में न था। सब लोग जानते हैं कि विश्वविद्यालय के छात्र कुछ वर्षों में ही भाषाओं में कितने पटु हो जाते हैं। तुलसीदासजी ने संवत् १६०४ वि० में सोरों को छोड़ा था और तब से वे अयोध्या राजापुर, काशी आदि पूर्व के ही प्रदेशों में रहते रहे और उन्होंने १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' को प्रारम्भ किया अर्थात् सोरों को छोड़ने के २७ वर्ष पश्चात्। इतने समय में उन्हें यदि अवधी पर भी अधिकार हो गया तो

इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। गोस्वामीजी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'विनय पत्रिका' समझी जाती है, जो शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रजी में है उनके लोक-प्रिय रामचरित मानस की भाषा प्रधानतः है जो सोरों की भी है और उनके पार्वतीमंगल और जानकी मंगल प्रधानतः में हैं। गोस्वामीजी को तो दोनों भाषा-शैलियों पर अधिकार था। श्री सर्वपल्ली राधा कृष्णन् अथवा डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अंग्रेजी भाषा पर जो अधिकार है या था उसकी धाक स्वयं अंग्रेज विद्वान् भी मानते हैं किन्तु कालान्तर में उनकी भाषा मात्र के आधार पर उन्हें इंगलैंड-जात सिद्ध करने की चेष्टा कितनी उपहासास्पद होगी। अतएव किसी कवि के जन्मस्थान के निर्णय के निमित्त भाषा के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों पर भी विचार अपेक्षित है।

(ग) यदि पं० रामचन्द्र शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में भाषा-सम्बन्धी सुन्दर और सतर्क कल्पनाएँ की हैं तो साथ ही पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों के पक्ष में अनेक तथ्य और तर्क उपस्थित किये हैं। डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव अपने प्रबन्ध में लिखते हैं कि "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके आस-पास रहे"।[1]

(घ) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने 'रामायण के सूकर क्षेत्र' को सरयू-घाघरा संगम पर माना है। उस विषय में उन्हें जितनी सूचना तब प्राप्त थी उससे अधिक का उल्लेख तो पूर्वपक्ष रूप से मैंने सूकरक्षेत्र-सम्बन्धी अध्याय में कर दिया है। किन्तु जिस सूकरक्षेत्र का उल्लेख 'रामचरित-मानस' में है उससे केवल सोरों का तात्पर्य है। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। डॉ० श्यामसुन्दरदास के प्राचीन लेखों से यह बात स्पष्ट है कि सूकरक्षेत्र सोरों है, पं० शुक्ल और डॉ० दास 'मूल गोसाईं चरित' के आविर्भाव से पूर्व सूकरक्षेत्र को सोरों ही मानते रहे।[2] १९४४ की 'सरस्वती' में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने रामायण के सूकरक्षेत्र से सोरों का ही अर्थ ग्रहण किया है। पं० ब्रह्मदत्त शर्मा ने 'तुलसी चर्चा' में सूकरक्षेत्र का विशद विवेचन किया है, और मुझे भी 'तुलसी के परिवार' में और प्रस्तुत ग्रन्थ में और अधिक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ है।

(ङ) डॉ० उदयनारायण तिवारी ने गार्साँ द तासी (१८३९ ई०) का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे विल्सन (१८३१ ई०) का उल्लेख करना भूल गये हैं, किन्तु उक्त दोनों लेखकों की कृतियाँ तो गोस्वामीजी का जन्मस्थान हाजीपुर बताती हैं, राजापुर नहीं। तिवारीजी का स्वयं उक्त कृतियों में आस्था नहीं यदि होती तो वे गोस्वामीजी के जन्मस्थान-स्मारक का प्रस्ताव हाजीपुर के लिए करते राजापुर के लिए नहीं। क्या हाजीपुर में गोस्वामीजी का जन्म-स्थान मान लेने से उनका जन्म स्थान राजापुर में सिद्ध हो जाता है? विल्सन ने तुलसीदासजी के विषय में जहाँ अनेक भ्रमात्मक बातों का उल्लेख किया है वहाँ उनका जन्मस्थान भी है। जो आधार न वादी के लिए प्रमाण है और न प्रतिवादी के लिए ही उसके सिद्धाविद्ध करने से लाभ भी क्या?

---

१ तुलसीदास की भाषा, पृ० २२२, २२७।

२ दे० तुलसीदास।

राजापुर के सम्बन्ध में 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'पट रामायन' की सीसामेदर राजापुर का पक्ष लेने वाले डॉ० श्यामबिहारी मिश्र पं० रामचन्द्र शुक्ल डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी की है। वास्तव में ये तीनों पुस्तकें इतिहास की दृष्टि से एकदम अप्रामाणिक हैं, जैसा कि मैं भी इनकी विस्तृत आलोचनाओं में बता चुका हूँ।

सोरों की हस्तलिखित सामग्री विशाल है प्रचुर है। इसका सविस्तर उल्लेख 'तुलसी-चर्चा' रत्नावली' 'तुलसीदास का दरबार' और प्रस्तुत प्रबन्ध में हो चुका है। इस सामग्री में ईसवी सन् १५८६, १६०० १६१२, १६४० १७५२, १७६७ १७७२ १८ ७ १८१५, १८१७, १८१८ की एवं अन्य हस्तलिखित पुस्तकें हैं। प्रसिद्ध उल्लेखनीय पुस्तकों में हैं—वराह पुराण ब्रह्म पुराण धर्म-संहिता पृथ्वीराज रासो आईन-ए-अकबरी। अंग्रेजी-काल की छपी पुस्तकों में उल्लेखनीय हैं—१८७० ई० का छपा सूकर क्षेत्र माहात्म्य १८७४ ई० का कुम्भेलखण्ड गजेटियर १८८६ ई० का इम्पीरियल गजेटियर, १९०८ ई० का इम्पीरियल गजेटियर (प्रोविंशल सिरीज) १९०९ ई० का बाँदा जिले का गजेटियर। यह सब छपा साहित्य भी गोस्वामी तुलसीदास को सोरों (जिला एटा) का मानता है और गजेटियर तो भी बताते हैं कि गोस्वामीजी ने राजापुर (जिला बाँदा) की नींव डाली।

राजापुर की प्राचीन परम्परा भी राजापुर के पक्ष में नहीं सोरों के ही पक्ष में है। उक्त गजेटियर तो सोरों के पक्ष में हैं ही। रेवरेंड एडविन ग्रीव्स (१८९९ ई०) अयोध्यावासी श्री सीतारामशरण भगवान्प्रसाद (१९११) और बाबू शिवनन्दनसहाय (१९१६ और १९२१ ई०) ने राजापुर में पूछ-ताछ करके लिखा कि गोस्वामीजी का जन्म राजापुर में नहीं हुआ जैसा कि उन्हें वहाँ के बड़े-बूढ़ों से ज्ञात हुआ। राजापुर की तुलसी-स्मारक-समिति के भी एक कर्मचारी ने लिखा है कि "गोस्वामीजी का जन्मस्थान सोरों या उसी के आसपास कहीं होना चाहिए।"

सोरों-सामग्री

चतुर्थ भाग यदि सोरों-सामग्री न होती, तो ?

प्राक्कथन—यदि गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित के विषय में, निष्पक्ष निर्णय के निमित्त उस समग्र सामग्री को विचार-क्षेत्र से बाहर रखें जो एटा-बदायूँ जिलों से प्राप्त है और अब मुख्यतः सोरों-कासगंज में विद्यमान है, तो विचारधारा की दो दिशाएँ हैं—निषेधात्मक और भावात्मक। इन्हीं दो रूपों में अद्यावधि तुलसीदास जी के जीवन-चरित पर प्रकाश वांछनीय है।

(क) निषेधात्मक प्रामाण्य

निषेधात्मक प्रमाण निम्नांकित हैं:—

(१) राजापुर का समर्थन करने वाली हस्तलिखित पुस्तकें अप्रामाणिक हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'मूल गोसाईं चरित' को श्यामसुन्दरदास ने 'तुलसी चरित्र' को अप्रामाणिक बताया है और इसलिए गोस्वामीजी का जीवन चरित विभिन्न रूप में उपस्थित हुआ है। पं० रामनरेश त्रिपाठी और मिश्रबन्धुओं को भी इन पोथियों में आस्था नहीं रही। मेरी समझ में भी ये दोनों ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं क्योंकि दोनों में ही इतिहास के विरुद्ध अनेक भयंकर भूलें विद्यमान हैं, मैंने इन ऐतिहासिक व्यतिक्रमों का दिग्दर्शन इसी प्रबन्ध में अन्यत्र कराया है।

(२) श्री रामबहोरी शुक्ल ने कतिपय सरकारी सनद आदि के आधार पर कुछ युक्तियाँ उपस्थित की हैं किन्तु राजापुर की किसी भी सनद में गोस्वामीजी की जन्म-भूमि का उल्लेख नहीं है अर्थात् उक्त सनदों में—

(क) यह कहीं नहीं लिखा कि राजापुर गोस्वामीजी का जन्मस्थान है और

(ख) उनसे यह भी विदित नहीं होता कि राजापुर गोस्वामीजी के जन्म से पहले विद्यमान था। निवास-स्थान और जन्मस्थान में तो बड़ा अन्तर है, बहुत से लोग कहीं पैदा होते हैं और जीविकादि के निमित्त कहीं रहने लगते हैं। राजापुर में जो प्रमाण विद्यमान हैं उनसे तो केवल यह सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी ने राजापुर की नींव डाली। यह बात जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है बुन्देलखण्ड गजेटियर में (राजापुर के इतिहास का वर्णन करते समय) अब तो चौरासी वर्ष पूर्व छपी हुई है और बाँदा जिले के पीछे के प्रकाशित गजेटियरों में छपी मिलती है और यही बात राजापुर के बड़े-बूढ़े भी कहते रहे हैं। १९२१ ई० तक इस प्राचीन जनश्रुति का प्रमाण है।

(३) पूर्वीय जिलों के कुछ सम्मान्य व्यक्ति अनुसंधान के निमित्त राजापुर गये और उन्हें यह पता चला कि तुलसीदासजी का जन्म राजापुर में नहीं हुआ था। इस विषय में प्रमाण ये हैं—

(क) श्री अयोध्याजी प्रमोदवन-कुटिया निवासी सीता रामशरण भगवानप्रसाद विरचित श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त पृष्ठ ७४१ नवलकिशोर प्रेस

चाहिए। (९) अभी लिखा जा चुका है कि तुलसी साहब का वृत्तान्त 'घट रामायण' के अन्त में मिलता है। यह उनके किसी भक्त की रचना है जो पीछे से जोड़ दी गयी है क्योंकि 'घट रामायण' का रचना प्रारम्भ-काल पुस्तक के भीतर १६१६ है और पुस्तक के अन्त में १६१८ है और भाषा शैली भी भिन्न है। यह भूल तुलसी साहब के किसी शिष्य की है ऐसी अधिक सम्भावना विद्वानों को प्रतीत होती है। (१०) प्रकाशक लिखते हैं कि तुलसी साहब अक्सर हाथरस से बाहर कम्बल ओढ़े दूर-दूर शहरों में चले जाया करते थे। यह सम्भव है कि वे कभी राजापुर या उसके निकट पहुँचे हों और किसी से सुनकर ही यह जानकारी प्राप्त की हो कि गोस्वामी तुलसीदासजी राजापुर में रहे थे अतः तुलसी साहब ने भूल से निवास-स्थान को जन्मस्थान समझ लिया हो। ऐसी भूल असम्भव नहीं जबकि राजापुर में यह जनश्रुति थी कि तुलसीदास ने राजापुर को बसाया और वहाँ रहे थे। (११) तुलसी साहब हाथरस के मूल निवासी न थे और न इनका जन्म ही हाथरस में हुआ था जैसा कि उनके उपलब्ध जीवन-चरित में लिखा हुआ है। वे कभी-कभी हाथरस आते रहते थे किन्तु प्रायः घूमते रहते थे। (१२) हाथरस में कोई प्राचीन जनश्रुति ऐसी नहीं है कि गो० तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ था। तुलसी साहब ने किसी जनश्रुति का उल्लेख 'घट रामायण' में नहीं किया जो कुछ उन्होंने लिखा वह तथाकथित अपने पूर्व-जन्म की स्मृति के आधार पर लिखा। हाथरस के किसी भी अन्य व्यक्ति ने राजापुर को गोस्वामीजी की जन्मभूमि नहीं लिखा। किन्तु बाँदा गजेटियर में तो स्पष्ट उल्लेख है कि राजापुर की जनश्रुति के अनुसार गोस्वामीजी सोरों के थे और उन्होंने राजापुर की नींव डाली। यह प्राचीन जनश्रुति कम से कम १९२१ ई० तक विद्यमान रही। (१३) तुलसी साहब का उपदेश उन लोगों को होता था जो अपनी जीविका मस्तिष्क की अपेक्षा हाथ-पैर के परिश्रम से अधिकतर प्राप्त करते थे और जिनमें विद्या का प्रचार कम था। अतः उनकी बातों और धारणाओं के निराकरण और प्रतिवाद का अवसर ही न आता था हाथरस का शिष्ट समाज उन्हें नहीं जानता और गजेटियर चुप है। (१४) तुलसी साहब की अपेक्षा बाँदा गजेटियर ही अधिक प्रामाणिक है क्योंकि वह किसी एक व्यक्ति की कल्पना पर आधारित नहीं है अपितु जनश्रुति के आधार पर है—ऐसी जनश्रुति के आधार पर जिसकी जाँच पीछे से विद्वानों के द्वारा कई बार हो चुकी है। कुछ और बातें भी विचारणीय हैं

(क) तुलसी साहब के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त 'घटरामायण' के प्रायः अन्त में समाप्ति से कुछ पृष्ठ पूर्व है। सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय का प्रतिपादन करते समय जन्म-वृत्तान्त या तो पुस्तक के आरम्भ में होना चाहिए अथवा ठीक अन्त में। किन्तु यह वृत्तान्त न तो प्रारम्भ में है न ठीक अन्त में ही। यह निराधार क्षेपक है जैसा कि डॉ० बड़थ्वाल समझते हैं।

(ख) पुस्तक की भीतर की भाषा से वृत्तान्त की भाषा और विशेषतः वे छन्द जिनमें संवतों का (विशेषतः जन्म के संवत् का) उल्लेख किया गया है नितान्त अतिपुष्ट और अन्त्यानुप्रास-हीन हैं।

(ग) सभी जन्म तिथियों के साथ मंगलवार जोड़ा गया है। अतः हो सकता है

कि जन्मतिथि मुनाशरन्याय से ठीक हो गई है।

(ग) 'बटरामायन' की पांडुलिपि जैसा कि मिश्रबंधुओं ने वैधानिक विवरण में उल्लेख किया है, १८४२ संवत् अर्थात् १७९९ ई० की है। किन्तु इससे पहले ग्रियर्सन के जो नोट्स १८९३ में प्रकाशित हुए थे उनमें गो० तुलसीदास के जन्म का सन् १५३२ (अथवा संवत् १५८९ वि०) दिया गया था। अतएव समय है ग्रियर्सन के आधार पर, अथवा उन व्यक्तियों के आधार पर जिन से ग्रियर्सन ने १५८९ की सूचना प्राप्त की तुलसी साहब के चेलों ने 'बटरामायन' के अन्त की ओर उक्त संवत् का उल्लेख कर दिया हो।

(घ) 'मूल गोसाईं चरित' नामक पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास का जन्म १५५४ वि० दिया गया है जो राजापुर का ही पक्ष लेने वाली सामग्री 'बटरामायन' के कथन से मेल नहीं खाती। सोरों-सामग्री के अनुसार सं० १५८९ विक्रम में रत्नावली का विवाह गो० तुलसीदास से हुआ था।

(ङ) 'बटरामायन' के उस अंश में जहाँ तुलसी साहब के पूर्व जन्म का वृत्त दिया गया है कहीं तो प्रथम पुरुष का और कहीं उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि यह अंश तुलसी साहब के किन्हीं चेलों का प्रक्षेप है।

(ख) भावात्मक प्रामाण्य

यदि गोस्वामी तुलसीदास से सम्बन्ध रखने वाली उस समग्र सामग्री को निष्पक्ष विचार के हेतु अलग रख दिया जाय जो एटा-बदायूँ जिलों से प्राप्त है और जो अब मुख्यतः सोरों-कासगंज में विद्यमान है तो भी गोस्वामीजी के वास्तविक जीवन-चरित पर प्रकाश डालने वाली ऐसी प्रचुर सामग्री भारत के विभिन्न कोनों में विद्यमान है जो सोरों-सामग्री का समर्थन करती है। वह इस प्रकार है —

(१) (क) नाभादास-कृत भक्तमाल। नाभादासजी गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। यह पुस्तक लगभग १६४२ वि० में लिखी गयी थी। इसके अनुसार गो० तुलसीदास राम भक्त थे।

(ख) उक्त भक्तमाल में नाभादास ने नन्ददास के विषय में लिखा है कि *नन्ददासजी रामपुर ग्राम के निवासी और चन्द्रहास के बड़े भाई थे। वे सुकुल थे।* सोरों-सामग्री के अनुसार नन्ददासजी चन्द्रहास के सगे बड़े भाई थे। गो० तुलसीदास भी उनके ताऊ के पुत्र और नन्ददास से बड़े थे। वे लोग रामपुर ग्राम में रहते थे जो सोरों से लगभग दो मील पूर्व की ओर है और वे सनाढ्य सुकुल ब्राह्मण थे।

(२) 'श्री गुसाईंजी के सेवक चारि अरु छापी तिन की वार्ता' गोकुल में चैत्र सुदी ५, १९९७ वि० में लिखी गयी जो अब विद्या-विभाग काँकरोली में विद्यमान है। इसमें लिखा है कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे और गो० तुलसीदास के छोटे भाई थे। इस हस्तलिखित प्रति का अवलोकन डॉ० दीनदयालु गुप्त ने किया है और उन्हें इसकी प्राचीनता पर संदेह नहीं है। डॉ० हरिहरनाथ टण्डन के शोधानुसार "यह पुस्तक सर्वथा प्रामाणिक है"।[1]

---

१. अष्टछाप साहित्य का बैठकी-परक अध्ययन (डॉ० हरिहरनाथ टण्डन) भाग १ पृ० १८१।

(३) श्री अष्टछाप की वार्ता श्री हरिरायजी-कृत भावप्रकाश वाली १७५२ वि० की प्रति, सिद्धपुर पाटन से प्राप्त अब कांकरोली में विद्यमान है। इसमें लिखा है कि नन्ददास सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर के रहने वाले और तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। तुलसीदासजी नन्ददास को काम-क्रोध से विमुक्त कराने के लिए समझाते रहते थे। नन्ददास, श्री रणछोड़दासजी के दर्शन के लिए द्वारका जाना चाहते थे, तुलसीदासजी नाही करते थे किन्तु नन्ददास ने उनकी बात नहीं मानी। जब देखा कि नन्ददास द्वारका जाये बिना नहीं मानेंगे तो यात्रा-संघ के मुखिया की देखभाल में नन्ददास को द्वारका भेज दिया। एक बार एक यात्रा-संघ मथुरा से गया जा रहा था मार्ग में वह संघ काशी टिका तुलसीदासजी को जब इस संघ का पता चला तो उन्होंने नन्ददास के बारे में पूछताछ की और उन्हें विदित हुआ कि नन्ददास तो वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हो गो० विट्ठलनाथ के कृपापात्र हो गये हैं। तब तुलसीदासजी ने संघ को नन्ददास के लिए पत्र दिया और वह पत्र वल्लभ काशिक और गोकुल के गुसाईंजी के द्वारा नन्ददास को मिला। उस पत्र में तुलसीदास ने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि नन्ददासजी राम को छोड़ कर कृष्ण के भक्त बन गये। नन्ददास ने अपनी कृष्ण भक्ति के समर्थन में अपना उत्तर तुलसीदासजी को काशिक के हाथ काशी भेजा। तदनन्तर एक समय तुलसीदासजी नन्ददास से मिलने स्वयं काशी से मथुरा आये, और नन्ददास को पूछते-पूछते गोकुल भी। गोकुल की शोभा देखकर तुलसी बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें शोभा देख यह प्रतीत होने लगा कि नन्ददास ऐसे सुन्दर स्थान को छोड़ कर नहीं जायेंगे। वहाँ से पता लगाते श्रीनाथजी के मन्दिर में आये। फिर उन्होंने मथुरा में आकर यमुनाजी के दर्शन किये वहाँ से वे गिरिराजजी गये और अन्त में रावलौली में नन्ददास से मिले। तुलसीदासजी ने नन्ददास से अपने साथ चलने के लिए कहा किन्तु नन्ददास ब्रज छोड़ने के लिए सहमत न हुए। तुलसीदास और नन्ददास के उत्तर प्रत्युत्तर बड़े सुन्दर हैं। नन्ददास ने तुलसीदासजी को सूरदासजी से मिलाया। गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर में पहुँचकर तुलसीदासजी ने भगवान् कृष्ण को माथा नहीं नमाया। तब नन्ददास की विनति पर भगवान् ने राम-रूप धारण किया और तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। नन्ददासजी तब तुलसीदासजी को गो० विट्ठलनाथ के दर्शन कराने गोकुल ले गये परिचय कराया और तुलसीदासजी की इच्छानुसार गो० विट्ठलनाथ ने अपने पाँचवें पुत्र रघुनाथजी और पुत्र-वधू जानकीजी के दर्शन कराये और तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर गो० विट्ठलनाथजी से पुष्टि-मार्ग की महिमा सुनकर तुलसीदासजी काशी लौट गये। एक दिन नन्ददास के मन में आयी कि जैसे तुलसीदासजी ने भाषा में रामायण रची है वैसे ही मैं भी भाषा में भागवत रचूँ। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[1] और डॉ० दीनदयालु गुप्त वार्ताओं को ऐतिहासिक अनुसन्धान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

(४) *श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों का संग्रह* जतीपुरा की लगभग सं० १७०० की प्रति श्री द्वारकादास पुरुषोत्तम कांकरोली के पास है। इससे स्पष्ट है कि

---

१. अष्टछाप, भूमिका।

जब नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ के सेवक बने थे तो गोस्वामी तुलसीदास ने नन्ददास से अपना मत-भेद प्रकट किया।

(५) बावन वचनामृत गो० श्री काका वल्लभजी महाराज-कृत। इससे प्रकट है कि तुलसीदास मर्यादामार्ग में श्री रामचन्द्रजी के भक्त वैष्णव थे उन्होंने रामायण नामक ग्रन्थ पद-बद्ध चौपाई कवित्त में बनाया। उनके भाई नन्ददास थे जो वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए और रामपुर के निवासी थे। तुलसीदासजी नन्ददास की सुध लेने व्रज में आये और उन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति से हटाकर राम भक्ति की ओर लाना चाहा।

(६) 'भक्तिरस बोधिनी' अर्थात् 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका जो उन्होंने १७६६ वि० में की। इससे विदित होता है कि गो० तुलसीदास अपनी ससुराल गये और पत्नी ने उन्हें जो वचन कहे थे उपदेशात्मक सिद्ध हुए। यह स्पष्ट है कि जब गोस्वामीजी ने वैराग्य लिया और वे अपनी ससुराल से सदा के लिए चले तो पत्नी से उनका वार्तालाप हो चुका था। सेवादासजी ने वृन्दावन में बैठकर मार्गशीर्ष शुक्ला १० बृहस्पतिवार को सं० १८६४ वि० में प्रियादास पर जो टीका रची उसमें लिखा है कि गो० तुलसीदास भावों की अटकाचि में अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने गंगापार बदरी गये थे।

(७) अष्ट सखामृत'—गोस्वामी गोकुलनाथ-कालीन प्राचेय कवि कृत। यह पुस्तक श्री रमणलाल वैद्य के यहाँ है। इसका विवरण 'ब्रज भारती' (माघ २ ०० वि० ३४) में छपा था। इसमें इस प्रकार लिखा है—ब्रज में यह बात प्रसिद्ध है कि कृष्ण-भक्त नन्ददास राम भक्त तुलसीदासजी के छोटे भाई सनाढ्य ब्राह्मण सुकुल और कवि थे। नन्ददास के ग्राम का नाम रामपुर और इष्टदेव का नाम रामचन्द्र था किन्तु पीछे से उन्होंने ग्राम का नाम श्यामपुर और ग्राम के सरोवर का नाम श्यामसर बदल कर रख दिया और स्वयं कृष्ण भक्त बन गये तथा चन्द्रहास को जो उनके छोटे भाई थे अपनी पत्नी पुत्र और मकान का भार सौंप कर सूकरखेत से आकर ब्रज में रहने लगे। एक बार इनकी इच्छा से तुलसीदासजी को भगवान् कृष्ण ने राम के रूप में दर्शन दिये और तुलसीदास ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यह देखकर कि भाई तुलसीदास ने रामायण को भाषा में लिखा है नन्ददास ने भी भागवत को भाषा में रचा। सोरों-सामग्री में रामपुर का विवरण और भी अधिक विस्तार से है।

(क) 'अष्ट सखामृत—प्राचेय कविकृत १७६७ वि० की प्रति गोस्वामी श्री १०८ गोकुलनाथजी महाराज (बड़ा मन्दिर, मूलेश्वर बम्बई) के पुस्तकालय में विद्यमान है। विषय उपर्युक्त है।

(८) 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' गुरुदास ठाकुरदास द्वारा संपादित जयकीश्वर छापाखाना बम्बई १९४७ वि०। इसमें इस प्रकार छपा है—नन्ददासजी तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। नन्ददास द्वारका जाना चाहते थे पर तुलसीदासजी श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे इसलिए उन्होंने नन्ददास को द्वारका जाने की अनुमति नहीं दी। तो भी नन्ददास चले गये। जब तुलसीदासजी ने काशी में सुना कि नन्ददास गोसाइं विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये हैं तो उन्होंने नन्ददास को

एक पत्र लिखा कि तुमने इष्टदेव को बदल कर अच्छा काम नहीं किया इसका उत्तर नन्ददास ने तुलसीदासजी को भेजा पत्र-व्यवहार पढ़ने के योग्य है। एक दिन नन्ददास के मन में आयी कि जैसे तुलसीदासजी ने भाषा में रामायण रची वैसी ही मैं भी भाषा में भागवत लिखूँ किन्तु परिस्थितिवश उन्हें यह विचार त्यागना पड़ा। एक बार तुलसीदासजी नन्ददास से मिलने काशी से आये और नन्ददास से काशी चलने के लिए आग्रह किया किन्तु नन्ददास सहमत न हुए। उत्तर प्रत्युत्तर पठनीय है। नन्ददास ने तुलसीदासजी को गोवर्धननाथजी के दर्शन राम रूप में कराये और तुलसीदासजी ने राम-रूप कृष्णजी को प्रणाम किया। गोकुल में आकर तुलसीदासजी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के दर्शन किये किन्तु उन्हें साष्टांग प्रणाम नहीं किया। जब गोसाईं विट्ठलनाथ को कारण का पता लगा तो उन्होंने अपने पाँचवें पुत्र श्रीरघुनाथजी और पुत्रवधू जानकीजी के दर्शन कराये और तुलसीदास ने उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। दो सौ बावन वैष्णव वार्ता में बड़ी हो जाने के भय से अष्टछापी वैष्णवों के वृत्तान्त कुछ छोटे कर दिये गये हैं जो स्वाभाविक ही था।

(९) 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' को श्री विट्ठलनाथ भट्ट ने १७२९ वि० में लिखा जो लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस (बम्बई) में १९५० विक्रम संवत् अर्थात् १८९३ ई० में छपा। इसमें लिखा है कि गो० तुलसीदासजी गो० विट्ठलेश की प्रभुता देखने के लिए १६२० वि० के लगभग ब्रज में आये गोवर्धनधारी के दर्शन करते गये और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मेरा मस्तक तब नमेगा जब कृष्णजी राम-रूप में धनुष बाण हाथ में लेंगे। भगवान् ने तुलसी की इच्छा के अनुसार दर्शन दिया। तुलसीदासजी ने गो० विट्ठलनाथ से शरण-मन्त्र चाहा पर उन्होंने तुलसीदासजी को रामभक्त समझ कर अपने पाँचवें पुत्र श्री रघुनाथ के पास भेज दिया। तुलसीदासजी ने आकर उनके दर्शन किये और वे भक्ति की याचना कर अपने स्थान को चले गये। इस ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि श्री वल्लभाचार्यजी कम से कम दो बार और विट्ठलनाथजी भी एक बार, सोरों में गंगा-पूजनादि के निमित्त पधारे थे।

(१०) 'भक्ति विलास' के लेखक श्री महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है कि तुलसीदासजी की धर्म-स्थिति सारी में हुई थी।

(११) स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट ऑव द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंस ऑव इण्डिया। एडविन टी० एटकिनसन द्वारा सम्पादित प्रथम जिल्द बुलेन्दखण्ड इलाहाबाद १८७४ ई० का छपा। इसके पृष्ठ ३७२ ३ पर लिखा है — ऐसी जनश्रुति है कि अकबर के शासन-काल में तुलसीदास नाम के एक महात्मा जो सोरों परगना अलीगंज, जिला एटा के निवासी थे यमुना किनारे उस जंगल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। उन्होंने वहाँ एक मन्दिर बनवाया और वे स्वयं प्रार्थना ध्यान में प्रवृत्त हो गये। उनकी धार्मिकता के कारण बहुत से अनुयायी आकर वहाँ बसने लगे और जनसंख्या बढ़ने पर लोग धर्म और व्यापार दोनों की ओर प्रवृत्त हुए। तुलसीदास के उपदिष्ट नियमों का पालन आज भी राजापुर में होता है।

(१२) इम्पीरियल गजटियर, जिल्द एकादश डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर कृत, द्वितीय संस्करण १८८६ ई०। इसके पृष्ठ ३८५ ६ पर लिखा है कि अकबर के

शासन-काल में तुलसीदास नामक एक भक्त ने सोरों से आकर राजापुर की नींव डाली, और बहुत से अनुयायियों को आकर्षित किया।

(१३) इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया यू० पी० द्वितीय (प्रॉविंशल सिरीज) कलकत्ता १९०८। इसके पृष्ठ ५० पर लिखा है—ऐसी जनश्रुति है कि रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास ने राजापुर की नींव डाली और यहीं उनका निवास-स्थान भी बताया जाता है।

(१४) डिस्ट्रिक्ट गजटियर्स ऑव दि यूनाइटेड प्रॉविंसेज जिल्द २१ बाँदा १९०९। इसके पृष्ठ २८५ पर लिखा है कि अकबर-काल में तुलसीदास नामक एक महात्मा जो सोरों (तहसील कासगंज जिला एटा) के रहने वाले थे यमुना किनारे उस जंगल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है' ये वे ही तुलसीदास हैं जिन्होंने रामायण लिखी है।

(१५) स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स ऑव दी हिन्दूज एच० एच० विलसन कृत नवीन संस्करण १८६१ ई० पृष्ठ ६३ ६४ पर लिखा है कि भक्तमाल के अनुसार तुलसीदास अपनी पत्नी में बड़े अनुरक्त थे और उसी के उपदेश से राम भक्ति में प्रवृत्त हो संसार से विरक्त और वृन्दावन में नाभाजी से परिचित हुए।

(१६) 'द प्रोलोग टु द रामायण आव तुलसीदास' स्पेसीमन ट्रांसलेसन एफ० एस० प्राउजहृत जर्नल आव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल जिल्द ४५, १८७६ ई०। इसमें लिखा है कि श्री० तुलसीदास ने सूकर क्षेत्र में शिक्षा पायी और यह भी बताया गया है कि सूकर क्षेत्र किस प्रकार 'सोरों' शब्द में परिवर्तित हो गया। रामायण के सम्पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद (पंचम संस्करण १८९१ ई०) की भूमिका में 'भक्ति सिन्धु' का उल्लेख है जिसमें तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम लिखा है।

(१७) 'नोट्स ऑव तुलसीदास' जी० ए० ग्रियर्सनकृत 'इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द २२ सन् १८९३ ई०। ग्रियर्सन महोदय ने जनश्रुति के आधार पर यह सूचना दी है जो सोरों-सामग्री से पूर्णतः मेल खाती है—यों तुलसीदास के पिता थे आत्माराम माता हुलसी गुरु नरहरि, श्वशुर दीनबन्धु पाठक पत्नी रत्नावली और पुत्र तारक। ग्रियर्सन निम्नलिखित छन्द जनश्रुति के रूप में देते हैं —

> दुबे आत्माराम है पिता नाम जग जान।
> माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुत जान।
> प्रह्लाद अक्षरन नाम करि गुरु को सुनिये साध।
> प्रथम नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराध
> दीनबन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ
> रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक मत होइ।

उन्होंने सूकर क्षेत्र अर्थात् सोरों में शिक्षा पायी। जन्म-स्थान के लिए कई स्थान बताये जाते हैं यथा—तारी (दुआब में) हस्तिनापुर, हाजीपुर, (चित्रकूट के निकट) बाँदा जिले का राजापुर। किन्तु इन सब में तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है—यथा कि ग्रियर्सन लिखते हैं। (ध्यान देने की बात है कि गंगा-यमुना के दुआब में

और काली नदी गंगा के भी बीच सहावर जिला एटा में तारी-नामक एक ग्राम विद्यमान है जहाँ सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी की माता का जन्म हुआ था)। तुलसीदासजी ने अपने गुरु के नाम की ओर बालकांड में केवल संकेत किया है, क्योंकि गुरु का नाम नहीं लेना चाहिए। ग्रियर्सन ने जिस जनश्रुति का विवरण दिया है वह पठनीय है। यों तो जन-श्रुति में मिलावट हो जाया करती है और इधर की बातें उधर हो जाती हैं फिर भी उक्त जनश्रुति में सत्य का भावपूर्ण आभास मिलता है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त जनश्रुतियों और वार्ताओं का संकलन ग्रियर्सन महोदय ने अनेक विद्वानों के विशेषतः महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और बाबू रामदीनसिंह के परामर्श से किया जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के निवासी हैं किन्तु यह जनश्रुति उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित सोरों-सामग्री से अधिक कोश में मेल खाती है।

ग्रियर्सन यह भी लिखते हैं कि तुलसीदासजी एक बार दिल्ली से वृन्दावन गये। वहाँ कृष्ण-भक्त नाभादासजी से उनकी भेंट हुई और वे एक दिन वहाँ कुछ वैष्णवों के साथ एक मन्दिर में गोपालकृष्ण के दर्शन करने गये। कुछ वैष्णवों ने व्यंग्य कसा कि तुलसीदासजी अपने इष्टदेव राम को छोड़कर अन्य देव के मन्दिर में दर्शनार्थ आये हैं। बस तुलसीदासजी बोल उठे—

का करौं छवि आज की भले बिराजौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लो हाथ।

तुलसीदासजी की अभिलाषा पूर्ण हुई और भगवान् कृष्ण ने राम के रूप में दर्शन दिये।

१८ (क)—ग्रियर्सन के उत्तरकालीन परिश्रमी लेखकों ने यथा वे० एम० मेकफी (१९३० ई०) किशन सिंह आदि ने उक्त जनश्रुति के ही आधार पर तुलसी का जीवन-वृत्तान्त दिया है।

(ख) स्वर्गीय मिश्रबन्धु भी तुलसीदास के सम्बन्ध में हुलसी और आत्माराम को माता पिता और रत्नावली को पत्नी मानते हैं।

(ग) गोस्वामी तुलसीकृत रामायण के टीकाकार पं० सीताराम मिश्र (नवीन पुर सीरी) लिखते हैं कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण और तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। और वो तुलसीदासजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था और उनके पुत्र का नाम तारक था।

(घ) 'रामचरित मानस रामायण टीका सहित' टीकाकार सूरजभान अग्रवाल लिखते हैं कि तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से कर लिया।

(ङ) तुलसीकृत रामायण संजीवनी टीका में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र १९०४ ई० में लिखते हैं कि तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।

(च) तुलसीकृत रामायण टीकाकार रामेश्वर भट्ट (१९०२ ई०) लिखते हैं कि दीनबन्धु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य रामभक्त जानकर अपनी सुन्दरी कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।

(छ) गोस्वामी तुलसीकृत रामायण। टीकाकार पं० नारायण प्रसाद मिश्र

(लखीमपुर खीरी) १९६० ई में लिखते हैं कि तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ और उससे तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।

(ञ) रामचरित मानस सटीक। डॉ० श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि तुलसी दास के गुरु स्मार्त-वैष्णव थे। सोरों-सामग्री भी उन्हें स्मार्त-वैष्णव समझती है।

(ञ) रामचरित मानस सटीक। टीकाकार पं० बाबूराम मिश्र (हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता) लिखते हैं कि तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे।

(ट) बनारस कालिज के पं० रामयश ने १८६९ ई में श्री तुलसीदासकृत रामायण में तुलसी गुरु के नाम लिखे हैं नरहरि नरहरिदास नृसिंह।

(ट) बैजनाथजी कुर्मी ने १८९० ई में 'रामायण तुलसीकृत' के १६वें पृष्ठ पर गुरु नरहरि का और १६४वें पर माता हुलसी का उल्लेख किया है।

(ठ) 'मानस परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' (१८९८ ई०) के ३९वें पृष्ठ पर 'सूकरखेत' का अर्थ किया गया है सोरों घाट जहाँ वाराह अवतार भयो।

(ड) 'मानस दर्पण' (१९१३ ई०) में श्री चन्द्रमौलि सुकुल ने सूकरक्षेत्र को सोरों माना और हुलसी आत्माराम दीनबन्धु आदि नामों का उल्लेख किया।

(ढ) दास पूरनभक्त श्री वास्तव ने श्री रामचरितमानस' (१९८६ वि) में आत्माराम हुलसी नरहरिदास दीनबन्धु रत्नावली तारक और सूकरखेत (=सोरों) का उल्लेख किया है।

(ण) रामचरित मानस सटीक। भूमिका में पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं को तुलसीदास सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे।

(त) रासपंचाध्यायी। सम्पादक स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण और तुलसीदास के छोटे भाई थे।

(१९) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (१९०७-१९४२ वि०) ने भक्तमाल में नन्ददास को तुलसीदासजी का अनुज और गो० विट्ठलनाथ का सेवक बताया है और यह भी लिखा है कि नन्ददास ने भाषा में भागवत रची किन्तु गो विट्ठलनाथजी के कहने से उसे यमनाजी में डाल दिया जैसा कि वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में भी लिखा है।

(२) गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित रानी केवल कुंवरि देवकृत रियासत सरीला जिला हमीरपुर, १९३२ वि० में छपा था। उसके अनुसार तुलसी दास सनाढ्य ब्राह्मण थे और अपनी पत्नी में अत्यन्त आसक्त होने के कारण गंगा को पार कर अपनी सुसराल पहुँचे थे। ध्यान देने की बात है कि राजापुर तो यमुना किनारे है हाँ सोरों-सामग्री के अनुसार वे गंगा पार करके अपनी सुसराल बदरिया पहुँचे थे।

(२१) श्री अयोध्याजी प्रमोद वन कुटिया निवासी सीतारामशरण भगवान प्रसाद विरचित श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक युक्त (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ) सन् १९१३ ई०। ७४१वें पृष्ठ पर वार्तिककार लिखते हैं : जन्म-स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं बाँदा जिले में यमुनातीर राजापुर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर

आपका जन्मस्थान नहीं। श्री गोस्वामीजी का जन्मस्थान गंगा वाराह क्षेत्र (सोरों के प्रान्त अन्तर्वेद में) तारी नामक ग्राम या तारी था यह बात वहाँ वालों ने भली प्रकार निश्चय की है।

(२२) रेवरेंड एडविन ग्रीव्स (तुलसी ग्रन्थावली निर्णयावली, पृष्ठ ४५ पर) लिखते हैं : पर जन्म कहाँ हुआ ? लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं, उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ पर गुसाईंजी ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गढ़ि बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्मभूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा वह ताड़ी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता पिता वहाँ रहते थे पर वह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ ?

(२३) शिवनन्दनसहायजी (माधुरी पृष्ठ ४ अगस्त १९२३ ई०) जन्मस्थान के सम्बन्ध में लिखते हैं कि अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच आग्रह है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहाँ के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होने पर वे कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और प्रायः आया करते थे।

सहायजी यह भी सूचित करते हैं कि "किसी किसी का मत है कि 'तारी' और 'सोरों' के बीच में कहीं पर गोसाईंजी का ससुराल था"।[1] इन शब्दों से स्पष्ट है कि सोरों-मत नवीन नहीं वह पहले से ही उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में विद्यमान था।

(२४) लाला सीताराम जी मानते हैं कि गोस्वामीजी सनाढ्य थे और तारी में उत्पन्न हुए। (अयोध्या काण्ड' में तुलसीदासजी का जीवन चरित्र १९२१ ई०)।

(२५) श्री गोविन्दवल्लभ भट्ट माधुरी १९२९। भट्टजी लिखते हैं—श्री तुलसी-स्मारक सभा राजापुर के अधिकारी[2] से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र व्यवहार किया तो उत्तर में उन्होंने 'प्राइवेट' शब्द के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।

(२६) सोरों सूकरक्षेत्र गंगा किनारे है इस विषय में प्रमाण है—मर्म संहिता वराह पुराण, ब्रह्म पुराण पृथ्वीराजरासो आइने अकबरी बीरसिंहदेव एट' गजटियर, आर्केलोजिकल सर्वे।

(२७) श्री० तुलसीदास का अन्तःसाक्ष्य (आत्म-परिचय) निम्नलिखित छः कवित्त अन्य वचनों में उपलब्ध है :—

(क) दियो सुजस जनम सरीर सुन्दर (विनय पत्रिका)

(ख) भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै। (कवितावली)

---

१ श्री गोस्वामी तुलसीदासजी १९१६ ई० पृ० २२।

२. श्री रंगाचार्य जी, सेक्रेटरी, १० नवम्बर १९१९ ई०।

(ङ) रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी तुलसिदास हित हिय
तुलसी सी। (रामचरित मानस)
(च) जननि जनक तज्यो जनमि (विनय पत्रिका)
(छ) राम को गुलाम नाम राम बाला राख्यो राम (विनय पत्रिका)
(ज) राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहिबी। (कवितावली)
(झ) बन्दौं गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि (रामचरितमानस)
(ञ) मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत (रामचरितमानस)
(ट) तुलसी तिहारो घर आयो है घर को (कवितावली)
(ठ) बन बारहिं बार सरीर धरौं
रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो (क)
(ड) को पहुँचाव रामपुर तन अवसान। (बरवै)
(ढ) अतन अनूपम आनु धर अकल कला गुन धाम
अबिनासी अगुन अगम जो यह तनु धरि राम। (तु० स०)[2]
(१८)—तुलसी तेरो मड़ैयो बलकटियन के पास।
कौन करे कोई नरै तू चल होय उदास॥

श्री रामनरेश त्रिपाठी अक्तूबर १९३२ में सोरों पधारे थे। किन्तु उनको उक्त दोहा पहले से ही स्मरण था और सोरों आकर उन्हें पता चला कि तुलसीदासजी का घर सोरों के मोहल्ले में कसाइयों के निकट था।

(२९) श्री रामनरेश त्रिपाठी और भट्टजी ने कुछ ऐसे शब्दों की ओर ध्यान दिलाया है जो सोरों में ही या उसके आसपास बोले जाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें गुजरात पंजाब और राजपूताना से आने वाले बोलते हैं यथा—

केवल सोरों के तायो और को जीवरा चकजोरि कुटिल कीट तिजरा को सो टोटक।

पंजाबी राजस्थानी-गुजराती माय जायो मौजो (हाथ फेरा) मैन (मैल मोम) बोले काठ घोंगी, मूकी दियो (दूसरा) म्हाको दाक (वाक्य) मारि अपका मार (बर्तन) खेरा (शाम), इत्यादि।[3]

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव की सम्मति में तुलसीदासजी की मुद्रांकित पंक्तियों से 'राजापुर विषयक जीवन-वृत्त की अपेक्षा सोरों-विषयक जीवन-वृत्त की अधिक पुष्टि होती है' और डॉ० श्रीवास्तव के ही शब्दों में "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके आस-पास रहे।"[4]

(३०) गोस्वामी तुलसीदासजी ने अवासा शब्द का प्रयोग कई बार अपने कुछ ग्रन्थों में किया है यथा: जिमि अवास परें पावस पानी',[5] अर्थात् वास पाते बिनु

---

१ इस विषय का सविस्तर प्रतिपादन प्रथम अध्याय में हुआ है।
२. भाषा-सम्बन्धी विशेष विवरण के लिए परिशिष्ट अध्याय देखिये।
३ और ४ तुलसीदास की भाषा पृ० ३९२, ३९७।
५ रा २, ५४ २।

'सुकुल' और 'स्याम' द्विरर्थक हैं। सुकुल का अर्थ है शुक्ल (श्वेत) और सुकुल अथवा शुक्ल नामक आस्पद तथा स्याम का अर्थ है श्याम अथवा श्रमित तथा श्री कृष्ण। तुलसीदास के गृहस्थाश्रम के पश्चात् नन्ददासजी कृष्ण भक्त हो गये थे और उन्होंने भक्ति के आवेश में अपने जन्म-ग्राम के नाम को रामपुर से श्यामपुर में परिवर्तित कर दिया। राम भक्त पति की पत्नी के नाते रत्नावली को कदाचित् यह परिवर्तन अच्छा न लगा क्योंकि पति वियोग में तो पूर्वजों का सुकुल घराना उसे श्याम सा प्रतीत होने लगा। वह कहती है 'यह कुरुक्षेत्री भूमि भगवान् वराह के चरणों से पवित्र और भागीरथी गंगा के तट पर है यह आपकी जन्मभूमि भी है न जाने आप इसको छोड़ कहाँ चले गये?

उपालम्भ और खेद—रत्नावली को खेद है कि गाजे बाजे तथा धूम-धाम के साथ मेरा विवाह हुआ और मैं पति प्रिया भी थी किन्तु एक दिन रात को सहसा बिना किसी आडम्बर के मेरे प्राणनाथ मुझे सोती छोड़कर चले गये। पति-वियोग के विषय में उसका पश्चात्ताप उपालम्भपूर्ण है—

कर गहि साए नाथ तुम बाजन बहु बजवाइ
परहु न परसाए तजत रतनावलिहि अगाइ। ३७।
सोवत सों पिय उठि गए जगिहु गई हौं सोइ
कबहुँ कि अब रतनावलिहि आइ जगावहिं मोइ। ३८।[1]
रतन प्रभ डंडी तुआ पला चुरे इकसार
एक बाट पोडा सहे एक गेह संभार। ४३।
दीनबन्धु कर धर पली दीनबन्धु कर छाँह
छोड़ गई हौं दीन अति पति त्यागी जो काँह। ३६।

काल-निर्देश—रत्नावली सूचित करती है कि मैं विवाह के समय द्वादश हिराम मन के समय षोडश तथा पति-वियोग के समय सत्ताइस वर्ष की थी। संवत् १६०४ वि० मेरे लिए बड़ा अशुभ रहा क्योंकि उसी वर्ष मेरे पति ने गृह का और मत्ता ने देह का त्याग किया—

बीस बारहीं कर गहो तोरहिं गवन कराइ
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन अस्ठाइ। ४१।
सागर बरस ससी रतन संवत जो बुधवाइ
पिय वियोग जननी मरन करम न भूलो जाइ। ४२।

पश्चात्ताप—रत्नावली ने पश्चात्तापपूर्वक लिखा है कि अप्रासंगिक शब्दों के कारण पति से मेरा वियोग हुआ था। किन्तु वास्तव में मैं निर्दोष थी

सुनहु बचन अप्रहृत मरन रतन प्रहृत के साथ
जो मो कहँ पति प्रेम संग ईस प्रेम को नाथ। ४।
कहि अनुतापी बचन हूँ परिनति हिये बिचारि
जो न होइ पछिताउ उर रतनावलि अनुहारि। ५।

---

१ सुनहि तुलसी तुलसीपि रत आपन की रह सोइ।
अरदेसिते बनावतो तुलसी उचित न होइ। (तु स ७.५८)
यह दोहा में रत्नावली के उपालम्भ का उत्तर है।

धिक मो कहुँ मो बचन सुनि मो पति लहो बिराग
भई बियोगिनि बिस करनि रहु उदासति काग । १० ।
हौं न नाथ अपराधिनी तऊ छमा करि देउ
चरनन दासी जानि निज बेग मोरि सुधि लेउ । ११ ।

देवर—रत्नावली ने अपने देवर नन्ददासजी का उल्लेख किया है जो वय में उसके पति से छोटे थे । राम भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने उनके द्वारा रत्नावली के पास राम भक्ति का सन्देश भेजा था—

मोहि दीनो संदेस पिय अनुज नन्द के हाथ
रतन समुझि जनि छुवक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ । २७ ।

पति की राम भक्ति—रत्नावली को ज्योंही खेद हुआ कि मेरे पति के हृदय में तो भगवान् रामचन्द्र ने मेरा स्थान ले लिया त्योंही स्वयं उसका समाधान हुआ कि मेरा भाग्य सुन्दर है क्योंकि जिसके हृदय में राम बसते हैं उसका वास मेरे हृदय में है अतएव मेरे हृदय में एक के निवास से दोनों का निवास है—

राम भगति भूषित भयो पिय हिय निपट निकाम
अब किमि भूषित होइ है तहँ रतनावलिहि नाम । २० ।
राम जासु हिरदै बसत सो पिय मम उर धाम
एक बसत दोऊ बसहिं रतन नाम अभिराम । २१ ।

वियोग की शोचना—रत्नावली ने पति वियोग का तीव्र अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति उसने न्यूनाधिकन्यून तेईस दोहों में की है—

हाड़ मांस ही हौं कहो कहो रोम हिरदेस
हौं रतनावली अलि गई पिय हिय काम बिसेस । १ ।
कलि बसरिका फूल भई हौं पिय कंटक कर
बिपत दुखित हूँ चलि गए रतनावलि उर मूर । २ ।
हाड़ बसरिका बन भई हौं बामा बिस बेलि
रतनावलि हौं नाम की रसहि गयो बिस मेलि । ३ ।
कहि अनुसंगी बचन हूँ परिमति हिये बिचारि
को न होइ पछिताउ उर रतनावलि अनुहारि । ५ ।
धिक मोकहुँ मो बचन सुनि मो पति लहो बिराग
भई बियोगिनि बिस करनि रहुँ उदासति काग । १० ।
अपनि गए घर सों निकरि को मन बिछुरे नाहिं
मन सों निकरहु तो लखहिं का दिन प्रान लखाहिं । १२ ।
नाथ रहौंगी मौन हौं आपहु पिय जिय सोच
कबहुँ न उठैं अराधनो देखैं कबहुँ न मोच । १३ ।
छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के नाह
पूरी अलो हौं आपकी तजउ न कउ बिनाह । १४ ।
कबहुँ कि उगै भाग रवि कबहुँ कि होइ बिहान
कबहुँ कि बिकसै उर कमल रतनावलि सनुमान । १८ ।

सुवरन पिय संग हों सती रतनावलि सम कीन्हु
तिहि बिछुरत रतनावली रही कीन्हु अब सीन्हु । ३४ ।
हों न पद्मिन पिय सों भई सेवा करि इन हाथ
अब हौं पावहु कौन बिधि सबपति दीनानाथ । ३२ ।
कबहुँ रह्यो नवनीत सो पिय हिय भयो कठोर
किमु न द्रवहि हिम उपल सम रतन फिरहुँ बिन मोर । ३६ ।
असन बसन भूषन भवन पिय बिन कछु न सुहाइ
भार रूप जीवन भयो छिन छिन जिय अकुलाइ । ४० ।

वियोग का जीवन—वियोग में इस पतिव्रता ने अपना जीवन किस प्रकार यापन किया यह निम्नांकित पंक्तियों में निहित है। पतिपद-सेवा से विहीन हो उसने पति पादुका-सेवा को अंगीकार किया। बसमन्त व्यक्ति की नौका रज्जु जीवन का अवलम्ब देती है—

पति पद सेवा सों रहित रतन पादुका सेइ
बिरत नावसों रज्जु तेहि सहित पार करि देइ । ३४ ।

(ख) रत्नावली की शैली

रत्नावली का गौरव—रत्नावली ने अधिक नहीं लिखा ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि उसके केवल २०१ दोहे और कतिपय पद उपलब्ध हुए हैं। उसने रचना के लिए दोहे नामक चार चरण वाले छन्द को अपनाया जिसके अक्षरारम्भ-हीन विषम चरणों में त्रयोदश और सम चरणों में एकादश मात्राएँ होती हैं तथा सम चरणों के अन्तिम दो स्वर क्रमशः दीर्घ और लघु होते हैं। हिन्दी के उन कवियों में जिन्होंने लिखा-मद सहस्रों के निमित्त इस छन्द का सफलतापूर्वक उपयोग किया है वे हैं तुलसीदास रहीम बिहारी वृन्द आदि। इस दिशा में रत्नावली का महत्त्व कम नहीं। उसकी लेखनी से कोई ऐसा निस्तरंग न हुआ जिसे उसने माधुर्य प्रदान न किया हो।

वृत्त—छन्द परीक्षा की कसौटी पर उसका वृत्त ठीक उतरता है। हाँ केवल चार स्थलों पर अर्थात् ८७ ११५, १२८ और १४४ संख्यक दोहों में प्र प्रा उ नामक अक्षरों की ध्वनि को कोमलता प्रदान करने की आवश्यकता है, और सबमन उसने ही स्थलों में पूर्व बिन्दु का उच्चारण चन्द्र-बिन्दु-सम होना चाहिए। प्रथम प्रकार का व्यतिक्रम तो न्यूनाधिक प्रचलित है द्वितीय तो वर्तनी का विषय है। उसकी रचना यतिभंग दोष से सर्वथा मुक्त है। अतएव यह कथन कि रत्नावली की रचना में छन्द सम्बन्धी दोष नहीं है अयुक्ति नहीं। यह बात बड़े गौरव की है कि वह ऐसे छन्द के उपयोग में सफल हुई है जो कदाचित् सम्पूर्ण अतएव अभिव्यंजन में कठिनतम है। कुशल कवि ही गागर में सागर भर सकते हैं।

सर्वप्रियत्व—रत्नावली ने उच्च विचारों को थोड़े शब्दों में ही व्यक्त करने की प्रशंसा की है, सुकवि का आदर्श भी यही है। उसके शब्द हैं—

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास
तिमि उचरहु लघु पद करहि अरथ गंभीर बिकास ।१६२।।

इससे स्पष्ट है कि वह विदुषी शब्दबहुल वाक्य की अपेक्षा अर्थगम्भीर वाक्य को अधिक प्रशस्त समझती है। उसने स्वयं मातृपूर्वपूर्व अनुमित को अपनाया है उसे पादपूर्ति अथवा यमपानुप्राह के निमित्त शब्दान्वेषण की आवश्यकता कभी न पड़ी। उसकी रचना में ऐसा कोई शब्द प्रवेश न कर सका जो व्यर्थ हो अथवा अनावश्यक। अतएव प्रतीत होता है कि छंद और कोश पर उसका अधिकार था यह कोई कम बात नहीं।

भाषा—इसमें कोई मतभेद नहीं कि रत्नावली ने ब्रजावली में लिखा जो उसकी बोली थी। मैंने 'ब्रजावली' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि उसकी भाषा ब्रजभाषा तो थी किन्तु वह ब्रजभाषा ऐसी नहीं जैसी उसके समकालीन ठेठ ब्रज के निवासी महाकवि सूरदास की थी। रत्नावली और तुलसीदास उस तीर्थ-स्थान के निवासी थे जहाँ ब्रज और अवध निवासियों का सम्पर्क होता था अतः गोस्वामीजी का 'रामचरित मानस' और रत्नावली के दोहे ब्रजावली में हैं। कारक-चिह्नों और सर्वनाम के रूपों में इस भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। उसने केवल दो तुर्की शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् 'तुरक' और 'चकमक' का अन्यथा उसकी रचना विदेशी प्रभाव से विमुक्त है। हो सकता है उसे विदेशी शब्दों के प्रचुर प्रयोग का अवसर ही न मिला हो क्योंकि उसका लालन-पालन कट्टर हिन्दू माता-पिता के द्वारा हुआ और विवाह भी ऐसे घराने में जो पौरोहित्य पर निर्भर था इसके अतिरिक्त भी साहित्य में उसकी प्रवृत्ति संस्कृत में रहती और गंगा-तटस्थ तीर्थ में उसका निवास। यद्यपि उसके पति का कुछ 'बजकटियों' अर्थात् कसाइयों के मध्य अथवा सन्निकट था तथापि सम्भव है उसने उनके स्त्री-समाज से घनिष्ठ सम्पर्क को औचित्यहीन समझा हो। यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे अपढ़ कूबड़ और उनकी स्त्रियाँ हिन्दू-माता-घरों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग करते भी थे।

हाँ रत्नावली ने तद्भव अर्थात् संस्कृत के अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है। प्रायः सारे शब्द इस प्रकार के हैं। अवशिष्टों में अधिकतर ऐसे हैं जिन्हें तत्सम कहा जाता है। अल्पसंख्यक ऐसे शब्द हैं जो स्थानीय प्रान्तीय अथवा अनिश्चित व्युत्पत्ति के हैं। उदाहरणार्थ 'पुनीत' शब्द का प्रयोग हुआ है। वैयाकरणों की सम्मति में पवित्र के अर्थ में 'पूत' ही शुद्ध है यद्यपि महाभारत में भी इसका प्रयोग हुआ है।

रीतिकालीन कुछ कवियों की भाँति रत्नावली शब्दाडम्बर में नहीं पड़ी। इस विषय में कदाचित् उसने जान-बूझकर कोई प्रयत्न नहीं किया। उसके वाक्य व्याकरण से असम्मत नहीं। उनका लक्ष्य ब्रजावलीय है अतएव 'होना' क्रिया के कुछ रूप तथा कतिपय संयोजक शब्द छोड़ दिये गये हैं किन्तु इससे अर्थ अस्पष्ट नहीं होता।

रत्नावली का तर्क लाहरमानुमान तथा स्थानुमत से प्रवाहित है, किन्तु अधिकतर प्रथम से ही। उसके तर्क में बल है और विश्वासोत्पादकता भी। उसकी शैली में है सजातत्व किन्तु प्रहार भी लोकरुचि किन्तु चमत्कार भी।

अलंकार—रत्नावली के दोहों में अलंकारों का अभाव नहीं। उसने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु उसने अपने कवित्व को प्रकाशित करने की भावना से जान-बूझ कर ऐसा नहीं किया। उसकी भाषा विष्ट (वैदर्भ अलंकृत) अप्रयुक्त अथवा नितान्त नूतन प्रयोगों से रहित किन्तु सरल तथा प्रभावित है। इसमें सन्देह नहीं

कि उसकी रचना में अनेक सबल विशेषताएँ विद्यमान हैं किन्तु उनसे तो भाव को सुस्पष्टता ही प्राप्त होती है। उसके दोहों के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में अन्त्यानुप्रास सदैव विद्यमान रहता है अन्य प्रकार के अनुप्रास का स्वाभाविक प्रयोग भी बड़ा रुचिकर है।

विषय—रत्नावली के काव्य का विषय है अपने तथा अपने वंश के सम्बन्ध में आकस्मिक आत्मपरिचय तथा पति वियोग-जन्य शोक का वर्णन। इसके अतिरिक्त उसके काव्य का विषय है—स्त्री जाति को सतीत्व-सदाचार का उपदेश बृहत्त्व-सम्बन्धी आवश्यक सुझाव एवं पति माता-पिता सम्बन्धी मित्र अज्ञात व्यक्तियों के प्रति व्यवहार। उच्चतम दर्शन विश्वबन्धुत्व और स्त्री शिक्षा पर भी यत्र-तत्र विचार प्रकट किये गये हैं जिनका विवरण अलग दिया जायगा।

रस—उसके प्रायः सभी दोहे जिनका अपने व्यक्तित्व और वंश से विशेषतया वियोग से सम्बन्ध है, करुण विप्रलम्भ' से ओतप्रोत हैं। जगन्नाथ पंडित के अनुसार यह रस पति-पत्नी के उस प्रेम में विद्यमान रहता है जिसमें जीवित पति अथवा पत्नी के वियोग से उत्पन्न शोक भी प्रधान मात्रा में विद्यमान हो। इसके उदाहरण हैं दोहे संख्यक १ २ ३ ८ १० १५ २० ३२। ये निस्सन्देह विप्रलम्भ के उदाहरण हैं। अतः इनकी गणना शृंगार रस में होनी चाहिए किन्तु पति-मिलन के अनिश्चय एवं शोकातिरेक के कारण यह करुण की ओर प्रवृत्त हैं। मिलन की नितान्त अनिश्चितता तो प्रेमी की मृत्यु के ही समकक्ष है। फलतः इस रस को उक्त दोनों रसों का मिश्रण समझ कर 'करुण विप्रलम्भ' कहना उचित होगा। किन्तु कुछ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें पति-मिलन की सुदूर आशा विद्यमान है अतः १३ १४ २७ ३७ ४३ और ४४ संख्यक दोहों को शुद्ध विप्रलम्भ का उदाहरण समझना समीचीन रहेगा।

रत्नावली की रचना में एक और रस विद्यमान है जिसे शान्त रस कह सकते हैं। अभिनवगुप्त जगन्नाथ और मम्मट ने भी इस रस को माना है। प्रथम पैंतालीस दोहों के अतिरिक्त शेष सभी इस रस से परिपूर्ण हैं। कदाचित् इस विषय में जगन्नाथ पण्डित का मतभेद हो क्योंकि उनके मतानुसार इस रस की व्याप्ति तो प्राचीन-ज्ञान द्वारा संसार-विरक्ति के विषय में होती है अर्थात् उस शान्ति के वर्णन में जो वेदान्त तथा अन्य दर्शन-शास्त्रों के अध्ययन द्वारा नित्य और अनित्य के विवेचन से उपलब्ध होती है। किन्तु उक्त रस के विरोधी-उदाहरण से जो उन्होंने उपस्थित किया है ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें भगवद्भक्ति को शान्त रस का अंग मान लेना अभीष्ट नहीं रति में आधार-मिलन को तो और भी कम। अतः उनके मत से रत्नावली का चवालीसवाँ दोहा शान्त रस का उदाहरण नहीं होना चाहिए। किन्तु मेरी विनीत सम्मति में तो उसमें शान्त रस है क्योंकि यदि यह रति का उत्पादक होता तो शृंगार रस होता किन्तु वह तो किसी संदेश को उत्पन्न नहीं करता। वह हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक बोधित करता है। अतः उस में जो स्थायी भाव है वह केवल भाव (प्रीतिम) है संदेश नहीं। मेरी समझ में कोई भी स्थायीभाव स्थायीभाव नहीं कहा जा सकता यदि वह तत्सम्बन्धी संचारी भाव को उत्पन्न न करे। अतएव रति तब तक रीति नहीं जब तक वह प्रेम के संचारी भाव को थोड़े समय के लिए भी प्रेरित न करे। वह शोक जो रुलाता नहीं

अथवा किसी प्रकार का खेद व मानसिक कष्ट नहीं देता करुण नहीं। यह आवश्यक है कि हास्य रस किसी पाठक श्रोता अथवा द्रष्टा को हँसने-मुस्कराने का अवसर दे हाँ यदि वह व्यक्ति किसी कठोरतर पदार्थ का न बना हो अथवा अतिमानव या उप-मानव न हो। इसी भाँति शान्त रस मानव को निर्वेद, आनुकूल्य मानसिक सामंजस्य स्थिरता और संदेहहीन-तल्लीनता प्रदान करता है। मेरी सम्मति है कि शान्त रस में सभी प्रकार का वह काव्य सम्मिलित है जो उपदेश आदि के द्वारा शान्ति-समस्त को मोहित करता है। रत्नावली के लगभग एक सौ छप्पन दोहे विद्याप्रद हैं जिनमें शान्त रस निहित है।

कौशल—रत्नावली का कवित्व कौशल में प्रतिभाशाली है। उसकी कल्पना और कला कवि-कुल के नारी हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'दीनबन्धु' उसके पिता का नाम था जिसका उसने एक ही दोहे में किस चातुर्य से दो बार उल्लेख किया है, जिसका अर्थ भगवान् भी होता है। 'दीन' शब्द तो विशेषतया सूचक है। वह यमक का प्रयोग करती हुई कहती है कि यद्यपि दीनबन्धु के घर में मेरा पालन-पोषण हुआ तथापि मुझे इतना दीन होना पड़ा—

दीन-बन्धु कर घर पली दीनबन्धु कर छाँह
तोऊ भई हौं दीन अति पति त्यागी जो बाँह।१६।

सत्रहवें दोहे के 'मुकुल' और 'स्याम' शब्दों से कितने उत्कृष्ट हैं। रत्नावली के मन का जो फूल उनकी उपस्थिति में खुला था वह उनके वियोग में इसे स्याम प्रतीत होने लगा ग्राम वन तुल्य हो गया और रत्नों की अवलि कांति हीन हो गयी। अपने इस भाव को प्रकट करते [illegible] उसने यह भी इंगित कर दिया है कि उसके पति के चले जाने के पश्चात् नन्ददासजी ने अपने जन्म-ग्राम 'रामपुर' का नाम श्यामपुर रख दिया था—

सनक सनातन मुकुल मुकुत यह भयो पिय स्याम
रत्नावलि आभा गई तुम बिन बन सम गाम।१७।

पच्चीसवें दोहे में पति-नाम को किस कौशल से व्यक्त किया है। हिन्दू-नारी होने के नाते वह अपने पति का नाम सीधे नहीं लेती किन्तु अपने काव्य में वह उस नाम को अमर कर देना चाहती थी अतएव उसने किस अनिंद्य कौशल से पर्यायोक्ति का उपयोग किया है—

जासु बसहिं तहिं हरषि हरि हरत भगत अघरोग
तासु दास पद बसति हूँ रतन लहत कत लोग।२५।

रत्नावली का वैदग्ध्य द्रष्टव्य है। वह अपने भाग्य की प्रशंसा करती है कि मेरे पति के हृदय में भगवान् राम विराजमान हैं और मेरे हृदय में पति-देव। अतः मेरे हृदय में दोनों हैं—राम और तुलसीदास।

राम जासु हिरदे बसत सो पिय मम उर माँह
एक बसत दीऊ बसहिं रतन भाग अभिराम।२६।

श्रद्धा का उदात्त कितना प्रशस्त है। हिन्दू-पत्नी कितनी संकोचशीला होती है यह उसके व्यवहार से स्पष्ट है। स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वह संकोचवश भी

अतएव पति के रहते वह उनकी यथेष्ट सेवा न कर सकी और उनके चले जाने के पश्चात् तो अवसर ही न मिला—

पति सेवत रतनावली सकुची करि मन लाज
सकुचि गई कछु पिय पद लख्यो न सेवा साज ।३३।

विवाह और अन्तिम विदाय के समय उसके प्रति तुलसीदासजी का व्यवहार कितना स्व विरोधी रहा। उन्होंने विवाह के समय तो रत्नावली का पाणिग्रहण किया किन्तु विदाय के समय वे चुपके से खिसक गये। पाणि-ग्रहण के समय तो बाजे-गाजे के साथ सबके समक्ष प्रथम हाथ बढ़ाने वाले पति देव ने किन्तु विदाय के समय उन्होंने एकान्त में पत्नी को जगाकर पैर छूने का अवसर भी न दिया।

कर गहि लाए नाथ तुम बाजन बहु बजवाइ
पद्धु न परसाए लखत रतनावलिहि लजाइ ।३७।

रत्नावली का रूपक सुन्दर है। उसने अपने पिता की तुलना माली से अपनी लता से तुषार की वियोग से और वसन्त की अभीप्सित सुख से की है—

मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार
नहिं वसंत आगम भयो तब लगि पर्यो तुसार ।३८।

रत्नावली ने नारी-जीवन की तुलना शाक से की है और पति प्रेम की लवण से। जिस प्रकार लवण के बिना भाजी स्वाद-हीन होती है उसी प्रकार नारी का जीवन भी पति-प्रेम के बिना निरानन्द होता है। वह कहती है—

तिय जीवन तेमन सरिस तोलों कछुक सर्च न
पिय सनेह रस राम रस जौलों रतन मिलै न ।४२।

४२वें दोहे के श्लेष मनोरम हैं। बाट के दो अर्थ होते हैं मार्ग और तोलने के निमित्त लोह-प्रस्तर आदि का खण्ड। गृह-सम्भार भी द्विअर्थक है घर की देख रेख तुलने वाले पदार्थ। विवाह-बन्धन की तुलना तुला से है और दम्पति की तुला-पट-द्वय से। तुला में दो पलड़े होते हैं एक में बाटों का भार होता है और दूसरे में गृहस्थी के पदार्थ का। विवाह के द्वारा तुलसीदास और रत्नावली का सम्बन्ध हुआ दोनों वियोग-काल में पीड़ित हैं एक तो मार्ग के कष्ट से और दूसरा गृह-व्यवस्था की चिन्ता से। रत्नावली के कल्पना-पक्ष का सुन्दर उद्भावन है

रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकतार
एक बाट पीड़ा सहै एक गृह संभार ।४३।

पति के बिना पत्नी का जीवन वृथा है। संसार में पति-हीना की दशा ठीक वैसी है जैसी सागर में कर्णधार के बिना पोत की अथवा उच्चारण में स्वर के बिना व्यंजन की। रत्नावली कहती है—

नर आधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हल होत
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि पति पोत ।१४६।

दुष्ट का संग करने की अपेक्षा एकाकी रहना श्रेष्ठ है। असमान व्यक्तियों को अलग रहना चाहिए। उसने वृक्ष और दीपक का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

भल इकिलो रहिबो रतन भलो न बस सहवास
जिमि तव दोमक संग लहै आपन रूप विनास ।१६४।

इस उपदेश को हृदयंगम कर देने के निमित्त वह सवर्ण और असवर्ण का उदाहरण उपस्थित करती है। दो ह्रस्व स्वर मिलकर अपनी सत्ता को नष्ट किये बिना दीर्घ हो जाते हैं अथवा सवर्ण व्यक्ति विवाहादि सम्बन्ध के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं। परन्तु असवर्ण स्वर अपने स्वरूप को खोकर विकृत हो जाते हैं अथवा असमान जाति-धर्म के व्यक्ति विवाह-मित्रता आदि सम्बन्ध के द्वारा अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर देते हैं। रत्नावली कहती है—

सवरन स्वर लघु है मिलत दीरघ रूप लखात
रत्नावलि असवरन है मिलि निज रूप नसात ।१८३।

रत्नावली ने भाग्य की तुलना सूर्य से की है। जिस समय सूर्योदय होता है पादप की छाया बड़ी होती है किन्तु जब वह अस्त हो जाता है तो छाया भी नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब किसी का भाग्योदय होता है तो उसके अनेक इष्ट-मित्र बन जाते हैं, किन्तु दुर्भाग्य के समय इष्ट-मित्र तो क्या शरीर भी साथ नहीं देता। रत्नावली लिखती है—

उदय भाव रवि मीत बहु छाया बड़ी लखाति
अस्त भए निज मीत कहुँ तनु छाया तजि जाति ।१८२।[1]

(ग) रत्नावली के उपदेश

स्त्री शिक्षा पर रत्नावली के विचार

नारी का आदर्श—रत्नावली ने जैसा कि उल्लेख हो चुका है, कन्याओं और महिलाओं को सच्चरित्र एवं नम्रता तथा सत्य भाषण दयालुता धार्मिकता एवं कर्त्तव्यशीलता का उपदेश दिया है और उसने आलस्य क्रोध लोभ स्तेय मद्यपान, द्यूत और व्यभिचार से बचते रहने का यदा-कदा आग्रह भी किया है।

उसका कलत्रादर्श अत्युच्च है। वह नारी प्रशंसनीय है जो अपने पति को मित्रवत् परामर्श देती मातृवत् स्नेह करती और दासीवत् उसकी सेवा करती है।

देति मंत्र बुधि मीत सम महिमि मातु समान
सेवति पति दासी सरिस रतन तुतिय जनि जान ।।१२७।।

स्त्री ही गृह की लक्ष्मी ही और बुद्धि है। उसे अबला कहते हैं किन्तु सती होने पर वह सबला है

तू गृह हीं श्री जो रतन तू त्रिय सकति महान
तू अबला सबला बनै जरि उर सती विमान ।।८५।।

अतः स्त्री को चाहिए कि वह गृह-सुख के लिए लक्ष्मी ज्ञान के लिए सरस्वती और दुष्ट दमन के लिए काली बन

---

१ है रतन भूरि आभा प्रकट बरत आनि मन मोह।
रतन भूरि रवि भूरि सखि सिर पर पल पर होइ ।। तु ॥ १ ४६

रतन रमा सी सुघ सदन बनि सारद धरि ध्यान
बसन बसन हित कालिका बनि कर धारि कृपान ॥८६॥

गृह रक्षता—सुनारी गृहस्थ-कार्य में दक्ष होती है। उसको उचित है कि वह घर में सबप्रथम जागे और सबको सुलाकर सोवे। वैद्यगण भी उस नारी की प्रशंसा करते हैं जो अपना शरीर मन भोजन पान और गृह स्वच्छ रखती है। भली नारी मितव्यय गृह-वस्तुओं का जीर्णोद्धार और वंश-परम्पराओं का पालन करती है लाज कटकती और पति में अनुरक्त रहती है। वह उन वस्तुओं का विशेष ध्यान रखती है जिनका उपयोग उसका पति नित्यप्रति करता है और वह उन्हें प्रतिदिन समय पर तुरन्त उपस्थित करना नहीं भूलती।

रतनावलि सबसों प्रथम जग उठि करि गृह काज
सबनु सुवावहिं सोइ तिय धरि संभारि गृह साज ॥८७॥
तन मन धन भाजन बसन भोजन भवन पुनीत
जो राखति रतनावली तेहि गावत सुर मीत ॥८८॥
धन जोरति मितव्यय करति घर की वस्तु सुधारि
सुप करम आचार कुल पति रत रतन सुनारि ॥८९॥
पति करतल जेहि वस्तु नित तेहि धरि रतन संभारि
समय समय नित दे पियहिं आलस अरहिं बिसारि ॥९०॥

रहस्य रक्षा—भली और बुद्धिमती नारी को उचित है कि वह अपने घर के रहस्य को प्रकट न करे और यों ही मित्र न बनावे। जो स्त्री घर घर घूमने वाली हो उससे कम बोलना चाहिए और घनिष्ठता नहीं बढ़ानी चाहिए। घर शरीर, धन रति औषधि खाद्य-पदार्थ दान आचार के सम्बन्ध में भेद नहीं बताना चाहिए।

घर घर घूमनि नारि सों रतनावलि नित बोलि
इनसों प्रीति न जोरि बहु जनि बह भेदनु खोलि ।७२।
सदन भेद तन धन रतन सुरति सनेपन अन्न
दान धरम उपकार घर राखि बधू परछन्न ।९३।

भृत्यों के प्रति व्यवहार—यह अत्यन्त स्पृहणीय है कि सुगृहिणी अपना गौरव बनाये रखे और भृत्यों को सन्तुष्ट भी। तन्निमित्त उन कर्मचारियों से यथावश्यकता ही बोलना चाहिए क्योंकि अनावश्यक प्रलाप सब अवगुणों का स्रोत है। पुराने कपड़ों को धुलवाकर यथावसर नौकरों को देते रहना चाहिए।

करम धारि जनसों भली जथा काज बतरानि
बहु बतानि रतनावली पुनि अकाज की बानि ।७६।
धरि धुवाइ रतनावली निज पिय पाट पुरान
जथा समय जिन दे करहु करमचारि सनमान ।८७।

सतर्कता—अज्ञात व्यक्ति और फेरीवाले से सतर्क रहना चाहिए। अज्ञात व्यक्ति पर विश्वास उसकी दी हुई वस्तु का उपभोग और उसे घर में टिकाना अपाय-वह हो सकता है। फेरीवाले और भिक्षुकों का रूप धारण करने वाले भी बहुधा धोखा देते हैं।

अनजाने जन को रतन कबहु न करि बिसवास
वस्तु न ताकी पाइ कछु देइ न गेहु निवास ।७७।
धनिक सेवया भिच्छुकन अति कबहूँ पतियाइ
रतनावलि यह रूप धरि दय जन ठगत जमाइ ।७७।

पति के प्रति व्यवहार—नारी के लिए यह अनिवार्य-सा है कि वह शिष्टाचार और साधारण व्यवहार के नियमों से परिचित हो। पतिदेवता सदा सस्मित-वदन-युक्त होना उचित है। जो स्त्री अपने पति के समक्ष प्रसन्न-वदना रहती और गृहकार्य में दक्ष होती है वह अपने पति को प्रसन्न रखने तथा स्वकुल और पतिकुल के गौरव को बनाये रखने में सक्षम रहती है। उसे ऐसे व्रत ध्यान उपवास और तीर्थाटन से बचना चाहिए जो पति के प्रति कर्तव्य में बाधक सिद्ध हों। पत्नी के लिए ऐसे व्रत या अन्य धार्मिक कृत्यों का विधान नहीं। यदि स्त्री पतिव्रता है तो पतिसेवा के द्वारा स्वतः उसे पूर्ण सुख और स्वर्ग-निवास की उपलब्धि हो जायगी। ज्योंही पत्नी को पति के चरित्र-सम्बन्धी कोई अवगुण विदित हो त्योंही वह उचित अवसर पाकर एकान्त में उचित शब्दों में उसे सचेत कर दे किन्तु क्रोध और कठोर-शब्दों का प्रयोग इस निमित्त कदापि न होना चाहिए।

पति सनमुख हँसमुख रहति कुसल सकल गृह काज
रतनावलि पति सुखद तिय बरति सुयस कुल साज ।११७।
उद्यापन तीरथ बरत जोग जग्य जप दान
रतनावलि पति सेव बिन सबहि अकारथ जान ।११८।
रतनावलि पति सों अलग कहूँ न बरत उपास
पति सेवति पिय सकल सुख पावति सुर पुर बास ।१२६।
पतिहि कुरीति न लखि रतन अति दुरवचन उचारि
पति सों रुठि न रोस करि तिय निज धरम सँभारि ।१४५।

अन्य सम्बन्धियों के प्रति व्यवहार—माता-पिता भाई-बहन तथा पति के सम्बन्धियों के प्रति सन्नारी का व्यवहार आदर्शपूर्ण होना चाहिए। प्रातः उठकर जाग कर पति के माता-पिता का चरण-स्पर्श उनकी सेवा-सुश्रूषा उनकी आज्ञा तथा उपदेश का पालन करना उचित है। पति के तथा पति के माता-पिता के चरण तीर्थ-तुल्य पवित्र होते हैं। जो महिला उनकी सेवा करती है वह इस संसार में जीवन-पर्यन्त सुख और मृत्यु के उपरान्त पतिलोक प्राप्त करती है। पति, माता पिता सास ससुर और ननद के शब्द औषधि के समान कटु किन्तु परिणाम में लाभप्रद सिद्ध होते हैं।

सासु ससुर पति पद परति रतनावलि उठि प्रात।
सादर सेइ सनेह जिन सुनि सादर तेहि बात ।।८७।।
सासु ससुर पति पद रतन कुल तिय तीरथ जान।
सेवहिं तिय जय जस लहहिं पुनि पति लोक सधाय ।।८८।।
मात पिता सासुहु ससुर ननद नाथ कटु बैन।
भेषज सम रतनावली पचत करत हित चैन ।।८९।।

किन्तु साथ ही रत्नावली सावधान करती है कि सुन्दर रमणी कदापि अपने श्वसुर, भ्राता, देवर पुत्र और जामाता की बात देर तक एकांत में न सुने।

रत्नावली का उपदेश चलता है सासू को माता के, ननद को भगिनी के, देवर को पुत्र के तथा सपत्नी को मित्र के तुल्य समझना चाहिए। सपत्नी से कोई बात छिपानी उचित नहीं उसकी सखी को अपनी सखी और उसके पुत्र को अपना पुत्र मानना ठीक है। श्वसुर मित्र आत्मीय तथा भृत्यों के प्रति उपहारादि के द्वारा यथोचित आदर-प्रदर्शन आवश्यक है। उच्च कुल की नारियाँ अपने पति माता पिता मित्र, भ्राता आत्मीय तथा पड़ोसियों का उचित ध्यान रखती हैं।

सासु बिटपतिहि जननि सम ननदहि भगिनि समान।
रत्नावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥८३॥
सोतिहि सखि सपि व्यवहरहु रतन भेद करि दूरि।
सासु ससुर निज समय गनि सहहु सुबस सुख भूरि ॥९४॥
सुत सखि बांधव भृत्य जन जथा जोग पुनि चित्त।
रतन इनहिं सादर सदा करतहु बितरहु बित्त ॥९५॥
पति पितु जननी बंधु हितु कुटुंब परोसि बिचारि।
जथाजोग आदर करहि सो कुलवंती नारि ॥९६॥

इनके प्रति आदर सम्मान आदि की क्या मात्रा हो इस विषय में भी रत्नावली का परामर्श ध्यान देने योग्य है। वह कहती है यदि पति से कोई व्यक्ति वय में अधिक है तो उसे पिता के तुल्य समवयस्क है तो भ्राता के तुल्य और छोटा है तो पुत्र के तुल्य समझना चाहिए।

रत्नावलि पति छोटि इक बेटे नर जय नाहिं।
पिता भ्राता सुतसम लखहु दीरघ सम लघु माहिं ॥९७॥

सतान लालसा—रत्नावली जानती थी कि स्त्रियाँ सन्तान धारण करने के लिए कितनी उत्सुक रहती हैं और वे इस निमित्त कभी-कभी कितने ही वर्जित उपायों का अवलम्बन भी करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि नारी में अन्य प्राणियों की भाँति मातृत्व की जन्म-जात प्रवृत्ति विद्यमान रहती है किन्तु नारी का मातृत्व-प्राबल्य कभी कभी पत्नीत्व को अभिभूत कर उसे अधम मार्ग का अनुसरण करने के लिए बाध्य कर देता है। इसी से रत्नावली को सावधानी और सतर्कता के निमित्त लिखना पड़ा कि जो नारी सन्तान की अभिलाषा से पर पुरुष का उपभोग करती है अथवा तन्निमित्त बाहु-टोनों के द्वारा दूसरों को क्षति पहुँचाती है वह अपयशोभागिनी तथा नरकगामिनी होती है। इस समस्या पर दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार सम्भव है जो सन्तानोत्पत्ति की प्रबल किन्तु अनुचित प्रवृत्ति पर सुधार-पात करता है। कौन कह सकता है कि जो सन्तान सब प्रकार के अनुचित साधनों का अवलम्बन करके प्राप्त की जाय वह भविष्य में निराशा और दुःख न देगी। अतएव रत्नावली की समझ में तो दुष्ट पुत्रों को जन्म देने से बाँझ रहना कहीं अच्छा है क्योंकि सन्तान-हीन नारी केवल एक दुःख का अनुभव करती है किन्तु अनेक दुष्टों की जननी अशेष का। केवल सन्तानोत्पत्ति की भावना से अधिक सन्तान की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि केवल एक योग्य

पुत्र वंश की सभी नारियों को पुत्र-रूप से सुख पहुँचाता है। कहा है अकेला चन्द्रमा संसार को प्रकाश प्रदान करता है तारागण नहीं।

जो तिय संतति लोभवस करत अपर वर भोग।
रतनावलि नरकहिं परति जग निंदत सब लोग ॥१२२॥
जो तिय संतति काज उर अहित करहिं परकीय।
ते न लहहिं संतति रतन कोटि जनम लगि सोय ॥१२३॥
रतन कोक रहिबो भलो भलो न सीख कपूत।
कोक रहै तिय एक सुत पाइ कपूत अकूत ॥१२४॥
कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि।
रतन एकुही चंद जिमि कर जगत उजियारि ॥१२७॥

स्त्री-शिक्षा—शिक्षा पर भी रत्नावली के कुछ विचार हैं। उसकी सम्मति में पति ही पत्नी का श्रेष्ठ अध्यापक है यद्यपि वह अपने माता-पिता और बड़े भाइयों से भी पढ़ सकती है। यों तो बच्चों का गुरु वाह्याच होता है पर पति ही पत्नी का अध्यापक एवं गुरु है। अध्यापक तथा उसकी योग्यता पर शिक्षा निर्भर रहती है। कहा है कि अस्त्र शास्त्र अस्त्र वीणा शब्द पुरुष और नारी पुरुष विशेष को पाकर योग्यायोग्य बनते हैं। बालकों को बचपन में रुचि-विरुचि के जड़ होने से पूर्व ही प्रशिक्षित करना चाहिए, जिससे वे बुरे अभ्यासों से बचे रहें। जो अभ्यास माता-पिता अपने बालकों में बनने देते हैं वे बड़े होने पर प्रयत्न करने पर भी नहीं छूट पाते। अतएव बालकों में बाल्यकाल से ही दयानुता, कर्तव्य और वंश प्रथा का बीजारोपण करना समीचीन है।

जननि जनक भ्राता बड़ो होइ जु निज भरतार।
पढ़ह नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥१२०॥
चतुर बरन कहुँ बिप्र गुरु अतिथि सबन गुरु जानि।
रतनावलि जिमि नारि कहुँ पति गुरु कहहो प्रमानि ॥१२६॥
सस्त्र सास्त्र बीना सुरस बचन सुभाई लोग।
पुरुष बिसेसहिं पाइ ज बनत सुजोग अजोग ॥१७०॥[1]
बारेपन सों मातु पितु जसी कारत बानि।
सो न छुटाये पुनि छुटत रतन भयेहुं सयानि ॥१८०॥
बाल बैस ही सों करो दया धरम कुल कानि।
बड़े भये रतनावली कठिन परेयी बानि ॥१७०॥

शिक्षा और परम्परा—रत्नावली सुधारक न थी। वह परम्पराओं का आदर करती थी अतः चाहती थी कि शिक्षा परम्पराओं का विरोध न करे। उसके गूढ़ मत से तो शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो जीवन में उपयोगी उत्तरोत्तरात्मक चरित्र-निर्माणी तथा मानव-समाज के लिए सहानुभूति-पूर्ण और कल्याणकारी सिद्ध हो। परम्परा पुरुषों में आदर भाव उत्पन्न करे। नारी को ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो

१ मन्त्र तन्त्र करनी विषा पुरुष जान जब पाइ।
अति गुन लोग विलोग हैं गुरुन आदि ये आइ ॥ गु त ७,१

उसे अपने पति की सती साध्वी पत्नी बनने में तथा कुटुम्ब का उपयोगी अंग हो जाने में सहायक हो। शिक्षा ऐसी हो जो उसे सुयोग्य गृहिणी बनावे तथा भृत्य और अज्ञात व्यक्तियों से उचित व्यवहार करना बताये। अर्थात् स्त्री-शिक्षा ऐसी हो जिससे न केवल स्त्री के कुल का कल्याण हो अपितु उसके पड़ोस का और अन्त में विश्व का भी श्रेय हो।

शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का उद्देश्य क्या है और बालक के साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाय इस विषय में रत्नावली का परामर्श बड़ा प्रतीत होता है। उसकी सम्मति में बालक का लालन-पालन इस प्रकार हो कि वह दुष्ट न बने प्रत्युत वह दिन-प्रतिदिन गम्भीर होता जाय। शिक्षा उचित प्रणाली पर चल रही है या नहीं इसकी कसौटी यही है कि वह लोक-सम्मत हो। माता बाल को देखते ही प्रसन्नता से पुलकित हों और आशीर्वाद प्रदान करने लगें। जो शिक्षा किसी का उपकार नहीं करती और न लोक-समर्थन ही प्राप्त करती है वह वास्तव में नितान्त निरर्थक है। शिक्षा के द्वारा तो आत्म-कल्याण होना चाहिए और परिजनों का भला भी।

> बालहि लालहु अस रतन जो न कीगुनी होइ।
> दिन दिन पुन गुरुता लहै साँचो लालन सोइ ॥१६७॥
> बालहि सीख सिखाइ अस लखि लखि लोग सिहाहिं।
> आसिष दें हरषें रतन नेह करें पुलकाहिं ॥१६८॥

मधुर भाषण—मधुर वाणी पर रत्नावली का आग्रह है। व्यंग्य अथवा कटु वचनों का प्रयोग न करना ही श्रेयस्कर है। जो भी शब्द मुख से निकलता है वह सुख या दुःख प्रदान करता है मधुर शब्द सुख उत्पन्न करता है और कटु वचन दुःख। मधुर भोजन देने की अपेक्षा मधुर वचन का उच्चारण अधिक अच्छा है क्योंकि मिष्ट भोजन का सुख तो अस्थायी होता है किन्तु मिष्ट वचन का स्थायी। कटु वचन कण्टक से भी बुरा है क्योंकि पहला तो चिकित्सक के चाकू से निकल जाता है किन्तु दूसरा हृदय को सदा के लिए चीर डालता है।

> मधुर असन जनि देइ कोउ बोलौ मधुरे बैन।
> मधु भोजन छिन देत सुख बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
> रतनावलि काँटो लग्यो यदनु दयो निकारि।
> बचन लग्यो निकस्यो न कहुँ उन डारो हिय फारि ॥१६१॥

सम्मित्र—सच्चे मित्र का लक्षण है उसका स्थैर्य। वे ही सच्चे मित्र हैं जो विपत्ति में भी साथ देते हैं सम्पत्ति में तो सभी सब बनते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो आपत्ति काल में भी पुरानी मैत्री का निर्वाह करते हैं वे ही वास्तव में सच्चे हितैषी हैं। पर ऐसे लोग थोड़े होते हैं।

> सोइ सनेही जो रतन करहिं बिपति में नेह
> सुख सम्पति लखि जन बहुत बनहिं नेह के गेह ॥१६२॥
> बिपति परे जे जन रतन निबहैं बीति पुरानि
> हितु मीत सतिभाय ते पै न बहुत जिय जानि ॥१६३॥

अप्रासंगिक बातों की विचारणीयता—तुलसी की विदुषी पत्नी ने ऐसे अनेक

विषयों का उल्लेख किया है जो साधारण जीवन में उपयोगी हैं। अप्रासंगिक बातों का उल्लेख असुखकर होता है। अप्रासंगिक शब्द कितने ही मर्म वर्णों न हों विषाक्त होते हैं रत्नावली ने स्वयं दाम्पत्य प्रेम के समय भगवत्प्रेम का उल्लेख कर अपने पति को खो दिया था। प्रासंगिक बात भी परिणाम को भली भाँति सोच-समझ कर कहनी चाहिए। शेक्सपीयर ने कहा है कि स्वीट आर द यूजज ऑव एडवर्सिटी अर्थात् विपत्ति के लाभ सुखद होते हैं। समकालीना रत्नावली उसी उक्ति की दूसरे शब्दों में पुष्टि करती है। उसकी सम्मति में वह नारी सती और प्रशंसनीय है जिसका चरित्र विपत्ति में भी प्रोज्ज्वल है। मित्र और सम्बन्धियों में लेन-देन अप्रशस्त है क्योंकि ऐसे व्यवहार का अवांछनीय प्रभाव पारस्परिक प्रेम और विश्वास पर पड़ता है।

सुमहु बचन अमृत परम रतन प्रकृत के साथ
जो मो कहें पति प्रेम संग इस प्रेम को पाय।४
कहि अनुसंगी बचनहूं परिनति हिये विचारि
जो न होइ पछितात उर रतनावलि अनुहारि।५
विपति कसौटी में बिमल कासु चरित द्युति होइ
जगत सराहत सोय तिय रतन सती है सोइ।५५
रतनन सबो सों जनि करहु कबहु ऋन ब्यौहार
ऋन सों प्रीति प्रतीति तिय रतन होति सब छार।६८

मितव्यय—रत्नावली समझाती है कि अपव्यय से निर्धनता होती है और निर्धनता निराशा और दुःख की जननी है। जो व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करते हैं वे निधन हो जाने तथा दुःख और पश्चात्ताप को प्राप्त होते हैं।

जें न साम अनुसार धन बित व्यय करहिं बिचारि
ते पावहिं पछितात अति रतन रंकता धारि।१०

दुष्ट-त्याग—दुष्टा पत्नी धूर्त मित्र आज्ञोल्लंघी भृत्य तथा सर्प-संकुल गृह को त्याग देना चाहिए अन्यथा मृत्यु भय सदैव बना रहता है।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ ऊतर देनी दास
रतनावलि अहिवास घर अन्त काल जनु पास।१४६

कुसंग-त्याग—कुसंग का परिणाम भयानक होता है। दुष्ट जन चाहे कितना ही सुसम्पन्न हो उसे मित्र नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि मणिधारी नाग भी डस सकता है। अतएव दुष्ट-संग की अपेक्षा एकाकी निवास कहीं अच्छा है। दीमक के संपर्क में घुन अपनी सत्ता खो देता है।

भस इटिसो रहिबो रतन भली न धन सहवास
जिमि तरु दीमक संग महुं आपन रूप बिनास।१६५

धन की गतियाँ—कृपणों को स्मरण रखना चाहिए कि धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान भोग और नाश। जो अपनी सम्पत्ति का न तो उपयोग करता है और न दान ही वह उसे खो बैठता है।

दान भोग अरु नास अरु रतन सुधन गति तीन
देत न भोगत तासु धन होत नास महुं लीन।१७४

व्यवहार निकष—नारियों को अपनी बड़ी-बूढ़ियों के अनुभवों से लाभ उठाना और उनके प्रति उचित आदर भाव बनाये रखना चाहिए।

बिरध सनिमु जिय बैठि तिय तेहि अनुभी अरि ध्यान
तहि अनुसारहि बरति तेहि राखि रतन सनमान ।१२६

कोई कार्य अच्छा है या बुरा इसकी कसौटी यह है इस प्रकार कर्म करो कि सज्जन तुम्हारी प्रशंसा करें और तुम्हें देखकर प्रसन्न हों और तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् शोक-सहित तुम्हारा गुण-गान करें—

असि करनी करि तू रतन सुजन सराहें तोह
तुव जीवन लखि मुद लहहिं मरे करें दुख रोह ।१२६

(घ) रत्नावली के दार्शनिक विचार

भाग्यवाद—रत्नावली स्पष्ट रूप से भाग्यवादिनी है। मानव भाग्य-नियन्ता अथवा मानव-कार्य के पथ-प्रदर्शक तत्त्व को संयोग प्रसंग, अवसर अथवा भगवदिच्छा कहा जा सकता है। यह शक्ति अज्ञेय और अदृष्ट है। संयोगवश अमृत विष हो जाता है और विष अमृत सरल विषम बन जाता है और विषम सरल। मनुष्य कुछ चाहता है होता कुछ और है। भविष्य सर्वत्र पंच-पर्व धागे बना रहता है। हम भला चाहते हैं होता बुरा है। रत्नावली पति-प्रेम में वृद्धि चाहती थी किन्तु उसे पति-वियोग सहना पड़ा। थॉमस कार्लाइल कहते हैं कि भविष्य का कभी विश्वास न करो चाहे कितना ही सुखद क्यों न हो।[1] टॉमस ग्रे के अनुसार भी वंश प्रभुत्व सौंदर्य धन और यश का मद मृत्यु-मुख में प्रवेश कर जाता है।[2] रत्नावली भी कहती है कि अपने शरीर धन, भृत्य सम्बन्धियों बल और सौन्दर्य पर किसी को गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि कौन जानता है कि भाग्य पलमात्र में तुम्हें कहाँ ले जाये? दूसरों को न सताना चाहिए क्योंकि सताने वाले को क्या नहीं हो सकता?

रतन देव बल अमृत बिस बिस अमृत बनि जात
सुखी ह्वै जलदी मरै जलदी सुखी जात ।६।
रतनावलि सीखहि कछू चाहिय होइ कछू और
पाँच पैंड आगे चलै होनहार तब ठौर ।८।
धन चाहत रतनावली विधि बस अनमन होइ
हौं जिय प्रेम बढ़्यो चह्यो दयो दुखन्हें दोइ ।८१।
तन धन जन बल कौन को गरब करौ लखि कोइ
को जाने विधि गति रतन छन महँ कछु कछु होइ ।१८१।

---

१ दुख को ध्यूक्ष, डाम्पर ओवेंट।
२ द बोर अति विरेन्दि ब्यक पोम्प अति पोंपर,
बर्ट अति देट ब्यूटि देट बेल्थ बनर गेव
बनेट अन्ताइक दि इनएविटेबल ब्यनर।
द बन्ध अति गलोरी अति यद् द द मेव।

करहु दुखी जनि काहु को बिरहु काहु न कोइ
को जानै रतनावली आपनि का गति होइ ।१७६।

कर्मण्यता—किन्तु रत्नावली आलस्यमय कालयापन का उपदेश नहीं देती। वह अकर्मण्यता को प्रशस्त नहीं समझती और न कष्ट दुःख से बचने को ही। उसका झुकाव तो शिष्ट और कर्मण्य जीवन की ओर है, और उपदेश है आलस्य त्याग कर अपना कर्तव्य निश्चित समय पर करो अपना आसन्न कर्तव्य अभी करो तभी सुख प्राप्त होगा कष्ट-पीड़ा की चिन्ता न करो यदि पाप किया हो तो उसका फल भोगो और पुनः निष्पाप बन जाओ क्योंकि ज्यों-ज्यों स्वर्ण तपता है त्यों-त्यों वह शुद्ध होता जाता है। रत्नावली का उपर्युक्त भाग्यवाद परम चिन्तन का निष्कर्ष प्रतीत होता है अर्थात् कल्पनामय परमसत्ता की सर्वव्यापिनी शक्ति का स्वतः परिणाम। उसका भाग्यवाद साधारण भाग्यवाद नहीं जो अकर्म और अनाचार की तथा अन्तर्तोदता निताम्त अव्यवस्था को जन्म दे

आलस तजि रतनावली जथा समय करि काज
अब को करिबौ सबहि करि तबहि पुरै सुख साज ।८३।
सम सौं बाढ़त देह बल सुख संपति धन कोष
किनु सम बाढ़त रोग तन रतन दरिद्र दुख दोस ।१८४।
दुखनु भोगि रतनावली मन महँ जनि दुखियाइ
बापनु फल दुख भोगि तु पुनि निर्मल ह्वै जाइ ।२४।
ज्यों ज्यों दुख भोगति तबहि दूरि होत दुख पाप
रतनावलि निरमल बनत जिमि सुबरन तहि ताप ।२६।

भोग-निन्दा—रत्नावली यौवन प्रभुता और धन के दोषों से अवगत थी। भगवान् बुद्ध की भाँति वह समझती थी कि भोग से आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। यौवन प्रभुत्व और धन अनेक दोषों के आधार हैं क्योंकि अविवेकी नर पशु की भाँति सोचता और कार्य करता है। ये तीनों और चौथा अविवेक असंख्य अवगुणों को उत्पन्न करते हैं समवेतरूप में चारों का तो कहना क्या? वास्तव में भोग के विषय शान्त नहीं होते, प्रत्युत वे इस प्रकार बढ़ते रहते हैं जिस प्रकार घी से अग्नि। साहसानुमान विनाशोत्पादक प्रतीत होता है।

तरुनाई धन देह बल बहु दोसनु आधार
बिनु बिबेक रतनावली पसु सम करत बिचार ।१७६।
यौबन प्रभुता मूरि धन रतनावलि अबिचार
एकु एकु अनरथ करै किमु समुदित अरि चार ।१८६।
रतनावलि उपभोग सौं होत बिसय नहिं सान्त
ज्यों ज्यों हवि होमैं अनल त्यों त्यों बढ़त नितान्त ।१७७।

यम-नियम—अतएव यम-नियम की आवश्यकता है। अनियन्त्रित विषय नाशोन्मुख होते हैं। रत्नावली इस दिशा में एक सुन्दर कथन का स्मरण दिलाती है। मानव-शरीर रथ में इंद्रियाश्व जुते हैं अत्यन्त चंचल होने के कारण वे रथ को पथ से इधर उधर ले जाते हैं। जब मनःसारथी उन्हें रोकता है तब भय शान्त हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विषय उतने भयावह होते हैं जितने लाभकारी। उचित उपयोग से वे मित्रवत् और अनुचित से घातक सिद्ध होते हैं। रत्नावली ठीक कहती है कि जब नेत्र जिह्वा कर्ण और नासिकादि नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं तो इनमें से कोई भी एक मानव के प्राण ले लेता है और जब वश में होते हैं तो वे शक्ति और जीवन प्रदान करते हैं। सभी तत्त्ववेत्ता इस कथन से सहमत हैं कि इन्द्रियाँ ज्ञान का आधार हैं। अतएव उनके संयमन और सुधारीकरण की आवश्यकता है जिससे कल्याण की प्राप्ति हो।

पाँच तुरग तन रथ जुरे चपल कुपथ लै जात
रत्नावलि मन सारथिहि रोकि रुकै उतपात।१६७।
नैन नैन रसना रसन करन नासिका सीस
एकहि मारत अवस हूँ स्वबस जिआवत बीस।१६९।

आत्म-सुधार—रत्नावलि दोष चयन की भर्त्सना एवं अन्तःप्रेक्षण-द्वारा आत्मोन्नति की प्रशंसा करती है। दूसरों के दोष-दर्शन एवं रहस्योद्घाटन की अपेक्षा हमें अपने अवगुणों का निवारण करना चाहिए, क्योंकि जब लोग हमें निर्दोष देखेंगे तो वे अपने दोष भी दूर करने लगेंगे। निःसन्देह उपदेश की अपेक्षा उदाहरण अधिक श्रेयस्कर है।

रतन न पर दूषन उघटि आपनु दोस निवारि
तो हि लखहिं निरदोस वे दै निज दोस बिसारि।१७८।

सदभ्यास—यम और आत्मोन्नति के निमित्त अच्छे अभ्यास डालने चाहिए। रत्नावली प्रारम्भिक जीवन के अभ्यासों का मूल्य समझती हुई बाल्यावस्था से ही दया-करुणा कर्तव्य-पालन वंश-परम्परा आदि के प्रति आदर भाव प्रकट करने के पक्ष में है क्योंकि बड़े होने पर अभ्यास में कठिनता होती है। माता-पिता बालकों को जो अभ्यास डालते हैं बड़े होने पर वह प्रयत्न करने पर भी नहीं छूट पाता। यही कारण है कि सती बनने के लिए जीवन-काल चाहिए, भ्रष्ट हो जाने के लिए समय की अपेक्षा नहीं, यथा सुमेरु पर्वत पर चढ़ना कठिन है उससे गिर जाना ऐसा नहीं।

बाल बेस ही सों परी दया धरम कुल कानि
बड़े भए रत्नावली कठिन परेगी आनि।१७७।
बारे पन सों मातुपितु जैसी डारत बानि।
सो न छुड़ाए पुनि छुटति रतन जबेहुँ सयानि।१७८।
सती बनत जीवन लगै असती बनत न देर
गिरत देर लागी कहा चढ़िबो कठिन सुमेर।१९६।

सरल जीवन उच्च-विचार—रत्नावली ने सरल जीवन और उच्च विचार का उपदेश दिया है। स्वच्छ नेत्रों सरल वाणी और निर्मल वस्त्रों को निम्न, नम्र और सुनिम्न किन्तु विचारों और कार्यों को उच्च और उदार रखना चाहिए। सत्यनिष्ठा विनम्रता और परहित सदा प्रशंसनीय है। जो मनी शील लज्जा और सत्यवादिता के भूषणों से विभूषित होती है शोभा उसके अधीन रहती है। वचनों का पालन और सत्य का ध्यान होना चाहिए क्योंकि मिथ्यावादी की साख जाती रहती है। परन्तु मुख से जो सत्य निःसृत हो वह मधुर भी हो। मधुर भोजन की अपेक्षा मधुर भाषण कहीं अच्छा है क्योंकि मधुर भोजन से तो क्षणिक, पर मिष्ट वचन से

वाक्यजीवन सुख होता है। उपर्युक्त तीन आभूषणों में से नम्रता श्रेष्ठ है। अनम्र नारी के सांसारिक आभूषण—यथा स्वर्णनिर्मित और रत्न-जटित हार आदि सब वृथा हैं। चरित्र-निर्माण अनुपम पारितोषिक है। कोई स्त्री कितने ही उच्च कुल में क्यों न उत्पन्न हुई हो अथवा कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि उसमें दया-करुणादि गुण और चरित्र विद्यमान नहीं तो कोई भी उसे अच्छा नहीं कहता। संसार के अनेक रत्नाभूषणों में चरित्र ही प्रधान है। जिसके नेत्रों से सौष्ठव प्रतिभासित होता है वह संसार का गौरव है, किन्तु जो कुत्सित प्रेम-कार्यों का चिन्तन करती रहती है वह प्रथम तो कोटि वर्षों तक नरक में निवास तत्पश्चात् सुनी का जन्म धारण करती है। सती संसार का गौरव है

नयन बचन हिय बसन निज निरमल नीके धार
करतब रतन बिचार तिमि ऊँचे राखि बजार।६१।
सत्य सरस बानी रतन सील लाज जे तीन
भूषन साजति जो सती सोभा तासु अधीन।६२।
बचन पालनो सत्य करि रतन न अनिरत भाषि
अनृत भाषिबो पाप पुनि उठति लीक सों लाषि।१४९।
मधुर बसन बनि देइ कोउ बोलो मधुरे बन
मधु भोजन छिन देत सुख बैन बसन अरि बैन।१६०।
सुबरन मय रतनावली मनमुकता हारादि
एक लाज बिनु नारि कहँ सब भूषन अप बादि।६६।
ऊँचे कुल जनमें रतन रूपवती पुनि होइ
बरम दया गुन सील बिनु ताहि सराहै न कोइ।६७।
भूषन रतन अनेक जग पै न सील सम कोइ
सील जासु नैनन बसत सो जग भूषन होइ।६४।
जो व्यभिचार बिचार उर रतन धरै तिय सोइ
कोटि कलप बसि नरक पुनि जनमि कूकरी होइ।१०६।

सद्गुण—सच्चरित्र के निर्माण में दया करुणा सत्य लज्जा आदि गुणों की अपेक्षा एवं दुर्गुणों के त्याग की आवश्यकता है। रत्नावली के मतानुसार नारी के दुर्गुण हैं—मद्यपान परगृहनिवास भ्रमण असमय में शयन पति से पृथक निवास और कुसंग। क्रोध द्यूत व्यभिचार गर्व लोभ चौर्य और मदपान से अधःपतन होता है। अधिक हँसना बढ़-बढ़कर बोलना बात काटना चुगली खाना चटोरपन आदि नारी के दोष हैं। कन्या के लिए नृत्य रीति रस गीत शृंगार और आलस्य वर्जित हैं। सन्त कहते हैं कि बालकों के साथ एकान्त में बैठने खेलने एवं हास परिहास करने से कन्या के चरित्र पर कलंक लगता है।

मदक पान पर घर बसन भ्रमन समय बिनु काल
पृथक बास पति दुष्ट सम यह तिय दूषन जाल।७१।
क्रोध जुआ व्यभिचार मद लोभ चोरि मदपान
पतन कराबन हार जे रतनावली महान।७४।

बहु हँसनी बहु बोलनी बतकट जिमचट नारि
बड़ बोलनि हूतिनि रतन लहतीं दूषन भारि ।७५।
नाच बिषय रस गीत गेंधि भूषन भ्रमन बिचार
अपराध आसत रतन कन्यहि हित न बिगार ।५६।
लरिकन संग खेलनि हँसनि बैठनि रतन इकंत
मलिन करन कन्या चरित हरन सील कहँ सन्त ।६ ।

पातिव्रत का रूप—पातिव्रत के विषय में रत्नावली ने बारंबार ध्यान आकर्षित किया है। सतीत्व के विषय में उसकी कल्पना इस प्रकार है सती नारियों में वही श्रेष्ठ है जो अपने पति को ही पुरुष समझती तथा मन से उसकी सेवा में सुख मानती है। जो अपने पति पुत्र अथवा कुटुम्ब से अलग रहती है उसकी समृद्धि नहीं होती वह तो दोनों कुल का नाश करती है। जिसके दो पति होते हैं वह धिक्कार योग्य है। जो अपने निर्धन अथवा अपाहिज पति को त्यागकर सुयोग्य वर ग्रहण करती है वह भ्रष्ट समझी जाती है। चार-सेविनी की निन्दा होती है वह दोनों लोकों में कलंकित तथा विधवा होती है। रत्नावली की विचारधारा में नियोग को कोई स्थान नहीं क्योंकि जो नारी सन्तान प्राप्ति के निमित्त पर-पुरुष को भजती है वह नरक और लोकनिन्दा को प्राप्त होती है।

तन मन पति सेवा निरत हुलसे पति लखि लोय
इक पति कहुँ पुरुष नर्म सती सिरोमनि सोय ।१०।
पितु पति सुत कुल पूजक पाव न तिय कल्यान
रत्नावलि पतिता भनति हरति दोउ कुल मान ।१०१।
हीन हीन पति त्यागि निज करति सुपति परवीन
दो पति नारि कहाइ धिक पावति पद अपुनीन ।१ ७।
धिक तिय सो पर पति भजति कहि निरस्त सब लोय
बिगरत दोऊ लोक तेहि पावत बिधवा होय ।१०६।
जो तिय संतति लोभबस करत अपर नर भोग
रत्नावलि नरकहि परति लग निरस्त सब लोग ।११२।

पुरुष सम्पर्क—स्त्री को प्रलोभन के जाल-जाल में डालने वाले हैं कुसंग और पुरुषों के साथ अबाध सम्पर्क। रत्नावली इनसे सतर्क रहने के लिए चेतावनी देती है। जिस प्रकार अनुमात्र स्फुलिंग कर्पाद राशि को क्षणमात्र में भस्मसात् कर देता है उसी प्रकार क्षण-मात्र का कुसंग भी स्त्री को सतीत्व से वंचित कर देता है। अतएव पल भर के लिए व्यभिचारिणी का संग न करना चाहिए। अपने भाव को स्पष्ट करने के हेतु रत्नावली एक सुन्दर उदाहरण का उपयोग करती है। चूने के तनिक सम्पर्क से हरिद्रा का रंग परिवर्तित हो जाता है। अतएव स्त्री-पुरुष का अनियन्त्रित सम्पर्क नितान्त अवांछनीय है। स्त्री तो घृत-घट है पुरुष ज्वलदंगार और घृताग्नि का सान्निध्य अस्पृहणीय है। रत्नावली स्त्री पुरुष के अबाध सम्मिलन के विरोध में तो है ही, वह यह भी नहीं चाहती कि कोई स्त्री किसी भी सन्त से एकांत में मिले क्योंकि एकाकिनी को देखकर महात्मा भी अपने माहात्म्य को खो देता है। इस कथन में उपदेश

की गन्ध अवश्य आती है किन्तु सतर्कता के निमित्त यह अत्यन्त उपयोगी है।

चित्रगाहिं रतनावली तुलहिं देत जराइ
लघु कुसंग जिमि नारि को पतिव्रत देत डिगाइ ।१०४।
छन्हु न करि रतनावली कुलटा तिय को संग
तनक सुधाकर संग सों पलटति रजनी रंग ।१०५।
घी को घट है कामिनी कुरूप सपत अंगार
रतनावलि घी अग्नि को उचित न सग बिचार ।१११।
कबहुँ अकेली जनि करहु संतहु निकट बयान
देखि अकेली तिय रतन लखत संतहु ध्यान ।७२।

पति-महिमा—रत्नावली स्त्रियों से आग्रहपूर्वक कहती है कि पतियों का आदर करो, उन्हें सन्तुष्ट रखो और उनकी अर्चा भी करो। कारण यह है कि पत्नी के लिए पति ही अन्तिम पति है वही धन मित्र गुरु और देव है वह सर्वस्व है—संसार का सार है। पत्नी का वास्तविक अलंकार पति है पति बिना अन्य सब आभूषण वृथा हैं। क्या अयोग्य और अपाहिज पति भी उतने ही आदर का पात्र है? रत्नावली का उत्तर है कि निश्चय ही सुपत्नी के लिए उसका पति देव-तुल्य और पूज्य है भले ही वह कामी दुश्चरित्र निर्धन गुणहीन अथवा स्नेह-रहित हो। नहीं नहीं जिस प्रकार माता अपने पुत्र का त्याग नहीं करती चाहे वह अन्ध बधिर, पंगु और सब वर्णों न हो उसी प्रकार सती भी अपने पति को तलाक नहीं देती वह कितना ही कुरूप और दुष्ट क्यों न हो। भली पत्नी तो अपने क्रूर, कुटिल अलस और अकिंचन पति के साथ निर्वाह कर लेती है। क्या ऐसे पति से स्नेह करना अथवा उसकी पूजा करना सम्भव है जो कुपथगामी और गुणवान के योग्य नहीं? रत्नावली का तुरन्त उत्तर है कि ऐसा करना सम्भव था और है भी। उसका सुझाव है जिस प्रकार वन में वाघिनी घास नहीं चरती चाहे वह कितनी ही भूखी क्यों न हो उसी प्रकार सती कष्ट तो सह लेती है किन्तु सुख के निमित्त अवगुणों का संचय नहीं करती। रत्नावली सुपत्नी से आशा करती है कि वह अपने पति से केवल प्रेम के निमित्त प्रेम करे अन्य किसी उद्देश्य से नहीं।

पति पति पति बिन मीत पति पति गुर सुर भरतार
रतनावलि तरबस पतिहि अंधु अंध अपसार ।४६।
पिय सोभो सिंगार तिय सब झूठे सिंगार
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निरसार ।६०
नेह सील गुन बित रहित कामी हू पति होइ
रतनावलि अति नारि हित पूज्य देव सम सोइ ।६१।
अंध पंगु रोगी बधिर सुतहि न त्यागति माइ
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहि रतन न सती बिहाइ ।६२।
क्रूर कुटिल रोगी अलसी दरिद अंधमति नाह
चाह न अब अनपाइ तिय सती करति निरबाह ।६३।

बन बाटिनि बाजिय भवति भूषी बासु न बाह
रतन सती तिमि दुख सहति सुख हित अघ न कमाइ ।१५४।

तो क्या सुपत्नी को चाहिए कि वह अपने पति की अवैध वासनाओं की भी पूर्ति करती रहे ? नहीं रत्नावली इससे सहमत नहीं। इस विषय में उसका उपयोगी परामर्श है कि यदि देखो कि तुम्हारे पति का स्वास्थ्य और चरित्र भ्रष्ट होता जा रहा है तो उपयुक्त अवसर देखकर एकान्त में समुचित शब्दों में उपदेश करो।

दाम्पत्य-साम्यवाद—अनेक पत्नियाँ सती तो होती हैं किन्तु वे धार्मिक कृत्यों में इतनी व्यस्त रहती हैं कि वे उचित रीति से पतिसेवा की ओर ध्यान नहीं दे पातीं। अतएव रत्नावली का कथन है कि नारी के लिए पति से विभिन्न धार्मिक कृत्यों का विधान नहीं। यदि वह उसमें पूर्णतया अनुरक्त है तो वह इस जन्म में सुख और जन्मान्तर में स्वर्ग प्राप्त करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तीर्थ स्नान व्रत उपवास, दान पूजा भजन आदि से कोई लाभ नहीं यदि वे पति की इच्छा के विरुद्ध हों। जो अपना कर्तव्य समझती और निःस्वार्थ भाव से पति की सेवा करती है वह घर बैठे ही समस्त तीर्थ-व्रतों का पुण्य-लाभ करती है। अतः नारी को उचित है कि वह उन समस्त वस्तुओं को सावधानी से रखे जिनका उपयोग पति करता है और उन्हें नित्यप्रति नियत समय पर प्रमाद रहित हो उपस्थित कर दिया करे। यदि पति अनवरतमरण करता है और नारी पति की सेवा श्रद्धापूर्वक करती है तो पति की भजन-पूजा पत्नी की भी भजन-पूजा है। अतएव पति को सदैव दान-दयादि के लिए प्रेरित करते रहना और उसके सत्कार्यों को अपने ही समझते रहना चाहिए। यह है रत्नावली के मतानुसार वैवाहिक जीवन में पति-पत्नीत्व का साम्यवाद।

अनाचार अन नास रत निज पति रतन जवाहि
लहि औसर समुचित बचन रहति बोधिये ताहि ।१५३।
रतनावलि पति सों असन कहो न बरत उपास
पति सेवति तिय सकल सुख पावति सुर पुर बास ।१५६।
तीरथ न्हान उपास व्रत सुर सेवा अन दान
स्वामि बिमुख रतनावली निसफल सकल प्रमान ।१५६।
रतनावलि करतब समुझि सेइ पतिहि निबकाज
तप तीरथ व्रत फल सकल लहहि बैठि घर बाम ।१५४।
पति बरतत जेहि बस्तु नित तेहि धरि रतन सँभारि
समय समय नित दै पियहि आलस मनहि बिसारि ।१५५।
सुख पिय नित नित हरि भजत तू तिय सेवति ताहि
तासु भजन तिय सुख भजन रतन न मनहि भ्रमाहि ।१५७।
पुण्य धरम हित नित पतिहि रहि बहाय उतसाह
ताहि पुण्य निज गुनि रतन पुण्य करत जो नाह ।१५७।

रत्नावली ने दाम्पत्य प्रेम का उच्चतम आदर्श उपस्थित किया है और सच्ची स्त्री की अत्यन्त प्रशंसा की है जो उसका पालन करती है। वह कहती है कि जो

नारी पति के जीवन-काल में और उसकी मृत्यु के पश्चात् भी पति की इच्छा के विरुद्ध आचरण नहीं करती वह इस संसार में यश और मृत्युपरान्त सुलोक प्राप्त करती है। जब तक पति जीवित रहे पत्नी को उसकी सेवा में भक्तिपूर्वक रहना चाहिए। पति के दिवंगत होने पर कन्द, मूल फल शाक का आहार ब्रह्मचर्य का पालन और भगवद्भजन करते रहना चाहिए। स्मरण रहे कि रत्नावली ने यम-नियम का पालन और पूजार्चादि का विधान केवल पति-संतोष के लिए किया है। नारी का प्रत्येक कार्य चाहे पति के जीवन काल में अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् किया जाय वह भर्ता के निमित्त हो। रत्नावली उस सती की भूरि भूरि प्रशंसा करती है जो पति के जीवन-पर्यन्त जीवित रहती और उसके देहावसान पर अग्नि में प्रवेश करती है क्योंकि नारी का शरीर पति का ही तो है, उस पर उसका क्या अधिकार ? अतएव पति की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में उसी की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है। इससे अधिक महात्याग अथवा उत्कृष्ट समर्पण क्या हो सकता है ?

> पति के जीवन लिवन हूँ पति अनकूलत काम
> करति न सो जब जस लहति पावति गति अभिराम ।१२५।
> जीवत पति सासन महे सेवहि ताहि सप्रेम
> पए अतीवत अनुसरहि पति हित जप तप नेम ।१२८।
> किंतु पति पति जगपति सुमिरि साक मूल फल खाइ
> विरमचजत आरि तिय जीवन रतन बनाइ ।१२७।
> जब तिय सो रत्नावली पति संग दाहें देह
> सो सों पति जीवत जियें मरत मरें पति नह ।१२६।
> रतन देह पति को भयो तोहि कहा अधिकार
> पति समुहें पावें रतन रहि पति चित अनुसार ।१३८।

दाम्पत्य के प्रतीक—दाम्पत्य प्रेम की चरम अभिव्यक्ति भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी में और उसका प्रतीक भगवान् शिव और भगवती पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप में लक्षित होता है। रत्नावली कहती है कि विराग की बात मत सोचो अपने-अपने पति के प्रेम में रंग जाओ उमा और रमा तो बड़ी भाग्यशालिनी हैं क्यों कि वे सदा अपने पति देवों के चरणों में अनुरक्त रहती हैं।

> रतनावलि पति राम रँग है बिराग में आगि
> उमा रमा सब भागिनी नित पतिपद अनुरागि ।३५।

पति में पत्नी का लय—रत्नावली ऐसा प्रशस्त समझती है शास्त्र का उपदेश भी है कि पत्नी का व्यक्तित्व पति में लीन हो जाय। यही नारी जीवन की सार्थकता है। वह नारी प्रशंसनीय है जो पति के सुख में सुखी और पति के दुःख में विपन्न रहती और अपने व्यक्तित्व को त्याग कर पति में लीन हो जाती है। लय दो प्रकार का होता है शारीरिक और आध्यात्मिक। एक की परिपूर्णता तो पति की चिता में दग्ध हो जाने से होती है, और दूसरे की पूर्णता तो जीवन-पर्यन्त दाम्पत्य

समानीकरण से। रत्नावली ने नारी का सायुज्य पति में दो आधारों पर माना है। प्रथमतः शास्त्रों ने आदेश किया है कि पत्नी सदैव पति के अनुकूल रहे क्योंकि पति में और पति के द्वारा ही नारी को मुक्ति प्राप्त होती है। रत्नावली के शब्दों में पति ही मोक्ष है। द्वितीयतः रत्नावली समझती है कि दाम्पत्य प्रेम सब प्रकार के अन्य प्रेमों का अतिक्रमण करता है और परमानन्द होने के कारण उपास्य भी है। बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं कि सब सुख ब्रह्मानन्द से कम हैं किन्तु रत्नावली के अनुसार पत्नी के लिए तो ब्रह्मानन्द भी दाम्पत्य-प्रेम का पासंग नहीं। हो सकता है कि रत्नावली के ये शब्द सामान्य विचारधारा के अनुसार अतिशयोक्ति-संकुल हों।

पति के सुख सुख मानती पति दुख देखि दुखाति
रतनावलि अति हेत तजि तिय पिय रूप लखाति।४७।
पति पति पति बिन मीत पति पति गुरु सुर करतार
रतनावलि सरबस पतिहि कहु कंत जग सार।४९।
सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत कुछ लोह
दै तिय कहँ पिय प्रेम रस बिनु तरिस नहिं सोह।४८।

विश्व-बन्धुत्व—तो क्या रत्नावली ने संकीर्ण प्रेम का अर्थात् केवल दाम्पत्य प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है? नहीं ऐसा नहीं है। उसने परहित की जो कि मानव-चरित्र का प्रधान अंग है प्रचुर प्रशंसा की है। वह कहती है कि जो दूसरों के लिए जीता है वही वास्तव में जीता है यों तो काक कुक्कुर, कपि आदि भी अपने लिए जीते हैं। दूसरे के लिए क्षण भर जीना भी उचित है; जो दूसरों के लिए नहीं जीते वे मृतप्राय हैं। जो उपकार के विनिमय में अपकार करते हैं वे इस संसार में अपयश के भागी और मृत्युपरान्त नरकगामी होते हैं।

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ
निज हित सूकर काक कपि जीवहिं का फल होइ।१५३।
रतनावलि तुमहूँ जियै धरि परहित अस ग्यान
तोई जन जीवत मनहु अति जीवत मृत मान।१५४।
जो उपकारी को रतन करत मूढ़ अपकार
ते जग अपजस लहत पुनि परैं नरक अधिकार।१६१।

परहित स्वयं लक्ष्य है इसको फल की आवश्यकता नहीं। रत्नावली कहती है कि दूसरों का उपकार करो पर बदला न चाहो। अपने लोग प्रत्युपकार नहीं चाहते। क्योंकि यह ओछा व्यवहार है। अपितु जो उपकार किया जाय अथवा जो दया प्रकट की जाय उसका उल्लेख भी आवश्यक नहीं। सज्जन दूसरों के प्रति जो उपकार करते हैं उसकी चर्चा नहीं करते प्रत्युत उसे गुप्त रखते हैं वे दूसरों के उपकारों का तो स्मरण रखते हैं किन्तु अपनों का विज्ञापन नहीं करते डोलते। रत्नावली परहित का संकुचित अर्थ नहीं करती तथा पक्षपात साम्प्रदायिकता जातिवाद। परहित इस सब से बढ़कर है उसका क्षेत्र समग्र संसार है। रत्नावली की उदारता विशालता और भव्यता मननीय है, वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उपदेश देती हुई कहती है कि वह

जन तो मेरे-तेरे में भेद समझते हैं किन्तु महापुरुष तो समस्त संसार को एक कुटुम्ब मानते हैं।

रतन करहु उपकार पर लहहु न प्रति उपकार
लहहिं न बदलो साधुजन बदलो लघु व्योहार ।१३२।
परहित करि बरनत न बुध गुपत रखहिं ये बात
पर उपकृति सुमिरत रतन करत न निज गुन गात ।१४३।
जे निज जे पर भव इमि लघुजन करत विचार
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ।१३५।

जीवन-गाथा

गोस्वामीजी ने यदा-कदा अपने विषय में कुछ कहा है जिससे उनके जीवन चरित पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने जो कुछ कहा है वह क्रम-बद्ध तो नहीं है, केवल आत्मपरिचयात्मक वचन 'रामचरितमानस' 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' आदि अनेक ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं जिनका समालोचनात्मक विवरण दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके ये वचन कभी स्पष्ट कभी कूट हैं।

(क) आत्म कथा

जन्म-स्थान—गोस्वामीजी अपने जन्मस्थान का निर्देश इस प्रकार करते हैं—

धर्म के सेतु भगवान के हेतु भूमि
भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति और प्रतीति प्रीति पाल चालि प्रभु आनु
लोक-बेद राखिबे को पनु रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं
सो प्रसंगु लगें अघु अरि अनुचर को।
राखें रीति आपनी सो होइ सोई कीजै बलि
तुलसी निहारो घर जायो है जर को॥ क० १२२॥

अर्थात् 'धर्म के सेतु भगवान् संसार का कल्याण करने के लिए और पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुए। नीति, प्रीति और प्रतीति पालन करना प्रभु का स्वभाव है तथा लोक और वेद की मर्यादा रखना भी रघुवर का प्रण है। आप सुग्रीव और विभीषण के ऋणी हैं यह बात सुनकर दास का अंग-अंग जलता है (कि मुझ पर ऐसी कृपा नहीं करते ?)। अतः मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, अपने प्रण की रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घर का परजाया है। अरण्य रामायण में 'रामपुर' का स्पष्ट उल्लेख है

तुलसी रामनाम सम मित्र न आन। जो पहुँचाव रामपुर तन अवसान ६७

राम के घर से तात्पर्य है रामपुर। महाकवि नन्ददास के पुत्र कृष्णदासजी ने और कवि मुरलीधर चतुर्वेद ने तुलसी का जन्म-स्थान सोरों के निकट रामपुर नामक ग्राम को लिखा है किन्तु श्री चक्रबली पाण्डे ने 'राम के घर' का अर्थ अयोध्या किया है जो समीचीन नहीं है जैसा कि इस पर चतुर्थ अध्याय में विचार हो चुका है। तुलसीदासजी के जन्म-स्थान बाँदा रामपुर कौन सा है इस विषय में तुलसीदासजी स्वयं निर्णय करते हैं।

जन्म-स्थान का परिचय—कवितावली में जन्म-स्थान की स्थिति इस प्रकार बतायी गयी है —

बारि तिहारी निहारि मुरारि भयें परतें बड़ बानु लहौंगो।
ईसु हूँ सीस धरौं पै डरौं प्रभु की समता बड़ें दोष दहौंगो।

जब बारहिं बार शरीर धरौं रघुबीर की हूँ तव तीर रहौंगो।
भागीरथी बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो।१४७।

अर्थात् 'हे गंगे तुम्हारे जल के दर्शन के प्रभाव से यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणों से तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मुझे पाप लगेगा (क्योंकि तुम्हारा जन्म विष्णु भगवान् के चरणों से है और यदि मैं भी विष्णु हो गया तो अपने चरणों से तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मुझे पाप का भागी होना पड़ेगा) और यदि महादेव हो गया तो सिर पर धारण करने से मुझे डर है कि इस प्रकार अपने प्रभु भगवान् शंकर की समता करने के बड़े भारी अपराध से दुःख पाऊँगा। इसलिए, भले ही मुझे बार-बार शरीर धारण करना पड़े मैं तो श्री रघुनाथजी का दास होकर ही तुम्हारे तीर पर रहूँगा। हे भागीरथि मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ—मैं वही बात कहूँगा जिससे फिर दोष न लगे। उक्त उद्धरण की अन्तिम दो पंक्तियों में यह ध्वनि है कि तुलसीदासजी का जन्म गंगा-तट पर हुआ था और वे कामना करते हैं कि उनके आगे जन्म भी गंगा-तट पर हों और वे रामभक्त बने रहें।

विनय-पत्रिका में गंगा की स्तुति करते समय गोस्वामीजी ने अपने जन्म-स्थान की ओर निर्देश इस प्रकार किया है —

विमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयताप-हारि
भँवर बर बिभंगतर तरंग मालिका।
पुरजन पुजोपहार, सोभित ससि धवल धार,
भंजति भव भार, भक्त कल्प पालिका ॥१०॥

अर्थात् 'हे गंगाजी आप अगाध निर्मल जल को धारण किए हुए हैं यह शीतल है और तीनों तापों का हरण करने वाला है। आप सुन्दर भँवर और अति चंचल तरंगों की माला धारण किए हैं। नगर निवासियों ने पूजा के समय जो सामग्रियाँ भेंट चढ़ाई हैं उनसे आपकी चन्द्रमा के समान धवल धारा शोभित हो रही है। यह धारा संसार के जन्म-मरण-रूप भार को नाश करने वाली तथा मुख्य भक्त के कल्प की रक्षिका है।

उक्त कथन की पुष्टि तुलसीदासजी 'विनयपत्रिका' में अपने जन्म-स्थान कुल आदि के प्रकरण में करते हैं

राम तुम्हीं सों तैं न समुझि कियो।
जनम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि-मुरारि को॥
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो सपति भली।
तैरी दुखनि कायर कलप बल्ली बहति बिपुल भली॥१३५॥

अर्थात् जिन्होंने तुझे देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया उन परम प्रेमी श्रीरामजी के साथ तूने प्रेम नहीं किया। उन्होंने सुकुल में जन्म और सुन्दर शरीर दिया है जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष का कारण है जिसे पाकर ज्ञानी लोग भगवान् शिव अथवा कृष्ण के परमपद को प्राप्त करते हैं। फिर यह भारतवर्ष देश पास ही देव

लिख दिया जाय। इस पाठांतर को प्रेस अथवा लिपिकार की भूल नहीं समझा जा सकता। अतएव उसे प्रक्षेप ही समझना चाहिए। 'जायो कुल मंगन' से यह अर्थ किया जाता है कि तुलसीदासजी भिखारियों के कुल में उत्पन्न हुए। किन्तु यह धारणा गोस्वामीजी की इन उक्तियों के प्रतिकूल पड़ती है—'दियो सुहृद जनम सरीर सुन्दर' 'हौं सुबरन कुबरन कियौ' 'नृप ते भिखारि करि' 'भलि भारत भूमि भले कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहिकै।

सहायजी का तर्क है कि 'कुल मंगन' का अर्थ उसी परिपाटी से करना चाहिए जिससे कुल-गुरु कुलदेवता कुल-पुरोहित आदि शब्दों का किया जाता है। कुल-मंगन का अर्थ है कुल के मंगने अर्थात् वे व्यक्ति जो उत्सवादि के अवसर पर दान व नेग लेने के लिए उपस्थित रहते हैं न कि मंगन का कुल अर्थात् भिखारी का कुल। उक्त चरण में 'कुल मंगन' 'बजायो' क्रिया का कर्ता है अर्थात् कुल के मंगनों ने बधाई के बाजे बजाये। 'सुनि' क्रिया का कर्म है 'जायो'। चरण का अन्वय इस प्रकार होना चाहिए मैं (अर्थात् तुलसी) जायो सुनि (मेरे अर्थात् तुलसी के) कुल मंगन बधावनो बजायो जननी जनक को परितापु पाप भयो। इस अन्वय का अर्थ इस प्रकार है यह सुनकर कि मैं (तुलसीदास) उत्पन्न हुआ मेरे (अर्थात् तुलसीदास के) कुल के नेगियों ने बधाई के बाजे बजाये। मेरे (अर्थात् तुलसीदास के) माता-पिता को कष्ट और परिताप हुआ।[1]

प्रस्तुत चरण से सहायजी का निष्कर्ष है कि जिसके जन्म के उपलक्ष्य में बधाई के बाजे बजें उसके माता-पिता तुरन्त पंचत्व को प्राप्त हो जायें यह असम्भव है। अतएव यह निश्चय है कि तुलसीदासजी के माता पिता की मृत्यु तुलसीदास के जन्म लेते ही नहीं हो गयी थी। तुलसीदासजी के जन्म के अवसर पर बधाई के बाजे बजाये गये। इससे यह सिद्ध है कि गोस्वामीजी अवैध सन्तान न थे। उनके माता-पिता अवश्य ही खाते-पीते सुसम्पन्न मिलनसार और आदरणीय व्यक्ति रहे होंगे क्योंकि ऐसे ही व्यक्तियों को समाज से बधाइयाँ प्राप्त होती हैं, और क्योंकि ये बधाइयाँ जन्म काल के समय मिलीं अतएव नेगियों को अवश्य नेग-जोग का प्रबल लालच रहा होगा जो कि श्रेयासु और उदार व्यक्तियों से अधिकतर प्राप्त होता है। यह भी प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी अपने माता पिता की प्रथम सन्तान थे जिस कारण प्रचुर बधाइयाँ प्राप्त हुईं।

रजनीकान्त शास्त्री जी की समझ में 'स्वारथ के साथिन सगे' 'तनु तजेउ कुटिल कीट', 'चौपट चपेटि न हेरो' आदि वचन एक ऐसे हृदय के उद्गार हैं जो अपने प्रति अपने जननि जनक के क्रूर तथा नृशंस व्यवहार को याद कर के सदा जलता रहता था।[2] सहायजी इस धारणा का भी निराकरण करते हैं। कारण कि 'रामचरित मानस' में पिता-पुत्र के आदर्श कर्तव्यों का चित्रण किया गया है। 'रामचरितमानस' भगवान् शिव से रूपान्तर से प्राप्त हुआ अतएव यह असम्भव है कि गोस्वामीजी ने उसका चित्रण यों ही कर दिया होगा। गोस्वामीजी का आज अपने माता

१ तुलसीदास, २१-२-२४ और ७-६-२४।
२. मानस मीमांसा पृ १२।

पिता के प्रति कटु था ऐसा कथन गोस्वामीजी के प्रति घोर अन्याय होगा क्योंकि इस प्रकार की कटुता के लिए गोस्वामीजी के स्वभाव और संस्कृति में कोई गुंजाइश नहीं। प्रत्युत उनके विचार अपने माता-पिता के प्रति अत्यन्त उच्च थे और वे उन्हें सीता राम भवानी-महेश और हनुमानजी की पंक्ति में बिठाते थे। 'विनय पत्रिका' का यह वचन इस विषय में निर्णायक है

मातु पिता गुरु, गनपति सारद सिवा-समेत सम्भु सुक, नारद।
बरन बदि बिनवौं सब कहु देहु राम पद नेहु निबाहू ॥ विनय० ३६ ॥[1]

सहायजी के तर्क से शास्त्रीजी की शंकाओं का समाधान अथवा उनकी धारणा का निराकरण सम्यक रूप से हो जाता है पर 'मयो परिताप पाप जननी जनक को' के लिए किंचित् और प्रकाश की अपेक्षा रहती है जिसका विवेचन इसी अध्याय के मातृ-पितृ वियोग शीर्षक अगले प्रकरण में किया जायगा। यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी विनम्र थे और विनोदी भी। इसी से उन्होंने अपने को 'भंडन' और 'पाप' लिखा। श्री आदित्य नारायण सिंह शर्मा की धारणा है कि 'मंगल कुल' शब्द का प्रयोग नम्रता सूचक है।[2] भृगु-संहिता में ब्राह्मणों की जन्म-पत्रियों में जो सम्भावित कभी-कभी उपलब्ध होती है वह है 'भिक्षुकस्य कुलेऽजनि'। गोस्वामीजी के समकालीन नरोत्तमदासजी तो गर्व से कहते हैं 'बामन को धन केवल भिच्छा', कल मांगत बामन लाज नहीं।[3] गोस्वामीजी ने भी स्वयं कवितावली में स्पष्ट कर दिया है —

भावरी जनुपान करौं अब नाम है राम के नेम जितै हौं।
ओको न लेनो, न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितै हौं॥
जानि कै जोर करौ परिनाम तुम्हैं पछितैहो पै मैं न तितै हौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों हौं तिहारे हिएँ न हितै हौं॥
(कवित्त० १०२)

अर्थात् 'मैं गंगाजल पीता हूँ और नित्य राम के दो नाम लेता हूँ। हे कलिकाल मुझे तुमसे कुछ भी लेना देना नहीं है और मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर नहीं देखूंगा। यदि तुम जान-बूझकर मेरे साथ जोर (अत्याचार) करोगे तो परिणाम में तुम्हीं पछताओगे मैं नहीं डरूंगा। जैसे गरुड़ ने ब्राह्मण को न पचने के कारण उगल दिया वैसे मैं भी तुम्हारे पेट में पचूंगा नहीं।

आस्पद—विनयपत्रिका में सुकुल आस्पद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है —

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को ॥१३२॥

तोरों-सामग्री में कृष्णदासजी और कवि मुरलीधर चतुर्वेदी ने भी तुलसीदासजी के सुकुल आस्पद का उल्लेख किया है।

नाम—गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास था इसका उल्लेख कवितावली में है

---

१ सर्व सारद १३ ६-५४।
२ गोस्वामी तुलसीदास के विषय में कुछ विवेचन, सरस्वती १ भाग १६।
३ सुदामा चरित पृ ३४ आर्यावर्त पुस्तकालय गायघाट, बनारस।

नाम तुलसी पै औंडो भाग त, कहायो दास
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को
साहेबु समर्थ दसरथ के दयाल देव
दूसरो न तो तो तुम्हीं अपनें की लाज को ॥ १३॥

अर्थात् नाम तो (मेरा) तुलसी है पर हूँ मैं भाग का खोटा और कहलाने लगा दास और आपने ऐसे दगाबाज को भी अंगीकार कर लिया। हे दशरथ नन्दन आपके समान कोई दूसरा स्वामी समर्थ अथवा दयालु नहीं है अपने शरणागत की लज्जा रखने वाले तो आप ही हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के विचार से गोस्वामीजी का नाम केवल तुलसी रहा होगा और इस नाम के साथ दास का प्रयोग बाद में हुआ होगा। श्री रजनीकांत शास्त्री ने भविष्य पुराण का जो उल्लेख किया है उससे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का नाम शर्मा था न कि तुलसीदास।

आध्यात्मिक नाम—गोस्वामीजी का आध्यात्मिक नाम 'राम बोला' था।

बाल पने तुम मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत माँगि खात टुकटाक हौं।
परयो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय,
मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥क० ७ ४०

अर्थात् बालपन में मेरा भोला मन राम के सम्मुख हो गया और मैं राम नाम बोलकर, रोटियों के टुकड़े माँग-माँग कर खाया करता था। मैं राम का गुलाम हूँ। अतएव भगवान् राम की कृपा से मेरा नाम राम बोला पड़ गया। 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' के निम्नलिखित छन्द इस उक्ति की पुष्टि करते हैं —

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल तुम्ह
जाहि भावो ताहि दिए, कहौ धौं राखै ताहि को।
हौं सो दीन दूबरो बिगारी-दारी रावरो न
मेरु तेरु ताहि को, सकल जगु जाहि को॥
कामु, कोहु लाइ के देखाइयत आँखि मोहि
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।
सहेबु सुजान, जिन्ह स्वानहू को पच्छु कियो,
राम बोला नामु हौं गुलामु रामसाहि को ॥क० ७,१००॥

अर्थात् हे कराल कलिकाल महाराज सुनो जिसको तुम नष्ट करना चाहो उसकी रक्षा भला कौन कर सकता है। मैं तो दीन दुर्बल हूँ और आपका कुछ भी बिगाड़ा-बिराया नहीं। मैं भी और तुम भी उसी (ईश्वर) के हैं जिसका यह सारा संसार है। तुम जो काम क्रोध को मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखलाते हो सो तुम इतना विरोध करने वाले कौन हो? मेरे स्वामी (रामचन्द्रजी) बड़े विज्ञ हैं वे सब जानते हैं उन्होंने श्वान का भी पक्ष किया था। मैं तो राम साहब का गुलाम हूँ और 'रामबोला' मेरा नाम है।

'रामबोला' नाम किस प्रकार पड़ा इसका स्पष्टीकरण विनयपत्रिका में इस प्रकार है :

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम
काम यहै नाम है हौं कबहूं कहत हौं
रोटी-लूगा नीके राखै आगे हू की बेद भाखै
भलो ह्वै है तेरा, ताते आनन्द लहत हौं ॥७६ १॥

अर्थात् मैं राम का गुलाम हूँ। लोगों ने मेरा नाम रामबोला रखा है। मैं रामजी का यही काम करता हूँ कि कभी-कभी इस नाम के दो अक्षर कह लेता हूँ।

माता हुलसी—गोस्वामीजी ने अपनी माता हुलसी का उल्लेख 'रामचरित मानस' के बालकाण्ड में इस प्रकार किया है :

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥

अर्थात् राम-कथा श्री रामजी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और वह (मुझ) तुलसीदास का हित (माता) हुलसी के समान हृदय से करने वाली है।[1] इस उद्धरण से नितान्त स्पष्ट है कि तुलसीदासजी की माता का नाम 'हुलसी' था और उपर्युक्त पंक्ति में 'हुलसी' शब्द संज्ञा के ही रूप में प्रयुक्त हुआ है जैसा कि म० बालकराम विनायकजी का सुझाव है।[2] सोरों-सामग्री में यह नाम 'हुलासी' रूप से आया है। जनश्रुति है कि जब तुलसीदासजी ने किसी ब्राह्मण-कन्या के विवाह के निमित्त अब्दुर्रहीम खानखाना को यह सिफारिश लिख भेजी कि 'सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहत अस होय' तो रहीमजी ने ब्राह्मण को प्रचुर धनराशि देकर गोस्वामीजी के दोहार्द्ध की पूर्ति इस प्रकार लिख भेजी थी 'गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

गर्भ-वास काल

गर्भवास दस मास पालि पितु-मातु कष्ट हित कीन्हौं
जाहिं विवेक, सुसील जानहिं अपराधिहिं आदर दीन्हौं ॥ १७१ २ ॥

विनय-पत्रिका के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने अपनी माता के गर्भ में दस मास निवास किया था।

मातृ-पितृ-वियोग—कवितावली और विनयपत्रिका में यह उल्लेख है कि जन्म के शीघ्र ही पश्चात् तुलसीदासजी का वियोग अपने माता-पिता से हो गया था—

मातु पिता जग जाइ तज्यो विधि हूँ न लिखी कछु भाल भलाई।
(कवितावली ५७)

जनमी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु न सृज्यो सबहीके॥
(विनय० २२७)

तनु जन्यो कुटिलकीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ। (विनय० २७३)

---

१. दे० कृष्ण और गुप्तजी नामक अध्याय।
२. सरयूपारीण ब्राह्मण १९ अंक १९ कवित्त रामायण में गोस्वामी तुलसीदास का जन्म चरित्र, पृष्ठ ९७।

अन्तिम उद्धरण का तात्पर्य है कि मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर त्याग दिया अथवा मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर कुटिल कीट की तरह त्याग दिया। सोरों वाले 'कुटिल कीट' से 'कुटीला' नामक ऐसे कीड़े का आशय निकालते हैं जो सन्तान को जन्म देने के पीछे ही मर जाता है और कहते हैं कि तुलसीदास के माता पिता का देहान्त बालक के जन्म के कुछ ही समय पश्चात् हो गया था इसलिए गोस्वामीजी ने ऐसा लिखा है। अविनाशराय के लेख के अनुसार तुलसीदासजी केवल दस मास के थे जब उनके माता-पिता का देहान्त हुआ था। सोरों-सामग्री के अनुसार जन्म के समय मूल नक्षत्र न था किन्तु विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। अतएव माता-पिता के द्वारा विशु-त्याग की कल्पना का अवसर ही नहीं। गोस्वामीजी ने यह लिखा है कि उनके जन्म के समय बाजे बजाये गये इससे भी अमुक मूल की कल्पना का परिहार और साथ ही इस सुझाव का निरास होता है कि तुलसीदासजी पापकर्म की सन्तान थे। डॉ० माताप्रसाद ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि उक्त पंक्ति में केवल माता नहीं पिता भी है[1] अतएव जननी और जनक के पाप की कल्पना नितान्त निराधार है।

'भयो परितापु पाप जननी जनक को' इस पंक्ति में 'पाप' से क्या आशय है? टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है कि बधाई के बाजे सुनकर माता-पिता को परिताप और कष्ट हुआ। इस प्रकार 'पाप' का अर्थ कष्ट कर दिया गया है। मेरी विनीत सम्मति में 'पाप का अर्थ अशुभ व्यक्ति' होना चाहिए। गोस्वामीजी अपने विषय में कहते हैं कि 'मैं ऐसा असहना अर्थात् अशुभ रहा कि मेरे जन्म के समय जब बधाई के बाजे बज रहे थे तो उनको सुनने के तनिक देर पीछे मेरे माता-पिता दोनों ही को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट हुआ'। क्या कष्ट हुआ इसको गोस्वामीजी ने स्वयं स्पष्ट नहीं किया है हाँ उनके तथाकथित समकालीन कवि अविनाशराय ने जो प्रकाश डाला है वह समीचीन प्रतीत होता है —

> जन्म बहु सम्पन्नी तथा निज अनुज जीवाराम
> हंकारि कुल गुरु श्रीमसंकर देव विद्या धाम
> निज पीरि इक ठौरे करे उत्सव भयो अभिराम
> बालक बुरे बहु आय ते सब कीन्ह पुरनकाम
> बाजहिं बजनिया बाजने बाजहिं बधाई भारि
> चिर चिर जिये बालक असीसहिं जन पुकारि पुकारि
> कुल लोक देव प्रसन्न कीनो जन्म हर्ष विधान
> सनमान पाय सर्व गये सब लोग निज निज धाम ॥ २७ ॥
> उदर मातारान के उठ्यो शूल अति घोर
> बहु विविध भेषज तऊ, आमय भयो न थोर ॥ २८ ॥
> विकल रहत मय दिन भये दुखी सकल परिवार
> हारे जीवाराम करि, नाना विध उपचार ॥ २९ ॥

---

१ तुलसीदास, पृष्ठ १०२ तृतीय संस्करण १९५३।

सुरक्षित मरकासल्ल लषि जननि निरी हुहराय
तुलसी निज पति दुख निरषि बिलपति अति अकुलाय ॥ ३० ॥

बचपन के कष्ट—तुलसीदासजी का बचपन कष्टमय रहा। उन्हें अपनी जीविका के लिए भिक्षा तक माँगनी पड़ी। यद्यपि उनके माता-पिता खाते-पीते थे तथापि माता-पिता तथा चाचा (जीवाराम) की मृत्यु के पश्चात् आय का कोई साधन न रह गया था। उनकी दादी उन्हें अवश्य राम का भरोसा देती थी और वे राम के नाम पर भिक्षा-वृत्ति करते थे। उनके वचन हैं

(क) बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ॥ क० ७।७१ ॥

अर्थात् मैं बालपन से ही अत्यन्त दीन होने के कारण द्वार द्वार ललचाता और बिलखाता फिरा और चने के चार दानों को ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी चार फल समझता था।

(ख) नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई ॥ क० ७।३७

अर्थात् मैं नीच निरादर का पात्र और कायर कुत्ते के मुख में स्थित टुकड़े के लिए भी ललचाता था।

(ग) बिगरी जनम नाम बनत जनि, बुलत बुलित जोहि हेरे
नाम-प्रताप प्रगट कलि-कामद राम-दूत मेरे मेरे ॥ विनय० २२७ ॥

अर्थात् जब मैं राम-नाम के शरण नहीं हुआ था तब मैं पेट भरने को (द्वार-द्वार) ललचाता फिरता था। मेरी ओर देखकर दुःख को भी दुःख होता था। श्री राम की कृपा से पहले मेरे लिए जो बबूल और बहेड़े के वृक्ष थे उन्हीं पेड़ों से मुझे अब आम के फल मिल रहे हैं।

(घ) द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहू ॥ विनय ॥ २७५।१ ॥

अर्थात् हे नाथ मैं द्वार-द्वार पर दाँत निकाल कर और पैरों पड़कर अपनी दीनता का बयान करता फिरता था।

गोस्वामीजी की इन उक्तियों का स्पष्टीकरण अविनाशराय की इन पंक्तियों से हो जाता है —

तिन आय जीवाराम। पूजवत जननी मन काम ॥
तुलसीहि अंक लगाय। लालत अनेक उपाय ॥
म बब जब पढ़ आस। अम्बा अने नंदरास ॥
तब सुकुल जीवाराम। सुत को धरायो नाम ॥
तुलसिहि गनेस मनाय। पाटी दई पढ़वाय
पुनि बब हैं दसनास। पाछें भये अंबहास
पुनि सुकुल जीवाराम। रोगी भये अति धाम
सह नवद्य जम धन धाम। दारिद गयो मूह छाम
छय रोग सों दुख पाय। ये स्वप बर्ष बिताय ॥ ४५ ॥
जननी जाया जात सुत। तेहि सुत भयो अनाथ
सेस सनातन बंस को। रही पुरातन गाथ ॥ ४६ ॥

हुंपि काम गुह मन बान। सब को भयो अवसान
हुम्मत न कोऊ बात। तेहि दुख न बरनी जात
बाका गये सुर लोक। तुलसी बढ्यो मन सोक
बाबो कहाँ समुझाय। होंय राम सहाय
गुरुदेव तेरे सोय। दे हैं सबै दुख खोय
तू राम भजि अबिराम। पूजें सकल मन काम
बहु राम नाम सुनाय। धीरज दयो मन लाय
तुलसी बसे मन राम। अबिराम टेरत राम
तब रामबोला नाम। कहि लोग टेरत राम
बहु बिध सुमोधन बात। मन पेट सो रहि जात
बारत पुरातन चीर। तेहि कोउ बरत न धीर
बाबो जमन सों जाइ। बापन मन सकुचाइ
निज धाम मन गृह आय। बाबत कबहु दुख पाय
कोउ देत कोउ न देत। पछिताइ मन चलि देत ॥ ४७ ॥
पावत बिनके द्वार नित आइ अतिथि सनमान
तेहि सुत औरनि अतिथि बलि, रावत आपन प्रान ॥ ४८ ॥

गुरुदेव—गोस्वामीजी के गुरु नृसिंह जी थे। सोरों सामवी के अनुसार इनकी पाठशाला सूकरक्षेत्र के चक्रतीर्थ में थी, और इस पाठशाला में हनुमानजी की मूर्ति भी थी। एक दिन सोरों में गंगाजी के किनारे एक वैश्य कुछ दान कर रहा था और तुलसीदास उस दान करते हुए बनिये को अधीरता से देख रहे थे किन्तु उन्हें मिला कुछ नहीं। नृसिंह जी संयोग से वहाँ उपस्थित थे और तुलसी की दीन-हीन दशा से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें घर ले आए। गोस्वामी जी अपने गुरु का स्मरण 'रामचरित मानस' में इस प्रकार करते हैं :—

बंदौ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ॥ १ ॥

अर्थात् मैं परम दयालु अपने गुरु नृसिंह जी के चरण-कमलों में प्रणाम करता हूँ जिन के वचन महा अज्ञान को इस प्रकार दूर कर देते हैं जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को। और भी—

बंदौ गुरु पद पदुम परागा सुरुचि सुबास सरस अनुरागा
अमिय मूरि मय चूरन चारू, समन सकल भव रुज परिवारू
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती मंजुल मंगल मोद प्रसूती
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किये तिलक गुनगन बस करनी
श्री गुर पद नख मनि गन जोती सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
दलन मोह तम सो सप्रकासू बड़े भाग उर आवहिं जासू
उघरहिं बिमल बिलोचन हिय के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के
सूझहिं रामचरित मनि मानिक गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।
दला सुमंजल आँखि इन साधक सिद्ध सुजान

कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान।
गुरपद रज मृदु मंजुल अंजन नयन अमिय दृग दोष बिभंजन
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन बरनौं राम चरित भव मोचन[1]

रा १ २—५

इस वर्णन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के गुरुदेव बड़े दयालु और विद्वान् थे और शिष्य पर उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अविनाशराय का स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

बाहि बिबस नरसिंह गुरु सोरम बंधा तोर
राम करत इक बनिक तहँ तुलसी भये अधीर ॥५१॥
पायो तुलसी बाहि कछु, ठाढ़े दुखित उदास
गुरबर बूझी बाम तू कौन तनय कहँ बास ॥५२॥
सुकल आतमाराम सुत कहो बाहि पुर बास
मात पिता सुर पुर गये एक राम की आस ॥५३॥
समुझि सुकुल कुल बाल मन, दुखित भए गुरराय
करुना करि कर गहि चले आपन सदन लिवाय ॥५४॥
तुलसिहि गुरु धीरज दयो कही पढ़ी नित आय
अब जनि आवन आउ कहँ हूँ हैं राम सहाय ॥५५॥
अवलब गुरु कहँ पाय तुलसीदास मन प्रमुदित भए।
नरसिंह गुरु पद परसि सुमिरत राम कहँ निज गृह गए॥
आवनि पितामहि सों कही जो बारता गुरु सों कही
सुनि कही राम कृपा करि नित आउ पढ़ि अनुमति दई ॥५६॥
अतन बसन तेहि भूमि को दिय परबन्ध कराय
यह इक सुर गृह आम हू बृति हत गुरु राय ॥५७॥

विद्यास्थान और वाङ्मय-विषय—गोस्वामीजी का विद्यास्थान सूकर-क्षेत्र (सोरों) और मुख्य पाठ्य विषय था राम कथा। उनके वचन हैं —

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।
तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥ (रा १,३० ३१)
बहुमत मुनि गुनि पंच पुराननि जहाँ तहाँ असरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो ॥विनय १७३॥

अविनाशराय ने गोस्वामीजी के अध्ययन पर इस प्रकार प्रकाश डाला है —

तहँ बिप्रमनि इक बसत गुरबर श्री नृसिंह बुधाग्रनी
बहु ग्रन्थ अधिपति राम हनुमत भगतबर बिद्याधनी

---

१ गुरु का नामोल्लेख 'रामचरित' में अन्यत्र तथा अन्य ग्रन्थों में भी हुआ है। देखिये अध्याय ६ और गुरु।

इति सास्त्र धर्म पुरान सिच्छा देत नित बहुकन रहैं
निज पाठ साला बैठि सो नित रैनि राम कथा कहैं ॥४८॥
गुरु सेवा तुलसी करत, पढ़त सबिधि नित जाय
पढ़्यौ प्रथम व्याकरन पुनि, कोस काव्य मन लाय ॥४९॥
नरहरि हू तेहि अनुज पढ़न लगे पुनि आय
दोउ भ्रात गुरु भगति रत, बरनति सील सुभाय ॥५०॥
उपनयनादि बिधान सब, कुल गुरु सों करवाय
बेद पढ़ायो सुर सहित संध्या सबिधि सिखाय ॥५०॥
बिमल रामायन बनित बरसन सास्त्र पुरान
अनुज सहित तुलसी पढ़े पंडित भये महान ॥५१॥

अभिनाथराय के मतानुसार गोस्वामीजी ने गान-वाद्य की भी शिक्षा प्राप्त की उसके निमित्त वे सीतारामजी के मन्दिर में हरिहर स्वामी के पास नरहरिजी के साथ जाया करते थे और वे दोनों संगीत शास्त्र में प्रवीण हो गये। संगीत प्रवीणता तुलसीदास जी और नरहरिजी के ग्रन्थों में स्वतः प्रमाणित है क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक राग लिखे हैं और उनके नामों का उल्लेख भी किया है। 'गीतावली' और विनय पत्रिका' दोनों ही गोस्वामीजी के संगीत-ज्ञान के साक्ष्य हैं।

हनुमद्भक्ति—दोनों-रामजी के अनुसार गोस्वामीजी के गुरुदेव हनुमानजी के और रामजी के भक्त थे। गुरुजी की पाठशाला में हनुमानजी की प्रतिमा आज भी विद्यमान है। गुरुजी के प्रभाव से तुलसीदासजी भी भगवान् राम और हनुमानजी के भक्त बन गये जिसका उल्लेख गोस्वामीजी ने 'हनुमान बाहुक' में इस प्रकार किया है—

बालक बिलोकि बलि बारे तें आपनो कियो
दीनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसी के रावरोई बल
आस रावरीये दास रावरो बिचारिए ॥बाहुक २१॥
दूबलि को घरघर बीसत कंगाल बोलि
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है
कीन्हों है संभार सार अंजनी कुमार बीर
आपनो बिसारि हौं न मेरे हू भरोसो है ॥बाहुक २६॥
पालो तेरे टूक को परे हौं चूक मूकिये न
कूर कोड़ो हू को हौं आपनी ओर हेरिये ॥
भीतराय भौरे हीं सरोष होत चोरे दोष
पोषि तोषि थापि आपनो न अबडेरिये ॥
बंधु तू हौं बंधुचर, अंब तू हौं डिंभ सो न
बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिये।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि
तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिये ॥बाहुक ३४॥

हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है
कुंजर के किंकर बिकल बूड़े गो जूरनि
हाय राम राय ऐसी हाल कहूँ भई है ॥कवितावली ३८॥

अर्थात् 'हे दीनबन्धु मैं बलि जाता हूँ बालक को देखकर आपने लड़कपन से ही अपनाया और मायारहित अनोखी दया की। सोचिये तो तुलसी आपका दास है इसको आपका भरोसा आपका ही बल और आपकी ही आशा है। हे दीनों के पालन करने वाले कृपानिधान मैं टुकड़े के लिए दरिद्रतावश घर-घर डोलता फिरता था आपने बुलाकर बालक के समान मेरा पालन-पोषण किया है। हे वीर अंजनी-कुमार मुख्यतः आपने ही मेरी रक्षा की है अपने बल को आप न भुलायेंगे इसका मुझे भी भरोसा है। आपके टुकड़ों से पला हूँ, चूक पड़ने पर भी मीन न हो जाइये। मैं कुमार्गी कौड़ी का हूँ पर आप अपनी ओर देखें। हे मोसालाय अपने भोलेपन से ही आप थोड़े दोष से रुष्ट हो जाते हैं सन्तुष्ट होकर मेरा पालन करके मुझे बसाइये अपना सेवक समझ कर दुर्दशा न कीजिये। आप जल हैं तो मैं मछली हूँ आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ देरी न कीजिये मुझको आपका ही सहारा है। बच्चे को व्याकुल जानकर प्रेम की पहचान करके रक्षा कीजिये तुलसी की बाँह पर अपनी लम्बी पूँछ फेरिये। बलि जाता हूँ मैं तो लड़कपन से ही आपके हाथ बिना मोल बिका हुआ हूँ और अपने कपाल में राम नाम का आधार लिख लिया है। हाय राजा रामचन्द्रजी कहीं ऐसी दशा भी हुई है कि अगस्त्य मुनि का सेवक गाय के खुर में डूब गया हो'।

सम्प्रदाय—गोस्वामीजी के गुरु स्मार्त ब्राह्मण थे। मुरलीधर चतुर्वेद ने रत्नावली चरित में गुरुदेव के विषय में लिखा है—

स्मारत ब्राह्मन सो पुनीत सकल बेद आगम अधीत ॥६०॥

वैष्णव वार्ताओं में तुलसीदासजी को रामानन्दी बताया गया है और 'भविष्य पुराण' में भी उन्हें काशीनिवासी किसी राघवानन्द का शिष्य और रामानन्दी सम्प्रदाय में अंगीकृत बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी बाल्यकाल में एवं तरुणावस्था में भी कुछ काल तक स्मार्त वैष्णव रहे किन्तु सम्भव है कि वे और बन्दीदासजी काशी-यात्रा में रामानन्द सम्प्रदाय से प्रभावित रहे हों। वे वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्तों से भी प्रभावित थे। हो सकता है राम का अनन्य भक्त होने के कारण उन्हें रामानन्दी समझ लिया गया हो अथवा रामानन्द सम्प्रदाय में वे कुछ दिन रहे भी हों पर पीछे से वे इस सम्प्रदाय से अलग हो गये हों। गोस्वामीजी की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि वे बाल्यकाल में और प्रौढ़ावस्था में और वृद्धावस्था में भी अन्त तक स्मार्त बने रहे। वे शिवजी हनुमानजी दुर्गाजी आदि के उपासक थे। 'रामचरित मानस' का रचनाकाल बताने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इस विषय में अन्तःसाक्ष्य हैं —

संवत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा ॥
नौमी भौम बार मधु मासा। अवध पुरीं यह चरित प्रकासा ॥

इससे स्पष्ट है कि तुलसीदासजी ने रामनवमी मंगलवार की मानी और वह नवमी स्मार्तों की थी। यदि वे रामानन्दी होते तो वे बुधवार की नवमी मानते।

विवाह—गोस्वामीजी का विवाह सम्पन्न हुआ था, इस सम्बन्ध में उनके वचन इस प्रकार हैं :—

जोबन जुवति संग रंग रात्यो। तब तू महा मोह मद मात्यो॥
तजे तबी धरम-मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥ वि० १३९

अर्थात् 'हे जीव जब तू युवावस्था में युवती के साथ विषय-वासना के रंग में रंग गया तब तू मोह और मद में मतवाला हो गया और इस कारण तूने धर्म की मर्यादा छोड़ दी और पहले (अर्थात् धर्म और लड़कपन के) कष्टों को भूल गया'। श्री रजनीकान्त शास्त्री के मत से तुलसीदासजी के व्यक्तित्व से इस उक्ति का विशेष लगाव नहीं, यह तो साधारण उक्ति है जो सभी जीवों के लिये न्यूनाधिक रूप में लागू होती है। किन्तु विवाह के सम्बन्ध में अन्य और भी वचन हैं —

सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु बाप
माय-बाप तुही साँचो तुलसी कहत।
मेरी तो बोरी है सुधरयो बिगरियो,
अलि राम रावरी सौं रही रावरी चहत॥ विनय० २५६॥

अर्थात् मेरे न तो कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है न सुलक्षणा स्त्री है और न कोई माता है। मेरे तो माँ बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्ची बात कह रहा है। मेरी तो थोड़ी सी बात है बिगड़ी होने पर भी सुधर जायगी किन्तु बनिहारी मैं आपकी सपथ खाकर कह रहा हूँ मैं तो आपकी बात ही रखना चाहता हूँ। इस उक्ति में पत्नी की ओर कटाक्ष प्रतीत होता है। गोस्वामी जी की पत्नी तो थी किन्तु वह उसे सुतिय न समझते हों क्योंकि उसी के कारण वे विवश हो कर घर से निकल पड़े थे। 'विनय पत्रिका' का एक और भजन है जो इस बात की पुष्टि करता है कि गोस्वामी जी का विवाह हुआ था वह यह है—

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोबन-जूर जुड़ो जुपम्य करि, भयो बिसेष जरि मरन बाय॥
अब्ब अवस्था धन हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय।
राम बिमुख सुख लह्यो न सपनहुँ निसिबासर तयो तिहुँ ताय॥८१॥

अर्थात्—लड़कपन तो अज्ञान में बीत गया। उस समय चित्त में चौगुनी चंचलता और उमंग थी। जब युवावस्था रूपी ज्वर चढ़ा तो स्त्री-सेवन-रूपी कुपथ्य और काम रूपी वायु से भारी विकोप हो गया। बीच की अवस्था धन के लिए खेती वाणिज्य व्यापार आदि विविध उपायों में बिताई। पर मैंने रामजी से विमुख होने के कारण सपने में भी सुख नहीं पाया और मैं रात दिन तीनों तापों से तपता रहा।

तुलसी विवाह के सम्बन्ध में हनुमान बाहुक' का निम्नलिखित साक्ष्य प्रबलतम प्रतीत होता है—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत माँगि खात टुक टाक हौं।
परयो लोक रीति में पुनीत प्रीति रामराय,
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं॥

छोटे छोटे आचरन आचरत अपनायो
अजमीढ़कुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥४०॥

अर्थात्—हे हनुमान् जी मैं बाल्यावस्था से ही सीधे मन से भगवान् राम के सम्मुख हुआ राम नाम उच्चारण करता हुआ जो कुछ टुकड़ा माँगने से मिलता उसे खा लेता। (पर इस प्रकार) यद्यपि राम के प्रेम से पवित्र होकर भी मैं लोकरीति में पड़ गया अर्थात् मैंने विवाह कर लिया किन्तु अज्ञानवश उस वैवाहिक सम्बन्ध को जल्दबाजी में तोड़ बैठा। (तत्पश्चात्) मैंने छोटे छोटे आचरण किये किन्तु आपने मुझे फिर भी अपना लिया और भगवान् राम के पवित्र हाथों से मेरा सुधार करवाया। पिछले अभाग्य दिन भूलकर मैं तुलसीदास गोस्वामी बन गया जिसका फल अन्त में आज भले प्रकार पा रहा हूँ। इस उक्ति में 'लोक रीति' विवाह का द्योतक है। जनश्रुति है कि गोस्वामी जी की पत्नी ने उन्हें इस प्रकार डाँटा था[1]—

लाज न आवत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ ॥
अस्थि चर्म मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तो भव भीति ॥
नाथ नाथ के जीव के जिय सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह जिनहिं तिनहिं बिधिबाम ॥

और 'दोहावली' में भी पत्नी का वचन दर्ज है —

लरिका लरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग
है लरिका मोहि मेलिकै बिमल बिबेक बिराग ॥२३६

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त फटकार से तुलसी को मार्मिक दुःख तो हुआ होगा, जैसा कि 'तुलसी सतसई' के इन शब्दों से ध्वनित है —

को दूसरो ? कहु नाम। तु० स० ३, ६६
बिपति तबै का ? नाम। तु० स० ३, ६२

किन्तु विरक्ति तुरन्त न हुई हो और गोस्वामी जी के बारे में जो यह बात प्रचलित है कि उनके तीन विवाह हुए वह कदाचित् ठीक हो। उक्त उद्धरण में गोस्वामी जी ने 'पाक' शब्द फ़ारसी से लिया है और इसी उद्धरण में 'तराक' शब्द का अर्थ भले ही अरबी का 'तलाक' न हो किन्तु उसकी ध्वनि अवश्य निकलती है।

'छोटे छोटे आचरन' से गोस्वामी जी का क्या तात्पर्य है ? यह कदाचित् 'विनय पत्रिका' के निम्न-लिखित भजन में सन्निहित है—

नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना मान-मद लोभ सहज सुख त्यागे ॥
पर निंदा सुनि श्रवन मलिन भे वचन दोष पर पागे ॥
तब प्रकार अलमार नाथ निज नाथ चरन बिसरागे ॥८२॥

---

१ रामचरित मानस की भूमिका तुलसी चरित चन्द्रिका पृष्ठ १ । रामदास गौड़।

अर्थात्—पराई स्त्री को देखने से नेत्र मलिन हो गये। विषयों में फँसने से मन मलिन हो गया। वासना मान और मद से हृदय मलिन हो गया और जीव अपने स्वाभाविक सुख को त्यागने से मलिन हो गया। पराई निन्दा सुनते-सुनते कान मैले हो गये। दूसरों के दोष बार-बार कहने से वाणी मैली हो गयी। स्वामी के चरणों को भूल जाने से ये सब प्रकार के मलमार मेरे पीछे लगे फिरते हैं। जो हो, गोस्वामी जी को संसार की कटुता और विषमता का अनुभव हुआ और तत्त्वज्ञ ज्ञान का सदय जी। कदाचित् इसी कारण 'दोहावली' में उन्होंने मानवजीवन के लिये मध्यम मार्ग को ही प्रशस्त समझा। वे कहते हैं—

घर छोड़े घर जात है घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय ॥२३६॥

अर्थात्—तुलसीदास जी कहते हैं कि घर छोड़ने से यहीं का घर नष्ट होता है और घर करने से अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है। अतएव तू घर और वन के बीच में ही श्रीराम जी के प्रेम की पुरी बसा। यही बात तुलसी अतर्ग (४ ७५ ६ १९) में भी है।

विरक्ति—विरक्ति के प्रारम्भ काल में गोस्वामी जी के विषय में लोगों में परस्पर विरुद्ध धारणाएँ थीं—

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु खल जानैं महाखल
बानी झूठी-साँची कोटि उठत हबूब है ॥
चहत न काहू सों न कहत काहू की कछू
सब की सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति-भूमि मेरी मति दूब है ॥ क० १०८

मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
लोकु परलोकु रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥
[illegible] सोच

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी जाति-पाँति, विषय-भोग मान-मर्यादा आदि सांसारिक प्रलोभनों से उपरत हो गये थे।

चित्रकूट-निवास—गोस्वामीजी ने कम से कम छः मास तक चित्रकूट पर निवास किया था, और कदाचित् उन्होंने चित्रकूट की यात्रा एक से अधिक बार की थी—

> बय महाइ फल जाइ जपु राम नाम पल मास
> सगुन सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ रामाज्ञा ७
> सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
> बरषा ऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥
> जहँ दिसि बन सघन बिहंग मृग बोलत सोभा पावत।
> जनु सुनरेस देसपुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥
> सीहत स्याम जलद मृदु गरजत चातु रंचलये सु पनि।
> मनहुँ आदि संभोग बिराजत सेवित सुर मुनि जु पनि ॥
> सिखर परसि घन घरहि घिरत बपपति सो छबि कबि बरनी।
> आदि बराह बिहारि बारिधि मानो कढ़ो है दसन धरि धरनी ॥
> जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ घन प्रतिबिंब तरंग।
> मानहुँ जए रचना बिचित्र बिलसति बिराट अंग अंग ॥
> मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आवै।
> तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानो राम भगति के पावै ॥
>
> गीता २ ५०

अयोध्या—गोस्वामीजी ने अयोध्यापुरी के दर्शन किये थे वहीं से 'रामचरित मानस' का प्रकाशन भी किया था जैसा कि 'रामचरित मानस' की निम्नलिखित चौपाई से स्पष्ट है —

> अवधपुरी प्रभु चरित प्रकासा ॥ रा० १ ३४ ३

प्रयाग—गोस्वामीजी ने तीर्थराज प्रयाग के भी दर्शन किये थे और उन्होंने 'कवितावली' में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है —

> देव कहँ अपनी-अपनी अवलोकन तीरथ राजु चलो है।
> देखि मिटे अपराध अगाध निरखत साधु-समाजु भलो है ॥
> सीहै सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
> मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥१४७॥

सीतामढ़ी—प्रयाग और काशी के बीच में सीतामढ़ी स्थित है। इसका वर्णन इस प्रकार किया है —

> जहाँ बालमीकि भए ब्याध तें मुनिंदु साधु
> मरा मरा जपें सिख मुनि रिषि तात की।
> सीय को निवास लव-कुस को जनमथल
> तुलसी सुपूत पाँहु ताप गरे गात को ॥

बिटप महीप सुरसरित समीप सोहैं,
सीताबटु पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपूर दिगपुर बीच बिलसति भूमि
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात की॥ क० ७ १३८

काशीवास—गोस्वामीजी के जीवन का बहुत सा समय काशी में व्यतीत हुआ। भगवान् राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्हें शंकर भगवान् में अत्यन्त आस्था और जन्मभूमि-तट-वाहिनी गंगाजी के प्रति असीम श्रद्धा थी। काशी में मरने का माहात्म्य भी है अतः गोस्वामीजी ने अपना मुख्य निवास-स्थान काशी ही रखा। उन्होंने काशी माहात्म्य का 'विनय पत्रिका' में और अन्नपूर्णा देवी का वर्णन कवितावली' में इस प्रकार किया है —

सेइय सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी
समनि सोक-संताप-पाप-रुज सकल-सुमंगल रासी॥
सरवारा चहुँ ओर बरनधर सेवत सुर पुर बासी
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी
अंतर ऐस एस भस जग फल, बस्तु बेद बिस्वासी
मज्जन जपन जथा बिधि कहु नुम लसति सरिता सी
बंदपानि भैरव बिषाम भय उचि-जसपन भयदा-सी
लोल बिलोल बिलोचन लोचन करनघंट घंटा-सी
मनिकर्निका बदन-ससि सुन्दर, सुरसरि-मुख सुखमासी
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोसि महिमा सी
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित सालति नित पिरिछा सी
सिद्धि सती सारद पुजहिं मन जोगवति रहति रमा सी
पचाच्छरी प्रान मुद मायव गम्य सुपंचनदा सी
ब्रह्मजीव-सम रामनाम जपु, आखर बिस्व-बिकासी
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीव गन त्रासी
लहत परम पद पय पावन जहिं चहत अपंच-उदासी
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥१२२॥

'रामचरित मानस' में भी काशी मोक्ष-दात्री है अतएव उसका बड़ा माहात्म्य है

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न॥ रा० ४ १[1]

अतएव गोस्वामीजी भी वहाँ आकर मरने के लिए रहने लगे थे —

---

१ काशी-माहात्म्य
कृमा विमल बानारसी तुह-चरन सुख बसि।
ज्ञान सिमेकर कनि निरर लगत एकतर मनि॥ मु० ७ ४ ४१

मेरो रामराय को सुजस सुनि तेरी हर
पायें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ॥ क० ७, १६६
जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि अवधेस को रहत हौं ॥ क० ७ १६७

काशी में असी के दक्षिण में लोलार्क और गंगाजी के बीच उनकी कुटी थी :

रवि चंदन घन घनसार बीच सुवास बिचारि ।
तुलसिदास आसन करे । तु० स० १ ५१

मित्र—रामाज्ञा प्रश्न के निम्नलिखित दोहे में किन्हीं गंगारामजी का उल्लेख किया गया है जो जनश्रुति के अनुसार काशी में प्रह्लाद घाट के निवासी और गोस्वामीजी के मित्र थे—

सपुन प्रथम जनवास सुभ तुलसी अति अभिराम
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर गोपन गंगाराम ॥१-७-७॥

विरोध—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का पांडित्य और यश कुछ लोगों को असह्य प्रतीत हुआ अतएव वे लोग गोस्वामीजी की जाति कुल, विवाह चरित्र आदि के सम्बन्ध में दोषारोपण करते थे जो कालान्तर में स्वयं नष्ट हो गया। इस प्रकरण से सम्बन्ध रखने वाले 'दोहावली' से कुछ उद्धरण ये हैं —

पुण्य पाप जस अजस के भागी आपन मूरि ।
संकट तुलसीदास को राम करिहिंगे दूरि ॥१४६॥
भली कहैं बिनु जानेहूँ बिनु जाने अपवाद ।
ते नर गाडर जानि जिय करिय न हरष बिषाद ॥३८७॥
पर सुख सम्पति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भागतें चलै भलाई भागि ॥३८८॥
तुलसी जे कीरति चहैं पर कीरति को खोय ।
तिनके मुँह मसि लागि है मिटिहि न मरिहैं धोय ॥३८९॥
मांगि मधुकरी खात जे सोवत पांव पसारि ।
पाप प्रतिष्ठा उदि गई ताते आई रारि ॥४६४॥
रामायन अनुहरत सिय जग जो भावत रीति ।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति ॥ दोहा० ५४५॥

और भी —

कोऊ कहै करत कुलाज गपाबाज बड़ो ॥क० ७, १०८॥
पूत कहौं अवधूत कहौं रजपूत कहौं जोलहा कहौं कोऊ ॥क० ७ १०६
लोग कहैं पोच सो न सोच न संकोच मेरे ॥ विनय० ७६
बातुल पीन दुबारिद दीन मलीन परे कबरी करना है
लोग कहै बिधिहू न लिखी सपनेहुँ नहीं अपने घर नाहीं ॥क० ७, ५६
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो हौं और करै
ताको जोर देइ दीन द्वारें पूजरत हौं

पाइकै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि
काल कला कासीनाथ कहौं निवरत हौं ॥ क० ७, १६२
गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे
अभिमौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे
बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे
तुलसी बलि कंप्यो चहै सठ राजि सिहोरे ॥ विनय० ८
क्रोह जीह कूप जनैयो पर कहौं सो सठ गिरि तेहि कूप परै
सपनेहुँ सुख न संत द्रोही कहौं सुरासत सोउ बिष करनि करै ॥
हैं काके हौं सोच ईस के जो हठि जनकी सींव धरै ॥ वि० १३७

पद और उपाधि—तीव्र विरोध के होते हुए भी गोस्वामीजी की प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। विद्वान् तो थे ही वे निर्भीक भी थे जैसा कि उन्होंने लिखा है

तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डर ॥विनय० १३७ ६॥

सोरों में पूर्व तुलसी से विद्याध्ययन कर इन्होंने असीम विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। मुरलीधर चतुर्वेद ने गोस्वामीजी के लिए लिखा है कि वे थे—

सौर करन विद्या निधान। विविध शास्त्र पंडित महान ॥र० च० ६६
नक्तन् घर बाँचहि पुरान। तुलसी तहँ जन सब मान ॥र० च० ६०

विनय-पत्रिका में पंडित-पद-प्राप्ति का उल्लेख इस प्रकार है —

जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि-मुरारि को ॥वि० १३५॥

अर्थात् मैं 'पंडित' का परम पद प्राप्त कर भगवान् शिव और विष्णु को प्राप्त हुआ।

तुलसीदासजी को 'गोस्वामी' की उपाधि प्राप्त हो गयी वह कदाचित् वैसा कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त समझते हैं सोरों के कुण्ड पर तुलसीदास-मठ के अधीश बनने के कारण। गुप्त जी का आधार है न्याय-सिद्धान्त-मंजरी की पुष्पिका जो इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में है। किन्तु गोस्वामीजी ने मठाधीश होने पर जो आचरण रखा उस पर स्यात् उन्हें पश्चात्ताप हुआ जैसा कि 'बाहुक' के निम्नलिखित उद्धरण से प्रतीत होता है —

छोटे छोटे आचरन आचरत अपनायो
संजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥४०॥
बसन बसन हीन बिषम बिषाद लीन
देखि दीन दूबरी करै न हाय हाय को।
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सीलसिंधु आपनें सुभाय को ॥
नीच यहि सीच चित चाह अवगाहनो
दिखाइ प्रभु-मंजन बचन मन काय को
तात तनु नेवियत घोर करतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥४१॥

गोस्वामीजी को सब से श्रेष्ठ जो उपाधि मिली वह नाभादास जैसे समकालीन सन्तों की वाणी में प्रस्फुटित है —

> त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन
> इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन
> पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी
> रामचरन रस मत्त रहत अहमिसि ब्रत धारी
> संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लिए
> कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए ॥
>
> भक्तमाल छप्पय १२६

गोस्वामीजी के विषय में श्री मधुसूदन सरस्वती की सम्मति थी —

> आनन्द कानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
> कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता ॥

कदाचित् गोस्वामीजी को अपने विषय में ऐसी लोक धारणा का ज्ञान था तभी तो उन्होंने कवितावली के उत्तर काण्ड में लिखा —

> रामनाम को प्रताउ पाउ महिमा प्रतापु
> तुलसी-सो जग मानियत महामुनी-सो ॥

उन्हें राज-सम्मान भी प्राप्त था

> घर घर मांगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय । दो० १ ९

काशी में दारिद्रय और महामारी—गोस्वामीजी ने कवितावली में काशी की दरिद्रता और महामारी का उल्लेख किया है। इस महामारी का क्या रूप था यह विषूचिका थी या ताउन इसका कोई निर्णायक उल्लेख नहीं। लोग दरिद्र और दुखी थे इसका कारण उनका चारित्र्य-दोष था अतएव भगवान् राम और भगवान् शंकर काशी-वासियों की विपन्नता से उदासीन रहे। किन्तु महामना गोस्वामीजी ने द्रवित होकर जानकीजी और पार्वतीजी तथा हनुमानजी से उनका दुःख निवारण करने के लिए इस प्रकार प्रार्थना की —

> निपट बसेरे अघ-औगुन घनेरे नर
> नारिऊ अनेरे अघबंध बेरी-बेर हैं।
> दारिद-दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीत
> लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
> लोक रीति राखी राम साखी कामधेनु जानि
> जनकी बिनति मानि मातु कहि मेरे हैं
> महामारी महेसानि महिमा की खानि
> मोद-मंगल की रासि, दास काशीवासी तेरे हैं ॥क० १७४॥
>
> लोभनि के लोभ लोभी लिद्ध-सुद्ध-लाभ कर्यो
> कास के प्रताप काशी तिहूँ ताप तई है
> ऊँचे नीचे बीच के धनिक, रंक, राजा राव
> हठनि बजाइ करि ठौठि पीठि दई है

देवता निहोरे, महामारिहू सों कर जोरे,
मोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है
कलानिधान हनुमान बीर बलवान
अंतरातिं जहाँ तहाँ तैं हौं मूँदि लई है ॥क० १७६॥
रचत बिरंचि हरि पालत, हरत हर
तेरे ही प्रताप जग, जप-जप-पालिके ।
तोहि में बिलास बिस्व तोहि में बिलास सब
तोहि में समात मातु भूमिधरजालि के ॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके ।
रोग महामारी परितोष म्हतारी तुली
देखिये दुखारी, मुनि-मानस-मरालिके ॥१७१॥
सकल-सहूर सठ, नर नारि बारिचर
बिकल सकल महामारी मांझा मई है ॥
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
जमरि भयात जल-जंतु मीचु लई है ॥
देव न दयाल महिपाल न कृपाल चित
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है ।
पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
राम हू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥क० १७६॥

डा० माताप्रसाद गुप्त के विचार से उक्त महामारी ताउन ही थी जो कवि के जीवन के अन्तिम वर्षों में काशी में संवत् १६७१ और संवत् १६८० के बीच किसी समय आयी होगी। ईलियट की 'ए हिस्ट्री आव इण्डिया' बेनीप्रसाद की हिस्ट्री आव जहाँगीर (पृ० २६१ २६२ १९३०) विंसेंट स्मिथ का अकबर (पृष्ठ ३६८) तथा जहाँगीरनामा (मुं० बेनीप्रसाद का अनुवाद पृष्ठ २२८, ३१३) के अनुसार भारत में प्लेग सबसे पहली बार संवत् १६६ में आयी थी। विजयानन्द त्रिपाठीजी इस बात में विश्वास नहीं करते कि गोस्वामीजी को प्लेग हो गयी थी क्योंकि उनकी मृत्यु सं० १६८० में हुई थी। त्रिपाठीजी का तर्क है कि बाहु-पीड़ा से प्लेग का और बरतोर का प्लेग की गिल्टी से तादात्म्य नहीं, यदि प्लेग से गोस्वामीजी का देहावसान हो गया होता तो 'हनुमान् बाहुक' का अनुष्ठान रोग की निवृत्ति के लिए कदापि नहीं किया जाता[1] और भगवान् राम और हनुमानजी की कृपा से उसका अन्त भी हो गया था —

आलम बरन कलि बिबस बिकल जग
निजबिल अरजाय मोदरी सी बार थी ।
संकर सरोष महामारी ही तें जानियत
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दार थी ।

---

१ श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की स्वरचित बाँहपीड़ा, श्री रामनरेश वाजपेयी १९३ ई०

नारि मर आरत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी।
तुलसी सभीत सुमिरे कृपालु राम
समय सुकृतनि सराहि सनकार दी ॥ क, १८१ ॥

स्वावस्था और समय—'दोहावली' 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' के कुछ छन्दों में गोस्वामीजी ने अपने रोग की शान्ति के लिए प्रार्थना की है। 'दोहावली' और 'बाहुक' से यह विदित होता है कि वे बाहु-पीड़ा से पीड़ित थे। बाहु-वेदना पहले एक बाहु में प्रारम्भ हुई थी फिर समग्र शरीर में व्याप्त हो गयी। वेदना के कारण स्वरूप गोस्वामीजी ने बात का वृद्धावस्था का कलिकाल का एवं भूत प्रेत-बाधा का निम्नलिखित उल्लेख किया है। राम की कृपा से वह पीड़ा शान्त हो गयी थी —

रोग निकर तनु जरठ पनु तुलसी संग कुसोग।
राम कृपा ते पालिए दीन पालिबे जोग ॥ दो० १७८

अधिभूत वेदन विषम होत भूतनाथ
तुलसी विकल पाहि पवत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तो कृपाकरि निरुजसरीर हौं ॥ क ७ १६६

रोग भयो भूत-सो कुपूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपंकज महतु हौं।
ज्याइये तो जानकीरमन-जन जानि जिये
मारिये तो मागी मीचु सुचिये कहतु हौं ॥ क ७ १६७

आधि-मगन-मन व्याधि-विकल-तन बचन मलीन मुकाई
एतेहुँ पर तुलसी तुलसी की प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ वि० १६६,४

तुलसी तनु तर मुख जसन भुज बल गज बर घोर।
बसत बयानिधि बैसिए कपि केसरी किसोर ॥ दो० २३४

भुज तव कोटर रोग अहि बर बस किन्हो प्रवेस
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िय मिटै कलेस ॥ दो० २३५

बाहु बिटप भुज बिहग बपु लगी कुपीर कुठाँवि
राम कृपा बस सीचिए अपि बोल हित लागि ॥ दो० २३६

अपराधी जानि कीन्ह जातनि सहत भाँति
लोचक मरे जो ताहि मारुत न मारिये।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जू के
बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥ हु० बा० २

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें
बढ़ी है बाँह बेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जन मंत्र टोटकादि किये
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है ॥ हु० बा० ३०

नाम की कि काल की कि रोष की त्रिदोष की है,
बेदन बिषम पाप ताप छल छाँह की।
दारमन कूट की कि जंत्र मंत्र बूट की,
परहि आहि पापिनी मलीन मनमाँह की॥
पैहहि सजाय, नत कहत बजाय तोहि,
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाँह की।
आन हनुमान की दोहाई बलवान की,
सपथ महावीर की जो रहै पीर बाँह की॥२६॥
काल को कराल्ता करम कठिनाई कीधौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे
बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन,
सोई बाँह गही जो गही समीर बावरे॥ हु० बा० ३७
पाँय पीर पेट पीर बाँह पीर मुँह पीर,
जरजर सकल सरीर पीर भई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥ हु० बा० ३८
बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच निसि
मुँह पीर केतु जा कुरोग जातुधान है।
राम नाम जप जाग किये जहाँ तहाँ सानुराग
काल कलि पूत भूत कहा मेरे मान हैं॥ हु० बा० ३९

बावीसी, मीनकी सनीचरी काशी की दीनता—मीन की सनीचरी और बत्तीसी में कलि के प्रभाव बढ़ गये थे जैसा कि 'कवितावली' और 'दोहावली' से विदित है —

एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की
बेद धर्म दूरि गए भूमि चोर भूप भए
साधु सीदमान जानि रीति पाप पीन की।
दुबरे को दूसरो न द्वार राम दयाधाम
रावरीऐ गति बल बिनय बिहीन की
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरदहि
महाराज आज जौं न देत दादि दीन की॥ क० उ० १७३
ठाकुर गुसेल ठकुराइनि उजाली जहाँ
लोक बेद हूँ बिदित महिमा टहर की
भट बड़गन भूत गनपति खेतापति
कलिकाल की दुचाल काहू सी न हर की
कीसी बिसनाथ की बिसाद बड़ी बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर-सहर की

कैसे कहौं तुलसी कृपासुर के वरदानि
जानि जानि सुजातजि बीजनि बहुर की ॥ क० ७ १७०
अपनी बीसी आपुही पुरिहिं लगाए हाथ ।
केहि विधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥ दो० २४०

श्री स्वामी कन्नूपिल्लाई के अनुसार जैसा कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं इस ग्रहविपति का समय १६२३ संवत् से १६४२ संवत् है किन्तु प० म० सुधाकर द्विवेदी की गणना के आधार पर सर ग्रियर्सन के मतानुसार संवत् १६५१ से संवत् १६७१ तक और मिश्रबन्धुओं के अनुसार संवत् १६६२ से १६८२ संवत् तक है। तथा प० सुधाकर द्विवेदीजी के अनुसार मीन राशि में शनि का प्रवेश प्रथमबार चैत्र शुक्ला ५ संवत् १६४० को अथवा उसके लगभग हुआ और संवत् १६४२ के ज्येष्ठ तक उसकी स्थिति रही तथा द्वितीय बार उसका प्रवेश चैत्र शुक्ल द्वितीया संवत् १६६१ को हुआ और स्थिति १६७१ संवत् के ज्येष्ठ तक रही। डॉ० गुप्त ने मीन की सनीचरी के विषय में सुधाकर जी की गणना ठीक समझी है और ग्रहदशा के सम्बन्ध में पिलाई जी की गणना को अधिक विश्वस्त समझा है।[1] गोस्वामीजी के लेखानुसार ग्रहदशा में मीन की सनीचरी थी क्योंकि कवितावली के उत्तर काण्ड के १७० वें छंद में ग्रहदशा का उल्लेख है और १७७ वें में 'मीन की सनीचरी का जो कोड़ में की खाजसी' थी। स्पष्ट है कि ग्रहदशा में मीन की सनीचरी पड़ी थी और दोनों ही संवत् १६४२ में समाप्त हुई। अतएव सम्राट् अकबर के राज्यकाल में गोसाईं जी के संकट का और काशी की हीनता का समय १६२३ से १६४२ वि० तक रहा इस संकटकाल में विषूचिका महामारी से काशी नगरी संतप्त रही और गोस्वामीजी को कवित्तगत रोग और लांछन लगे पर संवत् १६४३ से गोस्वामीजी की प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी होगी, ऐसी मेरी विनम्र धारणा है। सोरों-सामग्री के अनुसार कृष्णदासजी अपने ताऊ गो० तुलसीदास से मिले थे और उन्होंने अपने भतीजे को 'रामचरितमानस' की एक प्रति १६४३ वि० में प्रदान की थी। स्यात् कोई उत्सव रहा हो जिसके उपलक्ष में कृष्णदासजी को आमन्त्रित किया गया हो।

आगामी कतिपय पृष्ठों में गोस्वामीजी के उन कूट वचनों की चर्चा होगी जो उन्होंने अपने विषय में लिखे हैं।

(ख) कूट और गूढार्थ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने विषय में निम्न लिखित कूट और गूढार्थ वचनों का भी प्रयोग किया है —

जैसा परिचय—

रामसनेही सों तें न सनेह कियो
अगम की अगरनि हूं सो तन तोहि दियो।
दियो मनुज जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।

---

१ तुलसीदास, तृतीय संस्करण पृष्ठ १८४ १८६।

जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को
यह अरत अग्ड समोप सुरतरि भव भलो सगति भली
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहत बिष फल फली ॥१३५॥

इस उद्धरण की द्वितीय पंक्ति में गोस्वामीजी ने अपने पिता 'आत्माराम' और माता 'हुलासी' का उल्लेख कैसी गूढ़ रीति से किया है। यदि 'अगम जो अमरनि' इन शब्दों का सीधा अर्थ ऐसा किया जाय कि 'जो अमरों के लिए अगम्य है' और इसे 'तन' का विशेषण माना जाय तो भाव स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि तन तो नाशवान् होता है वह न अमर है और न अगम्य है। यदि यह अर्थ किया जाय कि 'देवताओं के लिए भी जो अज्ञेय है उसने तन दिया' तो आपत्ति होगी कि निर्गुण अथवा सगुण ब्रह्म ने तन दिया। किन्तु तन देने का कार्य तो ब्रह्म नहीं करते मनुष्य अपने कर्म से देह पाता है, जैसा मनुस्मृति का वचन है—

यो यदेषां गुणोदेहे साकल्येनातिरिच्यते
स तदा तद् गुण प्रायं तं करोति शरीरिणम्।

उक्त कूट का अर्थ क्या होना चाहिए? अगम का अर्थ है परब्रह्म अर्थात् तुलसीदासजी के राम। गीता कहती है 'नां तु वेद न कश्चन'। और 'अमरनि' का अर्थ है जो न मरे अर्थात् 'आत्मा'। गीता कहती है न जायते म्रियते वा कदाचित्। दोनों शब्दों का अर्थ हुआ राम आत्मा अथवा आत्मा राम'।

उत्तरवर्ती कूट में 'हु—सो' की विद्यमानता है जिसमें मध्यान्तर का अस्तित्व हो गया है। पूर्ण शब्द था 'हुलासो'। मुरलीधर चतुर्वेद ने 'रत्नावलीचरित' में तुलसीदासजी की माता का नाम हुलासी ही लिखा है यद्यपि तुलसीदासजी और कवि रहीम ने हुलसी रूप को ग्रहण किया है। माता-पिता के नामों के पश्चात् 'सुकुल' आस्पद का उल्लेख है। क्या तुलसीदासजी अपने शरीर को सुन्दर कह कर आत्मश्लाघा कर सकते थे? नहीं। अतएव कुछ विद्वान् 'सुन्दर' से अभिप्राय ग्रहण करते हैं (तन अर्थात् तपस्या से आढ्य=) सनाढ्य जाति का। फिर कहा गया है बस भलो। इसमें 'बस' का अर्थ है क्षेत्र 'भ' द्योतक है सूअर का और स है अपने उच्चारण स्थान दन्त का। 'भ सो' दोनों मिल कर भगवान् वराह के द्योतक हैं जिन्होंने पृथ्वी को दन्त पर धारण किया था। इस प्रकार सुविज्ञ-पूर्वक गोस्वामीजी ने माता-पिता 'हुलासो' और 'आत्माराम' सुकुल आस्पद सनाढ्य जाति और 'गंगातीरस्थ सूकरक्षेत्र' का उल्लेख कर दिया है। कूट का प्रस्तुत अर्थ सभी को ग्राह्य न हो परन्तु तीरों में अनेक शास्त्रों के परम विद्वान् पंडित दशरथ शास्त्री और अलीगढ़ के पंडित रामचन्द्र शास्त्री ने इसी प्रकार अर्थ किया है। तुलसीदासजी ने स्वयं इस कूटार्थ-शैली का उपयोग 'तुलसी सतसई' के अनेक दोहों में किया है। निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त होगा—

जनक-सुता जग जननि जस करम-ईस अन-भोर
तुलसिदास बस पद परति भव-सागर गो चोर ॥३, १॥

यहाँ जनक सुता=जानकी जग जननि सुत=राम करम ईस=लक्ष्मण और अ=भरत और म=शत्रुघ्न हैं (देखिए दोहे २ ४२ २, ४४)। इस शैली से तुलसीसतसई के

निम्नलिखित दोहे में तुलसीदासजी के पिता 'आत्माराम' जी के दर्शन होते हैं

जतन अनूपम जानु कर सकल कला गुन धाम।
अविनासी अव्यय अमल सो यह तनु धरि राम ॥३, १॥

इस दोहे को स्पष्ट करने के लिए विलक्षण उपकरण की आवश्यकता नहीं। पर उसका भाव 'अनुपम यत्न-पूर्वक समझिये मेरा यह शरीर आत्माराम' से उत्पन्न हुआ है। 'आत्मा' अमल अव्यय और अविनाशी तत्व है जिसके आधार हैं राम' जो सम्पूर्ण श्रेष्ठ कलाओं और गुणों के आधार हैं। विशेष यत्न की अपेक्षा इस कारण रही कि एक तो यह अध्यात्म चर्चा होने के कारण कठिन है दूसरे तुलसीदासजी के पिता का नामोल्लेख कूट-द्वारा हुआ है।

हुलसी और तारी—मैंने कई बार पं० दशरथ शास्त्री के दर्शन किये और उन्होंने मेरा ध्यान 'रामचरितमानस' की कुछ पंक्तियों की ओर आकर्षित किया था। किन्तु उन दिनों मैं बाह्य साक्ष्य की ओर अधिक प्रवृत्त था और मैंने उनके वचनों पर विशेष ध्यान न दिया था। हुलसी और गुरु नरसिंह के विषय में तो सब जानते ही हैं। रत्नावली का भी उल्लेख तुलसीदासजी ने रूपान्तर से रामायण में कहीं किया बताया जो मुझे विस्मृत हो गया है। 'रामचरितमानस' की निम्नलिखित पंक्तियों में हुलसी और तारी का जो उल्लेख 'रामचरितमानस' में हुआ है उसका सम्बन्ध गोस्वामीजी की माता और उसके जन्म-स्थान से विस्तारपूर्वक बताया गया—

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥
रा० १ १० ख १२

राम कथा सुन्दर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनि हारी॥
रा० १, ११३ १

पंडित रामनरेश त्रिपाठी और श्री चन्द्रबली पांडे को 'हुलसी' का उक्त उल्लेख संगत प्रतीत नहीं होता। उनका तर्क है कि राम और तुलसी अर्थात् भगवान् विष्णु और वृन्दा का जो सम्बन्ध है वह तुलसीदास और हुलसी का होना चाहिए। साहस्य के आधार पर हुलसी उनको तुलसीदास की माता नहीं समझती। श्री राम किंकर का उत्तर है कि राम-जानकी का जो सम्बन्ध है वह तुलसीदास के लिए पुत्र और माता का है।[1] उन्होंने सीताजी को माता माना है। रामपत्नी तुलसीदास की माता के तुल्य है अतएव तुलसी और हुलसी का सम्बन्ध पुत्र और माता का ही हो सकता है। कर्मसिद्धा और जगज्जननी का उल्लेख करते समय अपना और अपनी पत्नी का उल्लेख करना तो अभारतीय धृष्टता हो सकती थी जो तुलसीदास जैसे विरक्त और कुशल कवि के लिए असम्भव था। तारी का विवेचन अन्यत्र किया गया है।

गुरु नरसिंह—गोस्वामीजी के गुरु नरसिंहजी थे। 'विनय पत्रिका' में इसका मूक उल्लेख है —

श्री हरि गुरुपद कमल भजहु मन तजि अभिमान
जेहि सेवत पाइय हरि सुख निधान भगवान ॥२०६॥

---

१ हुलसी कौन? तुलसी की माता अथवा पत्नी? हिन्दुस्तान १८ अप्रैल १९५४।

'तुलसी सतसई' में भी

रसना-सुत पहिचान बिनु कहहु न कबस भुलान।
जानें कोउ हरि गुरु बिना उदित भये रवि भान ॥४७॥

इसी प्रकार 'रामचरित मानस' में भी—

राम-नाम नर केसरी कनक कसिपु कलि काल ॥१,२७॥
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ॥५,३,१॥

गुरु-नाम का उल्लेख है। अन्तिम उपाहरण की ओर डॉ० सुधाकरराय ने ध्यान आकर्षित किया है[1]। अतएव इन तीनों उद्धरणों से इस धारणा को पुष्टि मिलती है कि तुलसीदासजी के गुरु नरसिंहजी थे जिनको वे स्पष्टतः पहले ही प्रणाम कर चुके थे—

बन्दे गुरु पद कंज। कृपा सिन्धु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर ॥रा० १ ३॥

सूरेवजी विद्यालंकार ने :[2]

बन्दौ गुरु पदाब्जं यो नर रूपः स्वयं हरिः
यद् वाक्य सूर्योदयतः स्तमो नश्यति साम्प्रतम् ॥

इस श्लोक को 'बाबालि संहिता' का बताकर इस अभिप्राय से उपस्थित किया है कि गोस्वामीजी का सोरठा इसी का अनुवाद है, अतएव नरसिंहजी को उनका गुरु मान लेना उचित नहीं। इस आपत्ति पर प्रथम अध्याय में विचार हो चुका है। इसके अतिरिक्त कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने जान-बूझकर बाबालि संहिता का यह वचन ग्रहण कर लिया जिसके द्वारा न केवल गुरु-परिमा की अपितु उनके नाम की भी अभिव्यक्ति होती थी। गोस्वामीजी ने अन्यत्र भी तो गुरुदेव के इस नाम का उल्लेख किया है जैसा कि अभी ऊपर बताया जा चुका है। बचपन में ही तुलसीदासजी उनकी शरण में आ गये थे और उन्होंने इनकी पीठ पर हाथ रखा था

बूझ्यो ज्योंही कहाँ, मैं हूँ चेरो हूँ हौ रावरो जू
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं चरन गहत हौं।
बीजो गुरु पीठि अपनाइ सहि ओलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥वि० ७६,३॥

इन्हीं गुरु से गोस्वामीजी ने रामकथा सूकर-क्षेत्र में बार बार बचपन में तब सुनी थी जब वे उसके माहात्म्य को पूर्णतया समझ नहीं पाते थे :

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥रा० १, ३०॥
तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।

माता का त्याग—गोस्वामीजी का सम्पर्क माता-पिता से सवा वर्ष तक रहा अर्थात् दस मास गर्भ में और दस मास जन्म के पश्चात्। देहली-दीपक-न्याय से यह रहस्य विनय-पत्रिका में इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है—

१ तुलसीदास का विश्लेषण : तुलसीदास का जीवन वृत्त, पृष्ठ ५ पब्लिकेशंज डिवीजन दिल्ली, १९५६ ई।

२. तुलसीदास विरचित अरण्य विकाण्ड काण्डत्रय-भैरव-भैरवस सं २००१ ।

गर्भबास दस मास पालि पितुमातु रूप हित कीन्हों ॥१७२ ९

'गर्भबास दस मास' और 'दस मास पालि' अर्थात् माता-पिता ने गर्भ में दस मास तक वास कराकर और जन्म के पश्चात् दस मास तक पालन-पोषण कर मुझे रूप प्रदान किया।[1] पिछले दस मास का समर्थन अविनाशराय की इन पंक्तियों से होता है। तुलसी और आत्माराम की मृत्यु से पूर्व—

पाव सित इंदु सम बाल बढ़िबे लग्यौ
मास दस बेस सिसु सब्द पढ़िबे पग्यौ ॥३३॥

सनाढ्यत्व—तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका के ११२वें पद में अपना आस्पद 'सुकुल' तो स्पष्ट ही लिखा है और उसी में 'सुन्दर' के द्वारा अपने सनाढ्यत्व की ओर संकेत भी किया है। इसके अतिरिक्त वे अपने सनाढ्यत्व को युक्ति से बताते हुए भगवान् रामचन्द्र के प्रति कहते हैं—

बहुत प्रीति पुजावहिं पर पूजिबे पर बौरि
देत तिल तिलयो न मानत, मुकता अस गोरि ॥वि० १२८॥

सनाढ्य ब्राह्मणों को अपने सनाढ्यत्व पर बड़ा गर्व है। कहते हैं कि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी ने सनाढ्यों का पूजन कर यज्ञान्त में ७०० ग्राम दान में दिये थे जिसका उल्लेख गोस्वामीजी के समकालीन महाकवि केशव ने अपनी कविप्रिया में इस प्रकार किया है

ब्रह्मा जू के चित्त तें प्रगट भये सनकादि
उपजे तिनके चित्त ते सब सनोढिया आदि ॥१॥
परशुराम भूपुर्नद तब जनम चित्र विचारि
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पार्थ पचारि ॥२॥
अब पावन बैकुण्ठ पति रामचन्द्र यह नाम
मथुरा मण्डल में दिये तिन्हें सात सौ ग्राम ॥३॥[1]

यह भी कहा जाता है कि उन ग्रामों के नामों पर सनाढ्यों की अल्लें चल रही हैं। पंडित रामचन्द्र शास्त्री इस विषय में सनाढ्य 'गौरवादर्श' और 'भविष्य पुराण' का भी उल्लेख करते हैं।[2]

गृहत्याग और यात्रा—पत्नी-गृहत्याग के समय तुलसीदासजी की विरक्ति और चित्रकूट-वास की आकांक्षा इस प्रकार व्यक्त है

अब जित चितवत चित्रकूटहिं चलु।
कोपित कलि लोपित मगल मगु चितवत बढ़त मोह माया मलु ॥२४॥

'कोपित कलि' का इंगित कदाचित् पत्नी की ओर है जिसे वे कल्याण मार्ग से हटाने वाली और मोहमायामल को बढ़ाने वाली समझते थे। वे बदरिया से गंगाजी के किनारे किनारे यात्रा में प्रवृत्त हुए

---

१ कविप्रिया दूसरा प्रक्रम ? २, प्रकाशक लाला भगवानदीन गुरुक मेशनल प्रेस अमरूद कॉट १९५२ वि ।

२ तुलसी समाधान, पृष्ठ १६।

तुलसी तब तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥वि० १७॥

'मोह महिष कालिका' का प्रयोग कितना सार्थक है। वे गंगाजी के किनारे-किनारे घूमते घूमते प्रयाग होते हुए सब-सोच-बिमोचन चित्रकूट (वि० २३) पहुँचे थे।

हनुमद्दर्शन—गोस्वामीजी सात्त्विक जीवन-व्यतीत करते थे। उनके हृदय में राम-दर्शन की कामना का उदय हुआ। कहते हैं एक पेड़ पर से ध्वनि आयी कि राम के प्रति अनुराग बढ़ाओ—

समुझि समुझि पुन पाम राम के कर अनुराग बढ़ाउ
तुलसिदास अनयास रामपद पाइ है प्रेम पसाउ ॥वि० १००॥

तुलसी ने पूछा 'और ?' उत्तर मिला 'हनुमान्‌जी के द्वारा।' फिर पूछा 'पहचान ?' उत्तर मिला 'रामकथा सुनते समय जिसके अश्रुपात बहने लगें और शरीर रोमांचित हो जायँ'

यत्र-यत्र रघुनाथ-कीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकांजलिम्
बाष्पवारि-परिपूर्ण-लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

लोकश्रुति चलती है कि तुलसीदासजी ने एक दिन किसी व्यक्ति को रामकथा श्रवण करते समय अत्यन्त रोमांचित तथा अश्रुयुक्त देखा और उन्हें ऐसा लगा कि वे भगवान् राम के अवतार हनुमान्‌जी हैं। अतएव उन्होंने हनुमान्‌जी की शरण चाही।

जयति रामायण श्रवण सजात रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी
राम पद पदम मकरंद मधुकर पाहि दास तुलसी सरन सुख पानी ॥वि० २९

गोस्वामीजी ने हनुमान्‌जी के चरण पकड़ लिये। हनुमान्‌जी ने पैर छुड़ाने चाहे पर गोस्वामीजी की अपत्ति अटल रही

आपसे कछु सौंपिये मोहि जा पै अतिहि चिनात
दास तुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ॥वि० २१७॥

हनुमान्‌जी अंततः प्रसन्न हुए और तुलसी ने राम-दर्शन का वर माँगा—

कबहिं देखाइहौ हरि चरन
समन सकल कलिमल सकल मंगल करन ॥वि० २१८॥

वर साधारण न था। हनुमान्‌जी ने टालना चाहा पर तुलसीदास जी अड़ ही गये।

कृपा सिंधु सुजान रघुबर प्रनत आरति हरन
बरत आत बिषाद तुलसीदास चाहत सरन ॥ वि० २१८॥

और हनुमान्‌जी को उनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी।

रामदर्शन—जनश्रुति है कि हनुमान्‌जी ने चित्रकूट में रामघाट पर राम दर्शन के समय, गोस्वामीजी को सचेत करने के निमित्त तोते का रूप धारण कर यह दोहा मौनी अमावास्या को १६०७ वि० में बोला था—

चित्रकूट के घाट पै भई संतन की भीर
तुलसिदास चंदन घिसैं तिलक देत रघुबीर ॥[1]

---

१ रामचरित मानस संक्षिप्त जीवनी पृष्ठ २२, (अखण्डानन्द सरस्वती) मैसर्स देव ३ क।

इससे स्पष्ट है कि रामचन्द्रजी ने अपने भक्त तुलसीदास के चन्दन लगाया था। उस समय तुलसीदासजी को पूज्य-पूजक का असमंजस और संकोचानन्द उत्पन्न हुआ। तुलसी तो समाद्य होने के कारण राम के पूज्य थे और राम थे तुलसी के आराध्य देव। अतएव रामदर्शन के समय तुलसी को संकोच हुआ और आनन्द भी, इसी से उन्होंने कहा—

कैसे देउँ नाथहि खोरि।
काम लोलुप भगत मन हरि भगति परिहरि तोरि।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिसयो न मानत, मूढ़ता अति मोरि।।वि० १२८।।

रामदर्शन पाकर तुलसी कृतज्ञ हुए और बोले—

जाके बल ही हनुमान की।
ताकी पैजि पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की।। वि० ३ ।।

अयोध्यागमन—लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी १६३१ वि० के आरम्भ में अयोध्या पहुँच गये थे और वहाँ मन्दिर में भगवान् राम को साष्टांग प्रणाम कर उन्होंने यह प्रार्थना की—

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगं सीता समारोपित वाम भागम्।
पाणौ महा सायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम्।। रा० २ ३

वे प्रयाग सीतावट, दण्डकारण्य, कुरुक्षेत्र चित्रकूट आदि अनेक नगर वन पर्वतों में पर्यटन कर चुके थे और अयोध्या देर से पहुँचे अतएव उन्होंने क्षमा याचना भी की—

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्यो हौं
तुम चहुँ पुम रस एक राम, हौं रावरी जदपि अब अघमूलनि भर्यो हौं
बीज पाइ जहि नीच बाँच ही उरनि दर्यो हौं
हौं पुकरन पुकरन कियो नृपहूँ भिखारि करि कुमति तें कुमति कर्यो हौं
अमनिख बिरि कानन लियों बिनु आगि जर्यो हौं
चित्रकूट गये हौं लखि कलि की कुचालि सब अब अपडरनि डर्यो हौं
नाम नाइ माथ सों कहौं हाथ जोरि अर्यो हौं
बीचहीं ओर जिय मारि है तुलसी सो कथा सुनि प्रभु से पुकरि निबर्यो हौं
।। वि० २६५।।

काशी-वास—तुलसीदासजी स्मार्त थे और शिवजी की भी पूजा करते थे अतएव उन्होंने साम्प्रदायिक संकट उपस्थित होने पर काशी में विश्वनाथ शंकर की प्रार्थना की क्योंकि

जिन कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल तिन की गति काशीपति कृपाल।
बिसालभवन बिरिंचुता रमन कहु तुलसिदास जय त्राहि त्रमन ।। वि० १३

अतएव अन्त समय तक काशी रहने का निश्चय भी किया—

सेइय सहित सनेह देह भरि काम धेनु कलि कासी।। वि० २२।।

इस निश्चय के अनुसार उन्होंने असी घाट पर एक गुफा में जप और निवास के लिए

प्रबन्ध किया। उनका दूसरा स्थान मुकुन्दरायजी के बाग के दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोने में स्थित है जो तुलसीदासजी की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोठरी केवल चालक मुक्ता सप्तमी को खुलती है। अस्सी पर उन्होंने हनुमान्‌जी का जो मन्दिर बनवाया था उस पर सिद्ध बीसा यन्त्र उत्कीर्ण है। उन्होंने उससे थोड़ी दूर पर संकटमोचन हनुमान्‌जी का दूसरा मन्दिर बनवाया[1] और काशी में कुछ रचना भी की।

चोर-वार्ता—काशी में भी गोस्वामीजी को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया गया। कुछ लोगों ने 'रामचरित मानस' को चुरवाकर नष्ट कर देने का विचार किया। इस दुष्कृत्य के लिए, कहा जाता है चोरों को पुरस्कार भी देने का वचन दिया गया था। पर जब रात्रि में चोर कुटी पर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने धनुर्धारी पहरेदार को देखा। उसे देख चोर भाग गये और उन्होंने तथा और लोगों ने भी गोस्वामीजी से क्षमा प्रार्थना की। इस घटना का उल्लेख गोस्वामी ने इस प्रकार किया है—

समाचार साँच के अनायनाथ कासों कहौं
नाथ ही के हाथ सब चौरऊ पहुद
निज काज सुरकाज भारत के काज, राज
बूझिये बिलंब कहा कहौं न सहुद ॥ वि० २१०

बन्धन—इस घटना के कारण गोस्वामीजी की ख्याति बढ़ी। कोई उन्हें भक्त कहता तो कोई योगी कोई सिद्ध तो कोई तान्त्रिक। यह समाचार जब कोतवाल[2] को विदित हुआ तो उसे भी चमत्कार देखने की अभिलाषा हुई, अतएव तुलसीदास जी को बुला भेजा गया। पर तुलसीदासजी ने नम्रतापूर्वक कहा कि "मैं तो राम राम जपता हूँ मेरे पास कोई चमत्कार नहीं"। इस उत्तर से कोतवाल अप्रसन्न हुआ और उसने तुलसीदासजी को हवालात में डाल दिया। वहाँ दुःखी हो उन्होंने हनुमान्‌जी का स्मरण किया। स्मरण करते ही हनुमत्कृपा से चारों ओर बन्दर ही बन्दर छा गये और सब का काम-काज तथा घूमना-फिरना बन्द हो गया। कोतवाल भी गोस्वामीजी को मुक्त करने और क्षमा माँगने के लिए बाध्य हो गया। तुलसीदास जी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

कटु कहिये याहे परें मुनु तनुज तुलाई
करहिं अनमसेज को भलो आपनी भलाई

× ×

चूक अपनपो मेरियै तू बड़ी बड़ाई
होत खरद डीठ हौं अति नीच निचाई
बंदि छोरि बिरदावली निगमागम गाई
सीको तुलसीदास को तेरि ये निकाई ॥ वि० ३२

---

१. तुलसी सम्प्रदाय पृष्ठ २२ २३।

२. कुछ लेखक कोतवाल के स्थान पर अकबर बादशाह अथवा शाहजहाँ का उल्लेख करते हैं किंतु शाहजहाँ की कल्पना असंगत है क्योंकि वे तुलसीजी की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे।

व्रजयात्रा—कहते हैं कि गोस्वामीजी एक बार आषाढ़ मास में नन्ददासजी से मिलने मथुरा पहुँचे। यमुना में बाढ़ आयी हुई थी, अतएव उन्होंने निम्नलिखित पद गाकर उसके दर्शन किये

जमुना ज्यों ज्यों आवति बाढ़न
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहु काढ़न
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमपन मुख मलीन लहै आढ़न
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अलघ मेघ लगे डाढ़न ॥ वि० २१

राम की जयशीलता—व्रज में भी कृष्ण के कुछ उपासकों ने तुलसीदासजी से पूछा कि आप भगवान् राम को क्यों भजते हैं, वे तो भगवान् विष्णु की बारह कलाओं के ही अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण को भजें जो सोलह कलाओं के पूर्णावतार हैं। इस पर तुलसीदासजी ने विनोदपूर्वक उत्तर दिया कि मैं तो दशरथ-नन्दन राम की पूजा किया करता था अच्छा हुआ आपने बता दिया कि वे अवतार भी हैं और उन्होंने यह दोहा कहा —

जो जगदीस तो अति भली जो महीस तो भाग
जनम जनम तुलसी चहत राम-चरन अनुराग ॥तु० स० ७, १२४

इष्टदेव के प्रति अनन्य भक्ति—तुलसीदास जी गृह-बन्धन से मुक्त थे और नन्ददासजी भी विरक्त से हो व्रज में रहने लगे थे। दोनों भाइयों में परस्पर प्रेम था वे साथ रहना चाहते थे। परन्तु इधर तो नन्ददासजी व्रज को छोड़ कहीं जाना नहीं चाहते थे और उधर तुलसीदासजी मरण-पर्यन्त काशीवास का व्रत ले चुके थे। कहते हैं कि तुलसीदासजी उषा काल में एक पद गाने लगे और नन्ददासजी लेटे-लेटे ही उसे सुनते रहे। 'सीस ईस ही मैं हौं' उसके ये शब्द उन्हें खटके। उनके मन में यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि भाईजी को राम-रूप में भगवान् कृष्ण के दर्शन कराऊँ। अतएव प्रातःकाल के दोनों गोवर्द्धन नाथ जी के मन्दिर में दर्शन करने गये। जब देखा कि तुलसी-मस्तक नहीं झुका तो नन्ददासजी ने एक दोहा बोला। तुरन्त भगवान् कृष्ण के दर्शन राम रूप में होने लगे। दोनों भाइयों और सभी दर्शकों ने सम्मिलित कीर्तन किया —

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

इस घटना की चर्चा से व्रज मण्डल गूंज उठा।[1] गोस्वामीजी ने उषा काल में विनयपत्रिका का यह पद गाया था—

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीयपद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं।
उपजो उर प्रतीति सपनेहु सुख प्रभु पद बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन्ह इहै सिखावन दैहौं।
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।

---

१ तुलसी समाचार पृष्ठ ६६ ६७।

रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही मैं हौं।
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो-नेह बहैं हौं।
यह घर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहै हौं ॥वि० १०४॥

गोकुल दर्शन—दूसरे दिन दोनों भाइयों ने गोकुल जाकर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। तुलसीदासजी ने यह पद गाया जिसमें भगवान् का गुण-गान है और वल्लभाचार्य जी के लिए आदर-ध्वनि भी है—

गोपाल गोकुल वल्लभो प्रिय गोप गोकुल वल्लभम्
चरणारविन्द भजे भजनीय सुर मुनि दुर्लभम्
× × ×
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननम्
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार वृन्दाकाननम् ॥ कृ० गी० २३

गोकुल से चलकर वे नन्दग्राम होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ नाभा जी से उनकी भेंट हुई और नाभा जी ने अलग-अलग कागज पर प्रशस्ति के छप्पय तुलसीदासजी और नन्ददास जी को भेंट किये जो अब भक्तमाल में सम्मिलित हैं।

एक साधु को फटकार—एक बार एक साधु अलख अलख कहता हुआ गोस्वामीजी से भिक्षा माँगने आया और कहने लगा कि बाबा अलख-अलख कहो'। गोस्वामी जी ने उसकी बात पर कोई ध्यान न दिया तो वह गालियाँ देने लगा। इस पर उन्होंने झुँझला कर निम्नलिखित दोहा कहा :—

हम लखि लखहिं हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखहिं राम नाम जपु नीच ॥ दो० १६

यह सुन कर साधु लज्जित हो उनके चरणों में गिर पड़ा। तुलसी सतसई में यह घटना इस प्रकार व्यक्त की गयी है

अलख कहहिं देखन चहहिं ऐसो परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेस हौं अलि बुध अलख मलीन ॥ ४ ४६

पत्रोत्तर—तदनन्तर जब वे मथुरा आये तो कृष्णदासजी ने अपने साढ़ू को प्रणाम किया रत्नावली का पत्र दिया रामपुर लौट चलने का आग्रह किया और 'रामचरित मानस' की प्रति माँगी। तुलसीदासजी ने कहा कि प्रति काशी से लिखाकर भेज दूँगा। कृष्णदास जी केवल चार दिन के लिये आये थे अतः वे घर लौट गये। नन्ददासजी ने भी एक दिन को सूकरक्षेत्र चलने के लिए आग्रह किया परन्तु तुलसीदासजी विरक्त हो जाने के कारण जन्म भूमि लौटने के लिए असहमत रहे और रत्नावली के पत्र का उत्तर नन्ददास को सौंप काशी लौट गये। पत्र में लिखा था

जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितनि भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहु तक कहौं कहाँ लौं ॥

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥ वि० १७४[1]

कुछ लोग उक्त पद को मीराबाई के निम्नलिखित पद का उत्तर समझते हैं[2]

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं।
बारहिबार प्रनाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हम को कहा उचित करि सो हैं सो लिखिए समझाई ॥

मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। प्रथम तो मीराबाई गोस्वामीजी के समय में विद्यमान थीं और जैसा कि डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं मीरा की मृत्यु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कथनानुसार संवत् १५२० से संवत् १५३ तक मानना उचित है। बृहद् काव्य दोहन[3] में भी यह बात मानी गई है।[4] द्वितीयतः जनश्रुति को अकारण अविश्वसनीय क्यों माना जाय? तीसरा कारण और है। इस घटना के समय तुलसीदासजी को कुछ-न्यूनाधिक समय २४ वर्ष हो चुके थे। रत्नावली की उक्ति तब चाहे जितनी कटु रही हो तुलसीदास जैसे कोमल-प्रकृति पुरुष का क्रोध कभी का शान्त हो चुका होगा। अतएव रत्नावली के पत्र का उत्तर इतना कठोर न दिया गया होगा। वह रामचरित के विरुद्ध भी न थी। अतएव उसकी निम्नलिखित उक्ति इस विषय में प्रमाण समझनी चाहिए—

मोहि बीनो संदेश पिय अनुज नगर के हाय
रतन सपुरि अलि पुरुक मोहि सो सुमिरति रघुनाथ ॥ २०

प्रश्न पर 'सही'—तुलसीदासजी की रचना विरोधियों को न सुहायी। उन्होंने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि गोस्वामी जी के लिखे भाव सत्य नहीं हैं। अतएव वहाँ गोस्वामीजी ने भगवान् विश्वनाथ को अपनी रचना सुनायी। रात को पुस्तक मन्दिर में रख दी गयी। प्रातः जब पट खोला गया तो उस पर भगवान् की 'सही' पड़ी थी।[5] तुलसीदासजी की विनय है

भारति-मन दीन्ह भरत की लखि लखन कही है।
कलि कान्हु नाथ नामतो परतीति प्रीति एक किंकर को निबही है।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है। वि० २७६

---

१ तुलसी समाचार पृ० ३१ और मानसीदास हरि गोसाईं चरित।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल कृत, पृष्ठ १८४ १८५।
३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तृतीय संस्करण पृष्ठ ५८१।
४ दोहावलीकी।
५ रामचरित मानस, पृष्ठ २१ (मूल गोस्वामी) बीना प्रेस सं० २ ०८।

यह 'सही' कहाँ पड़ी 'रामचरितमानस' पर अथवा 'विनय पत्रिका' पर ? मेरे विचार से यह पुस्तक 'रामचरितमानस' होनी चाहिए जैसा कि नन्ददास की तथाकथित तुलसी-प्रशस्ति में इसका उल्लेख है। 'रामचरित मानस' ही तो तुलसी-हृदयों की प्रखरता था। यह ठीक है कि तुलसीदासजी 'विनय पत्रिका' के द्वारा 'सही' चाहते थे

विनय पत्रिका दीन की बापु आपुही बाँची
हियें हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँची
(वि० २७७)

पर विनय-पत्रिका किस निमित्त थी ? रामचरित मानस' के प्रामाण्य के निमित्त ही तो अतएव रामचरित मानस' पर सही पड़ जाने से 'विनय-पत्रिका' अर्थात् अर्जी स्वीकृत हो गयी।

रामचरित मानस का पाठान्तर तथा गोस्वामी तुलसीदास का हस्तलेख

(क) पाठान्तर

पाठभेद के रूप—कुछ साहित्यिकों की ऐसी धारणा है कि 'रामचरितमानस' में क्षेपकों का बाहुल्य है। यह धारणा पूर्णतया सत्य नहीं है यद्यपि यह सत्य है कि रामाश्वमेध या लवकुशकाण्ड नाम का अष्टम सोपान रामचरितमानस के किन्हीं-किन्हीं संस्करणों में जोड़ दिया गया है और उनमें इस बात का निर्देश नहीं किया गया कि यह अष्टम सोपान गोस्वामीजी की रचना नहीं है। अन्य सातों सोपानों में भी पाठान्तर बाहुल्य है। पाठान्तर का रूप है वर्तनी-भेद शब्द-परिवर्तन अर्द्धालियों में घटा-बढ़ी और चौपाइयों में न्यूनाधिकता।[1] कुछ वर्णन किसी प्रति में है, किसी में नहीं।

कतिपय उदाहरण—संवत् १९६० के लगभग श्री हरिप्रसाद मधीरच ने[2] रामचरितमानस का सटीक संस्करण प्रकाशित किया जिसके चालीसवें पृष्ठ पर सूकर खेत के स्थान पर कुरुक्षेत्र पाठ इस प्रकार दिया गया है

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सकल कुरुखेत

यद्यपि सुमेरवासी पण्डित श्री रघुवंश ने इस संस्करण के आरम्भ में जो श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' दिया है उसके तेईसवें पृष्ठ पर यह पाठ उद्धृत किया जा चुका था 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत।' श्री रामनरेश त्रिपाठी बताते हैं कि मुंशी सुकदेवलाल और श्री विजयानन्द त्रिपाठी 'कृपासिन्धु नर रूप हरि' में 'हरि' के स्थान पर 'हर' मानते हैं यद्यपि सभी प्राचीन प्रतियों में 'हरि' पाठ है और यदि माधवकुंज के 'बालकाण्ड' में आठवें पृष्ठ पर 'बीग बरम ध्वज चंचक धोरी' और बारहवें पर 'बंदौ नाम राम रघुवर को' है तो वर्तमान प्रचलित प्रतियों में 'बिग बरम ध्वज चंचक धोरी' और 'बंदौं राम नाम रघुवर को' पाठ मिलते हैं।[3] उक्त प्रकार के अनेक पाठान्तरों की ओर त्रिपाठीजी ने ध्यान आकर्षित किया है। तापस प्रकरण भी किन्हीं प्रतियों में है, किन्हीं में नहीं।

विकृत रूप—मानस-पाठ के विषय में रामदासजी पीड़ लिखते हैं "बहुधा प्राकृत के नियमों से अनभिज्ञ सज्जन उन शब्दों के अशुद्ध या तोड़े-मरोड़े होने का भी दोष लगाते हैं जो वस्तुतः एक देशीय या स्थानीय हैं। इतना ही नहीं आए दिन ऐसी से पण्डितों द्वारा खोजी हुई जो तुलसी-कृत रामायण निकला करती हैं उन्हें अरसिक अज्ञ जनता अधिक पसन्द करती है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पं० रामेश्वर

---

१ पद्मा बनपुरी के मुं सुकदेवलाल के संस्करण में रामरूप परिवर्तन (मिश्रबन्धु सम्पा. पृ० १८८)

२ कल्याणदेवी शेठ, रामवाड़ी, मुम्बई।

३ तुलसीदास और उनका काव्य पृ० १६५।

भट्ट आदि ने तो खोज कर उसका रूप ही बदल दिया। गोसाईंजी की रचना को लोगों ने यहाँ तक अपनाया कि घटाने या बढ़ाने में, संशोधन या परिवर्तन में, किसी बात में तनिक भी संकोच नहीं किया। इससे जनता इतनी भ्रम में पड़ गई कि आज शुद्ध पाठ का मिलना दुष्कर है तो उच्च श्रेणी के हिन्दी प्रेमियों में ही।" ऐसे संस्करण भी निकले हैं कि "यदि गोड़जी के शब्दों में "आज गोस्वामीजी की मुक्तात्मा देखे तो पहचान न सके कि यह हमारी ही रचना है।" गोड़जी के ये उद्गार सर्वथा समीचीन हैं।

शुद्ध पाठ—'मानस' का शुद्ध पाठ उपस्थित करने का सर्वप्रथम प्रयास[1] बहुत दिनों प्रेस के अध्यक्ष बा० रामदीनसिंह का है। उन्होंने अपने प्रेस से 'रामचरित मानस' का नुस्खा प्रकाशित किया जिसमें बालकाण्ड का पाठ आवश्यकुंज अयोध्या-वाली १६६१ वि० की प्रति के और अयोध्याकाण्ड का पाठ राजापुर वाली अयोध्याकाण्ड की प्रति के अनुसार है। इसी प्रकार अन्य काण्ड काशीराज की प्रति के तथा अन्य प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के अनुसार हैं। रायबहादुर लाला सीताराम ने भी राजापुर की प्रति के अनुसार अयोध्याकाण्ड का पाठ उपस्थित किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अधिक से अधिक शुद्ध संस्करण निकाला। हाँ उसमें समास और विराम चिह्न सुविधा के लिए लगा दिये गये हैं। मानस-मराल संपूर्णानन्द जी ने निष्काम अध्यवसाय और अनवरत परिश्रम से 'रामचरितमानस' का एक संस्करण[2] उपस्थित किया जिसके आधार हैं अवधकुंज वाली १६६१ वि० की प्रति राजापुर वाली प्रति सं० १७१० वाली सम्पूर्ण प्रति जो इस समय काशी-नरेश के सरस्वती भंडार में है १७२१ की प्रति जो भारत कलाभवन में है, १७६२ की सम्पूर्ण प्रति तथा मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी श्री रामकुलामणी के शिष्य हक्कन लालजी की प्रति की प्रतिलिपि जिसे म० म० सुधाकर द्विवेदी के पिता ने उपस्थित किया था। १७६२ की प्रति को चौबेजी ने खोज निकाला था और उन्हीं की कृपा से अब वह भारत-कला भवन में सुरक्षित है। चौबेजी ने उक्त छः प्रतियों को आधार मान कर, पाठभेद का निर्देश पाद-टिप्पणियों के द्वारा किया है। उन्होंने गोड़जी की प्रेरणा से अपने विचार नागरी प्रचारिणी-पत्रिका में भी प्रकट किये थे। इस पत्रिका के पौष सं० १९९८ के विक्रमांक में 'मानस' के उन अंशों का निर्देश है जिन्हें आपने प्रक्षिप्त समझा है। खेद है कि चौबेजी के संस्करण में भी पाठभेद छूट गए हैं यथा पृष्ठ २७६ पर

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी

इस अर्द्धाली का पाठान्तर इस प्रकार है जिसका उल्लेख चौबेजी ने नहीं किया है

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी

तथापि चौबेजी का परिश्रम हमारे लिए गर्व की बात है। गीताप्रेस गोरखपुर ने 'रामचरितमानस' का सपाठभेद संस्करण छपा है और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी तथाकथित वैज्ञानिक शैली पर शुद्ध पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।[3]

सौरों-प्रति १६४३ वि० की—सत्य-शोधकों की जानकारी के लिए 'राम

---

१ वही, पृ० १३०।
२. रामचरितमानस (सानुवाद मूल) नागरी प्रचारिणी सभा काशी, २००५ वि०।
३ रामचरित मानस का पाठ, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इ० प्र० २० ५।

चरितमानस के उन खण्डित बाल और अरण्य काण्डों का प्रकाशन वाञ्छनीय है जो सोरों में पं० गोविंद वल्लभ शास्त्री के संग्रह में हैं। ये खण्ड 'रामचरितमानस' की उन प्रतियों के हैं जिन्हें गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चचेरे भाई महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास के लिए अपने शिष्यों से काशी में १६४३ वि० में नकल करा कर प्रदान किया था।[1] भविष्य में यह १६४३ वि० की प्रति के नाम से अभिहित होगी। इन खण्डित काण्डों का ध्यानपूर्वक पारायण करने एवं उनके पाठ को अन्य कतिपय छपे और तथाकथित शुद्ध संस्करणों से मिलाने के पश्चात् मेरी धारणाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं —

१ यों तो पाठान्तर सभी काण्डों में दृष्टिगोचर है किन्तु 'अरण्य काण्ड' में वह सब से अधिक है। १६४३ वि० वाला 'अरण्य काण्ड' खण्डित होता हुआ भी बहुत कुछ नवीन प्रकाश डालता है। मैं चाहता था कि पाठान्तर के स्थलों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँ किन्तु इसमें बहुत समय और स्थान की अपेक्षा है। अतएव मैं १६४३ के 'अरण्य काण्ड' और 'बाल काण्ड' की प्रतिलिपियाँ परिशिष्ट में उपस्थित कर रहा हूँ।

२ सोरों की और काशिराज की प्रतियों के 'अरण्य' और 'बाल काण्डों' में यद्यपि पाठान्तर विद्यमान हैं तथापि अन्य प्रतियों की अपेक्षा उनमें सामंजस्य कहीं अधिक है।

३ काशिराज की प्रति का पाठ अधिक प्रशस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने स्वयं अथवा विद्वानों की प्रेरणा से कभी-कभी कहीं-कहीं, थोड़ी बहुत पाठ-वृद्धि की है और काट-छाँट भी। यह बड़ी स्वाभाविक बात थी। गोस्वामी जी को क्या पता था कि बीसवीं शताब्दी के कुछ लोग उनकी ही रचना में क्षेपकों की कल्पित गंध का अनुभव करने लगेंगे? प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने कई बार अपनी कृति का संशोधन किया और भक्त-जन समय-समय पर अपने लिए उसकी नकलें करते रहे। अतः पाठान्तरों का भी प्रचार होता रहा। विद्वान् लेखकों को ज्ञात होगा कि उनकी निजी कृतियों में कितना परिवर्तन प्रायः होता रहता है कभी-कभी तो कृति मूल रूप से कई गुनी हो जाती है।

४ 'रामचरितमानस' के मूल संस्करण में ठेठ ब्रजभाषा और ब्रजावधी भाषा के रूपों का बाहुल्य था। उदाहरणतः १६४३ की प्रति में बयौ करौं, बंदौं आदि वर्तनी उपलब्ध होती है राजापुर के अयोध्याकाण्ड में और भावकुंज के बालकाण्ड में भी ऐसी वर्तनी दृष्टिगोचर होती है किन्तु कुछ छपे संस्करणों में भयउँ बन्दउँ करउँ आदि रूप विद्यमान हैं। पं० रामजसन (१८६६ ई०) बैजनाथजी कुर्मी (१८९० ई०) तथा जानकीदासजी (१८८५ ई०) ने मानस के अपने संस्करणों में बंदौं करौं कहीं आदि वर्तनी-रूप दिये हैं। क्या अच्छा हो कि 'रामचरितमानस' के सभी प्राचीन संस्करणों के दर्शन विद्वानों के लिए फोटो-रील में उपलब्ध हो जायँ। मेरा अनुमान है कि 'रामचरितमानस' में अवधी भाषा ब्रजी का स्थान थोड़ा-थोड़ा

---

१ 'रामचरित मानस' की दो प्रतियों में से कदाचित् एक प्रति कृष्णदासजी के लिए और दूसरी रत्नावली के लिए थी।

करके छीनती रही है। या तो गोस्वामीजी का प्रेम अवधी की ओर बढ़ता गया अथवा उनको अवधी का अभ्यास बढ़ता गया अथवा अन्य विद्वानों की प्रेरणा से गोस्वामीजी ने अवधी रूप को अपनाया अथवा उनके पश्चात् लोगों ने अपनी प्रतियों में भाषा को अवधी रूप देने का प्रयत्न किया हो। वास्तविकता क्या है, इसका कुछ न कुछ आभास मिल तो सकता है, किन्तु तब जब सभी विद्यमान प्राचीन प्रतियों के ऐसे सच्चे संस्करण उपलब्ध हों जिनके पाठ और वर्तनी में बाल-बाल अन्तर न हो। मेरी ऐसी विनम्र धारणा है कि 'रामचरितमानस' के प्रारम्भिक संस्करणों में मुख्यतया ब्रजभाषा और ब्रजावधी के रूप थे।

(ख) गोस्वामीजी का हस्तलेख

तुलसीदासजी के हस्तलेख के छः नमूने विचार जगत् में प्रचलित हैं यथा

(१) आवणकुंज की प्रति—'रामचरितमानस' के बालकाण्ड की वह प्रति है जो अयोध्या के आवणकुंज नामक मन्दिर में है, और जिसके विषय में कहा जाता है कि गोस्वामीजी ने स्वयं इसे शोधा था। डॉ० माताप्रसाद का कथन है कि इसका लिपि-काल १६६१ वि० दिया हुआ है पर वास्तव में यह १६६१ वि० होना चाहिए,[1] यद्यपि पुष्पिका के तिथि-वार-मास शुद्ध उतरते हैं। मेरी विनीत सम्मति में कल्पना की अपेक्षा जनश्रुति का सम्मान अधिक करना चाहिए। उक्त प्रति के हाशिये पर जो संशोधन हैं उनके विषय में श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं: 'इसमें तो सन्देह नहीं कि यह प्रति इस समय तक प्राप्त प्रतियों में सब से प्राचीन है। पर उसके तुलसीदास द्वारा संशोधित होने में मुझे सन्देह है जब तक यह न स्वीकार कर लिया जाय कि तुलसीदास संशोधन करने में काफ़ी लापरवाही करते थे या वे स्वयं अशुद्ध लिखते रहे हों। पर ऐसे उद्भट विद्वान् और महाकवि के लिए ये दोनों संकाएँ व्यर्थ हैं।'[2] त्रिपाठीजी ने अपनी धारणा की पुष्टि में विन्न कलम और कहीं-कहीं आवश्यक शब्द और चौपाई आदि की छूट और व्यतिक्रम की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनका उल्लेख यहाँ अभीष्ट नहीं। पर धारणा बना लेने से पूर्व यह विचार लेना अच्छा होगा कि महापुरुषों के पास प्रायः समयाभाव रहता है और वे अपने अन्तेवासियों को भी कार्य सौंप दिया करते हैं।

(२) वाल्मीकि रामायण—१६४१ की वाल्मीकि रामायण की प्रति गोस्वामी जी के हाथ की लिखी बताई जाती है। उसकी पुष्पिका से विदित होता है कि किसी तुलसीदास ने सुसम्पन्न दत्तात्रेय नामक व्यक्ति के लिए उसकी नकल की थी। किन्तु यह बात कल्पना-गम्य नहीं कि गोस्वामीजी 'रामचरितमानस' के कारण लब्ध प्रतिष्ठ और सर्वमान्य हो जाने पर भी दूसरों के लिए लिपिकर्म करते होंगे। वास्तव में गोस्वामीजी के समय में तुलसीदास नाम के एक अन्य सज्जन थे जो लिपि-कर्म करते थे और वे जाति कायस्थ थे। इन्होंने 'वीरमानुदय' काव्य की नकल की थी। जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है: 'पूर्वमिदं श्री वीरमानुदय काव्यम् ॥ शुभ ॥ संवत् १६४८

१ तुलसीदास, पृ० १६२।
२. तुलसीदास और उनका काव्य पृ० १३६।

समये अगहन शुक्लपक्ष द्वितीया सोमवासरे लिखितमिदं कायस्थ तुलसिदासेन कृष्णदास पुत्र ... नाद काशिवासी विश्वेश्वर संनिधे।" इसका उल्लेख हीरानन्द शास्त्रीजी ने १९२२ ई० में मिनोइर्स ऑव दि आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इंडिया (संख्या २१) में किया है।

(३) राजापुर का 'अयोध्याकाण्ड'—राजापुर के 'अयोध्याकाण्ड' को गोस्वामी जी के हाथ का लिखा बताया जाता है। इसकी लिखावट उक्त 'वाल्मीकि रामायण' की लिखावट से नहीं मिलती। श्री रामनरेश त्रिपाठी को इसमें कई स्थानों पर ऐसी त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं 'जिनके आधार पर यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि यह न तो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई है, और न तुलसीदास ने उसे कभी पढ़ा ही होगा'।[1] इस कथन की पुष्टि में त्रिपाठी जी ने अनेक शब्द और चौपाइयों की भूल-चूक के उदाहरण दिये हैं और अनुमान किया है कि यदि गोस्वामी जी उसे देख भी लेते तो उन्हें चौपाई की कमी अवश्य खटकती। परन्तु मेरी विनीत सम्मति में ऐसी धारणा को अन्तिमता न देनी चाहिए, क्योंकि जैसा कि कहा जा चुका है, गोस्वामी जी महापुरुष थे उनका कार्यक्रम अविचिन्त्य ही रहता होगा, समय की कमी भी रहती होगी और अपनी पोथियों को शोधवाने वालों की न्यूनता भी न रहती होगी। आजकल के महापुरुष भले ही अपने ऑटोग्राफ का मूल्य ले लें पर गोस्वामी जी को तो न जाने कितने ऐसे संशोधन करने पड़ते होंगे। अतएव राजापुर और अयोध्यावाली प्रतियों के संशोधन के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय को स्थगित रखना समुचित प्रतीत होता है। डॉ त्रिपाठी जी ने एक महत्त्वपूर्ण जनश्रुति तथा 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दोस्तान' में दिये हुए कतिपय फोटोचित्रों और पुष्पिकाओं तथा रायबहादुर लाला सीताराम के उस लेख की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो कभी माधुरी में छपा था। इसका सारांश यह है कि राजपुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं। इस प्रति में प्रत्येक काण्ड के अंत में लेखक का नाम दिया हुआ है कहीं रघु तिवारी और कहीं रघुतीवारी'। कुछ हो पुरानी होने के नाते प्रति महत्त्वपूर्ण है।

(४) रामगीतावली—डॉ० माताप्रसाद गुप्त १९६६ की 'रामगीतावली' की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख करते हैं जो रामनगर (बनारस) के किन्हीं चौधरी छुन्नी सिंह के पास है। इस पर जो संशोधन है वह तुलसीदासजी के हाथ का बताया जाता है। प्रति तो किसी भगवान् ब्राह्मण की लिखी है जैसा कि पुष्पिका से प्रकट है। चौधरी साहब के मतानुसार पंचायत नामे के और इस पुस्तक के संशोधन-लेखों में साम्य है।

(५) पंचायतनामा—१६६९ वि० का लिखा पंचायतनामा है। गोस्वामीजी के एक मित्र टोडर नाम के थे उनके उत्तराधिकारियों में जायदाद का बटवारा टोडर की मृत्यु के पश्चात् हुआ यह पंचायतनामा अब काशिराज के निजी संग्रह में है। इसकी केवल छः पंक्तियाँ तुलसीदास जी की लिखी कही जाती हैं। इसकी प्राप्ति का स्थान विश्वसनीय समझा जाता है और लिपि भी पचना से शुद्ध है।

---

१ वही, पृष्ठ १६६।

(६) सोरों का अरण्यकाण्ड १६४३ वि०—यह है १६४३ वि० की प्रति पर संशोधन। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की जो प्रति संवत् १६४३ में अपने शिष्यों के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास के लिए नकल करायी थी। उसे उन्होंने स्वयं शोधा है ऐसा अनुमान है, यद्यपि अक्सर कभी-कभी शिष्योंके लिखने से और गोस्वामीजी के शोधने से, रह गये हैं। ग्रन्थकारकी दृष्टिसे ऐसी छूट आशान्वित अवधान (एक्सपेक्टेंट अटेंशन) के कारण बहुत सम्भव है यदि कोई दूसरा यह कार्य करे तो भूल-चूक की सम्भावना अपेक्षाकृत कम (अथवा नहीं) होती है। 'अरण्य काण्ड' में एक स्थल पर अर्द्धाली 'अहै सदा अब लग यन अधिका' लिखने से रह गयी थी जिसे गोस्वामी जी ने स्वयं पूरा कर दिया है। लिखावट की शैली पंचनामे की शैली से बहुत मिलती है। दोष दर्शियों के लिये तो 'पंचनामे' की लिपि में भी संदेहात्मक सामग्री मिल सकती है क्योंकि उसके अक्षरों में भी वैषम्य है। उदाहरणतः रकार को प्रकार से लिखा गया है और पंचनामे का अकार प्रस्तुत लिपि से भिन्न सा है। इस विषय में पाठक स्वयं किसी निश्चय पर पहुँच सकते हैं। मैं उस अर्द्धाली का चित्र दे रहा हूँ जिसे मैं गोस्वामी जी के हाथ की समझ रहा हूँ।

रचना-समय

प्राक्कथन—इस परिच्छेद में गोस्वामी जी की तथाकथित एवं मान्य कृतियों के सिंहावलोकन के अनन्तर उनके रचनाकाल पर विचार होगा और प्रचलित एवं अद्यावधि मान्य कुछ कालक्रम के विपर्यास का आभास मिलेगा।

लगभग चालीस कृतियाँ—लगभग चालीस पुस्तकें गोस्वामी तुलसीदास की लिखी बतायी जाती हैं, किन्तु उनमें से केवल बारह को अधिकतर प्रामाणिक समझा जाता है। निम्नलिखित पुस्तकें अप्रामाणिक समझी जाती हैं कारण कि उनके भाव, भाषा और शैली अविश्वसनीय हैं अथवा वे अमुद्रित होने से परीक्षा के लिये उनके स्वामियों से सहज उपलब्ध नहीं हैं—'अंकावली' 'बरवै बाण' 'बरवै साठिका' 'बरवैविलास' 'विजय दोहावली' 'बृहस्पतिकाव्य' 'छन्दावली रामायण' 'छन्द रामायण' 'धर्मराज की गीता', 'ध्रुव प्रश्नावली' 'गीता भाषा' 'हनुमान् स्तोत्र' 'हनुमान् चालीसा', 'हनुमान् पंचक' 'ज्ञानदीपिका' 'पदार्थ रामायण' 'राम मुक्तावली' 'रसभूषण' 'साखी तुलसीदास जी की', 'संकटमोचन' 'सतचक्र उपदेश' 'सूर्यपुराण' 'तुलसीदास जी की बानी' और 'उपदेश दोहा'।[1]

पं० रामेश्वर भट्ट ने 'कुंडलिया रामायण' 'कड़का रामायण' 'रोला रामायण' और 'झूलना रामायण' का भी उल्लेख किया है।[2] डॉ० रामकुमार वर्मा सूचित करते हैं कि तुलसीदास जी के ग्रन्थों की संख्या 'सरोज' के अनुसार है १४ 'नोट्स ऑन तुलसीदास' के अनुसार २१ 'अंबवाली की तुलसी ग्रन्थावली' के अनुसार २०, 'मिश्रबन्धु के नवरत्न' के अनुसार २६, पर प्रामाणिक रूप से सर ग्रियर्सन और पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं लाला सीताराम के अनुसार यह संख्या १२ है।[3]

प्रामाणिक पुस्तकें—निम्नलिखित त्रयोदश पुस्तकें तुलसीदास-कृत समझी जाती हैं —'रामलला नहछू' 'रामाज्ञा प्रश्न' 'जानकी मंगल' 'रामचरित मानस' 'पार्वती मंगल' 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली' 'विनयपत्रिका', 'बरवै रामायण' 'दोहावली' 'कवितावली' 'हनुमान्बाहुक' तथा 'वैराग्य संदीपनी'।[4] इन त्रयोदश पुस्तकों का संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'तुलसी ग्रन्थावली' में किया है। श्री राम गुलाम द्विवेदी के आधार पर सर ग्रियर्सन इन्हें प्रामाणिक समझते हैं एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल लाला सीताराम, पं० रामनरेश त्रिपाठी श्री सद्गुरुशरण अवस्थी डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा अन्य कतिपय विद्वान् भी ऐसा ही मानते हैं। भाषा और भाव की दृष्टि से 'कुण्डलिया रामायण' को तुलसीदास की कृति मान लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। डॉ० गुप्त 'तुलसी सतसई' के अधिकांश को प्रामा

---

१ तुलसीदास (डॉ माताप्रसाद गुप्त) पृ० १२६।

२ 'तुलसीदास कृत रामायणम्' में तुलसीदासजी का जीवन-चरित, पृष्ठ ८।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ३२३।

४ 'सोरठा रामायण' और 'सोरठा रामायण संग्रह' में 'रामचरित मानस' को सोलहवाँ, इनके अतिरिक्त है 'कवित्तरामायण निकाला' 'छप्पय रामायण' 'हनुमान् चालीसा' और 'संकट मोचन'।

भिन्न समझते हैं। 'ज्ञान दीपिका' तो तुलसीदास के प्रबन्ध अर्थात् 'रामचरितमानस' की सिनोप्सिस अर्थात् रूपरेखा प्रतीत होती है यद्यपि उसकी रचना की मिति अज्ञात है इस अनुमति का कारण मूल प्रतिलिपिकार की असावधानी हो सकता है। 'हनुमान् चालीसा' गोस्वामी जी के बाल्यकाल की रचना संभव है। 'रामलला नहछू' और 'वैराग्य संदीपनी' के सम्बन्ध में डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव का मत है कि भाषा के आधार पर ये रचनाएँ अन्य समस्त रचनाओं की तुलना में संदिग्ध कही जा सकती हैं।[1]

विवरण—उक्त त्रयोदश पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण कदाचित् अप्रासंगिक न होगा। 'रामलला नहछू' चार चरण के बीस सोहर छन्दों में लिखा गया है, जिसमें रामविवाह के अवसर पर अयोध्या में रामचन्द्र जी के नखच्छेद का वर्णन स्त्रियों के गाने के उद्देश्य से उपलब्ध है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में रामचरित काण्डवार विद्यमान है। इसमें सात काण्ड हैं, प्रत्येक काण्ड में सात दोहे हैं। इन दोहों के द्वारा जाना जा सकता है कि अमुक कार्य में सफलता मिलेगी या असफलता। 'जानकी मंगल' में २१६ छन्द छन्दावली में हैं और इसमें विश्वामित्र जी के साथ राम-लक्ष्मण के मिथिला-गमन से लेकर सीताराम के विवाह तक का वर्णन वाल्मीकि जी के अनुसार है। 'रामचरित मानस' तो गोस्वामी जी का छन्दावली में सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसमें जन्म से लेकर वनवास से लौटने तक रामचन्द्र जी का वर्णन है। यद्यपि इसके वृत्तान्त का आधार मुख्यतः 'अध्यात्म रामायण' है तथापि अन्य ग्रन्थों से भी कुछ लिया गया है। 'पार्वती मंगल' में छन्दावली में पार्वती जी के विवाह का वर्णन १६४ छंदों में है और जिस प्रकार का वर्णन 'रामचरित मानस' में मिलता है उससे ईषत् भिन्न है। 'जानकी मंगल' की भाँति यह भी विवाहोत्सव पर गाने के उद्देश्य से लिखा गया है। 'गीतावली' में रामचन्द्र जी का जीवन चरित अनेक गेय छन्दों में वाल्मीकि जी की परिपाटी से वर्णित है। इसमें सात काण्ड और ३२८ पद हैं। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्णपरक ६१ गीत ब्रजभाषा में हैं। इसमें कृष्ण जी के गोकुल-सम्बन्धी बचपन और बाल्य-कौमार्य एवं गोपियों के विरह-विलाप का वर्णन कुछ शीघ्रतापूर्वक किया गया है। जितनी सफलता सूरदास जी को 'सूर रामायण' में राम-सौन्दर्य के वर्णन में प्राप्त हुई उतनी ही तुलसीदास जी को कृष्ण-सौन्दर्य के वर्णन में। 'विनय-पत्रिका' भी ब्रजभाषा में राम के प्रति लिखी विनय-पदों का परमोत्कृष्ट काव्य-संग्रह है। यह भगवान् राम के लिए एक प्रकार की अर्जी है। कहते हैं कि इसका अवसर इस प्रकार उत्पन्न हुआ *एक हत्यारा राम राम चिल्लाता आया। तुलसीदास जी ने उसे राम भक्त समझ कर उस पर करुणा की जिसके कारण लोग तुलसीदास जी से क्रुद्ध हो गये। उन्हें शान्त करने के निमित्त तुलसीदास जी को अपनी सानुभूति सिद्ध करने के लिये शिव-मन्दी को हत्यारे के हाथ से भोजन कराना पड़ा। लोग तो शान्त हो गये पर कलियुग ने इस चमत्कार से क्रुद्ध हो तुलसीदास जी को खा-लेने की धमकी दी। अतएव गोस्वामी जी ने हनुमान् जी का आवाहन किया और रक्षा चाही।* बरवै रामायण' सात काण्ड की ६९ बरवै छन्दों में छोटी सी पुस्तिका है जिसमें अवधान

१ 'तुलसीदास की कला' पृष्ठ २१७-२१८।

रामचन्द्र के जीवन की प्रधान घटनाओं का उल्लेख है। 'दोहावली' में ३७३ दोहे हैं जिनमें से ८३ तो 'रामचरित मानस' के हैं ३५ 'रामाज्ञा प्रश्न' के और ७ 'वैराग्य संदीपनी' के हैं। इसमें ज्ञान-धर्म की शिक्षा है। 'कवितावली' काव्य की दृष्टि से गोस्वामी जी का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें सात काण्ड कवित्त, घनाक्षरी छप्पय, सवैया आदि ३६९ छन्द हैं। साहित्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त इसमें महत्त्वपूर्ण आत्म-परिचयात्मक उल्लेख भी मिलते हैं। 'हनुमान् बाहुक' से विदित होता है कि तुलसी दास जी की बाहु में कभी पीड़ा रही थी और उनकी वार्धक्यावस्था का भी कुछ आभास मिलता है।

गोस्वामी जी की रचनाओं के कालक्रम का गम्भीर विवेचन अभीष्ट नहीं पर तद्विषयक विहावलोकन आवश्यक प्रतीत होता है जो इस प्रकार है :

दोहे—अनुमानतः गोस्वामी जी समय-समय पर दोहे लिखते रहे जो आज 'दोहावली' और 'तुलसी सतसई' नामक संग्रहों में उपलब्ध हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार, दोहावली में सं० १६१० १६७१ तक के दोहे सम्मिलित हैं।[1] 'दोहावली' का यह दोहा

तुलसी जाग्यो करतब हि करमु न सत्य समान।
रामु सजे जिहि लागि जिमु राम परिहरे प्रान ॥२३४॥

उस पंचनामे में दीपक रूप में विद्यमान है जो १६६९ में लिखा गया था। कुछ दोहों में बद-बीसी और बाहु-पीड़ा का भी उल्लेख है। डॉ० श्यामसुन्दरदास 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर दोहों को संवत् १६४० का मानते हैं। १६४० में गोस्वामी जी ७२ वर्ष के वृद्ध थे अतएव डॉ० माताप्रसाद गुप्त की आपत्ति के लिए विशेष अवकाश नहीं। दोहे जैसे मुक्तक छन्द यदा-कदा कवि की लेखनी से निस्सृत होते रहते हैं। अतएव त्रिपाठी जी का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

'सतसई' के प्रथम अध्याय में निम्नलिखित दोहा उपलब्ध है

अहि-रसना धन-धेनु रस पनपति-द्विज गुरुवार।
माधव सित तिय जनम तिथि सतसइया अवतार ॥१ ६॥

इस दोहे से प्रतीत होता है कि सतसई का आविर्भाव वैशाख शुक्ला ६ गुरुवार को संवत् १६४२ में हुआ था क्योंकि अहि रसना=२ धेनुधन=४ रस=६ पनपति द्विज=१ तिय जनम तिथि=६। डॉ० गुप्त ने नवमी तिथि मानी है किन्तु जानकी-जयन्ती, पर्वांगों के अनुसार फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को मनायी जाती है। यह तिथि डॉ० माताप्रसाद गुप्त के मतानुसार शुद्ध नहीं।[2] अतः संभव है कि इस रचना का प्रारम्भ १६४२ में हुआ और यह संवत् १६७१ तक चलती रही हो।

'रामाज्ञाप्रश्न'—डॉ० माताप्रसाद को इसकी रचना का काल इसके निम्न लिखित दोहे में दिखाई पड़ता है

संवत सत्य सति नयन गुन अवधि अधिक नय बान
होइ सुफल सुभ जासु जसु प्रीति प्रतीति प्रमान ॥ ७, ७ ॥

---

१ 'तुलसीदास और उनकी कविता' पृष्ठ १०१।
२ 'तुलसीदास', पृष्ठ २५८।

वे लिखते हैं कि "'चन्द्रमा, मेष, गुण नीति और बाण के आधिक्य की अवधि (समय) में यह संवत् (—माला), जिसका सुयश यह है कि प्रीतिप्रतीति के अनुसार ही सुफल होती है सत्य है।' कवियन-प्रयुक्त सांकेतिक संख्यावली में चन्द्रमा १ मेष २, गुण ३ नीति ४, और बाण ५ में अन्तर १ का है, और कविप्रथा के अनुसार इस प्रकार दी हुई तिथियाँ उल्टे क्रम से पढ़ी जाती हैं इसलिए उपर्युक्त दोहे से हमें कृति के लिए १६२१ की तिथि प्राप्त होती है।"[1]

पंजाब में हस्त-लिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज में ज्येष्ठ सुक्ला दशमी रविवार संवत् १६३५ की एक प्रति प्राप्त हुई थी।[2] यह तिथि मुद्रित षोडश रामायण में संगृहीत रामाज्ञा प्रश्न की पुष्पिका में मिलती है और गणना से शुद्ध है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने १८९३ ई० में इसका उल्लेख इण्डियन एण्टिक्वेरी के ९६ वें पृष्ठ पर किया था। इस आधार पर डॉ० श्यामसुन्दरदास ने इस रचना को १६३५ वि० का माना है। परन्तु पं० रामनरेश त्रिपाठी उसे 'मानस' से पहले सं० १६२० के लगभग की समझते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा का झुकाव डॉ० गुप्त की ओर है। बंदाराम ज्योतिषी से *गोस्वामी जी का परिचय अवश्य उसी समय हुआ होगा। अविनाशराय के मतानुसार,* गोस्वामी जी ने गुहत्याग से पूर्व १५९७ वि० में काशी की प्रथम यात्रा की थी अतएव 'रामाज्ञा' का निर्माण काल १५९७ वि० तक पीछे जा सकता है। किन्तु उस समय रत्नावली नन्ददास और उनकी दादी तुलसीदास जी के साथ थे। वे कथा बाँचने के लिए ख्याति पाने लगे थे और रचना के लिए उन्हें तब पर्याप्त समय न मिल सका होगा। अतएव गुहत्याग के पश्चात् सं० १६२१ के लगभग 'रामाज्ञाप्रश्न' का निर्माण अधिक युक्तियुक्त है।

'कवितावली' और 'बाहुक'— कवितावली' और 'बाहुक' भी 'बरवै' और 'दोहावली' की भाँति संग्रह-ग्रन्थ हैं। कवितावली' और 'बाहुक' का रचनाकाल कवि ने नहीं दिया है यद्यपि उनमें रत्नौसी मीन की शनीचरी तथा महामारी का उल्लेख है।

'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर डॉ० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि 'कवितावली का कथा भाग और सीता-वट विषयक कवित्त सं० १६२८ और १६३१ के बीच बनाया गया, और शेष १६६९ वि० के पीछे। वे 'बाहुक' की रचना को 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार मानते हैं।[3] पं० रामनरेश त्रिपाठी 'बाहुक' और 'कवितावली' की रचना १६१० से १६७१ तक मानते हैं। उनके मतानुसार यदि शेमकरी वाला छन्द तुलसीदास के अन्तिम दिन वाला सिद्ध हो जाय तो उसकी रचना उनके मतानुसार १६८० तक पहुँच जाय। डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना-काल १६९९ है, क्योंकि उनमें मीन के शनि का उल्लेख है और 'बाहुक' का रचना-काल १६८० है और यदि उनके अनुसार 'बाहुक' में वर्णित बाहु

---

१ 'तुलसीदास' पृ० २३६।
२. वही' पृ० २०६-७।
३ 'गोस्वामी तुलसीदास' पृष्ठ ८३ १ १।
४ 'तुलसीदास और उनकी कविता', पृ० ३३८।

पीड़ा से कवि की मृत्यु न मानी जाय तो यह रचना संवत् १६६९ के समयमय मान लेनी चाहिए।[1]

किन्तु 'कवितावली' के अनुसार छत्रीसी में मीन की सनीचरी इस प्रकार पड़ी थी जैसे कोढ़ में खाज।

कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की ॥ क० ७ १७७ ॥

छत्रीसी १६२६ से १६४२ वि० तक और उसी के अन्तर्गत मीन की सनीचरी १६४० से १६४२ वि० तक रही[2]। बाहु-पीड़ा प्लेग न थी वह वातरोग था जैसा कि स्वयं गोस्वामीजी बताते हैं। अतएव 'कवितावली' की समाप्ति १६४२ वि० में मानी जा सकती है। इसी प्रकार 'हनुमान बाहुक' (३८ ४१) में बरसोह मुखपीड़ा और बाहु पीड़ा का जो उल्लेख है वह भी १६४२ वि० तक का हो सकता है। काशी की महामारी और दरिद्रता भी १६४२ से पहले की होनी चाहिए। यह महामारी विषूचिका हो सकती है। अविनाशराय के अनुसार, तुलसी की माता का देहान्त इस रोग से हुआ था जिससे स्पष्ट है कि हैजे का प्रकोप गोस्वामी जी के समय में विद्यमान था। 'कवितावली और हनुमान बाहुक' की भाषा भी कितनी सुव्यवस्थित है। क्या १०५ वर्ष का वृद्ध ऐसी कविता लिख सकता था जबकि देह इन्द्रियाँ स्मरण-शक्ति एवं कल्पना शिथिल हो जाती हैं? इस अवस्था में वृद्ध बालक के तुल्य हो जाता है। अतएव तब रामलला नहछू या 'बरवै' जैसी क्षीण रचना भी कठिनता से ही सम्भव हो सकती थी।

'कृष्ण गीतावली'—डॉ० रामकुमार वर्मा 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' को पुष्प मानते हुए दोनों को समकालीन रचना मानते हैं।[3] डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसका रचना काल सं० १६६० के लगभग मानते हैं क्योंकि उन्हें पदावली रामायण 'रामगीतावली' तथा 'कृष्णगीतावली' परस्पर सापेक्ष लगती हैं। डॉ० श्यामसुन्दर दास 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर इसे १६१६ से १६२८ वि० की रचना समझते हैं।[4] पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुमान से इसकी रचना १६२८ और १६३० वि० के बीच में हुई होगी क्योंकि उनके मतानुसार तुलसीदास जी उन दिनों काशी में प्रायः बल्लभकुल के गोसाइयों के सम्पर्क में अधिक रहते थे और सम्भवतः उन्हें प्रसन्न करने के लिए 'कृष्ण गीतावली' का निर्माण हुआ हो।[5] किन्तु मेरी विनीत सम्मति में इसका निर्माण ब्रज में ब्रजयात्रा के समय, मन्दिरों और ब्रज के गोसाइयों के प्रभाव से, सं० १६२६ के पश्चात् १६३६ वि० तक होना अधिक संगत है। १७९६ वि० के 'श्री

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ४४० ४१४ ४१५।

२ 'तुलसीदास' पृ १०४
वही, पृष्ठ १०६। मीन की सनीचरी और छत्रीसी पर विस्तृत विवेचन अन्यत्र भी हो चुका है।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ४१२ १६।

४ तुलसीदास पृ २२४।

५ गोस्वामी तुलसीदास पृ ७७-७८।

६ तुलसीदास और उनकी कविता पृ० ४०२।

भी थी। एकदिन श्रीराम के मतानुसार, व्याकरण विन्यास और शब्द-रूप तुलसी के ऐसे अधीन थे जैसे दास अपने स्वामी के। वे उन्हें मनोज्ञ तोड़-मरोड़ कर आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा कर लेते थे।[1] उदाहरणतः, रामायण में ही, 'ऐसा' शब्द एकादश रूप से लिखा गया है कभी एक सम्पूर्ण (सिलेबल) का कभी दो का कभी तीन का यथा अस, ऐसे, ऐसेउ।[2]

उपमाएँ—कुछ लोगों के विचार से 'फूले फले न बेत' यह कथन भ्रमात्मक है क्योंकि बेत पुष्पित होता है अतएव तुलसी-भक्तों के द्वारा 'बेत' का अर्थ 'बिम्बु' अर्थात् आकाश कर दिया जाता है। चकवा-चकवी का रात्रि में वियोग हंस का नीर और विवेक चातक का स्वाति-नक्षत्रीय जल-पान और चकोर का अग्नि भक्षण आदि की सत्यपरता में सन्देह प्रकट किया जाता है यद्यपि सन्देह-भाव आक्षेप का बल हरण कर लेता है। कटि की उपमा सिंह की से नयनों की मृगी के से ग्रीवा की कंबु से भ्रू की धनुष से हस्त पाद और मुख की कमल से परिचित हैं और उनके बार-बार प्रयोग करने से काव्य में वैचित्र्य उत्पन्न हो जाता है। गोस्वामी जी ने इस सब का उल्लेख किस कौशल से किया है

> खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥
> कुन्दकली दाडिम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
> बरुन पास मनोज, धनु, हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
> श्रीफल, कलम, कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
>
> रा० १ २९ क १०-१३

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने गोस्वामी जी की निम्नलिखित उपमाओं की उत्कृष्टता पर विशेष और भावपूर्ण प्रकाश डाला है[3]

> एक छत्र इक मुकुट मनि सब बरनत पर जोय
> तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोय॥ रा० १, २०
> सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई छविगृह दीपसिखा जनु बरई। रा० १ २२९ ७
> पेड़ काटि तैं पालउ सींचा मीन जियन निति बारि उलीचा॥
>
> रा० २, १६
> ज्यों सुख मुकुर मुकुर निज पानी, गहिन जाइ अस अद्भुत बानी॥
>
> रा० २ २९३, ३
> तुम्हह पवन सुत रहहि हमारी जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
>
> रा० ५ ६, १
> राम सिन्धु, घन सज्जन धीरा, चन्दन तरु हरि-सन्त समीरा॥
>
> रा० ७, ११६ १७

शंका-समाधान—डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'रामकथा मेघदूत' में अनैतिहासिकता

---

१ द रडेव ऑफ हिन्दू लिटरेचर, पृष्ठ ६
२. वही, २७
३ मानस में राम कथा पृष्ठ १७१ १८०

परकीयारति एवं प्रबन्ध-शैली सम्बन्धिनी कतिपय त्रुटियों को उपस्थित किया है।[1] पर डा० विमल कुमार जैन 'कौशना की बेटि' का तात्पर्य वसिष्ठ-पत्नी अरुन्धती से ग्रहण कर अनैतिहासिकता का परिहार कर देते हैं।[2]

'गीतावली' (बाल २१ २४ २४) और 'कृष्ण गीतावली (२४४२ ४१ ४४) के अन्य 'सूरसागर' में भी मिलते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये ग्रन्थ वास्तव में तुलसीदास जी के हैं किन्तु सूर सागर का पाठ नितान्त 'तरल' होने के कारण उसमें सम्मिलित हो गये।[3] मेरी विनीत सम्मति में ये सूर की तुलसी की चिरतन यशोजलियाँ ही हैं।

'रामचरित मानस' का अध्ययन गहन हुआ है और आलोचक उसके अनेक स्थलों पर समय-समय पर शंकाएँ उपस्थित करते रहे हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त 'रामचरित मानस' की समग्रता में एकरूपता का अनुभव नहीं करते क्योंकि उनके अनुसार, इस "ग्रन्थ के कुछ अंश ऐसे हैं जिनमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये अन्य अंशों से इतनी भिन्नता रखते हैं कि जान पड़ता है कि काव्य का जो स्वरूप अब हमारे सामने है वह कम-से-कम तीन विभिन्न प्रयासों का परिणाम है।[4] श्री अवधमदास 'दीन' ने उनतालीस शंकाओं का संकलन कर उनके समाधान का प्रयत्न किया है।[5] प्रयत्न सुन्दर है यद्यपि उसमें यत्रतत्र के लिए पर्याप्त अवकाश अवश्य है जिसकी चर्चा विस्तारभय से यहाँ वांछनीय नहीं। पर गोस्वामीजी की रचनाओं में कतिपय दोषों को मान लेने से उनके गौरव में कोई न्यूनता नहीं आती।

---

१ तुलसीदास पृष्ठ २६ २६१
२ तुलसीदास और उनका साहित्य
३ तुलसीदास, पृष्ठ २६६
४ वही, पृ०
५ मानस-शंका-समाधान बैजा प्रेस बोरावड़ १ १६ वि

दार्शनिक विचार

(क) प्राक्कथन

उपक्रम—देशी-विदेशी दोनों प्रकार के विद्वानों का तुलसीदास जी के दार्शनिक विचारों पर मतभेद है। कुछ आलोचक तो गोस्वामीजी को दार्शनिक ही नहीं समझते और उन्हें रामानन्दजी का अनुयायी-मात्र मानते हैं किन्तु अधिकांश में विद्वान् उनको उच्च कोटि का दार्शनिक मानते हैं। मैं प्रस्तुत अध्याय में गोस्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन अपने दृष्टिकोण से करना चाहता हूँ किन्तु ऐसा करने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि प्रमुख लेखकों की विचारधारा पर किंचित् प्रकाश डाल दिया जाय।

ग्रियर्सन—ग्रियर्सन ने गोस्वामीजी को रामानन्दजी का परम्परागत शिष्य माना है[1] किन्तु यह धारणा कई कारणों से ठीक नहीं। प्रथमतः गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म का पालन किया द्वितीयतः उन्होंने अध्यात्म रामायण' को अपनाया जिसे रामानन्दी प्रमाण नहीं समझते[2] तृतीयतः उन्होंने वल्लभाचार्यजी को परोक्ष प्राणमांजलि अर्पित की जिनके सम्प्रदाय में उनके चचेरे भाई नन्ददासजी दीक्षित हो चुके थे चतुर्थतः स्मार्त ब्राह्मण होने के नाते वे पंचदेवों की आराधना करते थे जो रामानन्दियों को मान्य नहीं।

ईसाई धर्म का प्रभाव ?—ग्रियर्सन[3] और कार्पेण्टर[4] की भी यह कल्पना है कि ईसाई धर्म का कुछ प्रभाव तुलसी पर अवश्य पड़ा था। डाउज यह तो मानते हैं कि तुलसीदासजी की समूह-पूजा में और ईसाइयों की आराधना पद्धति में कुछ साम्य है परन्तु उनकी समझ में कृष्ण और क्राइस्ट के नाम-साम्य का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं प्रत्युत उन के मतानुसार तुलसीदास जी की भक्ति-धारा एकेश्वरीय ही है। डॉ० रानडे[5] भी इस तर्क में विश्वास नहीं करते कि कबीर या तुलसी पर ईसाई मत का प्रभाव इस कारण था कि ६३६ ई० में कन्नौज के महाराज शीलादित्य ने सीरिया के एक ईसाई-दल का स्वागत किया था और अकबर ने भी अपने शासन-काल में पादरियों का। बेस नगर का स्तम्भ ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व का है जिसे विष्णु भक्त

---

१ कलैक्शन ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १६ ३ पृष्ठ ४०८ एवं एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स जिल्द १० १९१८, पृष्ठ २७० जिल्द १२ १९२१ पृष्ठ ४०२।

२. श्रीमद् रामानन्द दिग्विजय पृष्ठ ४८ अवतरणाधृत।

३ कलैक्शन ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०३ ई ।

४ मिस्टेरीज ऑव तुलसीदास रेवरेंड जे० कार्पेण्टर कृत पृष्ठ १२१ १३५ १६

५ रामायण ऑव तुलसीदास, भूमिका एफ० एस० ग्राउज कृत, पृष्ठ १४ १६

६ हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द ७ मिश्रिलिस, पृष्ठ १६ १७

हीलियोडोरस नामक यूनानी राजदूत ने स्थापित किया था।[1] इस सम्बन्ध में सिद्ध है कि भक्ति का सूत्रपात तो ईसा से शताब्दियों पूर्व हो चुका था।

कार्पेण्टर—कार्पेण्टर के मतानुसार[2] गोस्वामीजी ने धर्म की ठेकेदारी (मोनोपोलिज़म) के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठायी प्रत्युत उन्होंने ब्राह्मणाधिकार लिये हैं।[3] उन्होंने न कोई सम्प्रदाय चलाया और न किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन ही किया बस रामानन्द जी की ही लीक बनायी है। पर ग्रीव्ज की सम्मति में उन्होंने किसी का अनुसरण नहीं किया और ग्राउज के मतानुसार[4] गोस्वामी जी दार्शनिक सिद्धान्त अधिकांश में सदानन्द के 'वेदान्तसार' पर और उनकी राम-परक 'भागवत' के भाष्य पर आधृत हैं।

डॉ० मेकडूगल—डॉ० मेकडूगल[5] गोस्वामीजी को अधिकांश में परम्परावादी मानते हैं और वे तुलसी-मार्ग से उतर कर ईसामसीह-जैसे योग्य और दिव्य पुरुष के भाषण की भाषा और अभिभाषा प्रकट करते हैं। उनके विचार से तुलसी के इस कथन में कि राम का नाम राम से भी बड़ा है[6] न कोई नैतिकता है न आध्यात्मिकता। बाबाजी के मतानुसार तो राम नाम (आध्यात्मिक) आधियों के लिये पर्वत-सम प्राचीन औषधि है उनका दावा था कि राम-नाम (शारीरिक) व्याधियों के लिये भी महौषधि है।

चौबेजी और मामाजी—श्री रामदास चौबे के मतानुसार तुलसीदासजी सरल हृदय और अटल भक्त स्मार्त ब्राह्मण थे न वे दार्शनिक थे न उनका किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध था। अवधवासी मामा सीताराम के मतानुसार[7] तुलसीदासजी ने अपने 'रामचरित मानस' में दर्शन के विविध वादों की चर्चा की है क्या अद्वैतवाद की शिवजी के द्वारा विशिष्टाद्वैत की लक्ष्मण जी के द्वारा और रामानन्द-मत की भरत के द्वारा। किन्तु डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र की दृष्टि में यह धारणा समीचीन नहीं।[8] अतएव तुलसीदास जी के ग्रन्थ को मतों का संग्रह नहीं मानना चाहिए।

त्रिपाठी जी और पांडेजी—श्री विजयानन्द त्रिपाठी ने शंकराचार्य जी के दृष्टि कोण से 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' की व्याख्या की है। श्री चन्द्रबली पांडे के मता

---

१ दर्शन इंडिया है व रेलिजन इन पृष्ठ १६४ १६०
२. द त्रिवेणीजी ऑव तुलसीदास के अन्त कार्पेण्टर-कृत पृष्ठ २५
३ कीज़ इन मिडीवल इंडिया पृष्ठ २०६ ३१ ले ई कार्पेण्टर-कृत।
४ रामकथा ऑव तुलसीदास भूमिका पृष्ठ १६
५ तुलसीदास ऐ ऑव सेन्टमेन्ट पृष्ठ १६६ डॉ विलियम मार्टन मेकडूगल।
६ अहं बलु वह रामहिं स १ ३६
७ रामकथा : दि रामकीर्तिनि प्रिमेडी, महात्मा गांधी हस्ट, पृष्ठ २६ आनन्द ई० त्रिपाठी
बनारसी, २६ जनवरी १९४०
८ 'रामचरित मानस की भूमिका' रामदास गौड़ पृष्ठ १२ १४
९ रामचरित मानस के लोकप्रिय होने का कारण रामबहादुर अवधवासी मामा सीताराम
अक्टूबर जुलाई १९३०
१० तुलसी-दर्शन पृष्ठ २६ २७ डॉ बलदेव प्रसाद मिश्र।

नुसार, तुलसीदास जी व्यवहार और परमार्थ का भेद करने में शंकराचार्य जी से प्रभावित हुए, किन्तु ज्ञान और भक्ति के वर्णन में उनसे दूर हो गये हैं।[1]

डॉ० दास और डॉ० बड़थ्वाल—डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल दोनों ही तुलसीदासजी के दर्शन में अद्वैतवाद का वर्णन करते हैं।[2] तुलसीदास जी ज्ञानी भक्त की प्रशंसा करते हैं किन्तु भक्ति-योग का तात्पर्य सत्यापति या प्रपत्ति से नहीं है क्योंकि भक्ति तो सगुण से निर्गुण तक पहुँचने का साधन है।[3]

शुक्लजी और अवस्थी जी—पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि परमार्थतः सारा संसार राममय है किन्तु व्यवहारतः राम-रावण में भेद करना ही पड़ता है कम-से-कम भक्ति के विषय में गोस्वामीजी रामानुज के अनुयायी थे। यद्यपि परमार्थ की दृष्टि से उनकी आस्था अद्वैत वेदान्त में थी तथापि भक्ति के दृष्टिकोण से वे भेद मानते थे।[4] शुक्ल जी को गोस्वामीजी की यह बात पसन्द न आयी कि राम का नाम राम से बढ़कर है।[5] गोस्वामीजी ने जो कुछ लिखा है उससे वानप्रस्थ अथवा संन्यासी का कल्याण न हुआ हो किन्तु गृहस्थ का कल्याण अवश्य हुआ है और इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी के प्रयत्न ऐसे ही प्रशंसनीय हैं जैसे महाराष्ट्र में स्वामी रामदास के। किन्तु श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी यह श्रेय तुलसी को नहीं देना चाहते। इस विषय में जो कुछ श्रेय है वह अवस्थी जी के विचार से या तो तुलसीदास जी के इष्ट देव का है अथवा वाल्मीकि जी का अथवा अन्य पूर्वगामी लेखकों का जिन्होंने राम-कथा गायी है। अवस्थी जी के मतानुसार यदि गोस्वामीजी का कोई निजी वैशिष्ट्य है तो वह है साधु धर्म का प्रतिपादन।

डॉ० लाल और डॉ० भटनागर—डॉ० श्री कृष्णलाल के अनुसार तुलसीदास जी सन्त थे और महात्मा भी किन्तु वास्तविक नहीं थे। वे भक्त थे ज्ञानी नहीं।[6] डॉ० रामरतन भटनागर ने गोस्वामी जी की कुछ रहस्यमयी उक्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया था—सियाराम मय सब जग जानी। राम-कथा स्वयं रहस्यमय है अतएव अद्भुत है विचित्र है और अवश्य है[7] और तुलसीदास जी ने 'रामाश्रित जीवन' का उपदेश दिया है।[11]

चतुर्वेदी जी—महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तुलसीदास जी को शांकर

---

१ तुलसीदास पृष्ठ १६२ श्री चन्द्रशेखर पांडे।

२ गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ १७४ १८० डॉ० श्यामसुन्दरदास और डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।

३ वही, पृष्ठ १६१

४ गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ४६

५ वही, पृष्ठ ६५ ६६।

६ वही पृष्ठ १७१

७ तुलसी के चार दल प्रथम विशेष पृष्ठ ६६

८ वही, पृष्ठ ३

९ मानस-दर्शन, पृष्ठ १२१

१० रहस्यवाद पृष्ठ १४१ १६१

११ तुलसीदास आलोचनात्मक अध्ययन पृष्ठ २१२

अद्वैत का अनुयायी मानते हैं। उनका आधार है गोस्वामी जी की ऐसी कुछ उक्तियाँ यथा 'मम माया बस बस्ति मम पूरब' 'रज्जु यथाहेम म सियाराम मय सब जग जानी' 'नति नेति' निर्विकल्प' 'चिदाकाश' निर्गुन' तुरीय', 'विराम्यान गोतीत' सोउ तोहि ताहि नहिं भेदा', 'करम कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें', आदि पंक्तियाँ भी शंकराचार्य जी के सर्व-कर्म-सन्यास का स्मरण दिलाती है।[1] 'जानत तुम्हहि तुम्हहि हो जाई' यह 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' का अनुवाद है।

डॉ० मिश्र—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने गोस्वामी जी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन अधिक विस्तार और गम्भीरता से किया है। उनके विचार से गोस्वामी जी ने अद्वैत सिद्धान्तों को आत्मसात् कर लिया है। शंकराचार्य जी की भाँति वे भी भक्ति को मुक्ति के दृढ़ीकरण के लिए प्रधान मार्ग मानते हैं किन्तु मुक्ति के दृढ़ीकरण अथवा स्थायीकरण से क्या तात्पर्य है यह स्पष्ट नहीं। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य जी ने भक्ति को मुक्ति के लिये माना है, किन्तु तुलसीदासजी के लिये वह भक्ति साध्य भी है। मिश्र जी आगे कहते हैं कि यह ठीक है कि भक्ति माया का एक रूप है और निर्गुण से सगुण हो जाना ही जीव का आदर्श है अतएव परम सत्ता निर्गुण ब्रह्म' है क्योंकि अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है किन्तु यह भी ठीक है कि अभ्यस्त विवर्त (?) से जीव को सत्य-ज्ञान होता है और भक्ति के द्वारा मुक्ति अपाचित ही प्राप्त हो जाती है अतएव यदि गोस्वामी जी ने भक्ति पर अधिक आग्रह किया है तो इस कारण वे अद्वैत के अनुयायी अमान्य नहीं।[2] भक्ति के साधनों का उल्लेख करते समय डॉ० मिश्र ने लिखा है कि तुलसीदास जी मूर्ति का स्थान शास्त्रों के बराबर समझते थे (रा० ५, ४४ १ ३ ४३ २ ३)। डॉ० मिश्र प० रामचन्द्र शुक्ल से सहमत हैं कि तुलसीदास जी की आस्था पारमार्थिक सत्ता में तथा प्रवृत्ति व्यावहारिक भक्ति में थी।[3]

डॉ० गुप्त—डॉ० माता प्रसाद गुप्त के मतानुसार गोस्वामीजी ने अध्यात्म रामायण' के दर्शन का ही सशोधित रूप उपस्थित किया है[4] यद्यपि गुप्तजी यह भी स्वीकार करते हैं कि 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' के कुछ विचार (जिनका उन्होंने उल्लेख किया है) 'अध्यात्मरामायण' से मेल नहीं खाते। उनके मतानुसार, रामचरित मानस' से पूर्वकालीन ग्रन्थों में हनुमद्भक्ति का कोई साक्ष्य नहीं। यदि गुप्त जी के कथन का यह आशय है कि तुलसीदास जी ने हनुमद्भक्ति का आविष्कार किया तो उनका ध्यान बुधकौशिक कृत 'राम-रक्षा-स्तोत्र' के 'मनोजवं मारुत तुल्य वेगं' (३१)

---

१ तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय भाग, मिश्रा दूसरा पृ० ६४ ७०-७२ ७५, ११, ११४
२. तुलसी दर्शन पृष्ठ १२१ १०८
३ वही, २ ६ ३१
४ वही, प० ३१८
५ तुलसी दर्शन पृष्ठ २१६
६ तुलसीदास पृष्ठ ३८१ ३८२
७ वही पृष्ठ ३३८-४०

एवं प्राय शंकराचार्य-कृत 'श्रीहनुमत्पंचरत्न स्तोत्र' की ओर आकर्षित किया जा सकता है।[1]

ओझा जी—श्री ओझा राजेन्द्रसिंह जी के अनुसार गोस्वामीजी ने विरोधी विचारों का सामंजस्य एक विचारधारा में किया है। उनके मतानुसार तुलसीदासजी ने शंकर और रामानुज का समन्वय किया है।[2] किन्तु इस विषय में यह आपत्ति उठती है कि क्या ओझा जी ने दोनों आचार्यों का प्रतिनिधित्व ठीक-ठीक किया है? क्या उदाहरणत रामानुजाचार्य जी कभी यह मानने को प्रस्तुत होंगे कि भक्ति के कारण निर्गुण-सगुण हो जाता है? तुलसी का कथन है

सूने कमल सोइ सर करा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥ रा० ४ १९ १

मेरा दृष्टिकोण—मैंने गोस्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन अपने रूप से किया है।[3] मैं भी मानता हूँ कि गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे और किसी आचार्य-विशेष के अनुयायी नहीं थे। जहाँ तक आधिभौतिक विचारधारा का सम्बन्ध है, वे शंकर और वल्लभ के मध्य में स्थित हैं, जिसका विवेचन आगामी पृष्ठों में होगा। इसके अतिरिक्त आचार और मनोविज्ञान के सम्बन्ध में गोस्वामी जी के जो विचार हैं उनकी ओर आज तक किसी समालोचक का ध्यान नहीं गया है। मेरी समझ में गोस्वामी जी ने मनोविज्ञान-सम्बन्धी चर्चा हिन्दी-साहित्य में सर्व प्रथम एवं साधिकार की है। मैंने इस तथा अन्य विषयों में भी जो विनम्र प्रयत्न किया है उसे सार रूप से उपस्थित करने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

(ख) प्रमाण

प्रत्यक्षादि—गोस्वामीजी ने प्रत्यक्ष और अनुमान का मूल्य समझा किन्तु शब्द को उच्चतर स्थान दिया।

अनुभव—इन तीनों प्रमाणों से उत्पन्न ज्ञान का परिपाक विज्ञान में हो जाता है किन्तु सर्वश्रेष्ठ प्रमाण अनुभव है जो हमारी चर्चाओं के शब्द में इत्थंभूत है, और जो योगवासिष्ठ के अनुसार सर्वेन्द्रियों का अभ्यास तथा केवल अनुभूति प्रतिपत्ति संविद् का सार है (२, १९, १७-१९)। तुलसी के शब्दों में

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

रा० ७ ११७ ख १ २

(ग) ब्रह्म

निर्वेध—गोस्वामीजी ने ब्रह्म की चर्चा अन्वय-व्यतिरेक से की है, अर्थात् भावात्मक और निषेधात्मक रीति से। निषेधात्मक रूप है 'नेति-नेति' अर्थात् 'न इति न इति', इसके द्वारा निर्गुण की चर्चा कुछ ऐसे शब्दों से की जाती है, यथा अनाम

१ 'भक्ति सुधाकर' पीताम्बर गोरखपुर पृष्ठ ४२-४३
२ गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना पृष्ठ ६६
३ द डिलीनेशन ऑव तुलसीदास अनूदित (अप्रकाशित निबन्धावली)

निरंजन अखण्ड, अकल अज अद्वैत अनीह अरूप, अमल अविनाशी निर्विकार, निरवधि मनोबोधीत मायारहित अनामय अनघ अनंत (रा० ७, ११० घ ३ ३, १ १८३, छं २, ७ २३, ७ ३३ २)।

मायाच्छन्न पुरुष के द्वारा निर्गुण अगम्य है (रा० ३, ३६ क)। किन्तु उसकी महिमा अपार है क्योंकि वह बिना इंद्रियों के ही वर्तता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (३ १९) की भाँति तुलसी कहते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

रा० १, ११७ ३-७

सगुण—गोस्वामीजी के भावात्मक वर्णन के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द व्यापक विश्वरूप भगवान् एवं परमकृपालु है और भक्तों के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है (रा० १ १२ ३ ५)। सनकादि ऋषियों की स्तुति के अनुसार वह सुख-सागर, सुख-मन्दिर, अतिनागर, शोभाकर ज्ञान निधान, मानप्रद पावन सुयश सर्व सर्वगत सब्ज दुरित अवतारभंजन सर्व-हृदय निवास दीनबन्धु अनेकनाम भव-वारिधि-कुम्भज सेवा सुलभ सकल-सुख-दायक विनय-विवेक-विरति-विस्तारक, काम-क्रम-स्वभाव-गुण घातक, तरन-तारन सर्व-दोष-हर्ता त्रिभुवन भूषण (रा० ७ ३६)

निर्गुण-सगुण का अभेद—यद्यपि तुलसीदासजी के मतानुसार निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं निर्गुण ही भक्त-प्रेम के कारण इस प्रकार सगुण बन जाता है जिस प्रकार जल शीत के कारण हिम हो जाता है

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

रा० १ ११५ १ ३

तथापि उन्हें सगुण रूप ही अधिक भाता है और इस विषय में उन्हें अपस्तंब सुतीक्ष्ण और काक का समर्थन प्राप्त है (रा० ३ १२ १२ १५, ३ १० ११ १८ ७ १०९ घ १५ १६)।

परात्पर राम—राम में निर्गुण और सगुण दोनों का पर्यवसान है। वे दशरथ नन्दन विष्णुजी के अवतार, स्वयं श्रीपति विधि-हरि हर को नचाने वाले सगुण गुणातीत हैं। सुतीक्ष्ण स्तुति करते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ। सुख महुँ जिमि दुख दुख सुख करइ जानै सोइ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
प्रगटमहिमतमनवद्यमपार। नौमि राम भंजन महि भारं॥ रा० ३, १० ११ १३

लक्ष्मण सीताजी को समझाते हैं

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

रा० ३ २७ ४

मनु-शतरूपा के अनुसार ये हैं वे

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥

रा १, १४३, ६

और ये हैं परात्पर

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। रा० १, १३६ १

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। रा० २ १२, ७

रामनाम—किन्तु गोस्वामीजी राम-नाम को राम से भी ऊपर उठा देते हैं कदाचित् ऐसा वे साधक के दृष्टिकोण से करते हैं। नाम और रूप दोनों ही ईश्वर की उपाधियाँ हैं जो अनिर्वचनीय और सुबोधों के समझने योग्य हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी रा० १ २०, २

इन दोनों में रूप नाम के अधीन है क्योंकि बिना नाम के न प्रत्यभिज्ञान होता है न ज्ञान—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

रा० १ २० ४६

अगुण सगुण ब्रह्म के दो रूप हैं और दोनों ही रूपों में वह अनिर्वचनीय अपार अनादि और अनुपम है, किन्तु मेरे मत से तो तुलसीदासजी कहते हैं नाम दोनों से बढ़कर है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नाम दुहूतें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

रा० १ २२ १२

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार
कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ रा० १ २३

और वे समर्थन के लिए उन कतिपय व्यक्तियों का उल्लेख करते हैं जिनका उद्धार 'राम' ने किया किन्तु साथ ही कहते हैं कि 'राम-नाम' ने तो असंख्य प्राणियों का कल्याण किया है (रा० १ २१ २३)।

(घ) माया

वह कौन-सी शक्ति है जिसके कारण निर्गुण सगुण हो जाता है? वह है भक्त-प्रेम अथवा माया। गोस्वामीजी ने 'माया' का प्रयोग लौकिक और दार्शनिक दोनों ही अर्थों में किया है। लौकिक अर्थ में नट कौशल नारी की मोहकता, अथवा राक्षसों के अतिमानव कपट-कौशल को माया कहते हैं। दर्शन-शास्त्रों में प्रकृति और प्रपंच भी माया के पर्याय हैं और गोस्वामीजी ने उनका उल्लेख किया है (वि० १३६ १-७ रा० १ ११ १२) तथाच कौतुक का भी (वि० १८० ४) जो लीला का पर्यायवाची है।

प्रभा के स्तर से—गूढ़ दृष्टि से असत् को सत् मान लेना माया है और ऐसा करने से यह असत् संसार सत् भासता है (वि० १२ १२)। माया की समस्या पर दो दृष्टिकोणों से विचार हो सकता है—प्रभा से और तत्त्व से।

प्रभा के स्तर से माया स्वप्नवत् है। जब तक मनुष्य अर्थकर स्वप्न देखता रहता है, तब तक उसे दुःख होता रहता है। सांसारिक हानी थोड़े थोड़ा लोभ

परिवार सन्तान भूमि धन धाम प्रासाद आदि से सर्वोपम सुख मिल सकता है पर वास्तव में ये हैं 'सपनो पिन हैं (क० ७ ४१)।

सदमवजी निषाद के प्रति व्यवहार और परमार्थ के भेद का निरूपण करते हैं। जगत् व्यवहार है राम ब्रह्म परमार्थ है।

> जोग बियोग भोग भलमंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
> जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥
> धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
> देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥
>
> रा० २, ९१ ४ ८

> राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
> सकल बिकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥
>
> रा० २ ९२ ७-८

सत्य का तारतम्य—स्वप्न प्रातिभासिक प्रपंच व्यावहारिक और ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। जिस प्रकार जागरितावस्था से स्वप्न मिथ्या सिद्ध हो जाता है उसी प्रकार तुरीयावस्था से जागरितावस्था मृषा हो जाती है। जगत् हमें उसी प्रकार प्रतीत करता है जिस प्रकार कोई भयंकर स्वप्न। वह मिथ्या होते हुए भी ऐसे भासता है

> रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि॥
> जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥ रा० १ ११७
> एहि बिधि जगहरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
> जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥
>
> रा० १ ११७, १-२

तात्त्विक रूप से—तात्त्विक स्तर से तो 'माया' परब्रह्म राम की रचना-शक्ति है जिसने प्रपंच और चराचर की सृष्टि की है:

> मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥ रा० ७ ८६ ८
> अगम अपार घोर अति भारी। इहइ करइ माया महतारी॥
> तब प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥ रा० ६,५८ २ ३

मनोमाया—मिथ्याभिमान मैं-तू मुझे-तुझे, अथवा मेरे-तेरे का बृहद् रूप है। तुलसीदास जी कहते हैं—

> मैं अरु मोर तोर तें माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥ रा० ३ १४ २

इस माया के अनेक रूप हैं जैसे काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य द्रव्य दारा धन, दारिद्र विरहा इच्छा एषणाएँ। माया की सेना का उल्लेख आगामी किसी अध्याय में होगा।

विद्याविद्या—माया द्विविध है—विद्या और अविद्या। अविद्या से मनुष्य प्रपंच में लिप्त होता और कष्ट पाता है पर विद्या से वह भव-बन्धन से मुक्त होता और सुख पाता है। भगवद्भजन को विद्या व्यापती है उसे अविद्या इस प्रकार नहीं व्यापती जिस प्रकार नाटक के पात्र को आरोपित दुख नहीं व्यापता। तुलसीदास जी कहते हैं—

हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि बिद्या॥

रा० ७ ७५ख १

नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापइ माया॥

रा० ७, १०३क,ख

माया और ईश्वर—माया जीव-जगत् को ही प्रभावित करती है, ईश्वर को नहीं क्योंकि वह ईश्वर के अधीन है (रा० ७ ७७ख १)। ईश्वर और माया का संबन्ध पति-पत्नी का सा है। राम तो मायापति (वै० सं० ४ वि० १७७) और माया-शासक (गी० ५,२५,२) हैं और माया उनकी शक्ति है। माया स्वयं तो शून्य है, किन्तु वह ब्रह्म-रूपी अक के संपर्क से प्रकट हो जाती है (दो० २००)।

सत् अथवा असत्—सर्वश्री रामनरेश त्रिपाठी[1] विजयानन्द त्रिपाठी[2] विनायक राव[3] और गिरिवर शर्मा[4] का विश्वास है कि तुलसीदास जी माया को असत् मानते हैं अतएव शंकराचार्य के निकट हैं। उनकी इस धारणा का एक प्रधान कारण यह भी है कि तुलसी ने उन्हीं परम्परागत उपमाओं का उपयोग किया है जिनका शंकर ने। उदाहरणतः उन्होंने जगदाभास की तुलना स्वप्न से रज्जु-सर्प से अथवा शुक्ति रजत् से की है। किन्तु इतना कहने से तो यह प्रतीत नहीं होता कि तुलसीदास जी जगत् की सत्ता ही नहीं मानते प्रत्युत् वे उसकी सत्ता को अपेक्षाकृत तुच्छ समझते हैं। वे संसार की तुलना बादल की बिजली से करते हैं जो चंचल और अस्थिर है (देह मेह नेह बारु जैसे घन दामिनी) और वे उन लोगों का उपहास भी करते हैं जो यह घोषित करते फिरते हैं कि संसार झूठा है :—

झूठो है झूठो है, झूठो सबा जग संत कहंत ते जन्त लहा है।
ताको तहै सठ संकर कोविद, कादत दंत, करंत हहा है।
जान पनी को गुमान बडो तुलसी के बिचार गंवार महा है॥ क० ७ ३९

त्रिपाठी जी का झुकाव—श्री त्रिपाठी हरि का कथन है कि ऐसी उपमाएँ तो उस जगत् के लिए साधु हैं जो हरि विहीन है किन्तु तुलसी का समस्त संसार तो सीता राम-मय (रा १ ७म २) है अतएव तुलसी-वाले जगत् के लिए ये कैसे साधु हो सकती हैं? तुलसी का झुकाव सगुण ब्रह्म की ओर है और भक्ति की ओर भी। किन्तु जिस प्रकार तुलसी के राम निर्गुण-सगुण से ऊपर हैं उसी प्रकार सीता जी (अर्थात् उनकी शक्ति) भी सदसत् से परे हैं।

सुन्दरतम कल्पना—तुलसी की सुन्दरतम कल्पना विनयपत्रिका के निम्न लिखित पद में अभिव्यक्त है

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥

---

१ तुलसीकृत रामायण समीक्षा पृ २३१ १४

२. ब्रजरीतिक का रहस्यीकरण अध्याय १६३ पृष्ठ २०२ २०६

३ रामचरित मानसकाव्य पृ ६२-६४ अयोध्याकाण्ड पृ १३०-१३८, किष्किन्धाकाण्ड, १० ५३ ५४

४ गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार, तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ ६३ १३०

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने॥ १११॥

भक्ति और माया—तुलसीदास*जी ने भक्ति को रामप्यारी और माया को नर्तकी बताया है। कवि ठहरे, किन्तु एक दो स्थलों पर उन्होंने जगज्जननी जानकी जी की भी उपमा माया से दे डाली है। अस्तु, इससे तुलसीदास जी के सिद्धान्त पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। नर्तकी की कल्पना तो अध्यात्म रामायण' से ली गयी है

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
रा० ७ ११५ख,४ ५

स्वबोधा तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी॥ अ० रा० २, ६, ३६
राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
सरक्षणाय सुर-मानुष तिर्यगादीन्
देहान्बिभर्षि न च देह गुणैर्विलिप्त
स्वप्नो विमेत्यधिक मोहकरी च माया॥ अ० रा० २ ३ ६२

माया को पार करने का उपाय—माया को अभिभूत करना अत्यन्त दुष्कर है किन्तु पुण्य ज्ञान भक्ति और रामकृपा से ऐसा सम्भव है। ज्ञानमार्ग अनेक संकट और बाधाओं से आवेष्टित है (रा० ७, ११८ क-ख) काल स्वभाव और कर्म (भाग्य) का भी विवेक पर प्रभाव पड़ता है (रा० १ ६ १ २)। अतएव भगवान् राम ही प्राणी को भव-सागर से पार करते हैं। भगवान् की माया से जीव भ्रान्त हो जाते हैं और फिर उन्हीं की कृपा से मुक्त हो जाते हैं।

नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥ रा० ४ २ २

(ङ) त्रिमूर्त्ति

राम के अधीन—तुलसीकृत रामायण में रामचन्द्र जी ब्रह्मा विष्णु और महेश के नचाने वाले हैं (रा० २ १२६ १)। उनके एक अंश से त्रिमूर्तियाँ उत्पन्न हुई हैं (रा० १ १४६, ६)। राम इनकी कल्पना से अतीत हैं 'जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को' (रा० २ २४० ५)। हनुमान् जी ने रावण से कहा था कि यदि राम तुम्हारे प्रतिकूल हो जायँ तो सहस्रों शिव सहस्रों विष्णु और सहस्रों ब्रह्मा तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते —

संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥ रा० ५ २२ ८

विष्णु जी के, और विशेषतः ब्रह्माजी और शिवजी के सम्बन्ध में लक्ष्मण (रा० २, २६ ८, ६ ७४ ख १४) हनुमान् (रा० ५, २२, ७) और अंगद (रा ६ २६ २) के द्वारा अवज्ञापूर्ण शब्द उच्चरित हुए हैं। वैदिक-काल में त्रिमूर्तियों को जो महत्ता अनवरत

तदनन्तर पुराण-काल में अलग अलग एवं संघटित रूप से प्राप्त भी यह घट चली थी। सर्वप्रथम ब्रह्माजी की महत्ता पर कुठाराघात हुआ था और तुलसीदास जी के समय में तो परात्पर सत्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित-सा हो गया था।

विभूति-पत्नियाँ—उमा, लक्ष्मी और ब्राह्मी की गरिमा में भी ह्रास हो गया था। आदि-शक्ति के भ्रूकटाक्ष मात्र से असंख्य उमाएँ, लक्ष्मियाँ और सरस्वतियाँ उत्पन्न होती हैं जो राम-विवाह के अवसर पर गीत गाने के लिये अन्य देवियों के साथ उपस्थित थीं (रा० १ ३२१ ५-७, १ ३१४ ६)। उस समय उनके पतिदेव भी विराजमान थे (रा० १ ३२ ६)। तुलसीदास जी ने तो सीता-शोभा की तुलना सरस्वती जी लक्ष्मी जी और पार्वती जी की शोभा से करने में कौशल-पूर्वक संकोच किया है (रा० १ २४६ २४७)। आदि शक्ति की कल्पना का आधार ऋग्वेद का वागाम्भृणी सूक्त (१० १२५) प्रतीत होता है।

राम और विष्णु—तुलसीदास जी कभी-कभी राम का तादात्म्य विष्णु जी से कर देते हैं क्योंकि राम के लिये उन्होंने 'श्रीरमण' 'रमानिवास' 'हृषिकेशम्' लिखा है। राम कभी तो विष्णु हैं और कभी उनसे बहुत ऊँचे हैं। इन्द्र ने उन्हें 'रमानिवास' (रा० ६ ११२ ११३) देवों ने 'रमेश' (रा० ६ १२४ छं० ४) और शिवजी ने 'श्री रमण' 'रमारमण' (रा० ६ ११ छं०) कहा है। मन्दोदरी राम को विष्णु मानती है (रा० ६ १०१ छं०)। रावण के निधन पर ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि तो उपस्थित होते हैं विष्णु नहीं। स्यात् तुलसीदास जी ने उस समय अपने मन में राम और विष्णु का तादात्म्य कर लिया हो। यदि अयोध्यावासी गौरी शिव गणेश सूर्य और विष्णु की अर्चना करते हैं तो भरत चित्रकूट में शिव-विष्णु का युक्त-गान करते हैं (रा० २ २७२ ४ ६ २ ३१२)। राम-विष्णु का तादात्म्य होने पर भी लक्ष्मी और विष्णु, राम को अवध पर आरूढ़ देखकर जनकपुरी में मोहित हो जाते हैं (रा० १ ३१६ ३)।

शैव-वैष्णवों का ऐक्य—तुलसीदास जी ने शिवजी के लिए अत्यन्त आदर भक्ति का प्रदर्शन उनका यथावत् चित्रण तथा मंगलाचरणों में स्मरण किया है। दक्षिण के रामेश्वर में राम-द्वारा शिवलिंग स्थापना हुई है। राम ने शिवजी और शिवानुयायियों के लिये अत्युच्च आदर प्रदर्शित किया है यद्यपि अधिकतर तो शिव जी ने ही राम की पदार्चना की है। तुलसी के लिए राम तो शिवजी और विष्णुजी से बहुत ऊँचे हैं क्योंकि वे दोनों ही उनकी सेवा में सदासीन उपस्थित रहते हैं।

(च) अवतार

अवतार का अर्थ—अवतार का शाब्दिक अर्थ है 'उतरना' अर्थात् भगवान् का पृथ्वी पर उतरना। लोग समझते हैं कि भगवान् गर्भ में आते और जन्म लेते हैं यह समझ ठीक है किन्तु लोकोक्ति मात्र नहीं। ऋक् और यजुर्वेद में लिखा है 'प्रजा पतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते' अर्थात् भगवान् गर्भ में रहते और अनुत्पन्न होते हुए भी अनेकधा उत्पन्न होते हैं। उक्त श्रुति में 'अजायमान' और 'विजायते' विशेष द्रष्टव्य हैं। 'जायते' न लिखकर 'विजायते' क्यों लिखा गया उपसर्ग की क्या आवश्यकता थी? अतएव शंकराचार्य जी ने लिखा कि भगवान् अवतार

के समय उत्पन्न होते हुए-से प्रतीत होते हैं। ईसाइयों में डोसिटिस्ट सम्प्रदाय मानता है कि ईसा मसीह का शरीर दिखावटी शरीर था। भारतीय शास्त्रों में अवतार का शरीर अप्राकृत माना गया है अतएव तुलसीदासजी ने रामावतार के निमित्त 'प्रकट' शब्द का उपयोग किया है भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी

रा० १ १९१ छ०

अवतार-शरीर का लक्ष्य—ऊपर बताया गया है अवतार का शरीर प्राकृत अर्थात् त्रिगुणात्मक नहीं होता। वह अप्राकृत होने के कारण जन्म-मरण रहित होता है। राम का शरीर 'इच्छा' का बना हुआ था—

इच्छामय नर वेष सवारे। होइहहिं प्रगट निकेत तुम्हारे॥ रा० १ १९१ १

यह शरीर 'इच्छामय' 'निजेच्छा निर्मित' 'त्रिगुणातीत' एवं 'चिदानन्दमय' था

निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ रा० १ १९२

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥

रा० २ १२६, ५

अवतार के समय राम घन-श्याम वर्ण के मायाधारी और चारों हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए थे। उन्होंने कौसल्या की प्रार्थना पर बाल रूप धारण कर लिया था (रा० १ १९१ छं ४)।

अवतार का समय और उद्देश्य—कृष्ण जी की भाँति गोस्वामी जी भी कहते हैं कि जब-जब दुष्ट राजाओं का अत्याचार प्रजा को अत्यन्त पीड़ित करता है तब-तब भी ब्राह्मण महर्षि मुनि देव आदि की रक्षा करने और धर्म-व्यवस्था की पुनः स्थापना के लिये भगवान् अवतार लेते हैं (वि० ४६ ४ २४८ २ गी० १ ४७ २)। वे अपनी इच्छा से (दो ११६ १२४) और भक्त के हित के लिए ऐसा करते हैं।

धरहिं भगत हित मनुज शरीरा। रा० ७ ११३ छ, १२

नर तन धरेहु सन्त सुर काजा। रा० २ १ ६ ६

अवतार का परिकर—भगवान् अपने दलबल के साथ अवतार लेते हैं। अकेला तो प्राकृत राजा भी कहीं नहीं आता-जाता। अन्यत्र[1] लिखा मिलता है कि रामावतार के समय विष्णु जी राम हो गये लक्ष्मी जी सीता शेषनाग जी लक्ष्मण चक्र भरत और शंख शत्रुघ्न। तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के लिए अनन्त (रा० ६ ५३ ४) शेष (रा० ६ ७२ ११) आदि शब्दों का अनेक बार प्रयोग किया है। भगवान् के लिये जो भालू और बानर युद्ध-स्थल में लड़ मरे थे उन्हें इन्द्र द्वारा जीवित कराया गया वे देवताओं के अंशावतार थे (रा० ६ ११ १ ८)।

दशावतार—यों तो अवतारों की संख्या भागवत संहिता के अनुसार ३९ और भागवत (२ ७ १ ५१) के अनुसार २२ है पर मुख्यावतारों की संख्या दस मानी जाती है यथा

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः

रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किन्च ते दश।

---

१ अध्यात्म रामायण ७ ६ ५७

विनय-पत्रिका में गोस्वामी जी ने इन्हीं दस का उल्लेख किया है उन्होंने राम, कृष्ण बुद्ध और कल्कि को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। यद्यपि ब्रज में गोस्वामी जी ने कारणवश कृष्ण के दर्शन राम के रूप में किये थे तथापि भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी जिसे उन्होंने कृष्ण गीतावली में प्रकट भी किया है। तुलसीदास जी ने 'विनय पत्रिका' के ३२वें पद में किसी भी अवतार की इतनी प्रशंसा नहीं की जितनी बुद्ध की की किन्तु वेदों की निन्दा करने के कारण 'दोहावली' के ४६४ वें दोहे में उन्हें निन्दित भी समझा। इतिहासकारों का मत है कि बौद्धों ने प्राचीन आर्य-धर्म का ही विरोध नहीं किया अपितु संस्कृति और आर्याचार का भी अतएव उन्हें भारत से लुप्त होना पड़ा था। जैनियों ने धार्मिक मतभेद रखते हुए भी प्राचीन आचार और संस्कृति से आनुकूल्य रखा अतएव वे आज भी भारत में विद्यमान हैं। तुलसीदास जी इष्टदेव वादी थे उनके इष्टदेव थे रामचन्द्र जो दशरथ-नन्दन विष्णु जी के अवतार (रा० १ ४० ७ ५० १) परब्रह्म के अवतार (रा० ७ ७२ क १ ५० छं०) तथा स्वयं सच्चिदानन्द भगवान् [रा० ७ २५, ७१ (ख) ३ ७२ (क)] थे। अतएव सीताजी भी लक्ष्मी जी से बड़ी हैं (रा० १ १४० ३)।

राम के प्रति तुलसीदास जी का भाव—तुलसीदास जी आजन्म स्मार्त वैष्णव रहे। उनके हृदय में रामभक्ति का उदय इस धारणा से हुआ कि राम विष्णुजी के अवतार हैं। राम के इष्टदेव बन जाने पर, तुलसी को 'अध्यात्म रामायण' एवं राम परक दोनों उपनिषदों से यह प्रेरणा मिली कि राम और विष्णु एक ही हैं। निंबार्क चैतन्य जैसे महापुरुषों के अनुयायियों के सम्पर्क में आकर उनकी राम-निष्ठा और भी प्रदीप्त हो उठी। वल्लभाचार्य जी श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म से भी ऊँचा मान कर, भागवत के अनुसार, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का प्रतिपादन करते थे। जब वल्लभाचार्य जी ने सोरों में भागवत की कथाएँ कही थीं तब गोस्वामी जी लगभग १५ वर्ष के थे और उन्होंने आचार्य जी की कथा अवश्य सुनी होगी। आचार्य जी का तथा उनके अनुयायियों का जनता पर प्रचुर प्रभाव पड़ा था। तुलसीदास कैसे अछूते रह सकते थे उन्होंने भी अपने राम को परात्पर ब्रह्म घोषित कर दिया।

सूर सूसुर

त्रिमूर्तियों के अधीन देव—त्रिमूर्तियों के अधीन अनेक देवी-देव हैं। ऋक और अथर्व वेदों के अनुसार उनकी संख्या तैंतीस है जिनमें एकादश स्वर्ग के एकादश पृथ्वी के और एकादश जल के हैं। वैदिक काल में देवियों की संख्या कम थी जो पौराणिक काल में वृद्धिगत हो गयी।[1] उक्त तीन प्रकारों के अतिरिक्त तीन प्रकार और थे—इष्टदेव, कुलदेव और ग्रामदेव। अनन्य भक्ति के निमित्त भक्त जिस एक देवता को मनोनीत कर लेता है उसे इष्टदेव अथवा इष्ट-देवी कहते हैं (दो० ३२१) यथा तुलसी के इष्टदेव राम थे। वंश-कुल की संरक्षा जिस देवता से होती है उसे कुल-देव अथवा कुल-देवी कहते हैं यथा राम के कुल-देव सूर्य थे (रा० १ १२२, छ० २)। ग्राम अथवा

---

१ वैदिक मिथोलोजी, पृ० १२४ १२५

नगर की संरक्षा के लिए भी ग्राम-देवी और ग्राम-देव होते हैं। राम की माताओं ने यह सुनते ही कि कल दशरथ जी राम का राज्याभिषेक करेंगे ग्राम-देवी की पूजा की थी (रा० २, ७ ५)।

पंच देव—पुराण-काल में पंच देवोपासना प्रचलित हो गयी थी। पंच देव हैं गणेश दुर्गा शिव सूर्य और विष्णु। अयोध्यावासियों ने चित्रकूट पर इनकी पूजा की (रा० २ २७२ ४ ५)। सीता-राम ने गौरी और गणेश आदि की अर्चना विवाह-मण्डप में की थी (रा १ ३२२ छं० १)। स्वयं तुलसीदास जी ने निम्नलिखित देवताओं की प्रार्थना की है गणेश जी (वि० १ वी १ १०३ ६) हनुमान् जी (वि० २१ २६) देवी जी (वि० १५ १६) वीरभद्र जी (वि० ३७-३९) नरनारायणजी (वि० ६०) सीता जी (वि० ४१ ४२) लक्ष्मण जी (वि० ३७-३८) भरत (वि० ३९) शत्रुघ्न (वि० ४०) बिन्दु माधव (वि० ६१ ६३) शिवजी (वि० ३-१४)।

देवताओं का व्यवहार—तुलसीदास जी ने लिखा कि देव विमानों में बैठकर आकाश में सपत्नीक विचरण करते हैं। रामोत्सवों पर देव-पत्नियाँ नाचती और पुष्प वर्षा करती हैं उनके पति भी गाते-बजाते ढोल पीटते महत्त्वपूर्ण अवसरों पर पुष्प वर्षा करते तथा नाचते हैं और ऐसे अवसर 'रामचरित मानस' में न जाने कितने बार आये हैं। देवताओं में संवेग भी होते हैं यथा चिन्ता भय आश्चर्य हिंसा आदि मनोविकार। वे अनुकूल घटना के घटने पर प्रसन्न होते और निराश होने पर रोते हैं। वे रावण के उत्पात से डरते-भागते और रोते-चिल्लाते थे। वे राग-द्वेष विवर्जित नहीं थे। दूसरे की मति भ्रष्ट करने के लिए वे सरस्वती और कामदेव का उपयोग करते थे। अनिच्छुक कामदेव ने शिवजी के मन को विचलित करने का प्रयत्न किया। जब नारद-तपस्या से भय उत्पन्न हुआ तो कामदेव को पुष्पबाण चलाने का कार्य सौंपा गया। मन्थरा की मति को मोथरा करने के लिये सरस्वती जी मनोनीत हुईं चित्रकूट में भरत की मति को पलटने के लिए सरस्वती जी का पुनः आह्वान हुआ परन्तु इस बार सरस्वती ने इन्द्र को करारी डाट पिलाई और वे अपने लोक को लौट आयीं (रा० २ २९४ १ ८)।

देवता कभी-कभी मनुष्यों की शक्ति एवं पुण्य की परीक्षा लेते हैं। सुरों ने हनुमान् जी की परीक्षा लेने सुरसा को भेजा था। जब कभी कोई अवतार होता है तो मानव अथवा पशु के शरीर-रूप में देवता भी अवतीर्ण होते हैं जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। यद्यपि अमर हैं तथापि वे मृत्यु से डरते हैं

> सठहु सदा तुम्ह मोर मरायस। अस कहि कोपि गगन पर धायस॥
> हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
>
> रा० ६, ६६ ६-७

उन्हें मानव सहायता की अपेक्षा रहती है। दशरथ जी ने इन्द्र की सहायता की थी और ज्योंही शंबर ने सुना कि रावण ने देवताओं का पीछा किया तो वह सहायतार्थ उठ्ठा और रावण का पैर पकड़ कर उसे भूमि पर ले आया (रा० ६ ६६ ८)। देवता सांसारिक सुषमा पर यों ही लट्टू हो जाते हैं जनकपुर और अयोध्या की जो सजावट राम के विवाह और अभिषेक पर हुई थी वे उससे मुग्ध थे। वे मनुष्यों की

स्त्रियों पर मोहित हो जाते और उनसे अनुचित सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। यहाँ हरपत गौतम-पत्नी अहल्या और शम्बर-पत्नी वृन्दा दोनों परम साध्वी और सती थीं उनके साथ कपट का व्यभिचार देवताओं के लिए कलंक-मात्र है।

तुलसी की उग्रता—कदाचित् इसीलिए तुलसीदासजी ने देवताओं का लाघव दिखाया और उन्हें धिक्कारा है। उनकी दृष्टि में देवता स्वार्थी असमर्थ अयोग्य निष्ठुर, मनोमलीन मक्कार दुष्टकर्मा होते हैं। वे सेवा अधिक हैं देवा कम। वे कुत्सित हैं उनका निवास उच्च और कार्य नीच है उन्हें दूसरे की सम्पदा असह्य है। वे मनुष्यों में भय शोक व्यथा आदि का संचार करते हैं। भरत-मिलाप से देवताओं को बुकबुकी होने लगी थी (वि० १४५ १४६, २६४ १६३ रा० २, ११, ३, २४० ७ २६५)।

इन्द्र का रूप—ऋग्वेद का सबसे चतुर्थांश इंद्र की स्तुति से परिपूर्ण है किन्तु कालवश उसकी महिमा घट गयी कृष्णजी ने भी उसमें सहयोग दिया। 'रामचरित मानस' में रामोत्सवों पर पुष्प वर्षा करने के लिए इंद्र देवताओं के साथ रहे और उन्होंने जनकपुर और अयोध्या में अन्य देवताओं के आश्चर्य भय और सुख में भाग लिया। तुलसी ने तीन बार इंद्र और अहल्या के व्यभिचार का अपरोक्ष उल्लेख किया है और नारद-व्यामोह के उपाख्यान में देवराज के द्वेष का भी। चित्रकूट में जनकागम इन्द्र की चिन्ता और भय का कारण हुआ उसने वहाँ अयोध्यावासियों के साथ जो कुचाल चली उसे रामचन्द्रजी ने ताड़ लिया था। इस कुचाल पर तुलसी को रोष आ गया। वे बोले —

> कपट कुचालि सीव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
> काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीति॥
>
> रा० २ ३०।१ १ २

तुलसीदासजी को राम से पुष्टि भी मिली।

> लखि हिय हँसि कह कृपा निधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥
>
> रा० २,३ १ ८

देवेतर योनियाँ—तुलसीदासजी ने देवताओं के अतिरिक्त देवयोनियों तथा अन्य पूजनीय प्राणियों और वस्तुओं का उल्लेख किया है यथा शिवगण (रा १ ९२, ४ ९४ ६ ३ १६ ६ २०क १ ८७ १ ४)। अप्सरा गन्धर्व किन्नर आदि राम राज्याभिषेक तथा अन्य शुभ अवसरों पर गीत गाते, और विश्वास चित्रकूट में राम को प्रणाम करने आते हैं (रा० २ १३१ १)। सीताजी ने सिद्धियों को बुला भेजा जिससे वे अयोध्या में राम की बरात का आतिथ्य करें (रा० ३०५, ८)।

गो-ब्राह्मणादि—गाय-बछड़े ब्राह्मण और अतिथि आदरणीय होते हैं। चित्रकूट में अयोध्या और जनकपुर के निवासियों तथा अन्य लोगों ने भी देवार्चन और पितृ-श्राद्ध के पश्चात् फलाहार किया था (रा २, २०९)। गाय गंगा, यमुना-यमुनादि नदियाँ बड़ पीपल तुलसी आदि वृक्ष गोपी तथा हिमालय विन्ध्याचल और चित्रकूट पर्वत भी पवित्र माने गये हैं।

जीव

व्याख्या के दो दृष्टिकोण—गोस्वामीजी ने जीव की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की है—मनोवैज्ञानिक और आतिभूतिक। पहले दृष्टिकोण से जीव अभिमानी जड़ और परिच्छिन्न है अतएव वह सुखी-दुःखी ज्ञानी-अज्ञानी मानी-अभिमानी कहा जाता है (रा० ७ ११३ २ ४ १८७ १ १३९, ४)। आतिभूतिक दृष्टिकोण से वह अविनाशी नित्य चेतन सुखराशि और अमल है (रा० ७ ९६ २ ४ १२ ३ ७ १९७ १)। माया के प्रभाव से जीव इस प्रकार कलुषित हो जाता है जिस प्रकार भूमि के सम्पर्क से जल (रा० ४ १५ ३)।

जीव और ईश्वर—जीव ईश्वर का अंश है। जो अपने को पूर्ण अग्नि और गंगा समझते हैं वे मूर्ख हैं। भले ही मदिरा में गंगाजल हो पर सन्त उसका आचमन नहीं करते, किन्तु जब वह गंगाजी में डाल दी जाती है तो गंगाजल ही हो जाती है। ऐसा ही अन्तर जीव और ईश्वर में है। जीव न तो माया को जानता है न ईश्वर को और न अपने को ही पहचानता है। ईश्वर ही बन्ध और मोक्ष प्रदान करता है अतएव राम को ही अपना गुरु पिता माता भाई पति और देव समझना चाहिए (रा० १ ९३ १ २ २६१ ३ ३ २० ३ २० ५)। जीव ईश्वर के अधीन है ईश्वर स्वतन्त्र है जीव अनेक हैं किन्तु ईश्वर एक है अतएव जीव का तादात्म्य ईश्वर से नहीं हो सकता (रा० ७ ११४ २ ४ ७ १८७)। जीव के सम्बन्ध में गोस्वामीजी का दृष्टि-कोण अद्वैतवादी का-सा नहीं है। यदि कहा जाय कि मायाच्छन्न जीव ईश्वर के अधीन है अन्यथा वह ईश्वर ही है तो यह स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ अद्वैतवादी शंकराचार्य जी गीता के 'ममैवांशो जीव' (१५, ७) की व्याख्या करते समय 'अंश' को 'अंश इव' मान लेते हैं वहाँ तुलसीदासजी अड़े रहते हैं

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। (रा० ७ ११७ १

तीन अवस्थाएं—जीव की तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति (रा० ७ २०० दो० २४६)। निद्रा में जीव शिवतुल्य है स्वप्न में वह सृष्टि करता है और जाग्रदवस्था में जड़ दुःखी और सांसारिक हो जाता है (दो० २४६)। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने तुरीयावस्था को मुक्त जीवात्मा के लिए रख छोड़ा है क्योंकि वह चतुर्थ अवस्था त्रिगुणातीत है, यद्यपि मेरी विनीत सम्मति में तुरीयावस्था सभी तीनों अवस्थाओं का आधार है अतएव वह जीव में सदा विद्यमान रहती है।

जीव विभाजन—तुलसीदासजी ने जीवों के चार विभाग किए हैं उनके विभाजन-सिद्धान्त सदैव भिन्न रहे। वे चार हैं—(१) मुक्ति के लिए मानव प्रयत्न (२) व्यक्तिगत स्वभाव (३) पारस्परिक व्यवहार, (४) सिद्धान्त रहित परिसंख्या। प्रथम विभाग के अनुसार जीव विषयी साधक और सिद्ध है (रा० २ २७७ २) द्वितीय के अनुसार है पटलसम आम्रसम अथवा पनससम (रा० ६ ११४ सं०) तृतीय के अनुसार है मित्र शत्रु और उदासीन और चतुर्थ के अनुसार है साधक सिद्ध विमुक्त उदासीन कवि, कोविद, कृतज्ञ संन्यासी योगी शूर, तपस्वी ज्ञानी, धर्मात्मा पंडित विज्ञानी।

जीव-प्रकार और योनियाँ—गोस्वामीजी जीव के परम्परागत चार प्रकार बताते हैं उद्भिज्ज, स्वेदज अंडज और जरायुज (रा० ७ ११८ ४)। जीवों की चौरासी लक्ष योनियाँ होती हैं, जिनमें जीव भ्रमण करता है और अन्त में मानव-शरीर को प्राप्त करता है (रा० ७ ६६ २ ३)।

पुनर्जन्म—जीव अपना जीर्ण शरीर उसी प्रकार मृत्यु के समय त्याग देता है जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने वस्त्रों को (रा० ७ १८०)। भगवान् शिव के शाप से काक भुशुण्ड को सहस्रों जन्म लेने पड़े उन्हें कभी देवता कभी मनुष्य कभी ब्राह्मण और अन्त में काक होकर शरीर धारण करना पड़ा था (रा० ७, ११७ ३, १८१, १ ८)। ईश्वर से विमुख जीव काल कर्म और स्वभाव के वश हो कर भटकता डोलता है (रा० ७ ६६ ३) और अपने कर्मों के अनुसार जन्म-मरण के कष्ट अनेक योनियों में पाता है (रा० २ १२, २)। जो अपने गुरु की निन्दा करता है वह मण्डूक बनता है, जो देवता की निन्दा करता है वह रौरव नरक में जाता है, जो सन्तों को गालियाँ देता है वह छछूंदर बनता है और जो मूर्ख प्रत्येक मनुष्य को कोसता है वह चमगादड़ बनता है (रा० ७ २०७ १२ १४)।

मानव-शरीर की महिमा—शरीर पंच तत्त्वों से अर्थात् पृथ्वी अप् तेज वायु और आकाश से निर्मित होता है, (रा० ४ १२, २)। शास्त्रों में सूक्ष्म शरीर की मात्रा का निर्देश किया गया है किन्तु तुलसीदासजी ने इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। मानव शरीर की बड़ी महिमा है (रा० ७ २०७ ५ ६)।

> सुर तव सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
> नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥
> सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद-मंद तर॥
> काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

निष्कर्ष—तुलसीदासजी जीव को दो दृष्टिकोणों से देखते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीव बड़ परिच्छिन्न परवश सुखी-दुखी और अज्ञानी ज्ञानी है (रा० ७ ११३, २ ४, १८७ १ ११६, ४ ४ १३, ३)। आतिभौतिक दृष्टि से वह नित्य अविनाशी चेतन शुद्ध और सुखी है (रा० ७ ६६ २ ४ १२, ३ ७ १२७ १)। शुक और मर्कट के उदाहरणों से प्रतीत होता है कि जीव मुमत शुद्ध था जो मायावश बद्ध हो गया (रा० ७ १२७ २)। जब गोस्वामीजी जीव को मुमत चेतन सनातन और शुद्ध मानते हैं तो वे सांख्य योग और वेदान्त के निकट आते और जड़वादी न्याय वैशेषिक और मीमांसा से दूर हटते हैं। जब वे जीव को नित्य और चेतन मानते हैं तो रामानुज निम्बार्क और वल्लभ आदि आचार्यों के निकट हो जाते हैं। जीव को ईश्वर का अंश मानकर वे जीवात्मा को सर्वव्यापक मानने वाले अद्वैत सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा से अपनी असहमति प्रकट करते हैं और वैष्णवाचार्यों से सहमत होते हैं। तथापि उन्हें विश्वास है कि 'सोऽहम्' की अखण्डावस्था भ्रममायादि को खण्ड-खण्ड कर देती है अतएव जीवात्मा चेतन और आनन्द स्वरूप है और वह आत्मा उन्हें शंकर के निकट और वल्लभ के निकटतर पहुँचा देती है। किन्तु गोस्वामी जी जीव को कुछ आचार्यों की भाँति शुद्ध सत्ति भी मानते हैं पर वह वल्लभाचार्यजी

ऐसा मानने के लिए अपनी सम्मति प्रदान कर देंगे ? गोस्वामीजी मानते हैं जीव एक बार माया के अधीन हो चार प्रकार की जीव कोटियों और चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कर त्रितापों का अनुभव कर सुख-दुख पाता रहता है। मानव के स्तर से तो योनि का निर्धारण कर्म के अनुसार होता है' विश्व के स्तर से माया के द्वारा। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति रामकृपा से मिलती है और उसी कृपा से मुक्ति का अवसर भी प्राप्त होता है (रा० ७ १६७ ४)। इस प्रसंग में आचार्य वल्लभ के पुष्टि मार्ग का स्मरण हो आता है किन्तु गोस्वामीजी वल्लभादि आचार्यों के मर्यादा-मार्ग का निराकरण नहीं करते हैं, और इसी कारण मानव-शरीर की महिमा भी गाते हैं। वे ऐसे जीवों को नहीं मानते जो मध्वकल्पना के अनुसार नित्यबद्ध होने के कारण नित्य दुःखी हैं। तुलसी के अनुसार तो यद्यपि जीव को अनेक जन्म धारण करने और प्रभूत कष्ट सहने पड़ते हैं तथापि आध्यात्मिक परामर्श और भगवत्कृपा के द्वारा सब के लिए सदैव खुले रहते हैं।

मुक्ति

आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप से पीड़ित हो मनुष्य इनसे मुक्ति चाहता है। बार-बार शरीर धारण करने से संसार का दुःखद चक्र चलता रहता है उससे छूट जाना ही अभीष्ट है। मुक्ति, मोक्ष निर्वाण और अपवर्ग ये चारों शब्द अभावात्मक हैं। इनके द्वारा दुःख के त्याग पर आग्रह है। क्या परम कल्याण का कोई भावात्मक रूप भी है और यदि है तो वह क्या है ?

मुक्ति का स्वरूप—जिस प्रकार चन्द्र रात्रि का भूषण है और सूर्य दिन का उसी प्रकार तुलसी के मत से दास का भूषण भक्ति भक्ति का ज्ञान, ज्ञान का ध्यान ध्यान का त्याग और त्याग का शान्तिपद है। यह पद सम्पूर्णतया शुद्ध और निष्कलंक है। जो उसको प्राप्त करता है वह सुखसागर पर निवास करता है। इससे विविध प्रकार के पापों से उत्पन्न दुःखों का निवारण होता है। शान्ति-रस से अहंकारशान्ति राग-द्वेष एवं क्रोध-वासना का अस्त हो जाता है। शान्ति की अतीन्द्रिय अवस्था भेद-वासना विवर्जित और अत्यन्त शुद्ध है (वै० सं० ४६ ६२)। शान्ति की इस अवस्था के लिए गोस्वामी जी भक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्होंने इसके निमित्त अन्य शब्दों का भी उपयोग किया है यथा निर्वाण (रा० ७ ११४ ११५) परमगति और परमपद (रा० २ ८४, ३, ७ २०३ १)।

मुक्ति के प्रकार—तुलसीदासजी ने दो प्रकार की मुक्ति का उल्लेख किया है, अर्थात् विदेह मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति का और मुक्त पुरुषों के भेदों का भी (दो० २२५)। उन्होंने परम्परागत चार प्रकार की मुक्ति की भी चर्चा की है—सालोक्य सामीप्य सारूप्य और सायुज्य। सा लोक्य मुक्ति के प्रकरण में गोस्वामीजी ने राम के लोक का निर्देश नहीं किया है स्यात् वे वैकुण्ठ को ही राम का लोक मानते हैं जो 'निजधाम' 'मधुधाम' 'निजपद' आदि शब्दों के द्वारा अभिहित हुआ है। मारीच ने 'निजपद' प्राप्त किया (रा० ३, १४ ८-९, ३५) बाली (रा० ४ १२ १) और कुम्भकर्ण (रा० ६ ९३) निजधाम पहुँचे। जटायु को 'हरिधाम' अथवा 'मधुधाम' मिला (रा० ३, ४६)

तुलसीदास जी ने सामीप्य (फ्रैटरनिटी विद् गॉड) का कोई उदाहरण नहीं दिया है। जटायु को सारूप्य मुक्ति भी प्राप्त हुई वह गृध्र-रूप को छोड़ भगवद्रूप हो गया (रा० ३ ४ १)। जटायु को ही नहीं उन सभी राक्षसों को भी जो युद्धक्षेत्र में सब मरे थे सारूप्य प्राप्त हुआ (रा० ६ १४० ३ ४)। शबरी, कुम्भकर्ण और रावण को सायुज्य-मोक्ष प्राप्त हुआ (रा० ३ ४४ छ ६२, ४ १२५ ५)। भगवदीय तत्त्व में पूर्णतः घुलमिल जाने को सायुज्य कहते हैं। यह सायुज्य शबरी को राम के चरणों के द्वारा तथा रावण और कुम्भकर्ण को राम के मुख-द्वारा प्राप्त हुआ। तुलसी के मत से सायुज्य मुक्ति सालोक्य (हरिलोक) से अधिक श्रेयस्कर है। राम स्वयं घोषणा करते हैं कि जो रामेश्वर की यात्रा करेगा वह देहत्याग के पश्चात् सीधा मेरे लोक जायगा और जो मेरे बनाये सेतु तक जायगा वह भवसागर को पार कर जायगा किन्तु गंगाजल ले जाकर जो वहाँ चढ़ायेगा वह सायुज्य पायगा (रा० ६ ५, १ २)।

कैवल्य—गोस्वामी जी ने मुक्ति के अर्थ में 'कैवल्य' का प्रयोग किया है (वि० १ ८ ४३ २)। 'केवल' और 'केवलत्व' शब्दों का प्रयोग श्वेताश्वतर (१ २) और मैत्री उपनिषद् (६ २१) में क्रमशः हुआ है। सांख्य और योग दर्शन के ग्रन्थों में यह शब्द पर्याप्त परिचित है। तुलसीदासजी ने इसकी व्याख्या तो नहीं की है पर उन्होंने इसका प्रयोग 'रामचरितमानस' के लंकाकाण्ड के तृतीय श्लोक में इस आशय से किया है कि भगवान् सिद्ध सन्तों को कैवल्य भी प्रदान करते हैं। काक ने गरुड़ को बताया कि कैवल्य परमपद और भी दुर्लभ है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद ॥ रा० ७ २०३ २

प्रतीत होता है तुलसीदास जी को ऐसा लिखते समय पुरुषार्थ चतुष्टय—धर्मार्थकाम मोक्ष—का परम पुरुषार्थ अभीष्ट था।

अपुनरावृत्ति—मुण्डकोपनिषद् (१ २ ६) के आधार पर आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मुक्त जीव की पुनरावृत्ति मानी है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास मोक्ष से प्रत्यावर्तन नहीं मानते

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भए जहँ नहिं फिरे ॥ रा० ३, ४४ छं

उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता से यह समर्थन प्राप्त है

यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ८ २१

मुक्ति और भक्ति—किन्तु मोक्ष किस प्रकार प्राप्त हो? गोस्वामी जी कहते हैं कि ज्ञान भी तन्निमित्त एक साधन है (रा० ७ २०३ १)। गीता के अनुसार, ज्ञान से सब कर्म दग्ध हो जाते हैं (४ ३७) इससे अधिक पवित्र अन्य कोई पदार्थ नहीं (४ ३८) और यह अन्ततोगत्वा मोक्ष-प्रद है (४ ३२, ३३ ३५, ३६)। कठ (६ १०) श्वेताश्वतर (१ ८ ११, ३ १२) और मैत्री (६ ३४) तीनों ही उपनिषदों ने ज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार की है। तुलसीदास जी समझते हैं कि ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करना मानो असि-धारा पर चलना है (रा० ७ २ ३ १) किन्तु वे यह भी कह देते हैं कि बिना भगवद्भक्ति के मोक्ष उसी प्रकार असम्भव है जैसे निराधार जल की स्थिति। भगवद्भक्त इस रहस्य को जानते हैं कि रामभक्ति के द्वारा मुक्ति स्वयं चली आती है

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई॥

रा० ७ २०३ २४

यद्यपि माया-जन्य भेद मिथ्या है, तथापि बिना ईश्वर की सहायता के चाहे जितना प्रयत्न किया जाय वे दूर नहीं किये जा सकते। जो राम-कृपा के बिना मुक्ति की कामना करता है वह बुद्धिमान् नहीं (रा० ७ ११४ ११५)।

किन्तु मुक्ति उच्चतम लक्ष्य भी नहीं। भक्ति मुक्ति का साधन है पर स्वयं साध्य भी है। शरभंग ऋषि भगवान् में लीन नहीं हुए क्योंकि उन्होंने भेद-भक्ति चाही थी (रा० ३ ११ १)। दशरथ जी को भी भेद भक्ति अभीष्ट रही—

ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दशरथ भेद भगति मन लायो॥

रा० ६ ११८ १४

स्वयं भगवान् राम ने पुरुषों के तारतम्य का उल्लेख करते हुए भक्त को सब श्रेष्ठ माना है। तुलसी की यह उक्ति भागवत के अनुरूप है—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी॥
सबतें सो दुर्लभ सुररायां। राम भगति रत गत मद मायां॥

रा० ७ ७७ १४

यदि भक्ति श्रेष्ठ नहीं है तो प्राप्तमुक्ति ब्रह्मलीन सनकादिक ऋषि लोग समाधि को त्याग कर राम-गुण गान क्यों सुनते थे?

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
तुम्हि पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहिं परम अधिकाती॥

रा० ७ ६४ ४

इसी प्रकार मुनि वसिष्ठ ने भी भगवान् राम से वर माँगा कि

जन्म-जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ रा० ७ ७२

मुक्ति के मार्ग

प्राक्कथन—मुक्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञान भक्ति और कर्म। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार, मन की प्रत्येक दशा में तीन तत्त्व होते हैं—संविद् (कॉग्निशन) वेदन (एफ़ेक्शन) और इच्छा (कोनेशन)। जिस प्रकार किसी सुरा के हटा देने पर त्रिभुज की त्रिभुजता नष्ट हो जाती है ठीक उसी प्रकार उक्त किसी एक तत्त्व के विलय होने पर मन मन नहीं रह जाता और जिस प्रकार त्रिभुज की भुजाओं में तारतम्य होता है उसी प्रकार मन के तीनों तत्त्वों में—प्रकृति के सत्त्व गुण रजोगुण और तमोगुण की भाँति—तारतम्य होता रहता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिस किसी एक मार्ग का अवलम्बन लिया जायगा उसमें अन्य दोनों मार्गों का भी कुछ न कुछ समावेश होगा। *शास्त्रकार ऋषि ने तीनों मार्गों की एकता को माना है यद्यपि कुछ मनीषियों ने किसी* एक मार्ग को प्रधान मान कर अन्य मार्गों की उपेक्षा की है। ज्ञान-मार्गी बहुधा कर्म संन्यास की शिक्षा देते हैं क्योंकि—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ॥ श्वेताश्वतर, १ ८

कर्ममार्गी क्रियाशीलता पर आग्रह करते हैं क्योंकि—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥ गीता ३, २०

और कभी-कभी वे 'तर्कोऽप्रतिष्ठः' आदि वाक्य के मिथ्याश्रय से ज्ञान की अवहेलना करते हैं। भक्ति-मार्गी जन ज्ञान और कर्म को गौण समझकर उनकी अवहेलना करते हैं क्योंकि उनके अनुसार भगवान्

भक्त्या त्वनन्यया ॥ गीता ८ २२

तुलसीदास जी ने भी कर्म की उपेक्षा-सी की है और यह कहते हुए भी कि 'ग्यानिहि भगतिहि नहिं कछु भेदा' भक्ति को प्रधानता प्रदान की है।

(क) कर्म

कर्म की व्यापकता—विश्व में कर्म की प्रधानता है जो जैसा करता है वैसा पाता है। कोई किसी को न सुख देता है न दुःख सब अपने किये का फल भोगते हैं। भगवान् चराचर के स्वामी हैं और वे पाप-पुण्य के अनुसार व्यक्ति को उसका पुरस्कार देते हैं। *ईश्वर की योजनाएँ सनातन और अखण्डित हैं*

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

रा० २, २१६ २

काहु न कोइ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

रा० २, ९२, २

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सबु कोई ॥

रा० २, ४७ ४

कीसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥
ईस रजाइ सीस सबही के । उतपति थिति लय बिबसु अमी के ॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी । बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥

रा० २ २८२ २ ३

ईश्वर कर्म सिद्धान्त का अध्यक्ष है। राम कहते हैं

कालरूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ करम फल दाता ॥

रा० ७ ६१ २ ३

कारण में काम का निवास—तुलसीदासजी कार्य को कारण में मानते हैं क्योंकि क्या बबूल से आम अथवा जल से नवनीत की उत्पत्ति हो सकती है (वि० १३० १ १९६, २)? क्या कोदों से चावल अथवा पुष्करिणी की सुखता से सुखता सम्भव है (रा० २ २९१ २)? यह तुलसी का सत्कार्यवाद है। भरत का पश्चात्ताप पूर्ण कथन है—कारण से कार्य कठिन होता है यथा अस्थि से वज्र और प्रस्तर से लोह (रा० २ १८० १)। भरत की उक्ति से परिणामवाद की ध्वनि निकलती है। किन्तु गोस्वामीजी ने यह समझाने के लिए कि निर्गुण ब्रह्म सगुण किस प्रकार हो जाता है हिम-जल का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

जोइ गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥

रा० १ ११९, २

इस उपमा के द्वारा गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी के अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। कार्य-कारण-सिद्धान्त के अनुसार जो जो करता है वह भोगता है किन्तु इसके अपवाद का उल्लेख भी गोस्वामीजी के द्वारा इस प्रकार हुआ है

जीव करै अपराधु कोउ जीव पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु ॥ रा० २, ७७
देखी सुनी न जातु सी अपनावति ऐसी ।
करहिं सर्प सिर मेरे ही चिरि परे अनेसी ॥ वि० १४७ ४

कर्म की अप्रशस्तता—तुलसीदासजी के अनुसार मुक्ति के साधन अनेक हैं यथा—ज्ञान वैराग्य, जप तप व्रत। ये एवं अन्य अनेक और समर्थ हैं; किन्तु गोस्वामी जी इनमें से किसी की सिफारिश नहीं करते (वि० १९४ ३ ११६ ५)। कारण यह है कि योग यज्ञ संयम, जप, पूजा बलि उपवास दान व्रत तप तीर्थ आदि निरर्थक हैं (वि० ६७ १ ९७ २, १०७ १ क० ७ ६२ ६९ ७१ ७७ ८६ ८७)। पुनश्च वेद-पुराणों का अध्ययन तथा यति देवता गणेश महेश आदि तात्कालिक फल प्रद नहीं हैं (क० ७ ५२)। गोस्वामीजी इस विषय में पाँच कारण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः वैदिक कृत्य यथा यज्ञ स्वाध्याय आदि करने में कठिन है (वि० १३१ २) द्वितीयतः तप, तीर्थ उपवास दान आदि पर काम क्रोध लोभ आदि का प्रभाव पड़ जाता है और ज्ञान-विवेक नष्ट हो जाते हैं (वि० १७३ २ ४)। तृतीयतः इन यज्ञादि कार्यों और तत्सम्बन्धी विषयों के विषय में किसी का एक मत नहीं है क्योंकि मत अनेक हैं मुनि अनेक हैं और पन्थ अनेक हैं और वे भी परस्पर विरुद्ध।

मुक्ति के मार्ग

प्राक्कथन—मुक्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञान भक्ति और कर्म। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मन की प्रत्येक दशा में तीन तत्व होते हैं—संवित् (कॉनिशन) वेदन (एफेक्शन) और इच्छा (कोनेशन)। जिस प्रकार किसी भुजा के हटा देने पर त्रिभुज की त्रिभुजता नष्ट हो जाती है ठीक उसी प्रकार उक्त किसी एक तत्व के विलग होने पर मन मन नहीं रह जाता, और जिस प्रकार त्रिभुज की भुजाओं में तारतम्य होता है, उसी प्रकार मन के तीनों तत्वों में—प्रकृति के सत्व गुण रजोगुण और तमोगुण की भाँति—तारतम्य होता रहता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिस किसी एक मार्ग का अवलम्बन किया जायगा उसमें अन्य दोनों मार्गों का भी कुछ न कुछ समावेश होगा। शाण्डिल्य ऋषि ने तीनों मार्गों की एकता को माना है यद्यपि कुछ मनीषियों ने किसी एक मार्ग को प्रधान मान कर अन्य मार्गों की उपेक्षा की है। ज्ञान-मार्गी बहुधा कर्म संन्यास की शिक्षा देते हैं, क्योंकि—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशै ॥ श्वेताश्वतर १ ८

कर्ममार्गी क्रियाशीलता पर आग्रह करते हैं क्योंकि—

कर्मणैव हि संसिद्धि मा स्थिता जनकादय ॥ गीता ३, २

और कभी-कभी वे 'तर्कोऽप्रतिष्ठ' आदि वाक्य के मिथ्याभय से ज्ञान की अवहेलना करते हैं। भक्ति-मार्गी जन ज्ञान और कर्म को गौण समझकर, उनकी अवहेलना करते हैं क्योंकि उनके अनुसार भगवान्

भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥ गीता ८ २२

तुलसीदास जी ने भी कर्म की उपेक्षा-सी की है और यह कहते हुए भी कि 'ग्यानिहि भगतिहि नहि कछु भेदा' भक्ति को प्रधानता प्रदान की है।

(क) कर्म

कर्म की व्यापकता—विश्व में कर्म की प्रधानता है जो जैसा करता है वैसा पाता है। कोई किसी को न सुख देता है न दुख सब अपने किये का फल भोगते हैं। भगवान् चराचर के स्वामी हैं और वे पाप-पुण्य के अनुसार व्यक्ति को उसका पुरस्कार देते हैं। ईश्वर की योजनाएँ सनातन और अलंघित हैं

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

रा० २, ९१९ २

काहु न कोइ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

रा० २, ९२, २

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई ॥

रा० २ ७७ ४

कोसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥
ईस रजाइ सीस सबही के । उतपति थिति लय बिबसु अबी के ॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी । बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥

रा० २, २८२, २ ३

ईश्वर कर्म-सिद्धान्त का अध्यक्ष है। राम कहते हैं

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥

रा० ७ ६१ २ ३

कारण में कार्य का विनाश—तुलसीदासजी कार्य को कारण में मानते हैं क्योंकि क्या बबूल से आम अथवा जल से नवनीत की उत्पत्ति हो सकती है (वि० १३० १, १९६, २)? क्या कोदों से चावल अथवा पुष्करिणी की सुखता से मुक्ता संभव है (रा २ २६१ २)? यह तुलसी का सत्कार्यवाद है। भरत का पश्चात्ताप पूर्व कथन है—कारण से कार्य कठिन होता है क्या अग्नि से वज्र और प्रस्तर से लोह (रा० २ १८० १)। भरत की उक्ति से परिणामवाद की ध्वनि निकलती है। किन्तु गोस्वामीजी ने यह समझाने के लिए कि निर्गुण ब्रह्म सगुण किस प्रकार हो जाता है हिम-जल का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

जोइ गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥

रा १, ११९, २

इस उपमा के द्वारा गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी के अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। कार्य-कारण-सिद्धान्त के अनुसार तो जो करता है वह भोगता है किन्तु इसके अपवाद का उल्लेख भी गोस्वामीजी के द्वारा इस प्रकार हुआ है

जोइ करै अपराधु बंधु बीर पाव फल सोइ ।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ कोइ ॥ रा० २, ७७
देवी तुमी न आनु जी अपनावति ऐसी ।
करहिं सर्व सिर मेरे ही सिरि परै अनैसी ॥ वि० १४७ ४

कर्म की अप्रशस्तता—तुलसीदासजी के अनुसार मुक्ति के साधन अनेक हैं यथा—ज्ञान वैराग्य, जप तप यज्ञ। ये एवं अन्य अनेक और समर्थ हैं किन्तु गोस्वामी जी इनमें से किसी की सिफारिश नहीं करते (वि० १६४ ३ ११६ ३)। कारण यह है कि योग व्रत संयम जप, पूजा बलि उपवास दान, यज्ञ तप तीर्थ आदि निरर्थक हैं (वि० ६७ १ ६७ २, १ ७ ३, क० ७ ६२ ६१ ७१ ७७ ८६, ८७)। पुराण वेद-पुराणों का अध्ययन तथा यति देवता पवन मेहुन आदि सामकालिक फल प्रद नहीं है (क० ७, ५३)। गोस्वामीजी इस विषय में पाँच कारण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः वैदिक कृत्य यथा यज्ञ स्वाध्याय आदि करने में कठिन है (वि० १३१ २) द्वितीयतः तप तीर्थ उपवास, दान आदि पर काम क्रोध लोभ आदि का प्रभाव पड़ जाता है और ज्ञान-विवेक नष्ट हो जाते हैं (वि० १७३ २ ४)। तृतीयतः इन यज्ञादि कार्यों और तत्सम्बन्धी विचारों के विषय में किसी का एक मत नहीं है क्योंकि मत अनेक हैं मुनि अनेक हैं और पन्थ अनेक हैं और वे भी परस्पर विरुद्ध।

अतएव यह जानना प्रायः असम्भव है कि कौनसा मत ठीक है (वि० १७३, ५)। महाभारत में भी लिखा है कि 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्'। चतुर्थतः इन्द्रियनिग्रह का साधन अत्यन्त कठिन है क्योंकि शरीर प्रायः सबल या दृढ़ नहीं होता है (क० ७ ८७) पंचमतः यज्ञ-दानादि व्यय-साध्य हैं (क० ७ ८७)। अतएव गोस्वामीजी मनुष्य को इनसे उपरत होकर भगवत्प्रेम करने की शिक्षा देते हैं।

कर्म की उपादेयता—तथापि गोस्वामीजी सत्य तप दान और यज्ञ की महिमा मानते हैं। (रा० ७ १८७ ५, २०७ ११) क्योंकि वे, जैसा कि गीता का उपदेश है मानव को पवित्र करते हैं (१८ ५)। किन्तु भागवत का वचन है कि—

> कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः।
> सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥ १२ ३, १८

अतएव गोस्वामीजी के विचार से भी धर्म चतुष्पाद है और चार पादों में से केवल एक पाद कलियुग में प्रधान रहता है तथा दान के द्वारा मनुष्य का कल्याण होता है (रा० ७ १६५)। गोस्वामीजी यह भी कहते हैं कि सतयुग में ध्यान त्रेता में यज्ञ द्वापर में पूजन और कलियुग में केवल नाम-जप पर्याप्त है।

> ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥
> नाम काम तर काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
>
> रा० १ ४२, २ ३

इसी उपदेश की पुनरावृत्ति गोस्वामीजी ने उत्तरकाण्ड (१६३ १ ३) में इस प्रकार की है—

> कृत जुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
> त्रेता बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥
> द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
> कलि जुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
> कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
>
> रा० ७ १६३ १ ३

कर्मत्याग और रामार्चन—गीता (१८ ६६) में भगवान्कृष्ण अर्जुन को आश्वासन देते हैं कि सर्व धर्मों का परित्याग कर तू केवल मेरी शरण में आ जा मैं सब पापों से तेरी रक्षा कर दूँगा। तुलसी के राम भी 'रामचरितमानस' के उत्तर काण्ड में भरत से कहते हैं—

> त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनिनायक॥
> संत असंतन्ह के गुन भाखे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥
>
> रा० ७ ६१ ४

तुलसी के मत से कर्म बन्ध का प्रेरक है अतएव उसको निष्काम रूप से करना चाहिए अथवा ज्ञानाग्नि से दग्ध कर देना चाहिए (रा० ७ १८७, २) जैसा कि गीता भी कहती है (२, ७०-७१ ४, १९) अथवा उसे अविरल भक्ति से नष्ट कर देना चाहिए। वल्लभाचार्यजी ने 'अणु भाष्य' में बताया है कि—

एकैवा बुद्धि मार्गोयाची भक्तानामुभयी प्रारब्धाप्रारब्धयो-
र्भोगं विनैव नाशो भवति ॥

तुलसी के काक भी यही कहते हैं—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा

रा० ७ २०३ ४

निष्कर्ष—तुलसीदासजी कर्म-सिद्धान्त को मानते हैं और यह सिद्धान्त उनकी सम्मति में ईश्वरेच्छा के अधीन (रा० ७ ६३ ३) और व्यावहारिक है।

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

रा० २ ९१ ३ ४

तुलसी को सत्कार्यवाद और अविकृत-परिणामवाद अभीष्ट है। तथापि कर्म भला हो या बुरा बन्ध का प्रेरक है अतएव उसका त्याग ही श्रेयस्कर है (रा० ७ ६३ ४)। ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर कर्म नष्ट हो जाता है क्योंकि कर्म कि होंहि स्वरूपहि चीन्हे रा० ७ १८७ २। ज्ञान और भक्ति दोनों ही मोक्षप्रद हैं। कहा है—

ज्ञान मोक्ष प्रद बेद बखाना ॥ रा० ३ २० १
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा ॥

रा० ७ २०३, ४

(ख) ज्ञान

ज्ञान के विषय में गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं।

ज्ञान का स्वरूप—ज्ञान परमात्म की पहचान कराता है और इस पर प्रकाश डालता है कि 'तू कौन है?' (दो० २५३ १८)। एक बार गोस्वामीजी ने एक साधु को जो असत असत्य चिल्लाता था यह उपदेश दिया कि तू 'मेरे मुझको' और इन दोनों के मध्यस्थ को पहचान ले पूर्व इसके कि तू अस्वत्व और असत्व की चर्चा करे (दो० १६)।

ज्ञान-विज्ञान—शास्त्रों ने ज्ञान और विज्ञान में इस प्रकार भेद किया है ज्ञानं शास्त्रत आचार्यतश्च आत्मादीनां अवबोधः विज्ञानं विशेषतः तदनुभवः (गीता पर शांकर भाष्य ३ ४१)। तुलसीदासजी ने भी ज्ञान और विज्ञान को पर्याय किन्तु उनके भेद को भी, माना है। ज्ञान सानुमान प्रत्यक्ष है किन्तु विज्ञान है अनुमान-रहित प्रत्यक्ष। उन्होंने लिखा है कि ज्ञान में मान नहीं होता, पर उनके द्वारा सर्व सर्वदा 'ब्रह्म' की प्रतीति होती है

ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥ रा० ३ १६ ४

विज्ञान ज्ञान से ऊँचा होता है—

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥

तब विज्ञान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ रा० ७ १९८ १९९

विज्ञान का तादात्म्य भगवान् राम से किया गया है जो कि ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी को अधिक चाहते हैं (रा० ७ २१२, २ १३०, ३)। ज्ञान का सम्बन्ध विराग से और विज्ञान का समता से है

ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥ रा० ७ १३० ३
ग्यान कि होइ बिराग बिनु, रा० ७ ११६
बिनु बिग्यान कि समता आवइ॥ रा० ७ ११७ २

श्री अंजनीशरण के अनुसार[1] विज्ञान वह अवस्था है जिसमें आत्मवृत्ति परमात्मा में लीन हो जाती है, सब में समता भाव हो जाता है तीनों गुणों और अवस्थाओं से परे तुरीयावस्था आ जाती है सारा जगत् ब्रह्ममय दिखायी देता है तथा जीव जीवन्मुक्त हो परमानन्द में मग्न और ब्रह्म लीन रहता है।

विराग और समता—तुलसीदासजी काक भुशुण्ड के मुख से उपदेश दिलाते हैं कि बिना विराग के ज्ञान उत्पन्न नहीं होता जैसा कि अभी कहा जा चुका है। प्रश्न उठता है कि क्या विराग की स्थिति ज्ञान से पूर्व होती है अथवा उसके पश्चात्; क्योंकि बिना विराग के निष्पक्ष निर्णय और सत्य ज्ञान सम्भव नहीं? तुलसीदासजी ने विराग से ज्ञान की उत्पत्ति मानी है ग्यान कि होइ बिराग बिनु। किन्तु ज्ञान-वैराग्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध ही उचित प्रतीत होता है। बिना विज्ञान के समता नहीं हो सकती बिनु बिग्यान कि समता आवइ। मेरे विचार से समता और विराग कदाचित् एक ही पदार्थ के दो रूप हैं। संवित् (नोइस) के दृष्टिकोण से वह समता है और वेदन (फीलिंग) के दृष्टिकोण से विराग है।

ज्ञान के उपकरण—तुलसीदासजी ने भक्ति और वैराग्य के साथ ज्ञान शब्द का प्रयोग किया है (रा० २, १२२)। परम्परागत चार पदार्थ हैं धर्म अर्थ काम और मोक्ष, जिनका उपार्जन करना चाहिए, पर ज्ञान भक्ति और कर्म साधन हैं। ज्ञान भक्ति और वैराग्य का विभाजन संगत हो सकता है यदि हम वैराग्य को मना संविदमय कर्म का पर्याय समझ लें।

ज्ञान और भक्ति—गोस्वामीजी के अनुसार, ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही जन्म-यातना का अन्त कर देते हैं:

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
रा० ७ १२१ ७

फिर भी कुछ पंथीयों जैसा कि तुलसीदासजी मानते हैं उन दोनों में भेद मानते हैं। पहला भेद तो यह है कि ज्ञान विराग योग और विज्ञान सभी पुंलिंग हैं। पुरुष प्रकृत्या शक्तिशाली होता है और स्त्री निर्बल (रा० ७, १६३ ८, १६४), किन्तु यह तो सात्त्विक भेद है क्योंकि यह तर्क तभी निर्बल पड़ जाता है जब गोस्वामीजी कहते हैं कि सुन्दरी इतनी सबल होती है कि वह सन्तों पर भी प्रभाव डाल सकती है (रा० ७, १६४ १६६)। दूसरा भेद यह है कि ज्ञान का मार्ग कठिन है और भक्ति

१ 'मानस मीमांसा' पृष्ठ ३०८, तृतीय संस्करण अयोध्या २००८ वि०।

का अपेक्षाकृत सरल है। ज्ञान-दीपक तो संयम-वायु से बुझ सकता है किन्तु भक्तिमणि उससे अप्रभावित रहती है।

ज्ञान के लिये भक्ति आवश्यक है जैसा कि भगवान् राम के उस उपदेश से स्पष्ट है जो उन्होंने काक भुशुण्ड को दिया था यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। इसमें विविध प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्यारे लगते हैं क्योंकि मुझ से उत्पन्न हुए हैं। फिर भी मनुष्य मुझ को सब से अधिक भाते हैं। उन मनुष्यों में भी द्विज द्विजों में भी वेदपाठी वेदपाठियों में भी धर्मरत धर्मरतों में भी विरक्त मुझे प्रिय हैं विरक्तों में भी ज्ञानी, और ज्ञानियों में भी विज्ञानी। विज्ञानियों में भी मुझे अपना ऐसा दास प्रिय है जिसे मेरी ही गति है और जिसे कोई दूसरी आशा नहीं। भक्तिहीन ब्रह्मा भी मुझ को सब जीवों के समान ही प्रिय है। परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे प्राणों के समान प्रिय है यह मेरी घोषणा है (रा० ७ १३०-१३१)। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भक्ति-समन्वित ज्ञान भी मोक्षप्रद होता है। कहा है

> धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना॥
> जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
> सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
>
> रा० ३ २० १२

विज्ञान रहित भक्ति की अपूर्णता—ज्ञान और भक्ति का अन्य सम्बन्ध भी है। तुलसीदासजी की एक चौपाई है जिसकी एक टीका से विदित होता है कि बिना राम-भक्ति के ज्ञान व्यर्थ है, और दूसरी टीका से यह विदित होता है कि बिना ज्ञान के राम भक्ति अपूर्ण है। प्रकरण इस प्रकार है वशिष्ठजी राजा जनक को समझाते हैं कि विषयी साधक ज्ञानवान् और सिद्ध ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताये हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्रीराम के स्नेह से सरस रहता है साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है पर

> सोइ न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार जिमि बिनु जलजानू॥
>
> रा० २ २७७ ३

बिना ज्ञान के विश्वास दृढ़ नहीं होता विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और बिना प्रीति के भक्ति नहीं होती

> ग्यान बिनु होइ नहिं परतीति। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
> प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥
>
> रा० ७ १३५, ४

इस उक्ति का यह तात्पर्य है कि ज्ञान से विश्वास होता है, विश्वास से प्रेम और प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है।

ज्ञान पर माया—ज्ञान पर माया का प्रभाव पड़ जाता है। प्रभु की माया सबल है। ज्ञानियों और सन्तों में श्रेष्ठ नारदजी यहाँ तक कि शिवजी और ब्रह्माजी भी माया से व्याप्त हो जाते हैं। अतएव संत जन यह जान कर मायापति ईश्वर की प्रार्थना करते हैं (रा० ७ ८१ ८७)।

ज्ञानी का स्तर—ज्ञानी की वही स्थिति है जो किसी कुटुम्ब में वयस्क की होती है। श्रीराम ने नारदजी से कहा था यदि मनुष्य सब आशाओं का त्याग करके केवल मेरी आराधना करे तो मैं उसकी देखभाल उसी प्रकार करता हूँ जैसे माता अपने शिशु की। यदि शिशु अग्नि या साँप की ओर झपटता है तो माता तुरन्त उसकी रक्षा करती है। किन्तु जब उसका पुत्र बड़ा हो जाता है तो माता अपना प्रेम इस रूप से प्रकट नहीं करती। ज्ञानी लोग मेरे लिये तो वयस्क पुत्रों के समान हैं और भक्त शिशु के समान। पहले प्रकार के व्यक्ति तो अपनी शक्ति से रक्षा पाते हैं और दूसरे प्रकार के मेरी शक्ति से (रा० ३ ३५, ३ ४)। अतएव ज्ञानी लोग भक्ति का त्याग नहीं करते

यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ज्ञान भगति न तजहीं॥

रा० ३ ३५ ३

ज्ञानमार्ग की बाधाएँ—श्वेताश्वतर, मैत्री छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में यह विवेचन किया गया है कि ज्ञान का अधिकारी कौन है। तुलसीदासजी यह जानते थे अतएव उन्होंने कहा ज्ञान का मार्ग संकटमय है और उसके साधन कठिन हैं

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन ठहराई॥

रा० ७ ६७ २

अपने भाव को और अधिक स्पष्ट करने के निमित्त उन्होंने भक्ति की तुलना मणि से की है जो सदैव उज्ज्वल बनी रहती है किन्तु उन्होंने ज्ञान की उपमा दीपक से दी है जो कि आँधी के झोंकों से बुझ भी सकता है। ज्ञान-मार्ग पर चलना मानो तलवार की धार पर चलना है (रा० ७, २०३ १ ३) जैसा कि कठोपनिषद् का भी वचन है (१ १४)।

ज्ञान-दीपक—यद्यपि 'वेदान्तसार' (४ १८) में सदानन्दजी ने ज्ञान की उपमा दीपक से दी है तथापि तुलसी का ज्ञान-दीपक अनुपम है। उसका निरूपण इस प्रकार है —

सात्विकी श्रद्धा-रूपी सुन्दर गाय हृदय-रूपी घर में आकर बैठे। श्रुतियों ने जो असंख्य जप, तप व्रत यम नियम धर्म और आचार का वर्णन किया है वे धर्माचार-रूपी हरे तृण हैं जिन्हें वह गाय चरे। आस्तिक भाव-रूपी छोटा बछड़ा है जिसे वह गाय दूध पिलावे। नोई अर्थात् निवृत्ति पिछले पैर बाँधने की रस्सी है। विश्वास दूध दुहने का पात्र है। निर्मल मन दुहने वाला अहीर है। इस प्रकार उपलब्ध परम धर्म-मय दूध को निष्काम भाव-रूपी अग्नि पर औटा कर तथा क्षमा और सन्तोष-रूपी वायु से ठंडा कर, धैर्य तथा शम-रूपी जामन से उस दूध को जमावे। तब मुदिता रूपी कमोरी में तत्व विचार रूपी मथानी से दम के आधार पर सत्य और सुन्दर वाणी रूपी रस्सी से उस दही को मथे और मथकर उसमें से निर्मल सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल लिया जाय तदनन्तर योग-रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म-रूपी ईंधन जला दिया जाय। जब ऐसा करने से ममता-रूपी मल जल जाय तो अवशिष्ट ज्ञान रूपी घी बुद्धि-रूपी वायु से ठंडा किया जाय। तब विज्ञान-रूपिणी बुद्धि उस ज्ञानरूपी निर्मल घी से चित्त-रूपी दीये को भरे और समता

रूपी दीवट पर उसे दृढ़तापूर्वक रखे। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं और सत्व रज तम इन तीन गुण-रूपी कपास से तुरीयावस्था-रूपी सुन्दर और बड़ी बत्ती बनाई जाय और तेजोराशि विज्ञानमय दीपक जलाया जाय। इस प्रकार दीपक को जलाने से मदादि-रूपी पतंग जल जाते हैं। 'सोहमस्मि' नामक अखंड वृत्ति इस ज्ञान-दीपक की परम प्रचंड लौ है। जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तो संसार के जनक (भेद और भ्रम) का नाश हो जाता है अनन्तती अविद्या का मोह आदि परिवार-रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है और जड़-चेतन की गाँठ खुलती है। (रा० ७ १२७-२ २०१ ३)।

ज्ञान-दीपक की विकलता—पर ज्योंही जड़-चेतन की गाँठ खुलने लगती है त्योंही माया ऋद्धि सिद्धियों को भेजकर बुद्धि को अनेक प्रकार के लोभ दिखाती है। ऋद्धि सिद्धियाँ अपने कौशल और छल से निकट आकर अपने साँसों की वायु से इस ज्ञान-दीपक को बुझा देती हैं। यदि बुद्धि स्यानी हुई तो वह उन ऋद्धि-सिद्धियों को हानिप्रद समझ कर उनकी ओर देखती नहीं। जब माया की पार नहीं बसाती तो देवता विघ्न उपस्थित करते हैं। हृदय-रूपी घर में इन्द्रियों के द्वार अनेक झरोखे के समान हैं, वहाँ देवता अड्डा जमाते हैं, और ज्योंही वे विषय-रूपी हवा को आते देखते हैं त्योंही हठपूर्वक वे किवाड़ खोल देते हैं। बस हृदय-रूपी घर में विषय प्रभंजन के आते ही विज्ञान-दीपक बुझ जाता है, गाँठ भी नहीं छूटती ज्ञान-प्रकाश भी मिट जाता और बुद्धि व्याकुल हो जाती है। इन्द्रियों और देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता क्योंकि उनकी प्रीति विषय-भोगों में रहती है। भला जब बुद्धि को विषय-वात ने बावली बना दिया, तो ज्ञान-दीपक दुबारा किस प्रकार जले? दीपक के बुझ जाने पर जीव अनेक प्रकार से संसार में भटक जाता है (रा० ७ २०१ ५ २०२) क्योंकि उसे पुनः प्रज्वलित करने का उपाय बड़े झंझट का है।

सत्संग और ज्ञान—पाप पुण्य और ज्ञान में क्या सम्बन्ध है? तुलसी से दो सहस्र वर्ष पूर्व सुकरात का उपदेश था कि पुण्य ज्ञान है अतएव पाप जान-बूझ कर नहीं किया जा सकता। तुलसीदासजी के मत से पाप का ज्ञान तो सबको समान रूप से होता है किन्तु पुण्य का थोड़ों को ही होता है (दो ३४२)। उनके अनुसार ज्ञानी राग-द्वेष और काम-क्रोध से विवर्जित हो शान्ति प्राप्त करता है (ब० सं० ५६ ६०)।

ज्ञान-माध्यम—यह तो सब को विदित है कि ज्ञान लिखित अथवा मौखिक शब्दों के द्वारा प्रदान किया जाता है किन्तु वह कदाचित् दृष्टि के द्वारा भी दिया जा सकता है। राम ने अपने पिता दशरथ को दृष्टिमात्र से इस ज्ञान प्रदान किया था।

दसरथ प्रथम प्रेम अनुराग। चितहि चितहि जीन्हेउ इह त्यागा॥

रा० ६ १३८ ३

ज्ञान: ज्ञानकोष और दिव्य—मनुष्य अल्पज्ञ है। ईश्वर ही सर्वज्ञ है। सीतापति का ज्ञान अखंड है। यदि सभी का ज्ञान समान रूप से पूर्ण होता तो बताओ ईश्वर और उसके प्राणियों में क्या भेद रहा (रा० ७, ११४ ५ ३)? निस्सन्देह यह बात सब जीव के लिए ही लागू है जो मायाजन्य और जड़ है (रा० ७ १८७ ३ २०) यद्यपि वास्तव में वह चेतन है। ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर जीवात्मा अन्य करता हुआ

कर देता है (रा० ७, ११७, १) और मोक्ष प्राप्त कर लेता है (रा० ७ १८७ २, ७, ३, २०)।

(ग) भक्ति

(प्रथम खण्ड)

भक्ति के लक्षण—तुलसीदासजी ने भक्ति का जो विवेचन किया है उसके अनुसार भक्ति को चिन्तन मनन यज्ञ प्रार्थना तप उपवास आदि की आवश्यकता नहीं किन्तु उसके लिये सरलता और अनन्यता की परम आवश्यकता है। भगवान् राम का उपदेश है मैं उसके वश में हूँ जो न किसी से बैर करे, न लड़ाई झगड़ा न आशा रखे न भय करे जो कोई भी कार्य सकाम आरम्भ नहीं करता जिसकी घर में ममता नहीं जो मान-हीन पाप-हीन और क्रोध-हीन है जो भक्ति करने में निपुण और विज्ञानवान् है जिसे सन्तजनों के संसर्ग से सदा प्रेम है जिसके लिये स्वर्ग और मोक्ष भी तृण के समान है जो भक्ति के लिये हठ करता है किन्तु दूसरे के मत का खंडन करने की मूर्खता नहीं करता किन्तु सब कुतर्कों को बहा देता है जो मेरे गुणों और नामों में अनुरक्त है और ममता मद-मोहादि से रहित है। भक्ति का सुख वही जानता है जो परमानन्द को प्राप्त है (रा० ७ ९७ १ ४)।

साधन-क्रम में भक्ति—गोस्वामीजी ने भक्ति को ज्ञान भक्ति और वैराग्य के मिश्र में स्थान दिया है। चित्रकूट में राम सीता और लक्ष्मण क्रमशः ज्ञान भक्ति और वैराग्य प्रतीत होते हैं—*भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरें सरीर* (रा० २, १२२)। कुण्डलिया रामायण (१ १०) में यही तुलना अन्य और तुलनाओं के साथ विद्यमान है। राम की तुलना ब्रह्म महादेव मदन और परमार्थ से सीता की ब्राह्मी पार्वती, रति और प्रीति से और लक्ष्मण की ब्रह्म-सुत गणेश ऋतुपति और योग से की गयी है। ये उपमाएँ अत्यन्त व्यंजक हैं। पहली उपमा ज्ञान की परमता की द्योतक है जिसकी शक्ति भक्ति है और जो वैराग्य के द्वारा साध्य है।

नवधा भक्ति—गोस्वामीजी ने नवधा भक्ति की चर्चा की है (रा० ३ २० ४), किन्तु जब वे नव प्रकार की भक्तियों का वर्णन करते हैं तो उनकी सूची भागवत' (७ ५, २३) की सूची से भिन्न है क्योंकि इस विषय में उन्होंने 'अध्यात्म रामायण (१ १०, २२ २७) का अनुसरण किया है। रामचन्द्रजी शबरी से कहते हैं 'मैं तुझ से अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ तू सावधान होकर सुन और मन में धारणकर। पहली है सन्तों का सत्संग दूसरी है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम तीसरी है अभिमान रहित गुरु-चरणों की सेवा चौथी है कपट रहित गुणों का गान पाँचवीं है मेरे मंत्रों का जाप और मुझ में अटल विश्वास छठी है इन्द्रियों का निग्रह शीलता वैराग्य और धर्मरति सातवीं है सम्पूर्ण जगत को मुझ में समभाव से ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझ से भी अधिक मानना आठवीं है यथालाभ सन्तोष और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना और नवीं है सरलतापूर्वक सब के साथ छल-रहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य का न होना", (रा० ३, ४१ ४ ४४ १ ३)।

अन्य वर्गीकरण—गोस्वामीजी ने बहुधा कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनसे यह प्रतीत होता है कि भक्ति का कोई अन्य वर्गीकरण भी उनके ध्यान में था। उदाहरणतः, सुतीक्ष्ण की अविरल भक्ति का (रा० ३ १५ १३) अरण्य और दशरथ की भेद भक्ति का उल्लेख हुआ है (रा० ३ १३ १ ६, १३८ ३)। तथाच दृढ़ भक्ति (रा० ३ ५६) अनपायिनी भक्ति (रा० ५ ५८ १) और मृग भक्ति (रा० ३ १२ ४) आदि का भी उल्लेख है। मृग भक्ति तदाकार-वृत्ति का उदाहरण है। तुलसीदास का निष्कैवल्य प्रेम (रा० ६ ४६) भागवत (१ २ ६) की अहैतुकी भक्ति के सदृश है। तुलसीदास का वचन है भजेहु राम बिनु हेतु सनेही (रा० ५, १८ ३)।

भक्ति-मुक्ति का सम्बन्ध—भक्ति और मुक्ति का क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न का उत्तर गोस्वामीजी दो प्रकार से देते हैं प्रथमतः सगुणोपासक मुक्ति चाहता ही नहीं द्वितीयतः मुक्ति भक्ति पर आश्रित है और भक्ति का एक साधारण परिणाम मात्र है

सगुनोपासक मोक्ष न लेही। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देही॥

रा० ५, १३८ ४

जिस प्रकार सूर्य के बिना प्रकाश नहीं रह सकता उसी प्रकार मोक्ष भी भक्ति के बिना असम्भव है। अतएव ज्ञानी उपासक मोक्ष की अवहेलना कर भक्ति की कामना करते हैं क्योंकि भगवद्भक्ति से उच्चातिउच्च मोक्ष स्वयं प्राप्त हो जाता है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजति सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

रा० ७ २ ३ २

भक्ति और कर्म का सम्बन्ध—गीता का उपदेश है कि कर्मों को करते रहना चाहिए क्योंकि वे मनुष्य को पवित्र करते रहते हैं —

यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ १८ ५

किन्तु तुलसीदासजी भरत जी से कहलाते हैं कि रामभक्ति के बिना ये सब व्यर्थ हैं—

आदि अंत बिनु जुगल बिहीना। आदि बिरति बिनु बहु बिधि हीना॥
सकल सरीर आदि बहु रोगा। बिनु हरि भगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। आदि मोर सब बिनु रघुराई॥

रा० २, १७८ २ ३

और आगे चलकर काक से गरुड़ को उपदेश दिलाते हैं कि साधना तपस्या यज्ञ योग दम दान पवित्रता ज्ञान ध्यान सब का पर्यवसान भगवत्-पदानुराग में हो जाता है जिसके बिना कोई भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता (रा० ७ १४७ ३)। इतना ही नहीं भक्ति का स्फुलिंग सब कर्मों का परिपाक इस प्रकार कर देता है जिस प्रकार षटरासि भोजन का

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥

रा० ७, २०३ ५

भक्ति और ज्ञान—तुलसीदासजी ने भक्ति और ज्ञान के गुणों पर तुलनात्मक विचार किया है। ज्ञान में अभिमान का अभाव और समता का भाव रहता है। यह सत्व रज तम तथा अणिमा महिमादि आठ सिद्धियों के अतिरिक्त है। धर्म से विरति विरति से योग योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह मार्ग कठिन है किन्तु भक्ति-मार्ग अपेक्षाकृत सरल है। ज्ञान भक्ति का अन्तर बताने के लिये एक उपमा का प्रयोग हुआ है। यह है ज्ञानी वयस्क के समान है जिसे अपने माता-पिता के संरक्षण की कम आवश्यकता पड़ती है किन्तु भक्त तो शिशु के समान है जिसे निरन्तर देखभाल की आवश्यकता है। पहला तो अपनी ही शक्ति से और दूसरा भगवान् की शक्ति से, सुरक्षित रहता है। यही कारण है कि ज्ञानी भी भक्ति का परित्याग नहीं करते (रा० ३ ३६ ४ ५)। एक और कारण है जिससे भक्ति ज्ञान से अधिक श्रेयस्कर है। जीव परतंत्र है, किन्तु ईश्वर स्वतन्त्र है (रा ७ ११४ ४ ११५)। इसके अतिरिक्त ज्ञान भक्ति का सोपान है। ज्ञान से प्रतीति प्रतीति से प्रीति और प्रीति से भक्ति उत्पन्न होती है या यों कहा जाय कि ज्ञान से प्रतीति उत्पन्न होती है और प्रीति प्रतीति एवं भक्ति के सम्बन्ध को दृढ़ कर देती है। 'दोहावली' में गोस्वामीजी ने प्रीति की तीन श्रेणियाँ मानी हैं। सर्वोच्च प्रीति ऐसी टिकाऊ होती है जैसी प्रस्तर की रेखा। दूसरे प्रकार की ऐसी है जैसा रेते पर चिह्न जो तब तक बना रहता है जब तक कि वायु का झोंका उसे मिटा नहीं देता और तीसरी ऐसी जैसी पानी की लकीर। प्रेम और भक्ति का सम्बन्ध कारण-कार्य का है।

भक्ति और माया दोनों ही स्त्रीलिंग हैं, किन्तु ज्ञान पुंल्लिंग है। जिस प्रकार पुरुष स्त्री के वश में रहता है इसी प्रकार ज्ञान माया के अधीन रहता है। किन्तु जिस प्रकार नारी नारी के रूप पर मोहित नहीं होती उसी प्रकार भक्ति भी माया से प्रभावित नहीं होती (रा० ७ १६३ ८ १६४ १६५, ३)। अन्यथा जैसा कि गोस्वामीजी ने स्पष्ट कहा है ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही संसार के कष्टों को नष्ट और पूर्व कर्मों को दग्ध कर देते हैं (रा० ७ २०३ ४ ५ ७ १६३ ७)।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

रा ७ १६३ ७

भक्ति माया से अप्रभावित—कहा जा चुका है कि भक्ति और माया दोनों ही नारी-रूप हैं और नारी-नारी पर मोहित नहीं होती। अतएव भक्ति भी माया पर मोहित नहीं होती। इसके अतिरिक्त भक्ति और माया दोनों ही का सम्बन्ध भगवान् से है। भक्ति तो भगवान् की पत्नी है और माया नर्तकी। इस कारण भक्ति माया पर अपना प्रभुत्व जमा सकती है, उसके अधीन नहीं हो सकती (रा० ७ १६५, १ ४)।

भक्ति-मणि—जिस प्रकार ज्ञान की तुलना दीपक से, उसी प्रकार भक्ति की समता अमृत से (रा ७ २०६) कवच से और मणि से की गयी है। मणि वाली उपमा अत्यन्त लोकप्रिय है। अतएव उसका कुछ उल्लेख आवश्यक है। मणि का रूपक इस प्रकार है —

श्री राम की भक्ति चिन्तामणि के समान सुन्दर है। जिस हृदय के भीतर यह

भक्ति बसती है वह दिन रात प्रकाशित रहता है। उसे दीपक की और बत्ती की आवश्यकता नहीं। मोह-रूपी दरिद्रता उसके समीप नहीं आती। लोभ रूपी वायु इस भक्ति-दीप को नहीं बुझा सकती क्योंकि वह दूसरे की सहायता से प्रकाशित नहीं होती। इसके प्रकाश से अविद्या का घोर तिमिर नष्ट हो जाता है और महादि पर्वतों का सम्पूर्ण समूह पराजित हो जाता है। जिसके हृदय में भक्ति बसती है काम क्रोध लोभ आदि दुष्ट उसके पास नहीं फटकते। उसके लिये विष अमृत और शत्रु मित्र हो जाता है। इस भक्ति के बिना कोई सुख नहीं पाता। जिसके पास यह भक्ति होती है उसे मानस रोग नहीं व्यापते और स्वप्न में भी लेश मात्र दुःख नहीं होता। जगत् में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो भक्ति-भक्ति के लिए भली-भाँति प्रयत्न करते रहते हैं। यद्यपि संसार में यह भक्ति प्रकट रूप से विद्यमान है तथापि बिना राम प्रसाद के उसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। उसके पाने के उपाय भी सुगम हैं पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं। यदि वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं तो रामकथाएँ खानें हैं सन्त पुरुष विवेक हैं सुमति कुदाल है ज्ञान और वैराग्य दो नेत्र हैं। जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता है वह उस भक्ति मणि को प्राप्त कर लेता है जो सब सुखों का आकर है (रा० ७ २०५, १-८)।

भक्ति राज-पथ है—भगवान् राम अयोध्यावासियों से कहते हैं 'यदि तुम इस लोक और परलोक के सुख का मार्ग चाहते हो तो समझ लो कि वह सुगम और सुखद मार्ग मेरी भक्ति है। ज्ञान अगम्य है, उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न हैं उसका साधन कठिन है और मन चंचल है। यदि अनेक प्रयत्न करने पर कोई ज्ञान प्राप्त कर भी ले किन्तु भक्ति रहित हो तो वह मुझे को प्रिय नहीं लगता। भक्तिमार्ग में न योग की आवश्यकता है न यज्ञ जप तप और उपवास की। इतना आवश्यक है कि मन में कुटिलता न हो स्वभाव सरल हो और जो कुछ मिले उसी से सदा सन्तोष रखे (रा० ७ १८ १)। भक्ति का अधिकारी कौन हो सकता है? भगवान् राम का उत्तर है काट छोड़ कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है वही मुझे परम प्रिय है चाहे वह पुरुष हो स्त्री हो नपुंसक हो अथवा चराचर कोई भी जीव हो' (रा० ७ ११२)। कुछ इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने भी गीता में आश्वासन दिया है (९, १२)। ज्ञान-मार्ग कृपाण की धारा के समान है इस मार्ग से हटते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है वह परम पद कैवल्य को प्राप्त होता है किन्तु यह प्राप्ति कठिन है। भगवद्भक्ति से तो मनचाही मुक्ति मिल जाती है (रा० ७ २०१ १ २)। भक्ति के लिये कोई भेदभाव नहीं। राम शबरी से कहते हैं —

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
रा ३ ४३ २ ३

भक्ति के उपकरण—गोस्वामीजी ने भक्ति के कुछ उपकरणों का उल्लेख किया है यथा स्तुति प्रार्थना नाम-जप विचारी सर्वस्व विनम्रता। मनु और शत्रु रूपा ने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्र का जप किया था (रा १

१७१)। भक्ति का एक अन्य प्रधान उपकरण सत्संग है जो बिना सुकृत के और विप्रपद-पूजा के असंभव है। राम भक्ति शिव-भक्ति के द्वारा प्राप्त होती है जैसा कि स्वयं राम ने घोषित किया है (रा० ६ ४, ३ ५, २ ७ ६८)। भक्ति-प्रवाह की अवस्थाएँ हैं: विप्रपद-पूजा कर्त्तव्यपालन वर्णाश्रम धर्म विषयों से विरक्ति भगवल्लीला और कथाओं में अनुराग। भगवत्प्रेम उसी को प्राप्त होता है जो सत्संग करता है, जो अपने कर्त्तव्य में निरत रहता है जो माता पिता और देवताओं की सेवा करता है जो भगवान् के गुणों का गान करते समय उल्लसित होता है तथा जो हृदय का शुद्ध और सरल है (रा० ३ २० २१)।

भक्ति-प्रवाह—भक्ति का प्रवाह इस प्रकार है सन्त समागम के द्वारा राम चर्चा के लिए प्रोत्साह मिलता है जिससे भ्रम नष्ट हो जाता है। भ्रम के नष्ट होने पर राम के चरणों में दृढ़ अनुराग उत्पन्न होता है। यदि ऐसा अनुराग न हो तो कोई चाहे कितना ही ध्यान प्रार्थना मंत्र और अनासक्ति का उपयोग करे, उसकी पहुँच राम तक नहीं हो सकती (रा० ७ ८५, १)। भक्त को अपनाने के पूर्व राम सर्वप्रथम उसमें अभिमान कभी नहीं रहने देते क्योंकि वह जन्म-मरण का कारण और समस्त क्लेशों तथा शोकों का देने वाला है। इसीलिए भगवान् कृपा करके अपने सेवक के अभिमान को दूर कर देते हैं। ठीक भी है जब बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है तो माता अपना हृदय कठोर करके उस फोड़े को चिरवा डालती है। यद्यपि बच्चा दुःख पाता और रोता है, तथापि उसकी माता रोग-शान्ति के निमित्त उस पीड़ा की चिन्ता नहीं करती। इसी प्रकार भगवान् राम भी अपने दास का अभिमान हर कर उसका हित ही करते हैं (रा० ७ ३ ४ १ ८, १०६)।

भक्त और भगवान्—भगवान और भक्त के सम्बन्ध अनेक हैं यथा माता पिता और बच्चे का-सा पति-पत्नी का-सा मित्र-मित्र का सा अथवा सेव्य-सेवक का सा। वल्लभमार्गीय भक्त भगवान् के प्रथमोक्त सम्बन्ध को अधिक प्रशस्त समझते हैं पर वृन्दावन की गोपियाँ जयदेव मीरा और सूफी द्वितीयोक्त मार्ग को। सूरदास का झुकाव तृतीय के लिए है। तुलसीदासजी ने राम को जगत्पिता और सीता को जगन्माता कहा है (रा० १, २७८, १ २) किन्तु उन्हें सेव्य-सेवक भाव ही अधिक रुचता है अर्थात् भगवान् मालिक हैं और वे चाकर हैं। इसी सम्बन्ध के द्वारा भव-बाधा छूट सकती है (रा० ७ २ ४)। किन्तु कुछ वैष्णवों की भाँति गोस्वामीजी भी कहने लगते हैं कि सेवक स्वामी से बड़ा है। काक गरुड़ से कहते हैं

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक रामकर दासा॥ रा० ७ २०५, ८

यह कथन इतना ही रहस्यमय है जितना कि यह कहना—

कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ रा० १ १९

प्रपत्ति और प्रसाद

(द्वितीय खण्ड)

आश्रित भाव—जिस प्रकार दर्शन आश्चर्य से प्रारम्भ होता है उसी प्रकार धर्म 'अधीनता' की भावना से। सेश्वर धर्मों में अधीनता का रूप है किसी प्रकार का

आदर, श्रद्धा सम्मान प्रशंसा अर्चना पूजा। भयमिश्रित हीनता का भाव निम्नलिखित रूपों में प्रकट होता है आदर प्रणाम दण्डवत् नमन दैन्य अविरोध आज्ञापालन, प्रार्थना स्तुति त्याग, शरणागति प्रपत्ति आदि।

प्राचीन समर्थन—भारत के प्राचीन साहित्य में प्रपत्ति का बीज विद्यमान है। कुछ वैदिक सार्वों की प्रार्थना प्रीति की अपेक्षा, अधिकतर भय से प्रेरित है। ऋग्वेद का रुद्र-सूक्त इस विषय में उदाहरण है (२ ३३, १ १४)। प्रपत्ति का परिणाम प्रसाद है जिसका उल्लेख कठ (१ २ २२), मुण्डक (३ २ ३) श्वेताश्वतर (६ १८) नामक उपनिषदों के अनुसार मोक्ष है। ईश्वरीय प्रसाद के लिए प्रपत्ति आवश्यक है जिसका आधार भक्तु अर्थात् इच्छा की निष्क्रियता है जैसा कि कठ (१ २ २०) और श्वेताश्वतर (३ २०) में उल्लेख है। श्वेताश्वतर में ईश्वरीय प्रसाद के साथ तपस्या का भी महत्व है (६ २१) और ईश्वरीय प्रसाद अमृतत्व प्रदान करता है (१, ६)। गीता में अर्जुन भगवान् की शरण में आते और शिष्यवत् उपदेश चाहते हैं (२, ७) भगवान् शरण-स्थान हैं (२ १८)। वे स्वयं घोषणा करते हैं—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गी० १८, ६६

बुद्ध की के अनुयायी भी कहते थे 'बुद्धं शरणं गच्छामि' 'धर्मं शरणं गच्छामि'। पश्चिम में ईसा मसीह के अनुयायियों ने प्रपत्ति और प्रसाद के सिद्धान्त को और भी आगे बढ़ाया और पूर्व में वल्लभों ने उस पर आग्रह किया। रामानुज और उनके अनुयायियों के मतानुसार नारायण-पत्नी श्री अनुकम्पा का प्रतीक हैं और वे पाप कर्मियों के लिए अन्तराशक्ति (इंटरसेशन) करती हैं। भक्ति के दोनों मार्गों में जिन्हें वल्लभाचार्यजी ने प्रशस्त समझा है मर्यादा मार्ग तो उन लोगों के लिए है जो श्रुति स्मृति के विधानों का पालन करते हैं और पुष्टि-मार्ग वह प्रेम-मार्ग है जिसका संवर्धन भगवान् स्वयं करते हैं। चैतन्यजी के मत से जीवन का लक्ष्य ही भगवद् भक्ति की प्राप्ति है।

प्रपत्ति का रूप—भगवान् के प्रति प्रेम की अनन्यता ही प्रपत्ति है। प्रपत्ति में सर्व धर्मों का त्याग है और त्यागी को श्रद्धावान् और अनसूय होना चाहिए। ऐसे भक्त को ही भगवान् आश्वासन देते हैं कि मैं सब पापों से तेरी रक्षा कर लूँगा (गी० १८ ६५-७१)। जो लोग ईश्वर के प्रसाद की कामना करते हैं वे पाखण्ड को छोड़ कर शुद्ध हृदय से उसकी शरण में आ जाते हैं। वे उसकी माया का अतिक्रमण करते और निरभिमान हो जाते हैं (भा० २ ७ ४२ ४ २१ २०)। 'महाभारत' में भी कहा है कि नारायण को वही देख सकता है जिन पर वे कृपा करते हैं।

प्रपत्ति के लक्षण—भगवत्प्रसाद का साधन प्रपत्ति अथवा शरणागति है। अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार शरणागति के छः प्रकार होते हैं। (१) भगवान् की इच्छा के अनुकूल वर्तन (२) विरोध का त्याग (३) भगवदीय रक्षा में विश्वास (४) भगवान् को रक्षक रूप से वरण (५) अत्यन्त दैन्य और नैराश्य एवं (६) आत्म समर्पण

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा
आत्म-निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागति ।

तुलसीदास और प्रसाद—तुलसीदासजी भगवत्कृपा के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हैं रामकृपा (रा० १, ७ ४) हरिकृपा (रा० ५, ६ २) रामप्रसाद (रा० ७ १२८ ३ ४) दया और अनुकूलता (रा० ३ ४६, २), छोह (रा० ४ ४, १-२) अनुग्रह (रा० ५, ६ ३)।

राम-कृपा—राम सुन्दर ही नहीं कृपालु भी हैं। वे भक्तपाल हैं (रा० ६, १२७ २)। भरतजी राम की कृपालुता का वर्णन करते हुए कहते हैं जो क्रूर, कुटिल दुष्ट, कुबुद्धि कलंकी नीच सील रहित नास्तिक और निश्शंक हैं उन्हें भी शरण में सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करने पर ही राम अपना लेते हैं, और शरणागत के दोषों को देखकर भी कभी हृदय में नहीं लाते प्रत्युत उसके गुणों को सुनकर साधु समाज में उनका वर्णन करते हैं। बन्दर आदि पशु नाच में और तोते आदि पक्षी पाठ में प्रवीण हो जाते हैं किन्तु तोते का गुण और पशु के नाचने की गति पढ़ाने वाले और नचाने वाले के अधीन होती है। इसी प्रकार भगवान् अपने भक्तों की बिगड़ी बात सुधार कर और सम्मान प्रदान कर उन्हें साधु-शिरोमणि बना देते हैं। अतः राम के अतिरिक्त ऐसा कृपालु और कौन होगा ? (रा० २ २६६ ३ ०)।

गुरु-कृपा से भगवत्कृपा—कौसल्याजी कहती हैं कि गुरु-कृपा से भगवत्कृपा प्राप्त होती है। उनके वचन हैं "हे तात मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने तुम्हारी बहुत सी बलाओं को टाल दिया। तुम दोनों भाइयों ने यज्ञ की रखवाली करके गुरु के प्रसाद से सब विद्याएँ प्राप्त कीं। तुम्हारे चरणों की धूल लगते ही मुनि-पत्नी अहल्या तर गयी तुम्हारी यह कीर्ति पूर्ण रीति से विश्व में व्याप्त हो गयी। कच्छप की पीठ तथा वज्र और पर्वत से भी कठोर शिवजी के धनुष को तुमने राजाओं के समाज में तोड़ दिया। तदनन्तर तुम विश्व-विजय के यश को और जानकी को प्राप्त कर तथा सब भाइयों को ब्याह कर घर आये। तुम्हारे सभी कर्म ऐसे हैं जो मनुष्य की शक्ति से बाहर हैं वे केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सम्पन्न हुए हैं। (रा० १ ३६० १ ३)। मानव के आशीर्वाद का इतना प्रभाव है भगवत्कृपा का तो कहना क्या ?

भगवत्कृपा का रूप—भगवान् राम स्वयं भरतजी से भगवत्कृपा के माहात्म्य का वर्णन करते हैं यह अविनाशी जीव (अण्डज स्वेदज जरायुज और उद्भिज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता और माया की प्रेरणा से काल कर्म स्वभाव और गुण के वश में होकर, सदा भटकता रहता है। अकारण स्नेह करने वाले भगवान् दया करके कभी-कभी जीव को मनुष्य का शरीर दे देते हैं। यह शरीर भवसागर को पार करने के लिए पोत के समान है ईश-कृपा ही अनुकूल वायु है सद्गुरु कर्णधार है। इस प्रकार दुर्लभ साधन के सुलभ होने से अनेक जीवों ने उसे प्राप्त किया है। जो ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे वह कृतघ्न और मन्द बुद्धि आत्म-हन्ता की गति को प्राप्त होता है (रा० ७ ६६ ६७)। भगवान् राम ने भगवत्कृपा का रहस्य काक से भी प्रकट किया है हे पक्षी सुन मेरी कृपा से अब

समस्त गुण तेरे हृदय में बसेंगे। भक्ति ज्ञान विज्ञान वैराग्य योग मेरी लीलाएँ और उनके विविध रहस्य—इन सबके भेद को तू मेरे ही प्रसाद से जान जायगा तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा। अब माया से उत्पन्न कोई भ्रम तुझे नहीं व्यापेगा" (रा० ७ १२० ३ ४)। काक ने यह रहस्य गरुड़ को इस प्रकार बताया "हे तात यद्यपि जीव ईश्वर का अंश है अतएव अविनाशी चेतन निर्मल और सुख राशि है तथापि माया के वश में होकर वह तोते और बानर की भाँति अपने आप बँध जाता है। जड़-चेतन में ग्रन्थि पड़ जाती है। यद्यपि ग्रन्थि मिथ्या ही है तथापि उसके छूटने में कठिनता है। तभी से जीव जन्म-मरण-जीव हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेद-पुराणों ने बहुत से उपाय बताये हैं, पर वह ग्रन्थि छूटती नहीं प्रत्युत अधिकाधिक उलझती ही जाती है। जीव के हृदय में अज्ञानान्धकार विशेष रूप से छा जाता है, जिससे गाँठ दीख नहीं पड़ती अतएव छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर संयोग उपस्थित कर देते हैं तब कदाचित् वह ग्रन्थि छूट पाती है (रा० ७ ११७ २ ४)

जब संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित् सो निरु टरई॥

यदि 'कदाचित्' से 'शायद' का तात्पर्य ग्रहण किया जाय तो प्रसाद-सिद्धान्त पर ही पानी फिर जायगा अतएव प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी ने उसका प्रयोग 'कभी' के अर्थ में किया है जैसा कि वल्लभाचार्य जी ने भी।[1]

तथापि तुलसीदास जी कहते हैं कि राम-कृपा से विवेक उत्पन्न होता है जो काम क्रोध का उन्मूलन कर भवसागर के कष्टों का निवारण करता है। इस कृपा से भगवान् के गुण-श्रवण में रुचि उत्पन्न होती है और उसके द्वारा जीवात्मा इस प्रकार निश्चिन्त रहता है जैसे बालक माता की, पत्नी पति की अथवा कृषक स्वामी की संरक्षा में। भगवान् ही विवेक प्रदान करते हैं जिसके द्वारा सत्य को ग्रहण करने और मिथ्या को त्यागने की शक्ति प्राप्त होती है। गोस्वामीजी ने राम-कृपा की उपमा सर से दी है जहाँ केवल वह पहुँच सकता है जिसे राम-कृपा प्राप्त है। उसी के द्वारा उक्त सर में स्नान कर सम्पूर्ण कठिनाइयों से और विपदाओं से छुटकारा मिलता है (रा० १ २८ ३६)। भगवान् शिव उमाजी से कहते हैं कि राम की दया से काम, क्रोध, लोभ, भ्रान्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं, और वही मनुष्य इन्द्र-जाल से पार पाता है जिस पर महामायापति भगवान् अनुकूलता प्रकट करते हैं (रा० ३ ४६ २)। हनुमान् जी अपने दोषों को स्वीकार करते हुए भगवान् राम से कहते हैं भगवन्, मुझमें दोष अनेक हैं किन्तु सेवक किसी प्रकार अपने स्वामी से ऊँचा नहीं हो सकता सम्पूर्ण सृष्टि के जीव पहले आपकी माया के बन्धन में आते हैं और पुनः आपकी कृपा से मुक्त हो जाते हैं—

नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥ रा० ४ ४, १२

---

१ (क) कदाचित् तस्मादेव मत्तोऽहं भवामि। तत्त्वार्थदीप, ४०

(ख) यद्यपि तेऽवतारिनिमित्तानां देवकार्यादिति शुद्धे। अन्यथा जीवभावे स्थिते कदाचित् सत्यानन्दं सम्पादयेदिति जीवस्य ब्रह्मभावमाह। स्वीकृत ब्रह्मभावमिति। तत्त्वार्थदीप पर ब्रह्मसूत्र १८।

पुष्टिमार्ग का प्रभाव—हनुमान् जी का उक्त वचन हमें पुष्टिमार्ग का, अथवा अर्पित और प्रसाद के उक्त सिद्धान्त का, स्मरण कराता है जिसका प्रभाव कदाचित् तुलसीदासजी पर भी पड़ा हो। कारण यह है कि वल्लभाचार्य जी की एक बहिन गोकुल में भी विद्यमान है, और गोस्वामी जी के चचेरे भाई कृष्ण भक्त महाकवि नन्ददास भी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। कल्पना है कि इसी प्रभाव के कारण तुलसीदासजी ने 'कृष्णगीतावली' की निम्नलिखित पंक्तियों में आचार्य वल्लभ को सुन्दरीति से श्रद्धांजलि अर्पित की है

> गोपाल गोकुल-वल्लभी-प्रिय गोप गोसुत-वल्लभम्
> चरणारविंद भजे भवनीय सुर-मुनि-दुर्लभम्
> कलश्याम काम अनेक छबि लोकाभिराम मनोहरम्
> किसलय-बसन किसोर मूरति मूरि मुद करुनाकरम्॥ २३

अन्तरासक्ति अथवा पुरुषकार—कृपा की छोटी बहिनी अंतरासक्ति है। अन्तरासक्त दूसरे को प्रार्थना आदि के द्वारा वरदान प्राप्त कराता है। बाइबिल' में भगवत्प्रसाद की एवं पश्चात्ताप-पूर्ण पापियों के लिये ईसामसीह, अब्रहा लॉट जूडा मूसा, सैमुअल, डेविड स्टीवन और पॉल की अन्तरासक्ति की चर्चा है। 'कुरान' में भी भगवान् को कृपालु और क्षमाशील बताया गया है (सूरा० २ २८, २९)। ईसाई धर्म में अन्तरासक्ति अपरोक्ष है किन्तु इस्लाम में परोक्ष है। पहले में तो ईसामसीह अथवा अन्य कोई महापुरुष अन्तरासक्त बन सकते हैं किन्तु दूसरे में भगवत्कृपा के निमित्त प्रार्थना में हजरत मोहम्मद का नामोल्लेख ही पर्याप्त है। हिन्दू धर्म में प्रसाद और अन्तरासक्ति के सिद्धांत को सर्वमान्यता प्राप्त नहीं। उदाहरण-स्वरूप स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रसाद-सिद्धांत को नहीं मानते, किन्तु रामानुज और वल्लभ दोनों भगवत्कृपा चाहते हैं। भारत में श्री-वैष्णवों ने अन्तरासक्ति के सिद्धांत का प्रचार किया है। उनके लिये भगवान् नारायण आर्यसमाज-प्रतिपादित ईश्वर के सदृश हैं किन्तु श्री जी दयालु हैं अतएव भक्त की ओर से नारायण-प्रसाद के लिये अन्तरासक्ति करती हैं।

अन्तरासक्ति का सिद्धान्त किसी न किसी रूप में वैदिक काल से विद्यमान है। पौरोहित्य के शब्दार्थ में ही अन्तरासक्ति व्याप्त है। संस्कृत भाषा के 'पुरोहित' और 'पुरोधा' शब्दों से उस व्यक्ति का तात्पर्य है जो वकील की भाँति दूसरे के हित को किसी देवता अथवा ईश्वर के समक्ष उपस्थित करे।[1] जिन व्यक्तियों को सांसारिक झंझटों से प्रार्थना के लिये अवकाश नहीं मिल पाता, अथवा जो प्रार्थना के लिये उपस्थित नहीं हो सकते उनकी अनुपस्थिति में पुरोहित को उसी प्रकार प्रतिनिधित्व सौंप दिया जाता है जैसे मुख्तारनामा के द्वारा किसी मुख्तार को। यह भी एक प्रकार की अन्तरासक्ति ही है। तुलसीदास जी ने 'पुरोहित' शब्द के विपर्यस्त रूप

---

१ गुरु और गोसाईं की भक्त और भगवान् के बीच मध्यस्थता। 'एन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स' पृष्ठ ५८२। तथा दि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' पृष्ठ ६३४ ६३५, जिल्द २१।

उपरोहित का उपयोग शतानन्द जी और वशिष्ठ जी के लिये किया है जो क्रमशः राजा जनक और महाराज दशरथ के पुरोहित थे।

निष्कर्ष—तुलसीदासजी ने कर्म के सिद्धान्त को ईश्वरीय इच्छा के अधीन कर दिया है। उनका विश्वास अन्तरासक्ति में है। उन्होंने यह उल्लेख किया है कि जब भगवान् शिव ने काक भुशुण्ड को शाप दिया तो काक के गुरुदेव ने शिवजी की प्रार्थना की और उनको कृपासिन्धु भगवान् दीन-दयालु कृपालु आदि शब्दों से अभिहित कर, अपने शिष्य के लिये अनुग्रह की कामना की। प्रार्थना स्वीकृत हुई (रा० ७ १०६ १०७-२)। भगवती पार्वती भी आर्त भक्तों के लिये भगवान् शिव से अन्तरासक्ति करती हैं। तुलसीदासजी स्वयं अपने लिये रामप्रसाद के निमित्त सीताजी की अन्तरासक्ति की आकांक्षा करते हैं।

मनोविज्ञान

मानव का मन मानसिक रोग और उनका उपचार

प्राक्कथन—भारतीय-दर्शन-शास्त्र में मनोविज्ञान के लिये कोई पृथक स्थान न था क्योंकि प्राचीन ऋषि ज्ञान की एकरूपता मानते थे और वे दार्शनिक चर्चा ही न करते अपितु तदनुसार जीवन भी व्यतीत करते थे। वेदों में उपनिषदों में और पुराणों में मनोवैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणतः, ऋग्वेद में मनस् मनीषा अहं, चित्त आदि शब्द देखने में आते हैं और उपनिषदों में सत्व रजस्, तमस् अहंकार चेतस् चैतन्य प्रज्ञा प्रज्ञानघन बुद्धि ज्ञान भक्ति कर्म चित्त चिन्ता जाग्रत-स्थान स्वप्न-स्थान सुषुप्ति-स्थान तुरीय दम इन्द्रिय विषय धृति धारणा ध्यान प्रत्याहार, ऋति ऋतु, काम निष्कामत्व मति मनस् मनीषा मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनन्दमय कोष महासुप्त मेधा मोह राग वासना विज्ञान वैराग्य श्रद्धा संज्ञा संकल्प समाधि सम्मोह स्मृति तर्क। इसमें सन्देह नहीं कि इनका प्रयोग मन-माना और कभी विपर्यय भी हुआ है और इनका अर्थ घटता-बढ़ता रहा है। किन्तु सांख्य योग न्याय आदि षड्दर्शनों में उनके अर्थ अधिक सुनिश्चित हैं। पुराणों ने और महाभारत ने भी मनोविज्ञान के विकास में सहयोग दिया है किन्तु कदाचित् वैष्णव शैव और तांत्रिक विचारधारा से प्रभावित हो सूक्ष्म संकेतों का वर्णन मूर्त शब्दों में हुआ है। गोस्वामीजी से पहले मनोविज्ञान की अवस्था पर विचार करना प्रस्तुत प्रयोजन से बाहर है अतएव उन्हीं के मनोवैज्ञानिक विचारों की चर्चा यहाँ अभीष्ट है।

तुलसी की देन—गोस्वामीजी की देन जहाँ भाषा साहित्य तथा धर्म की दिशा में रही है मनोविज्ञान की दिशा में भी उनकी देन है। वे वे व्यक्ति हैं जिन्होंने हिन्दी में मनोवैज्ञानिक चर्चा सर्वप्रथम की है। और वह भी ऐसी क्षमता से जो अद्यतन पाश्चात्य अनुसंधानों से समन्वित है।

मानस-मुनी—मनोविज्ञान-सम्बन्धी विचारक को मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविज्ञानी कहते हैं। गोस्वामीजी ने एक और अच्छा शब्द दिया है वह है 'मानस-मुनी' यद्यपि कुछ प्रतियों में इसका पाठान्तर 'मानस पुनी' विद्यमान है अतएव कुछ टीकाकार दोनों पाठों से 'महामानस मुनी' का अभिप्राय ग्रहण करते हैं। अस्तु। रावण ने राम के विरुद्ध छल करने का मारीच से प्रस्ताव किया जिससे मारीच को संकोच हुआ। रावण ने उस पर क्रोध किया तो वह सोचने लगा

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधें नहि कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि मानस-मुनी॥ रा० ३ ३१ २

मन-स्थान—कदाचित् मायवतों अथवा पांचरात्रों से प्रभावित होकर गोस्वामी जी, मन्दोदरी के मुख से राम का वर्णन इस प्रकार से कराते हैं राम भगवान् हैं उनका अहंकार शिव है बुद्धि ब्रह्मा मन चन्द्रमा और चित् महत् है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित महान्।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान्॥ रा० ६ २१

ऋग्वेद और मनु के पुरुष-सूक्त में चन्द्रमा परम पुरुष के मन से उत्पन्न हुआ बताया गया है। मन बुद्धि चित् और अहंकार वाला अन्तःकरण वेदान्त की विचार धारा के अनुसार है।

मन और शरीर—शरीर पर मनोवेगों की अभिव्यक्ति होती है। कुछ उदाहरण ये हैं —जब रामचन्द्र जी अयोध्या से लौट आये तो प्रेम के कारण भरत जी को रोमांच हो गया, नेत्र अश्रुओं से परिपूर्ण हो गए और शरीर काँपने लगा। उस समय राम और भरत का मिलन ऐसा प्रतीत होता था—

बहु प्रेम अब सिथार तनु धरि निमेष बर जुगता लहौ॥ रा० ७ १३ छं १

प्रेम के कारण भरत जी के मुख से शब्द नहीं निकलता था वे गद्गद थे (रा० ७ १३ छं २)। इस अवसर पर राजमाताएँ सोने के थाल से नीराजन कर रही थीं किन्तु उन के चक्षु आनन्दाश्रु से युक्त थे। जनक-जैसे ब्रह्मज्ञानी भी सीता-विदाय के समय प्रेमाश्रु न रोक सके थे (रा० १, ३७० १)। वास्तव में प्रीति और क्षुधा छिपाये नहीं छिपतीं (रा० २ २६४ १)।

पशु-पक्षी भी अपने संवेगों को प्रकट करते हैं। विवाह के अनन्तर जब सीताजी अयोध्या आने लगीं तो उनके पालतू तोता मैना भी वियोग-जन्य संवेग प्रकट करने लगे (रा १ ३७ १ २) क्योंकि पशु-पक्षी भी अपना हित और अहित समझते हैं (रा २, १६, १ २६४ १)। जब सुमन्त्र रामचन्द्र जी को छोड़कर अयोध्या लौटने लगे तो उनके घोड़े करुणापूर्वक हिनहिनाने लगे। उनकी आँखों से आँसू बहते थे वे न घास खाते और न पानी पीते किन्तु वन्य हरिण की भाँति शोक से शिथिल होकर तड़फड़ाते पग रथ को खींचना नहीं चाहते थे और जब कोई व्यक्ति राम सीता या लक्ष्मण का नाम लेता तो वे तुरन्त हिनहिनाकर उसकी ओर देखने लगते (रा० २ १४२ ४ १४३ १ ४)।

तुलसी को इस बात में विश्वास रहा होगा कि हम जो कार्य करते हैं उसका संस्कार (अथवा पश्चिमी मनोविज्ञान का ऐनग्रेम) मस्तिष्क पर पड़ता है। रावण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए अपने हाथों सिर काट-काट कर अग्नि में होम कर दिये थे और उन मस्तकों के जलते समय उसने अपने ललाट पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे थे।

बरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
रा० ६ ४३ १

कैकेयी ने मंथरा के लिये कहा था कि काने लंगड़े और कुबड़े लोग कुटिल और कुचाली होते हैं (रा० २ १५)। ऐसी अप्रहीनता जन्म से दुर्घटना से या ग्रन्थियों से संभव है जैसा कि आधुनिक मनोविश्लेषक समझते हैं।

चार अवस्थाएँ—तुलसी ने जीव की परम्परागत चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। सोते समय जीव भगवान् शिव के समान है स्वप्न में सक्रिय है और जाग्रत अवस्था में सुख-दुःख का अनुभव कर दीन-मलीन होता है। जाग्रत अवस्था को प्राप्त होते ही स्वप्न असत् प्रतीत होता है। स्वप्न में भिखारी राजा और राजा स्वर्गेश हो जाता है किन्तु जागने पर न किसी को हानि होती है और न किसी को लाभ।

इसी प्रकार परमार्थ की प्राप्ति पर व्यवहार असत् प्रतीत होता है (रा० २, ६३ १ ३)। तुलसीदासजी को स्वप्नों की भविष्य-बोधकता में विश्वास है। राम-वनवास से पूर्व कैकेयी को (रा० २, २ ४), मातुल-गृह में पिता की मृत्यु से पूर्व भरत को (रा० २ १५७ ३) और चित्रकूट में भरत के आगमन से पूर्व सीताजी को दुःस्वप्न हुआ था (रा० २, २२६ २)। त्रिजटा राक्षसी ने रावण-मृत्यु-विषयक स्वप्न का उल्लेख कर जनक-नन्दिनी को सान्त्वना प्रदान की थी (रा० ५, १० १४) उसने स्वप्न में देखा था कि किसी बन्दर ने लंका जला दी राक्षसों की सारी सेना मार डाली मंत्री रावण नंगा, गधे पर सवार, दक्षिण दिशा को जा रहा था, उसके सिर मुड़े हुए और बीसों भुजाएँ कटी हुई थीं। उस राक्षसी ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि यह स्वप्न चार दिन के पश्चात् सत्य हो कर रहेगा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

शास्त्रों में दुःस्वप्नों की शान्ति के लिए उपायों का विधान है गोस्वामीजी ने इस विषय में कुछ शान्ति-कर्मों का उल्लेख किया है जो सभी निष्फल सिद्ध हुए। मैंने 'ड्रीम्स : मेन्सी फ्रॉम इण्डियन पॉइण्ट ऑव व्यू'[1] नामक लेख में स्वप्न के कुछ कारणों और शान्ति-कार्यों पर प्रकाश डाला है अतएव यहाँ अधिक चर्चा अनावश्यक है। उक्त तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त चतुर्थ अर्थात् तुरीयावस्था का भी नामोल्लेख हुआ है (रा० ७ २००)।

समय का अनुभव—पूर्व रूप—गोस्वामीजी काल को अनुभव-पूर्व मानते हैं (दो० १७७)। ईश्वर काल से परे है काल भगवान् से उत्पन्न होता है और भगवान् में ही समा जाता है। रामजी 'काल करम सुभाउ गुन अघटक' (रा० ७ ५७ ४) हैं। उनका अनुभव काल है, तथा सब निमेष, परमाणु वर्ष युग और कल्प उनके आधीन हैं (रा० ६ १ दो० १३०)। साठ लव का एक निमेष साठ निमेष का एक परमाणु साठ परमाणु का एक पल, साठ पल की एक घड़ी साठ घड़ी का एक दिन तीस दिन का एक मास बारह मास का एक वर्ष बारह सहस्र वर्ष की एक चतुर्युगी—अर्थात् ४८०० वर्ष का सत्य १६०० का त्रेता २४०० का द्वापर, १२०० का कलियुग होता है। ये सब दिव्य वर्ष हैं। मनुष्यों के ३६० वर्ष देवताओं के एक वर्ष के समान हैं। इस प्रकार दिव्य चतुर्युगी को महायुग कहते हैं जिसे मन्वन्तर भी कहते हैं। २००० मन्वन्तर अर्थात् आठ अरब चौंसठ करोड़ मानव वर्षों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का अहोरात्र है। ब्रह्माजी के सौ वर्षों का महाकल्प होता है। समय की यह कल्पना अनुभव पूर्व है।

समय और अनुभव—किन्तु गोस्वामी जी जानते हैं कि समय अपेक्षा भी है। काक ने बायस से बतलाया कि किस प्रकार वो घड़ी में सौ कल्प बीते और कल्पातीत दूरी पार की गयी। उनका अनुभव था : राम के उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड विचित्र लोग, करोड़ों ब्रह्मा और शिव अगणित तारा-गण तथा सूर्य और चन्द्रमा अगणित लोक पाल एवं यम और काल अगणित विशाल पर्वत और भूमियाँ असंख्य समुद्र नदी, तालाब वन, देवता मुनि सिद्ध नाग मनुष्य और किन्नर देख गये जो पहले कभी न देखे थे, न सुने थे और जो मन की कल्पना में नहीं समा सकते थे। वे एक-एक ब्रह्माण्ड

१ इंडियन सिचुएशनल कॉमेंस, १९३६ ई०।

में एक-एक सौ वर्ष रहे और इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते फिरे। प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा भिन्न-भिन्न विष्णु, भिन्न-भिन्न शिव एवं भिन्न-भिन्न मनु, दिक्पाल, मनुष्य-गन्धर्व भूत-बेताल किन्नर राक्षस पशु-पक्षी आदि थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उन्होंने अपना रूप देखा अनेक अनुपम वस्तुएँ देखीं, प्रत्येक भुवन में न्यारी अवधपुरी, भिन्न सरयू और भिन्न प्रकार के नर-नारी यहाँ तक दशरथ जी कौसल्या जी और भरत आदि भाई भी भिन्न भिन्न रूपों के थे वहाँ उन्होंने रामावतार और उनकी बाल लीलाएँ भी देखीं किन्तु भगवान् रामचन्द्र दूसरी प्रकार के न थे। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मानों सौ कल्प बीत गये, किन्तु इस सब अनुभव में केवल बहत्तालीस मिनट ही लगे थे (रा० ७ ११८ १२४)। जाग्रत और स्वप्न के ज्ञान में तारतम्य है। स्वप्नावस्था में तो समय बड़ा लचकीला हो जाता है। 'योग वासिष्ठ' में लिखा है कि मनुजी का जीवन-काल ब्रह्माजी का लव-मात्र है और ब्रह्मा जी का जीवन काल विष्णुजी का एक दिवस है तथा विष्णुजी का सम्पूर्ण-युग भगवान् शिव का केवल एक दिन है।[1]

वंशानुक्रम और परिस्थिति—तुलसीदास निश्चय ही वंशानुक्रम में विश्वास करते हैं। उन्होंने लगभग अपने सभी ग्रन्थों में वर्णाश्रम सिद्धान्त को माना है। पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद (१० ९० १२), यजुर्वेद (३१ ११) और भगवद्गीता (४, १३) वर्णव्यवस्था को जन्म से मानते हैं जैसा कि 'प्रजापतेः' और 'सृष्टम्' इन दो शब्दों से विदित होता है। अतएव तुलसीदासजी के अनुसार गुणहीन-हीन किन्तु जन्म जात विप्र पूज्य-ज्ञान प्रवीण-शूद्र से अधिक श्रेष्ठ है

पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना। रा० ३, ४२ १

तथापि वे यह मानते प्रतीत होते हैं कि कतिपय अर्जित गुणों का वंशानुक्रमण नहीं होता। अतएव यह आवश्यक नहीं कि भले का पुत्र भला ही हो क्योंकि यह संभव है कि भले का पुत्र बुरा, ज्ञानी का हृदय और धर्मात्मा का पापी हो, जिस प्रकार अग्नि का पुत्र

होइ भले के अनभलो होइ दानि के सूम
होइ कपूत सपूत के ज्यों पावक में धूम ॥ दो० ३६८

गोस्वामीजी वातावरण की भी महिमा जानते हैं जिसके कारण मनुष्य भला-बुरा अथवा बड़ा-छोटा बन जाता है

तुलसी भलो सुसंग ते पोच कुसंगति होइ ॥ दो० ३३८
गुन संगति गुन होइ सो तन्तु संगति तन्तु नाम ॥ दो० ३३९
तुलसी गुन सपूता लहत लघु संगति परिनाम ॥ दो० ३६०
बसि कुसंग चह सुजनता ताको आस निरास ॥ दो० ३६२

मूल प्रवृत्तियाँ—तुलसीदासजी ने कुछ मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात हैं। वे हैं काम क्रोध अभिमान लोभ निद्रा, भय, क्षुधा और पिपासा (वि० १७३ २ १८७ २ २०१ ४, २६० २)। यह वर्णन संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक से साम्य रखता है—

१ द योग वासिष्ठ एवं रहस्य किशोरी, डॉ० मंगलदास अग्रवाल, पृ० ५४।

इसी प्रकार परमार्थ की प्राप्ति पर व्यवहार असत् प्रतीत होता है (रा० २, ९३, १ ३)। तुलसीदासजी को स्वप्नों की भविष्य-बोधकता में विश्वास है। राम-वनवास से पूर्व कैकेयी को (रा० २ २० ४) मातुल-गृह में पिता की मृत्यु से पूर्व भरत को (रा० २ १६७ ३) और चित्रकूट में भरत के आगमन से पूर्व सीताजी को दुःस्वप्न हुआ था (रा० २, २९६, २)। त्रिजटा राक्षसी ने रावण-मृत्यु-विषयक स्वप्न का उल्लेख कर जनक-नन्दिनी को सान्त्वना प्रदान की थी (रा० ५, १०, १४) उसने स्वप्न में देखा था कि किसी बन्दर ने लंका जला दी राक्षसों की सारी सेना मार डाली गयी रावण नंगा, गधे पर सवार, दक्षिण दिशा को जा रहा था, उसके सिर मुड़े हुए और बीसों भुजाएँ कटी हुई थीं। उस राक्षसी ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि यह स्वप्न चार दिन के पश्चात् सत्य हो कर रहेगा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

शास्त्रों में दुःस्वप्नों की शान्ति के लिए उपायों का विधान है गोस्वामीजी ने इस विषय में कुछ शान्ति-कर्मों का उल्लेख किया है जो सभी विफल सिद्ध हुए। मैंने 'ड्रीम्स मेन्शन्ड इन इण्डियन पोइट्स ऑव द्यू'[1] नामक लेख में स्वप्न के छः कारणों और शान्ति-कार्यों पर प्रकाश डाला है अतएव यहाँ अधिक चर्चा अनावश्यक है। उक्त तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त चतुर्थ अर्थात् तुरीयावस्था का भी नामोल्लेख हुआ है (रा० ७ २००)।

समय का अनुभव—पूर्व कल्प—गोस्वामीजी काल को अनुभव-पूर्व मानते हैं, (दो० १७७)। ईश्वर काल से परे है काल भगवान् से उत्पन्न होता है और भगवान् में ही समा जाता है। रामजी 'काल करम गुनाउ गुन बाहक' (रा० ७ ३७ ४) हैं। उनका अनुप काल है, तथा लव निमेष, परमाणु वर्ष युग और कल्प उनके बाल हैं (रा० ६ १ दो० १३०)। साठ लव का एक निमेष साठ निमेष का एक परमाणु साठ परमाणु का एक पल, साठ पल की एक घड़ी साठ घड़ी का एक दिन तीस दिन का एक मास बारह मास का एक वर्ष बारह सहस्र वर्ष की एक चतुर्युगी—अर्थात् ४३०० वर्ष का कृत ३६०० का त्रेता २४ ० का द्वापर, १२ ० का कलियुग होता है। ये सब दिव्य वर्ष हैं। मनुष्यों के ३६० वर्ष देवताओं के एक वर्ष के समान हैं। इस प्रकार दिव्य चतुर्युगी को महायुग कहते हैं जिसे मन्वन्तर भी कहते हैं। २००० मन्वन्तर अर्थात् आठ अरब चौंसठ करोड़ मानव वर्षों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का अहोरात्र है। ब्रह्माजी के सौ वर्षों का महाकल्प होता है। समय की यह कल्पना अनुभव पूर्व है।

समय और अनुभव—किन्तु गोस्वामी जी जानते हैं कि समय सापेक्ष भी है। काक भुशुण्डि से उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार दो घड़ी में सौ कल्प बीते और कल्पनातीत दूरी पार की गयी। उनका अनुभव था : राम के उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड विविध लोक, करोड़ों ब्रह्मा और शिव अगणित तारा-गण तथा सूर्य और चन्द्रमा अगणित लोक पाल एवं यम और काल अगणित विशाल पर्वत और भूमियाँ अतलस्पर्श समुद्र नदी, तालाब, वन, देवता मुनि सिद्ध, नाग, मनुष्य और किन्नर ऐसे थे जो पहले कभी न देखे थे न सुने थे और जो मन की कल्पना में नहीं समा सकते थे। वे एक-एक ब्रह्माण्ड

१ इंडियन हिस्टॉरिकल कॉन्ग्रेस १९३६ ई ।

में एक-एक सौ वर्ष रहे और इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते फिरे। प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा भिन्न-भिन्न विष्णु, भिन्न-भिन्न शिव एवं भिन्न-भिन्न मनु, दिक्पाल मनुष्य-गंधर्व भूत-बेताल किन्नर राक्षस पशु-पक्षी आदि थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उन्होंने अपना रूप देखा अनेक अनुपम वस्तुएँ देखीं प्रत्येक भुवन में न्यारी अवधपुरी, भिन्न सरयू और भिन्न प्रकार के नर-नारी यहाँ तक दशरथ जी कौसल्या जी और भरत आदि भाई भी भिन्न भिन्न रूपों के थे वहाँ उन्होंने रामावतार और उनकी बाल लीलाएँ भी देखीं किन्तु भगवान् रामचन्द्र दूसरी प्रकार के न थे। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मानों सौ कल्प बीत गये किन्तु इस सब अनुभव में केवल अड़तालीस मिनट ही लगे थे (रा० ७ ११८ १२४)। जाग्रत और स्वप्न के ज्ञान में तारतम्य है। स्वप्नावस्था में तो समय बड़ा लचकीला हो जाता है। योग वासिष्ठ' में लिखा है कि मनुजी का जीवन-काल ब्रह्माजी का क्षण-मात्र है और ब्रह्मा जी का जीवन-काल विष्णुजी का एक दिवस है तथा विष्णुजी का सम्पूर्ण-युग भगवान् शिव का केवल एक दिन है।[1]

वंशानुक्रम और परिस्थिति—तुलसीदास निश्चय ही वंशानुक्रम में विश्वास करते हैं। उन्होंने सर्वत्र अपने सभी ग्रन्थों में वर्णाश्रम सिद्धान्त को माना है। पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद (१० ९० १२), यजुर्वेद (३१ ११) और भगवद्गीता (४ १३) वर्णव्यवस्था को जन्म से मानते हैं जैसा कि 'प्रजायत' और 'सृष्टम्' इन दो शब्दों से विदित होता है। अतएव तुलसीदासजी के अनुसार गुणशील-हीन किन्तु जन्म जात विप्र गुण ज्ञान प्रवीण-शूद्र से अधिक श्रेष्ठ है

दुविज बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना। रा० ३ ४२ १

तथापि वे यह मानते प्रतीत होते हैं कि कतिपय प्रचित गुणों का वंशानुक्रमण नहीं होता। अतएव यह आवश्यक नहीं कि भले का पुत्र भला ही हो क्योंकि यह संभव है कि भले का पुत्र बुरा दानी का कृपण और कर्मठ का पापी हो जिस प्रकार अग्नि का गुण

होइ भले के अनभलो होइ बानि के सूम
होइ कपूत सपूत के ज्यों पावक में धूम॥ दो० १६८

गोस्वामीजी वातावरण की भी महिमा मानते हैं जिसके कारण मनुष्य भला-बुरा अथवा बड़ा-छोटा बन जाता है

तुलसी भलो सुसंग ते पोच कुसंगति होइ॥ दो० १५८
सुर सरि सुर होइ सो लघु संगति लघु नाम॥ दो० १५९
तुलसी सुख लघुता लहत लघु संगति परिनाम॥ दो० १६
बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास॥ दो० १६२

मूल प्रवृत्तियाँ—तुलसीदासजी ने कुछ मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात हैं। वे हैं काम क्रोध अभिमान लोभ निद्रा भय तृष्णा और पिपासा (वि० १७१ २ १८७ २ २ १ ४ २६० २)। यह वर्णन संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक से साम्य रखता है—

१ [illegible]

ज्ञानी तपस्वी, शूर कवि, विद्वान् और गुणी है जिसकी विडम्बना लोभ ने न की हो। लक्ष्मी के मद ने किसको कुटिल नहीं बना दिया और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है जो मृगनयनी के नेत्र-बाण से विद्ध न हुआ हो जिसे त्रिगुणों का सन्निपात न हुआ हो जिसे मद और मान ने अछूता छोड़ा हो जिसे यौवन के ज्वर ने आपे से बाहर न किया हो जिसके यश का नाश ममता ने न किया हो, जिसे मत्सर ने कलंक न लगाया हो, जिसे शोक-पवन ने विचलित न कर दिया हो और जिसे चिन्ता-सर्पिणी ने न डसा हो (रा० ७ ९९ ४ १०१ २)।

चिन्ता की एक भगिनी है जिसका नाम आशा देवी है। वह बड़ी विचित्र है क्योंकि जो उसकी सेवा करता है उसे तो शोक और सन्ताप प्राप्त होता है और जो उससे बचता है उसे सुख (दो० २५८)। आशा से आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है। ऐसा कौन वीर पुरुष है जिसके शरीर-रूपी काष्ठ में मनोरथ रूपी घुन न लगा हो जिसे पुत्र धन और लोक-प्रतिष्ठा की प्रबल इच्छाओं ने मलीन न कर दिया हो ? माया का यह परिवार महाबली और अपार है (रा० ७ १०१ ३-४)।

माया की सेना विशाल और विश्व-व्याप्त है। इसके सेनापति काम क्रोध और लोभ हैं तथा दम्भ कपट, और पाखण्ड योद्धा हैं (रा० ७ १ २ दो० २६३)। तुलसीदासजी का यह अभिप्राय है कि माया महासेनापति है जिसके नीचे काम क्रोध कपट पाखण्ड नामक प्रमुख योद्धा हैं प्रवृत्तियाँ और संचेत सिपाही हैं। मेरी कल्पना से इसका अर्थ परामर्शदाता है।

यद्यपि माया समस्त संचेतों और प्रवृत्तियों का स्रोत है तथापि तुलसीदासजी उसका तात्पर्य मोह से कर देते हैं जो काम-लोभ के अन्तर्गत है माया के अधीन है। माया-रूपी मोह की एक प्रबल धारा है जो काम क्रोध लोभ और मद से संकुल है (रा० ३ ३६ दो० २६६)। मोह की उपमा विपिन-से और नारी की ऋतुओं से दी गयी है (रा० ३ ३५, १ ३)। मोह के कारण मनुष्य सन्मार्ग से विचलित हो स्वार्थी बन जाता और अनेक पापापराध करके परलोक को नष्ट कर लेता है (रा० ७ ६३ २)। मोह उस हृदय में उत्पन्न होता है जो ज्ञान और वैराग्य से हीन है (रा० १ १५६ १)। लोभ कदाचित् संस्कृत भाषा के 'लभ' शब्द को व्युत्पन्न करता और अपने व्यापक रूप में प्रेम और परहित को भी समाविष्ट कर लेता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती (रा० १, २१० १) और प्रभुता से मद की उत्पत्ति होती है। प्रभुता पाकर किस को मद नहीं होता (रा० १ ८३ ४) ? मत्सर का निवास हृदय में तब तक रहता है जब तक धनुर्धारी राम का प्रवेश नहीं होता (रा० ५ ४७ १)। सज्जन कभी परद्रोह नहीं करते (रा० ७, ३४ १)। राम-रूप नाम के दो उभुक ममता रात्रि में रामभक्ति-सूर्योदय तक जड़ते-जोलते हैं (रा० ५, ४७ २)। मान अभिमान अथवा गर्व दुष्ट-समुदाय का सदस्य है जो हृदय को कलुषित करता, और मोह की वृद्धि करता रहता है (रा० १ १५६ १ २)। मिथ्या मायक और कपट का वही प्रभाव प्रेम पर पड़ता है जो धर्म का दुग्ध पर। संशय और शोक अज्ञान उत्पन्न करते हैं (रा० ७ ३२, ४)। स्वार्थ से मोह और मोह से पाप (रा० ७ ६३, २) होता है। स्वार्थी मनुष्य लंपट कामी क्रोधी और लोभी होते और पारिवारिक कलह को

जन्म लेते हैं वे माता पिता गुरु और मित्र की बात नहीं सुनते अतएव स्वयं नष्ट होते और दूसरे का नाश करते हैं (रा० ७ ६२ २ ३)। यह संसार स्वार्थी मित्रों से परिपूर्ण है माता-पिता तक स्वार्थ रत होते हैं (रा० ७ ६१ २)। स्वार्थ सम्पूर्ण अवगुणों का मूल है।

स्थायी भाव—तुलसीदास ने नव-रस का उल्लेख किया है (वि १६६ १)। पर परंपरा से नव-रस माने गये हैं वे ये हैं —शृंगार करुण शान्त हास्य वीर भयानक वीभत्स रौद्र और अद्भुत। कुछ लोगों ने भक्ति और वात्सल्य को भी माना है यद्यपि साधारणतः उनका समावेश शृंगार में किया जा सकता है। गोस्वामीजी ने प्रीति वात्सल्य और परहित का विशेष उल्लेख किया है। दान का प्रारम्भ घर से होता है अतएव माता के वात्सल्य का ही परहित अथवा प्रेमभाव में परिपाक हो जाता है। कौशल्या तथा अन्य माताओं ने राम के वन से लौटने पर ऐसा प्रेम प्रकट किया जैसा गायें अपने नवजात बछड़ों के लिये (रा० ७ १४ ३)। वात्सल्य से वशीभूत हो वे यह नहीं समझ पाती थीं कि मेरे पुत्रों ने दानव दल का संहार किस प्रकार किया होगा (रा० ७ १६ ४)। वात्सल्य और सन्तति-कामना से प्रेरित हो मनु और शतरूपा ने यह वरदान माँगा था कि कि भगवान् हमारे पुत्र रूप से उत्पन्न हों (रा० १ १७७)। यह है वात्सल्य की महिमा। वात्सल्य का उन्नत रूप परहित है, जो अनुराग पुष्प है (रा० ७ ६१ १) जिसमें यह भावना विद्यमान है उसे इस संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह देह-त्याग के पश्चात् स्वर्ग में निवास करता है (रा० ३ ३६ ३)।

प्रेम रस—प्रेम और शृंगार का ऐसा ही निकट सम्बन्ध है जैसा राम और भरत का (रा० ७ १३ छं० १) किन्तु यह भी ठीक है कि कभी-कभी बिना भय के प्रीति नहीं होती (रा० ५, ६) यद्यपि मेरे विचार से यह बात शुद्ध प्रेम में लागू नहीं है क्योंकि किसी भी सांसारिक चिन्ता और विचार से शुद्ध प्रेम प्रेरित नहीं होता यथा जब राम ने बानरों पर परम प्रीति प्रदर्शित की तो वे यह भूल गये थे कि हम कौन हैं कहाँ थे और कहाँ से आये हैं (रा० ७ १३ १) ? उन्हें अपने घर नितान्त विस्मृत हो गये थे यहाँ तक कि स्वप्न में भी उनका स्मरण न होता था क्योंकि भगवच्चरण में उनका प्रेम ऐसा ही था (रा० ७ १४ १)। भय संकोच और प्रेम के भाव एकत्र हो सकते हैं इसका अनुभव सती को तब हुआ था जब वह राम की परीक्षा लेकर पितृ-गृह के लिये प्रस्थान करने वाली थी (रा १ ८४ ४)। प्रेम और प्रतीति भी साथ रहते हैं। गठबन्धन (अर्थात् विवाह) की अपेक्षा विश्वास अधिक श्रेष्ठ है और वह इस प्रकार बढ़ता है जैसे भूमि में अनाज (दो ४३३)। स्त्रियाँ तो अपने घर की भित्ति पर ऐंपन से अपने हाथ का थापा रख लेतीं और उसकी पूजा करती हैं जिससे उनकी सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं यह प्रेम और प्रतीति का फल है (दो ४३४)। प्रेम सब प्रकार के विचार और हेतुओं से विमुक्त रहता है क्योंकि वह शुद्ध है और स्वयं साध्य है। शुद्ध प्रेम या तो अनन्य होता है या साम्य। अनन्य प्रेम सांसारिकता से रहित और केवल एक-विषय-परक होता है। पुनश्च वह या तो एकांगी होता है या पारस्परिक। तुलसीदासजी ने अनन्य पूर्व एकांगी प्रेम के लिये चातक सर्प मत्स्य और कमल के उदाहरण दिये हैं। चातक स्वाति-जल के अतिरिक्त

और किसी बल को स्वीकार नहीं करता सर्प सपेरे की बीन को आत्मसमर्पण कर मणि रहित हो जाता है मछली मर जाती है परन्तु पानी का संग नहीं छोड़ती, हरिण व्याध के बाण को अपना शरीर भेंट कर देता है, (दो० ३०८ ३१२,३१७-३२० रा० २, २०५, २ ३२५)। इन प्राणियों के लिये प्रेम साधन नहीं साध्य है किन्तु कामी के लिये नारी साधन-मात्र है। ऐसी गर्हित दृष्टि का अन्त तलाक या अन्य किसी प्रकार के वियोग में होता है। प्रेमियों का आदर्श-मिलन तन्मयता है जैसे दूध और जल की (रा० १ ८१)। हितकारी वचन वैर का उन्मूलन करता और परहित प्रेम की जड़ जमा देता है (दो० ४३४)।

काम—तुलसीदासजी ने, आधुनिक मनोविश्लेषण के जन्मदाता सिगमण्ड फ्रॉयड की अपेक्षा काम अर्थात् यौन प्रवृत्ति पर कुछ कम ध्यान नहीं दिया। 'काम' शब्द में सब प्रकार की कामनाएँ निहित हैं। ऋग्वेद में लिखा है

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत् ॥ १० १२९ ४

अर्थात् आरम्भ में काम उत्पन्न हुआ जो मन का प्रथम बीज था। उपनिषदों में भी काम शब्द इच्छा के अर्थ में प्रयुक्त है, यथा आत्रेय (१ ५, २)। काम का यह रूप अयौन था। छान्दोग्य का कथन है

सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय ६ २ ४

यहाँ काम का रूप यौन और अयौन के मध्यस्थ है। परमात्मा को अकेलापन अखरा अतएव उन्होंने दूसरे की इच्छा की। वे नारी बन गये और उन्होंने पति-पत्नी का रूप ग्रहण किया। इससे मानवों की सृष्टि हुई (बृहदारण्यक १ ४ १ ३)। काम का यह रूप यौन है। मूर्त्त रूप में काम कामदेव हो गये। चार पदार्थों में काम का स्थान है और उस पर अनेक ग्रन्थ हैं जैसे 'रति रहस्य' रति मंजरी 'रस मंजरी' अनंग रंग'। महर्षि वात्स्यायन ने काम की जो परिभाषा दी है वह आधुनिक युग के हैवलोक एलिस की से बहुत-कुछ मिलती है।

कामदेव के अधीन कौन नहीं ?—कामदेव सब पर प्रभाव डालते हैं। कौन उनके अधीन नहीं हो जाता (रा० १ १३५ ४)। उन्होंने पुष्पवाटिका में तथा सीता हरण के पश्चात् राम को वशीभूत किया था (रा० १ २६१ १ ३ रा ३ ४२ २)। राम और सीता को संयोग और वियोग में जो प्रेम की अनुभूति हुई थी तुलसीदास ने उसकी पुष्टि की है (रा० १ २६१ ४ २६६ २६९, ५, १४ १ २)। अपराधिनी कैकेयी के सम्मुख दशरथ अशक्त थे क्योंकि कामदेव ने उन्हें जर्जर कर दिया था (रा २, २५ सं०)। नारद जी ने एक बार भगवान् शंकर से यह आत्मश्लाघा की थी कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है किन्तु वे भी एक कन्या के फेर में पड़ गये (रा० १ १२७ ४)।

कामदेव अन्धे हैं—प्रेमी अन्धक रूप से, किन्तु मूर्खतावश, अपने गुणों को तथा अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य को औचित्य से अधिक मूल्यवान् समझता है। बानर मुख नारद जी स्वयंवर में बैठे हुए अपने को सर्वांगसुन्दर समझ रहे थे (रा० १ १३९ १६२ ३)। अतएव तुलसीदासजी मानते हैं कि प्रेम और वैर दोनों ही अन्धे हैं

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ॥ दो० २२६

गोस्वामीजी से मतीयान् किन्तु समकालीन, इंगलैण्ड के महाकवि शेक्सपीयर की भी उक्ति ऐसी ही है

लव लुक्स नॉट् विद् दि आइज बट् विद् द माइंड,
एण्ड देअरफोर इज विंग्ड क्यूपिड पेंटेड् ब्लाइंड।

विवेक-हर काम—विषय-जन्य सुख विवेक को हर लेते हैं। इस सम्बन्ध में सुग्रीव ने हनुमान् जी से (रा० ४ २१ २) और लक्ष्मण जी से भी स्वीकार किया है कि विषय के समान कोई मद नहीं है क्योंकि यह क्षण-मात्र में मुनियों के मन में भी मोह उत्पन्न कर देता है (रा० ४ २२, ४)। तदनन्तर वे राम जी से कहते हैं कि देवता मनुष्य और मुनि सभी व्यक्ति विषयों के वश हैं मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अति कामी बन्दर हूँ। वास्तव में वही जीवता है जिसे स्त्री का नयन-बाण नहीं लगता (रा० ४, २६, २)। जो जीवों के द्रोह में रत मोह के वश राम से विमुख और काम में आसक्त है, क्या उसे स्वप्न में भी सम्पत्ति और शान्ति प्राप्त हो सकती है (रा० ६ १०१) ? ज्ञान-निधान मुनि भी भुवनमणी के विधु-मुख को देखकर विवश हो जाते हैं (रा ७ १६५)। जो पुरुष नारी का त्याग कर सकते हैं वे विरक्त और मतिधीर होते हैं विषयासक्त कामी पुरुष ऐसा नहीं कर सकते (रा ७ १६४)।

काम का प्रतिकार—कामी के शब्दों से सम्भारी ऐसी अविचलित रहती है जैसे शंकर जी का धनुष (रा० १ २८३ १)। मोह का उतार है ज्ञान और अनासक्ति का अर्जन। विष्णु जी ने नारद जी से कहा था कि ज्ञान और विराग से हीन हृदय में मोह व्याप्त होता है। मतिधीर एवं ब्रह्मचर्यव्रत निरत पुरुषों को काम क्या कष्ट दे सकता है (रा० १ १५६ १) ? निस्सन्देह संन्यासी का अपरिहार्य लक्षण विराग है (रा० १ २८३ २)। पार्वती जी ने शंकर जी की प्राप्ति के निमित्त सहस्रों वर्ष तक निराहार घोर तपस्या की तथापि उनका प्रेम वासना-हीन था। जब समझाने के लिये सप्तर्षि उनके पास पहुँचे और बोले कि शंकर जी ने कामदेव को भस्म कर दिया है अतएव आपकी तपस्या व्यर्थ है तो वे ऋषियों से बोलीं आपके इस कथन से कि महादेव जी ने कामदेव को भस्मसात् कर दिया है यह प्रतीत होता है कि वे परिवर्तनशील हैं किन्तु मैं तो उन्हें सदा से जानती हूँ वे निर्विकार योगी हैं। मैंने मनसा वाचा और कर्मणा उनकी सेवा की है वे कृपालु हैं अतएव मेरे प्रण का अवश्य पूरा करेंगे। आपका यह कथन कि उन्होंने कामदेव को नष्ट कर दिया है आपकी विवेकशून्यता को व्यक्त करता है। अग्नि का स्वभाव परिवर्तित नहीं होता हिम उसके निकट नहीं रह सकता यदि निकट आयगा तो नष्ट हो जायगा इसी प्रकार महादेव जी के समक्ष काम भी (रा० १ १२३ १४)। भगवती पार्वती का प्रेम अपने पति के प्रति सत्य था और उन्हें अपने प्रेम पर विश्वास भी। राम के प्रति सीता जी की भी यही भावना थी उन्हें विश्वास था कि—

जाहि के जाहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

रा० १ २६१, ३

राम को प्रेम प्यारा है—उन्नत प्रेम के रूप का दर्शन भगवान् के सान्निध्य में

होता है। चित्रकूट में रामचन्द्र जी के आश्रम के निकट हाथी सिंह बन्दर, सूकर एवं हरिण बैर छोड़कर विहार, और नीलकंठ कोकिल सुक, चातक, चक्रवाक चकोर आदि पक्षी कर्ण-सुखद तथा मनोरम कलरव करते थे (रा० २ १३८ १)। कोल किरात, भील आदि वनवासी पवित्र सुन्दर एवं अमृतोपम स्वादिष्ट मधु को तथा कन्द मूल फल आदि को दोनों में भरकर और उनके गुण और नाम आदि बता-बताकर अत्यन्त विनय के साथ रामचन्द्र जी को भेंट करते थे। जब रामचन्द्रजी उन्हें उसका मूल्य देते, तो वे प्रेम के कारण यह कहकर न लेते थे

मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥ रा० २ २२५, १ ३

और राम को भी तो प्रेम ही प्यारा था

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननि हारा ॥ रा० २ १३७, १

ग्रन्थि का रूप—इच्छाओं के दमन से मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाया करती हैं। तुलसीदासजी के अनुसार ग्रन्थियाँ जड़ और चेतन के संयोग से अर्थात् अज्ञान और मन के कारण पड़ जाती हैं। यद्यपि ग्रन्थि वास्तव में मिथ्या होती है तथापि उसका खोलना कठिन है और जब तक वह नहीं खुलती तब तक सुख नहीं मिलता। जब से जीव 'स्वार्थी' होने लगता है तब से यह ग्रन्थि पड़ने लगती है। इसको सुलझाने के लिये जितना प्रयत्न किया जाता है उतनी ही यह उलझती जाती है

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

रा० ७ १६७ २ ३

ग्रन्थि रोग-कारक है—ग्रन्थि के कारण शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। व्याधियों के समान आधियाँ भी कष्टप्रद होती हैं। इन्हें गोस्वामीजी ने मन सम्भव-दोष बताया है (रा० ६ १३७ छं० ३)। आयुर्वेद से अनभिज्ञ रोगी अपने वैद्य से कुपथ्य माँगा करता है इसी प्रकार आधियों से पीड़ित मनुष्य अपने रोग के निदान से अनभिज्ञ होने के कारण काम-क्रोध रत रहता है। यह तो विशेषज्ञ ही कह सकता है कि अमुक रोग का क्या कारण है और उसकी शान्ति का क्या उपाय है? भगवान् विष्णु ने नारद जी की अहमिति-ग्रन्थि (सुपीरियोरिटी काम्पलैक्स) को दूर किया था (रा० १ १२४ ३ ४, १२२ १६० १) क्योंकि नारद जी को यह घमण्ड था कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त की है, किन्तु इस संसार में ऐसा कौन है जिसे मोह ने अन्धा न किया अथवा काम ने नहीं नचाया (रा० ७ ६६, ४)।

कारण का विश्लेषण—काक भुशुण्ड से कहते हैं सब आधियों का मूल मोह अर्थात् अज्ञान है। आधियों से बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ कफ है और क्रोध पित्त है। इन तीनों के मिल जाने से सन्निपात हो जाता है। वैषयिक मनोरथों से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। ममता दाद है ईर्ष्या खुजली हर्ष-विषाद गठिया और पर-सुख-द्रोह क्षय है। दुष्टता कोढ़ है, अहंकार डमरू तथा दम्भ कपट, मद और मान नेहुआ है। तृष्णा जलोदर, एषणाएँ तिजारी मत्सर और अविवेक ज्वर है। इनमें से, एक ही रोग से मनुष्य मर जाते हैं। तुलसी के वचन हैं

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना
ममता दादु कंडू इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलाई
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका
एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

रा० ७ २०७ १५ २०८

असाध्य सब की व्याधियाँ—इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं क्योंकि वे हर्ष शोक प्रीति-भय आदि से समन्वित हैं। रोग-निवारण के लिये अनेक उपाय हैं, यथा नियम, धर्म आचार तप ज्ञान, यज्ञ जप दान और औषधियाँ भी किन्तु अनेक उपचारों के रहते हुए भी व्याधि कम नहीं होती (रा० ७ २०९) क्योंकि केवल कतिपय लोग इन रोगों को जानते हैं (रा० ७ २०९ १)। विषय-रूप कुपथ्य को पाकर मुनियों के हृदय में भी ये रोग अंकुरित हो उठते हैं फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या?

रैचन—आधुनिक मनोविज्ञानों का विश्वास है कि इच्छाओं और मूल प्रवृत्तियों का प्रकाशन दमन अथवा रूपान्तरीकरण होता है। स्मृतियों के पाठकों को विदित है कि ब्रह्मचर्य के पालन पर कितना आग्रह किया गया है। सन्तों के द्वारा कामिनी-कांचन त्याग का परामर्श कदाचित् कुछ लोगों को अखरता भी है। प्राचीन ऋषियों ने उत्सवों के नियमित अभिव्यंजन का महत्त्व समझा अवश्य उन्होंने होली पर आचार शिथिलता और गोवर्धन पर द्यूत-क्रीडा के लिये किंचित् स्वातन्त्र्य दे दिया है। विदेशों में भी मे-डे तथा एप्रिल-फूल मनाये जाते हैं। विवाहों के अवसर पर स्त्रियाँ शृंगारिक एवं अश्लील गीत गाती हैं। पार्वती-परमेश्वर एवं सीता राम के विवाह के दोनों अवसरों पर तुलसीदासजी स्त्रियों से गालियाँ बखाना नहीं भूले (रा० १ १२१ १ १६१ १४ पा० मं० १५० बा० मं० १६७ १७६, रा० न० ८ ११ १८)। इस प्रकार के गीत तुलसीदासजी के समय में गाये जाते थे और इनका प्रचार आज भी ब्रज और अवधी प्रान्त में है। तुलसीदासजी को ऐसे गीत सुनने में कदाचित् आनन्द आता होगा क्योंकि वे विनोदी थे। उनकी वर्णन-शैली से यह प्रतीत होता है कि वे इस प्रथा को बुरा नहीं समझते थे यद्यपि वे गालियों के दोषों से भी अनभिज्ञ न थे। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा जी ने गाली को अमृत और विष के निचोड़ से रचा है इसलिये गाली प्रेम और वैर दोनों की ही जननी है इस रहस्य को बुद्धिमान् समझते हैं कामीन नहीं

अमित्र मारि मारेउ मरत मारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुय जानहिं बुध न गँवार॥ दो० १२४

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भी अवसीन सम्य यदा-कदा रेचक अतएव हितकारी सिद्ध होता है।

उचित उपचार—यदि उचित उपाय का अवलम्बन किया जाय तो मानसिक रोग अर्थात् व्याधि का उन्मूलन हो सकता है। उपचार द्विविध है नकारात्मक और भावात्मक। नवरस-विरति विषय-कुपथ्य त्याग और पर-द्रोह-त्याग नकारात्मक हैं (रा० २, १२७) ये संयम हैं। इनके अतिरिक्त व्याधि मुक्ति के निमित्त, रोगी को आवश्यकता है सद्गुरु-रूपी वैद्य के वचनों में विश्वास की भक्ति-रूपी संजीवनी बूटी की और श्रद्धा समन्वित बुद्धि-रूपी अनुपान की (रा० ७ २ १ १४)। सत्संग से रोगी का मनोविनोद होता है।

मनोविश्लेषक तुलसी—तुलसीदासजी रोग के निदान और उपचार का उल्लेख करते समय, आधुनिक मनोविश्लेषक-से प्रतीत होते हैं। आधि-व्याधि की शान्ति मनोविज्ञान-ज्ञान से हो सकती है। गोस्वामीजी का वचन है

जाने ते छीजहिं कछु पापी॥ रा० ७, २ ९, २

सांसारिक कष्ट और दन्य के विनाश के लिए, वे समता का उपदेश देते हैं। समता का लक्षण है अत्यन्त आदर पाने पर हर्ष न होना निरादर होने पर क्रोध न करना और हानि-लाभ सुख-दुःख भलाई-बुराई में चित्त को सम रखना (वि० २६८ १ १२६ ।)। अनुकूल साधन अनुकूल समय और अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति पर, तीनों कालों में एक-रसता का नाम समता है (वो ५३६) जिसकी प्राप्ति विनय विरति और विवेक के द्वारा होती है। सनकादि चारों ऋषियों ने भगवान् राम से समता की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की थी (रा० ७ ३७ २ ३)। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गोस्वामीजी 'स्वार्थ' के स्वरूप से पूर्णतः अभिज्ञ थे इससे न देवता न मुनि न मनुष्य मुक्त हैं माता पिता भी नहीं। यह पाप और दुराचार के लिये प्रेरणा देता (रा० ७ १४, १ ९१ १ २ ९९, १ २०७ ७)।

समता का रूप—समता परोपकार का अव्यक्त रूप है और वह विनय विराग या विवेक से पुष्ट होती है। ईसा-धर्म और इस्लाम में अपराध-पाप को मान लेने की प्रथा प्रचलित है इससे छिपा हुआ मन का चोर प्रकट हो जाता है। धर्म निरपेक्ष मनोविश्लेषक भी रोगी के मन को पढ़कर लगभग यही बात करता है। वस्तुतः वह मोहिनी-शक्ति के द्वारा रोगी को निद्रावस्था में ले जाता है उसके स्वप्नों का विवेचन करता है अथवा उन्मुक्त-सम्बन्ध (फ्री एसोसियेशन) के उपाय का अवलम्बन करता है। तुलसीदासजी ने विवेक की संस्तुति की है जो निःस्वार्थ और नियमित जीवन से प्राप्य है। इन सब का परिणाम है परोपकार। आजकल के मनोविज्ञानियों का भी यही मत है कि स्वार्थ सब विपत्तियों का स्रोत है उससे व्यथा और व्यथा से द्वेष उत्पन्न होता है, व्यथित मनुष्य अपने ऊपर क्रोध किया करता है। मानसोद्यान 'स्वार्थ' अनभीष्ट घास-पात के समान है जिसका उन्मूलन ही श्रेयस्कर है और संसार का अभिशाप वह जैल एवं पागलखानों को भरता रहता है।

रामभक्ति की रामबाधता—इतना रहा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से। गोस्वामीजी और भी गहरे जाते हैं। वे अति-मनोविज्ञान (पर-साइकोलोजी) में निमज्जन कर व्याधियों के लिये राम-नाम औषध प्रदान करते हैं। यह है भगवद् भक्ति अथवा रामभक्ति। रामभक्ति क्या है? रामकथा-श्रवण, राम-स्तुति तथा राम नाम-जप। जिसके पास ऐसी भक्ति-मणि है उसको आधि-व्याधियाँ नहीं सताती वह स्वप्न तक में इन से तनिक भी आक्रान्त नहीं होता (रा० ७ २०५, ४ ५)। राम भक्ति संजीवनमूल है, (रा० ७ २ ३, ४) क्योंकि राम के प्रसाद से क्लेश काम लोभ मद मोह सब छिन्न भिन्न हो जाते हैं (रा० ३ ४६, २)।

मानसिक स्वास्थ्य का निकष—यह है जीवन का लक्ष्य और साधन किन्तु इसकी क्या कसौटी है कि उक्त योग (नुस्खे) से मन स्वस्थ हो रहा है? तुलसीदासजी का उत्तर है कि मन को नीरोग तब समझना चाहिये जब हृदय में वैराग्य रूपी बल आए सुबुद्धि-रूपी क्षुधा नित्य प्रति बढ़े विषय और आशा रूपी दुर्बलता घट जाए, तथा च रोगी विमल-ज्ञान-रूपी जल में स्नान कर ले और उसका हृदय रामभक्ति से ओतप्रोत हो जाय।

आत्म-साक्षात्कार का नित्य मूल्य—आत्मज्ञान से परमार्थ की प्राप्ति होती है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः' (बृहदा० २, ४ ५) तथा 'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः' (मुण्डक० ३ २, ४) आदि औपनिषद् वाक्य आत्मज्ञान पर आग्रह करते हैं। मानसिक चिकित्सा के निमित्त श्री सी० जी० युङ् आत्म-ज्ञान की प्रशंसा करते हैं। मनुष्य अपने विषय में जितना सज्ञान होता जाता है उतना ही विशाल-हृदय और उदार-चेता भी। तुलसीदासजी भी इस बात को भली भाँति जानते हैं और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा भी है कि ज्ञान से आधियों का शमन हो जाता है किन्तु पूर्णतः उन्मूलन नहीं

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥

रा० ७ २०६, २

तुलसीदास के दो योग—गोस्वामी जी ने दो नुस्खे लिखे हैं जिनमें एक मनो विश्लेषणात्मक है दूसरा अति-मनोवैज्ञानिक। पहला तो कदाचित् विफल भी हो जाय, किन्तु दूसरा नितान्त अचूक है। अभी निवेदन किया जा चुका है कि मनोविश्लेषणात्मक योग समता का है जिसमें तीन 'वि' तत्त्व हैं अर्थात् विनय विवेक और विराग। इन तीनों में से पहला तो इन्द्रियों को नियमित मन को संयमित तथा दूसरे के लिये मार्ग प्रस्तुत करता है दूसरा ज्ञान-द्वारा भले-बुरे की पहचान और संसार का वास्तविक स्वरूप उपस्थित कर तीसरे के मार्ग को प्रशस्त करता है और तीसरा इच्छा तथा स्वार्थ का नाश करता है। इन तीनों का संयुक्त परिपाक ही समता है जो परोपकार अथवा लोक-संग्रह के और अन्तत सुख अथवा आनन्द के रूप में प्रादुर्भूत होती है।

निष्कर्ष—निष्कर्षतः तुलसीदास के अनुसार, ज्ञान अथवा विवेक तो केवल एक तत्त्व है। उन्होंने तो 'समता' की संस्तुति की है जिसमें विनय विवेक और विराग तीन तत्त्व होते हैं। हेड फ्रोइड ने पूर्ण आत्मानुभव (कम्प्लीट सैल्फ रिएलाइजेशन) की

कल्पना की है जो तुलसीदासजी के निकट है। किन्तु तुलसीदासजी जानते हैं कि ये त्रिविध 'वि' कुछ दशाओं में कदाचित् विफल हो जायँ अतएव उनका अन्तिम नुस्खा राम भक्ति है क्योंकि जैसा कि कास जैस्पर्स ने पीछे बताया 'असीम' पर निर्भरता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनन्त से मिल कर आत्मा स्वयं अपने को असीम और स्वतन्त्र अनुभव करने लगता है।[1]

---

१ बिन द सोल्ज़ टु बि इनफिनिट द मास्ट फीलिंग एक्सेप्ट एक इन्फिनिटि एक्ट ही—' ज़ास्पर्स कोनोमिका चॉव सायकोलोजी, ट्रिलिंग कोर्स हैरिसन, पृष्ठ ८१०।

आचार-शास्त्र

(क) प्रारम्भिक वक्तव्य

इस अध्याय में आचार-शास्त्र के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास के विचारों को चार विभागों में उपस्थित किया जायगा। प्रथम तो यह विचारणीय है कि क्या व्यक्ति कार्य करने में स्वतन्त्र है और जो कुछ वह करता है उसके लिये वह कहाँ तक उत्तरदायी है? इस को उत्तर मिलेगा कि गोस्वामी जी के अनुसार ईश्वरेच्छा बल वती है और व्यक्ति व्यवहार में स्वतन्त्र माना जा सकता है। द्वितीयतः यह विचार करना है कि भले-बुरे का स्वरूप क्या है? गम्भीर विचार के पश्चात् यह विदित होगा कि उन्होंने भले-बुरे की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की है—अतिभौतिक और आधा-रिक। अतिभौतिक स्तर से इस सन्त के अनुसार सत्य ही श्रेय है और असत्य अहित है। आधारिक स्तर में धर्म अपने निषेधात्मक रूप में अहिंसा और भावात्मक रूप में परोपकार है तथा अधर्म अपने सूक्ष्म रूप में स्वार्थ और स्थूल रूप में परपीडन है। तृतीयतः यह जानना है कि समाज रचना कैसी है और व्यक्ति का उसमें क्या स्थान है? इस सम्बन्ध में उनके वर्णाश्रम-सम्बन्धी विचारों का विवेचन अभीष्ट है कि धर्म च्युति की दशा में नाम जपादि का क्या प्रभाव होता है? चतुर्थतः यह जिज्ञासा है कि समाज में स्त्री का क्या स्थान है? विदित होगा कि यद्यपि तुलसीदासजी ने सीता सुमित्रा और कौशल्या के रूप में नारी का चरित्र अति श्रेष्ठ रूप में अंकित किया है तथापि उन्होंने कारणवश नारी की निन्दा भी की है। अन्त में शिव-भाव का निर्देश होगा जिसे उन्होंने उन सभी मनुष्यों के लिये प्रशस्त समझा है जो उस पर चलने के अभिलाषी हैं।

(ख) स्वतन्त्रता और नियति

क्या व्यक्ति स्वतन्त्र है?—मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य कार्य करने में स्वतन्त्र है स्वतन्त्रः कर्ता (पाणिनि १, ४ ५४)। व्यक्ति अपनी इच्छा का उपयोग जैसे चाहे वैसे करे। वह चाहे तो अपना हाथ उठा ले चाहे तो कविता-पाठ करने लगे और चाहे तो अपनी अँगुलियों की ओर देखने लगे। तथापि यह सत्य है कि उसके सभी कार्य उसके चरित्र और स्वभाव पर निर्भर हैं। जिस प्रकार प्रत्येक पंक्ति के दो सिरे होने आवश्यक हैं उसी प्रकार कार्य भी स्वतन्त्र और नियत होता है। किन्तु अतिभौतिक दृष्टिकोण से बात भिन्न है। जैन-मत में जीव को मुक्तावस्था से पूर्व तक कार्य करने में स्वतन्त्र माना गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का अनुयायी ईश्वर और प्रकृति के समान जीव की भी स्वतन्त्र सत्ता समझता अतएव उसे कार्य करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र मानता है। उसके मतानुसार, जीव अपनी स्वतन्त्रता के कारण भला कार्य करे या बुरा किन्तु जो लोग जीव को ईश्वर के अधीन मानते हैं वे अन्य प्रकार से सोचते हैं। अद्वैत वेदान्ती परमार्थ की दृष्टि से जीव और

ईश्वर में भेद नहीं मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से वे जीव को कार्य करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र मान लेते हैं। किन्तु जो लोग व्यवहार और परमार्थ के भेद में तथा माया की सत्ता में विश्वास नहीं करते वे जीव को ईश्वरेच्छा के अधीन समझते हैं।

कर्म-सिद्धान्त—चार्वाक को छोड़कर कोई भी भारतीय दर्शन ऐसा नहीं जो किसी-न-किसी रूप में कर्म-सिद्धान्त को न मानता हो। प्रत्येक मनुष्य सूक्ष्म-शरीर पर अपना संस्कार छोड़ जाता है, और संस्कार की यह प्रवृत्ति है कि वह पुनः-पुनः उत्पन्न होना चाहता है, इस प्रकार मनुष्य के सूक्ष्म-शरीर में जन्म-जन्मान्तरों के अनेक संस्कार विद्यमान रहते हैं। यद्यपि संस्कार क्रियाशील हैं, तथापि वे संचित होकर क्रियारहित-से विद्यमान रहते हैं, किन्तु अनुकूल अवसर के प्राप्त होते ही वे सक्रिय हो जाते हैं। कार्यारम्भ करते ही उनकी संज्ञा प्रारब्ध होती है। प्रत्येक क्रियमाण कार्य प्रारब्ध पर निर्भर रहता है।

कर्म-सिद्धान्त में ईश्वरेच्छा की पूर्वनिहितता—एक बार कर्म-सिद्धान्त में विश्वास कर लेने से ईश्वरेच्छा की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। कल्पना कीजिये कि कोई शिशु ईंटों से रेलगाड़ी खेलना चाहता है। तन्निमित्त वह सात ईंटों को एक के पीछे एक सीधी रेखा में खड़ी करता है। तदनन्तर वह प्रथम ईंटिका पर मृदु पदाघात करता है। क्या होता है? पहली ईंट दूसरी पर, दूसरी तीसरी पर, तीसरी चौथी पर, चौथी पाँचवीं पर, पाँचवीं छठी पर, छठी सातवीं पर गिरती है, और इस प्रकार सभी ईंटें गिर पड़ती हैं। यदि प्रश्न उठे कि सातवीं ईंट क्यों गिरी तो उत्तर मिलता है, क्योंकि छठी गिरी, छठी क्यों गिरी? क्योंकि पाँचवीं गिरी इत्यादि। मोटी दृष्टि से सातवीं छठी पाँचवीं चौथी तीसरी दूसरी के गिरने का कारण प्रत्येक से पहली ईंट है। ईंट ईंट के गिरने का कारण हुई। इस उत्तर में सत्य है किन्तु पूर्ण सत्य नहीं। वास्तव में कारण है पहली ईंट का गिरना किन्तु पहली ईंट के गिरने का कारण है शिशु का पदाघात। इसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त की शृंखला के बन जाने पर, पिछली कड़ी का कारण पूर्व कड़ी मान ली जाती है। अतएव कर्म-सिद्धान्त व्यवहार-जगत् में ही साधु है। उसको संचालन करने के लिये ईश्वरेच्छा की कल्पना आवश्यक हो जाती है। कार्य-कारण-शृंखला इतनी लम्बी है कि साधारण दृष्टि से इसका ओर-छोर नहीं दीखता। जैसे किसी अज्ञात नदी के किनारे पर बैठा हुआ शिशु नदी के प्रवाह को अनादि समझता है वैसे ही अज्ञ भी संसार को अनादि कह देता है। संसार में प्रवाहानादित्व है पर उसमें अजस्रत्वानादित्व[1] मान लेने के लिये कारण प्रतीत नहीं होता।

अकर्मण्यता—गोस्वामीजी ने स्पष्ट कहा है कि जीव जो चाहे वह कर सकता है। वह स्वतन्त्र है। भाग्य पर तो आलसी विश्वास करते हैं

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा। अ० ३, ३२, २

तथ्य यह है कि

जथा सो कुनिय तहिय सो बोहा॥ रा० २, १६, ५

अर्थात् जो जैसा करता है वह वैसा भरता है। तुलसीदासजी ने कुछ शास्त्रिकायों का

१ ऑफ़ द सॉर्ड ऑव ईविल्यूशन टिलोसिफ़ी, आफ़्टर द ग्रन पृष्ठ ६१ ६२।

उल्लेख किया है जिसके सम्पादन से अनिष्ट की अप्रियता नष्ट हो जाती है, यथा भरत जी को मनसाल में दुःस्वप्न हुआ तो दुष्फल को दूर करने के लिये भगवान् शिव और गणेशजी की पूजा करायी गयी और ब्राह्मणों को भोजन दिया गया (रा० २, १३७, ३ ४)। सीताजी को भी चित्रकूट में दुःस्वप्न हुआ था और तदनन्तर प्रातः काल स्नान पूजनादि भी किये गये (रा० २ २२६ २-३) यद्यपि दोनों ही उदाहरणों में शान्ति कर्म व्यर्थ रहे। तुलसीदासजी ने अनेक बार मुहूर्तों का उल्लेख किया है (रा० २ २७२ ३ रा २ ३२४)। मनना से शुभमुहूर्त निकालने का विचार-मात्र नियति का निर्देशक है। भाग्य के पर्याय हैं दैव विधि (रा० १ २३४ ४)। गोस्वामीजी का निश्चय है कि काय का अन्तिम कारण भगवदिच्छा ही है।

हरीच्छा के कुछ उदाहरण—भगवदिच्छा का अनेक बार उल्लेख हुआ है। कुछ उदाहरण ये हैं। सतीमोह के सम्बन्ध में भगवान् शिव कहते हैं कि जो होना है वही होगा तर्क करने से क्या लाभ ?

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावइ साखा ॥ रा० १ ५४ ४

नारदजी के शब्दों को सुन कर जब मैना पार्वती विवाह के सम्बन्ध में बड़ी चिन्तित हुईं तो पार्वती अपनी माता को इस प्रकार धैर्य दिलाती हैं

अति बिचारि सोचहि मत माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जो बाउर नाहू। तो फल पोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥

रा० १ १२० ३ ४

एक बार नारदजी ने भगवान् विष्णु को शाप दिया था। यह बात पार्वतीजी ने भगवान् शिव से सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इस पर पशुपतिनाथ ने कहा

जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ। रा० १, १५१

और नारदजी को एक सुन्दर परामर्श दिया जो उन्हें पसन्द नहीं आया। इस विषय में याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं—

संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान। रा० १ १५५

हिमवान् पार्वती-विवाह के सम्बन्ध में अपनी पत्नी मैना को उपदेश करते हैं—

प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्री भगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहहि कल्यान। रा० १ ९५

जब भगवान् राम ने सुमंत्र से अयोध्या लौट जाने के लिये कहा तो अनिच्छुक मंत्री बोले थे—

बेदि जाइ नहिं राम रजाई, कठिन करम गति कछु न बसाई

रा० २, ६६ ४

चित्रकूट में रामचन्द्रजी अपनी माताओं को सान्त्वना देते हैं —

संभव हित आपीन अपु काहू न देइय दोसु। रा० २ २४५

जब राम की माताएँ सीताजी से चित्रकूट में मिलीं तो इस भावना का उदय हुआ —

सो सब तहिय जो दैव सहावा। रा० २, २४६ ३

चित्रकूट की सभा में भरतजी की घोषणा है —

जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥

रा० २ २९९, ३

भगवान् सबको नचाते हैं—गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा था

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ १८, ६१॥

गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् शिव के मुख से पार्वतीजी को उपदेश का उल्लेख इस प्रकार करते हैं :

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत रामु गोसाईं॥ रा० ४ १२४

रामजी सुग्रीव को आश्वासन देते हैं कि हे मित्र मैंने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है और मेरे शब्द असोच हैं। इस पर काक भुशुंडि से कहते हैं —

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

रा० ४ ८ १२

भाग्य सब के लिये बाधू है। काक ने गरुड़जी को जो उपदेश दिया उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भाग्य की आज्ञा का पालन सब को करना पड़ता है।

भाग्य की अदृष्टता और अपरिहार्यता—प्रकृत्या भाग्य अदृष्ट नियत और अपरिहार्य है। प्रतिकूल होने पर, वह अत्यन्त कठोर अपमानजनक और दुःखद होता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी जस भवतव्यता तैसी मिलइ सहाइ।

आपु न आवइ ताहि पै ताहि तहाँ लै जाइ॥ रा० १ १८८ दो० ४६०॥

दुर्भाग्य के कारण भविष्य-ज्ञान नष्ट हो जाता है, जैसे प्रतापभानु कपट मुनि की बातें नहीं समझ पाये थे और जब ब्राह्मण उसे शाप दे चुके तो उन्हें विदित हुआ कि राजा प्रतापभानु निर्दोष था। उन्हें कहना पड़ा कि

भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर। रा० १ २०४।

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।

धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। रा० १ २०५

गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो भाग्य पूर्व-कृत कर्मों का संचित रूप है। मंथरा कहती है जो जैसा बोता है वैसा काटता है जैसा देता है वैसा लेता है कोई राजा हो मुझे तो दासी से रानी होना नहीं (रा० २, १६ ३)। वह पुनः कहती है दैव देव सिरि सो कसु ओही (रा० २ १८ ४)। वसिष्ठ और भरद्वाज भी भरत को सान्त्वना देने के लिए भाग्य की महिमा गाते हैं (रा० १ २ ७२)। एक कहते हैं —

तुम्ह भरत भावी प्रबल बिलखि कहे मुनि नाथ।

हानि लाभु जीवन मरन, जसु अपजसु बिधि हाथ॥ रा० २, १७२

दूसरे कहते हैं —

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई।

रा० २, २०६, ४

मन-शरीर का सामंजस्य—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी वर्तमान और भूत कार्यों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मन और शरीर के सामंजस्य में विश्वास करते हैं। वे मंथरा के विषय में कैकेयी से कहलाते हैं कि काने लंगड़े और कुबड़े लोग कुटिल और कुकर्मी होते हैं (रा० २, १५)। सीता राम और लक्ष्मण वनवास में जा रहे हैं देखकर लोग अनुमान करते हैं

राज लखन सब अंग तुम्हारे। देखि लोकु अति दुखु हमारे॥
मारग चलहु पयादेहिं पाए। ज्योतिषु झूठ हमारें भाए॥
रा० २, ११२, ३-४

भाग्यवाद और भविष्यवाणी—भविष्यवाणी भाग्यवाद का प्रमाण है। भविष्य का निर्देश अंगस्फुरण स्वप्न शकुन ज्योतिष और अन्तर्दृष्टि से होता है। गोस्वामी जी ने सभी प्रकार के भविष्य-द्योतक उदाहरण दिये हैं। कुछ ये हैं भगवती पार्वती की कृपा से सीताजी के बाम अंग फड़कने लगे (रा० १ २, ६-९)। जब राम और सीता ने भरत के सानुज-बृंद से लौटने का अनुमान किया तो उनके शुभांग फड़कने लगे रा० २, ७ ३)। जब मंथरा कैकेयी को बहका रही थी तो रानी ने उससे कहा था कि मेरी सीधी आँख नित्य फड़कती है (रा० २, २०, ३)। जुद्ध भरत से युद्ध करने के लिये अपनी सेना ले जाने वाला था कि इतने में जब बायीं ओर छींक हुई तो भविष्यवक्ताओं ने कहा कि युद्ध में विजय होगी किन्तु एक वृद्ध ने कहा कि भरत से मिलाप तो होगा किन्तु युद्ध न होगा (रा० २, १९२ २-३)। इसी प्रकार जब राम ने लंका पर चढ़ाई की तो अच्छे शकुन होने लगे सीता और रावण के बाम अंग फड़कने लगे (रा० ५, १४ २-४ १२४ ३)। स्वप्न भी भविष्य के द्योतक हैं। गोस्वामीजी ने स्वप्न की चर्चा बार बार की है कैकेयी (रा० २ २०४) भरत (रा० २ १५७ ३) सीता (रा० २, २२६ २) और त्रिजटा के (५, १० १-४)। स्वप्नों में विश्वास प्राचीन काल से चला आ रहा है यथा 'छान्दोग्योपनिषद्' के अनुसार यदि सकाम अनुष्ठान करते समय किसी नारी का दर्शन हो तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी। गोस्वामीजी शकुनों के भी कुछ उदाहरण देते हैं—सुमासों और श्वानों का रोदन मर्गों का रेंकना धूमकेतु का उदय प्रतिमा का रोदन भू का डोलना वज्र का पतन। रावण को अशकुन हुए थे (रा० ६ १२७ ४ छं)। शुभ शकुनों का भी उदाहरण मिलता है। जब पार्वतीजी सीताजी से प्रसन्न हुईं तो असी माल मूरति मृगकानी (रा १ २६० ३)। तुलसीदासजी मानते हैं कि पुलक-सहित ब्राह्मण धेनुकरी अच्छे वृक्ष पर मैना, नकुल दधि और मत्स्य आदि के दर्शन शुभ हैं।

नकुल सुदरसन दरसनी धेनुकरी चख चाय।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाय॥ दो० ४६०॥

गोस्वामीजी को फलित ज्योतिष में विश्वास था यद्यपि वे जानते थे कि सभी फल ठीक नहीं बैठता। वे स्वयं ज्योतिषी थे। 'रामाज्ञा प्रश्न' तथा दोहावली के कुछ दोहों से उनके ज्योतिष ज्ञान की पुष्टि होती है। मंथरा अयोध्या के लिए साढ़सती थी उसने ज्योतिषियों से यह जानकारी प्राप्त कर ली थी कि भरत राजा

बनेये (रा० २ १७ २ २१, ४)। अपनी माता की कुचाल पर भरतजी ने अपने को गह-गृहीत समझा है (रा० २ १८१)। यात्रा, विवाह अथवा राज्याभिषेक के निमित्त शुभ-मुहूर्त निर्धारित किये जाते थे (रा ३, २७२ ३ १ ३४५, २ ३२४)।

आकाश-वाणी देव घोषणा पुष्प-वर्षा आदि से पूर्व-कल्पित नियति की पुष्टि होती है। भरतजी की प्रार्थना के उत्तर में त्रिवेणी से आशीर्वादात्मक ध्वनि आई, भगवान्‌ने भी सीताजी को वनवास के अन्त में सकुशल अयोध्या लौट जाने का आश्वासन दिया था (रा० २ २०३, २-३)। जब राम लंका से अयोध्या पहुँचते हैं तो देवगण आकाश में गीत-नाद करते हैं (रा० ७ २१)। सीता की पुष्प-वाटिका में नारदजी के उन वचनों का स्मरण हो आया जिन्होंने उसके भविष्य पर प्रकाश डाला था (रा० १ २६२)।

तुलसी का भाग्यवाद—तुलसीदासजी के लेखों से प्रकट होता है कि केवल भगवान स्वतन्त्र हैं और व्यक्ति विधि के वश में है (वि० १११ ४ १४१ ५, १३५,२) तथापि उनके कुछ वचन यह सुझाते प्रतीत होते हैं कि व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस विषय में लक्ष्मणजी की उक्ति का निर्देश हो ही चुका है। ज्योतिष-शास्त्रोक्त उपायों के द्वारा कुफल-निवारण पूजा-पाठ वरदान आदि से ऐसा आभास मिलता है। बुद्ध और मर्कट की उपमाओं से यह विदित होता है कि जीवात्मा बुद्ध और मुक्त है किन्तु जब वह कर्मपाश में आबद्ध हो जाता है तो मानों वह भाग्य का दास हो जाता है। संचित कर्मों के फलाभिमुखी समुदाय को भाग्य कहते हैं। सूक्ष्म-शरीर के संस्कार निश्चित हैं संचित प्रारब्ध और क्रियमाण इन्हीं पर मनुष्य का भविष्य अवलम्बित है। किन्तु भाग्य से भी परे हरीच्छा है। हम कभी-कभी हरीच्छा और भाग्य को एक समझ लेते हैं। तुलसीदासजी गीता के इस उपदेश को मानते हैं कि सभी प्राणी ईश्वर की इच्छा से नाचते हैं। वे महापुरुष यह भी समझते हैं कि भाग्य अदृष्ट और कठोर है वह प्राय किसी को भी नहीं छोड़ता और अंगस्फुरण स्वप्न शकुन आदि में व्यक्त हो सकता है। गीता (४ १६) कहती है कि ज्ञान से हमारे सब कार्य दग्ध हो जाते हैं। पर गोस्वामी जी सोचते हैं कि भक्ति के द्वारा भी ऐसा हो सकता है (रा० ७ २०३ २०४)। भगवान् की माया से बन्ध और उसकी कृपा से मोक्ष होता है (रा० ४, ४ १-२)।

उत्तरदायित्व—कार्य का उत्तरदायित्व किस पर है? यदि तुलसीदासजी की भाँति यह माना जाय कि कर्म के लिये मूल प्रेरणा ईश्वर की इच्छा से होती है और मोक्ष की प्राप्ति भगवत्कृपा से, तो व्यक्ति के उत्तरदायित्व का प्रश्न ही कहाँ? पारमार्थिक दृष्टिकोण से यह निवेदन किया जा सकता है कि वैयक्तिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता ही नहीं किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है अतएव वह जैसा करता है वैसा भरता है (रा० २ १६ ३)। ईश्वर को दोष नहीं लगता। आचार-सम्बन्धी व्यतिक्रमों के लिये व्यक्ति ही दोषी है क्योंकि उसके पास विवेक-शक्ति-समन्वित शरीर विद्यमान है

> नाहिन काउ अवगुन तुम्हारा, अपराध मोर मैं माना।
> ज्ञान भवन तनु दियहु, नाथ सीस धुनि मैं प्रभु जाना॥ वि० ११४॥

तथापि गोस्वामीजी ने पर भोक्तृत्व की भी चर्चा की है कर्ता कोई है तो भोक्ता कोई अन्य है—

जीव करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ॥ दो० २४१ ॥

तुलसीदासजी को आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य के काम क्रोध लोभ आदि उसे इच्छा के विरुद्ध दुराई की ओर ले जाते हैं, अर्थात् इच्छा तो सुकर्मों की ओर है किन्तु प्रवृत्ति पर-वश है। ऐसी आपा-धापी तो न कहीं देखी न सुनी

देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐती ॥ वि० १४०

सुयोधन कहा करता था

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

गोस्वामीजी ने व्यक्ति की भावना का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने समाधान का उल्लेख नहीं किया है किन्तु समाधान यही हो सकता है कि व्यवहार जगत् में यही सिद्धान्त ठीक है कि जो जैसा करता है वैसा भरता है। यह प्रतीति जो यदा-कदा होती है कि करता कोई है तथा भरता कोई और है इस कारण है कि हम विशेष परिस्थिति में कारण की दूरता पर विचार नहीं कर पाते अन्यथा व्यवहार-जगत् में कार्यकारण के सिद्धान्त में कोई व्यतिक्रम नहीं, और व्यतिक्रम की प्रतीति अल्पज्ञान-जन्य है।

भला बुरा

मूर्तिमान् सत्य—ईश्वर धर्मों में भगवान् को मूर्तिमान् सत्य माना गया है। यदि यह बात सत्य है तो कोई पाप अथवा दोष, न्यायतः, भगवान् पर आरोपित नहीं किया जा सकता। अतएव ईसा धर्म की भगवत्सत्ता के साथ शैतान की समानान्तर सत्ता भी माननी पड़ी। अद्वैतवादियों को यह समानान्तरता अभीष्ट नहीं। कुरान ने स्पष्ट कहा है कि ईश्वर सकल लोकों का कर्ता है (सूरा ११ ८)। कुछ वैष्णव जगत् की उत्पत्ति भगवान् के पुष्प से मानते हैं। भागवत में लिखा है

अधर्मः पृष्ठतो यस्मात्पुत्रोऽभूद्वर्धकः ॥ ३ १२, २२

किन्तु बहुतों को भगवान् में अधर्म की स्थिति को मानने में संकोच होता है क्योंकि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त में अपवित्रता के लिए स्थान ढूंढना असंगत और अतथ्य है अतएव माया की उत्पत्ति हुई और उससे सुख-दुख पाप-पुण्य धर्माधर्म आदि द्वन्द्वों की भी।

पाप-पुण्य-स्रोत—दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि माया ने पाप-पुण्य तथा अन्य विकारों की भी रचना की है यथा मद मोह काम अविवेक जो समस्त संसार में व्याप्त हो रहे हैं (रा० ७ ८० १ २)। भगवान् राम भी भरतजी से यही बात कहते हैं

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ॥ रा० ७ ९४

सबसे बड़ा गुण यह है कि दोषों को न देखा जाय क्योंकि इन दोषों का भेद देखना ही माया है। अद्वैतवादी भी कहते हैं कि 'निर्द्वन्द्वे यदि विद्यन्ते को विधिः को निषेधः'।

अतिभौतिक दृष्टिकोण से माया गुण-दोषों की जननी है इसलिए उसकी सत्ता

प्रातिभासिक है। यदि माया सदसत् का अपरोक्ष कारण है तो ब्रह्म परोक्ष। ब्रह्म की ही सत्ता है माया की तो उपसत्ता है। यों तो गुण-दोष का जनन व्यक्तिगत सीमाओं के कारण है। तुलसीदासजी लिखते हैं

> जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार
> संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार
> अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता
> काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई
> तो सुधारि हरि जन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं।
>
> रा० १ १२ १ २

ऊपर कहा जा चुका है कि पाप-पुण्य माया-कृत हैं (रा० १ १२, ७ ६४ ७ ८० १ २) व्यवहार में इन दोनों में भेद किया जाता है परमार्थ में नहीं। उपनिषदों का भी यही मत है कि सत् और असत् का भेद केवल लाक्षिक है (छान्द ७ २ १)। ब्रह्मलोक इस भेद से रहित है (बृहद् ४ ४ १ २)। दोनों का यह भेद स्वप्न और जाग्रत में अनुभूत होता है (बृहद्० ४ ३ १९ १७)। किन्तु आत्मा सत् और असत् के प्रभाव से मुक्त है न तो वह सत्कार्य से पुण्यात् और न असत् कार्य से कल्मषात् हो सकता है (कौषीतिकी ३ ८)। आत्मा धर्माधर्म से परे है (कठ २ १४) वे दोनों ही परमावस्था में लीन हो जाते हैं (बृहद्० ४ ३ १९ ३०)। ज्ञाता अपाप है। बृहदारण्यक में 'पुण्य' शब्द का अर्थ किया गया है 'वह जो पाप को जला चुका हो' (पूर्व+उन्)।

धर्माधर्म—जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उसको मानते हुए पुण्य की उत्पत्ति सत्य से है। महाराज दशरथ ने कैकेयी से कहा है—

> सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥ रा० २, २८ ३

भगवान् राम ने भी सुमन्त्र जी को ऐसा ही उपदेश दिया है

> धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥ रा० २ ६५, ३

दशरथ जी के अनुसार—

> रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥ रा २ २८ २

इसी प्रकार अधर्म का पिता है स्वार्थ। भगवान् राम भरतजी से कहते हैं कि मनुष्य स्वार्थ-वश अनेक प्रकार के पाप करते हैं परोपकार के सदृश कोई धर्म नहीं और पर-पीड़ा के समान कोई अधर्म नहीं। जो मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं उनको अनेक जन्म लेने पड़ते हैं और वे अपना परलोक बिगाड़ लेते हैं। कहा है

> अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
> परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

तुलसीदासजी भी लिखते हैं

> परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
> निनय सकल पुरान बेद कर। कहौं तात जानहिं कोबिद नर॥
> नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भवभीरा।
> करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥
>
> रा० ७ ६३, १ २

पर्वतवादी (मैग्नेटिस्ट) की भाँति तुलसीदासजी लिखते हैं

हित पुनीत तब स्वारथहि अरि अमुख बिन बाद।
जिव मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ॥ दो० ३३०

मूल्य ही अच्छाई का माप है। जब तक दाँत जबड़े में लगा रहता है तब तक मूल्यवान् है किन्तु ज्योंही वह जबड़े से अलग हो जाता है त्योंही वह हड्डी के समान हेय हो जाता है।

अतिभौतिक दृष्टिकोण से सुकृत-दुष्कृत दोनों ही का स्रोत माया है। आचार की दृष्टि से दुष्कृत स्वार्थ से उत्पन्न होता है और सुकृत परहित से। तुलसीदासजी धर्म के स्रोत के सम्बन्ध में निश्चित से प्रतीत होते हैं। किन्तु धर्म की उत्पत्ति के विषय में वे सत्य और परहित के मध्य में डगमगाते-से हैं पर इन दोनों में से उन्हें धर्म का स्रोत परहित में ही मानना चाहिए। सत्य तो अतिभौतिक शास्त्र और आचार-शास्त्र की मध्यवर्ती सीमा पर स्थित है और परहित निश्चय रूप से आचार के अन्तर्गत है। अतएव ऐसा कहना सत्य से दूर न होगा कि तुलसीदासजी परहित को पुण्य और पर पीड़ा को पाप मानते हैं (रा० ७ ६३ १ वि० १४१ २ दो० १४२)। इस मत की पुष्टि 'रामचरित मानस' के अन्तिम पृष्ठों में काक के द्वारा हुई है अतः एवं इसे अन्तिम ही समझना चाहिए (रा० ७ २०७ ७-८)। मनसा वाचा कर्मणा इस परहित धर्म है और स्वार्थ अधर्म है। परहित में स्वार्थाभाव हो सकता है किन्तु पर-पीड़ा में स्वार्थ निश्चय रूप से बना रहता है। अतएव परोपकार रति निष्कंटक है (दो० ४६७) इसके द्वारा भवसागर से निस्तार हो जाता है

जानत हूँ मन करम बचन कर्म परहित कीन्हें तरिए ॥ वि० १८६ ३

प्रधान पुण्य—तुलसीदासजी के अनुसार पुण्य मुख्य सुकृत ये हैं विप्र चरण पूजा (रा० ७ ६७ ४) प्रार्थना तप यज्ञ दम दान पवित्रता ज्ञान ध्यान (रा० ७ १४८ ३) कथा कहना (रा० ७ १८३ ३) शम दम (वि० २०४) सरलता तीर्थ-यात्रा (क० ७ १४४) अहिंसा (रा० ७ २०७ ११)। इन सब सुकृतों का पर्यवसान भगवान् के गुण और कीर्तन के द्वारा राम भक्ति में होता है (रा० ७ ६४ ४ ६३)।

अवगुण विशेष—प्रधान अवगुण हैं अविद्या पिशुनता परपीड़ा स्वार्थ रामद्रोह, शिवद्रोह। क्या पिशुनता से बढ़ कर और कोई अघ हो सकता है (रा० ७ १८७ ३) ? और भी

पर विद्या सम अघ न परीसा ॥ रा० ७ २०७ ११

जो लोग इस पाप को करते हैं वे कभी सुख नहीं पाते।

विष्णु-द्रोही और शिव-द्रोही अथवा विष्णु निन्दक और शिव-निन्दक पाप कमाते हैं (रा० ६ १)। हिन्दू-समाज में गो-हत्या पाप है (रा० २ १४७ २ ६ ४७ १)। आचार-जगत् में परपीड़न के समान कोई पाप नहीं इसे स्वार्थ से प्रेरणा प्राप्त होती है और यह मोह को उत्पन्न कर परलोक का नाश कर देता है—

नर तनु धर जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा ॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना ॥

दण्ड की आवश्यकता—पाप-सहिष्णु नहीं होना चाहिए। दुष्ट और पापिष्ठ का दमन अवश्य कर देना चाहिए। पाप-निवृत्ति के लिए केवल उपदेश पर्याप्त नहीं यथा कोई करोड़ों उपाय करके केले को सींचे वह तो काटने पर ही फलता है। इसी प्रकार नीच पुरुष विनय से नहीं मानता डाटने पर ही झुकता है (रा० ५, ६१)। बिना भय के प्रीति नहीं होती (रा० ५ ६०)। मूर्ख से विनय कुटिल से प्रीति कृपण से नीति स्वार्थी से ज्ञान लोभी से वैराग्य क्रोधी से शान्ति और कामी से भगवत्-कथा की चर्चा करने से वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से (रा० ५, ६० १ २)।

धर्म-चर्चा की सरलता, धर्माचरण की कठिनता—पुण्य-धर्म की चर्चा करना अत्यन्त सरल है उसके अनुसार आचरण करना ऐसा नहीं। दूसरों को उपदेश देने में लोग बड़े कुशल होते हैं किन्तु स्वयं उस उपदेश का पालन कितने करते हैं (रा० ६, १०० १)? राक्षसराज रावण ने यही तो किया था वह अपनी पत्नी को उपदेश देता किन्तु स्वयं उसका पालन न करता था।

सत्संग से पुण्यार्जन—सत्संग निश्चय ही लाभ है और कुसंग हानि। आँधी के साथ धूल भी आकाश की ओर उड़ जाती है किन्तु पानी के संसर्ग से वह कीचड़ बन नीचे बैठती है। घर में तोता-मैना की जैसी शिक्षा होती है उसी के अनुकूल वे राम नाम लेते या गाली देते हैं। कुसंग से धुआँ कालिख कहलाता है वही धुआँ सुसंग में सुन्दर स्याही बन कर पुराण लिखने के काम आता है और वही वाष्पमय धुआँ जल अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत् को जीवन देने वाला बन जाता है। यह औषधि जल वायु और वस्त्र ये सभी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में भले बुरे पदार्थ हो जाते हैं (रा० १ १२, ४ ६, १३)। सत्संग में अधिक दिन रहने से सब संशय नष्ट हो जाते हैं। संतसमाज को छोड़ राम चर्चा कहीं नहीं होती जिसके बिना माया का निस्तार नहीं होता। माया-निस्तार के बिना रामचरण में वह प्रीति नहीं होती जिसके द्वारा परम गति प्राप्त होती है (रा० ७ ८४ २ १ १०७ १)। सन्त-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं (रा० ७ २१८)। यह बात शिवजी ने पार्वतीजी से कही थी और रामजी ने भी सनकादिक ऋषियों से कहा था कि ऐसे समागम के द्वारा संसार से निस्तार होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सत्संग की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है और उसके द्वारा बिना प्रयास के ही भव यातना दूर हो जाती है (रा० ७ ५५, ४)। सत्संग मोक्ष का कारण है और कामि संग बन्ध का (रा० ७ ५६)। अतएव गोस्वामीजी का परामर्श है :

भजहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सतसंग। रा० ३ ६०

जीवन के तीन मार्ग—तुलसीदासजी के अनुसार जीवन अखण्ड है और धर्म तथा सदाचार में नैतिक सम्बन्ध है। अतएव उन्होंने तीन भिन्न किन्तु समान जीवन मार्ग सुझाये हैं। पहला मार्ग तो दीर्घ और कठिन है और कर्मठ लोगों के लिए ठीक है। दूसरा सब से छोटा और विचार-शील पुरुषों के अनुरूप है, और तीसरा भावुक पुरुषों के लिये अनुसरणीय है। तथापि तीसरा मार्ग सर्व-साधारण के लिये उचित है और गोस्वामीजी उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रथम मार्ग में चतुर्दश व्रतों का विधान है

भगवद्भक्ति; द्वैत-बुद्धित्याग त्रिगुण-त्याग मन बुद्धि चित्त अहंकार से उपरति पंच ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण काम क्रोध आदि षड्रिपुओं पर विजय रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं से बने हुए शरीर पर विचार परोपकार में वृत्ति यह धारणा कि रामचन्द्रजी पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार-वाली अष्टधा प्रकृति से परे हैं नवद्वार-युक्त शरीर की व्यर्थता; दस इन्द्रियों का निग्रह मन का शमन दूसरों के लिये त्याग जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति का अतिक्रमण गोपाल अर्थात् इन्द्रियों के नियन्ता का भजन और प्रभु भक्त के साथ राम का भजन (वि० २०३)। सब से छोटा किन्तु अध्यात्म-समन्वित मार्ग भी निर्दिष्ट है। भगवान् के प्रेम की प्राप्ति के निमित्त जीव को मैं-तू, तेरा मेरा तुझे-मेरा आदि भावनाओं का त्याग कर देना चाहिये (वै० सं ३१ वि० ११८ ४ १२० ५)। सारा संसार अहंकार की अग्नि से प्रदीप्त है किन्तु जो शान्ति रूपी शीतल जल का स्पर्श कर लेता है वह इस अग्नि में नहीं जलता। ऐसी अग्नि से बचने के निमित्त राम-जप का त्याग अनिवार्य है (वै० सं० ५३ ५४ ५६)।

गोस्वामीजी ने एक तीसरा मार्ग भी सुझाया है। उसका अनुसरण किया जा सकता है अतएव उन्होंने उसे प्रशस्त समझा है। वे उसे शिव-भक्ति-मार्ग या संक्षेप में केवल शिव-मार्ग कहते हैं जिसका अर्थ है कल्याण-मार्ग। यह मार्ग समता संतोष विवेक और सत्संग पर आग्रह करता है, तथा काम क्रोध लोभ मोह मद राग द्वेष के निःशेष परिहार पर भी। साधक के कर्म राम-कथामृत पान करें, मुख भगवन्नाम का उच्चारण करे उसके हृदय में हरि का निवास हो उसका सिर भगवान् के चरणों में हो उसके कर सेवा में रत हों और उसके नेत्र कृपालु राम के सर्वत्र दर्शन करें—यही भक्ति है, यही वैराग्य है यही ज्ञान है और इसी से भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतएव इस शुभ व्रत का आचरण करना चाहिए। यह शिवजी का बताया हुआ मार्ग है और कल्याणकारी है। इस पर चलने से स्वप्न में भी भय नहीं रहता (वि २०५)।

निष्कर्ष—प्रतिभौतिक दृष्टि से सत्य से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं आचार की दृष्टि से परहित के समान कोई पुण्य नहीं (रा० २ २८ ३ २, ६५, ३ ३ ४२ ५, ७ ६३ १ ७ २०७ ७)। व्यवहारतः अहिंसा धर्म का नकारात्मक और परहित उसका भावात्मक रूप है। इसी प्रकार प्रतिभौतिक रूप में असत्य पाप है और आचार के स्तर से स्वार्थ जिसका स्थूल रूप पर-पीडन है (रा० २, २८ ३ ७ ६३ १ ६६, ३)। आचरण के तीन मार्गों में से तुलसीदासजी ने 'शिवमार्ग' को ही प्रशस्त समझा जो सभी पुण्य-काम जीवों के लिये कल्याणप्रद है।

(घ) स्थान और कर्तव्य

वर्णाश्रम—तुलसीदास जी ने कलियुग के वर्णन में विभिन्न धर्म और आश्रमों का उल्लेख करते हुए बताया है कि कौन व्यक्ति शोचनीय है (रा ७ १५१ १५६ २, १५२ १७४)। वर्णन से यह प्रतीत होता है कि वे वर्णाश्रम-धर्म के व्यतिक्रम को बुरा समझते थे।

वर्णाश्रम-धर्म में तुलसी की आस्था स्मृतियों के अनुसार है जिनमें प्रत्येक

वर्ण के लिये कर्त्तव्यों का निर्देश हुआ है। उदाहरणत मनुस्मृति ने ब्राह्मण के लिये अध्ययन, अध्यापन यजन याजन, प्रतिग्रह और दान क्षत्रिय के लिये दान, यजन अध्ययन इन्द्रिय-निग्रह वैश्य के लिये गोपालन दान यजन अध्ययन कृषि व्यापार और शूद्र के लिये सेवा का विधान किया है।

चारों वर्णों के विभाजन का आधार जन्म है। ऋग्वेद (१० ९०, १२) के अनुसार ब्राह्मण परम पुरुष का मुख था क्षत्रिय भुजाएँ और वैश्य जंघाएँ, शूद्र उसके चरणों से उत्पन्न हुआ। वेद मनुस्मृति और गीता (३ ६ ३३ ४ १२) भी वर्ण व्यवस्था को जन्म से मानते हैं। तुलसीदास जी भी ऐसा ही मानते हैं।

साधारण और विशेष धर्म—धर्म दो प्रकार का होता है साधारण और विशेष। साधारण तो मनुष्य मात्र के लिए है। मनुजी के अनुसार वह दशविध है धृति क्षमा दम अस्तेय शौच, इन्द्रिय निग्रह धी विद्या सत्य और अक्रोध। गोस्वामी जी स्थल-स्थल पर इनकी महिमा विविध प्रकरणों में गाते रहे हैं। विशेष धर्म वर्ण आश्रम वर्णाश्रम तथा समाज-स्थान के अनुसार होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। स्मृतियों में इनके अलग अलग कर्तव्यों का वर्णन है। ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं, जिनके अलग अलग धर्म हैं। तदनन्तर वर्णाश्रम के अनुसार कर्तव्यों का विधान है यथा ब्राह्मण ब्रह्मचारी और क्षत्रिय ब्रह्मचारी के आचारों में अन्तर है। समाज में स्थान के अनुसार भी स्मृतियों में कर्तव्यों का लेख है—यथा राजधर्म प्रजाधर्म नारी-धर्म पितृधर्म पुत्रधर्म भ्रातृधर्म स्वामिधर्म सेवक-धर्म पतिधर्म पत्नी-धर्म। गोस्वामी जी ने दशरथ और कौसल्या राम और सीता राम और लक्ष्मण राम और भरत वशिष्ठ और राम विश्वामित्र और राम राम और हनुमान्, राम और अंगद राम और सुग्रीव राम और अयोध्यावासी आदि के वर्णन में जीवन के विभिन्न सम्बन्धों के आदर्शों का ऐसा सुन्दर चित्रण किया है जैसा कदाचित् विश्व में अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

(ङ) नारी का स्थान

नर-नारी का अपार्थक्य—भगवान् शिव के अर्धनारीश्वर-रूप से एवं मनु[1] के लेख से यह प्रतीत होता है कि स्त्री पुरुष का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। प्लेटो ने लिखा है कि पहले नर-नारी का एक ही शरीर था किन्तु पीछे से देवताओं के कोप से स्त्री और पुरुष शरीरतः अलग कर दिये गये। प्राचीन काल में कोई यज्ञ बिना पत्नी के सफल नहीं हो सकता था।[2] अनेक स्त्रियाँ वैदिक मंत्रों की ऋषि हैं। विभूतियाँ सपत्नीक हैं यथा—ब्रह्मा-ब्रह्माणी विष्णु-लक्ष्मी शिव-पार्वती। देवताओं की भी पत्नियाँ हैं। जैसे इन्द्र की इन्द्राणी। प्राचीन भारत के संस्कृति-भवन में अनेक महिला-तारायें उपलब्ध हैं यथा—संध्या वाक्, सूर्या तपती अपाला, अदिति अरुन्धती घोषामुद्रा अनसूया शाण्डिली देवहूति कात्यायनी मैत्रेयी गार्गी सुलभा शारदा ममता सावित्री महानसा दैव्या दमयन्ती सुकन्या शकुन्तला विदुला, माण्डारी मात्री कन्याकुमारी। नारी बृहत्तमी समझी जाती थी।

---

१ मनुस्मृति १ ३२। २. वही।

नारी का प्राचीन स्तर—भारत के प्राचीन साहित्य में नारी के स्वभाव और स्तर के सम्बन्ध में परमोत्कृष्ट विचार उपस्थित किये गये हैं। वह पुरुष के साथ समानाधिकार का उपभोग करती और पुरुष से भी दृढ़तर और बलीयसी (ऋक ५, ६१ ६-८) होने के कारण उसकी इच्छाओं की एवं सुख-साधनों की पूर्ति करती थी (बृहद्० १ ४)। विवाह के पश्चात् ऐसी आशा की जाती थी कि वह अपने श्वसुर श्वश्रू देवरों और ननदों पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर ले (ऋक १० ८५, २६ ४८)। वह अपने पतिगृह में आदर-मान के योग्य समझी जाती थी (महाभारत अनु० १२ ३-७) क्योंकि देवता भी वहीं रमते हैं जहाँ स्त्रियों का आदर होता है (मनु० ३ ५६)। वास्तव में वह पतिगृह की रानी थी (अथर्व० १४ १ ४३)।

आश्चर्य है कि उक्त साहित्य में ऐसे उद्गार भी मिलते हैं जिन्हें कलुषित समझना चाहिए। समस्त बुराई की जड़ (महाभारत अनु० ८ १२ २२ २६) छुरी तीक्ष्ण और अग्नि सी जलती हुई (वही० ३६ ४० ४२) वह बालक को ग्रहण कर लेती और निर्धन को त्याग देती है (रामायण ३ १३ ५-६) अपवित्र असत्यनिष्ठ और क्रूरा नारी का (मनु ९, १७ १८) हृदय उस सालावृक का सा होता है (ऋक १० ९५ १५) जो हँसा-हँसा कर मार डालती है। किन्तु ये उद्गार अपवाद हैं सिद्धान्त नहीं।

नारी-गौरव का ह्रास—किन्तु मध्यकालीन भारत में स्त्री की निन्दा और उससे घृणा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी थी। कदाचित् कारण यह था कि जैन और बौद्ध मठों में स्त्रियों का भी प्रवेश भिक्षुणी के रूप में होता था। इससे आचार में शिथिलता आ गयी थी। अतएव ऐसे कथन की आवश्यकता पड़ गयी कि नारी परमार्थ के साधन में अड़चन है। तत्कालीन सन्त लोग नारी और नारीत्व की निन्दा एक स्वर से करते हैं। योगवाशिष्ठ में लिखा है कि 'अविचारशील मनुष्य को स्त्री कुछ काल के लिये ही सुन्दर प्रतीत होती है वास्तव में उसके शरीर में कोई सौन्दर्य नहीं अज्ञानवश हम उसे सुन्दर समझते हैं (१ २१ ८)। सन्त कबीर ने नारी निन्दा की है

> चलो चलो सब कोइ कहै पहुँचे बिरला कोय।
> एक कनक अरु कामिनी दुरगम घाटी दोय॥

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी कामिनी-कांचन के त्याग पर आग्रह किया है।

विदेश में नारी का स्तर—ऐसी प्रवृत्ति पश्चिम में भी लक्षित होती है। एक लैटिन कहावत है कि 'नारी घर का कष्ट है (W००) है,' इंग्लैण्ड की उक्ति के अनुसार सुन्दरी और सुरा एवं द्यूत और कैतव सम्पत्ति को घटाते तथा आवश्यकताओं को बढ़ाते हैं।[1] पोलैण्ड वाली की उक्ति है कि 'हँसी को नंगे पैर चलते देखने की अपेक्षा नारी को रोते देखना कष्टतर नहीं'।[1] उसी क्षेत्र की यह और लोकोक्ति है[1] कि 'मनुष्यों में (अनेक) अवगुण होते हैं। पर स्त्रियों में केवल दो न उसकी कथनी

---

१ जे. ई. हॉकिन्स प्रवर्ब्स १९७० और पश्चात् संस्करण।

में श्रम है न उनकी करनी में। एलेग्जेंडर पोप ने लिखा कि मनुष्यों में से कुछ तो व्यवसाय की ओर और कुछ सुख की ओर प्रवृत्त होते हैं किन्तु प्रत्येक नारी हृदयतः फेमेल्स पतिता (Rake) होती है।[1] तुलसीदास के यशोधन् समकालीन शेक्सपियर ने लिखा कि 'हे नारी तेरा नाम हीनता है।'[2] इस पतन के समय भगवान् ने उससे कहा था कि 'तेरी इच्छा तेरे पति के निमित्त होगी और वह तुझ पर शासन करेगा।'[3]

शास्त्र निषेध—प्राचीन काल में स्त्रियाँ वेद मन्त्रों के रहस्य तथा ब्रह्म विद्या एवं भौतिक विज्ञानों का अध्ययन करती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह गौरव पीछे से घट गया यहाँ तक कि उनकी उपस्थिति में वेद-पाठ करना तथा उनके लिये यज्ञोपवीत धारण करना अनुचित समझा गया और वे इस विषय में शूद्रवत् समझी गयीं। मुसलमानों के राज्यकाल में उनमेंसे बहुत सी साधारण शिक्षासे भी वंचित रहने लगीं। ऐसी परिस्थिति में तुलसीदास जी ने पार्वती जी से कहलाया है स्त्री होने के कारण मैं श्री रघुनाथ जी का विमल यश सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ—

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। रा० १ १११ १

संरक्षा—चंचल और वासनामय होने के कारण नारी पर देखभाल रखने की आवश्यकता है। अथर्ववेद (१४ १ ५२) में उसे पोष्या माना गया है। बचपन में उसे पिता की यौवन में पति की और वृद्धत्व में अपने पुत्र की संरक्षा में रहना चाहिए, क्योंकि मनुजी के अनुसार 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।'[4] पार्वती-विदाय के समय मैना वियोग-दुःख से कहती है

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥ रा० १ १२५.३

नारी का पराधीन रहना अच्छा है, क्योंकि जैसा कि भगवान् राम लक्ष्मण को बताते हैं

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी॥ रा० ४, १६ ४

नारी के ऊपर नियंत्रण भी कड़ा होना चाहिए। महासागर की उक्ति है

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥ रा० ५ ६१ ३

जो इस श्लोक का छायानुवाद है

दुर्जनः शिष्यिणो दासः दुष्टाश्च पटहास्त्रियः
ताडिता मार्दवं यान्ति नैते सत्कार भाजिनः। वर्ण संहिता।

और जो टेलर द वाटर पोएट (१५८० १६५४ ई०) की इस सुप्रसिद्ध उक्ति से परम समानता रखती है —

---

१ औरत इज़ फ्रेंच इनिफिनिटी १ २
२ हैमलेट १, २, १४६।
३ द होली बाइबल जेनेसिस ३ १६।
४ मनुस्मृति २ ६६; ९ ६६। महाभा० ४५ १३; अत्रि० १३४।
५ मनुस्मृति ८, ३२१ ९ २४ ८, ९-३। ३ १४८-१४९ कादम्बरी ३ ८४ महाभारत अनु० ४६ १४।

अ बुमन अ स्पेनियल एण्ड अ बालगत ही
अ ओर यू ओट हैव अ बैटर है बी।[1]

नारी के प्रति नारी—जिन आदर्श नारियों का उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है उन्होंने स्वयं नारी को अपवित्र नीच अविश्वसनीय काम-क्रोध-समन्वित एवं दुःखद बताया है। पार्वती जी ने भगवान् शिव से कहा कि नारी स्वभावतः जड़ और अज्ञ है (रा० १ १४३ २)। अनसूया जी सीता से कहती हैं कि—

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ॥ रा० ३, ४

शबरी भी मानती है कि

अधम ते अधम अधम अति नारी॥ रा० ३ ४३ २

नारी के सम्बन्ध में ये उद्गार देवी ऋषि पत्नी और साधारण स्त्री के हैं।

नारी के आठ अवगुण—किन्तु पुरुषों का क्या मत है? कामी रावण भी अपनी पत्नी मन्दोदरी से कहता है कि नारी में अनेक दोष होते हैं, और स्वभाव से डरपोक वह सम्पत्ति-काल में भी चिन्तित रहती है

सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥
रा० ५, ३६, १

आगे चलकर अन्य अवसर पर नारी के आठ अवगुणों का यह उल्लेख

साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥ रा० ६ २२, २

शुक्रनीति के इस श्लोक के अनुसार है

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमति लोभता
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः। ३, १६३

स्त्रीत्व के प्रति राम की कठोरता—भगवान् राम ने नारीत्व की और भी अधिक निन्दा की है नारद जी का मोह दूर करने के लिये वे कहते हैं कि स्त्री अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली है वह मोह-रूपी वन के लिए वसन्त ऋतु के समान है पीड़ा रूप ही कर वह तप नियम-रूपी जल के स्थानों को सोख लेती है तथा काम, क्रोध मद मत्सर आदि मेंढकों को वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली है। दुर्वासना रूपी कुमुदों के लिए स्त्री शरद् ऋतु के समान है। विषय-जन्य नीच सुख देने वाली स्त्रीधर्म रूपी कमल वन को हिमर्तु बन कर जला डालती है। ममता रूपी जवास का वन स्त्री-रूपी शिशिर को पाकर हरा भरा हो जाता है। वह पाप-रूपी उलूकों के लिये सुख देने वाली अन्धकारमयी रात्रि है और बुद्धि बल शील और सत्य-रूपी मछलियों के लिये बंशी के समान है। युवती स्त्री अवगुणों की मूल पीड़ा देने वाली और सब दुःखों की खान है (रा० ३ २६ २७)।

कैकेयी और मन्थरा—स्त्री चरित्र अगम्य है। मंथरा कैकेयी के पास पहुँच कर राम और कौशल्या के विरुद्ध जहर उगलने लगी। जब कैकेयी ने हँस कर पूछा कि क्या बात है तो मंथरा कोई उत्तर न देकर उसास लेने और आँसू डालने लगी (रा० २, १३ ३)। यद्यपि महाराज दशरथ राजनीति में दक्ष थे तथापि वे भी कैकेयी की चाल को न समझ पाये। उसने बनावटी मुमूर्षा से बनावटी प्रेम प्रदर्शित किया

१ ए जिमलेट ऑफ टॉक एण्ड कैप्स एण्ड ए कोलम मूर।

था। अयोध्यावासियों ने भी इस रानी को बहुत भला-बुरा कहा (रा० २, ४७ १ ४६
उनकी सम्मति में

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाधु दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्बु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥
काहु न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥ रा० २ ४८

तुलसी के भरत व्यास के युधिष्ठिर की भाँति[1] कहते हैं कि—

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
रा २ १६२

नर-मोहिका—स्त्री में मोहिनी शक्ति है। कौन उसके अधीन नहीं हो जाता जो उसका त्याग करते हैं उन्हें दृढ़ और संयम-शील होना चाहिए। मृगनयनी और चन्द्रमुखी के दर्शन से संतों का मन भी डिग जाता है (रा० ७ १२४ १६३) किन्तु यह विचित्र बात है कि नारी नारी पर मोहित नहीं होती (रा० ७ १६३)।

नारी के कर्तव्य—नारी का प्रधान कर्तव्य पति-पूजा है। अपनी पुत्री पार्वती को माता का उपदेश है कि शंकर जी की आज्ञा का पालन सदा करो और यह समझो कि पति ही नारी के समस्त धर्मों का सार है।

करहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पति देव न दूजा। रा० १ १२६, २
भरत जी के अनुसार सीता जी अपने पति को देव-तुल्य समझती हैं। अत्रि-पत्नी अनसूया जी ने उन्हें यह उपदेश दिया था[2] —

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
रा० ३ ७ १५

इसके अतिरिक्त भगवान् राम ने नारी का एक और कर्तव्य बताया है वह है सास ससुर की आज्ञा का श्रद्धा-पूर्वक पालन (रा० २, ६१, ३), यद्यपि सीताजी ने तो पति पूजा को ही सर्वश्रेष्ठ माना है (रा २ ६४)

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सास ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
रा० २, ६५ १२

अनसूया जी के अनुसार स्त्री के लिए मोक्ष का साधन पति-सेवा है। वे कहती हैं:—

---

१ महाभारत अनु ३६ ४।
२ तुलना कीजिए : महाभारत अनुशासन पर्व।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥
रा० ३ ७ ४

नारी की श्रेणियाँ—अनसूया जी ने नारी की चार श्रेणियाँ इस प्रकार की हैं— जगत् में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत् में मेरे पति को छोड़कर दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है[1]। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को इस प्रकार देखती है समान अवस्था वाले को भाई के रूप में बड़े को पिता के रूप में। निकृष्ट श्रेणी की स्त्री धर्म को विचार कर तथा अपने कुल की मर्यादा को समझकर पाप से बची रहती है। चौथी है अधम नारी जो अवसर न मिलने से या भाग्यवश पतिव्रता बनी रहती है अन्यथा पति को धोखा देकर व्यभिचार करती और मृत्युपरान्त सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है (रा ३ ७ १ ३)।

तुलसीदास के पक्ष में तर्क—गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में नारी के सम्बन्ध में जो लिखा है उसे कुछ लोग प्रशस्त नहीं समझते। कुछ विद्वान् इस विषय में तुलसीदासजी को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कई तर्क उपस्थित करते हैं। पहला तर्क यह है कि गोस्वामी जी ने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति न करके कथा का वर्णन किया है, जिसमें प्रसंग और पात्र के अनुसार अनेक प्रकार के भाव और विचार व्यक्त किये गये हैं। उदाहरणतः भरत अथवा राम की वाणी शोक और आत्मग्लानि की कातर वाणी है और शबरी तथा ग्राम नारियों के शब्द उनकी अति शय कृतज्ञता को ही व्यक्त करते हैं। सती ने आत्मग्लानि के कारण नारि सहज जड़ अज्ञ' कहा था। भिन्न उक्ति का सम्बन्ध पूर्वजन्म से है

जाता पिता, पुत्र उरधारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल मन तकहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥
रा० ३, २१ ३

रावण की उक्ति भी प्रमाण नहीं हो सकती क्योंकि वह सत्पात्र नहीं है। डॉ० नगेन्द्र इस तर्क को अधिक संगत नहीं समझते क्योंकि उनकी सम्मति में तुलसी-जैसे भक्त कवि की कविता को एकान्त वस्तु-परक मानना असंगत है उन्होंने अपना काव्य तो 'स्वान्तः सुखाय' लिखा था।[2]

तुलसीदासजी के पक्ष में दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि उन्होंने सभी स्त्रियों की निन्दा नहीं की जिनको निन्द्य समझा है उन्हीं की निन्दा की है। सीता कौशल्या सुमित्रा अनसूया और मन्दोदरी के प्रति श्रद्धा भी व्यक्त की गयी है। किन्तु, जैसा कि डॉ० नगेन्द्र समझते हैं सीताजी राम की पत्नी थीं कौशल्या और सुमित्रा राम की माताएँ थीं अनसूया ऋषि-पत्नी थी और मन्दोदरी का पुण्य इस लिये गाया गया है कि वह राम के लिए अपने पति से भी लड़ बैठती थी। 'अतएव कहा जा सकता है कि तुलसीदासजी ने केवल राम के नाते इन नारियों में श्रद्धा प्रकट की है।

१ वही।
२ तुलसीदास एक विश्लेषण पृष्ठ २१ पंचशील संस्थान दिल्ली, १९५६

तुलसीदास के पक्ष में तीसरा तर्क यह उपस्थित किया जाता है कि उन पर देश-काल का प्रभाव था।[1] गोस्वामी जी ने तो परम्परा का अनुसरण किया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्रत्युक्ति रूप से डॉ० नगेन्द्र का प्रश्न है कि यदि ऐसी बात है तो सूर ने ऐसा क्यों नहीं किया, क्या तुलसी-जैसे अन्त-द्रष्टा कवि के लिए ऐसी परम्परा का अनुसरण उचित था ?[2]

तुलसी के पक्ष में चौथा तर्क यह है कि वे सन्त थे[3]। उन्होंने अपने ग्रन्थों में जहाँ अनेक बातें साधारण गृहस्थों के लिए कही हैं वहाँ कुछ बातें सन्तों के लिए भी कही हैं और नारी की निन्दा तो उन्होंने अपने और अपने समान-धर्मी सन्तों के मन को उचेत करने के लिए ही की है। तुलसीदासजी की कई कटूक्तियाँ, यथा महासागर की और रावण की संस्कृत के नीति-वचनों का अनुवाद-मात्र है जिसकी चर्चा यथा-स्थान हो चुकी है।

कटूक्तियों के दो कारण—डा० नगेन्द्र ने गोस्वामी जी की कटुता के दो कारण बताये हैं—एक तो यह कि उन्होंने पत्नी की डाट खाई थी और दूसरा यह कि उनकी की उपासना पुरुष-भाव से पुरुष-रूप भगवान् के लिए है। अन्य दो पद्धतियों के अनुसार, नारी-भाव से पुरुष-रूप भगवान् की उपासना होती है अथवा पुरुष भाव से नारी-रूपा शक्ति की। पिछली दो पद्धतियों में नारी भाव की आवश्यकता एवं महत्ता स्पष्ट है, किन्तु प्रथम पद्धति में जो तुलसीदास जी की है नारी भाव की आवश्यकता नहीं है।[4]

निष्कर्ष—निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि तुलसीदास जी ने नारी के प्रति जो उद्गार लेख-बद्ध किये हैं उनमें से कुछ तो हीन पात्रों के मुख से निःसृत होने के कारण और कुछ विनम्रता-दीनता से सम्बन्धित होने के कारण ध्यान देने योग्य नहीं हैं। पर महत्त्वपूर्ण पात्रों की उक्तियाँ तो प्रभाव डालती हैं और भगवान् राम के मुख से भी नारी-निन्दा हुई है। तुलसीदासजी ने यथा-कथा अपनी ओर से भी नारी के प्रतिकूल कुछ वचन लिखे हैं यद्यपि उनमें से कुछ प्राचीन श्लोकों के भाव और अनुवाद मात्र हैं। इस प्रकार गोस्वामी जी दोषारोपण से सर्वथा मुक्त तो नहीं परन्तु उनके उद्गार सकारण हैं। एक तो उन्हें अपनी पत्नी से उपदेश मिला और दूसरे उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ऋषि-सन्तों की परम्परा एवं तत्कालीन देशी-विदेशी विचार धारा का अनुसरण किया। अतएव यदि गोस्वामी जी सर्वथा निर्दोष नहीं तो दोष भाजन भी नहीं हैं। कौशल्या सुमित्रा और सीता के चरित्र-चित्रण में 'वाल्मीकि रामायण' 'अध्यात्म रामायण' और 'हनुमन्नाटक' स्पष्टवादी हैं किन्तु तुलसीदासजी ने असीम चातुर्य और लाघव के साथ उनके चरित्र के अधम स्थलों को अपनी साधुता में रगड़ कर उज्ज्वल कर दिया है। इस सहृदय सन्त को यह कभी सह्य नहीं हो

---

१ यथा मीना बाजार, जकार महीधर की बहस जिल्लिया' डॉ० रामकुमार वर्मा कृत 'तुलसी का गोस्वामक अध्ययन' पृष्ठ ३२।

२ तुलसीदास एक विश्लेषण पृष्ठ ३५।

३ वही, पृष्ठ ३३, ३६।

४ वही, पृष्ठ ३६-४०।

सकता था कि कौशल्या अपने पुत्र को वनवास देने वाले पति के प्रति कटुता प्रकट करे और उसकी मृत्यु के पश्चात् कैकेयी को दुर्वाच्य कहे कि भगवान् राम अपने श्रीमुख से कैकेयी की बुराई करें, कि सीताजी कैकेयी की कटु आलोचना करें अथवा लक्ष्मण जी को डाँटने में सीमा से बाहर हो जायँ और लक्ष्मण जी सीताजी को उद्धतता पूर्वक उत्तर दें। वाल्मीकि जी का वर्णन ऐतिहासिक है अतएव सत्य है तुलसीदासजी का निरूपण आदर्शमय है, अतएव उच्च है।

(च) तुलसीदासजी का आचार-परक निष्कर्ष

गोस्वामीजी का आचार-दर्शन संक्षेप में इस प्रकार है आचार का स्रोत माया है और माया ब्रह्म पर आश्रित उपजता है। ईश्वर कार्य करने में परम स्वतन्त्र है किन्तु जीव पंचतत्त्व युक्त और रज्जु-बद्ध मर्कट के समकक्ष है,। व्यक्ति का कार्य क्रम हरीच्छा से पूर्व-नियत है और उस कार्य-क्रम का किंचित् आभास ज्योतिष-गणना आकृति-विज्ञान एवं शकुन विचार से मिल सकता है। हरीच्छा का व्यावहारिक रूप कर्म-सिद्धान्त है जिसके कारण पुनर्जन्म होता है। व्यक्ति में विवेक शक्ति है अतएव वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी है यद्यपि अज्ञान वश कभी-कभी ऐसी प्रतीति भी होती है कि कर्त्ता कोई है और भोक्ता कोई अन्य है। सत्कार्यों का फल सुखद होता है अतएव वे विहित हैं। सफल सदाचार के निमित्त सत्संग वांछनीय है। परमार्थ —कैवल्य अथवा ब्रह्मभाव अथवा जन्म-मरण के संकट से मुक्ति—राम-नाम जप के द्वारा अत्यन्त सरल है।

कर्म सिद्धान्त सब के लिए लागू है वह नियत और अपरिहार्य है। इसके अनुसार जो जैसा करता है वह वैसा भरता है। पाप के निवारण अथवा शमन के लिए शान्ति-कर्मों की आवश्यकता है, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि ऐसा करने से पाप की निवृत्ति हो ही जाय, क्योंकि ज्ञान माया तप तथा अन्य सुकृतों के रहते हुए भी पाप तो रक्त-बीज राक्षस की भाँति बढ़ता रहता है। अतएव भगवत्प्रसाद ही समस्त आधि व्याधियों के लिए रामबाण है —

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्त बीज जिमि बाढ़त जाहीं॥
हरनि एक अघ-अगुर जानिकी। तुलसिदास प्रभु-कृपा-दानिकी॥ वि० १२८

अतिभौतिक दृष्टिकोण से, सत्य धर्म है और असत्य अधर्म है। आचारिक दृष्टिकोण से पुण्य द्विविध है—अहिंसा और परहित। पुण्य का अभावात्मक रूप अहिंसा है और भावात्मक रूप परहित है इसी प्रकार पाप भी द्विविध है—स्वार्थ और परपीडन। पाप का का मूलभूत रूप स्वार्थ और विभाग तथा सामाजिक रूप है परपीडन। प्रत्येक व्यक्ति को वर्णाश्रम धर्म का पालन करना और नारीगण से बचना चाहिए। शिवाज्ञा रूप-पालनमय 'शिवमार्ग' का अनुसरण प्रशस्त और वांछनीय है वि०२०२।

राजनीति

राम राज्य

प्राक्कथन—राम-राज्य राज-तन्त्र का शुद्ध रूप था किन्तु वह ऑटोक्रेसी अथवा डस्पोटिज्म से अप्रभावित था। कारण कि राजा प्रधान अवसरों पर अपने मंत्रियों से जो ऋषि अथवा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होते थे और सम्पूर्ण परिषद् का भी परामर्श लेता था।[1] 'पर्ष' शब्द पाँचजनों की सभा का द्योतक है (रा० २ ५, २)। राज्य के काम में प्रजा हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी तथापि उसका हाथ अवश्य था। प्राचीन भारत में राजा के लिए असीम सम्मान प्रदर्शित किया जाता था क्योंकि वह पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। यदि कोई राजा अत्याचारी होता तो प्रजा उसे सिंहासन से च्युत कर यमलोक को पहुँचा देती थी। प्रजा अपने अधिकार का प्रयोग शक्ति-संचय के निमित्त नहीं किन्तु दोष निवारण के लिये करती थी। पौराणिक कथा है कि ऋषियों ने वेन की जंघा को मथ कर पृथु नाम का पुत्र उत्पन्न किया और उसे सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था। वेन-पुत्र पृथु की चर्चा ऋग्, अथर्व और यजुष में उपलब्ध है और 'विष्णु पुराण' तथा अन्य पुराण किंचित् हेर-फेर के साथ आद्य विवरण को उपस्थित करते हैं। तुलसीदासजी के अनुसार राजा वेन ने लोक-वेद विरुद्ध अनाचार की सीमा पार कर दी थी रा० २ २२६। अतएव क्रुद्ध प्रजा ने उसको मार दिया। ऋषियों ने मृत नरेश की जंघा से एक अत्यन्त काले ह्रस्वकाय मनुष्य को उत्पन्न किया वह निषाद हो गया और उसमें मृत राजा के पाप समा गये। तब ऋषियों ने सब की भुजाओं को मथा और उस से तेजःपुंज पृथु उत्पन्न हुआ जिससे प्रजा सन्तुष्ट रही।

व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य—राम-राज्य लोकतंत्रात्मक था। उसकी प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करता था यथा-साधारण स्त्री-पुरुषों ने राम वनवास के अवसर पर रानी कैकेयी की निःसंकोच बहु आलोचना की थी (रा० २ ५१ ३)। राम के लिये प्रजा का प्रेम इसी बात से स्पष्ट है कि वह राम के पीछे-पीछे वन जाने के लिये कितनी व्यग्र थी। राम के कहने से लोग लौट जाते किन्तु प्रेम के कारण तुरन्त लौट आते थे और जब वे उन्हें सोता छोड़ गये तो वे जलहीन मत्स्य की भाँति विकल हो गये थे (रा० २, ८३ २, ८५, २, ८६ ३)। यह प्रेम एकांगी नहीं था। राम भी उन्हें प्यार करते थे। कवितावली (७ १३८) और गीतावली (७ २५-२७) में तुलसीदासजी ने सीता-वनवास की चर्चा की है जो वाल्मीकि 'रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' में कुछ अधिक विस्तार से हुई है। राम ने सीता को वनवास इस कारण दिया कि उनके राज्य का एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति उन पर कलंक आरोपित कर रहा था। लोकतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति का, यदि वास्तव

---

१ राज्य-राजस्य मनवाना-शासन। २ वाल्मीकि २ २,१। २ २,१५ २

में नहीं तो सिद्धान्ततः अवश्य, समान अधिकार है। अतएव राम ने यह जानने की चिन्ता नहीं की कि कलंक का आरोप किसी प्रभावशाली दिशा से है अथवा किसी नगण्य व्यक्ति से। तुलसीदासजी ने आरोप का उल्लेख तो किया है (मा० ७, २७ १) किन्तु सीतावनवास के लिये वे एक अन्य कारण उपस्थित करते हैं। वह यह है राम को द्वादश सहस्र एवं पचशत वर्ष तक अपने एवं अपने पिता के निमित्त जो अपने पुत्र के वनवास के कारण असामयिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे, राज्य करना था। सीता वनवास के पूर्व-दिवस की संध्या को राम का निजी राज्य-काल समाप्त होने वाला और दशरथजी का प्रारम्भ होने वाला था। वे अपने पिता की ओर से शासन करने वाले थे अतएव वे सीताजी को इस राज्यकाल में अपने वामांग में नहीं रख सकते थे। पत्नी को वनवास दिये के अतिरिक्त कोई उपाय न था (मा० ७ २५)। राम ने व्यापक उत्तरदायित्व को अपनाया। यदि उन्हें राज्य का लोभ होता तो वे अनेक विवाह कर सकते थे[1] क्योंकि उन दिनों बहु विवाह न दोष था न अपराध। सूर्यवंश में उनके अनेक पूर्व-पुरुषों ने एक से अधिक पत्नियाँ अंगीकार कीं और स्वयं उनके पिता दशरथ की भी तीन पटरानियाँ थीं। राम ने अश्वमेध के समय जीवित पत्नी के स्थान पर उसकी स्वर्ण-प्रतिमा अपने वामांक में स्थापित की। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें अपनी पत्नी से कितना अधिक प्रेम था कदाचित् अपनी प्रजा के लिये और भी। यही कारण है कि प्रजा भी उनके लिये तब मरती थी और आज भी करोड़ों भारतवासी रामराज्य को सुखद-स्मृति बनाये हुए हैं।

प्रजाराज्य—यदि विपरीत-मति राजाओं के उदाहरणों को छोड़ दिया जाय तो कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में राज्य-सत्ता कभी धर्म-निरपेक्ष नहीं रही, उसके कार्य लोक और वेद के अनुसार संचालित होते थे (रा० १ ४३ ३ १८१ २, ३१ ७, २६, २, ४३ १)।

ईश्वर का प्रतिनिधि—राजा की उत्पत्ति दिव्य है उसमें ऐश्वर्य है (रा १ ४३ ४)। दिव्य प्रतिनिधित्व की कल्पना भारत में ही नहीं रही अन्यत्र भी है यथा जापानी लोग भी अपने राजा को ऐसी ही दृष्टि से देखते रहे हैं। भारत में यह धारणा अज्ञात काल से है क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार ईश्वर ने इन्द्र वायु, यम सूर्य अग्नि वरुण चन्द्र और कुबेर से राजा का निर्माण किया (७ ३ ५ ।)

ज्येष्ठ-पुत्र का उत्तराधिकार—राज-तन्त्र की दूसरी विशिष्टता अन्य एवं अन्यत्र यह है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। प्रतापभानु अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे अतएव वे सिंहासनारूढ़ हुए और उनके भ्राता अरिमर्दन उनकी आज्ञा का पालन करते थे (रा० १ १८० ३)। वशिष्ठजी ने भरत से कहा कि वेद का विधान और लोकाचार यह है कि वही मुकुट को धारण करता है जिसे पिता देता है (रा० २ १७३, २)। राम किंचित् संकोच से इस प्रथा का उल्लेख इस प्रकार करते हैं मैं और मेरे भाई साथ उत्पन्न हुए और हम बचपन में साथ खाये,

---

१ क्योंकि राजवंशानां का वा स्त्रीणां विवाहतः।
इष्टः सन्तु सर्वस्यैव राजन्यस्य तथा स्त्रियः।
अग्रहस्य सर्वस्यैव स्त्रीणां भरतस्य च २ ७ १६।

सोते और बैठते रहे, हमारा कर्णछेदन यज्ञोपवीत विवाह, संसेध में हमारे सभी संस्कार साथ-साथ हुए हैं। हमारे निष्कलंक वंश में यही एक दोष है कि ज्येष्ठ ही अपने छोटे भ्राताओं को छोड़ कर सिंहासन पर आरूढ़ होता है (रा० २, १०, २ ४)। राम का यह कथन केवल लोक-विख्यात न था, क्योंकि लंका से लौटने पर वे अयोध्या के सिंहासन पर बैठे तो किन्तु एकाकी नहीं। राम-पंचायतन के राज्य-मंच पर केवल राम और सीता के लिये नहीं अपितु उनके भाई भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के लिये भी आसन थे। छठे हनुमान् तो सेवक थे। कदाचित् राम-पंचायतन ही पंचायत राज्य का प्रथम बीज है, जो तब से अरिष्टशासन अल्पशासन और जनतंत्र आदि अनेक रूपों में पल्लवित हुआ है।[1]

राजा की योग्यता—राजा की योग्यताओं कर्तव्यों और आदर्शों का विधान इस प्रकार है उसे शक्ति नीति ऐश्वर्य, (रा० १ १५७ २) बल प्रताप और शील का निकेतन (रा० १ १८० २) होना, तथा वेद विधि से प्रजा का संरक्षण और शासन करना चाहिये (रा० १ १८१)। मनुजी के अनुसार उसे सत्यवादी विवेकी बुद्धिमान् और न्यायी होना धर्म अर्थ काम वेद और धर्मशास्त्र का अध्ययन करना तथा काम क्रोध लोभ अन्य दोषों से सतर्क रहना चाहिये (७, २६ ३३)। तुलसीदासजी ऐसा मानते-से हैं कि शीलनिधि (रा० १ १५७ १) और सत्यकेतु (रा० १ १८ १) दोनों ही राजा इन सब अथवा बहुत से गुणों से समन्वित थे। राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि मेरे राज्य में यति मुनि तो कष्ट नहीं पाते अन्यथा वह अग्नि के बिना ही भस्मसात् हो जाता है अतएव उसका कर्तव्य है कि वह ब्राह्मणों को संतुष्ट रखे (रा० २ १२६ १ २)। यह कथन मनुजी के अनुकूल है जिनका यह आदेश है कि मृत्यु को प्राप्त होता हुआ भी राजा किसी वेद-पाठी पर कर न लगाए और उसे सूखा न मरने दे। विद्वान् की जीविका के लिये उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है (७ १३३ १३६)। राजा को उचित है कि वह अपनी प्रजा से प्रेम करे और उसके कल्याण की रक्षा करे क्योंकि—

> जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
> सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
>
> रा० २ ७१ ३ १७२ २

राजा के लिये नीति का ज्ञान तो आवश्यक है ही उसे सब के साथ मृदु वचनों के द्वारा तथा योग्य व्यवहार करना चाहिये। प्रतापभानु ने जो वर चाहा था उसमें आचार्य नरेश की आदर्श इच्छाएँ सन्निहित हैं (रा० १ २ ४)। वे ये हैं—

> अरा मरन दुख रहित तन समर जितै जनि कोउ।
> एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥ रा० १ १६४

अनेक-बुरे राजाओं के लिये उपमाएँ—समय की गति राजा की योग्यता पर निर्भर है। वायु तो वायु ही है वह न अच्छी है न बुरी किन्तु स्वच्छ या अपवित्र वस्तु के संसर्ग से वह सुगन्ध या दुर्गन्ध हो जाती है। इसी प्रकार समय समय है यदि राजा

---

१ अरिस्टोटेल की आलिगार्की डिमोक्रेसी।

बुरा है तो लोग उस समय को कठिन बताते हैं, और यदि भला है तो उसे सुखमय कहते हैं

> जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
> कहिअ कुबास सुबास तिमि काल महीस प्रसंग ॥ दो० ३०३

कुनृप खजूर के समान है जिसकी कंटकमय शाखाएँ घिर पड़ती हैं वह स्वयं नष्ट हो जाता है और अपनी अनीति के कारण अपनी जाति का पतन करता है दो० ३१४ ३१५। इसके विपरीत माली, सूर्य और किसान के समान सुनृप है दो० ३०७। जिस प्रकार माली कुम्हलाते हुए पौधों में पानी लगाता है उस प्रकार उदार नरपाल असहाय और दीनों की रक्षा करता है। जैसे सूर्य समुद्र से अलक्षित रूप से जल का ग्रहण कर लेता है वैसे वित्त नरेश जनता पर परोक्ष रूप से कर लगाकर जनता का हित करता है तथा जिस प्रकार किसान खेत जोतता खाद डालता बीज बोता, पानी देता एवं देखभाल करता है और जब अन्न तैयार हो जाता है तब उसे काट लेता है इसी प्रकार राजा भी अपनी प्रजा का हित करता है—

> माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
> प्रजा-भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥ दो० ३०७
> बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
> तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ दो० ३०८

शासक के सिद्धान्त—तुलसीदासजी ने शासक के लिये कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया और उनके पालन करने का उपदेश दिया है। राजा को कभी नीति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। रामने, वन के लिये प्रस्थान करते समय प्रजा को परामर्श दिया था कि तुम भरत की आज्ञा का पालन करना और भरत के लिए, जो उस समय मातुल-गृह में थे वे यह संदेश छोड़ गये थे 'जब भरत आयें तो कहना कि अब तुम राजा हो गये हो अतएव नीति को न भूलना; मन वाणी और कर्म से प्रजा का हित करना निर्भय होकर अपनी माताओं की आज्ञा का पालन करना आर्य का कर्तव्य निभाना और पिताजी की माताओं की तथा अन्य सम्बन्धियों की देखभाल रखना जिससे उन्हें मेरे जाने का दुःख न हो' (रा० २, १६२ ३)। इसी प्रकार अपमान का बदला लेने के लिए सुग्रीव को उपदेश देती है—

> राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
> बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥
> संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥
> प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥
> रिपु रज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
> अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥ रा० ४ १७ ४-२८

प्रतापभानु अनजाने कपट मुनि के फेर में पड़ गये थे उस विषय में तुलसी का उपदेश है:

> रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
> अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥ रा० १ २० ॥

कुछ अन्य उपदेश—अति साहस बुरा है। मनुष्य को सतर्क और सावधान

रहना चाहिए। शास्त्री, मर्मज्ञ, स्वामी, शठ धनवान, वैद्य, बन्दी, कवि और भले विद्यार्थी इन नौ पुरुषों से विरोध करना ठीक नहीं रा० ३ ३३ २। शास्त्र का पाठ मन बार-बार करना चाहिए और राजा को चाहे कितना ही सुसेवित यह क्यों न हो, अपने वश में नहीं समझना चाहिये

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ

रा० ३ ४३, ४

जब सचिव, वैद्य और गुरु भय अथवा आशा से मीठा बोलते हैं तो समझ लेना चाहिये कि राज्य धर्म और स्वास्थ्य का शीघ्र नाश हो जायगा

सचिव बैद गुर तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस

राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥ रा० ५, ३७

रावण के सचिव रावण की हाँ-में-हाँ मिलाते थे जिससे अन्त में उसे दुःख भोगना पड़ा (रा० ५, ३७ १)। दूसरे की पत्नी की इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह स्त्री या तो अपयश देती है अथवा गुप्तचर का कार्य करती है। विभीषण और मारुतिनन्दन ने रावण से कहा था कि यदि आप कल्याण बुद्धि प्रशंसा सुमति और अनेक प्रकार के सुख चाहते हैं तो पर-नारी के ललाट को चतुर्थी के चन्द्रमा के समान समझें (रा० ५, ३७ ३ ४० १)। सतर्कता के निमित्त अपरिचित व्यक्ति को अपना नाम नहीं बताना चाहिए, नहीं तो कभी-कभी पछताना पड़ता है। यह राजनीति है कि राजा अपना नाम जिस-किसी को और जहाँ-तहाँ न बताए

सुनहु महीस असि नीति जहाँ तहाँ नाम न कहहिं नृप ॥ रा० १ १६३ ॥

शत्रु, योद्धा और राजा के साथ व्यवहार में विशेष सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि ये लोग छल-बल से अपना काम बना लेना चाहते हैं

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा

रा १ १८८, ३

तीन प्रकार की जनता—निषादराज गुह ने अपने अनुयायियों से घाट पर एकत्र हो जाने और यह जानने के लिए कि भरत क्यों आ रहे हैं यह कहा था कि लोग तीन प्रकार के होते हैं—मित्र शत्रु और मध्यमति (उदासीन) (रा० २, १६३)। शत्रु और मित्र का पहचानना कठिन नहीं क्योंकि वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते :

बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराए ॥ रा० २, १६३, १ ॥

उचित व्यवहार—प्रत्येक के साथ यथायोग्य व्यवहार उचित है। राम में यह गुण था। राम का व्यवहार जनक विश्वामित्र वामदेव, जाबालि मन्त्री, नगर वासी नर-नारी उत्तम मध्यम और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों से उचित रहा इसी प्रकार सीता का भी (रा० २ ३१६ १–४)। किन्तु राम को दुष्ट का कोई लिहाज न था क्योंकि उनके विचार से शठ से विनय कुटिल से प्रीति कृपण से नीति स्वार्थी से ज्ञानचर्चा लोभी से वैराग्य का वर्णन क्रोधी से शम और कामी से हरिकथा की चर्चा इस प्रकार व्यर्थ है जैसे ऊसर भूमि में बीज-वपन (रा० ५, ६० १ २)। भय के बिना प्रीति नहीं होती नीच व्यक्ति विनय से नहीं मानता किन्तु डाँटने से ही नम्र होता है, गन्ना केले में कितना ही जल दिया जाय वह तब तक नहीं फलता जब तक बड़ी भाँति

छँटता नहीं (रा० ६, ६०, ६१)। लक्ष्मण जी का मत है कि अपमान को सहन नहीं करना चाहिए, क्योंकि लात मारने से धूल भी सिर पर आ चढ़ती है (रा० २ २१०)।

राजमद—राजा के लिए सब से बड़ी बात यह है कि वह राज-मद से बचता रहे। जब भरतजी सीता राम से मिलने चित्रकूट आ रहे थे तो लक्ष्मणजी राम से इस प्रकार बोले विपत्ती बीच प्रभुता पाकर, मोहमद मूढ़ हो जाता है भरत नीतिज्ञ हैं, साधु और सुजान हैं और रामभक्त भी जैसा कि सब लोग जानते हैं, किन्तु वे भी राजा बनकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं। यह कुटिल कुचाणु अवसर देख राम को अकेला समझ, और कुमन्त्रणा कर सेना के सहित इसलिये आया है कि अकंटक राज्य करे। मद के कारण

सति सुर तिय नागी नहुषु चहेउ पुनिसुर बाम।
लोक बसेउ बिमुख भा अधम न जन सनाम॥ रा० २ २२८

यद्यपि राम ने लक्ष्मण की यह बात नहीं मानी कि भरत को राजमद हो गया था तथापि उन्होंने यह स्वीकार किया कि राजमद सब से बुरा मद है और इसका थोड़ा सा भी चसका उस राजा को विभोर कर देता है जिसने साधु-संगत का सेवन नहीं किया हो—

सब तें कठिन राज मद भाई।
जो सेवत नृप मातहिं तेई। जाहि न साधु सभा जेहि सेई
रा० २ २११ १४

तुलसी स्वयं कहते हैं

नहिं कोउ अस जनमा जगमाहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं
रा० १ ८३ ४

प्रजा के प्रति—यथा राजा तथा प्रजा यह भारतीय सिद्धान्त है। अतएव सुशासन के निमित्त ऐसे योग्य राजा की आवश्यकता है जो बुद्धिमान् धर्मात्मा सशक्त और दानी हो। काल तो ईश्वर का सूर्य काल का राजा सूर्य का और लोक राजा का अनुसरण करता है

काल बिलोकत जीव कर लाभु काल अनहारि।
तबहिं राउ राजहिं प्रजा सुख लवहरहिं बिचारि॥ दो० ५०४

इस उक्ति का तात्पर्य है कि जिस प्रकार सूर्य समुद्र से वाष्प ग्रहण करता है और फिर कुछ समय पश्चात् उसे मेघ के रूप में सम्पूर्ण पृथ्वी पर बरसा देता है उसी प्रकार राजा अपनी प्रजा से कर ग्रहण कर उसे विभिन्न रूप में लौटा देता है। कुछ अवसर भोजन कर आदि का कर प्रजा से उसकी अनुमति से ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा वह बड़बड़ाने लगती है

सुपा सुराज सुराज फल साज सकल सम साजि।
सुनभु प्रजाजन हित लेहि कर सामाजिक अनुमाजि॥ दो० ५०६॥

उत्तम कुप्य वह है जो वृक्षों के पके फल लेता है मध्यम वह है जो पकने की बाट न देख कर अधपके ही तोड़ कर घर पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तों ही को नीच डालता है। इसी प्रकार उत्तम राजा वही लोक-समझकर सभी कर लेता

चाहिए जब धान्य पक जाय और कृषकों को सुविधा हो, मध्यम नरेश धस्म के बिना पके ही कर उठाता है और अधम तो अकाल पड़ने पर भी कृषकों को कष्ट पहुँचा कर कर उठाने का प्रयत्न करता है। एक और उदाहरण है आम अच्छा रूप तभी देती है जब उसका बछड़ा उसे पी चुके किन्तु जो व्यक्ति उसके पैर बाँधकर दुहने का प्रयत्न करता है उसे कुछ भी दूध हाथ नहीं लगता। इसी प्रकार राजा की प्रजावत्सलता से सन्तुष्ट होकर प्रजा सहर्ष कर दे देती है (दो० ३१२)। अतएव कर के विषय में प्रजा की सम्मति नितान्त वांछनीय है। राजा को विचार-शील (दो० ३०४) और दृढ़नीति होना चाहिए (दो० ३१६) अतएव किसी भी कार्य के आरम्भ से पूर्व भली भाँति विचार कर लेना श्रेयस्कर है, क्योंकि उसी के नियमों से प्रजा का कल्याण होता है और वह सन्मार्ग से नहीं विचलती

> अमेहु चलत अब पोच भय नृप नियोग बय नम,
> सुनिय मुमूरुति भूमिपत सोह सँवारित हैम ॥दो० ३०६॥

मूर्ख-बहुल-जनता—इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रजा को सन्तुष्ट रखने के लिये उसकी इच्छा का जानना परम आवश्यक है किन्तु उसको सब भाँति प्रसन्न रखने का प्रयत्न भी व्यर्थ है। यह प्रयत्न इतना ही कठिन है जितना कि जोर से खींच कर बारीक सूत का कातना। क्या सीताजी अपयश के योग्य थीं अथवा श्री कृष्ण स्यमंतक मणि के चोर थे? किन्तु लोग उन पर भी दोषारोपण करने से न चूके

> अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह
> तुलसी लोग बिमोहबो करबि कातिबो नान्ह ॥ दो० ४६२॥

भेड़ चाल से सावधान रहना चाहिए। जनता में अधिकतर मूर्ख होते हैं जो विषय विशेष की गम्भीरता तक बहुत कम पहुँच पाते हैं वे शीघ्र ही अदूर-दर्शी नेताओं के प्रशंसात्मक भाषणों और नारों में बह जाते और अनाचार करने लगते हैं —

> तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता जनमान।
> जेतबत ही जमिजात जो कोउ बूड़त अगान ॥ दो० ४६५

उदाहरण रूप से निवेदन किया जा सकता है कि बहराइच में सम्वत सोलह सौ सत्तर गाजी (गाजी मियाँ) की बरसाह है। वहाँ ज्येष्ठ मास में प्रतिवर्ष मेला लगता है और अन्यविश्वासी लोग विविध मनोरथों को लेकर जाते हैं। कहते हैं कि ये गाजी मियाँ महमूद गजनवी के भांजे थे और गाजी होने की इच्छा से अवध की ओर बढ़ आये थे किन्तु वे श्रावस्ती के राजा सुहृद देव के हाथों मारे गये। अतएव तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रतिवर्ष भीड़ की भीड़ बहराइच की यात्रा के लिए जाती है और गाजी मियाँ से अनेक मनोरथों की पूर्ति चाहती है किन्तु क्या किसी व्यक्ति ने इस बात के जानने का प्रयत्न किया कि गाजी मियाँ की कृपा से किस अन्धे को आँखें मिलीं किस बाँझ को सन्तान, और किस कोढ़ी को कंचन-काया?

> सही साँसि कब साँथरे सीझ पूत कब ब्याह।
> कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥ दो० ४६६

तुलसीदासजी के इस दोहे से विदित होता है कि जन-साधारण जनता कितनी अज्ञ और अविचार-शील होती है।

अधिकारियों पर दृष्टि—अधिकारियों का अनुचित विश्वास न करना चाहिए, किन्तु उनके प्रति सावधान रहना चाहिए। क्योंकि अच्छे अधिकारी भी अवसर पाकर दुर्व्यवहार करने लगते और अन्त में विरुद्ध होकर राजा को हानि पहुँचाते हैं। दुष्ट अधिकारी अपने स्वामी से अधिक अत्याचारी होते हैं अर्थात् यदि राजा एक प्रकार से बुराई करता है तो उसके अनुगामी तीन प्रकार से। वे सज्जनों से भी कुटिलता करते समता में भी विषमता बर्तते और सब कार्यों को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं —

अधिकारी बस बीसरा जलेउ जानिअ अग्य।
सुधा सदन जनु बारहें बड़वें जउपिज बग्य॥ दो० ४९९
त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुप अवसर करहिं कुठाट
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारह बाट॥ दो० ५००
प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहि संभारे राउ।
करतें होत कृपाल को कठिन घोर घन घाउ॥ दो० ५०१

यही कारण है कि नारदजी ने महाराज युधिष्ठिर से उनके मन्त्रियों एवं अन्य अधिकारियों के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से प्रश्न किये थे (महाभा० सभापर्व)।

आडम्बर—राजा के आडम्बर हैं सिंहासन छत्र राजवस्त्र चँवर और राणी। कोष मित्र, बन्दी दुर्ग देश सेना और प्रजा की भी आवश्यकता है (रा० २ १०५, २ १०६ २)। गोस्वामीजी ने इन सबका वर्णन एक रूपक के द्वारा किया है जिसका उल्लेख अभी किया जायगा। राजा शीलनिधि को ये सब उपकरण प्राप्त थे। उसकी राजधानी की परिधि छत्र मोजन थी और वह वैकुण्ठ से भी अधिक सम्पन्न थी। उसके सभी निवासी मूर्तिमान् रति और कामदेव थे जिनके पास असंख्य घोड़े हाथी और सेना थी। वह इन्द्रों के समान उसका ऐश्वर्य था और वह स्वयं भी पवित्र नीति और वैभव का कन्द था (रा० १ १५७ १ ३)।

राजसत्ता और राज्य—कवि होने के नाते तुलसीदासजी ने अपने विचारों को रूपकों में मूर्त किया है। राम चित्रकूट में निवास करते थे उनकी उपस्थिति से उपवन पर कल्याणकारी और मनोहर प्रभाव पड़ा था। रूपक है चित्रकूट-वन पवित्र देश है विवेक नरेश है शान्ति और सुमति दो सुन्दर और पवित्र रानियाँ हैं, विराग सचिव है राम-निवास संपत्ति है चित्रकूट राजधानी है धर्म-नियम भट हैं राजा सकलांग सम्पन्न रामचरणाश्रित और उल्लास-चेता है। विवेक-नरेश ने कामादि दमन सहित मोह-महीपाल को पराजित कर दिया है। राज्य में सर्वत्र सुख सम्पदा और सुकाल है। वन प्रदेश के मुनि-कुटीर ही नगर पुर और ग्राम हैं। पशियण प्रजा है। सब गज सिंह व्याघ्र सूकर महिष वृक आदि अपने स्वाभाविक वैर भाव को छोड़कर एकत्र विचरते हैं। इन्हीं की बनी सुसज्जित सेना है। झरनों का निर्झरण और भ्रमरों का गुंजन विविध राजकीय वाद्य हैं चक्र चकोर, मोरज पुर पिक का गुंजन सुन्दर संगीत है हंस बंदी हैं अतिथिगण मधुपे और मोर मनोज्ञ हैं सफल और सुफल विटप तथा बन्दी और मृग का समुदाय राजा का मंगल-मोद-मय दरबार है (रा० २ २१४ २१७)।

एक रूपक और है जो राजा और राज्य के विषय में गोस्वामीजी के विचारों पर प्रकाश डालता है प्रयाग तीर्थराज है उसकी राणी श्रद्धा सचिव सत्य मित्र माधव

कोष पदार्थ-चतुष्टय वेष पुण्य-स्थल और अगम्य दुर्ग उसका विस्तार है, तथा उसके सैन्य के सिपाही हैं भेद और बल जो कमल-वन को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। उसका राज-छत्र है अक्षय वट और चँवर हैं गंगा-यमुना की ऊर्मियाँ। उसके सेवक हैं आप्त-काम साधु सुहृदी और बंदी-जन हैं वेद-पुराण (रा २, १०५, १०६)।

सचिव की योग्यता—उक्त रूपक में सत्य को सचिव माना गया है। प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी के अनुसार मन्त्री का मुख्य गुण सत्यवादिता है। उसे चतुर धर्मात्मा नीतिज्ञ (रा० १ १८१ १) तथा मनुजी के अनुसार बुद्धिमान्, धर्मशास्त्रज्ञ वीर युद्धकुशल सच्चरित्र और सुवंशज होना चाहिए, ७ ५४। राजा अकेला राज्यभार को नहीं सम्हाल सकता। अतएव उसे सुयोग्य सात-आठ मंत्री नियुक्त कर लेने चाहिएँ। इसके अतिरिक्त राजा को ऐसे राजदूतों की भी आवश्यकता है जो विज्ञ वाक्य-मुखी शुचि दक्ष अनुरक्त देशकालविद् निडर, वाग्मी कुलोद्भव मेधावी एवं बलुष्मान् हों (मनु ७ ५५ ६४)। प्रतापभानु का धर्म-रुचि नामक मंत्री शुक्राचार्य के समान नीतिज्ञ था। दशरथजी के यहाँ आठ मंत्री थे जिनमें से एक सुमंत्र भी थे वशिष्ठजी परामर्श-दाता थे। रावण के यहाँ भी शुक, प्रहस्त विभीषण आदि अनेक मंत्री थे (रा० ५, ५६, २ ३ ६० १ २ ६ १३ ३)। अंगद ने राम के निमित्त दौत्य किया था।

गुप्तचर—गुप्तचर राजा के नेत्र होते हैं। प्राचीन भारत में गुप्तचरों का ताना-बाना रहता था। चाणक्य ने अपने चिरस्मरणीय ग्रन्थ अर्थशास्त्र में गुप्तचरों की योग्यता कर्तव्य तथा प्रथा का विशद् वर्णन किया है। वनवासी ने अयोध्या में चार चर यह जानने के लिये भेजे थे कि कहीं भरतजी वनवासी राम के विरुद्ध तो नहीं हैं (रा २ २७१ ४)। हनुमानजी तथा अन्य वानरों ने सीताजी का खोज लेने के लिये चर-रूप से कार्य किया था। जब विभीषण भगवान् राम की शरण में आये तो वानरों ने उन पर चरत्व का सन्देह किया था। रावण प्रेषित गुप्त गुप्तचर लक्ष्मणजी के पास लाये भी गये (रा० ५, ५३)। रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को ब्राह्मण वेष में भरत के पास यह जानने के लिये भेजा था कि मेरे वनवास-काल में अयोध्या की वस्तु-स्थिति क्या रही और मुझे अपने राज्य में लौटना चाहिए कि नहीं क्योंकि जैसा कि वाल्मीकिजी ने लिखा है पैतृक-सिंहासन किस को नहीं लुभाता ?

शत्रु के प्रति व्यवहार—शत्रु के साथ चतुर्विध उपायों का अवलम्बन किया जाता है—उच्चाटन वशीकरण मारण और आकर्षण (वि० १ ८)। इनके अतिरिक्त चार और हैं—साम दान दण्ड और भेद। हनुमानजी ने पिछले चतुष्टय का सकौशल सुयोग से किया और उन्हें सीता की खोज के लिए प्रोत्साहित किया (रा० ४ २१, १)। राजदूत अंगद ने रावण के चार मुकुट रामचन्द्रजी की ओर फेंक चलाये थे जिनकी उपमा तुलसीदासजी ने साम दान दण्ड और विभेद से दी है और कहा है कि यह चतुर्थी नीति राजा में सदा रहनी चाहिए, किन्तु वह रावण को छोड़ रामचन्द्रजी के पास आ गयी थी (रा० ६ ५६ ४ ५)।

सामादि उपायों में राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए, पंडितों ने साम और दण्ड की बहुत प्रशंसा की है (मनु० ७ १०९)। विभीषण के द्वारा रावण को परामर्श है कि सुमति और कुमति सब के हृदय में रहती हैं किन्तु

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥
रा० ५ ४० १

तुम्हारे हृदय में कुमति बसी हुई है अतएव तुम शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझते हो। अपने मित्र और मंत्रियों के परामर्श से जो राजा कार्य करते हैं वे सफल होते हैं अन्यथा हानि उठाते हैं।" रावण ने अपने स्वामिभक्त मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना की और न विभीषण और न माल्यवान् की सुनी अतएव उनमें से एक तो राम की शरण में आ गया और दूसरा घर चला गया। इस प्रकार राक्षसराज ने अच्छे मंत्री खो बैठा। इधर राम ने शरणागत विभीषण का स्वागत यह कहकर किया

शरणागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि॥ रा० ५, ४४

राम की नीतिज्ञता द्रष्टव्य है यदि विभीषण करोड़ों राक्षसों का वध करके शरण में आता तो भी राम उसे विमुख न करते

कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥ रा० ५ ४४ १

विभीषण की राम को कितना उपयोगी सिद्ध हुआ उसे अपने भाई-भतीजों के मर्मों को बताने में तनिक भी संकोच न हुआ।

सेना—प्राचीन भारत में सेना चतुरंगिणी होती थी। कामदेव की सेना भी ऐसी थी (रा० १ ४७ ५)। अमरकोष के अनुसार चतुरंगिणी में हस्ती अश्व रथ और पत्ति होते हैं। रावण की सेना असंख्य और विविध प्रकार से सुसज्जित थी उसमें चतुरंगिणी की बहुत-सी टुकड़ियाँ थीं जिनमें अनेक प्रकार के वाहन रथ तथा अश्व थान थे। बहुत से रथों की ध्वजा-पताकाएँ थीं। मतवाले हाथियों के झुण्ड के झुण्ड थे जो प्रावृषमेघ से प्रतीत होते थे। रंग-बिरंग के वेश धारण किये हुए वीरों के समूह सुशोभित थे। सेना ऐसी विशाल थी कि उसकी गति से दिशाओं के हाथी छिपने, समुद्र क्षुब्ध होने और पर्वत डगमगाने लगते और धूम इतनी बढ़ती कि सूर्य छिप जाता पवन रुक जाता और पृथ्वी अकुला उठती। ढोल नगाड़े ऐसे बजते थे मानो प्रलय काल में मेघों का गर्जन हो रहा हो। भेरी बाँसुरी शहनाई आदि से उत्पन्न मीठाओं को सुन देने वाला मार-राग बजता तथा वीर अपने-अपने बल-वीर्य का वर्णन सिंह नादपूर्वक करते थे। (रा० ६, १०१ १ ५)।

रावण को सूचना मिली थी कि राम की सेना विशाल है, जिसमें अठारह पद्म तो केवल वानरों के सेनापति थे जिनमें मुख्य थे द्विविद मयन नल नील संबर सह विकटास्य दधिमुख केसरी निषठ उठ और जाम्बवान् जो सभी बल में सुग्रीव के समान थे (रा० ५, ३६)। लंका के चार द्वार थे अतएव प्रधान सेनापति सुग्रीव ने अपनी सेना के चार विभाग किये (रा० ६ ३८ २)। स्वच्छ कृपाणें और तलवारें ऐसी चमकती थीं जैसे बिजली। हाथी रथ और घोड़ों का गर्जन मेघवत् था। आकाश में छायी हुई अनेक वानरों की ध्वजें इन्द्रधनुष-सी सुन्दर लगती थीं (रा० ६, १११ १)। सेना की प्रगति वाद्य के साथ होती थी जो वीर-हृदयों में उमंग उत्पन्न करता था। यदि कोई घोड़ा पीठ दिखाकर भागता तो उसे दुलाकर उसमें उत्साह का संचार किया जाता। कभी-कभी रावण को कहना पड़ा कि "मैं जिसे रण से भागा हुआ सुनूँगा उसे भयानक दुधारी

तलवार से मारूँगा, मेरा सब कुछ खाया भाँति भाँति के भोग किये और अब रणभूमि में अपने प्राण प्यारे हो गये। रावण के इन उग्र वचनों को सुनकर वीर डर जाते और लज्जित हो तथा प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध के लिए लौट जाते (रा० ६, ६१, ४)। एक और बार रावण ने योद्धाओं से कहा था कि 'यदि युद्ध में शत्रु के सम्मुख किसी का मन विचलित हो तो अच्छा है वह अभी भाग जाय। युद्ध से यामना ठीक नहीं। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है जो शत्रु चढ़ आया है उसे मैं स्वयं समझ लूँगा'। (रा० ६ १०० २ ३)। ऐसे शब्दों से योद्धाओं में भय तथा अपना विश्वास का संचार हो जाता था उनका विश्वास था कि प्राणों का मोह छोड़ शत्रु के सम्मुख लड़ते-लड़ते मृत्यु का आलिंगन करने में योद्धा का गौरव है

सन्मुख मरन बीर के सोभा ॥ रा० ६, ६१, ५

शस्त्रास्त्र—अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र विद्यमान थे। राक्षस-योध ब्रह्मास्त्र (रा० ५, १९) और नागपाश (रा० ५, १९, १) का प्रयोग करते तथा भिन्दिपाल बरछी तोमर, मुद्गर, फरसा भाला कृपाण परिघ गिरिखंड (रा ६ ५९ ४), त्रिशूल (रा० ६ ६२) बाण (रा० ६ ७० १) शक्ति (रा० ६, ७४ ४) आदि चलाना जानते थे। हनुमान्, अंगद और विभीषण गदाधारण करते थे (रा० ६, ११८, २ ४), तथा रावण और मेघनाद शक्ति, चक्र एवं धनुर्बाणों से अधिक काम लेते थे (रा० ६, १५, ३)। राम-लक्ष्मण धनुर्धारी थे। राम का धनुष शारङ्ग कहलाता था कदाचित् शृंग निर्मित होने से (रा० ६ ११० छं० ५)। धनुर्धारियों के दोनों ओर तूणीर लटके रहते थे (रा० ६ ८९ १)। उनके नाराच वस्तुओं को यथेष्ट स्थान पर रख सकते और शत्रु का हनन कर निर्भय से लौट आते थे। इन बाणों में राक्षस-माया को निवारण करने की शक्ति भी थी। सुनते हैं प्राचीन भारत में आग्नेयास्त्र से सर्वत्र अग्नि और वरुणास्त्र से सर्वत्र जल की उत्पत्ति हो जाती थी। रामचन्द्र जी का बाण तो महासागर तक का शोषण कर सकता था। उस कराल विशिख के संधान-मात्र से समुद्र की अन्तर्ज्वाला जग उठी और मकर मीन आदि जल-जन्तु ऐसे अकुलाने लगे (रा० ५, ६० ३ ४) जैसे आजकल 'एटम बम' से। भरत ने तो हनुमान् जी से उन्हें अपने बाण पर बिठा कर लंका भेजने का प्रस्ताव किया था—

तात महत्व होइहि तोहि जाता। कानु नसाइहि होत प्रभाता॥
बान मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपा निकेता॥ रा० ६ ८०, ३१

युद्ध-कौशल—वानरों और राक्षसों का युद्ध-कौशल आधुनिकाधुनिक-सा था। वे एक-दूसरे को काटते-नोचते और लात घूँसों की लड़ाई लड़ते। राम रावण और भरत के अस्त्रों की अपेक्षा साधारण राक्षसों और वानरों का युद्ध बालकों के लिए अधिक रोचक प्रतीत होता है —

एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू॥
रा० ६, १०५, २ ४

आज भी लोग क्रोध में कह देते हैं कि खोद कर बाड़ पूँगा, यद्यपि चर्चित क्रिया परिचित नहीं होती। दोनों दल चिल्लाते और एक-दूसरे को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारते थे (रा० ६ १०५, २ ११४ ११७ क० ६ १५ ४० ४१)। किन्तु युद्ध-कौशल सम्मत प्रकार का भी था।

आकाश-युद्ध—योद्धा लड़ते-लड़ते आकाश में चढ़ जाते थे यथा मेघनाद ने अपने मायामय रथ में आकाश में उड़कर वज्रवत् अट्टहास किया था जिससे वानर सेना में आतंक छा गया। वह इच्छानुसार रूप बदलता और अन्तर्धान हो जाता था (रा० ६ ६८ ६)। किन्तु ऋक्ष-वानरों के प्रधान भी आकाश में राक्षसों को पीछा कर सकते थे। एक बार इस राक्षस ने राम पर नागपाश फेंका जिसे नष्ट करने के लिये गरुड़ को आना पड़ा किन्तु रावण ऐसी माया भी जानता था जिसे राम के अतिरिक्त और कोई छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता था। उसने राम और लक्ष्मण के दल के दल रच डाले और राम ने उस माया का निराकरण बाण-निक्षेप के द्वारा कर दिया (रा० ६ ११६ ग०)। लड़ते-लड़ते रावण ने राम के रथ पर ऐसी बाण वर्षा की कि वह एक क्षण के लिये तिरोहित ही हो गया। रावण के सिर और भुज कटते थे वे वायुमंडल में उड़कर यह ध्वनि प्रचारित करते कि 'राम कहाँ? लक्ष्मण कहाँ? और इस प्रकार वानरों के हृदयों में भय का संचार कर देते थे (रा० ६ ११७ ४)। हनुमान् जी की पूँछ पकड़ कर रावण आकाश में उड़ गया और वहाँ ये दोनों युद्ध करते ऐसे प्रतीत होते थे मानो सुमेरु और कज्जलगिरि आज प्रतिवाद कर रहे हों (रा० ६ ११९ १४)। रावण भी वेश बदल कर अन्तर्धान हो सकता था (रा० ६ १२० १)। उसने अपनी माया से अपने इतने रूप रच डाले जितने वानर युद्ध कर रहे थे (रा० ६ १२० २)। एक बार उसने अपने पायक से भयंकर जीव प्रकट किए यथा वेताल भूत पिशाच जो हाथों में मनुष्य-बाण लिए हुए थे और योगिनियाँ भी जो एक हाथ में तलवार और दूसरे में मनुष्य-कपाल लिए खून पी-पी कर नाचती-गाती थीं। इनसे वानर बड़े भयभीत हुए यहाँ तक कि लक्ष्मण और हनुमान् भी अचेत हो गये। किन्तु राम के केवल एक बाण ने इस समस्त माया का अन्त कर दिया (रा० ६ १००, सुन्द १ ३)। रावण के सिर और भुज कटकर गिरते तो नये निकल आते थे क्योंकि उसकी नाभि में अमृत भरा हुआ था। जब वह रहस्य विभीषण से विदित हुआ तब राम ने एक बाण से राक्षसराज की नाभि के अमृत का शोषण कर लिया और तीस बाणों से उसके शरीर को छिन्न-भिन्न कर दिया (रा० ६ १२५, सुन्द १ ७)।

वायुयान—जैसा कि अभी कहा जा चुका है युद्धों में रथों का उपयोग होता था। मेघनाद और रावण अपने रथों का संचालन भूमि तथा आकाश में कर सकते थे (रा० ६ ६४)। राम के पास कोई रथ न था किन्तु जब इन्द्र को यह ज्ञात हुआ कि राम को पैदल लड़ना पड़ता है तो उसने अपना चतुरश्व रथ मातलि सारथि के सहित भेज दिया (रा० ६ १११ १ २)। वह रथ तेज-पुंज दिव्य और अनुपम था उसके घोड़े अजर, अमर और मनोजव थे। राम ने इस दान को

स्वीकार कर लिया और युद्ध के पश्चात् तुरन्त लौटा भी दिया (रा० ६, ११३ १ २) देवगण अपने-अपने वायुयानों में बैठकर युद्ध को देखने आते, और जब कभी प्रसन्नता का अवसर आता तो पुष्पवर्षा करते। पुष्पक नाम का विमान कुबेर का था जिसे रावण छीन लाया था। युद्ध के अवसान पर राम-सीता और लक्ष्मण उसमें बैठकर और विभीषण को तथा कुछ प्रमुख ऋक्ष और वानरों को साथ लेकर, अयोध्या लौटे थे। तत्पश्चात् उन्होंने उसे उसके वास्तविक स्वामी के पास भेज दिया।

युद्ध का समय—युद्ध नित्य प्रति सूर्योदय से प्रारम्भ हो सूर्यास्त तक चलता था। रात्रि के अवसान और सूर्य के उदय के समय ऋक्ष और वानर लंका के चारों द्वारों पर एकत्र हो जाते थे (रा० ६, १०० २१)। प्रभात के समय राम अपने योद्धा हनुमान् अंगद आदि को भेजते थे (रा० ६ १०६, २)। रावण भी प्रातःकाल ही युद्ध का प्रारम्भ करता (रा० ६ १२४ ३)। किन्तु सूर्यास्त के समय समस्त युद्ध अवरुद्ध हो जाता था (रा० ६ ७५ २)। रावण का सारथि भी सायंकाल के समय रावण को घर ले जाता, (रा० ६ १२२ छन्द)। किन्तु कभी-कभी इस समय की अवहेलना भी हुई।

अजेय-यज्ञ—विजय का साधन केवल सेना न थी। तन्निमित्त यज्ञों की भी धरम सी जाती थी। विजय के निमित्त मेघनाद ने अजेय-यज्ञ का आयोजन किया, और वह महिष के रक्त-मांस की आहुति दे ही रहा था कि इतने में वानरों ने वहाँ जाकर यज्ञ को भ्रष्ट कर दिया, (रा० ६ ६७-६८)। रावण ने भी इसी प्रकार का यज्ञ प्रारम्भ किया था किन्तु वानरों ने आकर उसे भी खण्डित कर दिया (रा ६ १ ६ ११०।) दोनों बार यज्ञ-सम्बन्धी सूचना और उसके निराश का उपाय विभीषण ने बताया था, क्योंकि उसके मत से जो भी इस यज्ञ को परिपूर्ण कर लेता वह सर्वथा अजेय हो जाता, (रा० ६, १०६ १)।

धर्म-रथ—तुलसीदासजी राम के विजय में तनिक भी संदेह के लिए कभी प्रस्तुत नहीं। उसका निराश करने के लिए वे सर्वत्र व्यग्र एवं कटिबद्ध रहते हैं। यह सोचना कि इन्द्र प्रेषित दिव्य रथ से राम-विजय में सहायता की होगी तुलसीदास के लिए असह्य है। जब विभीषण ने राम का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि आप तो पैदल लड़ते हैं और आपका शत्रु रथारूढ़ है तो राम ने केवल यह उत्तर दिया 'सुनो मित्र विजेता के पास एक भिन्न प्रकार का रथ होता है। शौर्य और धर्म उस रथ के चक्र; सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताकाएँ, तथा बल विवेक दम और परहित ये चार उसके घोड़े हैं जो क्षमा दया और समता-रूपी डोरियों से रथ में जुते हुए हैं। ईश भजन उसका चतुर सारथी है वैराग्य ढाल है सतोष कृपाण है दान परशु है, बुद्धि शक्ति है विज्ञान कोदण्ड है, अचल-मन तिरस्त्राण है यम-नियम बाण हैं और विप्र-गुरु-पूजा कवच है इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं। जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ हो उसे जीतने के लिए शत्रु नहीं मिलते। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो वह वीर संसार रूपी महान् और अजय शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है (रा० ६ १०२-१०३)।

नीति—नीति ही समग्र धर्म नहीं है, वह धर्मांग है। राम को युद्ध करना और

शत्रुओं को मारना पड़ा। न तो उनका युद्ध सात्त्विक था और न उन्होंने दृष्टिमात्र से किसी का हनन किया। वे वैसा भी कर सकते थे क्योंकि वे जिह्वा के मृदुल एवं देखने में दर्शनीय थे, तथापि उनमें भुज-बल और दृढ़-संकल्प भी विद्यमान थे। उन्होंने और उनके भाई ने रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद का वध किया था क्योंकि उन्हें आवश्यकतानुसार रक्तपात के लिए भी कोई संकोच न था। वे नीति में अद्वितीय अभिभाषण-शील और व्यवहार-कुशल थे। उनका व्यवहार आदर से युक्त अथवा कृपा से पूर्ण रहता था। वे निरभिमान इतने थे कि छोटे से छोटे वानर का कुशल-क्षेम पूछ लेते (रा० ४ २४ २)। उन्होंने विभीषण का स्वागत ही नहीं किया अपितु युद्धान्त के पूर्व ही उसका राज्याभिषेक भी कर दिया अर्थात् उसका तिलक कर उसे लंकेश्वर से अभिहित किया (रा० ६,४६ १ ४ ३)। रावण की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने सुग्रीव हनुमान् और अंगद के साथ विभीषण को लंका के सिंहासन पर आरूढ़ कराने लक्ष्मणजी को भेजा था (रा० ६ १३१ २–४)। विभीषण ने जो बहुमूल्य उपहार भेजे उन्हें राम ने अस्वीकृत कर दिया (रा० ६ १४३ १ १४४)। तथापि उन्होंने उन सब वानरों का बड़ा उपकार माना जिन्होंने युद्ध में उनकी सहायता की थी और उनसे कहा था कि मेरी सफलता का कारण तुम्हारा प्रयत्न है (रा० ६ १४१ २)। वे अपने सम-सामयिक सभी प्रकार के साधु संत एवं ऋषि-मुनियों के सम्पर्क में रहते और उनसे अत्यन्त आदर के साथ निस्संकोच मिलते। अयोध्या को लौटते समय उन्होंने प्रयाग में भरद्वाज ऋषि से पुनः भेंट की (रा० ६ १५६ २)। यद्यपि वे भरत से अत्यन्त स्नेह करते थे तथापि निश्चयार्थ उन्होंने हनुमान्‌जी को प्रयाग से अयोध्या यह जानने के लिए भेजा कि राजधानी की वस्तु-स्थिति कैसी है (रा० ६ १५६ १)। उन्हें अपनी नगरी नदी और जनता से प्रेम था अतएव उन्होंने विभीषण सुग्रीव अंगद तथा अन्य वानरों से अपनी मातृ भूमि का भावपूर्ण उल्लेख किया (रा० ७ ११ १ ४)। गुरु वशिष्ठ से इन व्यक्तियों का परिचय कराते समय उन्होंने बताया कि 'ये मेरे गुरुदेव हैं इनका आदर करो' और गुरुदेव के समक्ष यह कहा कि "मैंने युद्ध में दानवों का जो दमन किया वह सब इनके प्रयत्न से' और क्योंकि इन्होंने अपने प्राण मेरे लिए संकट में डाले ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं' (रा० ७ १७ ४)। एक अन्य अवसर पर उन्होंने हनुमान् जी से कहा था कि तुम मुझे लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो (रा० ४ ४ ४)। उन्होंने वानर राज सुग्रीव एवं निषाद राज गुह को कई बार और भिन्न-भिन्न अवसरों पर अलग-अलग यह बताया कि तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो (रा० ४ २३ ४ ७ ४२, २)। राज्याभिषेक के उपरान्त उन्होंने प्रमुख वानर ऋक्ष आदि सहयोगियों को बुलाया और अत्यन्त कृपा-पूर्वक उन्हें अपने पार्श्व में बिठाकर कहा "तुम लोगों ने मेरी श्लाघ्यतम सेवा की है। मैं आपके मुँह पर आपकी क्या प्रशंसा करूँ। आपने मेरे कारण अपने घर के सुख की त्यागा अतएव आप लोग मेरे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरे छोटे भाई मेरा मुकुट मेरा वैभव मेरी पत्नी मेरा जीवन मेरा घर और मेरे प्रेमी-परिजनों में से कोई भी मेरी दृष्टि में इतना प्यारा नहीं जितने आप लोग। मैं कोई बात झूठी नहीं कह रहा मेरे ये भाव हार्दिक हैं। मनुष्यों का स्वभाव है कि वे अपने साथियों को अधिक चाहते हैं किन्तु मुझे तो अपने सेवकों के विशेष प्रेम है। हे सहयोगियो अब

घर लौट आओ वहाँ अटल श्रद्धा से मेरी पूजा करना और मुझे विश्व का सनातन और सर्वव्यापक कल्याण-कर्ता समझ कर मेरी भक्ति में अनुरक्त रहना' (रा० ७ ३४–३५)। राम ने अपनी विमाताओं के लिए विशेष आदर का प्रदर्शन किया और जब-कभी साक्षात्कार का अवसर आया तो कैकेयी के लिए उन्होंने विशेष आदर प्रदर्शित किया। जब उसने राम से वन जाने के लिए कहा तो वे उससे सस्मित-वदन विनम्र वचन बोले और वनवास से लौटने पर उससे सर्वप्रथम मिले (रा० ७ २१ १)। भरतजी चित्रकूट में मिलने गये तो राम ने राजमहिलाओं में सबसे प्रथम भेंट कैकेयी से की (रा० २ २८४ ४ २४५)। 'वाल्मीकि रामायण महाभारत' और अध्यात्म रामायण' के राम की अपेक्षा 'रामचरितमानस' के राम कहीं अधिक नीतिज्ञ हैं।

राज प्रथाएँ—राम चरित के अन्य लेखकों की भाँति गोस्वामीजी ने कुछ राज-प्रथाओं का उल्लेख किया है। सन्तति-कामना से पुत्रेष्टि और युद्ध-विजय की कामना से अश्वमेध-यज्ञों का अनुष्ठान होता था। दशरथजी के चारों पुत्र पुत्रेष्टि-यज्ञ से उत्पन्न हुए थे, (रा० १ २२० ३) तथा मेघनाद और रावण ने अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया था (रा ६ ६७ १ १०६, १४ १२०)। यद्यपि मनुजी ने आठ प्रकार के विवाहों का विधान किया है (३ २१) तथापि स्वयंवर विवाह स्वयंवर के रूप में क्षत्रियों के यहाँ अधिक प्रचलित था ऐसा प्रतीत होता है। विश्वमोहिनी (रा० १ १२७ ३) सीता (रा० १ २७२, १) दमयन्ती द्रौपदी, संयुक्ता आदि के स्वयंवर प्रसिद्ध हैं। अभिषेक बड़े आडम्बर से सम्पन्न किये जाते थे। इस अवसर पर राज पुरोहित सर्वप्रथम तिलक लगाता तदनन्तर प्रमुख ब्राह्मण (रा० ७ २६ १ ३)। धार्मिक कृत्य विधि-विधान पूर्वक होते थे (रा० २ ६-७ २)। राजमाताएँ शुभावसरों पर गीत गातीं और आमोद प्रमोद-पूर्वक अपने पुत्रों की आरती उतारतीं (रा० ७ २६ ३), भिक्षुकों को दान और ब्राह्मणों को उपहार दिये जाते (रा० ७ ३३ ५,) बन्दी उच्च बाहु होकर अपने स्वामियों का यशोगान करते (रा० १ २८१, ४, २८२)। जब बन्दी भाट, और मागध उच्च स्वर से वेद-पाठ अथवा विरुदावली-गान करते तो प्रजा धन घोड़े हाथी धन रत्न और वस्त्र भेंट करते थे, (रा० १ २६५ २२६, ३ २३२ ३)। विदूषक नाच गीत, हाव भाव अथवा हास्यजनक बातों के द्वारा मनोरंजन करते थे (रा० १ ३३४, ४)। महाराज को अभिवादन करते समय सचिव जय जीव कहा करते थे। विवाह से पूर्व बरातें बड़ी सज-धज के साथ निकलतीं यथा शिवजी की (रा० १ ११५, ४) और रामचन्द्रजी की (रा० १ ३३ ३३६ ३४१ ३ ४)। तुलसीदासजी ने पार्वती-परमेश्वर और सीता-राम के विवाहों का वर्णन रामचरितमानस' में बड़े उल्लास से किया है। वे इतने से ही सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' की रचना से अपनी तृप्ता को और अधिक तृप्त किया। अन्य अवसरों पर भी नगर-कीर्तन होते थे। राम के स्वागत के लिए अवध की राजधानी में, बड़ी सजधज और उमंग के साथ, सड़कों पर और वीथियों में होकर जन-समूह निकला था (रा० ७ १६, १-२)। विवाह अभिषेक अथवा स्वागत के अवसर पर सजावट होती अलंकृत अश्व खेल दिखाते (रा० १ ३३१ ३४८ ३) हाथी और रथ सजाकर प्रदर्शित किये जाते। महर्षियों और महा-मुनियों का आदर करने के निमित्त राजा अपना

आसन छोड़ कर आगे बढ़ता और अभ्यर्थना करता (रा० १ २३८ १)। ऋषि-मुनि भी अपने राजा का स्वागत बड़े प्रेम से करते। उनमें से कुछ की परिस्थिति तो ऐसी थी कि वे राजा का स्वागत उसी प्रकार कर सकते थे जिस प्रकार राजा राजा का यथा भरद्वाज जी ने भरत का। दशरथ के शुभागमन पर जनकजी ने स्वर्ण-थालों में मिष्टान्न, फल आभूषण सुवास वस्त्र और रत्न, तथा अनेक पशु-पक्षी भेंट किये थे (रा० १ ३१७ १ ३)। उस समय नगाड़े ढोल तम्बूरे झाँझ, तुरही और शंख बजे (रा० १ ३३६, १)। यह सुनकर कि राम वनवास से लौट आये हैं सब स्त्री-पुरुष प्रसन्नता से स्वागतार्थ दौड़ चले। महिलाएँ भी वस्त्र-मणि से सजी हुई और दही दूध रोचन फल फूल तुलसी आदि शुभ वस्तुओं को स्वर्ण-थालों में लेकर निकलीं (रा० ७ ८ ३)। मनुजी ने कहा है कि अभ्यागतों का सत्कार उनकी स्थिति के अनुसार आसन जल भोजन मधुर वचन आदि से (३ १०२ ११८) और राजा पुरोहित गुरु मित्र श्वशुर मातुल और स्नातक का मधुपर्क से करना चाहिए। पंच-प्राणों को पंच-ग्रास खिलाने के पश्चात् सीता-विवाह का भोज भव्य पण्डालों में हुआ। भोजन भक्ष्य भोज्य लेह्य और चोष्य इन चार प्रकारों का तथा मधुर, लवण अम्ल कटु कषाय और तिक्त इन छह रसों का था। छप्पन प्रकार के व्यंजन रत्न-जटित स्वर्ण के थालों में सजाकर परोसे गये थे (रा० १ ३६१, १ ३)। जनकजी ने जो दहेज और विदायी-पहार दिये थे कथन से बाहर हैं तथा विविध फल और मिठाइयों के साथ वस्त्राभूषण से सुसज्जित असंख्य दास और रसोइये दस सहस्र हाथी पच्चीस सहस्र रथ एक लाख घोड़े बहुत-सी गाय-भैंसें गाड़ी-भर स्वर्ण वस्त्र रत्न (रा० १ ३६५, २ ४)।

राजधानियों का वैभव—महाराज जनक और दशरथ की राजधानियाँ वैभव शालिनी थीं। जनकपुर सुन्दर नगर था जो सरोवर, बावड़ी नदी और वृक्ष से परिपूर्ण था। उसके चारों ओर फल-फूल के उद्यान थे मध्य में सुन्दर बाजार और रत्न जटित विशाल गलियाँ थीं। सड़कों और चौराहों पर लक्षाधिक जन का जिज्ञासा होता रहता था। कुबेर के समान धनी व्यापारी अपनी-अपनी वस्तुएँ बाजार में प्रदर्शित करते हुए दुकानों पर बैठते थे। स्त्री-पुरुष सभी मानसिक सुन्दर, पवित्र सभ्य, सुचरित्र धर्मात्मा पुण्यात्मा बुद्धिमान् और दक्ष थे। जनक जी के प्रासादों और घर कोठों को देखकर देवता भी चकित हो जाते थे। जनक दुर्ग संसार में अप्रतिम था। प्रासादों के भीतरी भाग की भित्तियाँ सुन्दर और आकर्षक थीं जिनमें अनेक प्रकार के रत्नजटित स्वर्ण-द्वार लगे हुए थे। नगर-द्वार विशाल और कलात्मक थे। परकोटा नाकादार से परिपूर्ण थे। सचिव सेनापति और योद्धाओं के भी आवास ऐसे थे जैसे राजा के। नगर के बाहर बहुत-से राजाओं ने अपने डेरे डाल रखे थे (रा० १ २४४ ३ २४७)। वस्तुतः नगर के स्तम्भ स्वर्णमय और सोने के आकार के थे जिनमें मणि के पत्ते और लाल के फल-फूल बने हुए थे। हरी-हरी मणियों के सीधे और पतले बाँस ऐसे बनाये गये थे कि पहचाने नहीं जाते थे ऐसी ही सुन्दर और स्वर्णिम पालों की लताएँ भी थीं। माणिक्य मरकत वज्र और हीरा आदि रत्नों को काट-छाँट कर कमल तथा भौंरे बनाये गये थे। तख्तों पर देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण थीं। मध्य मूर्तियों के पूरे हुए थे और नीलम के आम्र-वन स्वर्ण के मोर और रेशम की डोरी

से बँधे हुए मरकत के फल-गुच्छ, एवं मंगल कलश ध्वजा, पताका चँवर और मण्डप के मणि-दीप बहुत सुन्दर लगते थे। (रा० १, १२ १२१)।

नगर की सज्जा—अयोध्या और जनकपुर जैसे नगर उपयुक्त अवसरों पर अलंकृत किये जाते थे। राम-विवाह के उपलक्ष्य में कौशेय ध्वज-पताकाओं और चौरियों से सुन्दर बाजार सुसज्जित किये गये थे। इन अवसरों पर प्रत्येक मोड़ पर हल्दी, दूर्वा दधि, अक्षत और मालाओं से युक्त स्वर्ण-कलशों और तोरणों से घर मंगल-मय बना लिये जाते थे तथा चन्दन केसर, कस्तूरी और कर्पूर से निर्मित सुवासित द्रव्य से गलियों का सिंचन होता था। चन्द्रमुखी एवं सौभाग्यवती स्त्रियाँ षोडश शृंगारों से सजकर, जहाँ-तहाँ झुण्ड के झुण्ड मिलकर, मंजुल वाणी से मंगलगान करती थीं (रा० १ ३२८ ४, ३२९ १ २)। दशरथ के आगमन पर जनकपुर में भी इसी प्रकार की सजावट हुई थी। प्रत्येक व्यक्ति का अपना कुछ अलंकृत था, सार्वजनिक विपणि चंदापथ चतुष्पथ और नगर द्वार भी अलंकृत थे। सड़कों पर अरगजा से छिड़काव किया गया और जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पूरे गये। केतु-पताकाओं और तोरण-मण्डपों से बाजार ऐसा सुशोभित हुआ जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सुपारी केला आम मौलिश्री, कदम्ब और तमाल आदि वृक्षों के आसवास मणि जटित थे। घर पर मंगल-कलश स्थापित किये गये। सुमनाएँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर चलीं जो रूप-लावण्य में रति से भी सुन्दर और गान-वाद्य में सरस्वती के समान प्रतीत होती थीं (रा० १ ३०६ १ ४ ३७७)।

समाज-नियामक के लिए राज-सम्मान—प्राचीन भारत में राजा सब पर शासन करता था। उससे आशा की जाती थी कि वह ऐसा बुद्धिमान् धर्मात्मा और शक्ति शाली हो कि दीन-हीनों की सहायता कर सके (वि० ११९ १० ११)। तथापि ब्राह्मण विशेषतः विद्वान् वैसे ही स्वातन्त्र्य का उपभोग करते थे जैसा कि आधुनिक प्रजातन्त्र में लोक-सभा अथवा न्यायालय। अपने विद्या बल से होम-मंत्र-द्वारा वे देवताओं को प्रसन्न कर लेते थे (रा १ १९८ १)। वशिष्ठ और विश्वामित्र की आध्यात्मिक शक्ति अत्युच्च कोटि की थी। यही कारण था कि महाराज दशरथ और जनक उनका विशेष आदर करते और महत्त्वपूर्ण विषयों में उनसे परामर्श भी लेते। उदाहरणतः ज्योंही दशरथजी ने सुना कि विश्वामित्रजी मुझ से मिलने आ रहे हैं त्योंही वे कुछ विप्रों को साथ लेकर चल दिये और प्रणाम कर उन्हें लिवा लाये तथा उन्होंने अपने सिंहासन पर बैठा कर उनका सत्कार किया (रा० १ ३३८ १ २)। एक बार दशरथ ने वशिष्ठजी के घर जाकर उनके चरणों की वन्दना की और कहा कि मुझे सन्तति हीनता का कष्ट है (रा १ ३२० १ २)। एक बार पुनः जब उन्हें यह प्रतीत हुआ कि मैं वृद्ध हो चला तो गुरु-गृह जाकर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं अब अपना राजमुकुट अपने पुत्र राम को दूँ और इस विषय में उनके आशीर्वाद की अभिलाषा भी की (रा० २, १ १ ४)। इसी प्रकार राम भी ऋषि भरद्वाज वाल्मीकि ऋषि अगस्त्य आदि से वनवास काल में सप्रमाण मिले और लंका से लौटते समय प्रयाग में भरद्वाज जी से पुनः मिले थे। ऐसा ही भरत ने किया। सुग्रीव ने हनुमान् को राम का भेद लेने के लिए ब्राह्मण के वेश में भेजा था और राम ने भी उन्हें इसी वेश में भरत के पास यह जानने के

लिए भेजा था कि अयोध्या को क्या दशा है। ब्राह्मण भेष का यह कारण था कि वे लोग उन दिनों समझते थे कि ब्राह्मण सदा एवं सर्वत्र इसी प्रकार सुरक्षित है जिस प्रकार आधुनिक समय में रेजीडेंस। राम ने चित्रकूट में भरत जी को यह आश्वासन दिया था कि गुरु वशिष्ठ जी की कृपा से राजकार्य सुचारु रूप से चल जायगा। उनके शब्द थे "गुरु-प्रभाव राज्य का संचालन तथा लक्ष्मी प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी धन घर आदि सभी का रक्षण कर देगा गुरु-प्रसाद ही घर-वन में समाज-सहित तुम्हारा-हमारा रक्षक है। माता-पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन धर्म-रूपी पृथ्वी को धारण करने में इसी प्रकार समर्थ है जिस प्रकार शेष भगवान्। अतएव हे तात तुम वही करो' (रा० २, १०६ १२)। वशिष्ठ जी ने ब्राह्मणों से कहा "विप्रो यह दिन और घड़ी शुभ है, आज्ञा करो कि आज रामचन्द्र सिंहासन ग्रहण करें। इस प्रस्ताव से ब्राह्मण प्रसन्नता-पूर्वक सहमत हुए। जब आवश्यक आयोजन हो चुका तो राम ने ब्राह्मणों को प्रणाम करते हुए उस विशाल और भव्य सिंहासन को ग्रहण किया। तदनन्तर द्विजों ने वैदिक मन्त्रों का उच्चारण और देवताओं ने जयघोष किया। सर्वप्रथम वशिष्ठ जी ने तिलक लगाया तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने भी (रा० ७ २१ २४ २६ २१)। इस प्रकार भारत के मस्तिष्क ने महत्त्वपूर्ण अवसरों पर शासन-नीति के संचालन में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था।

कल्याणमय प्रजा-सत्ता—राजतन्त्र में इस प्रकार प्रजा-सत्ता के कल्याणमय बीज विद्यमान थे। जो समाजवाद भारत में चिरकाल से विद्यमान है वह अर्वाचीन पश्चिम के से भिन्न है। यहाँ तो राजा सेठ या और कोई धनिक दान के लिए द्रव्योपार्जन करता था। दान देना प्रत्येक के लिए पुण्य समझा जाता था। जिसके पास धन होता वह कूप या धर्मशाला बनवाता तड़ाग खुदवाता बाग लगवाता अथवा विद्यालय स्थापित कराता था। जो ऐसा करता वह वास्तव में उस संस्था का जन्मदाता और स्वामी समझा जाता किन्तु जो कुछ वह दूसरों के लिए करता उसका उपभोग वह स्वयं न करता था क्योंकि भारत में दानी अपने दान का स्वयं उपभोग नहीं करता है। जो धनिक बाग-बगीचे लगवाते थे उन्हें जनता के लिये खुले रखते थे न केवल सैर करने के लिए, किन्तु उसके फल पुष्पादि का उपयोग कराने के लिए भी। इंगलैंड में राजा उस वस्तु का भी स्वामी है जो संसार में विद्यमान नहीं, मेरा अभिप्राय "द क्विस्टन हम्पुड्स"[1] नामक भू-सम्पत्ति से है। किन्तु भारत में इसके विपरीत जमींदार जरेब के पास होता तो बहुत कुछ था किन्तु उसका स्वामित्व बहुत कम का था। दान देने में होड़ लगती थी, जिस कारण पूँजीपति और श्रमजीवी सन्निकट रहकर परस्पर प्रेम और आदर की भावना से एकता के सूत्र में आबद्ध थे। भारतवर्ष में मनुष्य की पहचान इस माप से नहीं थी कि अमुक ने बैंक में कितना रुपया एकत्र कर लिया है किन्तु इस माप से कि उसने समाज की कितनी सेवा की है। राजा ब्राह्मणों को भूल नहीं सकता था अर्थात् उनकी अवहेलना नहीं कर सकता था गुरु की विद्यमानता में उसका शासन गुरु के चरणों में था। आज का राष्ट्रपति तो सम्पादक और दल-नेता का आदर-सम्मान करता

१ द लामर्वेस्ट ऑव यूरोप विलियम वैनेट मुनरो, पृ २१३ मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, १९३४।

है। वर्तमान युग में दल का प्रतिज्ञा-पत्र 'दस आदेशों'[1] से अधिक मूल्यवान् है। प्रजा तन्त्र पहले था और अब भी है, किन्तु पहले आग्रह था गुण पर, अब है संख्या पर। संख्या के देखे तो राजा भोज और गंगा तेली में कोई अन्तर नहीं किन्तु गुण की दृष्टि से अन्तर बहुत है। जब प्रजा-सत्ता-रूपी घड़ी का लटकन गुण से संख्या की ओर अधिक बढ़ा त्योंही कोई न कोई विपत्ति आयी। एक साधारण व्यक्ति के अधिकार को सम्मानित बनाये रखने के कारण, राम को अपनी प्रियतमा को वनवास देना पड़ा। अपवाद निराधार था यदि राम चाहते तो उस पर कोई ध्यान न देते। किन्तु अपवाद का सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व से था अतः प्रजा-सत्ता के संख्यात्मक रूप पर भी उन्हें ध्यान देना पड़ा था।

रावण की मनमानी—रावण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नरेश था। उसके पास मन्त्री सचिव सब कुछ थे किन्तु वह महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उनकी बात मानता न था। उसने अपने भाई विभीषण और कुम्भकर्ण पत्नी मन्दोदरी मित्र मारीच मन्त्री शुक आदि की मन्त्रणा की अवहेलना की। उसके राजतन्त्र में प्रजासत्तात्मक सिद्धान्तों के प्रति कोई आदर न था न गुण के लिए, न संख्या के लिए। उसने ब्राह्मणों तक पर कर लगा दिया अतएव वह उनकी सहानुभूति को खो बैठा। दिव्य वरदानों से संपुष्ट (रा० ६ १६ २) उसके पास कल्पना-संपन्न सांसारिक सभी वैभव विद्यमान था। उसने वरुण कुबेर, वायु यम और दिक्पाल जैसी दिव्य शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली थी। तुलसीदास जी के अनुसार, उसका ऐश्वर्य शतेन्द्र-सम था अतएव निर्द्वन्द्व होकर वह राज्य का उपभोग करता था (रा० ६ २ ३) तथापि वह संसार का त्रास था और निरंकुश एवं अत्याचारी होने के कारण सब का दुःख-त्रास भी। अपने बाहुबल से अखिल विश्व को अधीन कर उसने एक भी व्यक्ति को स्वतन्त्र न छोड़ा। समग्र संसार पर अधिकार कर वह मनमानी करता था (रा० १ २१३)। उसके शासन में पुण्य घटने और अघ बढ़ने लगे अतएव भले लोग कष्ट पाते और बुरे विलास करते थे। वेदविहित-कार्य का सम्पादन उत्साह-पूर्वक होता। वीर-ब्राह्मणों के नगरों पुरों और ग्रामों में राक्षस आग लगाते। उनके कुकृत्यों की कोई सीमा न थी। जीवन धन और पत्नी की सुरक्षा का अभाव था माता-पिता के लिए आदर न था और न भाइयों के लिये प्रेम ही। ऐसे अत्याचारों से पीड़ित हो वह पृथ्वी काँप उठी और गाय का रूप धारण करके देवता और ऋषियों के साथ सृष्टि-कर्ता ब्रह्माजी के पास गुहार के निमित्त पहुँची जिसके परिणाम-स्वरूप भगवान् विष्णु राम-रूप में अवतीर्ण हुए, (रा० १ २१३ १८)।

राजा राम के नित्य और नैमित्तिक कर्म—राम बली और शक्तिशाली अस्त्र शस्त्रों में दक्ष शास्त्रों में पारंगत स्वभाव के मृदु, वाणी के मधुर, वज्र से कठोर और पुष्प से कोमल थे (रा० ७ ४२)। वे ब्राह्मणों के प्रति आदर-पूर्ण निम्नातिनिम्न के लिए स्नेह-पूर्ण शत्रुओं के लिए समाधीश एवं सब के लिए कृपालु थे। नित्य प्रातःकाल सरयू में स्नान कर के वे ब्राह्मण और ऋषियों की सभा में विराजते और वशिष्ठ जी से वेद और पुराण की कथाएँ सुनते थे। वे भाइयों के साथ भोजन, एवं नारद,

१ 'बाइबिल' ऐक्जोडस २।

सनकादि (रा० ७ ४८ ४६, १ गी० ७, २ १) का आतिथ्य करते। वे उत्सवों पर प्रजा से भेंट करते। उनसे मिलना सरल था (गी० ७ २१ १ २)। उन्होंने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और असंख्य दान-दक्षिणा से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया (रा० ७ ४६ १)। उनकी पत्नी सीताजी सदैव पतिव्रता और अनुरक्त रहीं। वे घर का छोटा-मोटा काम भी अपने हाथों करतीं तथा अभिमान और आत्म प्रवंचना से नितान्त रहित हो प्रासादों में कौशल्या तथा अन्य राजमाताओं की सेवा-सुश्रूषा करतीं और देवरों के सुख का ध्यान रखती थीं।

राम की राजधानी—राम की राजधानी अयोध्या बड़ी सुन्दर नगरी थी। इसके उत्तर में पहन-चला सरयू के तट पर विशाल घाटों की अविरल पंक्तियाँ सुशोभित थीं। इनमें से कुछ मात्र पुरुषों के लिए कुछ स्त्री-पुरुषों के लिए तथा शेष केवल वृद्ध पेय जल के निमित्त निर्दिष्ट थे जहाँ कोई स्नान न कर सकता था। सब से सुन्दर था राजघाट जहाँ चारों वर्णों के लोग आ-जा सकते थे। घाटों के ऊपर देव मन्दिर थे नदी के तट पर यत्र-तत्र यति-मुनि निवास करते और ध्यान-मग्न रहते थे। कुछ धर्मात्माओं ने तुलसी की क्यारियाँ लगा रखी थीं। नगर का बाह्य प्रदेश अत्यन्त आकर्षक था। बावड़ियाँ और ताल बहुरंग कमल और मनोहर सीढ़ियों से समन्वित थे। उद्यानों और उपवनों में मधुप और पिक अपने कलरव से मानो पथिकों का आह्वान करते थे (रा० ७ ५१ ५२)। नगर की शोभा अनिर्वचनीय थी। अयोध्या की अट्टालिकाएँ स्वर्ण और रत्नों से निर्मित थीं। नगर के चारों ओर एक परकोटा था। उस पर बने हुए विविध रंग के कंगूरे नवग्रह से प्रतीत होते थे जिन्होंने मानो अपनी सेना से अमरावती को घेर लिया हो। सड़कें अनेक रंगों के कागों की बनी हुई थीं। उज्ज्वल गगन चुम्बी श्वेत प्रासादों पर कलश अपने प्रकाश में सूर्य चन्द्रमा से भी बढ़कर प्रतीत होते थे। प्रासादों के झरोखे मणियों के बने थे। घरों में मणियों के दीपक शोभा देते थे। मूँगों की देहलियाँ और मणियों के खम्भे तथा मरकत-जटित स्फटिक भित्तियाँ ऐसी सुन्दर थीं कि मानो ब्रह्माजी ने ही उन्हें विशेष रूप से बनाया हो। प्रासादों के प्रांगण स्फटिक और द्वार के स्वर्ण-कपाट हीरकमय थे (रा० ७ ४६ ३०)। सायंकाल को प्रासादों की स्फटिक भित्तियों में दीपों और रत्न-जटित शिखरों के प्रतिबिम्ब ऐसे चमकते मानो आकाश के तारागण पृथ्वी पर आ बसे हों। (गी० ७ २ १ २)।

अयोध्या के चतुष्पथ और राजमार्ग सुन्दर थे। वाल्मीकि जी के अनुसार, उन पर सुगन्धित जल का छिड़काव होता था और वे पुष्पों से सुसज्जित बने रहते थे। बाजारों में वस्तुएँ बिना मूल्य के मिलती थीं। बजाज सर्राफ एवं अन्य व्यापारी अपनी दुकानों पर बैठे हुए, कुबेर के समान प्रतीत होते थे। नगर के बालक-वृद्ध पुरुष समान रूप से सुन्दर सदाचारी और सुखी थे (रा० ७ ५० ३०)।

नागरिकों की सम्पन्नता—रामराज्य में निर्धनता ढूँढ़े नहीं मिलती थी। वाल्मीकि जी के अनुसार, प्रत्येक भवन सप्तखण्ड का होता था। गोस्वामी जी लिखते हैं कि अयोध्या के घर-घर में सुन्दर चित्रशालाओं में रामचरित अंकित था। सभी लोगों के यहाँ पुष्पवाटिकाएँ थीं, जिनमें अनेक प्रकार की ललित लताएँ वसन्त की भाँति सदैव पुष्पित रहतीं, मधुकर गुंजन करते और विविध समीर बहता रहता था। बालकों ने बहुत

से पक्षी पाल रखे थे जो बोलने में मधुर और उड़ने में सुन्दर लगते थे और उन्होंने तोता-मैना को राम रघुपति आदि नाम रटा दिये थे। मयूर, हंस, सारस और कपोत घरों के ऊपर बैठते तथा मणि-भित्तियों और छतों पर अपनी प्रतिच्छाया को देखकर अनेक प्रकार से कूकते थे (रा० ७ ५० ५०, ४)।

राम का राजनीतिक सिद्धान्त—रामचन्द्र जी राजमद के अवगुणों से परिचित थे (रा० २ २११ ३)। अतएव उनके व्यवहार में नम्रता और सज्जनता थी। उनका सिद्धान्त था कि प्रजा को सुखी रखो और यही उपदेश उन्होंने भरत जी को दिया था (रा० २ ३०६, ३ ३०७)। वे समझते थे कि पुत्र पिता और माता की शिक्षा पर चलने से कोई हानि नहीं होती (रा० २ ३१५, ३)। एक बार उन्होंने गुरुओं को और ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर नगर-वासियों को मानव शरीर की महिमा, मनुष्य के कर्तव्यों संसार के कष्टों और माया की परिवर्तन-शीलता पर लम्बा उपदेश दिया तथा उनसे सुख आज्ञापालन की आशा की। उन्होंने अपने बारे में कहा था कि "मैं स्वार्थ द्वन्द्व और निराधार कल्पना से विमुक्त हूँ मैं तो उसके वश में हूँ जो किसी से न वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा न आशा रखे और न भय करे, तथा उसके जो कोई भी आरम्भ फल की इच्छा से नहीं करता जिसकी ममता घर में नहीं है जो मान-हीन पाप-हीन एवं क्रोध-हीन है जो निपुण और विज्ञानी है, और जो सत्संग करता, विषयों को तृणवत् समझता एवं शठता और कुतर्क से दूर तथा भक्ति से परिपूर्ण है" (रा० ७ ६५ १९)।

राम-राज्य का गौरव—जिसने भी राम-कथा लिखी उसने राम राज्य के गौरव का गान किया। रामचन्द्र जी ने ग्यारह सहस्र और पचास वर्षों तक राज्य किया ऐसा तुलसीदासजी कहते हैं यद्यपि 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार उन्होंने केवल दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। वाल्मीकि जी ने कहा है कि राम के सुशासन में प्रजा शान्ति और समृद्धि का उपभोग करती थी, वैमनस्य द्वन्द्व का रोष और दर्प की बाधाएँ दूर हो गयी थीं रोग और बाल-मृत्यु का नाम मिट गया था। प्रजा भी राम के गुणों का अनुकरण करती थी। फल-फूल शस्य और वैभव का आधिक्य था और वर्षा समय पर होती थी। व्यास जी ने भी महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि राम ने दस अश्वमेध यज्ञ किये और इन अवसरों पर प्रत्येक को छूट दे दी गयी थी कि योगियों में जाकर यथेष्ट अन्न प्राप्त कर ले। अध्यात्म रामायण के अनुसार राम राज्य में पृथ्वी सदा शस्य-श्यामला रही एवं वृक्ष सफल रहे मनुष्य सत्कर्मों में और स्त्रियाँ पतिव्रता। किसी को सन्तति की मृत्यु का अवसर न आया। सभीत रामचन्द्र जी बहुधा अपने भाइयों और वानरों के साथ विमान में बैठकर देश का निरीक्षण करते। वे शिविरों स्थापित करने के लिए उपदेश देते और स्वयं भी कई स्थानों पर शिव लिंग स्थापित कर चुके थे (रा० ७ ४ २१ २९)। किन्तु तुलसीदासजी का वर्णन सबसे बढ़कर है। उन्होंने राम राज्य की तुलना शरद से की है (रा० १ १२ ३) जबकि वर्षा के पश्चात् वातावरण न गर्म होता है न शीत तथा सभी वस्तुएँ शुद्ध और स्वच्छ प्रतीत होती हैं। राम राज्य सागरों से परिवेष्टित था और राम उसके एकच्छत्र विधायक थे। वाल्मीकि जी की प्रथम सर्ग में ऐसा सुझाते प्रतीत होते हैं कि अयोध्या

का सम्बन्ध सिन्ध कम्बोज वस्त्र आदि से भी था।

राम राज्य में तीनों लोक सुखी थे। कहीं किसी प्रकार का दुःख न था और न किसी को किसी से द्रोह था। सब प्रकार के भेद भाव नष्ट हो गये थे। लोग धर्मात्मा थे अतएव वे वेद और वर्णाश्रम के अनुसार जीवन व्यतीत कर (वि० ४४ ७-८) तथा डर शोक रोग से रहित हो पूर्ण सुख का अनुभव करते थे। ऐसा कोई न था जो त्रिविध ताप से पीड़ित हो। सभी अपने पड़ोसी से प्रेम करते और अपनी जन्म जात-स्थिति से सन्तुष्ट थे। सारे संसार में धर्म के चार स्तम्भ (अर्थात् तपस्या ज्ञान दया और दान) स्थापित हो चुके थे। कोई भी कभी पाप का स्वप्न न देखता। स्त्री पुरुष समान रूप से रामार्चा में निरत होकर उच्चतम स्वर्ग का सुख भोगते थे। अकाल-मृत्यु और रोग नाम-मात्र को न थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ और सुन्दर था। कोई भी निर्धनता शोक अथवा विपत्ति से ग्रस्त न था। न कोई अज्ञानी न कोई अभागा था। सभी लोग स्नेह-युक्त धर्मात्मा पुण्यात्मा चतुर और बुद्धिमान् थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी के गुणों की प्रशंसा करता और स्वयं भी विद्वान् बुद्धिमान् कुशल और सरल था (रा० ७ ४२, ४ ४३ २)। संसार में कोई भी व्यक्ति काल कम और स्वभाव-जन्य रोगों से पीड़ित न था (रा० ७ ४३ १)।

राम के शासन में क्या स्त्री क्या पुरुष सभी अपने-अपने धर्म में तत्पर थे। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ, घर एवं वन में उपलब्ध थीं। शिक्षा कृषि उद्यम व्यापार, नौकरी कला-कौशल आदि के द्वारा सम्पन्न थे राग-द्वेष से भय-क्रोध से तथा दमन या आभार से सर्वथा मुक्त थे। इनके लिए अवसर ही उत्पन्न न होता था क्योंकि सभी लोग अपने कार्यों में प्रेम-पूर्वक व्यवस्थित थे (वो० १८२ १८६)। यदि न्याय की माँग की जाती तो वह तुरन्त मिलता यहाँ तक कि कुत्ते और पक्षी के साथ भी न्याय किया जाता था (वि० १६५, ४० पी० ७ २४ २)।

स्वयं प्रकृति प्रसन्न प्रतीत होती थी। वन-वृक्ष फल-पुष्प-समन्वित थे। मत्त सिंह पक्षी और मृग अपने स्वभाव-जन्य वैर को भूलकर सामंजस्य से रहते थे। पक्षियों की कूक मृग-शावकों की निडरता वायु की शीतलता और सुगन्ध तथा मधुमक्खियों की गूँज सुखद थी। थोड़ी-सी भावना पर प्रत्येक लता और वृक्ष अपनी मधुरिमा प्रदान करते और गाय बड़ी प्रसन्नता से मार्ग में ही दुग्धपान करती थी। पृथ्वी शस्य से आवृत्त थी। पर्वतों में विविध रत्नों के आकर दृष्टिगोचर होते थे। प्रत्येक नदी शीतल शुद्ध और सुस्वादु जल से उमड़ती थी। समुद्र अपनी मर्यादा में रह कर अपने तट पर चमत्कार मुक्ता छोड़ जाता था। सरोवर कमलों से परिपूर्ण थे।

राम राज्य में बौद्धकाल की भाँति केवल अहिंसा को सारा महत्व प्रदान नहीं किया गया था। मनुजी ने धर्म के जो लक्षण बताये हैं उनमें अहिंसा का कोई स्थान नहीं यद्यपि अक्रोध में उसका समावेश हो सकता है। अहिंसा की अपेक्षा 'धर्म' की परिधि अधिक विस्तृत है। उनका सम्बन्ध अंगांगी है। राम को अनेक राक्षसों का रक्तपात करना पड़ा था और शान्ति-काल में भी उन्होंने एक व्यक्ति को संसार से विदा कर दिया जो अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के अधिकार पर अतिक्रमण

करना चाहता था (मो० ७ २४ २)। तथापि राम मूर्तिमान् प्रेम और परहित के अवतार थे अपने बाण का प्रयोग तभी करते थे जब उसकी अत्यन्त आवश्यकता होती। रक्षा के लिए उनके पास दुर्ग थे आयुध थे और योद्धा थे तथा सुटोने के लिए धान्य की खत्तियाँ भी। वे अपनी प्रजा को चाहते, और अपने माता पिता एवं भ्राताओं से प्रेम करते थे। अपनी पत्नी के प्रति भी उनका प्रेम अनन्य था किन्तु राज्य के हित में उसका भी त्याग कर देने में उन्हें कोई संकोच न हुआ। राम ने दिव्य राज्य के निवासियों के हृदय में आश्रय प्राप्ति के निमित्त आत्म-त्याग किया था।

निष्कर्ष—गोस्वामीजी के अनुसार राज्य धर्म निरपेक्ष नहीं था। उसका शासन वेद और शास्त्र की विधियों के अनुसार होता था क्योंकि उसका उद्देश्य था न केवल भौतिक उन्नति की प्राप्ति किन्तु समाजस्थ व्यक्ति की आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नति भी जैसा कि राम के उस उपदेश से स्पष्ट है जो उन्होंने अयोध्या-वासियों को दिया था। राजत्व दिव्य था और उसका उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र का था। एकतन्त्र में भी मंत्रियों के परामर्श का आदर होता था। परामर्शदाताओं में मंत्री एवं विद्वान् बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी पुरुषगण होते थे। नियम-विधान का अधिकार, जैसा कि श्री रामचन्द्र दुबे कहते हैं राजा को न था वह अधिकार तो वानप्रस्थियों का था जो सर्वथा निर्लोभ थे।[1] श्री रामचन्द्र द्विवेदी कहते हैं कि वाल्मीकि प्रजातन्त्र के, किन्तु तुलसीदासजी राजतंत्र के, समर्थक थे क्योंकि वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथ जी ने रामाभिषेक के निमित्त राज्य-परिषद् का आह्वान किया जिसने महाराज का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु तुलसीकृत रामायण के अनुसार महाराज मंत्रणा के लिए वशिष्ठजी के घर पधारे थे।[2] राम राज्य को एकतन्त्रात्मक' अथवा प्रजा सत्तात्मक एकतन्त्र अथवा एक प्रकार का 'पंचायत राज्य' कहा जा सकता है किन्तु जैसा कि महाकवि पाप ने कहा है श्रेष्ठ रूप में शासित राज्य ही श्रेष्ठ है। राम राज्य वास्तव में प्रजासत्तात्मक ही था क्योंकि उसका लक्ष्य था जन-कल्याण (भले ही राजा को उसके निमित्त कितनी ही असुविधा क्यों न हो), और उसमें वाणी और विचार के स्वातन्त्र्य के लिए गद्य की समान अवसर था। वह इस रूप में समाजवादी भी था कि यद्यपि सिद्धान्ततः सम्पूर्ण सम्पत्ति के स्वामी थे किन्तु प्रयोग और उपभोग में न्यून थे। व्यक्तिगत स्वामित्व का भाव सर्व-साधारण जनता अथवा उसकी कोई महती संख्या उठाती थी। इस प्रकार रामराज्य साम्प्रदायिकता के द्वेष भाव से और वर्ग-युद्ध के विष से सर्वथा मुक्त था; और इसका लक्ष्य था व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण जिसकी उपलब्धि कृपाण के सतत भय से नहीं किन्तु सहयोग, करुणा और प्रेम से सम्भव थी।

---

१. तुलसी मन्दाकिनी, भाग १ विभाग ५ श्री गोस्वामीजी और राजनीति, पृ० १५७
२. तुलसी सर्वस्व रत्नाकर, पृ० ४८८-४९१। वाल्मीकि २ २

परिशिष्ट

परिशिष्ट

१ 'रामचरितमानस' बाल काण्ड, पृष्ठ ४६५
२ 'रामचरितमानस' अरण्य काण्ड, पृष्ठ ४९७
३ 'दोहा रत्नावली', पृष्ठ ५११
४ 'रत्नावली चरित', पृष्ठ ५३३
५ कृष्णदास कृत वंशावली, पृष्ठ ५३९
६ गोपीश्वर विनोद पृष्ठ ५४०
७ 'तुलसी प्रकास', पृष्ठ ५४१
८ शर्त बाजिब उल अर्ज मौजा भमहगवां उर्फ़ राजापुर, पृष्ठ ५६६
९ डाइरेक्टर ऑव आर्काइव्ज के द्वारा सोरों-सामग्री के परीक्षण का विवरण, पृष्ठ ५६७
१० जोइंट डाइरेक्टर-जेनरल ऑव आर्केलोजी इन इण्डिया के द्वारा सोरों-सामग्री के परीक्षण का विवरण, पृष्ठ ५६८
११ अध्ययन सामग्री, पृष्ठ ५६९

बाल काण्ड

१६४३ वि०

(सब जानत प्रभु प्रभु) ता साई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
महादेव अस कारण राखा। भगति प्र× × × ×भाषा॥
ऐक अनीह अरूप अज माना। अस सच्चिदानंद परधामा॥
व्यापक बिस्व (रूप भगवा) ना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परम कृपाल प्रनत (अनुरागी)॥
जेहि जन पर ममता अत छोहू। जेहि करुना कर कीन्ह न कोहू॥
गई बहोरि करीब जिया(सू)। (स)रल सुबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहि हरि जस अस जानी। करत पुनीत हेत निज बानी॥
(ते)हि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहि हौं नाइ राम पद माथा॥
मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम जोहि भाई॥
दोहा अति अपार जे सरितवर जे नृप सेतु करहिं।
चढि पिपीलका परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहि॥२३॥
ऐहि प्रकार बलु मनहि दिपाई। कहि हौं रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि चरित बखाना॥
चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मोरे॥
कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भये जे हैं होहैं हि जे आगे। प्रनवौं सबहि कपट सब त्यागे॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जे प्रबंध बुध नहि आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अंदेसा॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सुनि सुहावनि टाट पटोरे॥
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहि अनु हरै सुबानी॥
दोहा सरिता कबित कीरति बिमल सो आदरहि सुजान॥
सहज बैर बिसराइ रिपु जो सुनि करहि बखान॥२४॥
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल मोर॥
करहु कृपा हरि जस कहौं पुनि पुनि करौं निहोर॥२५॥
कबि कोबिद रघुपति चरित मानस मंजु मराल॥
बाल बिनय सुनि सुधरि सबि मो पर होहु दयाल॥२६॥

---

१ इस छन्द से प्रारम्भ।

बंदौं मुनि पद कंज रामायन जिन्ह निरमयो ॥
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित (दूषन) न सहित ॥२७॥
बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ॥
जिन्हहि न सपनेहुं खेद (ब बरनत) रघुपति बिसद जस ॥२८॥
सोरठा बंदौं बिधि पद रेनु भव सागर जेहि कीन्ह जय ॥
(संतसुधा) ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥२९॥
दोहा : बिबुध बिप्र कुल गहि चरन बंदि कहौं क(रि जोरि ॥
होहु) प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥३०॥
पुनि बंदौं सारद सुर सरिता । यु(गल पुनीत मनो) हर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥
[1](दूध पितु मातु गुरु)स बानी । प्रनवौं दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सीय पी के । हित नि(ज पति स)व बिधि तुलसी के ॥
कलि बिलोकि जग हित हर गिरजा । साबर मंत्र जाल जि(न्ह सिरजा) ॥
अनमिल आखर अर्थ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥
सो महेस मो प(र अ)नुकूला । करहिं कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाई पसाऊ । बरनौं (रा)म चरित चित चाऊ ॥
भनिति मोर सिव कृपा बिभाती । ससि समाज मिलि मनहु सुराती ॥
जो यह कथा सनेह समेता । कहिहहिं सुनि हैहि साधु समेता ॥
होइहै राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥
दोहा सपनेहु साचेहु मोहि पर जो हर गौरि पसाउ ॥
तौ फुर होउ जो कहौं सबु भाषा भनिति प्रभाउ ॥३१॥
बंदौं अवधि पुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥
प्रनवौं पुर नर नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदौं कौसल्यादि माता । कीर (ति) जासु सकल बिधि त्राता ॥
प्रगटे जहँ रघुपति ससि चारू । बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
[1](द)सरथ राउ सहित सब रानी । सुकृति सुमंगल मूरति मानी ॥
करउं प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भएउ बिधाता । महिमा अवधि राम पितु माता ॥
दोहा बंदौं अवधि अपाल तव प्रेम जेहि राम पद ॥
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥३२॥
प्रनवौं पुरजन सहित बिदेहू । जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महुं राखउ गोई । राम बिलोकत प्रगटै सोई ॥
प्रनवौं भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू । लुबध मधुप इव तजै न पासू ॥

१ बंदौं दूध ।
२ दूध जल से ।

बंदौं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भएउ जसु जाका॥
(से)ष सहस सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सु सानुकूल रहु मोपर। म(पा पि)नु सौमित्रि गुना कर॥
रिपुसूदन पद कमल नामनी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
म(हावीर बि)नवौं हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥
दोहा प्रनवौं पवन कुमार खल बन पाव(क ज्ञान घन)॥
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥३३॥
कपि पति ऋच निसाचर (राजा। अंगदा)दि ज कीस समाजा॥
बंदौं सबके चरन सुहाए। अकथ सरीर राम जिन्हि पाए॥
[1](रघुपति चरन उपा)सक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदौं पद सरोज सब केरे। जे बिनु काज राम के (चेरे)॥
(सुक सनका)दि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवौं सबहि धरनि धरि सीसा। कर(हु कृपा ज)नु जानि मुनीसा॥
जन(क) सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके (कृपापात्र) जस मनाऊ। जासु कृपा निरमल मति पाऊ॥
मुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं (सबका)एक॥
राजिव नैन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक॥
दोहा गिरा अर्थ जल (बी)चि सम कहियत भिन्न अभिन्न॥
बंदौं सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥३४॥
बंदौं राम नाम रघुबर के। हेतु कृसानु भानु हिम कर के॥
बिधि हरि हर मय बेद प्रान से। अगुन अनूपम गुन निधान से॥
महा मन्त्र जोई जपत महेसू। कासी मुक्ति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
आदि कवि नाम प्रतापू। भएउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपे जे बिय के संभु भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर हिय को। किय भूषन तिय भूषन तिय को॥
नाम प्रभाव जानि सिव नीको। काल कूट फल दीन्ह असी को॥
दोहा बरषा रितु रघुपति भगति (तु)लसी सालि सु दास॥
राम नाम बर बरन जुग सावन भादौ मास॥३५॥
आखर मधुर मनोहर[2](र दो)ऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीको। राम लषन सम प्रिय तुलसी को॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

---

१. इस कथा आरम्भ होता है।
२. इस ६ से।

नर नारायन सरस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हिय हलधर से॥
दोहा एक छत्र एक मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ॥
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥२६॥
समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि (सुझा)धी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझहिं साधू॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप (ज्ञान न)हि नाम बिहीना॥
रूप बिसेषि नाम बिनु जाने। करतल गत न परत पहिचाने॥
सुमिरिय ना(म रूप बिनु) देखे। आवत हृदय सनेह बिसेषे॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न जात ब(खानी)॥
(अगुन) सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥
दोहा राम नाम मनि दीप (धरु जीह देहरी) द्वार॥
तुलसी भीतर बाहिर हुं जो चाहसि उजियार॥२७॥
नाम जीह जपि जागहिं जोगी। × × × ॥
(चले जात सिव सती)[1] समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता॥
सती दसा संभु की देखी। उर उपजा संदेह (बिसे)षी॥
संकर जगत बंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावहिं सीसा॥
तिन्ह नृप सुतन्ह कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुं प्रीति उर रहत न रोकी॥
दोहा ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद॥
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानहिं बेद॥७४॥
बिष्नु जु सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्री पति असुरारी॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवंता। उपजहिं जासु अंस तें संता॥
भ्रम संसय मन भएउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिय उर काऊ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गा[2]। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सो सब हेतु देव रघुबीरा। सेवहिं जाहि सदा मुनि धीरा॥
छंद मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जिहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोई सयन ब्यापक अजित भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुल मनी॥

---

१ मय दृष्ट।

[1](सो)एका नाथ न उर उपदेश जदपि कही सिव बार बहु ।
बोले बिहसि महेस हरि माया बल जानि जिय ॥ ७५ ॥
सो पुनरे मन अति संदेहू । तो किमि जाइ परीक्षा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं । जब लगि तुम्ह एहो मोहि पाहीं ॥
जैसे जाय मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतन बिबेक बिचारी ॥
चली सती सिव आयसु पाई । करैं बिचार करौं का भाई ॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना । दच्छ सुता कहु नहिं कल्याना ॥
मोरे कहे न संसय जाही । बिधि बिपरीत भलाई नाही ॥
होइए सो जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा । जपी सती जहँ प्रभु सुख धामा ॥
दोहा : पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता कर रूप ।
आगे ते चलि पंथ तेहि जिहि आवत नर भूप ॥ ७६ ॥
लछिमन दीख उमा कृत बेषा । चकित भए भ्रम हृदय बिसेषा ॥
कहि न स कछु अति गंभीरा । प्रभु प्रभाव जानत अति धीरा ॥
सती कपट जान्यो सुर स्वामी । सब दरसी सब अन्तर जामी ॥
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना । सोई सर्बग्य राम भगवाना ॥
(स)ती कीन्ह चहै तहउ दुराऊ । देखहु नारि प्रभाव सुभाऊ ॥
निज माया बल हृदय बखानी । बोले (बिहँ) सि राम मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ ब[2] (होरि क) हा वृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥
दोहा : राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति सं(कोच) ॥
सती सभीत महेस पह चली हृदय बड़ सोच ॥ ७७ ॥
मैं जाकर कर कहा न माना । निज अज्ञान राम पह आना ॥
जाइ करब अब सोई काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
जाना राम सती दुख पावा । निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा ॥
सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा ॥
जहँ चितवह तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव बिधि बिष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा । बिबिध बेष देख सब देवा ॥
दोहा सती बिधाती इन्दिरा देखी अमित अनूप ॥
जिहि जिहि बेष अजादि सुर तिहि तिहि तन अनुरूप ॥ ७८ ॥
देखे रघुपति जह तह जेते । सक्ति सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा । राम रूप नहिं दूसर देखा ॥

---

१ ऽ०ऽ १८ से ।
२ छि नवा ।

अब मोहि रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न देख घनेरे॥
सोई लखिमन सोई रघुबर सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कंप तनु सुधि कछु नाही। बचन मूदि बैठी मग माही॥
बहुरि बिलोकेउ मग उसारी। कछु नहि दीखत दच्छ कुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चली सती जहँ रहे गिरीसा॥
दोहा : गई सतीत महेस पद हंसि पूछी कुसलात॥
कीन्हि परीक्षा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥ ७९॥
सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीक्षा लीनि गुसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिय नाईं॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सबु जाना॥
बहुरि मायहि सिव नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत संभु सुजाना॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भएउ बिषाद बिसेषा॥
जो अब करौ सती सन प्रीति। मिटै भगति पथ होइ अनीति॥
दोहा परम प्रीत न जाइ तजि किए प्रेम बड़ पाप।
प्रगट न कहत महेस कछु हृदय अधिक संताप॥ ८०॥
तब संकर प्रभु पद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
एहि तन सतिहि भेट मोहि नाही। सिव संकल्प कीन्ह मन माही॥
अस बिचारि संकर मति धीरा। चले भवन सुमिरति रघुबीरा॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करै को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्य धाम प्रभु दीन दयाला॥
जदपि सती पूछा बहु भाती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥
दोहा (सती) हृदय अनुमान किय सब जानी सरबज्ञ।
कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अज्ञ॥ ८१॥
(सोर)ठा : जल पय सरिस बिकाहि देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई [1](परत ही) ॥८२॥
हृदय सोचु समुझि निज करनी। चिंता अमित जाइ नहि बरनी॥
कृपा निधि सिव कर(म) अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥
संकर रुष अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई॥
सतिहि सभीत जानि कृपा हेतू। कही कथा संकर सुख हेतू॥
बरनेउ पंथ बिभूति बिभागा। बिस्तर पहुप कैलासा॥

---

१ पृष्ठ १६।
२ नया पृष्ठ।

पुनि तहँ संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥
दोहा : सती बसहिं कैलास तब अधिक सोच मन माहिं।
मरमु न कोऊ जानि कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥ ८३ ॥
नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहौं दुख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पति बचन मृषा करि जाना ॥
सो फलु मोहि बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सो कीन्हा ॥
अब बिधि अस न बूझिअहि तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही ॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिरि भवानी ॥
जौं प्रभु दीन दयाल कहावा। आरत हरन बेद जसु गावा ॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी ॥
जौं मोरे सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू ॥
दोहा तौ सब दरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपति बिहाइ ॥ ८४ ॥
एहि बिधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुख भारी ॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी ॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगत पति जागे ॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सन्मुख संकर आसनु दीन्हा ॥
लगे कहन हरि कथा रसाला। दक्ष प्रजेस भए तिहि काला ॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दक्षहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा ॥
नहिं कोउ अस जन्मा जग माहीं। प्रभुता पाई जाइ मद नाहीं ॥
दोहा दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लाग बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ॥ ८५ ॥
किन्नर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा ॥
बिष्नु बिरंचि महेस बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥
सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना ॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥
सती पूछ सिव कहा भवानी। पिता जज्ञ सुनि कछु हरषानी ॥
जौं महेस मोहि आयसु देहौ। कछु दिन जाइ रहौ मिस एही ॥
पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी ॥
बोली सती मनोहर (र) बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी ॥
दोहा पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ (उ ऊ) पा सतन सादर देखन सोइ ॥ ८६ ॥
कहेहु नीक मोरेहु मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥

१ पृष्ठ २०।

'(दक्ष ग) कस निज सुता बुलाई। हमरे बैर तुम्हहिं बिसराई॥
ब्रह्म सभा हम सन दुख पावा। तिहिते अजहुं कर (अपमा) ना॥
जो बिनु बोले जाहु भवानी। रहै न सील सनेह सोकानी॥
जदपि मित्र पितु प्रभु गुर गेहा। जाई (य) बिनु बोले न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहा गए कल्यान न होई॥
भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यान उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बुलाए। नहि भलि बात हमारे भाए॥
दोहा कहि देखा हर जतन बहु रहै न दक्ष कुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्हि त्रिपुरारि॥ ८७॥
पिता भवन जब गईं भवानी। दक्ष त्रास काहु न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनी मिलीं बहुत मुसिकाता॥
दक्ष न कछु पुनि कुसलाता। सतिहिं बिलोकि जरेउ सब गाता॥
सती जाइ देखहु तब जागा। कतहुं न दीख संभु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेउ। पति अपमान समुझि उर दहेउ॥
पाँखिन्ह दुख न हृदय अस ब्यापा। जस यह भएउ महा परितापा॥
जदपि जग दारुन दुख नाना। सब ते कठिन जाति अपमाना॥
समुझि सो सतिहि भयो अति क्रोधा। बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा॥
दोहा सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोली बचन सक्रोध॥ ८८॥
सुनहु सभासद सकल मुनीसा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहइ सब काहू। भली भाँति पछिताब पिता हू॥
सत संभु अपवादा। सुनिय कहा तहँ असि'(ग)र जाता॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न तु चलिय पराई॥
जगदातमा महेस त्रिपुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंद मति निंदत तेही। दक्ष सुक्र संभव यह देही॥
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्र मौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोगानल तनु जारा। भएउ सकल मख हाहाकारा॥
दोहा सती मरन सुनि संभु गन लगे करन मख बीच।
जग्य बिध्वंस बिलोकि प्रभु रच्छा कीन्हि मुनीस॥ ८॥
समाचार जब संकर पाए। बीर भद्र करि कोप पठाए॥
जग्य बिध्वंस जाय तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥
भे जग बिदित दक्ष गति सोई। जस कछु संभु बिमुख कह होई॥
यह इतिहास सकल जग जाना। तातें मैं संछेप बखाना॥
सती मरत हरि सन बर माँगा। जन्म जन्म सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिम गिरि गृह जाई। जन्मी पारबती तनु पाई॥

---

१ बना पृष्ठ।
२ पृष्ठ ६१ से।

जब ते उमा सैल गृह जाई। सकल सिद्धि संपति तहँ छाई॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सु आसन कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥
दोहा सदा सुमन फल सहित द्रुम सब नव नाना भाँति॥
प्रगटी सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥ ६० ॥
सरिता सब पुनीत जल बह ही। पम मृग मधुप सुखी सब रह ही॥
सहज बैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥
सोहे सैल गिरिजा गृह आए। जिमि जल राम भगति के पाए॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥
नारद समाचार सब पाए। कौतुक[1] (करि) गिरि गेह सिधाए॥
सैल राज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा॥
नारि सहित मुनि पद सिरु(र ना)वा। चरन सलिल सब भवन सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥
दोहा त्रिकालज्ञ सबज्ञ तुम गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदय बिचारि॥ ६१ ॥
कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥
सब लक्षन संपन्न कुमारी। होइ ह संतति पतिहि पियारी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही॥
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा॥
सैल सुलक्षन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥
दोहा जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त रेख॥ ६२ ॥
सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारद हू यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥
सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचन हृदय धरि राखा॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखी उछंग बैठि पुनि जाई॥
झूठि न होइ देव ऋषि बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी॥
उर धरि धीर कहै गिरि राऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥
दोहा कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोऊ न मेटन हार॥ ६३ ॥
तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जो देव सहाई॥

१ पुष्ट नया।
२ पुष्ट २२ से।

अस बर दै परमेश्वर तम्हु पाही। मिलिहि उमहि कछु संसय नाही॥
बरे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पह मैं अनुमाने॥
जो बिबाह संकर सम होई। दोषी गुण सम कह सबु कोई॥
जो अहि सेज सयन हरि करही। सुष तिन्ह कह कछु दोष न परही॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाही। तिन्ह को मंद कहत कोउ नाही॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहही। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहही॥
समरथ कहुँ नहि दोस गुसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥
दोहा जो अस हठि सिव करहि नर बस बिबेक अभिमान।
परहि कल्प भरि नर्क महुँ जीव कि ईस समान॥ १४॥
सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहु न संत करहि तेहि पाना॥
सुरसरि मिले (सोन) नद जैसे।
संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाह सब बिधि कल्याना॥ ॥
'(दुग)राध्य ये अहहि महेसू। आपुनोप पुनि किए कलेसू॥
जो तपु करै कुमारि तुम्हारी। (या) बिधि मेटि सकै त्रिपुरारी॥
जदपि बर अनेक जग माही। एहि कह सिव तजि दूसर नाही॥
बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपा सिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फलु बिनु सिव अवराधे। लहिए न कोटि जोग जप साधे॥
दोहा अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरजहि दीन्ह असीस।
होइ हि यह कल्याण अब संसय तजहु गिरीस॥ ९५॥
अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गएऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं दुखे मुनि बयना॥
जो घर बर कुल होइ अनूपा। करिय बिबाह सुता अनुरूपा॥
सुंदर सुंदर सब गुन निधि बोला। सुंदरि लहइ पंच कहहिं सब लोगा॥
सोइ बिचार पति करहु बिबाहू। जेहि न होइ पाछे पछिताहू॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माही। नारद बचन अन्यथा नाही॥
दोहा: प्रिया सोचु परिहरहु सब सुमिरहु श्री भगवान।
पारबती निमएउ दिठि सोई करहि कल्यान॥ ९६॥
अब जो तुम्हहि सुता पर नेहू। तो अस जाइ सिखावन देहू॥
करै सो तप जेहि मिलै महेसू। आन उपाय न मिटहि कलेसू॥
नारद बचन सबहि सहेसू। सुंदर सब गुन निधि बृष केतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकर अकलंका॥
सुनि पति बचन हरषि मन माही। गई तुरत उठि गिरिजा पाही॥
उमहि बियोगि बचन भरि बानी। सहित सनेह गोद बैठारी॥

१ पाठ न्या।
२ ६ ६ ६ ६।

बारहिं बार लेइ उर लाई। गद गद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बज्ञ भवानी। मातु सुखद बोली मृदु बानी॥
दोहा सुनहु मातु मैं दीप अस सपन सुनावो तोहि।
सुन्दर गौर सु बिप्रबर अस उपदेसहु मोहि॥ ९७॥
करहु जाइ तप सैल कुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तप सुख प्रद दुख दोष नसावा॥
तप बल रच प्रपंच बिधाता। तप बल बिष्णु सकल जग त्रा(ता)॥
तप बल संभु करहिं संहारा। तप बल सेष धरै महि भारा॥
तप अपार सब ब(ठि भ)वानी। करहि जाइ तप अस जिय जानी॥
सुनत बचन बि'(सम्मि)त महतारी। सपना सुनाइहि गिरिहि हकारी॥
मातु पितहि बहु बिधि समुझाई। च(ली) उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता घर माता। भए बिकल मुख आवै न बाता॥
दोहा बेद सिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहै प्रबोधै पाइ॥ ९८॥
उर धरि उमा प्रान पति चरना। जाइ बिपिन लागी तपु करना॥
अति सुकुमारि न तन तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बर्ष गमाए॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाति महि परै सुखाई। तीनि सहस संबत सो खाई॥
पुनि परि रहेउ सुखाने परना। उमहि नाम तब भएउ अपर्ना॥
देखि उमहि तप खिन्न सरीरा। ब्रह्म गिरा भई गगन गंभीरा॥
दोहा भएउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहि तिपुरारि॥ ९९॥
अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
आवै पिता बुलावन जबही। हठ परिहरि घर जाएहु तबही॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त ऋषीसा। तब बागेहु प्रमान बागीसा॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु के चरित सुहावा॥
जब ते सती जाइ तनु त्यागा। तब ते सिव मन भएउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहं तहं सुनहिं राम गुन ग्रामा॥
दोहा चिदानंद सुख धाम सिव बिगत मोह मद मान।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिरान॥ १०० ॥

---

१ नया पृष्ठ।
२ पृष्ठ २४ से।

कतहु मुनिन उपदेसहिं ज्ञाना। कतहु राम गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगति बिरह दुख दुखित सुजाना॥
एहि बिधि गए कछु काल बीती। मिलत नहीं होइ राम पद प्रीती॥
तेहि अवसर संकर कर देवा। अबिचल हृदय भक्ति कै सेवा॥
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकर हि स(रा)हा। पुनि बिनु बचन पून को निबाहा॥
बहु बिधि राम सिवहिं समुझावा। पारबती कर जन्म (सुना)वा॥
अति पुनीत गिरि की करनी। बिस्तार सहित कृपानिधि बरनी॥
दोहा अब बिनती[1] (मम सु)नहु सिव जौ मोपर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहिं यह मोहि मागे देहु॥ १॥
कह सिव जदपि उ(चि)त अस नाही। नाथ बचन पुनि मेटि न जाही॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥
मातु-पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भगति बिबेक धर्म जुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखहु जो कहेऊ॥
अंतर ध्यान भए अस भाखी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्त ऋषि सिव पहं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥
दोहा पारबती पहं जाइ तुम्ह प्रेम परीक्षा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठाएहु भवन दूरि करेहु संदेह॥२॥
सिव के बचन मुनिन्ह सुनि काना। चले नवा कानन गिरि नाना॥
ऋषिन्ह गौरी देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बासे मुनि मुनि सैल कुमारी। करहु कवन कारन त्रिपुरारी॥
तिन्हहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सब बचन सब कहहू॥
सुनत ऋषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी॥
कहत परम न अति सकुचाई। हृदयहु गुनि हमारि जड़ताई॥
मन हठ परा न सुनै सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोइ जानी। बिनु पंथन हम चहत उड़ानी॥
देखहु मुनि अबिबेक हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥
दोहा सुनत बचन बिहसे ऋषय गिरि संभव तव देह।
नारद कर उपदेस सुनि कहहु बसहु किन गेह॥ ३॥
दच गुनहु उपदेसहिं जाई। तिन्ह पुनि भवन न देखा आई॥
चित्र देखु कर कर कहा जाना। कनक कलस पर पुनि अस हाना॥
नारद सिव जे गुनहिं न भारी। अवगति होइ तजि भवन भिखारी॥

---

[1] मम पुनि।
[2] हृदय रह ते।

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चहु कीन्हा॥
तिहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज्ज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥
कहहु कवन सुख अस बर पाए। भली भूलि ठग के बौराए॥
पंच कहें सिव सती बिबाही। पुनि अब टेरि परा कहि ताही॥
दोहा अब सुख सोवहि सोच नहिं भीख मागि भव खाइ।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाइ॥४॥
अजहुँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहु बरु नीक बिचारा॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बर तुम्ह मिलि सब रानी। सुनत बिहसि कहु बचन भ[1](बानी)॥
सत्य कहेउ मुनि मम तनु पूजा। हठ न तुम्ह छूटे बय देहा॥
मनकी पुनि पपात ते होई। बारेउ (स)हज न परिहर सोई॥
नारद बचन मैं न परिहरऊ। बसी भवन उजरी नहिं डरऊ॥
गुरु के बचन प्रीति जिन नाही। सपनेउ सुखम न सुख मति तेही॥
दोहा महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जाकर मन रम जाहि सन ताहि ताही सो काम॥ ५॥
जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीसा। सुनतेउ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्म संभु सन हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥
जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किए बरेषी॥
तौ कौतुकवन्ह आसन नाही। बर कन्या अनेक जग माही॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तु रहउँ कुमारी॥
तजौं न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥
मैं पाँइ परी कहै जननी। तुम्ह न मानहु मोरि बिनती॥
देखि प्रेम बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥
दोहा तुम माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषित गातु॥ ६॥
जाइ मुनिन हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरिजा गृह आए॥
बहुरि सप्त रिषि सिव पहं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्त रिषि गवने गेहा॥
मन करि बिचार[2](क) संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥
तारकु असुर भएउ तिहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहि सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

१ पृष्ठ भया।
२ द रर मे

दोहा सब सन कहा सुभाइ बिधि बसुध निधन तब होइ।
संभु सुक्रत संभूत इहि सो जीतै रन सोइ ॥७॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जन्म जा हिमाचल गेहा॥
तिहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥
पठवहु काम जाइ सिव पाही। करै छोभ संकर मन माही॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवावब बिबाहु बरि आई॥
इहि बिधि भलेहि देव हित होई। मत अति नीक कहै सबु कोई॥
अस्तुति सुरन कीन्हि अस हेतू। प्रगटेउ बिषम बान झष केतू॥
दोहा सुरन कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
(संभु) बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥
तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। सुनि (कह) परम धन उपकारा॥
पर हित लागि तजहिं जो देही। संतत संत प्रसंसत तेही॥
अस कहि × × । × × × × ॥
(पन्ना अभाव) × × (मा) है
दोहा जो मूढ़ त(मय) (बहा) बिनि मारि मारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित (महि)मा सुनत त भ्रमति बुधि अति मोरि ॥१३३॥
जो (अमीह ब्या)पक बिभु कोउ। कहहु बुझाई नाथ मोहि सोउ॥
(अज) जानि रिस उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अतिसय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा बिनवौं कर जोरे॥
प्रभु मोहि तब बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह मोहि नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु (पु)नीत राम गुन गाथा। भुजग राज भूषन सुर नाथा॥
दोहा बंदी पद बंदनि सिर बि(नय) करौं कर जो(रि)॥
बरनौं रघुपति बिमल जस जो सिवांत निचोरि ॥१३४॥
जदपि जोषिता नाथ अधिका(री। ना)री मन क्रम बचन तुम्हारी॥
दूती तव न सापु दुरावहि। भारत अधिकारी जह पावहि॥
अति आरति पूछौं सुर राया। रघुबर कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाही। (रा)जु तजा जो (दूषन) काही॥
बन बसि कीन्ह चरित अपा(रा)। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
दोहा बिधि हरि हर माया बलु। (× ×)बरनहु मुनि होहु सनेहु॥

रा[1](ज) बैठि बीन्ही बहु सीसा। सकल कहौ संकर सुष सीसा॥
दोहा बहुरि कहहु करुना अयन कीन्ह जो अचरजु राम॥
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम॥१३५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बषानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जौं प्रभु मैं पूछा नहि होई। सोउ दयाल राषउ जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बषाना। आन जीव पाषर कहु जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलकि लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुषु पावा॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥
भयउ ग्यान रत बंद सुष पुनि मन बहोर कीन्ह॥१३६॥
पूछेहु सरब होई बिनु ग्याना। जिमि भुजग बिनु रज पहिचाना॥
जिहि जाने जग जाई हेराई। जागे सपन सपन भ्रम जाई॥
बरी ग्यान सम सोई रामू। सिव सुनंद बंद तप जिस नामू॥
मायन भवन अमंगल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रि पुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सब(ल) लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हेहु[2] प्रस्न जगत हित लागी॥
दोहा राम कृपाते पारबति सपनेहु तव मन माहिं॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिषा कछु नाहिं॥१३७॥
तदपि असंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंथ कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान ते प्रानी॥
जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीभ सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुषखानि॥
संत सभा सुर सोक सम को न सुनै अस बानि॥१३८॥
राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरि राज कुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जन्म कर्म अगनित श्रुति गाए॥

१ तथा पुस्त २ कन्हा कन्हाउ

दोहा सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु भजत संभव रहि सो जीतै रन सोइ ॥७॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जन्म जा हिमाचल गेहा॥
तिहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥
पठवहु काम जाइ सिव पाहीं। करै छोभ संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिवाहु बरि आई॥
इहि बिधि भलेहिं देव हित होई। मत अति नीक कहै सबु कोई॥
अस्तुति सुरन कीन्हि अस हेतू। प्रगटेउ बिषम बान झुष केतू॥
दोहा सुरन कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
(सं)भु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥
तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति (कह) परम धर्म उपकारा॥
पर हित लागि तजहिं जो देही। संतत संत प्रसंसत तेही॥
अस कहि × × । × × × × ॥
(पन्ना अस्पष्ट) × × (ध्य) ई
दोहा जो नृप त(नय) (ब्रह्म) किमि मारि मारि बिरह अति मोरि।
देखि चरित (महि)मा सुनत त भ्रमति बुधि अति मोरि ॥१३३॥
जो (अनीह ब्या)पक बिभु कोउ। कहहु बुझाई नाथ मोहि सोउ॥
(अज) जानि रिस उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोई करहू॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अतिसय बिकल न तुम्हहिं सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥
अजहुँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा बिनवौं कर जोरे॥
प्रभु मोहि तब बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह मोहि नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहत (पु)नीत राम गुन गाथा। भुजग राज भूषन सुर नाथा॥
दोहा बंदौ पद धरि धरनि सिर बि(नय) करौं कर जो(रि)॥
बरनौं रघुपति बिमल जस श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१३४॥
जदपि जोषिता मन अधिका(री । बा)सी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
तुम्ही तरब न साधु दुरावहिं। भारत अधिकारी जह पावहिं॥
अति आरति पूछौं सुर राजा। रघुबर कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाही। (रा)जु तजा जो (दूषन) नाही॥
बन बसि कीन्ह चरित्र अपा(रा)। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
सीता बिरह कहो कुल केतू। (× ×)चरित्र पुनि होहु सचेतू॥

रा[1](ज) बेटि कीन्ही बहु लीला। सकल कहौं संकर सुप सीला॥
दोहा बहुरि कहहु करुना भवन कीन्ह जो अचरजु राम॥
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम॥१३५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखेउ जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पावर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलकि लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुखु पावा॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥
भगत ब्यान रस डंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह॥१३६॥
झूठेउ सत्य होइ बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदौं बाल रूप सोइ रामू। सब सुलभ जब तब जिस नामू॥
मनल भवन अमनल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हेहु[2] प्रस्न जगत हित लागी॥
दोहा राम कृपाते पारबति सपनेहुं तव मन माहिं॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिषया कछु नाहिं॥१३७॥
तदपि असंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंथ कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान ते प्रानी॥
जो नहिं करहिं राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषानी॥
गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुखदानि॥
संत सभा सुर सोक सम को न सुनै अस जानि॥१३८॥
राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरि राज कुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जन्म कर्म अनगनित श्रुति गाए॥

---

१ नया पृष्ठ २ कीन्हा कृपाल

दोहा सब सन कहा पुकारि बिधि बनुज निधन तब होइ ।
शंभु सुकल संभूत हहि सो जीतै रन सोइ ॥७॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईस्वर करहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा । जन्म जा हिमाचल गेहा ॥
तिहि तनु कीन्ह संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
जदपि अहै असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥
पठवहु काम जाइ सिव पाही । करै क्षोभ संकर मन माही ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिवाहु बरि आई ॥
इहि बिधि भलेहि देव हित होई । मत अति नीक कहै सबु कोई ॥
अस्तुति सुरन कीन्हि अस हेतू । प्रगटेउ बिषम बान झष केतू ॥
दोहा सुरन कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
(संभु) बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा । सुनि (कह) परम धन उपकारा ॥
पर हित लागि तजहि जो देही । संतत संत प्रसंसत तेही ॥
अस कहि × × × × × × ॥
(पन्ना अज्ञात) × × (झ्र) है
दोहा जो मन त(नय) (कह) किमि मारि मारि बिरह मति मोरि ।
दवि चरित (महि)मा सुनत त अमति बुधि अति मोरि ॥१३३॥

जो (अनीह ब्या)पक बिभु कोउ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोउ ॥
(अज) जानि रिस उर धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोई करहू ॥
म बन दीपि राम प्रभुताई । अतिसय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि असिन मन बोध न आवा । सो प्रभु भली भांति हम पावा ॥
अजहु कछु संसय मन मोरे । करहु कृपा बिनवौं कर जोरे ॥
प्रभु माहि तव बहु भांति प्रबोधा । जाय सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥
तब कर अस बिमोह मोहि नाहीं । राम कथा पर रुचि मन माहीं ॥
कहहु (पु)नीत राम गुन गाथा । सुजस राज भूपन सुर नाथा ॥
दोहा बंदी पद बरि धरनि सिर बि(नय) करी कर जो(रि) ॥
बरनी रघुपति बिमल जस श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१३४॥

जदपि जोषिता मन अधिका(री । ना)री मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
दूती तव न लागु दुराबहि । भारत अधिकारी कहु पावहि ॥
अति आरति पूछी सुर राया । रघुबर कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सा कारन कहहु बिचारी । निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानकी बिबाही । (रा)जु तजा सो (दूषन) काही ॥
बन बसि कीन्ह चरित अपा(रा) । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
सोता बिनै कहो सुर हेतू । (× ×)बरनहु मुनि होइ रघुकेतू ॥

रा[1](ज) हँसि कीन्ही [illegible] लीला। सकल कही संकर सुप सीला॥
दोहा बहुरि कहहु करुना यतन कीन्ह जो अवधेसु राम॥
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम॥१३५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरो राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखउ जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पावर कहु जाना॥
प्रस्न उमा के सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलकि लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुखु पावा॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥
भरत ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह॥१३६॥
झूठेउ सत्य होइ बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे यथा सपन भ्रम जाई॥
बंदौं राम रूप सोई रामू। सिव सुकृत जप तप जिस नामू॥
भगत भवन भंजन दुख हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान न(हिं कोउ) उपकारी॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल(स) लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हेहु[2] प्रस्न जगत हित लागी॥
दोहा राम कृपाते पारबति सपनेहु तव मन माहिं॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥१३७॥
तदपि असंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंथ कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुखदानि॥
संत सभा सुर लोक सम को न सुनै अस जानि॥१३८॥
राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरि राज कुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जन्म कर्म अनगनित सुहाए॥

---

1. मुख पाठ 2. कीन्हेउ प्रस्न

यथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥
तदपि यथा श्रुति जसि मति मोरी। कहि ही निजि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रश्न तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई॥
एक बात नहि मोहि सुहानी। जदपि मोह बस कहेउ भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम(को)ई आना। जेहि श्रुति गाव धरहि मुनि ध्याना॥
दोहा कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह[1] पिसाच॥

पाखंडी हरि पद बिमुख जानहि झूठ न साच॥१३९॥
अस अकोबिद अंध अभागी। काई मुपुर मुकुर मल लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहु संत सभा नहि देषी॥
कहहि बेद असमंजस बानी। बिन्हहि न सुख लाभ नहि हानी॥
मुकुर मलिन अरु नैन बिहीना। राम रूप देषहि किमि दीना॥
जिन्ह के अनुन न सगुन बिबेका। जल्पहि कल्पहि बचन अनेका॥
हरि माया बस जग भ्रमाही। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहि बोलहि बचनु बिचारे॥
जिन्ह किय महा मोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहि काना॥
दोहा अस निज हृदय बिचारि तजु संसय भजु राम पद॥

सुनु गिरि राज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥१४०॥
सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सो सोई। जल हिम उपल बिलग नहि जैसे॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहि तहं मोह निसा लव लेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहि तहं पुनि बिग्यान बिहाना॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमित अभिमाना॥
राम ब्रह्म ग्यापक जग जाना। [2](परमानंद परेसु पुराना॥
दोहा पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ॥

रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिवं नाएउ माथ॥१४१॥
निज भ्रम नहि समुझहि अभागी। प्रभु पर मोह धरहि जड़ पागी॥
यथा गगन घन पटल निहारी। झांपेउ भानु कहहि कुबिचारी॥
चितवत कोचन अतुलित लाए। प्रगट युगुल ससि तिन्ह के भाए॥
उमा राम बिषईक अस मोहा। नभ तम धूरि धूम जिमि सोहा॥
बिषय करत सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवध पति सोई॥

---

१ नया पृ०
(५-७ अधा (जगमोहन से प्रकाश)

जगत प्रकास प्रकासिक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्य तातें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
दोहा : रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि॥
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥१४२॥
एहि बिधि हरि जग ब्यापित रहही। जदपि असत्य देत दुख अहही॥
जो सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सो कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
दोहा जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सो दसरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान॥१४३॥
काया मनुज कहत असलीला। जासु नाम बल करौं बिसीला॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥
बिबसहु जासु नाम नर कहही। जन्म अनेक रचित अघ दहही॥
सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिद्या तव जानी॥
अस संसय आनत मन माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गइ सब कुतर्क की रचना॥
भै रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥
दोहा पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोली गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥१४४॥
ससि कर सम मुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल संसय सब हरेउ। राम स्वरूप जानि मोहि परेउ॥
नाथ कृपा अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जो मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म ब्यापक अबिनासी। सब रहित सब उपर बासी॥
नाथ धरेहु नर तन केहि हेतू। मोहि समुझाहि कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। राम कथा पर प्रीति पुनीता॥
दोहा हिय हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान॥

---

१. तथा पुष्ट
२. तथा पुष्ट

सोरठा सुनु सुभ कथा भवानि राम चरित मानस बिमल ।
कहा भसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ॥
सोरठा सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर अनघ ॥
सोरठा हरि गुन अगम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कही उमा सादर सुनहु ॥१४८॥
सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई । बिना हेतु अवतरइ प्रभु सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धर्म कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
दोहा असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१४९॥
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं ॥
राम जन्म के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥
जन्म एक दुइ कहउँ बखानी । सावधान सुनु सुमुखि सयानी ॥
द्वार पाल हरि के प्रिय दोउ । जय अरु बिजय जान सब कोउ ॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटक लोचन । जगत बिदित सुर पति मद मोचन ॥
बिजई समर बीर बिख्याता । धरि बराह बपु एक निपाता ॥
होइ नर हरि दूसर पुनि मारा । जन प्रह्लाद सुजसु बिस्तारा ॥
दोहा भए निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान ॥
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजय जग जान ॥१५०॥
मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जन्म द्विज बचन प्रमाना ॥
एक बार तिन्ह के हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता । दसरथ कौसिल्या बिख्याता ॥
एक कल्प एहि बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा ॥
एक कल्प सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा । दनुज महाबल मरै न मारा ॥
परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जितइ त्रिपुरारी ॥
('छल' से नया पृष्ठ प्रारम्भ)
दोहा छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोपि करि दीन्ह ॥१५१॥

१ नया पृ० २ नया पृ०

(ता) सु भाप हरि (कीन्ह) प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥
तहा जलंधर रावन भएउ। × × *
ऐक जन्म (क) र कारन ऐहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनि मुनि बरनहु कवि न घनेरी॥
नारद भाप दीन्ह ऐक बारा। ऐ कल्प तेहि लगि अवतारा॥
मिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिस्नु भगत मुनि ज्ञानी॥
कारन कवन भाप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोहि आचरजु भारी॥
दोहा : बोले बिहसि महेस तब मूढ़ न कोई जेहि॥
जस रघुपति करहिं सो तस तेहि छन होई॥
सोरठा : कहो राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुन(हु)॥
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजु मान मद॥१२३॥
हिमगिरि गुहा ऐक अति पावनि। बह समीप सुर सरी सुहावनि॥
बेपि देव ऋषि मन अति भावा। भाप हेतु तपहिं मनु लावा॥
निरपि (सैल) सर बिपति बिसाया। भएउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि भाप गति बाधी। सह(ज) बिमल मन (लागि) समाधी॥
मुनि गति देपि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जा (हु मम) हेतू। चलेउ हरषि हिय जस नर केतू॥
सुना सीर मन मह अति त्रासा। चहत देव ऋषि[1] (मम पुर) बासा॥
जे कामी लोलप जग माही। कुटिल काक इव सबहि डेराही॥
दोहा नूप हाड़ मे भाप (तठ) स्वान निरपि मृग राज॥
छीनि लेइ जनि जानकु तिमि सुरपति हि न लाज॥१२४॥
तेहि आसमहि मदन जब गएउ। निज माया बसंत निर्मएउ॥
कुसुमित बिबिधि बिटप बहु रंगा। कूजहि कोकिल गुंजहि भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिधि बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असम सर कला प्रबीना॥
करहिं गान बहु तान त(रं)गा। बहु बिधि क्रीडहि पानि पतंगा॥
देपि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥
काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भएउ डरेउ मनोभव पापी॥
सिव कि पापि सकै काउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
दोहा सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन॥
गहेसि जाई मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥१२५॥
भएउ न नारद मन कछु रोपा। कहि प्रिय बचन काम परितोपा॥
नाइ चरन सिर आएसु पाई। चलेउ मदन तब सहित सहाई॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाई सब बरनी॥
मुनि सब के मन बिस्मय आपा। मुनिहि प्रसं(स ह)रिहि सिव नापा॥

---

१ यह अवस्थी दूर नहीं है। २ नया दृष्ट।

तब नारद गवने सिव पाही। जीत काम अहमिति मन माही॥
× × (पन्ना अज्ञात) × ×
सेवहिं सकल (चराचर) ताही। बरै सील निधि कन्या जा(ही)॥
लखन सब बिचारि उर राखा। कछुक बनाइ भूप सन भाखा॥
सुता सुलक्षन कहि नृप पाही। नारद चले सोच मन माही॥
करौं जाइ सोई जतनु बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ येहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला॥
दोहा: येहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल॥
जो बिलोकि रीझै कुअरि तब मेलै जय माल॥१६०॥
हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु मोहि भाई॥
मोरे हित हरि सम नहिं कोई। येहि अवसर सहाय सोइ होई॥
बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नैन जुड़ाने। होहिं काज हिएँ हरषाने॥
अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥
जेहि बिधि नाथ होइहि मोरा। करौं सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीन दयाला॥
दोहा: जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार॥
सो हम करब न आन कछु मृषा बचन हमार॥१६१॥
कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु (मु)नि जो(गी)॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयेउ। कहि अस अंतर्हित प्रभु भयेउ॥
माया बिबस भ[1](ए मुनि मूढ़ा)। समुझि नहीं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ मुनि राई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥
मुनि हित कारन कृपा निधाना। दीन्ह कुरूप न जाई बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥
दोहा: रहे तहाँ दुई रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ॥
बिप्र बेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥१६२॥
जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हिय रूरूप अहमिति अधिकाई॥
तब बैठे यहु संभु गन दोउ। बिप्र बेष गति लखै न कोउ॥
करहिं कुटी नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राज कुअरि छबि देखी। दीन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥
मुनि(हि मोह) मन हाथ पराए। हरहि संभु गन मति सठु पाए॥
बरनि सुनहि मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥

---

१ भए इव।

केहु न लखा सो चरित बिसेषी। सो सरूप नृप कन्या देखी॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
दोहा: सखीं संग लै कुअरि तब (चली) जनु राज मराल॥
देखत फिरै महीप सब कर सरोज जय माल॥१६४॥
जेहि दिसि बैठे (नारद फूली)। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाही। देखि दसा हर गन मुसिकाही॥
जर नृप तनु तह गए कैलासा। कुअरि हरषि मेली जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लखि नियासा। नृप समाज सब भएउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दोष मुनि नारि निहारी॥
तेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि श्राप दीन्हेउ अति गाढ़ा॥
दोहा: होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ॥
हसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हसेउ मुनि कोउ॥१६५॥
पुनि जल दीप रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माही। सपदि चले कमला पति पाही॥
देही श्राप कि मरि हौ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोई राजकुमारी॥
बोले मधुर बचन सुर साईं। मुनि कह चलेउ बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हारे इरषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्र हि बौरायेहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायेहु॥
दोहा: असुर सुरा (बि)ष संकरहि आपु रमा मनि चारु॥
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥१६६॥
परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावै मन करौ तुम्ह सोई॥
भलेहु मंद मंदहु भल करहू। बिस्मय हरष बिस्मय हरष न हिय कछु बरहू॥
डहकि डहकि परसेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहु साधा॥
भले भवन अब बायंहु दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देही। सो तनु धरहु श्राप मम ऐही॥
कपि आकृत तुम्ह कीन्ह हमारी। करिहहिं कीस सहाई तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥
दोहा: श्राप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्हि॥
निज माया की प्रबलता करषि कृपा निधि लीन्हि॥१६७॥
तब हरि माया हरि निवारी। नहिं तह रमा न राज कुमारी॥

१ नया इष्ट भी हेति से आरम्भ।
२ बने इष्ट से आरम्भ।

मोह बिगत मुनि सबै हरना। कहौ पाहि प्रनतारत चरना॥
कृपा होहु मम साप कृपाला। मम इच्छा कह दीन्ह दयाला॥
मैं दुरबचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे॥
अपहु जाई संकर सत नामा। होइ हृदय तुरत बिस्रामा॥
कोउ नहि सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे॥
जिहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया नियराई॥
दोहा बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतर ध्यान॥
सत्य लोक नार नारद चले करत राम गुन गान॥१६८॥
हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हर्ष बिसेषी॥
अति सभीति नारद पहं आए। गहि पद आरत बचन सुहाए॥
हर गन हम न बिप्र मुनि राया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपा(ला)। बोले नारद दीन दयाला॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह ज(जा)। धरिहहि बिष्नु मनुज तनु तबा॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मु(कु)ति न पुनि संसारा॥
चले मुदित मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कुल महं जाई॥
दोहा एक कल्प एहि हेत प्रभु लीन्ह मनुज अवतार॥
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भवभार॥१६९॥
एहि बिधि जन्म करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कल्प-कल्प प्रति प्रभु (अव)तरहिं। चारु चरित नाना बिधि करहिं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत संकरहि सुनाई॥
बिबिधि प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि रस राम निहाने॥
हरिहि चरित हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिरचहिं संता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाए। कल्प कोटि लगि जाइ न गाए॥
यह प्रसंग (मैं कहा) भवानी। हरि माया मोहत मुनि ज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुल[1](भ) सकल संसारी॥
दोहरा सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल॥
अस बिचारि मन माहिं भजिय महा मायापतिहि॥१७०॥
अपर हेतु सुनु सैल कुमारी। कहौ बिचित्र सब कथा बिचारी॥
जेहि कारन प्रभु मनुज सरीरा। लहा भए कौसल पुर भूपा॥
जो प्रभु बिबसि फिरत तुम्ह दया। बंधु सहित सिय सुंदर बैया॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिउ बौरानी॥
अजहु न छाया मिटत तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्र(म) रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहि हौं मति अनुसारा॥

१ सब सुख बहु बिधि के कारन।
२ बहा सुख

भरद्वाज सुनु सिव सम बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
भये बिबुधि बिरलबुध केतू। सो (अवतार)र भएउ जेहि हेतू॥
दोहा सो मैं तुम्ह सन कहहु सब सुनु मुनीस मन लाई॥
राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाई॥१७१॥
स्वयंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह ते भै नर (सृ)ष्टि अनूपा॥
दंपति धर्म आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह के लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भए सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियाव्रत जाही। बेद पुरान प्रसंसत ताही॥
देवहूती पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीन दयाला। प्रगटे कपि × × ×॥
(जो अनाथ हि)त हम पर नेहू। तो प्रसन्न हुय यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माही। जेहि कारन मुनि जतनु कराही॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन सगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्व बास प्रगटे भगवाना॥
दोहा नील सरोरुह नील मनि नील नीर धर स्याम॥
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥१७६॥
सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक कंबु ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदरि नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जीकी॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक बिसाल पटल दुति कारी॥
कुंडल मुकुट मकर सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
पीत बसन गंडिर उर भ्राजा। पदिक हार भूषन मनि जाला॥
केहरि कंध जनेउ बिराजा। जानी सीस बिरी सुर राजा॥
करि सायक सुंदर भुज दंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हिय हरि बिलोकि अरुन भैरि॥
दोहा तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेत (× ×) जनु भंवर छबि छीनि॥१७७॥
पद राजीव बरनि नहिं जाही। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह (माही)॥
[1]बाम भाग सोहत अनुकूला। आदि सक्ति छबि निधि जग मूला॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लछि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई[2]॥
छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मन सतरूपा॥

---

१ बाम भाग से
२ ६ ४६ से आरम्भ।

हर्ष दिवस सम दसा भुवानी। परेउ दंड इव महि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज पद कंजा। तुरत उठाये करुना पुंजा॥
दोहा: बोले कृपा निधान तब अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महा बानि अनुमानि॥१७८॥
सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोले मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूजे सब काम हमारे॥
एक लालसा बड़ि उर माही। सुगम अगम कहि जात सो नाही॥
तुम्हहि देत अति सुगम गुसाईं। अगम लागि आगम कदराईं॥
यथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाव न जानत सोई। यथा हृदय मम संसय होई॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु नाथ मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाई मागु नृप मोही। मोरे नहीं अदेय कछु तोही॥
दोहा: दानि सिरोमनि कृपा (नि)धि नाथ कहौं सति भाउ॥
चाहौं तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥१७९॥
देखि प्रीति × × × × । × × × × × ×॥
(पन्ना अज्ञात)
'आगम देखि नृपति पछिताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई॥
दोहा: पेड़ पीन सुचित बपित राजा बाजि समेत॥
पीअत ब्याकुल बारि सर। जल बिन भयो अचेत॥१८७॥
फिरत बिपन ऐक आश्रम देखा। तहु बस नृपति कपट मुनि बेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयेउ पराई॥
समय प्रताप नाम रनि बाजी। आयस अति असमय अनुमानी॥
गयेउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि बहु अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रताप रवि तेहि तब चीन्हा॥
राउ बपित नहि सो पहिचाना। देखि सुबस महा मुनि जाना॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर निज पहेउ न नामा॥
दोहा: भूपति बपित बिलोकि तेहि सरबर कीन्ह दिवाँ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाई॥१८८॥
गो श्रम सकल सुधी नृ गयेउ। निज आश्रम तापस सै गयेउ।
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोले मृदु बानी॥
को तुम कस बन बिचरहु अकेले। सुंदर जुवा जीव परहेल॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥
नाम कुलाप भाग अवलोका। तासु मलिन न मुनहु मुनोका॥
फिरत अहेरेउ' (परेउ) भुलाई। बड़े भाग पद देखे आई॥

---

१ [illegible]। २ [illegible]।

हम कहु दुर्लभ बरदु तुम्हारा। जानत हू कछु भल होनहारा॥
कह मुनि तात भएउ अधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥
दोहा निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि जिय जाएहु होत बिहान॥१८६॥
चौपा तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपु न आवै ताहि पहं कि ताहि तहां लै जाई॥१६०॥
भलेहिं नाथ आएसु धरि सीसा। बाजि तुरग तहं बैठ महीसा॥
नृप बहु भांति प्रसंसिअ ताही। चरन बंदि निज धाम सराही॥
पुनि बोलेउ नृप गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई॥
मुनि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निजु कहहु बखानी॥
तेहि न जान नृपहि सो जाना। नृप हृदय सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥
समुझि राज सुख दुखित अराती। अवानल इव सुलगै सु छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदय हरषाना॥
दोहा कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥१६१॥
कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएं। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएं॥
तेहि ते कहहिं संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥
तुम्ह सम अधम भिखारि अभेहा। होत बिरंचि बिंहि संदेहा॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करहु अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेहु जनाई॥
सुनु सठि भाव कहौं महिपाला। इहां बसत बीते बहु कालां॥
दोहा : अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावा काहु।
लोक मान्यता अनल सम कर तपु कानन दाहु॥१६२॥
सोरठा तुलसी देखि सुबेष भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदरि केकहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥१६३॥
तातें गुप्त रहौं जग माहीं। हरि तजि आन प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सबु बिनु जनाएं। कहहु कवन बिधि लाक रिझाएं॥
तुम सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे॥
अब जो तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही॥
जिमि जिमि तापसु कहै उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपजै बिस्वासा॥
देखा सुबस कर्म मन बानी। तब तापस बोल बच ग्यानी॥
नाम हमार एकु तन भाई। सुनि नृप बोलेउ गिरा सुहाई॥
कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

१ मध्य पृष्ठ 'कन्हि' से प्रारम्भ।

दोहा आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।
नाम ऐक तम हेत ते देह न धरेउ बहोरि ॥१६४॥
अति आचर्य करहु मन माही । सुत तपते कछु दुर्लभ नाही ॥
तप बल ते जग सृजै बिधाता । तप बल बिष्नु भएँ परि त्राता ॥
तप बल संभु करहिं संघारा । तप ते अगम न कछु संसारा ॥
भएउ नृपति सुनि अति अनुरागा । कथा पुरातन कहै सो लागा ॥
जुगुत धर्म इतिहास अनेका । करै निरूपन बिरति बिबेका ॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी । कहैसि अमित आचर्य बखानी ॥
सुनी महीप तापस बस भएउ । आपन नाम कहन तब लएउ ॥
कह तापस नृप जानी तोही । कीन्हे हु कपट लाग बस मोही ॥
सोरठा तुम्ह महीस अति नीति जह तह नामुनि कहहिं नृप ।
मोहि तोहि पर प्रीति सोई चतुर बिचारि तब ॥१६५॥
नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा । सत्य केस तव पिता नरेसा ॥
तुम्ह प्रताप जानिय सब राजा । कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥
देखि तात तव सहज सुभाई । प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरे । कहउँ कथा निज पूछे तोरे ॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाही । मागु जु भूप भाव मन माही ॥
सुनि सुभ बचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनै कीन बिधि नाना ॥
कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरे । चारि पदारथ करतल मोरे ॥
प्रभु तथापि प्रसन्न बिसेषी । मागि अगम बर होउ बिसेषी ॥
दोहा अजर अमर गुन निधि तनु सनर जिसै नहिं कोई ।
ऐक छत्र रिपु हीन महि राजु कल्प सत होई ॥१६६॥
कह तापस नृप ऐसइ होउ । कारन ऐक कठिन सुनु सोउ ॥
कालउ तव पद नाएहि सीसा । ऐक बिप्र कुल छाडि महीसा ॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा । तिन्ह कर कोप न को रखवारा ॥
जो बिप्रन्ह बस करहु नरेसा । तो तुम्ह बस बिधि बिष्नु महेसा ॥
चलन ब्रह्म कुल सन बरिआई । सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई ॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनिहुँ काला ॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना । सो करहु जातें तव सनमाना ॥
दोहा बिप्रजासु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाव निज कहहु त हमहिं न खोरि ॥१६७॥
तोरे मैं तोहि बरजो राजा । कहे कथा तव परम अकाजा ॥
छठे श्रवन यह सुनत कहानी । नास तुम्हार सत्य यह बानी ॥
यह प्रगटै अथवा द्विज श्रापा । नास तोर सुनु भानु प्रतापा ॥

१ नया छंद ४ दोहा प्रारम्भ ।
२ कन्या करे से प्रारम्भ ।

प्रान उपाउ बिघ्न तब नाही। जो हरि हर कोपहिं मन माही॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा॥
राखै गुर जो कोप[1] बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥
दोहा होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ॥
तुम्ह तजि दीन दयालु निहु न देखौं कोउ॥१६८॥
सचिव नृप बिबिधि जतन जग माही। कष्ट साधि पुनि होहिं कि नाही॥
असि एक अति दुगम उपाउ। मन आपीन पुनि नृप सोउ॥
तहा परंतु एक कठिनाई। मोर जान पुनि जनर न जाई॥
आजु लगे अरु जबते भएउँ। काहू के गृह ग्राम न गएउँ॥
जौं न जाउँ तब होइ अकाजू। बनी आई असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोले मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलु प्रवाह मौलि बहु फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥
दोहा अस कहि गए महेस तब हरषी होहु कृपाल॥
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीन दयाल॥१६९॥
जान मुनहिं आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥
अवसि काज करब मैं तोरा। मन क्रम बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मन्त्र प्रभाउ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराउ॥
जो नरेस मैं करब रसोई[2]। तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइं भोजनु करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥
पुनि तिन्ह के गृह जेव जोउ। तव बस होइ भूप सुनु सोउ॥
एहि उपाइ रचहु नृप ऐहू। सबस जरि संकल्प करेहू॥
दोहा निज सम द्विज सहस दस बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकल्प लगि दिनहिं करब जोनार॥२००॥
एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे। होहिं ते सकल बिप्र बस तोरे॥
कटुक बिप्र होम मंत्र जोगा। तेहि प्रपंच सहजहिं बस लोगा॥
अरु एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहि बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे पुरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥
तपबल करि तेहि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परिमाना॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भेट भूप दिन तीजे॥

---

१ मन पूरक प्रारम्भ।
२ बनाइ है तुम्हा से प्रारम्भ।

मैं तप बल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहौं सोवतहिं निकेता॥
दोहा मैं आउब सोइ बेष धरि पहिचानेहु तब मोहि॥
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥२०१॥
सयन कीन नृप आयेसु मानी। आसन जाई बैठ छल ज्ञानी॥
अमित रूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर हुय नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। — — —[1] ॥
तेहि के सत सुत अरु बस भाई। पल अति अजय देव दुप दाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥
तेहि पल पाखिल बेष तमा। तापस नृप निसि मंत्र बिचारा॥
जेहि रिपु छय सोई रचेसि उपाउ। भावी बस न जान जान कछु राई॥
दोहा रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिऐ नाहु॥
अजहु देत दुख रवि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥२०२॥
तापस नृप तब उपहि निहारी। सुरपि मिलेउ उठि भएउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातु बाल बोला सुपुनाई॥
अब साधेहु रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि छोभु रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषधि ब्याधि बिधि खोई॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महा कपटी अति———॥
चौतेसि नाम नगर सब झारी। गएउ बोहारि बसि लोक सुखारी॥
बसि रावन आवत जाना। किए देव ऋषि सब अभिमाना॥
पसत नगर सिसु नाना। निज बल तिन्ह दीनि भगवाना॥
धाई पर तिन्ह पुर में आए। नगर नारि नर देखन धाए॥
बीस बाहु बस कंधर जाही। बिधि यह बढ़नि कहा की आही॥
ए[2] माथि भ्रा ''म न मन कहै सहै बक नारी॥
रावन देखि बहुत सकुचाना। तब पुकारि दीन्ह ललकारा॥
चला तुरंत निसाचर नाहा। लाज संक नहिं कछु मन माहा॥
तब तुरग पलासर आवा। बसि नाम कपि पति जेहि पवा॥
देखि न जाही बल तर नर सोभा। जेहि बल नाह मुनिन्ह कर छोभा॥
मा ता हा[3] कपीस करै निज माया। आदर सो सध्या सनमाना॥
बाहु ठाठ आव तह रजनीसा। बो देखि बाहु गवि भुज बीसा॥
तब कपीस चितवा मुनिकाई। ध्यान के अवसर रिस बिसराई॥
तब रावनि बीसा करि बोधा। बस ध्यानी कपि सठ मनि बोधा॥
दोहा माहि बिनु समर मुनु मा करि ध्यान कपीस॥
संकुलि देखन पावहु म ब्यथ करी अज स॥१८॥

---

१ पृष्ठ २१ में प्रारम्भ।
२ यह अर्द्धाली छूट गई है।

हम बाली बोला बिहसाई। बस तुम्हार बैसह हैं भाई॥
रवि अंगुलि न देउ। प्रीती ठाठ होहु जाएँहु मोहि जीती॥
हम निसाचर पति उठेउ रिसाई। ते कपि युद्ध आदि कदराई॥
बाली तब निज मनहिं बिचारा। सिव बल बीन मरे नहीं मारा॥
दसकंधर कर बाल बिचारी। अबय तुमारि सिव भुज भारी॥
बहुत भाँति बाली समुझाया। कबनिउ भाँति बोध नहिं आया॥
तब सकोप हुय उठेउ कपीसा। धरिउ काप चापेउ दससीसा॥
अंगुलि हीन्हि रविहि मन बानी। अचरजेउ सात उदधि कर पानी॥
अपेउ आदी संकर मन जानी। तेहि पल संध्या बधि सिरानी॥
दोहा आवा धरहिं कपीस तब काप रहेउ सकेत॥
एहि बिधि बीते मास षट पावै बहुत कलेस॥१६॥
बहु प्रकेर क हि आवा। अति कुबास ताकहु भयो आवा॥
कल मलाह रिस दसनन्हि काटा। कच न कोप अन चाटा॥
एक दिवस रवि अंगुलि लावा। काप ते निसरि महा धुनि गावा॥
सु पुनि धरि कपी
मित बीर बलवाना॥
बारिद नाद जेठ सुत बाबू। भट मह प्रथम लीक जग तासू॥
जेहि सनमुख हूँ सकै न कोई। सुर पुर निवहि पराजय होई॥
दोहा कुलिस अंकपन कुमुक रद धूमकेतु अतिकाय॥
एक एक जग जीति सक जैसे सुभट निकाय॥१७॥
काम रूप जानहिं सब माया। सपनेहु जिनके भय न दया॥
दसमुख बैठि सभा एक बारा। देखि अमित आ पल परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती। मनै को पार न निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥
सुनहु सकल रजनि चर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥
तिन्ह कर मरन एकबि होई। कहौ बुझाई सुनो सब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबक जाई करहु तुम्ह बाधा॥
दोहा छुधा छीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आई।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भलीभाँति अपनाई॥१८॥
मेघनाद कह तब हरषाया दीनी। 'बन दें न बड़ाया॥
जेहि सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना॥
'जीति रन अब लुकाही। उठि सुत पित अनुसासन काही॥
एहि बिधि सब ही आज्ञा दीनी। आपनि चलेउ बता करि लीनी॥
चलत दसानन अरनी डोली। गर्जत घन घनहिं सुर धरनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिर गोहा॥
दिगपालन के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥

पुनि पुनि सिंह नाद करि भारी। देइ देवतनु मारि प्रचारी॥
रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
सारद सिवँ कहहिं मुसिकाए। देव कहा मुनि देउ बताई॥
सुनत बचन सारद नहिं भावा। स्रवत बीच कह दूरत पठावा॥
सागर उतरि पार सो गएउ। मारि बृन्द तब ? देवत भएउ॥
तिन्ह सन कहेसि पतिन्ह पर जाउ। कहेउ कि आव निसाचर नाहू॥
तब मैं तीन्ह जीति संग्रामा। जे जेहो तुमको निज धामा॥
सुनत बचन ऐक कटक रिसानी। धाई चरन पहिं पवन उड़ानी॥
यह दुरि करि परि भय भोरा। डारेसि सिन्धु अथ्य अति बोरा॥
दोहा गर्वेज पताल अचेत हो मरै न बिप्र प्रसाद॥
सावधान उठि गर्ज पुनि हिए न हरषि बिषाद॥२७॥
× × × रि राय कोउ न सुतंत्र॥
मंडलीक मनि रावन राज करै निज मंत्र॥२१॥
इंद्रजीत सन जो कुछ कहेउ। सो सबु जनु पहिलेहिं करि रहेउ॥
प्रथमहि जिनको आइसु दीन्हा। तिन का चरित सुनो जो कीन्हा॥
देवत भीम कम्प सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं देव प्रतिकूला॥
जहिं जेहि देस धेनु द्विज पावहीं। नगर गाउ पुर आगि लगावहीं॥
सुभ आचरन कहुत नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भक्ति जग्य तप ज्ञाना। सपनेहु सुनिए न वेद पुराना॥
छन्द जप योग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दसमीसा।
आपुन उठि धावै रहम न पावै धरि सब घालै पीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना॥
दोहा बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं॥
हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति॥३०॥
माते पाल कहु चोर घुमारा। जे संपट पर धन पर दारा॥
मानहिं मात पिता नहिं देवा। साधुन सन करवावहिं सेवा॥
जे जे आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सम प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म की हानी। × × × ×
× × × × 'म गभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। अस मोहि एक बरन पर द्रोही॥
सकल धर्म देखहिं बिपरीता। कहि न सकै रावन भय भीता॥
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई जहां सुर मुनि सब झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहु से [illegible] काज न होई॥

१ पुष्ट ६ ।

छन्द सुर मुनि गंधर्ब मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सब मो तन धारी भूमि बिचारी परम बिकल भये सोका॥
ब्रह्मा सबु जाना मन अनुमाना मोर कछु न बिसाई।
जा करि तै दासी सो अबिनासी हमरो तोर सहाई॥
सोरठा धरनि धरहु मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरि॥
जानत जन की पीर प्रभु भंजहि दारुन बिपति॥६१॥
बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कह पाईअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पय निधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदयँ भगति जस प्रीती। प्रभु तहाँ प्रगट सदा यह रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेउँ। अवसर पाइ बात एक कहेउँ॥
हरि ब्यापक सबत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होइ मैं जाना॥
देश काल दिसि बिदिसिहु माहीं। सी[1] × × × × ॥
द बिनोद न थोरे। × × × ×
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जा(च)त बिधि (पाहीं)॥
बिस्वामित्र चमत्र नित चहहीं। राम सुप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन मय बुन (बू)प(ति भाउ)। देखि सराह महा मुनि राउ॥
मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़े भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करेहु सदा संतन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुप (आ)ब न बानी॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रा(म सप्रे)म सब सब भाई। आयेसु पाइ फिरे पहुँचाई॥
दोहा राम रूप भूपति भगति ब्या(ह उ)छाह अनंद॥
जाइ सराहत मन मुदि(त) गाधि सुमन कुल चंद॥
बाम देव रघुकुल पुर ज्ञानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राउ। बरनत आपन पुन्य प्रभाउ॥
बहुरे लोक रजायसु भएउ। सुतन्ह समेत नृपति गृह ग(एउ)
बहु बह राम ब्याह उछाहा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छाहा॥
आए ब्याहि राम घ। अन(ए) अवध सब तब॥
प्रभु बिबाह जस भये उछाहू। सकहिं न बरनि[2] (गिरा अहि नाहू)॥
(कबि) कुल पावन जीवन्ह जानी। राम सीय जस मंगल पानी॥
[3]× × × । करन पुनी(त हेत निज) बानी॥
छंद निज गिरा पावनि करन कारन राम जस तुलसी कह्यो
रघुबीर च(रि)त अपार बारिधि पार कबि कौने लह्यो

---

१ यह अर्द्धाली छूट गई है।
२ छंद १२४ से मिलाइए।
३- यह अर्द्धाली छूट गई है।

उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं ।
× × × × ॥

सोरठा सीय रघुबीर बिवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कह सदा उछाहु (मंग)लायतन राम जसु ॥

सोरठा बाल चरित अति नीक बरने (तुल)सी दास सुभ ।
× × जे सठु पाव परम पुनीत बिचित्र गति ॥

दोहा भव पुरी सुहाव अति निर्मल (सु)ख सिव पुरी ।
जहां बसु बिस्वास सो महिमा बरनिय कहा ॥

दोहा कहे सुने समुझे जे जन सफल सो प्रभु गुन गान ॥
सीता पति रघुकुल तिलक सदा करहिं कल्यान ॥१९०॥

इति श्री राम चरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल (
संवादिनी नाम १ सोपान समाप्त संवत् १६४६ साके १५०८ वासी
पुत्र कृष्णदास हेतु लिखी रघुनाथदास ने काशीपुरी में
कुछ अन्य पुष्प जो किसी अन्य प्रति के प्रक्षेप होते हैं ।

आरण्य काण्ड

१६४३ वि०

(पृष्ठ २ का प्रारम्भ)

(प्रस्तुत)मंत्र दृढ़ मन भावा। चला भागि मारन भय पावा॥
धरि निज रूप(प) गयो पितु पासी। राम बिमुख राखा तिहि नाही॥
भा निराश उपजा मन त्रासा। जथा चकित भये रिषि दुर्बासा॥
दुहू प्राण लिए पुर सब लोका। फिरा भ्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सक राख कर द्रोही॥
मातु प्रात पितु त भय समाना। सुता होइ बिष मृतु हरि जाना॥
मित्र करै सत रिपु क करनी। ताकइ बिबुध नदी बैतरनी॥
सब जग ताहि अनल ते ताता। सो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥

दोहा : बिनि बिनि भाजत सक्र सुत ब्याकुल मति बुध हीन।
तिनि तिन बावत राम सर पाछें चर्म प्रबीन॥७॥

चौपाई

नारद देवेउ बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
दूरिहिते कहि हरि प्रभुताई। धावत मो सब कथा सुनाई॥
पठवा तुरित राम पहु ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥
आतुर सबहि सपदि तह जाई। मैं मतिमंद जानि नहि पाई॥
निज कृति कर्म जनित फल पायो। अब प्रभु पाहि सरनि तकि धायो॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजेउ भवानी॥
सोरठा कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ो करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥१८॥

चौपाई

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहि जाना॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम सब प्रभु गयेऊ। मनस मता मुनि [illegible]॥
पुलकित गात अत्र उठि धाये। देखि राम [illegible]॥
करत दंडवत मुनि उर लाये। प्रेम [illegible]
देखि राम छबि नैन जुड़ाने। [illegible]
करि पूजा कहि बचन सुहाये। [illegible]

सोरठा प्रभु आसन आसीन [illegible]
मुनिबर परम प्रबीन जासु [illegible]॥१॥

छंद नमामि भक्त वत्सलं कृपाल सील कोमलं
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं
निकाम श्याम सुंदरं भवांबुनाथ मंदरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दुःख मोचनं
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभो प्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं
दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
मुनींद्र संत रंजनं सुरारि वृन्द भंजनं
मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं × × ×

(पृष्ठ ४)

पति वंचक पर पति रति करही। रौरव नर्क कल्प सत परही ॥
छल सुख लागि जन्म सत कोटी। दुख न समुझि तेहि सम को खोटी ॥
बिन श्रम नारि परम गति लहही। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहही ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥
सोरठा : सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहै।
जसु नारद श्रुति चारि अजहुँ तुलसी हरिहि प्रिय ॥९॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करैं।
तोहि प्रान सम राम कहुँ कथा संसार हित ॥१०॥

चौपाई

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर साधु चरन सिर नावा ॥
तब मुनि सन कह अति अनुरागा। सुतन्नु होइ जात बन जागा ॥
संतत हम पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजब नहिं नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कह जानी। मुनि सप्रेम बोले मृदु बानी ॥
जानु कृपा अब शिव समकाजी। कहत सकल परमारथ बाजी ॥
ते तुम राम अकाम पियारे। दीनबंधु मृदु बचन उचारे ॥
अब जानी मैं श्री चतुराई। भजिय तुम्हहिं सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसै नहिं कोई। ताकर सील कस न अस होई ॥
केहि विधि कहौं जाउ बन स्वामी। कहहु नाथ तुम अन्तर जामी ॥
अस कहि रहे बिनोकि मुनि धीरा। लोचन जल बढ़े पुलक सरीरा ॥
छंद तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिये
मन ध्यान गुन गोतीत प्रभु में दीप का जप तप किये
जप जोग धर्म समूह ते नर भक्ति अनुपम पावहीं
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावहीं।
दोहा मुनि रघुपति अति परस्पर पुनि पुनि मागहिं सीस।
बिमल भक्ति बर देइ करि बिदा कीन्ह जगदीस ॥११॥

चौपाई

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहिं सुर नर मुनि ईसा ॥

आवें राम सपन पुनि पाहीं। सीता मध्य बिराजति आहीं॥
सरित निरि बन औघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तब तहँ तहँ छाया॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। देव सदन तेहि पटतरि नाहीं॥
दिव्य बिटप बर बहु बिधि जोहीं। देखत जिनहिं सकल मुनि मोहीं॥
पक्षी तहँ अनेक बहु रंगा। गुंजहिं अलि रव करहिं बिहंगा॥
दोहा निज निज आश्रम बेदिका तेहि तट तुलसी बिराज।
अनुज जानकी सहित तहँ राजत थे रघुराज।
आनि सुआसन मुदितमन पुनि पहुनाई कीन्ह।
कंद मूल फल ✗ ✗ ✗ ✗ ✗

(छन्द ८)

✗ ✗ ✗ । कंचन तबहिं जनु भेट तमाला॥
राम सुमुख बिलोकि मुनि ठाढ़े। मानहु चित्र मध्य लिखि काढ़े॥
दोहा तब मुनीस उर धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम तब आनि प्रभु पूजे बिबिधि प्रकार॥२१॥

चौपाई

कह मुनि सुनु प्रभु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कौन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोर मति थोरी। रबि सम्मुख खद्योत की जोरी॥
स्याम ताम रत धाम सरीरा। जटा मुकुट परिबरु मुनि चीरा॥
मोह बिपिन घन दहन कृसानु। संत सरोरुह कानन भानु॥
निसिचर करि बरूथ मृग राऊ। दहन दनुज बन दहि पन नाहू॥
अरुन नयन राजीव सुबेसा। सीता नयन चकोर निसेसा॥
हर हिय मानस राज मरालं। तोमि राम उर बाहु बिसालं॥
संसय सर्प्प ग्रसन उरगादं। शमन सकल भव रुज बिषादं॥
भव भंजन रंजन सुर जूथा। त्राहि सदा भव सरन बरूथा॥
निर्गुन सगुन अनूप स्वरूपं। ग्यान गिरा गोतीत अनूपं॥
अमल अचल अनुबम्य अपारं। मोहिराम अंजन मह नारं॥
भक्त कल्प पादप आरामं। कर्मन क्रोध लोभ मद कामं॥
अति नागर सागर भुति सेतं। जात सदा दिनकर कुल केतुं॥
अनुचित बन प्रताप रबि भानं। कलिमल बिपुल बिभंजन रामं॥
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासं। सबके हृदय निरंतर बासं॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसति मानस मम कानन भारी॥
जो रामहिं तेहि जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अंतर जामी॥
अब कोसिल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना॥
सोरठा माया बस अवध जीव रहत सदा मतत मलय।
तिमि लागहु मन प्रिय करना कर सुन्दर सनेह॥२२॥

चौपाई

मन अभिलाष तजे जिनि मोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरें॥
राम भक्ति तजि चहु कल्याना। सो नर अगम अकास समाना॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाये। बहुरि हरषि मुनिबर हिय लाये॥
परम प्रसन्न जानि मुनि मोही। जो बर मागु देउँ अब तोही॥
मुनि कह बर कबहु न मैं जाचा। समुझि कि परै झूठ की साचा॥
तुमहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भक्ति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा। अब सो देहु जो मो मन भावा॥
दोहा अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धरि राम।
मम उर गेहन इंदु इव बसहु सदा निःकाम[1] ॥२३॥

चौपाई

एवमस्तु कहि रमा निवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
मुनि प्रनाम करि पुनि करि जोरी। सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी॥
बहुत दिवस मुनि दरसन पाये। भये बहुत दिन आश्रम आये॥
अब प्रभु संग चलौं गुर पाही। तुम कह नाथ निहोरा नाही॥
चले साथ मम तव पद कंजा। देखब मैं बिराध मग गंजा॥
देखि कृपा निधि मुनि चतुराई। चले संग लिहले दोउ भाई॥
पंथ कहत निज भक्ति अनूपा। मुनि आश्रम पहुचे सुर भूपा॥
आश्रम देखि महा अति सुंदर। सत कुटी मुनि आश्रम दूसर॥
बन चर जल चर जीव अहीते। बैर न करहिं प्रीति सबहीते॥
दोहा। रावत तरुवर बिहग मृग बोलत बचिबि प्रकार।
सबहि सिखि मुनि तप करहिं महिमा गुन आगार॥२४॥

चौपाई

तुरित तुषीरन गुर पह गयेऊ। करि दंडवत कहत अस भयेऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आये मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिन नाथ जपत जनु तेही॥
सुनत अगस्त तुरित उठि धाये। प्रभुहि बिलोकि नयन जल छाये॥
मुनि पद कमल परे दोऊ भाई। लखि अति प्रीति लिये उर लाई॥
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारेउ आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोसम भाग्यवंत नहि दूजा॥
यह लखि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिसारि सुख चंदा॥
दोहा मुनि समूह में बैठि प्रभु सम्मुख सबकी ओर।
सरद इंदु इव देखियत आनन निकर चकोर॥२५॥

चौपाई

पाइ सुधम जिमि हरषित भीता। पारगु पाइ सुखी जिमि होता॥

१ इस। २ अन्यत्र।

राम निरखि सुख भये हिय भारी। चातक जिमि पायो जल स्वाती ॥
तब रघुबीर कहो मुनि पाही। तुम सन प्रभु दुराव कुछ नाही ॥
तुम जानहु जेहि कारन आयो। ताते नाम न कहि समुझायो ॥
अब सो मन्त्र देहु मुनि मोही। जेहि प्रकार मारौं मुर द्रोही ॥
हिय द्रोही न बचै मुनराई। जिमि पंकज बन हिमि रिपु जाई ॥
मुनि मुसिकानें सुनि प्रभु बानी। पूछहु नाथ मोहि कह जानी ॥
तुम्हारे भजन प्रभाव परारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी ॥
सोरठा मुकुटी निरखत नाथ रहत सदा पद कमल रत।
बिबिधि बिबाता साथ जासु बसें निज उदर मह ॥२५॥

चौपाई

अति कराल तव पर बल जाना। मोरो कहौं सुनहु भगवाना ॥
उमरी तव बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना ॥
ते फल भखित कठिन कराला। तव उर बसत रहत सो काला ॥
तो तुम सकल लोक के साई। पूछेउ मोहि मनुज की नाई ॥
यह बड़ मोरि कृपा निकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥
अबिरल भक्ति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रेम अभंगा ॥
जदपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहि जेहि सन्ता ॥
अस तव रूप बखानौं जानौं। निर्गुन ब्रह्म सगुन रति मानौं ॥
सोरठा जो पर दाया जाहि रहत तुमहि सन्तत सदा।
सोइ बखानै ताहि नहि कछु घटै पुराई तव ॥२७॥

चौपाई

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तिहि नाऊँ ॥
गोदावरी नदी तह बहई। जाहिह पुन प्रसिद्धि जग लहई ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू ॥
बास करहु तह रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहि पंचबटी निअराई ॥
बिन्ध लता द्रुम प्रभु मन भाये। निरखि राम तेई भये सुहाये ॥
लषन राम सिय चरन निहारी। कानन तजि भये अपभारी ॥
दोहा बीच राम सों भेट भई बहु बिधि प्रीति दृढ़ाइ।
गोदावरी समी(प) प्रभु रहे परन गृह छाइ ॥२८॥

चौपाई

बसते राम कीन्ह बनबासू। सुखी भये मुनि त्रासटेउ त्रासू ॥
गिरि बन नदी लता छवि छाये। दिन-दिन प्रीतिते होंद सुहाये ॥
बन मृग कुन्द अनेकन रहही। मधुप मधुर गुंजत छवि लहही ॥
सो बन बरनि सक न अहिराजा। जहा प्रगट रघुबीर बिराजा ॥

---

१. दृढ़ २. आरण्य।

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे मृदु हीना॥
सुर नर मुनि सचराचर स्वामी। सुनहु पराति कछु तव अनुगामी॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन तव सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जो दाया॥
दोहा: ईस्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहौं समुझाइ।
जो सुनि उपजै चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥२६॥

चौपाई

थोरे महँ प्रभु कहउँ समुझाई। सुनहु तात मन मति चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तव माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥
सो माया बस भयउँ गोसाईं। बँधेउँ कीर मरकट की नाईं॥
ताकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥
ग्यान मान जेहि एकौ नाहीं। देखा ब्रह्म समानि बिसेषि सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥
दोहा: माया ईस्वर आपु कहु जान कहिअ सो जीव
बंध मोक्ष पद सबहि पर माया प्रेरक सीव॥३०॥

चौपाई

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोक्ष पद बेद बखाना॥
जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुख दाई॥
सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलै जो संत होइ अनुकूला॥
भगति को साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं। मम लीला रति मम चरन काहीं॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानि करै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद गद गिरा नैन बहै नीरा॥
कामादिक मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥
दोहा: बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निष्काम।
तिन्ह के हृदयँ कमल महँ करौं बिसराम॥३१॥

चौपाई

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन राम चरन सिर नावा॥
मन तन मन मम संदेहा। भयो ग्यान उपजेउ मम नेहा॥
अनुज बचन सुनि अति सुख पावा। हरषि राम लछिमन उर लावा॥

१ पृष्ठ ११ अरण्य।

एहि बिधि बये कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥
सूर्पनखा रावन की बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी ॥
पंचबटी सो गई एक बारा । देखि बिकल भइ जुबति कुमारा ॥
भ्राता पिता पुत्र उरधारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
भई बिकल मन सकै न रोकी । जिमि बुध ग्रह अति रबिहि बिलोकी ॥
दोहा भवन गई निसाचरि कुटिल अति चली करन उपहास ।
सुनु भनेस भावी प्रबल भा चहै सिवकर नास ॥३२॥

चौपाई

रुचिर रूप धरि प्रभु पहं आई । बोली मधुर बचन हरषाई ॥
तुम सम पुरुष न मो सम नारी । यह संजोग बिधि रच्यो बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग नाही । देखेउ खोजि लोक तिहु माही ॥
ताते अब लगि रहेउ कुमारी । मनु माना कछु तुमहि निहारी ॥
सीतहि चितै कही प्रभु बाता । अहै कुमार मोर लघु भ्राता ॥
यह लछिमन रिपु भवनी जानी । प्रभुहि चितै बोले मृदु बानी ॥
सुनि सुंदरि मैं सेवक दासा । परतंत्र नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समरथ कोसिल पुर राजा । जो कछु करैं उन्हें सब छाजा ॥
दोहा केहरि सम नहिं करि बरन बक की बाज समाज ।
प्रभु सेवक मोहि जानहु मानहु बचन प्रमान ॥३३॥

चौपाई

सेवक सुख चहै मान बिभारी । बिछिनिहि जनु सुभवति बिसिचारी ॥
सोभी जनु चहै अब गुमानी । जनि बुद्धि सुख चहै सो प्रानी ॥
पुनि सो राम निकट तब आई । प्रभु लछिमन पहं पेरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जन सम लाज तोरि प ॥
(पृष्ठ १३)
ई । देखि नहीं अति सुंदरताई ॥
जद्यपि भगनी कीन्ह कुरूपा । मारन योग न पुरुष अनूपा ॥
तेहु सुरिष सो नारि पराई । जीवत भवन जाहु दोउ भाई ॥
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दोहा भये काम बस मूढ़ सब जानत नहिं रघुबीर ।
मनक चूंक की मेद जद्द सुनहु पद्द मतिधीर ॥३७॥

चौपाई

दूतन कहा राम सन आई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥
भानु भयो बल बानु हमारा । तुम्हरे प्रभु कीन्हेउ बिचारा ॥
हम छत्री मृगया बन करही । तुमसे पल मृग पीजत फिरही ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरही । एक बार कालहु सों लरही ॥
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक । मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जो न होइ बल तो घर जाहू । तपर बिमुख मैं हतौं न काहू ॥

रन चढ़ि करिय कपट चतुराई। रिपु पर लगा पर्म कदराई ॥
दूतन आइ तुरित अस कहेऊ। सुनि पर दूषन उर अति दहेऊ ॥
छन्द उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा ॥
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परसु भयंकरा ॥
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथमहि घोर रव ब्याप्यो महा।
भये बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा ॥
दोहा सावधान होइ धाएऊ जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ॥३८॥
तिनके आयुध तिलसम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाड़े निज तीर ॥३९॥
तोमर छन्द तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपे समर श्रीराम चले बिलिष निकर निकाल ॥
अवलोकि खरतर तीर बहु चले निसिचर बीर।
एक एक कोउ न सहार करि सुत मात पुकार ॥
कोउ कहै पर का कीन्ह जो कुछ इनहीं कीन्ह।
जाके बान अतिहि कराल तस आइ मानहु काल ॥
भये क्रोध तीनिहु भाइ जो भाजि रन सों जाइ।
तेहि मारिहौं निज पानि फिरै मरन मन महु ठानि ॥
दोहा उमा देव प्रभु धनुष लगु पुनि तिनके बढ़ भाव।
तरा चहत प्रभु सर लगें बिना लोग जय लाभ ॥४०॥
छन्द करि जुद्ध नेक प्रकार सन्मुखहि करहिं प्रहार ॥
रिपु पर्म कोपे जानि प्रभु धनुष सर संधानि ॥
छाँड़े बिपुल नाराच लगे कटन बिकट पिसाच ॥
उर सीस कर भुज चरन बहु तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान भट चले पराइ दुखान।
भट कटत तन सत खंड नभ उड़त बहु भुज दंड ॥
बिनु मुंड मारत रुंड करि भये निसिचर भूत।
जय टंक काक अकाल निसिचर परे जनु ब्याल ॥
घोत्तका छन्द कट कटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच पच्चर[1] साजही
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नाचही
रघुबीर बान प्रचंड खण्डहिं भटन के उर भुज सिरा
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धर मरत करहिं भयंकरा
अंतावरी गहि उड़हिं सीस पिसाच सिर महि बावही
संग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुड़ी उड़ावही
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट बहुरत परे
अवलोकि निजदल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे

१. वध १४ अरण्य।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारही
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारही
प्रभु निमिष महुं मारा निवारि प्रचारि डारे सायकं
दस दस बिसिष उर माझ मारे सकल सिखिचर नायकं
महि परत भट कटि लरत मरत करत माया अति घनी
सुर डरे चौदह सहस दनुज बिलोकि इक कोसल धनी ।
सुर मुनि सभै सब देखि माया नाथ अति कौतुक कर्‌यो
देखहि परस्पर राम करि संग्राम रिपु दल दलि मर्‌यो ।

दोहा राम राम कहि तनु तजहि पावहि पद निर्बान ।
करि उपाय मारे सबल सूल महु जरा निदान ॥४१॥
हर्षित बरषहि सुमन सुर बाजहि निकर निसान ।
प्रभु अस्तुति करि सुर चले सोभित बिबिधि बिमान ॥४२॥

चौपाई

जय रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सबके भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आये । प्रभु पद कमल हरषि सिर नाये ॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
पंचबटी बसि श्री रघुराई । करत चरित सुरमुनि सुखदाई ॥
दुर्ग देखि पर दूषन केरा । सूर्पनखा रावन तब हेरा ॥
दोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस पुर सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिन राती । सुधि न तोहि सिर पर आराती ॥
राज नीति बिन धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पित बिन सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाये । श्रम फल पाठ किये अरु पाये ॥
संगति जती कुमंत्रिहि राजा । मजै ग्यान पान ते लाजा ॥
प्रीति बिबा बिन मह ते पुनी । नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥

दोहा रिपु रज पावक पापु प्रभुहि न कहिये छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलापु करन लगी रोदन चमित ॥४३॥

दोहा सभा मध्य ब्याकुल परी बहु प्रकार कहै रोइ ॥
तोहि सरित दसमौलि सुनु मौरि कि अति गति होइ ॥ ४४ ॥

चौपाई

सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाइसि गहि बाहु उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । केई तव नासा कान निपाता ॥
अवधि नृपति दसरथ के जाये । पुरुष सिंह बन पावन आये ॥
समुझि[1] परै मोहि उनकी करनी । रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिनकी भुज बल पाइ दसानन । अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देवद्रुम कानन काल समाना । समर पुरन्दर सब भय भाना ॥

---

१ रघु १५ आरण्य ।

अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता। भयो न अमहि (?) मंडल त्राता ॥
सोभा धाम राम तेहि नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥
सोरठा : अति सुकुमारि सुनारि पटतरि जोग न अहइ कोऊ।
मैं मन दीप बिचारि तेहि समानि कोऊ नाहि जग ॥ ४२ ॥

चौपाई

अवहु जाइ देखब तुम जबही। हूँ हो बिकल तासु बस तबही ॥
जीवन मुक्त सोक बस ताके। दस मुख सुनु सुंदरि अति जाके ॥
रूपरासि बिधि नारि सवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव नाम कीन्ह उपहासा ॥
बिन पराध अस हाल हमारी। अपर अनुज किमि बचे सुरारी ॥
पर दूषन सुनि लागि बुझारी। छिन महु सकल कटक उन्ह मारी ॥
पर दूषन त्रिसरा कर भ्राता। सुनि बस मौनि करें सब पाता ॥
भयो सोच मन नहि बिश्रामा। बीतहि पल मानहु सत जामा ॥
दोहा सूर्पनखा मुसुकाइ करि पल बोला बहु भाति।
भवन गयो अति सोच बस नीद परी नहि राति ॥ ४३ ॥

चौपाई

सुर नर नाग असुर महिमाही। मोरे अनुचर कहु कोउ नाही ॥
पर दूषन मो सम बलवंता। तिन्हहि को जीत बिनु भगवंता ॥
सुररंजन भंजन महि भारा। सो भगवान लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ बैर हठि करऊ। प्रभुसर बदि महानद तरऊ ॥
जो नर होइ नृप सुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति कै दोऊ ॥
होइ भजन नहि तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ येहा ॥
रथ आरूढ़ जोरि बर बारी। बेगवत अति जिमि उरमारी ॥
चल्यो अकेल जान चढ़ि तहावा। बस मारीच सिंधु तट जहावा ॥
छन्द उरमारि सम अति देव बंत न जाइ कछु उपमा कही।
सिर छत्र सोहत स्याम घन जनु चमर स्वेत बिराज ही ॥
इहि भाति मारत सरित सैल अनेक बारी सोह ही।
बन बाग उपबन बाटिका सुनि नगर मुनि मन मोहही ॥
दोहा बहु तडाग गुचि बिहंग मृग बोलहि बिबिधि प्रकार।
एहि बिधि आयो सिंधु तट सत जोजन बिस्तार ॥ ४४ ॥

चौपाई

सुन्दर जीव बिबिधि बहु जाती। करहि कुलाहल दिन अरु राती ॥
गुंजहि कुंजहि तेहि बन माही। अति सुखाव नहि बरनि सिराही ॥
कनक बालु मंदर सुपराई। बैठे सकल जनु हरु आई ॥
तेहि दिव्यमनता (?) तब लागे। जेहि देखत मुनि मन अनुरागे ॥
दुहा — । ॥

— । म[1] भाई ॥
तब मृग संग मृग करि लेही । मानहु मोहि सियावनि देही ॥
सस्त्र सो चितत पुनि (जग ?) देषिय । नृप सुपेषत बस नहिं लेषिय ॥
बरषि नारि राषिय उर माही । पुरुषी सस्त्र मृपति बस नाही ॥
देषहु तात बसंत सुहाई । प्रिय बिहीन मोहि भय उपजाई ॥
दोहा बिरह बिकल बल हीन मोहि जान्यो निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर बिहंग मदन कीन्ह बगमेल ॥ ७४ ॥
देषि गयो भ्राता सहित तासु दूत सुनु भ्रात ।
देषा कीन्हो मनो तब कटक न भटकहि जात ॥ ७५ ॥

चौपाई

बिटप बिलास लता परजानी । बिबिधि बितान दसौ दिसि तानी ॥
केतकि ताका ध्वजा पताका । देषत मोह बीर मनुजाका ॥
बिबिधि भांति फूले तरु नाना । जनु बानैत पहिं दल साजा ॥
कहु कहु सुंदर बिटप सुहाये । जनु भट बिलग बिलग चलि आये ॥
बोलत पोत मनों बल माते । टेक अनूप डंड बिसराते ॥
मोर चकोर कीर पिक बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतुर लवा कि पदचर जूथा । बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सैल दुंदुभी झरना । चातक बन्दी गुनगन बरना ॥
मधुकर निकर भेरि सहनाई । बिबिधि समीर बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे । बिचरत मनो बिजोती दीन्हे ॥
लछिमन देषहु काम अनीका । रहे बीर बिनकें जय लीका ॥
यांकें एक अपर्बल नारी । तेहि बल काम सुभट भति भारी ॥
दोहा : तात प्रगट अगती निपल काम क्रोध मद लोभ ।
मुनि बिग्यान निधान मन करहिं निमिष महु छोभ ॥ ७६ ॥
लोभ कि इछा दंभ बल काम कें केवल नारि ।
कपट क्रोध छवे मदन मुनिबर कहहिं बिचारि ॥ ७७ ॥

चौपाई

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा उर अन्तरजामी ॥
कामिन्ह कों दीनता दिषाई । बीरन के उर भक्ति दिढाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटे सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जापर होहि राम अनुकूला ॥
कहौं उमा मैं अनभव अपना । बिनु हरि भजन जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जल निर्मल नारी । बांधे घाट मनोहर चारी ॥
पीवहि जनु बिबिधि बह नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

---

१ पद २२ आरम्भ ।

दोहा पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म।
माया प्रगट देखिये[1] जैसें निर्मल घर्म ॥ ७८ ॥
मुनी मीन सब एक रस अति अगाधि जल माहि।
जथा धर्म सासत्र कें दिन सुख संजुत जाहि ॥ ७९ ॥

चौपाई

बिकसे सरस कमल नाना रंगा। मधुर मधुर रव गुंजत भृंगा ॥
बोलत जल पंछी कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रवाक बक बक समुदाई। देखत बनें बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥
तीर समीप मुनिन्ह घर छाये। चहु दिसि कानन बिटप सुहाये ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटर जिमिहि पलास रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुबाऊ। संतत बहै मनोहर बाऊ ॥
सुंदर खग कोकिल पुनि कूहो। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टूटी ॥
दोहा सफल बिटप फूल फलन जुत रहे भूमि पर आइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवें सुसंपति पाइ ॥ ८० ॥

चौपाई

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखि महा सम सुन्दर छाया। लक्ष्मन अनुज सहित रघुराया ॥
तहं पुनि सकल देव मुनि आये। अस्तुति करि निज धाम सिधाये ॥
बैठे राम प्रसंस कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकौं जाई। पुनि न बनें अस अवसर आई ॥
यह बिचार नारद करि नीका। गये जहां रिषिकुल टीका ॥
पावन राम चरित मृदुबानी। सहित प्रेम बहु भांति भवानी ॥
करत दंडवत लीन्ह उठाई। राख्यो बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूछि निकट बैठारे। सहित बादर चरन पखारे ॥
दोहा नाना बिधि बिनती करी प्रभु प्रसन्न जिय जानि ॥
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ८१ ॥

चौपाई

सनहु धर्म उदार रघुनायक। सुंदर सुखद परम बर दायक ॥
देहु एक बर मागहु स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥
जानत तुम मुनि मोर सुभाऊ। जनमौं कबहु न करौं दुराऊ ॥
कवन बस्तु मोहि अति प्रिय लागी। जो मुनिबर मुख मांगहु न मागी ॥

---

१ पाठ २६ देखिये से अन्यत्र।

अब कहु [illegible] अंतर नहिं मोरे। अस बिस्वास तजिय जिमि भोरें॥
तब नारद बोले मुसुकाई। अस बर मागत होति ढिठाई॥
जद्यपि प्रभु तव नाम अनेका। श्रुति कहि अधिक एकते एका॥
राम सकल नामन ते अधिका। अहहु सदा सब जग गन बधिका॥
दोहा राका निसि तव भगत सब राम नाम सुभ सीम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥८२॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपा सिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हर्ष अति प्रभु पद नायेउ माथ॥८३॥

चौपाई

अति प्रसंन्न रघुबीरहि जानी। पुनि नारद बोले मृदुबानी॥
नाथ जबहिं प्रेरहु निज माया। मोहेउ मोहि सुनहु रघुराया॥
तब बिबाह मैं चाहौं कीन्हा। प्रभु केहि हेतु करन नहिं दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहौं सह रोसा। भजहिं मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिनकी रखवारी। जैसे बालक पालै महतारी॥
गहै सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहं राखै जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भए तिहि सुत पर माता। प्रीति न करै पाछिली बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी[1]॥
जिनहि मोर बल निज बल नाही। पुनि कह काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहि ग्यान भजन नहिं तजहीं॥
पंडित जन मोहि अति प्रिय लागे। जो नहिं प्रीति तदपि अनुरागे॥
दोहा काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह की धारि।
तिन महं अति दारुन दुखद माया रूपी नारि॥८४॥

चौपाई

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिबिसि कह नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाशय झारी। होइ ग्रीषम सोषै सब बारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। तिनहि हर्षप्रद बरषा (?) एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन कह सरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ तिनहि पेषत हर चंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहै नारि सिसिर सम पाई॥
चतुर बिनिक रजनी अंधियारी। पाप उलूकन कों सुखकारी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बंसी सम तिय कहहिं प्रबीना॥
दोहा अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनिबर यह जिय जानि॥८५॥

चौपाई

मुनि रघुपति के बचन सुहाये। मुनि तन पुलक नयन जल छाये॥
कहहु कवन प्रभु कै यह रीती। सेवक पर ममता अति प्रीती॥

१ पृष्ठ २७ आरण्य।

२- अभिमानी

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान मान सो पर्म अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥
संतन के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भंजन भव भीरा॥
सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जेहि ते मैं उनके बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्य सरल कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मद मत्सर हीना। धीर धर्म्म गति परम प्रबीना॥
दोहा। गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्हकें देह न गेह॥८६॥

चौपाई

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाही। पर गुन सुनत अधिक हरषाही॥
सम सुसील नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबन पर प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदित सु मो पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनि साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते॥
छन्द: कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे
सिर नाइ बारहिं बार चरनन्ह ब्रह्मपुर नारद गये
ते धन्य तुलसीदास(१)आस तजि जे प्रभु भजहिं जे हरि रंग रंगे।
दोहा: रावनारि जस पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहीं बिनु प्रयास ते लोग॥८७॥
दीप सिखा कुलटी जोबन बातिनु होति पतंग।
बहु रसना प्रभु नाम ही करहिं सदा सतसंग॥८८॥

इति श्रीरामायणे मानस कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्य संपादिनी भ
भुवन संचारे राम बन चरित्र वर्णनो नाम तृतिया सोपान आरण्य कांड समाप्त॥३॥

श्री तुलसीदास कृत की आज्ञा सों उनके भ्राता सुत छन्नमदास सोरों क्षे
निवासी हेत लिखित लछिमनदास काशीजी मध्ये संवत् १६४३ अषाढ़ सुद ४ सु
इति॥

---

१ पृष्ठ २८ प्रारम्भ।

दोहा रत्नावली

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दोहा रत्नावली लिख्यते ॥

हाड़ सहज ही हौं कही सहो शोच हिरदेस ॥
हौं रतनावलि जानि भई पिय हिय काच विशेष ॥१॥
१ श्रीयुते रामानुजायनमः ॥ श्री पुरुषरत्न
कमलेभ्यो नमः ॥ अथ दोहा रत्नावली लि० ॥१॥
दोहा हाड़ सहजो जानि काच हौं हौं ।१।
२ श्रीगणेशाय नमः अथ रत्नावली लिख्यते
दोहा लिख्यते । जानी गई पिय हिय ॥१॥
बनवि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक रूप ॥
विवत दुखित हूँ चलि गए रतनावलि उर भूप ॥२॥
१ बदरिका हो रूप विवत हूँ गये ।२।
२ गई पिय रूप विवत हूँ उर, भूप ॥२॥
हाड़ बदरिका बन भई हौं बाधा विहमेलि ॥
रतनावलि हौं नाम की रखहि दयो बिस मेलि ॥३॥
१ हौं विष मेलि हौं विष
बदरिका बन बाधा ।३।
२ बदरिका बन, मही, बाधा
विष रखहि बीस मेलि ॥३॥
सुमहु बचन अमृत गरल रतन प्रकृत के साथ ॥
जो मो कहुँ पति प्रम संग इस प्रेम की नाथ ॥४॥
१ अमृतमित क्यों मोकहुँ संग ।४।
कहि अनुसंगी बचन हूँ परिनति हिये विचारि ॥
जो न होइ पतिप्राउ उर रतनावलि अनुहारि ॥५॥
१ हूँ ।५।
रतन देव बस अमृत बिस बिस अमिरत जानि जात ।
सूपी हू उलटी परै उलटी सूपी बात ॥६॥
१ बस विष विष, जानि ।६।
रतनावलि औरहि कछु चाहिय होइ कछु और ॥
पांच पैड आगे चलै होनहार सब ठौर ॥७॥
१ औरे कछु, पांच पैड ।७।
मन चाहत रतनावली विधि बस अनमल होइ ॥
हौं प्रिय प्रेम बढ़ो चहो दयो मूलतें पोइ ॥८॥
१ चाहित हौं ।८।

बानि परै कहुँ रघुपति कहुँ अहि कहुँ अहि रघुपति अपात ।
रघुपति रघुपति अहि अहि कबहुँ रहत समय की बात ॥९॥
१ कहुँ कहुँ कबहुँ ।९।
पिक मोकहुँ मो बचन लगि मो पति लहहु बिराम ॥
भई बियोगिनि निज करनि रहुँ उड़ावति काम ॥१०॥
१ मोकहुँ रहुँ, उड़ावति ।१०।
२ मोकों भइ बियोगिन उड़ावति ।४।
हौं न काग अपराधिनी तऊ छमा करि देउ ॥
चरनन दासी जानि निज बेग मोरि सुधि लेउ ॥११॥
१ तौउ बेगि ।११।
२ तौउ छिमा मोर, सुधिय लेउ ।५।
जदपि गए घर सों निकरि मो मन निकरे नाहिं ।
मन सों निकसु तो दिनहिं जा दिन प्रान नसाहिं ॥१२॥
१ गये सों मनहो निकरो दिनहिं ।१२।
२ गये, निकरी नाहं दिनहिं
पिरान नसाहं ।६।
माय रहौंगी मौन हौं बारहु पिय बिय तोस ॥
कबहुं न बढ़ै उराहनों दहै न कबहुं दोस ॥१३॥
१ हौं कबहुं न देहुँ देहुँ कबहु (न) दोष ।१३
२ मारी पिय बिय कबहु देहुँ
उराहनो देहुं कबहुं ।७।
छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के नाह ॥
बुरी भली हौं आपकी तजउ न मेरउ निबाह ॥१४॥
१ अपराधिन के नाथ निबाह ।१४।
२ छिमा करो अपराधिन, बुरी
तजो, निबाह ।८।
कहां हमारे प्राण अस जो पिय दरसन देहुं ॥
काइ पाहिनी दीठि सों एक बार लखि लेहुं ॥१५॥
१ कहां, देयँ काहि लेयँ ।१५।
२ पिय, देहुं, ऐक लेहुं ।१०।
दीनबंधु कर धर गयो दीन बंधु कर छांह ॥
तौउ भई हौं दीन अति पति त्यागी मो बांह ॥१६॥
१ दीनबन्धु छांह, हौं बांह ।१६।
२ दीन बन्धु कै दीन बंधु के तोउ
भई हौं तयागी बांह ।९।
सबक अवागन गुन गुरुन गेह गयो पिय स्याम ।
रतनावलि आमा गई तुम बिन बन सब गाम ॥१७॥

१ बिन, बन प्राम ।१७।
बिन ॥१६॥
१ भयो पिय, सयाम गइ बिन बन ।१६।

कबहुं कि ऊये भाग रबि कबहुं कि होइ बिहान ।
कबहुं कि बिकसे उर कमल रतनावलि सकुचान ॥१८॥
१ कबहुं रबि कबहुं कबहु कि बिकसे,
सकुचान ।१८।

सोवत सों पिय जगि गए जगिहु गई हौं साइ ।
कबहुं कि अब रतनावलिहि आइ जगावहि मोइ ॥१९॥
१ सोव(त) सों जगि गये हौं,
कबहुं जगावें ।१९।

राम बगति भूपित भयो पिय हिय निपट निकाम ।
अब किमि भूपित होइ है तहु रतनावलि बाम ॥२०॥
१ होहि है तहु ।२०।
२ पिय, हिय होइ, तहु बाम ।१५।

तीरथ आदि बराह के तीरथ सुरसरि पार ।
जाही तीरथ आइ पिय अबउ जगत करतार ॥२१॥
१ आय अबहु, याही तीरथ आय अबहु ।२१।
२ जाही अबो ।१६।

प्रभु बराह पद पुत्र महि जनम गही पुनि एहि ।
सुरसरि तट महि स्थापि अस गए राम पिय केहि ॥२२॥
१ पुत महि जन (म) गही गये ।२२।
२ प्रिभु पुत महि, ऐहि गही
बिमाय गये, पिय ।१७।

सबहि तीरथनु रमि रह्यो राम अनेकन रूप ।
जहीं नाथ आयो चले व्यापी त्रिभुवन भूप ॥२३॥
१ जहीं आयो, व्यापो ।२३।
२ सर्व रूप बिमायो त्रिरभुवन ।१८।

सुबरन पिय संग हौं सखी रतनावलि सम कांतु ।
तिहि बिछुरत रतनावली रही कांतु अब कांतु ॥२४॥
१ बिछुरत ।२४।
२ पिय हौं बिछुरत अब ।१९।

आनु बनहि लहि हरषि हरि हरत भगत भव रोग ।
तासु दास पद दासि हू रतन सहत कत दोष ॥२५॥
१ भव दासि है ।२५।
२ भव ।६८।

राम जासु हिरदे बसत सो पिय मम उर माम ।

एक बसत दोऊ बसहिं रतन भाय अभिराम ॥२६॥
१ हिरदै दोऊ बसैं ।२६।

मोहि दीनो संदेस पिय अनुज मंद के हाथ ।
रतन समुझि जनि पूषक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ ॥२७॥
१ मोह दीनों मन्द ।२७।
२ मोह पियय प्रियक मोह ।६६।

दुपनु भोगि रतनावली मन महुं जनि कुंपियाइ ।
पापनु फल दुष भोगि तू पुनि निरमल ह्वै जाइ ॥२८॥
१ दुपियाइ, ह्वै जाय ।२८।

ज्यों ज्यों दुष भोगति तसहिं दूरि होत दुष पाप ।
रतनावलि निरमल बनत जिमि सुबरन सहि ताप ॥२९॥
१ ज्यों ज्यों तसहि, तब निरमल बनत ।२९।
२ तसहि, तब बनत ।६७।

को जाने रतनावली पिय बियोग दुष बात ।
पिय बिछुरन दुष जानतीं सीय दमेती मात ॥३०॥
१ जानें सीय दमैती ।३०।
२ पिय, बिछोग दिय जानती
सीय दमेती ।३२।

रतनावलि अब सिंधु महि तिय जीवन की नाव ।
पिय कबट बिनु कौन जग पर किनार लाव ॥३१॥
१ अब ।३१।
२ तिय पिय ।३३।

हौं न उऋन पिय सों भई सेवा करि इन हाथ ।
अब हौं पावहुं कौन बिधि सब पति दी(ना)नाथ ॥३२॥
१ सेवा दीनानाथ पावहुं ।३२।
२ उरिन पिय सो भई हाव पावौं
कौन दीनानाथ ।३६।

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज ।
सकुच गई बसु पिय बए सग्यो न सेवा साज ॥३३॥
१ बसे ।३३।

पति पद सेवा सों रहित रतन पादुका देइ ।
तिरत नाव सों रघु सेहि सरित पार करि देइ ॥३४॥
१ सो, तिहि ।३४।

रतनावलि पति राग रवि दे बिराग महुं आनि ।
उमा रमा बहजानिनी निज पतिपद अनुरानि ॥३५॥
१ रैंगि मे आनि ।३५।

कबहुँ रह्यो नवनीत सो पिय हिय भयो कठोर।
किमु न द्रवहि हिम उपल सम रतन फिरहु दिन मोर ॥३६॥
१ रह्यो नवनीति, किमि न द्रवहि फिरे ।३६।
कर गहि साए नाथ तुम बाहन बहु बलवाइ।
पवहु न परसाए तबत रतनावलिहि जगाइ ॥३७॥
१ साये बलवाय परसाये जगाय ।३७।
मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार।
गहि बसंत आगम भयो तब लखि पर्यो तुसार ॥३८॥
१ विविध गहि बसन्त, त(व)लखि
परयो तुसार ।३८।
नारि सोइ बड़भागिनी जाके पीतम पास।
लखि लखि मन सीतल करै हीतल लहै हुलास ॥३९॥
१ × ।३९।
२ बड़भागिनी लखि, लहै ।१२।
भवन बसन भूषन भवन पिय बिन कछु न सुहाइ।
भार रूप जीवन भयो छिन छिन जिय अकुलाइ ॥४०॥
१ बसन बिन सुहाय रूप अकुलाय ।४०।
२ बसन भूषन पिय, जिय ।१३।
बैस बारही कर गही सोरहिं भवन कराइ।
सतरहस लागत करी नाथ रतन असहाइ ॥४१॥
१ बारही सोरहिं बीन कराय,
सत्ताइस असहाय ।४१।

सागर परस सखी रतन संपत जो दुपदाइ।
पिय वियोग जननी मरन करन न जुस्यो जाइ ॥४२॥
१ सागर कर रस लखि रतन
(हाथिय में 'लखि' का 'खी' दीखे है) ।४२।
पिय वियोग दाधा बही रत(न) काल नगिचाय।
मिल कर बाहें आइ तन ती मन अबहु सिराय ॥४३॥
१ रतन अबहुँ ।४३।
जनम जनम पिय पद पदम रहै राम अनुराग।
पिय पितुरन होइ न कबहु पावहुँ अचल सुहाग ॥४४॥
१ कबहुँ, पावहुँ ।४४।
२ पिय रहै पिय, कर्मठ पावौं ।२०।
रतन प्रम बंदी तुला पला पुरे इकसार।
एक बाट पीड़ा लहै एक मेह संभार ॥४५॥
१ बाट ।४५।

पति मति पति बित मीत पति पति गुर सुर भरतार।
रतनावलि सरबस पतिहि बंधु बंधु बमसार ॥४६॥
१ × ।४६।
२ सुख रतनावली बदि ॥३०॥
पति के सुख सुख मानती पति दुख देपि दुखाति।
रतनावलि सनि ईत तजि तिय पिय रूप सपाति ॥४७॥
१ × ।४७।
२ रतनावली दुएति तिय पिय रूप ।३४।
सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत कुब लोय।
पै तिय कहुं पिय प्रेम रस बिदु सरिस नहिं सोय ॥४८॥
१ ब्रह्म कहुं नहिं ।४८।
तिय जीवन तेमन सरिस तौलौं कछुक रचै न।
पिय सनेह रस रामरस जौ लौं रतन मिलै न ॥४९॥
१ तौलो रच जौ लौ ।४९।
पिय सांचो सिंगार तिय सब झूंठे सिंगार।
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निस्सार ॥५०॥
१ सांचो सब बिनु ।५०।
२ पिय सांचो सिंगार, तिय झुठे, सिंगार,
सिंगार, निसार ।१४।
नेह सील गुन बित रहित कामी हू पति होइ
रतनावलि भलि नारि हित पुजब देव सम सोइ ॥५१॥
१ हूं, होय सोय ।५१।
२ पूजिय देव सम होइ ।२१।
अंध पंगु रोगी बधिर मूढहि न त्यागति माइ।
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहि रतन न सती बिहाइ ॥५२॥
१ माय कुरूप, दुरगुन बिहाय ।५२।
दूर कुटिल रोगी जनी दरिद मंद मति नाह।
पाइ न मन अनपाइ तिय सती करति निरबाह ॥५३॥
१ × ।५३।
२ दूर रिनी अनुपाइ तिय ।५६।
बन बापिनि बामिय भवति भूरी धामु न पाइ।
रतन सती तिमि दुख सहति सुप हित अप न कमाइ ॥५४॥
१ बन भवति ।५४।
बिपति कसौटी पै बिमल जागु चरित दुति होइ।
अमत सराहन जोग तिय रतन सती है सोइ ॥५५॥
१ होय सोय ।५५।
सती बनत जीवन लगे बनती बनत (न) देर।

चिरत हेर आपे कहा चढ़िबो कठिन सुमेर ॥५६॥
१ चढ़िबो, बमत न हेर ।५६।
बाम बैन ही [illegible] बरी दया परम कुल कानि ।
बड़े भएं रतनावली कठिन परैगी बानि ॥५७॥
१ बाम, बड़े, भयें बानि ।५७।
बारे पन सों मातु पितु जैसी कारत बानि ।
सो न छुटायें पुनि छुटति रतन भयेहुं सयानि ॥५८॥
१ बारे, बानि छुटाये छुटत ।५८।
नाथ विषय रस मीठ मधि भूषन भवन बिचारु ।
अंबरतल आमल रतन कम्पहि हित न सिंगारु ॥५९॥
१ गोंधि बिचारु सिंगार ।५९।
सरिकन संग बैसनि हंसनि बठनि रतन एकंत ।
मलिन करत कन्या चरित हरन सील कहैं संत ॥६०॥
१ × ।६०।
नयन बचन तिय बसन निज निरमल नीचे बार ।
करतब रतन बिचार तिमि ऊंचे राषि उबार ॥६१॥
१ करतब ऊंचे ।६१।
हंसन कसन हिचकन छिकन अंबरन ऊंचे बैन ।
कुटु बन सनमुष नल न निज ऊंचे आसन नैन ॥६२॥
१ हंसन, मुख ।६२।
सबन बेद तन बन रतन सुरति सुमेपन अन्न ।
दान परम उपकार पर राषि बधू परछन्न ॥६३॥
१ उपकार तिमि राषि बधू ।६३।
भूषन रतन अनेक जग पै न सील सम कोइ ।
सील जासु नैनन बसत सो जग भूषन होइ ॥६४॥
१ बसत ।६४।
सत्य सरसवानी रतन सील लाज ये तीन ।
भूषन सावति की सती सोभा तासु अधीन ॥६५॥
१ × ।६५।
सुबरन मय रतनावली मन मुकता हारादि ।
एक लाज बिनु नारि कहँ सब भूषन जग बादि ॥६६॥
१ रतनावली, मनि, बिनु सब ।६६।
२ रतनावली ऐक बिनु नारिकों भूषन ।६६।
ऊँचे कुल जनमें रतन रूपवती पुनि होइ ।
करम दया गुन सील बिनु ताहि सराहै न कोइ ॥६७॥
१ ऊँचे रूप बिनु ।६७।

स्वजन सखी सों जनि करहु कबहु मन मोहार।
मन सों प्रीति प्रतीति तिय रतन होति सब छार ॥६८॥
१ करहुँ कबहु ।६८।
रतन हास पर पर पमन पेम देह सिमार।
तजि उतसवन बिसोकिबी तहि बियोग भरतार ॥६९॥
१ × ।६९।
रतन करोपन झाँकिबी तिमि बैठनि दरबार।
बात बात प्रसपन हँसन तिय दूषन बाबार ॥७०॥
१ झाँकिबी बातबात ॥७०॥
मबक पान पर [पर बसन प्रमन सयनु बिनु काज।
पूषक बाल पति पुष्ट संग पट तिय दूषन साज ॥७१॥
१ × ।७१।
२ प्रियम सयन प्रियक पुष्ट तिय दूषन ।७२।
कबहुँ अकेली जनि करहु सन्तहु निकट पयान।
देखि अकेली तिय रतन तबत संतहु ध्यान ॥७२॥
१ कबहुँ करहुँ बान ।७२।
घर घर घूमनि नारिसों रतनावलि मित बोलि।
इनसों प्रीति न जोरि बहु जनि इह भेद तु खोलि ॥७३॥
१ बोलि बहु ।७३।
२ बोलि बहु बह ।८८।
क्रोध पुमा व्यभिचार मद लोभ चोरि मद पान।
पतन कराबन हार ये रतनावली महान ॥७४॥
१ × ।७४।
२ बिमचार ।८९।
बह हँसनी बहु बोलनी बतकट बिबकट नारि।
बह बोलनि हँसिनि रतन लहती दूषन मारि ॥७५॥
१ बहु बह बोलनि दूषनि ।७५।
२ बहु बहु बह बोलनि ।९०।
कबहुँ नारि उतार सों करिय न बैर सनेह।
बोझ बिषि रतनावली करत कलंकित एह ॥७६॥
१ कबहुँ बैर बोझ ।७६।
२ कबहुँ बैर ऐह ।९१।
बनिक बेसुआ भिखुकन जनि कबहुँ बतियाद।
रतनावलि जैह दूर परि ठग जन ठगत अमाद ॥७७॥
१ कबहूँ बेसुआ कबहुँ कब ।७७।
२ बेसुआ भिखुकन कबह रतनावलि
रह भिरमाद ॥७२॥

अनजाने जन को रतन कबहु न करि बिसवास।
बस्तु न ताकी पाइ कछु देइ न नेह निवास ॥७८॥
१ कबहु ।७८।
करमचारि जन सौं भली जथा काज बतरानि।
बहु बतानि रतनावली पुनि अकाज की पानि ॥७९॥
१ बतरानि, बहु बतानि रतनावली ।७९।
२ करमचारी बतरानि बहुबतानि
रतनावली ।१०३।
अनृत अचन मायारचन रतनावली बिसारि।
माया अनिरत कारने सती सबौं त्रिपुरारि ॥८०॥
१ सबौं त्रिपुरारि ।८०।
२ अनिरत त्रिपुरारि ।१०८।
साहस सौं रतनावली अति करि कबहुं नेह।
सहसा पिसु घर नील करि सती बराई देह ॥८१॥
१ × ।८१।
२ कबहुं बराई ।१०९।
अगिनि तूल चकमक दिया निसि महँ बहु समारि।
रतनावलि जनु का समय काज परहि जरबारि ॥८२॥
१ सम्हारि बारि ।८२।
२ सम्हारि, पर बारि ।१०३।
आलस तजि रतनावली जथा समय करि काज।
अबको करिबो अबहि करि तबहि पुरै सुप साज ॥८३॥
१ करिबो अबहि पुरै ।८३।
२ अबको करिबो अबहि ।१११।
रतनावलि सबसौं प्रथम जगि उठि करि गृह काज।
सबनु सुवाइहि सोइ तिय अरि संभारि गृहसाज ॥८४॥
१ सबसा सबनु, सुवहि, सम्हारि ।८४।
२ सबसौं त्रिथम सबनु, सुवाइहि
सम्हारि ॥११२॥
तू गृह ही श्री ही रतन तू तिय सकति महान।
तू अबला सबला बनै अरि अर सती बिधान ॥८५॥
१ तू गृह श्री ही रतन अबला ।८५।
रतन रमा सो सुप सदन जनि सारद अरि ग्यान।
पलन दलन हित कालिका जनि कर धारि कृपान ॥८६॥
१ जनि ज्ञान जनि ।८६।
सासु ससुर पति पद परसि रतनावलि उठि प्रात।

सादर सेइ सनेह मिल सुनि सादर तेहि बात ॥८७॥
१ बात ।८७।
सासु ससुर पति पद रतन कुल तिय तीरथ धाम ।
सेवहि तिय जय जस लहहि पुनि पति लोक ललाम ॥८८॥
१ सेवहु, लहै ।८८।
मात पिता सासुहु ससुर जनक नाथ कहु बैन ।
भैपज सम रत्नावली पचत करत तन चैन ॥८९॥
१ सासु, तनु ।८९।
२ सासु, चैन ।६९।
जननि जनक भ्राता बड़ी होइ कु निज भरतार ।
पढ़ह नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥९०॥
१ बड़ो पढ़ह ।९०।
२ मिता होयी पढ़े चारिसो ॥५५॥
पुनक जनक जामात सत ससुर विदर बहु भ्रात ।
इनहूं की एकांत बहु कामिनि सुनि (जनि) बात ॥९१॥
१ अरु इनहूं एकान्त बहु, कामिनि
सुनि जनि बात ।९१।
२ अरु मिरात ऐकांत जिन बात ।४१।
रतनावलि पति छांडि इक जेते नर जग माहिं ।
पिता भ्रात सुत सम लघहु बीरथ सम लघु आहिं ॥९२॥
१ छांडि माहि आहि ।९२।
२ छांडि मांह, मिरात मयी आह ।७३।
सासु जिठानिहि जननि सम ननदहि भगिनि समान ।
रतनावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥९३॥
१ सासु जिठानि जननि सम ।९३।
२ जिठानीहि करी प्रिमान ।७४।
सौतिहि सखि सपि सम व्यवहरहु रतन प्रेम करि पूरि ।
सासु तनय निज तनय गनि मठहु गुनस सुप पूरि ॥९४॥
१ सौतिहि सपि सम व्यवहरो सही ।९४।
गुरु सपि बांधव भृत्य जन जथा जोग गुनि चित्त ।
रतन इनहि नाहर सपा करहु बिनरहु बित्त ॥९५॥
१ गुरु बांधव चित्त इनहि करहु बित्त ।९५।
पति पितु जननी बंधु हितु कुटुम परोसि बिचारि ।
जथा जोग आदर करहि सो कुलवंती नारि ॥९६॥
१ बधु, करै ।९६।
२ करै ।६२।
करि कुराह रतनावली निज बिय पाट पुरान ।

यथा समय बिन वै करहु करमचारि समान ॥९७॥
१ × ।९७।
तन मन धन भाजन बसन भोजन पवन पुनीत ॥
सो राखति रत्नावली तेहि पावत सुर मीत ॥९८॥
१ × ।९८।
२ जे, तिहि ।७०।
धन जोरति मित व्यय करति घर की वस्तु सुधारि ।
सुप करम आचार कुल पतिरत रतन सुनारि ॥९९॥
१ × ।९९।
२ वस्तु संभारि, सुप ।७१।
जे न लाभ अनुसार धन मित व्यय करहिं विचारि ।
ते पाछे पछितात अति रतन रंकता धारि ॥१००॥
१ पाछें ।१००।
तन मन पति सेवा निरत हुमसे पति लखि लोय ।
इक पति कहं पूरुष भनै सती सिरोमनि सोय ॥१०१॥
१ तनसन हुमसै कहु पूरुष सि(रो)मनि ।१०१।
२ सोइ पूरुष भिनै सोइ ।६१।
बारी पितु आधीन रहि जोबन पति आधीन ।
बिनु पति सुत आधीन रहि पतित होति स्वाधीन ॥१०२॥
१ बारी ।१०२।
२ बारी, जोबन, सुआधीन ।७७।
पितु पति सुत कुल पूजक रहि पावै न तिय कल्यान ।
रतनावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ॥१०३॥
२ सुतसों अलग रहि पावै न तिय कलियान ।२२।
बिनवारिहु रतनावली तुलहि देति जराय ।
सद् कुलंग बिनि नारि को पतिबत देत दिखाय ॥१०४॥
१ तुलिहि तिनि नारि को ।१०४।
२ रतनावली तुलहि जराही, तिनि नारि
को पतिबिरत दिखाही ।
अनहु न करि रतनावली कुलटा तिय को संग ।
तनक सुधाकर संग सों पलटति रजनी रंग ॥१०५॥
१ अनहुं ।१ ५।
२ छिनत तिय तनक सुधा
पों बलो लपी पलटति ।२७।
धिक तिय सो परपति भजति कहि निरत अघ लोग ।
बिपरत दोऊ लोक तिहि पावति बिधवा जोग ॥१०६॥
१ बिपरत तेहि ।१०६।

सादर सेइ सनेह मिल सुनि सादर तेहि बात ॥८७॥
१ बात ।८७।
सासु ससुर पति पद रतन तुम तिय तीरथ धाम ।
सेवहि तिय जय जस लहहि पुनि पति लोक ललाम ॥८८॥
१ सेवहु, लहै ।८८।
मात पिता सासहु ससुर नमद नाथ कहु बैन ।
भेषज सम रत्नावली पचत करत तन चैन ॥८९॥
१ सासु तनु ।८९।
२ सासु, चैन ।६६।
जननि जनक भ्राता बड़ी होइ तु निज भरतार ।
पढ़इ नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥९०॥
१ बड़ो पढ़इ ।९०।
२ भ्रिता होही पढ़े चारिसो ॥१२॥
सुनक जनक बामात सुत ससुर देवर बहु भ्रात ।
इनहूं की एकांत बहु कामिनि सुनि (बनि) बात ॥९१॥
१ अब इनहूं एकान्त बहु, कामिनि
सुनि बनि बात ।९१।
२ अब भिरात ऐकांत जिन बात ।४१।
रत्नावलि पति छांडि इक बैठे नर जय नांहि ।
पिता भ्रात सुत सम लघु दीरघ सम लघु नांहि ॥९२॥
१ छांडि नाहि नाहि ।९२।
२ छांडि नांह, भिरात लघी नाह ।७१।
सासु जिठानिहि जननि सम ननदहि भगिनि समान ।
रत्नावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥९३॥
१ सासु जिठानि जननि सम ।९३।
२ जिठानीहि करी प्रिमान ।७४।
सौतिहि सपि सपि सम व्यवहरहु रतन भेद करि दूरि ।
सासु तनय निज तनय नलि लहहु सुजस सुख भूरि ॥९४॥
१ सौतिहि सपि सम व्यवहरो लहो ।९४।
पुहु सपि बांधव भृत्य जन जथा जोग गुनि चित्त ।
रतन इनहि नाहर सदा करतहु बितरहु बित्त ॥९५॥
१ पुहु बांधव चित्त इनहि करतहु बित्त ।९५।
पति पितु जननी बंधु हितु कुटुम परोसि बिचारि ।
जथा जोग आदर करहि सो कुलवंती नारि ॥९६॥
१ बधु करै ।९६।
२ करै ।६२।
यहि प्रकार रत्नावली निज पिय बाट पुरान ।

बया समय बिन दै करहु करमचारि सनमान ॥९७॥
१ × ।९७।
तन मन धन भाजन बसन भोजन भवन पुनीत ॥
जो रावति रत्नावली तेहि गावत सुर मीत ॥९८॥
१ × ।९८।
२ जे, तिहि ।७०।
धन जोरति मित व्यय करति घर की वस्तु सुधारि ।
सूप करम आचार कुल पतिरत रतन सुनारि ॥९९॥
१ × ।९९।
२ वसतु संभारि, सूप ।७१।
जे न लाभ अनुसार धन मित व्यय करहिं विचारि ।
ते पाछे पछितात अति रतन रकता भारि ॥१००॥
१ पाछें ।१००।
तन मन पति सेवा निरत हुनसे पति लषि लोय ।
इक पति कहं पूरुष मनै सती सिरोमनि सोय ॥१०१॥
१ तनसन हुनसै कह पूरष सि(रो)मनि ।१०१।
२ लोइ पुरुष भिर्न लोइ ।६१।
बारी पितु आधीन रहि जौबन पति आधीन ।
बिनु पति सुत आधीन रहि पतित होति स्वाधीन ॥१०२॥
१ बारी ।१०२।
२ बारी जोबन, सुआधीन ।६७।
पितु पति सुत कुल पृथक रहि पाव न तिय कल्यान ।
रत्नावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ॥१०३॥
२ सुतसों अलग रहि, पावै न तिय कलियान ।२२।
बिनमारिहु रत्नावली तुलहि देति बराय ।
सनु कुसंग जिमि नारि को पतिव्रत देत दिखाय ॥१०४॥
१ तुलिहि तिमि नारि को ।१०४।
२ रत्नावली तुलहि बराही तिमि नारि
को पतिबिरत दिखाही ।
छनहु न करि रत्नावली कुलटा तिय को संग ।
तनक सुधाकर संग सों पसटति रजनी रंग ॥१०५॥
१ छनहुं ।१०५।
२ छिनत तिय तनक सुधा
सों मसो लषी पसटति ।५७।
धिक तिय सो परपति भजति कहि निदरत जग लोग ।
बिमरत दोऊ लोक तिहि पावति बिलखा लोग ॥१०६॥
१ बिमरत तेहि ।१०६।

२ सो तिय निवरति बिमरति दोउ तिहि ।२८।
दीन हीन पति त्यागि निज करति सुपति परवीन ।
सो पति नारि कहाय धिक पावति पद अकुलीन ॥१०७॥
१ × ।१०७।
२ तिय्यागि कहाइ, पावति कुल अकुलीन ।२७।
एकुहि अपवाचार तिमि एकुहि तिय भरतार ।
बचन सूचन को एकु ही रतन एकु जग सार ॥१०८॥
१ × ।१०८।
सो व्यभिचार विचार उर रतन कर तिय सोय ।
कोटि कलप बसि नरक पुनि जनमि कूकरी होय ॥१०९॥
१ × ।१ ९।
२ करे तिय सोही कूकरी होही ।४७।
परम सुवन संतति चरित कुल कीरति कुल रीति ।
सबहि बिचारत नारि इक करि पर नरसों प्रीति ॥११०॥
१ सबहि ।११०।
२ नरसो ।४६।
धी को घट है कामिनी पुरुस तपत अंगार ।
रतनावलि धी अबिनि को उचित न संग बिचार ।१११।
१ पुरुष अबिन को ।१११।
२ घट है पुरुष ।४४।
सो तिय संतति लोभ बस करति अपर नर भोग ।
रतनावलि नरकहि परत अ(म) निवरत सब लोग ॥११२॥
१ बस नरकहि, अगनिवरत ।११२।
२ तिय बस लोभु, नरकै जग लोगु ।६ ।
सो तिय संतति काज उर अहित करहि परकीय ।
ते न लहहि संतति रतन कोटि जनम लगि तीय ॥११३॥
१ × ।११३।
बार बधू रथ चढ़ि चलइ नारि रतन तिवार ।
पैदर दीन सती सरिस होइ न महिमागार ॥११४॥
१ बारबधू, चलै ।११४।
रतनावलि जिय जानि तिय पतिव्रत सकति महान ।
मृत पतिहू जीवित करयो सावित्री सतिवान ॥११५॥
१ × ।११५।
२ जिय तिय पति त्रिरत महानु, त्रिरत
पतिव्र सावितरी सतिवानु ॥५५॥
जाके कर में कर दयो मात पिता का भ्रात ।
रतनावलि सह बेद बिधि सोइ कह्यो पति जात ॥११६॥

१ करम ।११६।
२ करमै मिरात ।२६।

पति सनमुष हंसमुष रहति कुसल सकल गृह काज।
रतनावलि पति सुषद तिय बरति सुगम कुल लाज ॥११७॥

१ हुंस ।११७।
२ घर काज तिय ।२३।

जो मन बानी देह सों पियहि नाहि दुष देति।
रतनावलि सो साधवी धनि सुष जग जस लेति ॥११८॥

१ नाहि ।११८।
२ देहसो पियहि, नाह ।२४।

उद्यापन तीरथ बरत जोग जग्य जप दान।
रतनावलि पति सेव बिन सबहि अकारथ जान ॥११९॥

१ बिन सबहि ।११९।
२ उदिआपन बिरत जोग जगि,
बिन सबै ।३८।

रतनावलि न दुषाइये करि निज पति अपमान।
अपमानित पति के भयें अपमानित भगवान ॥१२०॥

१ भये ।१२ ।
२ दुषाइये, भये ।३९।

सात पैंय का संग परे ता संग कीजै प्रीति।
सब बिधि ताहि निबाहिये रतन बेद की रीति ॥१२१॥

१ सब ।१२१।
२ भर, निबाहिये ।४०।

जाने निज तन मन बयो ताहि न दीजै पीठि।
रतनावलि तापै रषहु सदा प्रेम की दीठि ॥१२२॥

१ प्रीति की दीठि ।१२२।
२ पीठि रषी ।४१।

अनाचार अनभाव रत निज पति रतन सपाहि।
ताहि चौसर समुचित बचन रहमि सोचिये ताहि ॥१२३॥

१ सपाह सोचिये ।१२३।

सत संमति उपबास जब तप मष जोग बिबेक।
पति सेवा मन बच करम रतनावलि उर एक ॥१२४॥

१ × ।१२४।
२ उपबास जोगु, बिबेकु पती
रतनावली ऐकु ।४८।

पति के जीवत निधन हूं पति अनदुषत काय।
करति न सो जग जस लहति पावति पति अबिराम ॥१२५॥

१ हैं मनकचत ।१२५।
२ मनकचत ।२५।
रतनावलि पति सों असम कहो न बरत उपास ।
पति सेवति तिय सकल सुख पावति सुरपुर बास ॥१२६॥
१ × ।१२६।
२ पतिसो तिय ।२६।
बिनु पति पति जपपति तुमिरि साक मूल फल पाइ ।
बिरमचर्ज बत मारि तिय जीवन रतन बनाइ ॥१२७॥
१ बिनु, बिरमचरज ।१२७।
२ बिनु, साय बिरमचरज बिरत तिय ।४२।
जीवत पति सासन गहै सेवहि ताहि सप्रेम ।
मरें सतीवत अनुसरहि पतिहित जप तप नेम ॥१२८॥
१ मरें अनुसरै ।१२८।
२ गहे, सब ताइ मरे, सतीवित अनुसरे ।५२।
पति तिय सो रतनावली पति संग चाहें देह ।
दोनों पति जीवत जियें मरत मरें पति नेह ॥१२९॥
१ जिये ।१२९।
२ तिय चाहै दोनो जिए, मरे ।५३।
धन सुप धन सुप बंधु सुप सुत सुप सबहिं सराहि ।
पै रतनावलि सकल सुप पिय सुप पटतरि नाहिं ॥१३ ॥
१ × ।१३०।
२ सबै सराहि, पै रतनावली
पिय पटतर नाहि ।६७।
मात पिता भ्रातादि सब जे परिमित आधार ।
रतनावलि आधार इक सरबस को भरतार ॥१३१॥
१ सब ।१३१।
२ परीमित ।१०४।
आपनु मन रतनावली पिय मन महँ करि लीन ।
सती सिरोमनि होइ नति अस आसन आसीन ॥१३२॥
१ × ।१३२।
२ आपन पिय मनमें ।६८।
जे तिय पति हित आचरहिं रहिं पति चित अनुकूल ।
लहहिं न सपनेहुँ पर पुरुष ते तारहिं दोउ कुल ॥१३३॥
१ सपनेहुँ पुरुष तारहिं ।१३३।
२ तिय, आचरै रह पति चित अनुकूल सदै
सपनिउ पुरुष तारै, हल ।५०।
अहर पाक करपाक तिय रतनावलि सुन सोय ।

सीस सनेह समेत सी सुरभित सुबरन सोय ॥१३४॥
१ × ।१३४।
२ तिय रतनावली दोही तो होही ।४६।
चतुर बरन कहं बिप्र गुरु अतिथि सबन गुरु जानि ।
रतनावलि जिमि नारि कहं पति गुरु कह्यो प्रमानि ॥१३५॥
१ चतुरबरन को बिप्रगुरु
गुरु नारि को गुरु ।१३५।
२ बरन को, अतिथी गुरु जान
तिमि नारिको प्रिरमान ।६४।
तीरथ न्हान उपास ब्रत सुर सेवा जप दान ।
स्वामि बिमुख रतनावली निसफल सकल प्रमान ॥१३६॥
१ × ।१३६।
२ बिरत प्रिरमान ।६३।
देति मंत्र सुठि मीत सम मेहिमि मातु समान ।
सेवति पति दासी सरिस रतन सु तिय बनि जान ॥१३७॥
१ × ।१३७।
रतन देह पति को भयो तोहि कहा अधिकार ।
पति समुहें पासें रतन रहि पति चित अनुसार ॥१३८॥
१ पति को भयो ।१३८।
सुर भूसुर ईसुर रतन सापी सजन समाज ।
पतिहि बचन दीने सुमिरि पालि धारि उर लाज ॥१३९॥
१ × ।१३९।
बचन हेत हरिचंद नृप भए स्वपच के दास ।
बचन हेत दसरथ दयो रतन सुतहि बनबास ॥१४०॥
१ भये सुपच बनबास ।१४०।
बचन हेत भीषम कर्यो गुरुसों समर महान ।
बचन हेत नृप बलि दयो परबहि सरबस दान ॥१४१॥
१ कर्यो युद्ध ।१४१।
बचन आपनो सत्य करि रतन न अनिरत भाषि ।
अनृत भाषिबो पाप पुनि उठति लोक सों साषि ॥१४२॥
१ भाषि, भाषिबो ॥१४२॥
कन्या दान बिबाह अरु बचन दान जे तीन ।
रतनावलि इक बार ही करत साधु परबीन ॥१४३॥
१ अरु ।१४३।
२ अरु ।६५।
सुजन बचन सरिता समय रतन दान अरु प्रान ।
मति गहि जे नहि बाहुरत सुपक पुटी परिमान ॥१४४॥

१ बाम बाह बाहुरत ।१४४।

पतिहि कुरीति न अति रतन अति दुरवचन उचारि ।
पतिसों रुठि न रोस करि तिय निज धरम सम्हारि ॥१४५॥

१ रुठि रोष सम्हारि ।१४५।

नर अपार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हल होत ।
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (गति) पोत ॥१४६॥

१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।

बिष अपजस पीऊस बस रतनावली निहारि ।
जियत मरें महि मृत जियें बिष तजि अमिरत धारि ॥१४७॥

१ बिष पीऊष बिष ।१४७।
२ बिष पीऊष नीहारि, जियत
जियत बिष अमिरत ॥४१॥

सुजस आदु जौलौं जगत तौलौं जीवत सोइ ।
मारेहु मरत न रतन अपजस लहत मृत होइ ॥१४८॥

१ सोय होय ।१४८।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ उदर बसो बास ।
रतनावलि अहिबास पर अंत काल जनु पास ॥१४९॥

१ जिमि बसो (अहि) बास ।१४९।
२ दुसट नारि जिमि उदर बेसो ।६६।

रतनावलि धरमहि रवत ताहि रपावत धर्म ।
धरमहि पावति सो पवति जेहि धरम को मर्म ॥१५०॥

१ धरमहि धरमहि ।१५०।
२ रतनावलि धरमहि रवत धरम,
धरमहि धरम ।८ ।

मैन मैन रसना रतन करन नासिका सांच ।
एकहि भारत अवस हूं स्त्रवत बिनावत पांच ॥१५१॥

१ ह्वै बिनावत पांच ।१५१।

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार ।
महहि न बदलो साधु जन बदलो लहु ब्यौहार ॥१५२॥

१ बदलो बदलो ।१५२।

परहित जीवन साधु जन रतन सफल है सोइ ।
निज हित कूकर काक कपि जीवहि का फल होइ ॥१५३॥

१ × ।१५३।

रतनावलि छनहूं जियें परि पर हित जन ध्यान ।
सोई जन जीवत मनहु मनि जीवत मृत मान ॥१५४॥

१ छनहूं ज्ञान मनहूं ।१५४।
२ छिनहूं सोई ज्ञान ।७६।

जे निज जे पर भेद इमि मधु जन करत विचार।
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१३३॥
अस करनी करि तू रतन सुजन सराहें तोह।
सुख जीवन मपि मुख लहहिं मरें करें दुख रोहें ॥१३४॥
१ सुख जीवन लहें मरे करें सुचि रोह ।१३४।
छोह सनेही जे रतन करहिं विपति में नेह।
सुख संपति लखि जन बहुत बनहिं नेह के गेह ॥१३७॥
१ बनें ।१३७।
विपति परें जे जन रतन निबहें प्रीति पुरानि।
हिमु सीत सुविमाय ते पै न बहुत जिय जानि ॥१३८॥
१ निबहें ।१३८।
रतनावलि सुख बचन हूं इक सुख (दुख) को मूल।
सुख सरसावत बचन मधु कहु उपजावत सूल ॥१३९॥
१ हूं इक सुख दुख को मूल ।१३९।
२ बचन ही सुखदुख ।३४।
मधुर असन जनि देत कोउ बोली मधुरे बैन।
मधु भोजन हित देत मधु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
१ बोली ।१६०।
२ बोली ।३५।
रतनावलि कांटो लगो बेधनु बयो निकारि।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं उन डारो हिय फारि ॥१६१॥
१ निकस्यो कहुं ।१६१।
२ हिय ।३६।
रतन भाव भरि मूरि जिमि कवि पद भरत समास।
तिमि उचरहु लघु पद करहिं अरथ गंभीर विकास ॥१६२॥
परहित करि करनत न कुछ गुपत रखहिं वे दान।
पर उपकृति अविरत रतन करत न निज गुन गान ॥१६३॥
मसहिं हाद दुरजन पुनी मलो न लागी प्रीति।
बिनकर मनिकर हू रतन उठत करत जिमि पीति ॥१६४॥
१ मलें लागी हिय ।१६४।
मन इकलो रहिबो रतन भलो न पल सहवास।
जिमि तरु दोमक मंग लहे आपन रूप विनास ॥१६५॥
१ तरु रूप ।१६५।
रतन बांझ रहिबो भलो भले न सौज कपूत।
बांझ रहे तिय एक सुख पाइ कपूत अकूत ॥१६६॥
१ बांझ भलो बांझ रहे ।१६६।
कुल के एक सपूत सों सकल सपूती मारि।

१ बाम अब बाहुरत ।१४४।

पतिहि कुरीति न लखि रतन बलि कुरवचन उचारि ।
पतिसों रूठि न रोस करि तिय निज धरम संभारि ॥१४५॥

१ कठि रोष सम्हारि ।१४५।

नर अधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हम होय ।
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (गति) पोत ॥१४६॥

१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।

बिस अपजस पीऊस बस रतनावली निहारि ।
जियत मरें नहि मृत जियें बिस तजि अमिरत धारि ॥१४७॥

१ बिष पीऊष बिष ।१४७।

२ बिष पीऊष नीहारि, बिसत
जित बिष अमित ॥८१॥

सुजस बाहु तीनों बपत तीनों जीवत सोइ ।
मारेहू मरत न रतन अजस लहत मृत होइ ॥१४८॥

१ सोय होय ।१४८।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ ऊपर बनो बास ।
रतनावलि अहिबास घर अत काल बनु पास ॥१४९॥

१ तिमि बनो (अहि) बास ।१४९।

२ दुसट नारि तिमि उपर बेनो ।६६।

रतनावलि बरमहि रपत ताहि रपावत बर्म ।
बरमहि पावति सो पवति जेहि बरम को मर्म ॥१५०॥

१ बरमहि बरमहि ।१५ ।

२ रतनावलि बरमहि रपत बरम
बरमहि मरम ।८ ।

मैन मैन रसना रतन करन नासिका सांच ।
एकहि मारत अधम हैं स्त्रवत जिआवत पांच ॥१५१॥

१ बहै जिआवत पांच ।१५१।

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार ।
सहहिं न बरनो साधु जन बरनो लघु व्यौहार ॥१५२॥

१ बरनो बरनो ।१५२।

परहित जीवन बासु जग रतन सफल है सोइ ।
निज हित दूकर काक कपि जीवहि का फल होइ ॥१५३॥

१ × ।१५३।

रतनावलि सुनहु जियें परि पर हित बस ध्यान ।
सोई जन जीवत गनहु अनि जीवत मृत मान ॥१५४॥

१ सुनहु मान गनहु ।१५४।

२ सिनहु सोई मत ।७९।

बे निज बे पर भेद हमि लघु जन करत विचार।
भरित उधारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥
अस करनी करि तु रतन सुजन सराहहिं सोइ।
सुख जीवन लपि सुद लहहिं मरें करें दुख रोइ ॥१५६॥
१ सुख जीवन लहै, मरें करें सुधि रोइ ।१५६।
सोइ सनेही बे रतन करहिं बिपति में नेह।
सुख संपति लपि जन बहुत लगहिं मेह के मेह ॥१५७॥
१ बनें ।१५७।
बिपति परें बे जन रतन निबहैं प्रीति पुरानि।
हिमु सीत सलिभाय ते पै न बहुत बिय जानि ॥१५८॥
१ निबहैं ।१५८।
रतनावलि सुप बचन हूं इक सुप (सुप) को मूल।
सुप सरसावत बचन लघु बहु उपजावत सूल ॥१५९॥
१ हूं इक सुप सुप को मूल ।१५९।
२ बचन ही सुपसुप ।१४।
मधुर असन जनि देत कोउ बोलो मधुरे बैन।
मधु भोजन छिन देत मु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
१ बोलो ।१६०।
२ बोली ।१५।
रतनावलि कांटो लग्यो भयनु दयो निकारि।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं तन डारो हिय फारि ॥१६१॥
१ निकस्यो कहुं ।१६१।
२. हिय ।१६।
रतन भाव भरि पूरि जिमि कवि पद भरत समास।
तिमि उचरहु लघु पद करहि अरथ गंभीर बिकास ॥१६२॥
परहित करि परनत न सुख गुपत रखहिं दै बाल।
पर उपकृति अमिरत रतन करत न निज गुन गान ॥१६३॥
भलहि होइ दुरजन गुनी भली न तासों प्रीति।
बिसधर मनिधर रतन डसत करत जिमि भीति ॥१६४॥
१ भलें तासों बिय ।१६४।
मन इकलो रहिबो रतन भलो न पल सहवास।
जिमि तरु दीपक सब महं आपन दूप बिनास ॥१६५॥
१ तरु रूप ।१६५।
रतन बांध रहिबो भलो भले न सौज कपूत।
बांध रहै तिय एक दुख पाइ कपूत अकूत ॥१६६॥
१ बांध, भलो बांध रहै ।१६६।
दुख दे एक कपूत सों सकल सपूतीं मारि।

१ मान मद बाहुरत ।१४४।
पतिहि कुरीठि न सखि रतन जनि कुरवचन उचारि ।
पतिसों रुठि न रोस करि तिय निज बरम संभारि ॥१४५॥
१ रुठि रोष सम्हारि ।१४५।
नर अपार बिनु मारि तिमि जिमि स्वर बिनु हम होत ।
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (पति) पोत ॥१४६॥
१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।
बिस अपजस पीऊस बस रतनावली निहारि ।
बिपत मरें सहि मृत जियें बिस तजि अमिरत बारि ॥१४७॥
१ बिष पीऊष बिष ।१४७।
२ बिष पीऊष नीहारि, बिपत,
जिय बिष अमिरत ॥८१॥
सुजस बाहु जौलौं जगत तौलौं जीवत सोइ ।
मारेहु मरत न रतन अजस सहत मृत होइ ॥१४८॥
१ सोच होय ।१४८।
दुष्ट नारि जिमि मीत सठ ऊपर बनो बास ।
रतनावलि अहिबास पर अत काम जनु पास ॥१४९॥
१ तिमि बनो (अहि) बास ।१४९।
२ दुसट नारि तिमि उपर बनो ।६६।
रतनावलि बरमहि रपत बाहि रपावत बर्म ।
बरमहि पावति सो पवति जेहि बरम को मर्म ॥१५०॥
१ बरमहि बरमहि ।१५०।
२ रतनावलि बरमहि रपत बरम
बरमहि मरम ।८०।
मैन मैन रसना रतन करम नासिका साँच ।
एकहि मारत अवस लै स्वबस जिआवत पाँच ॥१५१॥
१ ऐ जिआवत पाँच ।१५१।
रतन कष्ट उपकार पर चहहु न प्रति उपकार ।
सहहि न बदलो साधु अस बदलो लहु ब्योहार ॥१५२॥
१ बदलो बदलो ।१५२।
परहित जीवन बाहु अस रतन सफल है सोइ ।
निज हित कूकर काक कपि जीवहि का फल होइ ॥१५३॥
१ × ।१५३।
रतनावलि सनहूं जियें करि पर हित अस ध्यान ।
सोई जन जीवत गनहु अनि जीवत मृत मान ॥१५४॥
१ सनहूं मान बनहूं ।१५४।
२ जिनहूं साही मत ।७६।

जे निज जे पर भेद इमि लघु जन करत विचार।
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥
अस करनी करि तू रतन सुजन सराहहिं तोइ।
सुख जीवन लखि मुख लहहिं मरें करें दुख रोई ॥१५६॥
१ सुख जीवन लहहिं मरें करें सुखि रोइ ।१५६।
सोइ सनेही जे रतन करहिं विपति में नेह।
सुख संपति लखि जन बहुत बनहिं नेह के गेह ॥१५७॥
१ बनें ।१५७।
विपति परें जे जन रतन निबहें प्रीति पुरानि।
हिमु भीत सतिभाव ते पै न बहुत जिय जानि ॥१५८॥
१ निबहें ।१५८।
रतनावलि सुख बचन हूं इक सुख (दुख) को मूल।
सुख सरसावत बचन लघु कटु उपजावत सूल ॥१५९॥
१ हूं इक दुख दुख को मूल ।१५९।
२ बचन ही सुपहुख ।३४।
मधुर बसन जनि देउ कोउ बोलो मधुरे बन।
मधु भोजन छिन देत मु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
१ बोलो ।१६०।
२ बोली ।३५।
रतनावलि कांटो लग्यो बैनमु दयो निकारि।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं उन डारो हिय फारि ॥१६१॥
१ निकस्यो कहुं ।१६१।
२ हिय ।३६।
रतन भाव करि मूरि जिमि कवि पद भरत सवास।
तिमि उचरहु लघु पद करहिं अरथ गंभीर विकास ॥१६२॥
परहित करि बरनत न कुछ गुपत रखहिं दे दान।
पर उपकृति सुमिरत रतन करत न निज गुन गान ॥१६३॥
मलहिं छोड़ दुरजन बुरी भली न तासों प्रीति।
विसधर मनिधर हू रतन डसत करत जिमि भीति ॥१६४॥
१ भलें तासों जिय ।१६४।
भल इकलो रहिबो रतन भलो न बल सहवास।
जिमि तरु दीपक संग लहि आवत रूप विनास ॥१६५॥
१ तरु रूप ।१६५।
रतन बांझ रहिबो भलो भलो न सौत कपूत।
बांझ रहे तिय एक दुख पाइ कपूत बहूत ॥१६६॥
१ बांझ भली बांझ रहे ।१६६।
कुल के एक कपूत सों सकल सपूती मारि।

रतन एकुही चरन बिनि करत जगत जयिमारि ॥१६७॥
१ सपूती एकही ।१६७।
मासहि मासहु बस रतन को न औगुनी होइ ।
बिन दिन गुन मुदुता यहै साँची सामन सोइ ॥१६८॥
१ मुदता ।१६८।
मासहि सीप सिपाइ बस सपि सपि सोय सिहाय ।
मासिप ते हरषें रतन नेह करें पुलकाय ॥१६९॥
१ सिहाय पुलकाय ।१६९।
सरद सारद बीना मुरज बचन सुभाई सोय ।
मुदुप बिसेसहि पाइ के बनत सुजोग अजोय ॥१७०॥
१ मुदुप बिसेपहि ।१७०।
२ सुभाही मुदुप बिसेपहि ।१२।
बारजात मूरप बरिद सुत बिद्या धन पाइ ।
गुन समान मानत बपहि रतनावलि बीराइ ॥१७१॥
१ पाय बीराय ।१७१।
२ बपहि ।१३।
झूलि फलहि इतराइं पल अप निदरहि सतराइं ।
साधु झूलि फलि नइ रहहि सबसों नइ बतराइ ॥१७२॥
१ फलहि इतराइ निदरहि
सतराय रहें सबसों बतराय ।१७२।
२ फलें रहें सबसों ।१४।
एकु एकु आपहु मिलें पोथी पूरति होइ ।
नेकु करम बिनि मिल करहु रतनावलि पति होइ ॥१७३॥
१ आपहु नेकु करी ।१७३।
२ आपहु नेकु करें ।१५।
बान भोग अरु नाम के रतन सुमन पति तीन ।
देत न भोगत तासु धन होत नाम महु लीन ॥१७४॥
१ अरु नाम में लीन ।१७४।
२ अरु नाम में ।८३।
तरुनाई बल देह बल बहु बोलनु आगार ।
बिनु बिबेक रतनावली पसु सम करत बिचार ॥१७५॥
१ तरुनाई बल दोपनु ।१७५।
२ तरुनाही बल दोपनु, बिन ॥८४॥
पाँच तुरग तन रथ पुर चपल तुपक न जात ।
रतनावलि मन सारथिहि रोकि रुकें उतपात ॥१७६॥
१ रुकें ।१७६।
२ रुकें ।८५।

रतनावलि उपभोग सों होत विसम नहिं सांत।
ज्यों ज्यों हुचि होमें अनल त्यों त्यों बढ़त नितांत ॥१७७॥
१ विषम नहिं सान्त नितान्त ।१७७।
२ उपभोग सो विसे होमे ।९९।
रतन न पर दूषन उघटि आपनु दोस निवारि।
तोहि सबहिं निरदोस वे दें निज दोस बिसारि ॥१७८॥
१ दोष सर्वे निरदोष दोष ।१७८।
२ आपन दोष, सर्वे निरदोष दोष ।८६।
करहु दुषी जनि काहु को निदरहु काहु न कोइ।
को जानें रतनावली आपनि का गति होइ ॥१७९॥
१ कोय जाने होय ।१७९।
२ काहु कों कोय होय ।८७।
रतन जतन जन जतन उजतन बहु बल जल गल होइ।
पै जतनी जतन सों उजतन होइ विरल जन कोइ ॥१८०॥
१ × ।१८०।
तन धन जन बल रूप को गरब करौ जनि कोइ।
को जान विधि गति रतन छन महँ कछु कछु होइ ॥१८१॥
१ रूप कोय छनमें होय ।१८१।
उदय भाग रवि भीत बहु छाया बढ़ी लपाति।
अस्त भयें निज भीत कहँ तनु छाया तजि जाति ॥१८२॥
१ बहु बढ़ी भये कहँ ।१८२।
२ बहु बढ़ी भयें ।८२।
सबरन रबर लमु ह मिलत बीरज रूप लपात।
रतनावलि असबरन है मिलि निज रूप नसात ॥१८३॥
१ रूप रूप रूप ।१८३।
लम सों बाढ़त देह बल छुप सम्पति बल कोस।
बिनु लम बाढ़त रोम तन रतन बरिद दुष दोस ॥१८४॥
१ बल कोष दोष ।१८४।
जो जाको करतब सहज रतन करि सकै सोइ।
या या उचरतु ओट ही हा हा पसलों होइ ॥१८५॥
१ कोय उचरत ओटसों होय ।१८५।
ऊपर सों हरि बेत मन गांठि कपट उर बाहि।
बैर बरिस रतनावली बहु नरनारि लपाहि ॥१८६॥
१ बैर ।१८६।
२ उपर सो, माहं बैर, लपाहं ॥७६॥
उर सनेह कोमल धमल ऊपर लगें कठोर।
मरियर सम रतनावली बीतहि सज्जन थोर ॥१८७॥

२ गरिमर, दीपे, साजन ।७७।

भीतर बाहिर एकसे हितकर मधुर सुहाय।
रतना(वलि) फल बाप से बन कहुँ कोउ सपाय ॥१८८॥

१ सुहाय रतवलि फलबाप से
कहुँ सपाय ।१८८।

२ बाहीर ऐकसे सुहाई
रतनावलि सपाई ।७८।

यौवन प्रभुता सुरि धन रतनावलि अधिकार।
एकु एकु अनरथ करै किमु समुदित अहि चार ॥१८९॥

२ यौवन रतनावली ।१० ।

मन बानी अरु करम यह सतजन एक सपाय।
रतन कोइ विपरीत पति दुरजन सोइ कहाय ॥१९०॥

१ अरु करम में सपाय कहाय ।१९०।

२ अरु करम में सपाई कोही कहाई ।१०६।

जे उपकारी को रतन करत मूढ़ अपकार ॥
ते बग अपजस सहत पुनि मरें नरक अधिकार ॥१९१॥

रतनावलि नह चलि सवा नह सुभाइ बतराइ।
नारि प्रसंसा नह रहै नित नूतन अधिकाइ ॥१९२॥

१ प्रसंसा ।१९२।

२ रहै ।११ ।

पम रिपु बस परि के रवहि सतिपन सुकुचति पूरि।
पतिबरता तिन तियनु की रतनावलि पय धूरि ॥१९३॥

२ पतिबरता ।१०७।

रतनावलि करतब समुझि सेइ पतिहि नियकाम।
तप तीरथ ब्रत फल सकल गहहि बैठि घर बाम ॥१९४॥

१ गहै ।१९४।

पति बरतत जेहि बस्तु नित तेहि धरि रतन संभारि।
समय समय नित दै नियहि आनत मनहि बिसारि ॥१९५॥

१ पतिबरतन सम्हारि ।१९५।

बिरम सतिनु हिय बैठि तिय तेहि अनुमी धरि ध्यान।
तेहि अनुमारहि करति तेहि चावि रतन सनमान ॥१९६॥

पुन्य करम हित नित पतिहि रहि बढ़ाय उतसाह।
ताहि पुन्य निज गुनि रतन पुन्य करत जो नाह ॥१९७॥

१ बढ़ाय ।१९७।

तुव पिय नित नित हरि भजत तू तिय सेवति ताहि।
तासु भजन तिय तुव भजन रतन न बनहि अमाहि ॥१९८॥

१ सेवति ताह। तासु भजन अमाइ ।१९८।

सती धरम धरि आंधि नित हरि सों पति कुसमात ।
जनम जनम तुम तिय रतन अचल रहहि अहिवात ॥१९९॥
१ आंधि रहै अहिवात ।१९९।
जो तिय मन बच काय सों पिय सेवति हुलसाति ।
तेहि चरनन की धूरि धरि रतनावली सिहाति ॥२००॥
आसु चरित नर अनुसरहि सतवंती हरषाइ ।
ता इक नारी रतन पै रतनावलि बलि जाइ ॥२०१॥
१ अनुसरै ।२०१।
२ अनुसरै ।१११।

इति श्री रतनावलिकृत दोहा रतनावली संपूर्ण ॥ संवत् १८२४। भाद्रपद मासे कृष्णपक्षे ३० अमावस्याम् सोमवासरे ॥ लिपितम् गोपालदासेन मुंडी माधौराइ लिखितम् ॥ शुभम् भवतु ॥

राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः ॥१॥ शुभम्[1]

१ इति श्री लाचली रतनावलि की दोहा रतनावली संपूरनम् शुभम् संवत् १८२९ भादौ सुदि ३ चन्द्र लिपितम् गंगाधर ब्रह्मच जोय मारग समीपे बाराह क्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु ।

२ इतिश्री रतनावली सपूदोहा संखिह संपूरनम् ॥ लिखितं हीसुरलाल पंडीत मोरौंजी मिति माह सुदी तेरसि १३ सोमवार संवतु १८७५ में ॥ चंपा ॥ हीतिशुभम् ॥

जन-श्रुति से संकलित रत्नावली के पद

बिसरम एक बार गृह आयो ।
अनुचित उचित कर्यो हों कबहू ताहि समुझि समझायो ।१।
तब बिरोध अकुलात हीय अति धीरज आइ बँधायो ।
सह्यो न जात दुसह दुख एतो दरस दया दरसायो ।२।
दिन दिनेक नाथ अब बीते नाहिं मोरि सधि लीनी ।
सुजन बाहिनी प्रीति रावरी अहह परी किमि भीनी ।३।
कठि परे मो बैन सुनत अन कहत सुनत सकुचाऊँ
का अब करों कहाँ अब जोऊँ किनहू सोच न पाऊँ ।४।
अमित प्रीति परतीति भोग तब पाइ रही हों भाई ।
सपनेहूँ न कबहूँ हों जानी दसा मोरि अस होई ।५।
भूलि जाउँ हों सर्वे परेसो बीती ताहि बिसारों ।
भाग सराहों रतन आपनो जो तव चरन निहारों ।६।

× × ×

काहे नाथ मोहि बिसराई ।
इक पति ही परलोक लोक पति बेद पुरानन गा[2] ।१।

१ (हस्त में) यन्त्रिक मन किन व पुंगी माहेरुय चारुस्य रक्षपना मन्त्रिन सार बसावे ।

पतिहि सखा गुरु बंधु देव धन सरबस बेद बखानें।
हौं अबाम हूँ कहा जनाऊँ जानत आपु भुलानें।२।
नीर छीन सर दीन मीन जिमि देह जथा बिनु देही।
बिनु पिय तिय तिमि जड़ी जान बिनु, येह जथा बिनु येही।३।
जानि कर्यो अपराध न कबहूँ नाथ आप हू जानें।
भयो सुलसों होय न जानों बारिक आइ बखानें।४।
मांगों क्षमा चरन परि परि हौं पदरज निज सिर लाऊँ।
हाहा पाऊँ पखारें निजगृह, रूठे नाथ मनाऊँ।५।
जननी जनक तजी जीवन धन अब इक आस तिहारी।
सोउ त्यागि किन गये आपु पिय मेरे हृदय बिहारी।६।
कोमल हृदय आपु करुनामय किमि निज बानि बिसारी।
करि करि सुरति बिसुरति निसिदिन दासी रतन तिहारी।७।

× × ×

तुम बिनु सब जग मोहि अंधेरो
निसि दिन जगत चंद रवि ऊगत घर घर दीप उजेरो।१।
पूछन परिजन सबनमु बेसे नगर गाम मंझियावे
बूझि बूझि हौं पथिकन हारी पिय तुम कहूँ न पावे।२।
आवत अति सनेह कर लावे जात न पद परसावे
आपनि कही न कहौं मोसों सोवति छाँड़ि सिधावे।३।
हाट बाट घर बाहिर देखे नगर गाम मंझियावे
ढूँढि ढूँढि हौं सब बिधि हारी पिय तुम कहूँ न पावे।४।
कबहूँ न मो बिनु पर्यो चैन अब सो मो सुधि बिसराई
का अपराध भयो तुम मोसों तासों उर रिसि छाई।५।
आइए सेति बाट निज जोहति आवन आस तिहारी
रत्नावलि मुख चंद दिखावहु आय होय सुखियारी।६।

× × ×

प्रियतम नाथ देखि घर आवो।
तव बियोग दावानल तापित मम उर आय सिरावो।१।
तनक होत दुख कबहूँ मोर तन तुम अति होत दुखारी।
करत बिबिध उपचार हरत दुख रहे सदा सहचारी।२।
केतिक रैनि दिवस अब बीते हौं दुख पावति भारी।
अस कस निठुर भए निरमोही तुम निज बानि बिसारी।३।
धनहु रोय अज्ञात नाथ सब मोहि आपनी जानी।
तजहु रोष उर हरहु दया करि निज पद दासी मानी।४।
जीवन धन तुम सरबस मेरे अब इक आस तिहारी।
सो रत्नावलि उभय लोक गति पति तुम ही दुख हारी।५।

रत्नावली चरित

वन्दे गणपति मीशम् ॥
सकल देव पूजित महि हारं मनुज तनुं करि वदनम् ॥
मंगल मूलं गिरिजा तनुज महोदरं सुख सदनम् ॥वन्दे०॥
विविधभूत गण सेवित पाद चाष्ट सिद्धि दातारम् ॥
ऋद्धि बुद्धि नव निधि प्रदायकं विपुल मुख गणामरम् ॥वन्दे०॥
त्रि नयन मक दन्त मति दिव्यं विकटं विघ्न विनाशम् ॥
परशु कमल वर मोदु वाहनं सिन्दूराभ विकाशम् ॥वन्दे०॥
ओंकाराक्षर रूप मुत्तमं भक्त यह कर्तारम् ॥
सत्कीर्त्य कम्बूफल मोदक भक्षण मेक मुदारम् ॥वन्दे०॥
मौलि निलित कृतांजलि माद्रम् गायन्तस्तव पद्मम् ॥
अवि पाचे मुरलीधर विप्रो मति देहि मनवद्यम् ॥वन्द०॥
वन्दे गणपति मीशम् ॥

श्री गणपतये नमः ॥ सरस्वत्य नमः ॥
हरिहर मुख भक्तः कर्म कर्मानुरक्त
त्रिभुवन यत कीर्तिः कान्ति कन्दर्प मूर्तिः ॥
रघुवर मुख माया गान शीलो महात्मा
सजयति सुकुलात्माराम मनु कवीन्द्रः ॥१॥
रत्नावली वदन चन्द्र चकोर रूपः श्री रामचन्द्र पद पंकज चंचरीकः
श्री सूकल वंश तिलक स्तुलसी द्विजस्तो जन्मो मुखो जपति शोकर तीर्थ तीर्थः
॥२॥

अथ रत्नावली चरित लिख्यते ॥
वन्दौं विकट वराह ईस । वन्दौं सनकादिक मुनीस ॥
सती सारदहि सीस नाइ । सावित्री सिय पुनि नाइ ॥
अरुन्धती दमयन्ति नारि । अनुसूया पुनि पाय्यारि ॥
सती भई जे जगत धाम । तिनहिं नवनु नहं करि प्रनाम ॥
रत्नावलि की लिखहुं गाथ । तिहि चरनन महं नाइ माथ ॥
यानु चरित है अति गंभीर । तदपि लिखहुं कछु धारि धीर ॥
विदित वेद अघ हरनहारि । पतितनु पावन करन हारि ॥
सुर सरिता के दक्षिन कूल । धन्य धरनि मायस्य मूल ॥
निज सुभाव कम जगत नाह । हरि प्रगटयो जहं कछु वराह ॥६॥
तासो जे वाराह कछु । भई भूमि अब तरन सेतु ॥
तीरथ सूकर क्षेत्र नाम । भयो विदित अब मुकति धाम ॥

बहु तीरथ बहुं रहे राजि। सेवत अघ बन जात भाजि ॥
पाई मुनि बन जहां शान्ति। भेंटो निज भव भीति भ्रान्ति ॥
आदि तीर्थ वे जगत माहिं। सब तीर्थनु फल है जहाहिं ॥
सूरसरि पुनि बाराह पेत। मथुर रूप पुनि फलहु देत ॥
जहं बराह प्रभु सदन एक। सोहत सूर सदमहुं अनेक ॥
बदनमु जारे बहुत तोरि। पुनि कछु पुनि भयतन भये बोरि ॥
जहं सुरसरि की बहति बारि। बसु बराह पद रहि पयार ॥
विपुल विप्र जहं करत बास। रहे वेद परमहिं प्रकास ॥१६॥
बांचत नित चित सों पुरान। प्रभु की कीरति करत गान ॥
जहं जोगी बन मठ समाधि। बनी बरस सों हरति व्याधि ॥
सोरंकी नृप सोम बस। भयो जहां धृति बरम मत ॥
तासु पुत्र अब सेस नाहिं। कछुक चिन्ह ताके लपाहिं ॥
सोरंकी नृप के सुनाम। भयो क्षेत्र सोरंक धाम ॥
ताके पश्चिम दिशि कछार। बहति पुरातन बंस बार ॥
तासु प्रतीची तीर धाम। कबहुं रह्यो नयनाभिराम ॥
नाम बदरिका बन प्रसिद्ध। होत मृगादि न जहां बिद्ध ॥
विविध पुष्प तरु लता जाल। बर पाकर पीपर रसाल ॥
कदम निंब बट पछरि। सिसप बदरिन रह्यो पूरि ॥
कूजत तहं बहु विध विहंग। सुनि स्वतन्त्र बिहरत कुरंग ॥
रह्यो शान्ति को बन बिसाल। बदरी बन भई अन्तराल ॥
जहां राजती मुनि कुटीर। बही ग्राम की जहं समीर ॥
जहां बसे ऋषि मुनि विरक्त। सिद्ध साधु जोगी सुभक्त ॥
सोइ काल बस मुनिन धाम। बस्यो गृहस्थनु बास ग्राम ॥
जाहि बदरिका ग्राम जाइ। विविध जाति बन बसे आइ ॥
बसतु तहां बर विप्र एकु। चारनु निगमागम विवेकु ॥
दीन बन्धु पाठक सनाम। हरि भक्त बहु पुनम धाम ॥
उपाध्याय की परम कृति। निरत कर्म पट सुकृत कृति ॥
तासु बधावति नाम बाम। पति बरता पुन दीन धाम ॥
दोउन प्रगटे पुत्र तीन। सिव संकर शम्भु प्रवीन ॥
तनया रत्नावलि कनीन। पति पितु कुल जिन पूत कीन ॥४१॥
तासु रूप अति मनोहारि। जनु बिरंचि बिरची सम्हारि ॥४२॥
जनक जननि की अति दुलारि। परिजन पुरजन सबै प्यारि ॥
बोलति सबसों मधुर बन। जेहि लखि पावत पुलिन चैन ॥
तासु हंसनि चितवनि अनूप। शान्ति धीर सुख मेह रूप ॥
निर्मोही लखि मोहि जात। गिरि मेहिम की कीन बात ॥
पुत्र ज्ञान की कहति बात। बड़ी बात लघु पुत्र लपात ॥
बालक पन सों नेह काज। सीखि गई सब पाठ साज ॥

निज भ्रातनु सो पढ़त देखि। आपुहु आपर पढ़त लेखि॥
अपर बुद्धि तेहि जनक जानि। पाटी बुदिका दयो आनि॥
कछुक दिनन महं भई जोग। कहहिं सरसुती ताहि लोग॥
पुनि व्याकरनहुं पितु पढ़ाइ। दीनो कोसहु तेहि बुझाइ॥
बालमीकि पुनि पढ़न लागि। भई भारती तासु आगि॥
पिंगल के कछु अंग जानि। काव्य करन की परी बानि॥३४॥
शिव गौरी को धरति ध्यान। पूजति बहु विधि सहित मान॥३५॥
पितु तनया लखि ब्याह जोग। सोचहिं किन घर जासु भोग॥
ढूंढि फिरे सो बहुरि गाम। भई न पूरी मनोकाम॥
भये दुखित अति चित्त माहिं। सुता जोग वर मिलत नाहिं॥
तबहि मीत इक दई आस। गुरु तुलिह के जाउ पास॥
रमारत वैष्णव सो पुनीत। सकल वेद आगम अतीत॥
चक्र तीर्थ ढिग पाठ साल। तहीं पढ़ावत विपुल बाल॥
तहां रामपुर के समाइव। सुकुल बसवर हैं गुनाइव॥
तुलसिदास अरु नन्ददास। पढ़त करत विद्या विलास॥
एक पिता महं पौत्र दोउ। चहहास लघु अपर सोउ॥
तुलसी आत्माराम पूत। उदर हुलासो के प्रसूत॥
भये दोउ ते अमर लोक। दादी पोतहि करि सशोक॥६६॥
बसत जोग मारग समीप। विप्रवंश कर दिव्य दीप॥६७॥
कहत रहो सो राम राम। रामोला हु तासु नाम॥
और बरन विद्या निधान। विविध शास्त्र पंडित महान॥
काव्य कला महं सो प्रवीन। सकल दुर्गुनन सों विहीन॥
सब विधि रत्नावली जोग। अति सशील तनु रहित रोग॥
सुनि एतो प्रिय मीत बात। पै तुलिह गुरु ढिग सिहात॥
पाठक तिन कहं करि प्रनाम। देखी तुलसी मुख ललाम॥
गुरु मुख परिचय तासु पाय। बात धाम कुल विधि मिलाय॥
करि दीनो पुनि बाग दान। मुदित भये मन महं महान॥
पोथ पत्रिका लगन रीति। करी सबहि जन बंध प्रीति॥७६॥
शुभ दिन पुनि आई बरात। दोऊ पक्ष न फूले समात॥७७॥
कीन्ह यथा विधि विधि विवाह। दीन बन्धु करि उर उछाह॥
तुलसी कर में सह विधान। रत्नावलि को दयो दान॥
रत्नावलि गह तुलसि गह। तासु बढ़यो पति पदनु नेह॥
रत्नावलि भी नारि पाइ। तुलसी घर सुख भयो छाइ॥
पितामही बहु सुख उठाइ। पोषे तुलसी घर लगाइ॥
दंपति सेवा सों सिहाइ। लरन गई कछु दिन बिताइ॥
नरराम घर चन्दहास। रहहिं रामपुर आतु पास॥
दंपति मति बाराह भाय। सहज मोद आठोहु याम॥

कबहु करत बिद्या बिनोद। सहत घाम चातुरि प्रमोद॥
संध्यावंदन आदि कर्म। करत सकल नित इही धर्म॥
रघुपति राम मूरति एक येह। उभय संधि पूजत सनेह॥८८॥
बात बात श्री राम राम। तुलसी मुख लावहि ललाम॥
भरतु बर बांचहि पुरान। तुलसी सहहि घन मीन मान॥
रत्नावलि सेहि चख चकोरि। मधुर बचन बोलति निहोरि॥
कबहु न अप्रिय कहति बात। कबहु न सो पति सों रिसात॥
मीजति नित पति पाय पीठि। मिलहि न्हवावति प्रेम दीठि॥
पति बियोग नहिं छिन सुहाव। बात कहूं मुख उतरि जाव॥
करति सोइ जो पतिहि चाह। पति सेवन मन अति उछाह॥
कबहु जातु जो पति पिआइ। पायंसु परि सेवइ मनाइ॥
जीवों पति जीवन न पाइ। तीनों जातुह कछु न पाइ॥
जो मन सोई बचन कर्म। पतिहि सुनावत कछु न मर्म॥
तारापति नामक सुपुत। भयो तासु बुधि बल अकूत॥९९॥
भयो देव पति स्वर्ग धाम। बिलपति रत्नावली बाम॥१००॥
भयो पुत्र को अधिक सोक। करी धीर पति मुख बिलोक॥
तुलसी हू बहु करत प्यार। रत्नावलि यह हृदय हार॥
ताहि न चाहत आंखि ओट। ओट होति हिय उमति कोट॥
लिखिय परी प्रभु भवन रीति। बाढ़ी तिय मह अधिक प्रीति॥
ब्याह भये दस पंच बर्ष। इक दुख तजि बीते सहर्ष॥
रावी जीवन एक बार। भ्राता संग हिय हरष धार॥
पति आमंत्रु नहिं सीस नाइ। गई माइ के भवन धाइ॥
इत तुलसी करिके नवाह। गये सुमिरि उर अवध नाह॥
तुलसी ग्यारह दिन बिताइ। आये तिनहि न घर सुहाइ॥
रत्नावलि मन लपन चाह। चले सकल घर भरि उमाह॥
होनहार बलवान होत। जति नचितव तस आन होत॥१११॥
नारि प्रेम मद गये मोह। चले समय को ज्ञान पोह॥११२॥
बीति गइ तब अरध राति। नभ घन चपला चमकि जाति॥
बहति जोर सुरधुनी धार। ताहि बेरि करि गये पार॥
दीन बन्धु की पीरि जाय। टरि दये घर के जवाय॥
द्वारहि आये तबहि काल। तुलसिहि लखि भे चकित ग्यान॥
करि प्रनाम कहि कुसल बात। हो कहि तुलसी मन लजात॥
करि आदर समयानुसार। पौढ़ाये करि बहु दुलार॥
रत्नावलि एकान्त पाइ। पति दर्सन हित गई धाइ॥
पति पद परसे करि प्रनाम। चरन दबावन लागि बाम॥
बूझि किमि आये अबेरि। परजत बन माही अंधेरि॥

कैसे उतरे भंगभार। मेरे जिय अपरज अपार॥
इमि सुनि बोले तुलसि दास। तुमहिं मिलन अति उर उलास॥
तुम बिन परत न मोहिं चैन। भई शान्ति तब जपत मन॥१२४॥
तब सुप्रेम महं गंगपार। सुमिरि सहज ही भयो पार॥
कहि रत्नावली प्रान नाथ। धन्य भाग को मिल्यो साथ॥
मेरे हित बहु दुख उठाइ। दरस दयो तुम नाथ आइ॥
मो सम को बड़ भागि नारि। मो सम को तिय पति हि प्यारि॥
सीम प्रेम तुम करो पार। नाथ प्रेम के तुम अपार॥
मम सुप्रेम जिय हिये धार। उतरे प्रिय सुर सरित पार॥
जग अपार पद प्रेम धार। जानु मनुज भव उदधि पार॥
प्रेम हीन जीवन असार। नाथ प्रेम महिमा अपार॥
सुनि रत्नावलि भव्य बानि। भव विषयनु सों भई ग्लानि॥
भये चित्त सम तुलसिदास। कछु जनु सोचत भे उदास॥
रत्नावलि पति सीस आनि। गह परसि पद जोरि पानि॥
बैन मिलन को कर्‌यो अन्त। कहुं नारि अब कहुं कन्त॥१३६॥
जहां योग तहं है वियोग। परत योग सो सहत सोग॥१३७॥
काल कर्म गति है विचित्र। बनत जनु जो रहे मित्र॥
भानु करत नर कछु विचार। कालि होत कछु होनहार॥
राम लैन कहं योवराज। बन गे तजि सो राज साज॥
जो तुलसि हि प्रानन पियारि। सो रत्नावलि तब बिसारि॥
बहु जन सोचत करि प्रमान। अचक कियो तुलसी पयान॥
रैनि गई उदयो प्रभात। तुलसी काहु न कहु जपात॥
बूझि फिरे सब धाम माहिं। सबनु कही हम लखे नाहिं॥
कहं जाइ तुलसी मिलन आस। मिल न तहं सब भे उदास॥
पति बिनु रत्नावली दीन। बिलपति जल बिनु जथा मीन॥
बहु दिन त्यागो पान पान। कठन कर्‌यो धरि नाथ ध्यान॥
बीते बहु दिन पाप मास। भई न तुलसी मिलन आस॥
तजि दीने सब ही सिंगार। करति एक बारहि अहार॥१४६॥
उत्तम भोजन बसन त्यागि। सुमरति प्रिय पति बिरह आगि॥१५०॥
तुलसि पादुका उर लगाइ। सोवति तृन आसन बिछाइ॥
कबहु रामपुर बसति जाइ। कबहु बदरिका रहति आइ॥
तिन चौमासन बरत धार। पूरन कीने बिपुल बार॥
धारे धीरजु व्रत अपार। सती धरम निबह्यो संम्हार॥
मन बच करमन रही पूत। कर्‌यो भजन प्रभु तिन अकूत॥
जानु पति पद हृद निहारि। भई अनेकन सतीं नारि॥
देती मारिन सीय सीख। रही दिपावति धरम सीख॥
पति बियोग महं साधि जोग। त्यागि दये सब जगत भोग॥

चरन सरन रज जासु कोइ । परत देह रज रहित होइ ॥
सूकर रस भू बरस पूरि । स्वर्ग पहुँ जहिं सुजस भूरि ॥
जनि रत्नावलि मात मम । जेहि सम अब कहुं जगत जम ॥
नव कर बसु भू विक्रमीय । सूकर तीरथ बरनीय ॥
साध्वी रत्नावलि कहानि । पूजन मुप बस परी जानि ॥
द्विज मुरलीधर चतुरवेद । लिपि प्रगटी जगहित समेद ॥१६३॥

इति श्री रत्नावली चरितं सम्पूर्णम् शुभम् । संवत् १८२९ श्रावण शुक्ला

१ प्रतिपदायाम् शुक्र वासरे लिपितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्रे ॥ शुभमस्तु ॥

छप्पय

एक पिताबह्र सबन दोउ जनमें मुनि पासी ।
दोऊ एकहि गुरु मुनिहु गुरु सन्ते बासी ।
तुलसिदास नन्ददास भये हैं मुरली धारे ।
एक भये सिवराम एक जनश्याम पुकारे ।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महं रहे ।
एक राम माया लिपी एक भागवत पद कहे ॥१॥
एक पिता के पूत दोउ बलराम मुरारी ।
मुरलि चक्र इक धर्यो एक हलमूषल धारी ।
नीलांबर तनु एक एक पीतांबर धारो ।
दोउन चरित उदार रह्यो मत न्यारो न्यारो ।
इमि कर्तव्य बिचि मत प्रकृति जन जन कीन समान जन ।
जनमि एक गृह महं निज स्वभाव अनुरूप भव ॥२॥
जय जय आदि वराह क्षेत्र तप भूमि सुहावनि ।
बहति जहां सुर सरित दन्दि दुरितादि बहावनि ।
सतत त्रिविध सुर सबन भक्त जन कीन पुरावन ।
सकल अमंगल हरन करन मंगल मुनि भावन ।
विप्र वृन्द बोधी जती बरनत वेद पुरान कहं ।
मुरलीधर बस पाइयत कूटो जय मंडु धाम महं ॥३॥
उदय सांझ महं देव आरती भक्त उतारत ।
घंटा दुंदुभि शंख धुनि मोद बढ़ावत ।
भक्त भक्ति मद मत्त तहां प्रभु को जस गावत ।
मृदंग मधु मंजीर तार झनकार सुहावत ।
जय मंदा वाराह की पावन धुनि कान परत ।
धीर हरिपदी तीर द्विज मुरलीधर संध्या करत ॥४॥
त्रिपुल सिद्ध मुनि वृन्द सन्त जन वृन्द बगत जहं ।
श्री हरि पदनु प्रमुख हरि पदी सोच सतत जहं ।

तासु कुल सोपान सेनि नयनाभिराम बहुं ।
भक्ति ज्ञान वैराग पुंज वाराह धाम तहुं ।
बहु पुण्यन सों पाइयत दरस क्षेत्र वाराह महि ।
केतिक पुण्यनु फल लह्यो द्विज मुरली बहु जनम महि ॥५॥
पूरब दुख बीते असी भये मुरली इक्यासी ।
बसत सौकरख ग्राम कटै बंधन चौरासी ।
रीति भई अब मंद दुरत सिर कपत कछुक कर ।
तदपि न मानत लिपन कहत मन कविता सुन्दर ।
सो अब कस बालक बनहि मन बहुमावन करि रहे ।
जिमि जल बिनु दसनन चनक पीसि पीसि मुख भरि रहे ॥६॥

कृष्णदास कृत यशावली[1]

क्षेत्र वराह समीप सुचि धाम रामपुर एक ।
तहं पंडित मंडित बसत सकुल वंस सविवेक ॥१॥
पंडित नारायण सुकुल तासु पुरुष परवान ।
धारयो सत्य समाख्य पद हू तप वेद निधान ॥२॥
शास्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रोण समान ।
ब्रह्म रंध्र निज भेदि जिन पायो पद निर्वान ॥३॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि ।
पंडित श्रीधर वेणधर सनक सनातन चारि ॥४॥
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द ।
व्यास सरिस वक्ता समय जासु सच्चिदानन्द ॥५॥
तेहि सुत आत्माराम कुल निगमागम परवीन ।
सधु सुत श्रीराम भे पंडित परम धुरीन ॥६॥
पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत श्रीराम के नन्ददास चंदहास ॥७॥
पढि पढि वेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास ।
रामचरित मानस रच्यो पंडित तुलसीदास ॥८॥
मानस कुल वल्लभ भये तासु अनुज नंदनन्द ।
करि वल्लभ आचार जिन रच्यो भागवत राम ॥९॥
नन्ददास सुत हौं भयो कृष्णदास मति मन्द ।
चन्दहास कुल सुत अहै चिरजीवी प्रजचन्द ॥१०॥

॥ इति कृष्णदास यशावली ॥

---

१ १८२६ वि० के बाद 'रत्नावली चरित' 'यशावली' और 'कृष्णदास कृत वंशावली' एक ही जिल्द में हैं। ये और १८२६ में पुरुषोत्तम चतुर्वेदी द्वारा लिखे गये कृष्णदास कृत 'मुक्तसेन माहात्म्य' की फ्रन्टहाउ बन्धु की द्वारा सेठी त्रिपाठी पं० श्री गोकुल जिन से कामवन के पंडित मदनदास शर्मा को प्राप्त हुए थे।

गोपीश्वर विनोद

सूकरक्षेत्र

रागिनी[1] काफी

देव मुनि तीरथ माहि सराहु।
जहं हिरनाक्ष मारि छिति उधरयो
धरि हरि रूप बराहु।
जहं सुरसरी बहति अघ पावनि
हरति सकल अघ दाहु।
मज्जत तहं बिबिधे जहं जो नर,
होत कम मीनाहु।
गोपिईस सूकर तीरथ जो,
आवत मन अवगाहु।
तिहि नहि होत जातना जमकी
दुर्लभ बहा कटाहु ॥२०६॥२४॥२॥

इति विविध विद्यावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश खण्डिह बहादुर देव देवानन्द श्री श्रीमद् गोपीश्वर सिंह विरचितो गोपीश्वर विनोदे प्रकीर्णकनाम द्वितीय खण्ड समाप्तश्चायं ग्रंथ ॥[2]

---

१ तुलना : मैथिलक्षेत्र कीर्तन भजनावली सं० १९४५ मि० । पृष्ठ १३०-३८

॥ श्री ॥

तुलसी प्रकाश

श्रीमते रामानुजायनम ॥

अथ तुलसी प्रकास लिख्यते ॥

॥ रूपघनाक्षरी ॥

जासु भ्रू विलास होत जगत विकास नास
जगत निवास जासु आदि हू न है विराम ।
आनन अनन्त नैन बाहु पाद रूप जासु
जो है बिनु रूप हीन पुन हू सुनाम ग्राम
जो है जग कारन को कारन करनहार
तारन भौ सागर अपार जग को सलाम ।
प्रनमत अविनास दास ताही ओबवासि
दसरथ सुपरासि कौसिलासुवन[1] राम । १॥

सोमरछन्द

श्री राम करुना धाम । तुम भक्त पूरन काम ।
तुम हो अनादि अनन्त । ध्यावहिं तुमहिं सुर सन्त ।
जब जब बढ़त सू भार । तब तब धरत अवतार ।
हरि दुष्ट दानव भार । करि देत धर्म पसार ।
प्रभु सर्वभूत निवास । प्रनमत तुमहिं अविनास ॥ २ ॥

छन्द

बालमीकी आदि कवि तव चरित संस्कृत माहि ॥
निरमयो समुझत सु पंडित औरु समुझत नाहि ॥
जावनी पढ़िबे लगे जन देववानी त्यागि ॥
निज धर्म हूं सह तजि रहे विषय भोगनु पागि ॥
बालमीकी दूसरो भुई एकु तुलसीदास ॥
नर भाय रामायन विरचि कीन्ह धर्म प्रकास ॥
करि कृपा निज दास तुलसी तुम दियो प्रगटाय ॥
सिपत हौं बपु तासु परिचै देखि सुनि मन लाय ॥३॥

दोहा

गंगा दक्षिन कूल इक ताकी धाम बखान ॥
सोरकी हरसिंह जहं भूमिपाल मतिमान ॥४॥

---

१ जसन ।

गोपीश्वर विनोद

सूकरक्षेत्र

रागिनी[1] कान्हरी

देव मुनि तीरथ माहिं सराहु।
जहं हिरनाक्ष मारि छिति उधरयो
धरि हरि रूप बराहु।
जहं सुरसरी बहति अघ पावनि
हरति सकल अघ दाहु।
मज्जत तहं निचिते जहु को नर
होत अघ श्रीनाहु।
गोपिईस सूकर तीरथ को
आवत मन अवगाहु।
तिहि नहि होत जातना जमकी
दुर्लभ यह कटाहु ॥२०६॥४७॥१॥

इति विविध विद्यावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश रुद्रसिंह बहादुर देव देवात्मज श्री श्रीमद् गोपीश्वर सिंह विरचितो गोपीश्वर विनोदे प्रकीर्णकनाम द्वितीय खण्ड समाप्तश्चायं ग्रंथ ॥[1]

---

१ हु॰क॰ : मेडिवल हॉल बनारस सं १९४६ वि॰। पृष्ठ १६७-६८

॥ श्री ॥

तुलसी प्रकाश

श्रीमते रामानुजायनम ॥

अथ तुलसी प्रकास लिख्यते ॥

॥ रूपनाम्बरी ॥

जासु भ्रू विलास होत जगत विकास नास
जगत निवास जासु आदि हू न है विराम ।
आनन अनन्त भुज बाहु पाद रूप जासु
जो है बिनु रूप हीन पुन हू पुनन ग्राम
जो है जग कारन को कारन करनहार
तारन भी सागर अपार जग को सलाम ।
प्रनमत अविनास वास ताही औधवासि
दसरथ सुपरासि कौसिलासूवन[1] राम । १॥

सोमरछन्द

श्री राम करुना धाम । तुम भक्त पूरन काम ।
तुम ही अनादि अनन्त । ध्यावहिं तुमहिं सुर सन्त ।
जब जब बढ़त भू भार । तब तब धरत अवतार ।
हरि दुष्ट दानव मार । करि देत धर्म पसार ।
प्रभु सर्वभूत निवास । प्रनमत तुमहिं अविनास ॥ २ ॥

छन्द

बालमीकी आदि कवि तब चरित संस्कृत माहिं ॥
निरमयो समुझत सु पंडित औरु समुझत नाहिं ॥
आवनी पढ़िबे लगे जन देववानी त्यागि ॥
निज धर्म हूं बहु तजि रहे विषय भोगनु पागि ॥
बालमीकी दूसरो भुई एकु तुलसीदास ॥
नर भाष रामायन विरचि कीन्ह धर्म प्रकास ॥
करि कृपा निज दास तुलसी तब दियो प्रगटाय ॥
लिपात हो कछु तासु परिचै देवि मुनि मन लाय ॥३॥

दोहा

गंगा दक्षिन कूप इक तासी नाम सुथान ॥
सोरंकी हरबिंद जहं भूमिपाल मतिमान ॥४॥

---

१ लवन ।

तोमरछन्द

प्राची उमापति थान । उत्तर सलिल उद्यान ॥
पश्चिम विसा हरि धाम । बाराह अन्न अनाम ॥
तहँ एकु सुरसरि सोत । दक्षिन प्रवाहित होत ॥
तहँ बसत भूसुर भूरि । कछु असत भूसुर सूरि ॥
कछु दास धन सुपकारि । लघु ग्राम पै ममहारि ॥
रन बाँकुर बहु बीर । रथ बाजि वारन भीर ॥
बनि भूमि मेरी बेह । आनंद सुरन सम देह ॥
सिवराजहू कविराइ । मेरे जनक सुप दाइ ॥५॥

कवित्त

नीर अरु खीर की विवेक नीति बारन हार
हंस बस हू सों विसेष नीति धारी है ॥
बिस्व जन मोहि मनि कीरति कलाप केकि
कबिजन[1] जनक सो काव्य कलाकारी है ॥
महामति महीपनि सभा को सिंगार सार
मुनि जन हिय हार हीय उमहारी है ॥
तुम्ह अबिनास भयो ताको बहामट्ट बस
आसु सीस हाथ धर्‌यो भीम कर धारी है ॥६॥

दोहा

कीबिनि मुनि गोती दुबे तहाँ बिप्र सिर मौर ॥
बसत अजुध्या नाथ कुल एहि सम गनक न और ॥७॥

सवैया छन्द

पूत न कोउ जियो उनको दुहिता हुलसी बहु जतन भई ॥
ब्याहन जोग भई जबही बर ढूढन में चित वृत्ति दई ॥
सूकरखेत समीप तब बर रामपुर हि मधि देखि लयो ॥
आतमराम सुकुलहि के कर में हुलसी कर दान दयो ॥८॥

सोरठा

आतमाराम कर हाथ आसु हीन हुलसी सुता ॥
दई अजुध्या नाथ लोक बेद कुल रीति करि ॥९॥
आमातहि हुलसाइ बरष गये कछु ब्याह सों ॥
जिन सरबस्व सहाय तारी तजि सुरपुर गये ॥१०॥
ऊरध देह बिधान सकल कराये बेद बिधि ॥
तेहि निमित्त बहु दान दये सांति परलोक हित ॥११॥
रही सरसुती देह जरठ तासु बिधवा भयिनि ॥
पोषी सहज सनेह जिन हुलसी अति जतन करि ॥१२॥

---

१ कविन्दन

दोहा

तासी महुं बसि बरस इक पंडित आत्माराम ॥
आइ बसे तुलसी सहित सुपच रामपुर गाम ॥१३॥

अडिल्ला छन्द

बोध रूप फल बानि जहां तप बाम है ॥
तहं सुरसरिता तीर रामपुर गाम है ॥
जासु भऱ्यो नन्ददास स्यामपुर नाम है ॥
करयो स्याम सर तहां नैन अभिराम है ॥
तबकर बिनिय बनाय तहां उपबन करयो ॥
आपि स्याम बलराम सदन जब बस भऱ्यो ॥
सुकुल सनाढ्य बिप्र बंस को बास तहं ॥
सुकुल सच्चितानन्द भये यहि बंस महुं ॥
पंडित अति बुधिवन्त महाग्यानी रहे ॥
आत्माराम अरु जीवराम सुत द्वै लहे ॥
तेज भये अति मान महाविद्या धनी ॥
छाइ रही चहुं ओर कीति घर घर घनी ॥१४॥

सोरठा

सुकुल सच्चितानन्द जीवाराम बिवाह करि ॥
आपि सकल आनन्द आइ बसे सूरपुर सदन ॥१५॥

दोहा

पंडित जीवाराम की बंधा बपसा नारि ॥
सरिकाई बस सासु सों करी एक दिन रारि ॥१६॥
परुष बचन तेहि सासु सुनि, सपथ करी तब एक ॥
अब न बसौंगी रामपुर, राम रपावै टक ॥१७॥
सून पऱ्यो राजीव्या मातु पिता को धाम ।
अबहि आइ मोरम बसौं करहुं न दिन बिसराम ॥१८॥
मातु सरप प्रन बानि बन बोमे आत्माराम ॥
जहां रही सुप सों अबनि तुरत चलो तेहि धाम ॥१९॥

अडिल्ला छन्द

सूकरपत्र पुनीत अछय सुख कारि है ॥
सोहति सुरसरि जहां भगत भय हारि है ॥
जहं बराह प्रभु दरस सुमंगल हेतु है ॥
न्हान दान जप जहां अमित फल देतु है ॥
भोग मोक्ष सुप पानि भूमि पुन्यस्थली ॥
सूकरपत्रहि तेह तरत पातिनु दली ॥
सोरम कूटो नाम पेत को ध्यान है ॥
पतितनु पावन करन तीर्थ अपदान है ॥

दोहा

सुकुल आतमाराम जनि तुम जय कियो प्रकास।
तब घर नरवर मोसि मनि प्रगटे तुलसीदास ॥३८॥

कवित्त

तारकी तें पुहिम बंस तारकी तें सुकुल बंस
सासु ससुर तारे तें तारी महतारी है।
कहैं अभिलाषराय आपु तरी तारको बापु,
तारको पति रामपुर तारी हू तारी है।
अजहूँ हुलसात सो हुलसी जन तेरो मातु
तुलसी सो जायो पूत जग अवतारी है।
धन्य मात हुलसी तें मोक्ष द्वार तारे की
मुमुक्षुन हाथ बई तुलसी जग तारी है ॥३९॥

प्रमाणिका छन्द

तेहि माता बिलपै हुई अधीर। कहै ताके रव सों दुपद मोर।
लघु भ्राता करमें चरित रोय। कहै मो कहूं तुलसी जग न कोय।
तिय चम्पा हिरदै अधिक दाह। पछितावै अति ही भयी काह ॥४०॥

दोहा

करम पारलौकिक सकल करि पुत्र जीवाराम।
रोय कही निज मातु सों चलत रामपुर नाम ॥४१॥
चम्पा हू मांगी क्षमा बिलपि नयन भरि बारि।
जननि कही बिलखाइ पुनि ग्रन न सकौंगी टारि ॥४२॥
जाहि भूमि हौं तनु तज्यो जाही भूमि सवार्इ।
तीरथ सूकरखेत तजि अन कहूं अनत न जाइ ॥४३॥
मेत रही निज गाय सुनि मेरो बच चित माहि।
जानति मोहू सों तनुज तोहि तुलसी प्रिय बाहि ॥४४॥

तोमर छन्द

निज आय जीवाराम। पुजवत जननि मन काम।
तुलसीहि अंक लगाय। लालत अनेक उपाय।
ये बर्ष अष्ट अठ मास। चम्पा चले नरदास।
तब सुकुल जीवाराम। सुत को धरायो नाम।
तुलसिहि गनेस मनाय। पाटी दई पुजवाय।
पुनि बर्ष हैं दस माह। बाढ्यो भय चन्दहास।
पुनि सुकुल जीवाराम। रोगी भये मति बाम।
जह लष्ट अन्न जन आय। बारिद गयो बुह छाय।
अब रोग सों दुख पाय। ये स्वल्प बर्ष बिताय ॥४५॥

दोहा

जननी जाया भ्रात सुत तेहि सुत भयो अनाथ।
सेस सनातन बंस की रही पुरातन पाथ ॥४६॥

छंद

छंदि कर्म गृह बन बास। सबको भयो अवसान।
दुम्मत न कोऊ बात। तेहि दुप न बरनौं बात।
काका गये सुरलोक। तुलसी बह्यो मन सोक।
बाबी। कह्यो सुमुच्छय। सुत होंय राम सहाय।
कुलदेव तेरे सोय। दी है सबै दुप पोय।
तू राम भजि अविराम। पूजें सकल मन काम।
बहु राम नाम सुनाय। बीरज दयो मन लाय।
तुलसी बसे मन राम। अविराम टेरत राम।
राम रामबोला नाम। कहि लोग टेरत राम।
बहुबिध सुभोजन पाय। अब पेट सो रहि बाय।
भारत पुरातन चीर। तेहि कोउ परत न पीर।
पाती जनन सों बाद। जाचन भये अकुलाद।
निजगाम जन गृह पाय। जाचत कबहु दुपपाद।
कोउ देत कोउ न देत। पछिताइ मन बसि देत ॥४७॥

दोहा

पावत जिनके द्वार नित बाह अतिथि सनमान।
तेहि सुत औरनि अतिथि बनि रापत आपन प्रान ॥४८॥

छंद

रहें विप्रमनि इक बसत पुरवर श्री नृसिंह सुभायनी।
बहु ग्राम अधिपति राम हनुमत भक्त बर विद्यावनी।
स्मृति सास्त्र धर्म पुरान सिच्छा देत नित बटुकन रहें।
निज पाठ्याला बैठि सो नित रनि राम कथा कहें ॥४९॥

दोहा

परा उदधि सागर मही बरम सुमयस भूम।
सुम अपाद कुच पुनिया सुमसिहि मह अमुहूम ॥५०॥
नाहि विकस नरसिंह पुर सोरम गया तीर।
बान करत इक बनिक तहं तुलसी लय अधीर ॥५१॥
पायो तुलसी नाहि कछु टाहे दुपित उदास।
पुरवर पूछी बाम तू कौन तनय कहं बास ॥५२॥
सुकल आतमाराम सुत कह्यो जाहि पुर बास।
मात पिता सुर पुर गये एक राम की आस ॥५३॥
समुझि गुरुम कुम बाम मन दुपित भए गुरुराय।
कल्ना करि कर गहि गए, आसन सन्न सिवाय ॥५४॥

तुलसिहि गुरु धीरज दयौ कही पढ़ो नित आय।
अब जनि बाचन जाउ कहु हु हैं राम सहाय ॥५५॥

छंद

अवलंब गुरु कहुं पाय तुलसीदास मन प्रमुदित भए,
नरसिंह गुरु पद परसि सुमरित राम कहुं निज गृह गए,
आपनि पितामहि सों कही जो बारता गुरु सों भई,
सुनि कही राम कृपा करी नित जाउ पढ़ि अनुमति दई ॥५६॥

दोहा

असन बसन तेहि भूमि को, दिय परबन्ध कराय।
वह इक सूरगृह आमहु वृत्ति हेत गुरु राय ॥५७॥
गुरु सेवा तुलसी करत पढ़त सविधि नित आय।
पढ़्यौ प्रथम व्याकरन पुनि कोस काव्य मन लाय ॥५८॥
नन्ददास हु तेहि अनुज पढ़न लगे पुनि आय।
दोउ भ्रात गुरु भगति रत बरमति सील सुभाय ॥५९॥
उपनयनादि बिधान सब कुल गुरु सों करवाये।
बेद पढ़ायौ सूत्र सहित संध्या सविधि सिखाय ॥६०॥
पिमल रामायन मनित बरसन सास्त्र पुरान।
अनुज सहित तुलसी पढ़े पंडित भये महान ॥६१॥
स्वामि हरी हर बसत इक मन्दिर सीताराम।
गान बाद्य परबीन अति गावत पद हरिनाम ॥६२॥
तुलसिदास नन्ददास तहं कछुक समय नित जाय।
गान बाद्य सिच्छा लहत राम रागिनी गाय ॥६३॥
तुलसिदास नन्ददास को बढ़्यौ चहुं दिसि नाम।
दोउ करावत कृषि करम बांचत कथा पुरान ॥६४॥
तारीपति पितु भूपसिंह, इक दिन बहु गुनपानि।
हरषे अति तुलसिहि निरखि, हुलसी सुत जिय जानि ॥६५॥
सनमानित करि सौ भए, आपनि ताजीराम।
बालमीकि सनि तासु मुख मुदित भये बलधाम ॥६६॥
तुलसिहि दीने बहु बसन धन भाजन गौ अन्न।
मातामह गृह लषि चलै तुलसीदास प्रसन्न ॥६७॥
आवत जात रहैं सदा तुलसी तारी गाम।
तिनहिं आदरत सब तहां भूप क्षत्रिय गुन धाम ॥६८॥

रोला छंद

तुलसी संपति भगति सुजस दिन दिन अधिकानो
पौत्र सुख या पाइ पितामहि मन सुख मानो ॥
गया पश्चिम तीर बदरिका गाम निवासी
मुनि बसिष्ठ कुल दीनबंधु पाठक गुन रासी ॥

द्वादस बरसी सुता जोग बर देषत धाए,
श्री नृसिंह गुरु सपन भये तुलसी मन भाए ॥
भरद्वाज मुनि मोत सुकुल बर सुघर निहारी
बिद्या बिनय बिबेक जासु मूरति मन हारी ॥
रतनावलि सम बरहि पाय सम्बन्ध कुरायो
बेद बाम बारीस इन्दु सक बरष सुहायो ॥
कातिक सुदि गुरुवार द्वादसि हरि परबोधनि
निसि निसीथ परकास उतरा नषत सुखद धनि ॥
तुलसी साजि बरात आय पाठक दुज द्वारे
रतनावलि कर गह्यो बिप्रगन बेद उचारे ॥
पूर्‌यो सबिधि बिवाह हरष बहरी मंहि छाये
निरषि निरषि बर बधू सर्ब जन मन हरषाये ॥
दीन बन्धु दामादि दयौ जामात तोषकर
भरयो सकल बरात समुद भरये श्री गुरुवर ॥
तुलसि जमाता पाय दयावति सासु सिहानी
तनुजा दई पनारि सपिरि मन संभु भवानी ॥६६॥

नाराच छन्द

भयो महा अनन्द छाइ आरमाराम बेहली
पितामही प्रसन्न देषि पौत्र की बधू भली ॥
लई लवाय हीय सों सप्रेम पौंरि सौ लई
बधू नवायो सीस त्यों असीस सासुहू दई ॥७०॥

दोहा

बरष पौचई ब्याह सों दुरागमन भो सासु
बिरागमन पुनि तेहि भयो लषि सिहाति बरसासु ॥७१॥

सवैया

रतनावलि सो मनि पाय बधू
तुलसी पितु मातु महा सुष पायो ।
निज पांय पखोटति बोरति सीस
न्हवावति ताहि सनेह बढ़ायो ।
रुचि होय पचावति व्यंजन सोइ
करे नित सोइ जो ताहि सुहायो ।
अविनास रमा सम नेह रमी
तुलसी गृह स्वर्ग समान बनायो ॥७२॥
रतनावलि पीय सनेह सनी
अति चाव करे पति की सिषकाई ।
पति कों निज प्रान परेस समान
निहारि सुषी जिय में सुष साई ।

अवलोकि सवास उदास रहै
तन द्वै इक प्रान प्रमान लखाई।
तुलसी बड़ भाग गृही अबिनास
सती रतनावलि सी तिय पाई ॥७३॥
नित राम सती सिव पूजति सो
वर मागति एकुहि भाव जनाई।
निसि रामकथा अबिनास सुनै
कबहूं सोइ आपु पढ़ै मन लाई।
नित काव्य पुरानन कानन में
बिहरै पति संग करै कबिताई।
मन होय जहँ पति चाहिबि सों
रतनावलि सोइ करै हरषाई ॥७४॥

कबित्त

अनसूया अरुन्धती सावित्री सुकन्या सी
सीताजी सतीसी सती सबितासी भासमान।
रूपवती सीलवती सरयवती सुहृत्ती सी
सुरसरिसी पावनी सरसुती मूरतिमान।
माधुर रस सानी कोकिल सम बानी बानु
बरनीसी बीर धनि गंभीर सिन्धु समान।
रतनावलि तुलसी की गृहनी गुनिनि पानि
हारयो अबिनास करत कीरति बखान ॥७५॥

दोहा

इक दिन रतनावलि सहित निसिमहं तुलसीदास।
देखत पितु जननी चरन धरि हिय अमित हुलास ॥७६॥
पितु जननी बोली तबै, पूजहुं तैं सब आस।
चाहहुं अबध दरसन करन कछु दिन काशी बास ॥७७॥
देखिहिं दरसन राम को करिहौ काशी बास।
कीन्ह सबन कहि आय पुनि पद छुइ तुलसीदास ॥७८॥
सोचि महूरत सुभ दिवस तुलसिदास नन्दलाल।
रतनावलि पितु जननि सुत चले छांडि चन्दहास ॥७९॥
चले और हू नारि नर, मन धरि राम पुकारि।
इम रस जबहि मही करष लाग्यो मग सुप कारि ॥८०॥

बरवा छन्द

चैत मास सित नवमी सरजू न्हाय
कीन्ह रामसिय दरसन अवधहि जाय।
करि परिकरमा देवे सब ही धाम
तहां कछुक दिन बीतिके ब्याह राम।

अवध पुरी सौं पुनि सब चले प्रयाग
बिधि जुत न्हाय त्रिबेनी परि अनुराग।
बिरमि कछुक दिन आए काशी धाम
बिस्वनाथ हर अरचे लह्यो बिराम।
पितामही की पुजई सब मन आस
नित सिव राम समर्चहिं सहित हुलास।
धाम अनेसा बासी हरिसिंह देव
बसत समुद सो काशी परि सिव सेव।
पायो तुलसी परिचै कीन्ह सुभाव
कही सुनावहु मोकहं संभु पुरान।
अस्वमेध रस सुख फल सहित बिचार
भुसुंड पूछित तुलसी कहहिं पुरान।
बहत सभी नित श्रोता बन गन भीर
कथा सुनत कहं उठमुख रहहिं अधीर।
भई सिव कथा पूरन सावन मास
बहु धन बस्तुनि अरचे तुलसीदास ॥८१॥

दोहा

काशी बासी अग कुल, धनिक बनिक मनिराम।
पर उपकारी बरन रत राम भगत गुन ग्राम ॥८२॥
मन गुनि तुलसी ग्यान गुन बुधि बिद्या बिस्तार।
कथा कथन प्रभु बचन अति पावन करम बिचार ॥८३॥
चरन बंदि सबिनय कही लागत भादव मास।
बालमीकि सो गुरु कही पूजबहु जो मन आस ॥८४॥
ताहि बचन ह तिन कही रामायन इक मास।
पूजे बहुबिध धनिकगन बुधवर तुलसीदास ॥८५॥

चंचला छन्द

नन्ददास देखि एक संग द्वारिकाहि जात
हौं हु जाउं वे बिचार धारिगे समीप प्रात।
भाव हीन को कहो सुभात उच्चरो न जाय,
दूसरों न आपनो सो तार होय को सहाय।
नन्ददास हाथ जोरि नोरि नोरि माथ नाय
जान दै कहैं मिस्री मभाय सों संजोग आय।
आनि हट्ट तासु आनु आतहू कहो कु आज
हौं रहौं सु पंच मास तू सबेग लौटि आउ।
नाद सीस सा [illegible] अनीस सं चले सिहाय
बाहुरे न नन्ददास बोधि बोलहू बिताय ॥८६॥

दोहा

करि आसीस सराय बिधि, सारदीय बत पूरि।
कातिक न्हान बताइ किय हिय सरधा भरि भूरि ॥८७॥
तुलसी रतनावलि सहित आतमराम सुभातु।
सोचत मिली न नन्द सुधि अगहन बीत्यौ जातु ॥८८॥
तुलसी जाकिन दूसिअत नन्ददास कुसलात।
कोउ न ताहि बताइयतु, नित नित मन पछितात ॥८९॥
पुनि इक ब्रजबासी कही श्री बिट्ठल प्रभु धाम।
दीन्हा ताहि गोकुल भजत नन्ददास हरिनाम ॥९०॥
तुलसी लिपि पाती गई, नन्ददास के ओर।
तुरत आइ हम सब दुखित पाइ तिहारे बियोग ॥९१॥
देषत बाट बितीतयौ सबहिं पूस को मास।
नन्ददास पाती मिली माघ चले निजबास ॥९२॥

सुन्दरी छन्द

आइ भये गृह फागुन में सब
कर्‌यौ हुतन दुज भोज सबिधि तब।
फागुन सित तेरिस जनु सुभ दिन
देइ पितामहि स्नान कियो छिन।
देखित ज्यौं तुलसी बत सरबस,
अन्त किया करि बेद कही जस।
नन्द बिना इत हाल दुखी जन
ताहि सुमिरि पछितात सबै मन।
बीति चल्यौ इमि फागुन मासहु
गोकुल भेजि दयौ नन्ददासहु ॥९३॥

पद्धरी छन्द

नन्ददास भये चन्दहास आय
पुलकित तन मन माय माय।
पुनि कह्यौ पितामहि सुरसबास
सुनि भए दुखित मन नन्ददास।
श्री बिट्ठल प्रभु आदेस पाय
लघु भ्राता संग तुर तुर सिधाय।
आए मुकरपतहिं दुष्यात,
पद पहि धरे निज भ्रात मात।
श्री रतनावलि पद परसि बानि
सब गाथा आपनि कही बपानि।
हिय हरषित भई कमला निहारि,
पति पद रज सह निज सीस धारि।

सब बसम एकादस द्वादसाह
कीन्ह पयोदस विधि सह उछाह ॥९४॥

दोहा

बिगत सोक निज निज सदन तुलसी नग्र सर्वग्र ।
बंधे परसपर प्रेम रजु, बसत सहित सानग्र ॥९५॥
रामकृत तुलसी मनत इच्छाकृत हरि नन्द ।
निज निज रुचि अनुसार दोउ भजत सच्चिदानग्र ॥९६॥
तुलसी बरनत राम जस नन्द कृष्ण गुनग्राम ।
सुन्न रचत नव नव सरस पान करत अभिराम ॥ ९७॥
दोउ बारत पटकरम बांचत कथा पुरान ।
दोउ करावत समुद्र इति गहत चहुं दिसि मान ॥९८॥
बेदसास्त्र सागर बरनि सक्त सित कातिक मास ।
दसमी तिथि बुधवार सुभ पूर्वाषाढ़ प्रकास ॥९९॥
रतनावलि जनम्यो तनय तुलसी सदन प्रकास ।
बाजे बहु बिध बाजने छायो अमित हुलास ॥१००॥
तारापति तेहि नाम कहि हेरत सबै सिहात ।
बुद्धिवन्त बुद्धिवन्त अति हंस रूप गोरो गात ॥१०१॥
तीनि बरष अरु मास को सुरपुर गयो सिधारि ।
इह जन कीन बिलाप बहु भरि भरि हग दुखारि ॥१०२॥
मारि मेह बिजरा परे तुलसिदास सुकरन ।
आत्मरूप बिस्मृति भई जानत छांह न पूर ॥१०३॥

कवित्त

सारस कपोत चक्रवाक सम तुलसी ये
रतनावलि बियोग एकु छन हूं ना सुहात ॥
सुनत रसीले बैन हीरप लजीले नैन
मंद मुसकान जासु देखि देखि ना अघात ॥
आकृति अनूप रूप गोरो तन प्रेम नेम
येह काज साज देखि मन फूले ना समात ॥
सीय अनुराग मोद भूले गनि सिव पी की
बिसरी अघात उर्दू गांठि प्रात न जमात ॥१०४॥
निधि रस सिधु इंदु बरसर मित सावन सनु
आयो अबिनासराय अनुजाहि लीने साथ ॥
तुलसी सत पाय रतनावलि सिवाय संग
बदरी पयान कर्यो बंदि पाद संभुनाथ ॥
इते दिन तुलसी हू आन धाम भवन मेह
बैठि गये रावरन सो बांचत सी

ग्वारहीं साँझ आए बाढ़ी तिय देखन चाहु
जाय मरे आधीराति चलि दीने बहरीपाय ॥१०५॥
भादों अँधियारी घटा कारी बजरारी घिरी
परत फुहार तऊ तुलसी न मानी हार ॥
नारि नेह मोहे अनु काहू मद भोए से
चलें अविनासराय पग धरैं ना पिछार ॥
राम उरधारि ज्यों बायुसुनु लाँघ्यो सिंधु
त्योंही उर धारि तिय गंगा लंघि गए पार ॥
तुलसी हरषाइ सो आइ चले भीजे गात
पोलियो बिचार आइ बोले ससुरार द्वार ॥१०६॥
तुलसी सुर जानि रतनावलि प्रात उठे
दुरतें कपाट पोलि बोलि घर लाए आइ ॥
चूमी कुसलात सन बात करी आदर दै
सूपे पहराय पट सेज पै सुवाए आइ ॥
जानि के इकंत कंत रतनावलि आई पास
कहै अविनासराय बैठी दिए सीस नाइ ॥
बोली कस आधीराति आए तुम प्रानाथ
गंगा कम उतरे पार हाइ दुख पायो आइ ॥१०७॥
तुलसी सुनि बोले हौं राम कथा पूरी करि
आयु साँझ आयो तुम बिनु उर भयो भार ॥
जीव अकुलायो अविनास न सुहायो कछु
देवन तोहि आयो लषि मोह को अपार ॥
तुम बिनु एकु छन जुग बीतो बीतै मोहि
बियोग में तिहारे घर लागतु है असार ॥
बिनुहीं प्रयासरी प्रान प्रिय तिहारे प्रेम
पोत के सहारे करि आयो सुर सिंधु पार ॥१०८॥

सवैया

मो तन प्रेम करी सरि पार करें हरि प्रेम तरें भव प्रानी ॥
प्रेम प्रताप महा महिमा लघु धी अविनास न जाय बखानी ॥
नाव भई बड़भागिन हौं तुम प्रेम पयोनिधि पाय सिहानी ॥
नैनन आनद नीर भरे पुलकाय कही रतनावलि बानी ॥१०९॥
बैन सुनै तिय के तुलसी हरि प्रेम कथा मनमाहिं समानी ॥
सूपत राम सनेह को पंथ दयो रतनावलि मानहु पानी ॥
राम बिसारि असार बिचारनु बेस चली अविनास न जानी ॥
सोचत भे तुलसी बरि मोन सती तिय नैनन नीद प्रमानी ॥११०॥
नाथहि नींद भयी जिय जानि पलोटति पायनु बन्दि सयानी ॥
दीप प्रकाश सनेहहि पाय गई रतनावलि हीय सिहानी ॥

सोइ रही विधि बाम लिखी अविनास मिटी न ललाट लिखानी॥
रातिहि में तुलसी पुहुप्यापि गए कित मोचक काहु न जानी ॥१११॥
भाँवरि होत उठी रतनावलि मोह भरी पिय देप न पाई ॥
दीसि परै न कहूं चहु ओर सब बबरी बरवारि भमाई ॥
हीय सनाको भयो रतनावलि नैनन नीर नदी बहुराई ॥
बात कहे बिनु नाहि कबी अविनास कहा मन आनु समाई ॥११२॥

कवित्त

रामपुर सूकरखेत बाट बाट हाट हेतु
देपत लपाई लाप चहूं दिसि धाए हैं ॥
पंथी नर नारि बहु बूझे बहु देखे नाम
दूरि दूरि दूत सोध पोजिबे पठाए हैं ॥
कहूं अविनासराय कहूं ना सुनाम लखी
पोजि पोजि हारे सब लौटि लौटि आए हैं॥
सिवनाथ संकर सम्भु रतनावलि आठ सबै
बैठे निराश ह्वै तुलसी न पाए हैं ॥११३॥
तुलसी पवान जानि नखरास चन्द्रहास
बहुरे उदास नेत आए आठ बाबा पास ॥
अंसुमन तन मोए रोए सब बोए से
भाव निज बिनोद सुमिरत तुलसिदास ॥
बीर धरि धाए दिसि दिसि लगाए बोध
बिबिध बन पठाए बिलए हैं कितेक मास ॥
किनहूं न पाए पछिताए अविनासराय
ह्वै कै मन निराश लौटि आए बन उदास ॥११४॥
निसि दिन बिलबिलाति अलसाव जासु नैन
हीय छटपटात गात कुम्हिलायो है ॥
दीरघ उसास लेति कबहूं न सांस लेति
बेसुधि ह्वै जाति मनो प्रान हूं गवायो है ॥
कबी अविनास कहै नाथ नाथ आयो नाथ
टेरत ही टेरत सुकंठ भरि आयो है ॥
रतनावलि तुलसी के बियोग मह बोरी सी
जानि परै कबहूं बिदोष जुर आयो है ॥११५॥

दोहा

पति बियोग सुखसिनि भई रतनावलि मुनवाम ।
सेवति हरि पति पादुका कीरति मही ललाम ॥११६॥
बात करबी रतनावली बन्दी आठ्ठा मेह ।
कबहु रही नवरास गृह सादर सहित सनेह ॥११७॥

नव रवि भुवन सुतीज तिथि, सित माधव भृगुनंद ।
योग तीरथ रतनावली बसी सदेवर चन्द ॥११८॥
नारि सियावन दोहरा नाना विध पद छन्द ।
निज अनुभव सिरजति रही रतनावलि तिय चन्द ॥११९॥
नव रस उदधि मही बरष भाद्र तीज भृगुवारि ।
निसायाम पीये चमे तुलसि विरागहि भारि ॥१२०॥

कवित्त

त्याग्यो परिवार ससुरारि घर द्वार बन
मनहिं पछार मारि मारि नेह तोर्‌यो है ॥
छार्‌यो पै नारि बन बीनिबिसों तारन हार
सरवस बिसारि हरि सों नेह जोर्‌यो है ॥
मनही मन टेरें तुलसी अबिराम राम
कहत तोहि सुनि राम हों कुल बोर्‌यो है ॥
जबहीं तैसोहीं बिहारो ही अबिनासराय
मोहि अपनाय हों जग सों मुख मोर्‌यो है ॥१२१॥
हीय भरि राम बिचरत पुर गाम बन
आए है तुलसिदास पावन अवध धाम ॥
दूरहि तें सीस देपि मन भरि आये नीर
पुलकित सरीर ह्वै मनावत सीयराम ॥
सरजू अन्हाय धाय राम धाम दूरि जारि
राम के सदन जाय कीन्ह बड़ ज्यों प्रनाम ॥
बोले अबिनास हू सरनागत बिहारो हों
भक्ति बर देउ निज पूजी मो मनोकाम ॥१२२॥
जहां जहां राम पद चंकित सुनि पाई हू
तहां तहां जाय जाय तुलसी मनाए राम ॥
लोटि लोटि जात हुड़ जात पुलकित गात
अवत जात जासु मन बैन पारें बिराम ॥
कहे अबिनास पुनि बोलें गदगद बानि
बोरि पानि कहुं मोरि लेउ सुनि दया धाम ॥
मोहि ना बिसारो तुहारो अब बिहारो नाथ
दया करि निहारो हीय बैठो प्रभु आठो याम ॥१२३॥
करि के हे मास मीपवास श्री तुलसिदास
आए अबिनास अपनाथि तीरथराज ॥
राम बिसराम भूमि जानि पानि जोरत जात
पुलकित गात गात आसम श्री भरद्वाज ॥
न्हाए त्रिबेनी पाप छेदन छनी छोनि
सुरग निसेनी बेनी बनी सो सबति साज ॥

तहां भजि राम चित्रकूट बास कीनो पुनि
संकर मनाए आइ काशी राम भक्ति काज ॥१२४॥
देवे पुनि तीरथ राम तीरथ सर्व धाय
नाना गिरि कानन हूं बैठि भजे सीय राम ॥
विविध व्रत विशाल जप तप महान ध्यान
सरयि अविनाश सही बरषा सात धाम ॥
सून्य वसु वद चंद चैत सित पांचे गुरु
आए श्री तुलसिदासफेरि श्री अवध धाम ॥
सात मास वास करि आए फिरि सेस तीरथ
दान वसु वद भूमि आए पुनि काशी धाम ॥१२५॥

दोहा

तुलसिदास काशी पुरी बसे सुरसरी तीर ।
सतसंग हित लागी रहै भगत सन्त बन भीर ॥१२६॥
बरन करम बरनत कबी, तुलसि परम आचार ।
ईस भगति महिमा कबी वेद पुरान अपार ॥१२७॥
बरनत कबहु सिव कथा राम कथा निज बास ।
भगति ग्यान रस संचरत नित नव तुलसीदास ॥१२८॥
बारानसि बसि कीन्ह नित बहु विध छन्द अपार ।
रामचरित इति अति सरस, तुलसी विविध प्रकार ॥१२९॥
चित्रकूट चलि आइ सो, कबहुं अवध प्रयाग ।
बसहि अधिक सो सिवपुरी, करें राम अनुराग ॥१३०॥

कवित्त

कही एक पन्नी नन्ददास हू बिराग सही
सतत बसें ब्रज सो बहु दिन सों गेह त्यागि ॥
पुस्तक सुनि तुलसी बोल धनि नन्ददास
ईस अनुराग पाय तासु गए भ्रम भागि ॥
कही उमयाय जाय अविनास देवों कबी
छूटि भवबन्धन सों सोक भया भूरि भागि ॥
जेठ मास पाय सित सूर तिथि जीव बार
राम नन्द वेद चन्द बरषर अर्क सो लागि ॥१३१॥

दोहा

धारें अमित उछाह उर सुमिरि राम अवधेस ।
रितु हिमन्त तुलसी चले नन्द मिसन ब्रज देस ॥१३२॥
मुन नव वेद धरा बरस सुकल माघ कुजवार ।
तुलसीदास पंचमि सुतिथि चले मथुपुरी द्वार ॥१३३॥
सानंद देखी मथुपुरी बरसौमि पुनि आय ।
नन्ददास लखि मुदित भे राम भरत जिमि पाय ॥१३४॥

पुलकि नम्र तेहि पद गहे, कहि सब निज गृह जाय ॥
बरस कराये सूर को तुलसि मनायी माय ॥१३५॥
तुलसि हि संग लै नन्द ये आय गोवर्धन धाम ।
तुलसि बसिबर रूप महं लये अनुप बर राम ॥१३६॥
कछु दिन करि बिसराम पुनि तुलसि अनुज निज संग ।
कृष्ण सुजस करत चले गोकुल सहित उमंग ॥१३७॥
तुलसी श्री बिट्ठल बरस लहि अभिवादन कीन्ह ।
कहि गोसाईं प्रिय बचन बहुबिध आदर दीन्ह ॥१३८॥
लये जानकी सहित तहं, बिट्ठल सुत रघुनाथ ।
इष्ट नाम मय रूप कहं समुद मनायो माथ ॥१३९॥
तब दिखाए सकल ब्रज श्री हरि लीला धाम ।
तुलसिदास हरषित भए, देखि धाम अभिराम ॥१४०॥
तुलसी कृष्ण पदावली सजन कियो आरंभ ।
प्रभुज भेंटि काशी चले भक्ति भवन के खंभ ॥१४१॥
ब्रज संमिन संग संग चले तुलसी काशी धाम ॥
बिस्वनाथ के दरस करि, लियो बास बिसराम ॥१४२॥
भक्त करत निसि आय नित श्री तुलसी सत संग ॥
बने परम पथ पथिक बहु रंगे राम रस रंग ॥१४३॥
सर नव उदधि मही बरष मकर प्रयाग अन्हात ।
तुलसी औधपुरी चले सुमिरत राम सिहात ॥१४४॥
रितु नव बेद धरा अवध राम नवमि मधुमास ।
बार बार मानस ललित किय कमठठ प्रकास ॥१४५॥
गगन व्योम सरचन्द सक असित जेठ सुभ मास ।
रामचरित भृगु तीज दिन पूर्यो तुलसीदास ॥१४६॥

छंद

श्री हरि भजन सेवन करन बस सतत नित तुलसी पर्यो ।
कछु बोध बसि बारानसी पुनि बीच रहि पूरन कर्यो ।
तेहि सुक्रम रामचरित्र मानस बरस पचई पकि पर्यो ।
श्री राम भक्ति पियूष रस मय तासु सोता बहि चर्यो ॥१४७॥
अवनित बिनय पद चरित राम उपा सुमपस पद करे ।
तुलसी अवध काशी पिराग सुवास करि आनद भरे ।
चलि बात कबहु चित्रकूटहि नित राम कथा पढ़ें ।
जहं जहं रहैं तुलसी तहां तहं भक्त श्रोता मन बढ़ें ॥१४८॥

दोहा

बेठ नन्द नम बान महि, सक श्री तुलसीदास ।
नित नित राम कथा कहत चित्रकूट करि बास ॥१४९॥

तब तहँ आयो साधु इक राजा नाम सुभक्त ।
सदा साधु सेवा निरत राम नाम अनुरक्त ॥१५०॥
जेहि अहीर बर कुल भए नन्दबबा बडभाग ।
राजबीर तेहि कुल भयो कर्‌यो धाम गृहत्याग । १५१॥
अवधवासी बासी भगत सुकवि सन्त सुपवाम ।
राजबीर आभीर सोइ, राजा साधु कहाइ ॥१५२॥

सवैया

ऊरध पुंड बिसाल सुभाल जटा जुटि स्याम महा छबि छावै
कंठ लसै तुलसी बर माल सदा कटिबास कोपीन सुहावै
सामल देह सनेह को गेह करै जनु बेह बिदेह बिराजै
संतनि हाथ बिक्यो अबिनास सो राजा कर्‌यो तनु सन्तन काजै ॥१५३॥

दोहा

सुनि सुनि तुलसी मुख सरस गाथा राम सनाम ।
तुलसी ग्याम बिराम लखि, भगति लही बिसराम । १५४॥
सबिनय तुलसी पद परसि इकबिन राजा ओर ।
बोल्यो मोर कुटी चलो पुजवहु आसा मोर ॥१५५॥
तुलसी सुनि सबिनय गिरा कीन्ह गौन स्वीकार ।
नगर साधु दुइ संग चले सुमिरत जयजयकार ॥१५६॥

कवित्त

पयस्विनी जलस्विनी कलिन्दिनी कुरी है जहाँ
तामु आम्र कुल मूल फूल बाटिका सुहाव ॥
कदली मधूक अंब निंबु बंधु सोहैं तब
सिंसिपा बदरि तिंदु तुलसी सुर लपाव ॥
ललित लता बितान पटी तहाँ पर्नकुटी
प्रगटी अमित धाम मुनिन मन लुभाव ॥
तहाँ अबिनास राम पुण्य राशि राजा साधु
करै बास सन्तन पद सेवा करि सिहाव ॥१५७॥
आवै तामु पनकुटी सो न दुख पाव कबौ
आपनी कुटी समान सन्त पावते सुवास ॥
बिन्ध्या महि लाव जदि साधु आइ आवै कोउ
पेहसौं जिमाव बसैं आपु बारत उपास ॥
रोगी होइ साधु कोउ तामु उपचार करै
बूझि बूझि बैद बोटि ल्यावै अनेक पास ॥
कबहू रिसाय न मनपाय अबिनास राय
सरल सुभाय पाय होत हिय हुलास ॥१५८॥

दोहा

जमुना तीर अरण्य महु, राजाकुटी सुहाय।
सनि दिन रवि तिथि जेठ सित तुलसि बिराजे जाय ॥१५९॥
सपि पावन एकान्त थल तुलसी मन गो आय।
भजत राम सिय बसि तहाँ जमुना नीर अन्हाय ॥१६०॥
राजा सेवत निसि दिवस हरि तुलसिहि मन लाय।
सीय राम माया मृगत तुलसी मुख हरयाय ॥१६१॥
तुलसिदास का दास मुनि आवत भक्त अनन्त।
मुही बसी मुख रंक मुख धनी नारि नर सन्त ॥१६२॥

कवित्त

सुंदर सुजान मतिमान आजान बाहु
भगत जन पचान तेहि मसे माल मानिये ॥
मान परवीन हरिध्यान लवलीन कवि
विषय विकार हीन छीन छिप जानिये ॥
मुंडित सीस मुण्ड सो सेत सत केस बस
पीन देह सूम कटि मोर त्यों बपानिये ॥
कहैं अविनास आस तिलक तुलसिदास
सेत कटि अवोबास तासु पहचानिये ॥१६३॥
धी धी तुलसिदास दर्सन परसन सों
होत मति प्रकर्सन मन कर्म घोर आय ॥
छूटत कुविचार त्यों टूटत विष विकार
फूटत पहार पाप ताप अविनासराय ॥
नाना विष जासु मुष सुनत धी राम नाम
होत जवन पावन मन भक्ति उमगाय ॥
होत अवनाम धन्य जासु सतसंग पाय
जासु चरित पावन जन सब कीन गाय ॥१६४॥
सारद सुपुत्र है कि बालमीकि नारद है
बसिष्ठ से वरिष्ठ कहौं कि व्यास से महान ॥
कहौं सुकदेव से कि सुत से प्रभूत मति
बकता प्रवीन अति बैन हूं सुधा समान ॥
आगम पुरान सर्व वेद भेद तत्व ग्यान
महा तप निधान सो धर्म जनु मूर्तिमान ॥
धन्य धी तुलसिदास नासन जगतत्रास
अपरे अविनास सो करन चरन आन ॥१६५॥

विजय छन्द

राजत राजकुटी जबसों तुलसी चरचा चहुँ ओर बढ़ी है ॥
कानिहि कुल कुटी कल कीरति आय सुभद्र तिपानि चढ़ी है ॥

भावत बात सिहात सुहात अनेकन भक्तनु छाई मही है ॥
श्री तुलसी कलि कीतन हेतु भयी सिरजी अबिनास गही है ॥१६६॥

कबित्त

नाना बिध राम भोग भक्त लोग भाय जहाँ
देव जोग सरवा के सोत बहिबो करें ॥
बाजु पर्ने मीन मीन साक बारि बाजर धूम
सतु गुर बीज तेस पुंज रहिबो करें ॥
देवी अबिनास श्री तुलसीदास रिद्धि सिद्धि
कोटि अन्नपूर्ना जहाँ नाज सहिबो करें ॥
राजा सो साधु साधु सेवक सुभक्त बाधु
निरपि बाधु सेवा साधु कीरति कहिबो करें ॥१६७॥
अंबस ह सुमगल कीनो श्री तुलसिदास
बाधु परताप पाप पुंज जरिबो करें ।
सोहति पयस्विनी रबिनन्दिनी तापहारि
नई नई भक्तकुटी जहाँ परिबो करें ॥
बाध्यो रामदूत धाम भक्त मन पूजें काम
भक्त जहाँ राम नाम जाप करिबो करें ।
तुलसी ज्यों व्यास सुनु राजाधु परीक्षित ज्यों
देवे अबिनास हीन भक्ति भरिबो करें ॥१६८॥
राजापुर बसाय राजा हू कुतारथ कीन
सेवाक्रम दीन पीन कीन कीरति प्रकास ।
भक्त जन भीर जहाँ रहै ना उछीर कबी
जमुना के तीर कदली द्रुमो नैमिष निवास ॥
राम पान ध्यान ध्यान जप्य जप साधें लोग
वेद श्री पुराणन को उहरयो जहँ उजास ।
भावै अबिनास देपि देपि ना अघाए नैन
बनत बनाए बैन ऐसे श्री तुलसिदास ॥१६९॥

दोहा

तिपि भू सर महि सक बरष अमित माघ रविवार ।
पंचमि तिथि अबिनास हो भयो तुलसि दरबार ॥१७०॥

बरवा छन्द

बाधु भरा सर भू सक फागुन मास ।
सुकुल पक्ष तिथि तृतिया सुक प्रकास ॥
हनुमत मन्दिर बैठे राजा साधु ।
भक्त राम सिय हनुमत प्रेम अबाधु ॥
गए अचानक तनु तजि रघुपति धाम ।
भई भोर की बिरियाँ गति अभिराम ॥

सुनि उठि धाए तुरतहि तुलसीदास।
बोले बनि बनि राजा भए उदास॥
कुटी कुटी महं छायो सोक अपार।
निरमोही हु बहावत दृग जल धार॥
सुनि सुनि दौरी भक्त जनन की भीर।
तेहि दुख गावति नैन बहावति नीर॥
धाए चहुँदिसि ग्राम निवासी लोग।
करि करि तेहि सुधि सबै मनावत सोग॥
घुरि मिलि भगतन चिरच्यो तासु विमान।
बाहे जमुना सरि तट बाय मसान॥
तुलसीदास कराये पुनि संकार।
तब अविनास विलोकी भीर अपार॥
तुलसी पाहन मूरति तासु गढ़ाय।
हनुमत मंदिर थापी हीय सिहाय॥१७१॥

कवित्त (१ री पोथी में)

बाहु धरा तत्व भूमि वर्ष सित फागुन की
बीज तिथि सुक्रवार भयो दुख दाह दाह।
अंबनी सुनु के सदन रामध्यान मगन
बैठे जब राजा साधु मोर आसन समाह॥
रटत राम राम सो चले रामधाम गए
देखि देखि आचरज कर्यो साधु समुदाय।
देखे श्री तुलसिदास अकुलाए भे उदास
धन्य धन्य राजा साधु कहौ अविनास राह॥१७१॥
प्रथमहि चित्रकूट देखे हौं तुलसिदास
देखे पुनि रामकुटी रामसिंह संग जाय।
परिचै मो लीनो निज दीनो बहु पूर्वे मोहि
आदर बहु कीनो सो लीनो हिय लगाय॥
देखि अनुरागी मोर हीय प्रेम पाग्यो पुनि
राजासाधु रामधाम जात सबै देखे धाम।
* नन्द चन्द तत्व ईस कर्ये सित नौमि कन्ह
जीव फेरि कीय सग[1] मास अविनास राय॥१७२॥

दोहा

पन्द्रह सौ बाईस सक पावन सावन मास।
अमा सोम दिन पुनि भयो तुलसी सतसंग भास॥१७३॥

---

*१ नंद चंद तत्व सोम कातिक अरुण नौमि।
सोम फेरि कीन संग मास अविनासराय॥

मास अढाई संग लह्यो राजा कुटी सुवास।
ताहि बरष काशी गए, कातिक तुलसीदास ॥१७४॥
फेरि माहि हों महि सबयी, तुलसी दरसन माहु।
तदपि रह्यो मो मन सदा दरसन करन उछाहु ॥१७५॥
राजा साधु सुनाम सों राजापुर निरमाइ।
तुलसी निज मरजाद करि, काशी गए सिधाइ ॥१७६॥
आवत जात सुमरत तहं बसत करत बिसराम।
जोग जाग जप तप करत भजत बिबिध बिध राम ॥१७७॥
तुलसी पवरज पावनी राजाभूमि ललाम।
राम भगति बरदायनी तपोभूमि अभिराम ॥१७८॥
हौंहु तुलसि सतसंग महि चलि चलि मो बलभाय।
मन व्रत तीरथ रचि बसी बढ़ी राम अनुराय ॥१७९॥
बसु हग सर भू बरष ससि पूनम आश्विन मास।
तीरथ दरसन हित चल्यो त्यागि सिहुडा बास ॥१८०॥

कवमाखिला छन्द

सिहुडा बन सिंह छत्रिय सर्वजीत पमार।
तासु पावन चरित सुन्दर राजसिंह कुमार ॥
धीर बिजयी बीर बरयति सत्यप्रन पुनयाम।
सर महीसर भक्त कवि मन गुनिन पूरन काम ॥
पावत सबै सन्तोष जन गन जाइ जासु दुआर।
जप कर्म प्रवीन पालकलीन परमोदार ॥
अविनास सुजगत हंसनि बोलनि जासु लीन सुभाय।
सुमिरतु कबी मन मोर चाहतु जाइ पंथ लगाय ॥१८१॥

दोहा

भरत खंड पश्चिम दक्षिन उत्तर हिम गिरि जाइ।
कीन बास तीरथ दरस सुर हरि पद मन लाइ ॥१८२॥
बेद अनल सर महि बरष पूनम कातिक मास।
सितदल गुरु तासी सदन आयो हौं अभिलास ॥१८३॥
काशी लग्यो पहार को भयो सुन्दर एक पोह।
बरष अढाई बुस लह्यो दियो राम पुनि पोह ॥१८४॥
सर पुन बान धरा बरष सातें माधव मास।
असित पञ्च सनिवार किय हरसिंह सुरपुर बास ॥१८५॥
सामत रई हरसिंह सुत करनसिंह पुन धाम।
जन बिरक बिद्या बिनय धरम धाम अभिराम ॥१८६॥
तिन बहु धन धरनी बढ़ी, राख्यो करि सनमान।
तासी तजि जाइ न कहूँ रह्यो भजो भगवान ॥१८७॥

तारी अनुज तनुज पुह भजों कौसिलानन्द।
कुम कुल कीर्त्ति करनसिंह सुवन सहित सानन्द ॥१८८॥
धनि धनि तारी धाम इह जहँ जन चारु चरित्र।
भए आसु सुत करन से तुलसी से दौहित्र ॥१८९॥
तुलसी की दुहिता जहाँ भगत प्रसविनी धन्य।
वीर जननि दुर्गा भई करन मात तिय गन्य ॥१९०॥
धनि धनि श्री तुलसी भई धनि श्री तुलसीदास।
जिन जगती तल बिसतर्‌यो कीरति कलित प्रकास ॥१९१॥
नंददास चंदहास सुत कृष्णदास ब्रजचन्द।
भए दुलावन बार बहु श्री तुलसिहि नंद नंद ॥१९२॥
भई धन्य भारत मही तुलसीदासहि पाय।
भगति ग्यान मंदाकिनी जिन जग दई बहाइ ॥१९३॥

छन्द

होत न जो तुलसी जग में हिंदुस्तान की कालिहि को करतो।
वेद पुरानन की चरचा सरचा अविनास को आचरतो॥
मोह मयी महिरा मद मत्त अचेतन चेतन को करतो।
मानस रामपियूष पियाइ सो जीवन जीवन को भरतो ॥१९४॥

छन्द

तुलसी सम धर्म धुरीन सुधी
जन होयँ सुभक्त गुनी गुन ग्यानी।
रत्नावलि सी कुल लाजवती
तिय होयँ सुसील सती पुनपानी॥
तुलसी सम पूत जनें जननी
बिहुआन बिनीत जसी हरि ध्यानी॥
अविनास अकब्बर से अवनीस
रहै जिनकी जग कीर्ति कहानी ॥१९५॥
धनि धन्य भए तुलसी जग में
कल कीरति आसु रहै चिरचाई।
नृप पालहिं राम समान प्रजा
मिटि जाय दसानन से दुपदाई॥
सब ही घर होयँ भरत से भ्रात
बिमात सुमित्रा समान सुहाई॥
अविनास सु केसव से कवि भानु
प्रकास करैं नृप धाम सुनाई ॥१९६॥

कवित्त

बीती तरुनाई बीर मंडित बुन्देलखंड
कालिंजर माँहि करि तिहुआ कीनो बास।

पाए बहु बीर धीर मानी बखानी जहाँ
साधु श्री गुमन्य के कविन्दजन पूजें आस ॥
देवे बहु राजद्वार जाय अविनास राय
पायो बहु दान मान कहुँ प्रभ को प्रकास ।
पै न ओरछेस सो गुमन्य कवि केसव सो
राजा सो उदार साधु देख्यो हौं न मकरदास ॥१९७॥
राजा महाराज श्री जहाँगीर भूपतिराज
वासीपति कर्नसिंह सोरंकी गुमपवास ।
पन्द्रह सौ बयालीस बप सक्र गुरुवार
बीज तिथि स्याम पाप बरषो अब प्रूप मास ॥
गुरु जन जस गाय्यो हैपि राय्यो जसो होंहु
बीय अभिलाय्यो लिय्यो चारित तुलसिदास ।
छहरै छबीलो छिति छेत्र में छपाकर सो
मासै तम राशि अविनास तुलसी प्रकास ॥१९८॥

दोहा

लिय्यो अतिहि सदेह विधि तुलसी तरप प्रकास ।
पढ़ें सुनें अविनास के पावें भपति विलास ॥१९९॥
धन्य राम पद पुप बलज अलि श्री तुलसीदास ।
जासु रुचिर पावन चरित भनि धनि श्री अविनास ॥२००॥

उल्लाला छन्द

अघ जग साई जानकी रमन दुरित दारिद हरन ।
करो सदा अविनास हिय बास आस पूरन करन ॥२०१॥
इति श्री अविनासराय कृत तुलसीप्रकास समाप्तम् ।
संवत् १८५९ जेठ बदि १० अमावस सोमवार ॥
लिपितम् श्रीगीराम मिसुर ॥ सुभम् ॥

टिप्पणी

पृष्ठ ४९६ की अन्तिम पंक्ति में अन्य प्रति के पृष्ठों का उल्लेख है। ये पृष्ठ ४९२ की बीसवीं पंक्ति में 'जीतेसि नाय नगर' इन शब्दों से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ४९५ की बारहवीं पंक्ति के 'देस बास छिति बिजिगिहु नाही। श्री' समाप्त होते हैं। ये पृष्ठ पुस्तिका के पश्चात् मुद्रित होने चाहिए थे।

शर्त वाजिब उल अर्ज़ मौज़ा मझगवाँ उर्फ़ राजापुर

मुहाल मुस्तकिल परगना पैड़ी तहसील मऊ किस्मत करोई जिला बाँदा मसमूला जिस्त अव्वल बंदोबस्त बाबत सन् १८८० ८१ ई० बाबत १२८८ फ०

आज इस वाजिब उल अर्ज़ को जिमींदारान व काश्तकारान व पटवारी ने हमारे सामने तसदीक किया लिहाज़ा हुक्म हुआ कि शामिल मिस्ल रहे।

बतारीख १६ मार्च सन् १८७६ ई० Sd. (Illegible) Seal

साल अव्वल और मोहयत हुक्मियत के दस्तूरात

दफ़ा १ मुहाल की मोहयत

मुहाल हाज़ा बशकल पट्टीदारी मापुकम्मिल मुनक़िसम उमर चार मरी व पाँच पट्टियात और एक पट्टी शामिलात मुहाल के है जिसमें दो मकबूज़ा हैं।

दफ़ा २ तरीक़ा वसूली व अदाइ मालगुज़ारी सरकार

पट्टियात मुनक़सिमा में मालकान पट्टी इकबाई व शामलात मुहाल में हर बहार नम्बरदारान काश्तकारान से लगान वसूल करके मालगुज़ारी हस्ब इकसात ज़ैल दाख़िल ख़ज़ाना सरकारी करते हैं—

ख़रीफ़	०—१०—०	रबी	०—६—०
१५ दिसम्बर	०—१०—०	१५ मई	०—६—०

दफ़ा ३ दस्तूर लाल बाबत तजर्बर पटवारी

व हालत जिसमें मौहदा तजर्बर पटवारी मंजूरी साहब कलक्टर बहादुर हस्ब क़ानून मुजरिमा वक़ूअ होगा।

× × ×

दफ़ा १० कोई दूसरा रिवाज या इस्तहक़ाक़ जोकि मुहतमिम बंदोबस्त मुन्दर्ज करना मुनासिब समझता हो

अगर कोई सख़्त बशरह रुज़ायाम चाह या तालाब पुख़्ता या ग़ैर बनावे तो बिना इजाज़त ज़मींदार व न देने किसी हक़ के मालकी ग़ैर मकबूज़ा में बना सकता है। और इस मुहाल में यह रिवाज है कि काश्तकारान मौरूसी वक़्त ज़रूरत अदाय मालगुज़ारी या शादी व ग़मी अपनी काश्त को रहन करके मुर्तहिन का नाम दर्ज जमाबंदी करा देते हैं और जब ज़र क़र्ज़ अदा करे मुर्तहिन से काश्त मौरूसी वापस लेते हैं। और मुवस्सिल १३६६।।)।। मुवस्सिला ज़मींदारान व ६७८।।=) मुवस्सिला शाह बिशाबन व मयादीन व रामलाल व अवधलाल पाक़ीदारान चेला गोसाईं तुलसीदास कटरा व बजाजा व बाज़ार व मौधाद व मिरहाई से हक़ूक़ पाते हैं।

दस्तख़त व ख़त उर्दू	दस्तख़त व ख़त उर्दू
फ़ख़रुद्दीन मुहर्रिर	अमुदयाल मुहर्रिर
सफ़ाई व मुक़ाबला	मुक़ाबला
दस्तख़त व ख़त उर्दू	दस्तख़त व ख़त उर्दू
(पढ़े नहीं जाते)	(पढ़े नहीं जाते)

Report on the Examination of manuscript volumes of 'Balkand', 'Aranyakand' of Tulsikrit Ramayan and Bhaktmal by Shri Seva Das received from Dr Bharadwaj

The manuscript volume of Aranyakand 'Balkand of Tulsikrit Ramayan and Bhaktmal by Shri Seva Das Ji were examined in this Department. These three manuscripts are written with carbon ink from which any dating evidence is not possible. The paper of all these manuscripts has been found to be all rag and is sized with starch All rag, starch sized paper has been in use since ancient times (13/14 century) upto the present period for writing purposes and as such it is not possible to derive any conclusion regarding the date of these manuscripts from the above observation

Colophons on page 124 of manuscript Balkand and page 28 of manuscript Aranyakand have been also examined. The reddish tinge underneath the black writing in the end three lines on page 124 of 'Balkand' manuscript does not appear to be from any previous writing Perhaps red colour has been used as a background for the colophon in black ink as a decoration. However the end four lines of colophon on page 28 of manuscript Aranyakand appear to be rewritten in blank ink over red writing. Some of the alphabets of the previous writing in red ink could be distinctly seen up to the 1st and 2nd line but from the middle portion of the third line upto the end of fourth line there is no clear indication of overwriting since the red ink appears to have faded in these portions. However light faded impression of digit 4 is visible slightly shifted from the impression of the digit 4 in black ink in the year inscription 1013 (in Hindi numerals)

Perhaps a calligraphic study of these manuscripts may help their dating and the Department of Archaeology may be in a position to help in this matter

K. D Bhargava
Director of Archives
Government of India.

D O.No.P/11/59-J DGA

From Dr B. Ch Chhabra M.A ,
M O L. Ph D (Lngd.), F.A S
JOINT DIRECTOR GENERAL OF
ARCHAEOLOGY IN INDIA
New Delhi 11 the 22nd September 1959

Dear Dr Bharadwaj,

Please refer to your letter dated the 21st September 1959 I examined the manuscripts in the original of the following which you had brought personally with you

1 The Bala Kanda of the Rama Carita Manasa dated 1643 V.E

2 The Aranya Kanda of the Rama Carita Manasa, dated 1643 V.E.

3 The 'Bhaktamala by seva dasa, dated 1894 V.E

I hereby confirm what I told you about the genuiness of the manuscripts. In each case the colophon and the rest of the text on the last page appears to me to be by one and the same hand. In the case of the third manuscript namely that of the Bhaktamala the top and bottom notes and also the marginal notes on page 164 and the rest of the text also appear to be by one and the same hand

The Devanagari characters used in all the three manuscripts appear to be of the period noted in each case.

The four photographs kindly sent by you are hereby returned.

Yours sincerely
B. Ch Chhabra
Joint Director General
22-9-1959

Dr R. Bharadwaj
14/29 Shakti Nagar
Delhi.
Encls : 4 Photographs.

अध्ययन-सामग्री

(क) हस्तलिखित ग्रन्थ

बालकाण्ड, रामचरित मानस १६४३ वि० तुलसीदास जी के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट।

अरण्य काण्ड रामचरित मानस १६४३ तुलसीदासजी के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट।

भ्रमरगीत नन्ददास-कृत कृष्णदास के शिष्य बालकृष्ण के द्वारा प्रतिलिपि १६७२ वि०।

सूकर-क्षेत्र माहात्म्य कृष्णदास-कृत मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८०९ वि०।

रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद-कृत १८२९ वि०।

रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद-कृत लिपिकार रामवल्लभ मिश्र १८६४ वि०।

दोहा रत्नावली, रत्नावली-कृत २०१ दोहों का संग्रह लिपिकार गोपालदास १८२४ वि०।

दोहा रत्नावली रत्नावली-कृत २०१ दोहों का संग्रह लिपिकार 'मंगापर' १८२९ वि०।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह रत्नावली कृत १११ दोहों का संग्रह लिपिकार ईश्वरनाथ पण्डित १८७५ वि०।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह रत्नावली-कृत १११ दोहों का संग्रह लिपिकार रामचन्द्र १८७४ वि०।

कृष्णदास वंशावली कृष्णदास-कृत लिपिकार मुरलीधर चतुर्वेद १८२९ वि०।

अष्ट सखामृत ग्रामेश कवि-कृत १८६५ वि० की प्रति।

सूकर क्षेत्र माहात्म्य कृष्णदास-कृत लिपिकार शिवसहाय १८७० वि०।

वर्षफल कृष्णदास कृत लिपिकार बद्रीनाथ १८७२ वि०।

वर्षफल जमनाथ मिश्र (आगरा) की प्रति १९२९ अब मुंशी हाजी लिपिकार।

सेवादास की टीका नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की भक्तिरस बोधिनी टीका पर टीका सेवादास कृत १८९३ वि०।

ज्ञान दीपक तुलसीदास-कृत लिपिकार मनोहर पांडे लगभग १८९३ वि०।

विष्णुस्वामी चरितामृत हरिहर भट्ट कृत लिपि तिथि अज्ञात।

तुलसीकृत रामायण फारसी लिपि १२११ हि० बहूम रविउल अव्वल।

(ख) मुद्रित ग्रन्थ और लेख

अथर्व वेद ओम १९४३ ई०।

अद्भुत रामायण ।
अध्यात्म रामायण गीता प्रेस गोरखपुर १९४४ ई० ।
अयोध्या माहात्म्य श्री वेंकटेश्वर प्रेस बारखपुर, ५६ वि० ।
अवस्थी सद्गुरुशरण तुलसी के चार दल, ई० प्रे० १९३५ ई० ।
अवस्थी हरिकृष्ण तुलसी व्यक्तित्व और विचार विद्यामन्दिर लखनऊ, १९५२ ई ।
अविनाशराय तुलसी प्रकाश लक्ष्मी प्रेस कासगंज, प्रथम संस्करण १९५३ ई० द्वितीय संस्करण जनवरी १९५४ ई ।
अहिर्बुध्न्य संहिता अडयार १९१६ ई० ।
आत्रेय डॉ भी० ला द फिलॉसफी ऑव योग वासिष्ठ अडयार, १९३६ ई०, योगवासिष्ठ एण्ड इट्स फिलॉसफी इंडियन बुक ऑव बनारस ।
आयंगर पी० टी० श्रीनिवास आउट लाइन ऑव इंडियन फिलॉसफी इंडियन बुक ऑव वाराणसी १९०९ ई० ।
आर्कलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द १ १८७१ ई० ।
इन्द्रदेव नारायण नवरत्न (तुलसी चरित की समालोचना) मर्यादा मई १९१२ ई ।
इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया ज प्र० सेकिण्ड प्रॉविंशल सिरीज जिल्द २१ कलकत्ता १९०८ ई० ।
ईशाद्यष्टोत्तर शतोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९१७ ई० ।
उत्तरार्द्ध मत्तमाल प्रकाशक रा० ब० श्री रामरण विनयसिंह खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर १९२७ हरिश्चन्द्राब्द ४३ ।
ऋग्वेद ऑव १९४० ई ।
एटकिंस ए ओ० द रामायण ऑव तुलसीदास हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली १९३२ ई० ।
एडकिंस एडविन डी० :
१ स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट ऑव द नॉर्थ वेस्ट प्रॉविंस ऑव इंडिया जिल्द १ बुन्देलखण्ड इलाहाबाद १८७४ ई०
२ अलीगढ़ १८७५ ।
३ वही जिल्द ४ आगरा डिवीजन १८७६ ई ।
एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका लन्दन जिल्द २२ चतुर्थ संस्करण १९२९ ई० ।
एन्युअल प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव द सुपरिंटेंडेंट ऑव हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट मोनुमेंट्स नॉर्दर्न सर्किल फ्रॉम दि ईयर एण्डिंग ३१ मार्च १९१९ ई० लाहौर १९२० ई० ।
ऐंजलीशरण मानस पीयूष अयोध्या तृतीय संस्करण २ ०८ वि० ।
कल्याण गोरखपुर, जिल्द ९ १ १४, १ २० ९ २५, १ ।
कार्पेण्टर, जे ई थीज्म इन मिडिवल इंडिया ।
कार्पेण्टर जे० एन० बियॉलोजी ऑव तुलसीदास द क्रिश्चियन लिटरेचर सुसाइटी फॉर इण्डिया १९१८ ई० ।
ई एच० विल्सन

१ हैनरी बर्गसों द फिलॉसफी ऑव चेंज, टी० सी० एण्ड ई० सी० जैक लि० लन्दन १९१९ ई०।
२ द फिलॉसफी ऑव चेंज मैकमिलन एण्ड कम्पनी १९१४ ई०।
किशोर दीने घटमेन ऑव इण्डिया (हाय लाइब्रेरी क्लब) तुलसीदास।
किशन लाल रामचरितमानस सटीक बम्बई १९५६ वि०।
की एफ० ई० हिन्दी लिट्रेचर १९२० ई०।
कुरान, द होली सम्पादक रॉबर्ट जे० एम० डेण्ट, लन्दन १९१३ ई०।
'कुमार' राजकुमार तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन आगरा २०१२वि०।
कु, एफ० ए०, ई० नेचर एण्ड ग्राउट लाइन ऑव मॉडर्न थॉलिज विक्टर गोलंज लि०, लन्दन १९३१ ई०।
केशवदास कविप्रिया, सम्पादक लाला भगवानदीन मेसर्स प्रेस वाराणसी केन्ट १९८२ वि०।
केसरी नारायण शुक्ल डॉ मानस की कथी भूमिका (ए० पी० वराम्बोकोष) अनुवाद विद्यामन्दिर लखनऊ १९५५ ई०।
धर्म संहिता वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।
गणपतीलाल लाला श्रीमद् गोस्वामि तुलसीदासजी का जीवन-चरित गणपतीलाल लक्ष्मीनारायण मुरादाबाद १९६६ वि०।
गांधी, मोहनदास करमचन्द राम-नाम दि इनएक्सिविस रिमेडी। आनन्द टी० हिंदु रामी कराची १९४७ ई०।
ग्राउज एफ० एस० (१) रामायण ऑव तुलसीदास रामनारायणलाल इलाहाबाद सप्तम संस्करण १९१७ ई० पंचम संस्करण १८९१ ई०।
(२) द प्रोलोग टु द रामायण ऑव तुलसीदास जे० आर० ए० एस० बंगाल जिल्द ४५, १८७६ ई०।
ग्रियर्सन सर जॉर्ज ग्राबर
(१) द माडर्न वर्नाक्युलर लिट्रेचर ऑव हिन्दुस्तान एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता १८८९ ई०।
(२) तुलसीदास जे० आर० ए० एस० १९०१ ई०।
(३) नाट्स ऑन तुलसीदास इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २२ १८९३ ई०।
(४) द मिडीवल वर्नाक्युलर लिट्रेचर ऑव हिन्दुस्तान विद स्पेशल रेफरेन्स टु तुलसीदास, सर्विस इन्स्टीट्यूशन कॉन्ग्रेस ऑव ओरियन्टलिस्ट्स विएना १८८६ ई०।
गीता श्रीमद्भगवद् गोरख नाथ गीता प्रेस १९९१ वि०।
ग्रीव्ज, एडविन
(१) गोसाईं तुलसीदास का जीवन-चरित नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९३५ वि०।

(२) ए स्केच ऑव हिन्दी लिट्रेचर क्रिश्चियन लिट्रेचर सोसाइटी १९१८ ई०।

गुप्त डॉ० दीनदयालु

(१) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २००४ वि०।

(२) तुलसीदास और सूरदास के जीवन पर नया प्रकाश हिन्दुस्तानी, अक्तूबर १९३९ ई०।

(३) गोसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली हिन्दुस्तानी, जनवरी, १९४०।

(४) महाकवि सूरदास का जीवन चरित हिन्दुस्तानी जनवरी १९४१ ई०।

गुप्त डॉ० माताप्रसाद

(१) तुलसीदास प्रयाग विश्व विद्यालय हिन्दी परिषद् मई १९४२ ई० और सितम्बर १९५३ ई०।

(२) सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा सम्मेलन पत्रिका अगस्त-सितम्बर १९४०।

(३) सोरों में प्राप्त गो तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की अंतरंग परीक्षा सम्मेलन पत्रिका फाल्गुन-चैत १९९७ वि०।

(४) तुलसी का अध्ययन हिन्दुस्तानी अक्तूबर १९३९ ई०।

(५) रामचरित मानस का पाठ हिन्दुस्तानी अकादमी उ० प्र० २० ५ वि०।

(६) तुलसी संदर्भ १९३५ ई०।

(७) श्री रामचरित मानस साहित्य कुटीर प्रयाग १९४९ ई०।

गुप्त डॉ० श्यामलाल

(१) तुलसीदास का जन्मस्थान विशाल भारत दिसम्बर १९४० ई०।

(२) साध्वी रत्नावली नवीन भारत अगस्त १३ सन् १९३८।

(३) श्री रत्नावली के दोहे नवीन भारत अगस्त और अक्तूबर १९३८।

गुलाबराय तुलसीदास का जीवन-वृत्त तुलसीदास एक विश्लेषण पब्लिकेशंज डिवीजन १९३६ ई०।

गोपीश्वर सिंह गोपीश्वर विनोद मेडिकल हॉल प्रेस बनारस १९४५ वि०।

गौड़ रामदास

(१) श्री रामचरित मानस की भूमिका।

(२) रामचरितमानस (मूल) हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता तुलसी संवत् २०६।

गौड़ होरीलाल शर्मा मूल गोसाईं चरित अथवा मूल गोसाईं चरित नवीन भारत १९४१ ई०।

चतुर्वेद, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा गोस्वामीजी के दार्शनिक विचार, तुलसी ग्रन्थावली।

चतुर्वेदी बलदेव

(१) उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, भारती भंडार प्रयाग २००८ वि०।

(२) मानस की राम-कथा किताब महल, प्रयाग १९५३ ई०।

चतुर्वेदी पुरुषोत्तम शर्मा रत्नगंभीर का० ना० प्र० सभा।

चरक चरक संहिता निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९४१ ई० ।
चौबे बिहारीलाल तुलसी सतसई, संक्षिप्त टीका सहित बेप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता १८९७ ई० ।
चौबे शम्भु नारायण
(१) रामचरितमानस (संशोधित मूल) नागरी प्रचारिणी सभा काशी २०५ वि० ।
(२) रामचरित मानस के प्राचीन लेखक नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९९८ वि० ।
(३) मूल रामचरितमानस की संख्या और विषयानुक्रमणी नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९९८ वि० ।
(४) मानस पाठ भेद ना० प्र० स० १९९९ वि० ।
चन्दबरदायी पृथ्वीराज रासो काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।
जनल आव द रॉयल एशियाटिक सुसायटी ऑव बंगाल १९०१ ई० ।
जानकीदास रामायण मानस प्रचारिका नवलकिशोर प्रेस मार्च १८८५ ई० ।
ज्वालाप्रसाद मिश्र तुलसीकृत रामायण संजीवनी टीका वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९०४ ई० ।
जियालाल त्रिपाठी जटाम्बुधि नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १८९३ ई० ।
जैन, डॉ० विमलकुमार तुलसीदास और उनका साहित्य साहित्य सदन देहरादून १९३७ ई० (२०१४ वि०) ।
जोशी और भारद्वाज, प्रो० सीताराम जयराम और प्रो० विश्वनाथ संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ।
टंडन डॉ० हरिहरनाथ वार्ता साहित्य का जीवनी-परक अध्ययन भाग १ २ आगरा विश्वविद्यालय १९५६ ई० ।
ट्रैवलर्स कम्पैनियन रेलवे बोर्ड १९१३ ई० ।
टंडन डॉ० प्रेमनारायण : सूर की भाषा हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ नवम्बर १९५७ ई० ।
डिस्ट्रिक्ट गजटियर्स ऑव द युनाइटेड प्रॉविंसेज जिल्द २१ बांदा १९०९ ई०
डिस्ट्रिक्ट गजटियर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, एटा १९११ ई०
डिस्ट्रिक्ट गजटियर, अलीगढ़ १९ ९ ई० ।
तिवारी प्रेम कृष्ण लोकों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षाएँ, नवीन भारत १५ जनवरी १९४१।
तुलसीकृत रामायण तुलसीकृत रामायण, ज्ञानसागर प्रेस बम्बई, १९१२ ई० ।
तुलसी ग्रन्थावली सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल ला० भगवान दीन और श्री ब्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, १९८० वि० ।
तुलसीदास, गोस्वामी
(१) तुलसीकृत रामायण सीताराम मिश्र की लिपि मणप पंचानन चन्द्र कृष्ण, लोक चन्द १९४० वि० ।

(२) विनय पत्रिका गीताप्रेस गोरखपुर १९९१ वि० ।
(३) दोहावली गीताप्रेस २००६ वि० ।
(४) कवितावली गीताप्रेस २००६ वि०
(५) गीतावली गीताप्रेस, २००४ वि ।
(६) कुण्डलिया रामायण सम्पादक श्री सत्यनारायण पांडे इ० प्रे०, १९४१ ई० ।
(७) तुलसी सतसई, संपादक श्री बिहारीलाल नीरे एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल कलकत्ता १८९७ ई० ।
(८) रामाज्ञा प्रश्नावली (तुलसी ग्रन्थावली) ।
(९) पार्वती मंगल (तुलसी ग्रंथावली) ।
(१०) जानकी मंगल (तुलसी ग्रन्थावली) ।
(११) बरवै रामायण (तुलसी ग्रन्थावली) ।
(१२) रामलला नहछू (तुलसी ग्रन्थावली) ।
(१३) श्रीकृष्ण गीतावली (तुलसी ग्रन्थावली) ।

तुलसी अध्ययन : सम्पादक डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई० ।

तुलसी साहब
(१) घटरामायण बेलवेडियर प्रेस प्रयाग ।
(२) रत्नसागर, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग तृतीय संस्करण, १९६० ई० ।

दयानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यार्थप्रकाश वैदिक यंत्रालय अजमेर, १९९१ वि० ।

दास बाबा रघुवर तुलसी चरित ।

दास भगवान् श्रीमद् रामानन्द दिग्विजय आगरा, १९८४ वि० ।

दास, डॉ० श्यामसुन्दर
(१) रामचरितमानस इ० प्रे० १९१२ ई० ।
(२) रामचरितमानस सटीक १९१६ ई० एवं १९२२ ई० ।
(३) रामचरितमानस सटीक १९४१ ई० इ० प्रे० ।
(४) साहित्यालोचन इ० प्रे० नवीं आवृत्ति २००६ वि० ।
(५) हिन्दी भाषा और साहित्य इ० प्रे० १९३७ ई० ।
(६) गोस्वामी तुलसीदास डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के सहयोग से हिन्दुस्तानी अकादमी प्रयाग १९३१ ई० ।
(७) गोस्वामी तुलसीदास इ० प्रे० ।
(८) गोस्वामी तुलसीदास ना० प्र० पत्रिका जिल्द ७-८ १९२६ २७ ई०

द्विवेदी पीरीशंकर
(१) बुन्देल वैभव, बुंदेल वैभव ग्रंथमाला टीकमगढ़ १९९२ वि० ।
(२) सुरुचि सरोज १९८४ वि०, श्री सनाढ्यादर्श ग्रंथमाला काशी; द्वितीय भाग १९९० वि० ।
(३) महाकवि गो तुलसीदास श्री माथुरी, १९८६ वि० ।

द्विवेदी रामचंद्र तुलसी साहित्य रत्नाकर, सत्साहित्य प्रकाशक मण्डल नया टोला पटना १९८६ वि०।
द्विवेदी डॉ० हजारीप्रसाद
(१) हिन्दी साहित्य का आदिकाल १९५२ ई० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ३।
(२) हिन्दी साहित्य अशोकचन्द्र कपूर एण्ड सन्स दिल्ली १९५२ ई०।
(३) हिन्दी साहित्य की भूमिका हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई १९४० ई०।
दीन जयरामदास :
(१) मानस रहस्य गीता प्रेस गोरखपुर १९९८ वि०।
(२) मानस शंका समाधान गीताप्रेस २० ६ वि ।
दीक्षित भगीरथ प्रसाद
(१) गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कृति माधुरी १९२८ ई०।
(२) तुलसीदास और उनके ग्रन्थ अशोक प्रकाशन मसमऊ १९५५ ई०।
दीक्षित महादेव जी प्रौढ़ मनोरमा सम्पादक सदाशिवशर्मा जोशी १९२८ ई०।
दीक्षित डॉ० राजपति तुलसीदास और उनका युग ज्ञानमण्डल वाराणसी २००९ वि०।
दुबे रामकृष्ण श्री गोस्वामी जी और राजनीति तुलसी ग्रन्थावली।
दे, नन्दलाल द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव ऐंशेंट एण्ड मिडिवल इंडिया १८९९ ई०।
देवीप्रसाद मुंशी जहाँगीर नामा।
दो सौ बावन वैष्णव वार्ता रत्नहर पुस्तकालय डाकोर १९६० वि ।
धेनुसेवक गोपाराम : मानस मंजूषा श्री तुलसी ग्रन्थमाला कार्यालय मगना दीन (मिश्री) म० प्र तुलसी संवत् २९८।
नगेन्द्र डॉ० तुलसी और मानी तुलसीदास एक विश्लेषण पब्लिकेशन डिवीजन १९५९ ई ।
नरोत्तमदास सुदामा चरित भारत पुस्तकालय वाराणसी।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९५५, १९८४ १९९८ १९९९ २० ८ २ ०९ २०१९ वि०।
नाभादास भक्तमाल नवलकिशोर प्रेस द्वितीय संस्करण १८९५।
नारद भक्ति सूत्रम् गीताप्रेस गोरखपुर २००१ वि०।
परीख द्वारकादास पुरुषोत्तम दास सम्पादक
(१) प्राचीन वार्ता रहस्य विद्या विभाग काँकरोली १९९८ वि०।
(२) नन्ददास जी पर मेरा अन्वेषण ब्रज भारती २००२ वि०।
प्रसाद' डॉ० बेणी हिस्ट्री ऑव जहाँगीर इ० प्र १९१० ई०।
प्रसाद और पन्नशोकर (म म दुर्गा और वासुदेव शर्मा) सम्पादक रसगंगाधर १९१६ ई०।
पाण्डे कृष्णदत्त
(१) तुलसी की जीवन भूमि ना० प्र० सभा काशी।
(२) तुलसीदास शक्ति कार्यालय दारागंज प्रयाग २० ५ वि०।

(३) साहित्य संदीपनी सरस्वती मंदिर वाराणसी १९४७ ई०।
(४) विचार विमर्श।
(५) तुलसी कौन ? तुलसी की माता अथवा पत्नी साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ७ मार्च १९५४।
पाण्डेय डा० रामनिरंजन रामचरित मानस, नव हिन्द पब्लिकेशंस, हैदराबाद।
प्रियादास भक्तिरस बोधिनी।
पुरोहित हरिनारायण शर्मा व्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा १९९० वि०।
पोद्दार, अभिनन्दन ग्रन्थ अखिल भारतीय व्रजसाहित्य मण्डल मथुरा २०१० वि०।
फर्कुहार जे० एन० एन आउट लाइन ऑव द रिलीजस लिट्रेचर ऑव इण्डिया १९२० ई०।
फ्रांसिस बुकानन एन एकाउण्ट ऑव द डिस्ट्रिक्ट आव पूर्णिया इन १८०९ १० सम्पादक बी० एच० जैक्सन १९२४ ई०।
बघेला भीमदेव। चालुक्य वंश प्रदीप सम्पादक आचार्य देवदत्त शास्त्री भारतीय साहित्य संघ काशीवंश १९९९ वि०।
बड़थ्वाल डा० पीताम्बरदत्त हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय श्री परशुराम चतुर्वेदी द्वारा अनूदित अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ २००७ वि०।
बहुगुणा सम्बु प्रसाद नन्ददास ना० प्र० पत्रिका १९९६ वि०।
बृहत् स्तोत्र रत्नावली प्रथम भाग वेंकटराज श्री कृष्णदास बम्बई १९२१ वि०।
बैजनाथ कुर्मी
(१) तुलसी सतसई (श्रीराम सतसई सटीक) पं० रामबिहारी और पं० बंदी दीन द्वारा संशोधित नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८८६ ई०।
(२) रामायण तुलसीकृत नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८९० ई०।
ब्रह्म पुराण (१) वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई। (२) आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना १८९५ ई०।
ब्रह्म सूत्र बादरायणकृत
शंकर भाष्य अनन्त कृष्ण शास्त्री निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९१७ ई०।
बाइबिल द होली ब्रिटिश एण्ड फॉरेन सोसाइटी लन्दन १९११ ई०।
बालकराम विनायक कवित रामायण में गो० तुलसीदास का आत्मपरिचय उत्तर पद्म सरस्वती संख्या १ भाग १९।
बाबर बचनामृत
बुल्के डॉ० फादर कामिल रामकथा हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय १८५० ई०
भगीरथ हरिप्रसाद तुलसीकृत रामायणम् (सटीक) कालबा देवी रोड रामवाड़ी बम्बई १९४९ वि०।
भट्ट केशवराव
(१) सोरों का सोमाग्य विलास भारत १९४० ई० नोकम्बोक १९४० ई०।
(२) गो० तुलसीदास और सोरों में प्राप्त सामग्री विलास भारत १९४० ई०।
भट्ट गोविन्द वल्लभ

(१) गो० तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर अथवा सूकरक्षेत्र सोरों ? माथुरी १९८६ वि० ।
(२) सम्पादक तुलसी स्मृति अंक समाज्य जीवन १९३९ (महदत्त शर्मा और प्रभुदयाल शर्मा के सहयोग से)
(३) श्री सूकर क्षेत्र महात्म्य भाषा नवीन भारत ५ नवम्बर, १९३८ ।
(४) गोस्वामी तुलसीदास २२४ बालकेश्वर रोड बम्बई २०१५ वि० ।
भट्ट रामेश्वर : तुलसीदास-कृत रामायण निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९०२ ई० ।
भट्टजी बिट्ठलनाथ (१७९९ वि) सम्प्रदाय कल्पद्रुम वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९२० वि० ।
भटनागर डॉ रामरतन
(१) तुलसी साहित्य की भूमिका राममारायणलाल इलाहाबाद १९४६ ई० ।
(२) तुलसीदास आलोचनात्मक अध्ययन किताबमहल २००५ वि० ।
(३) रहस्यवाद किताब महल इलाहाबाद मार्च १९४८ ।
भवानीदास गोसाईं चरित डॉ० भगवतीप्रसादसिंह की प्रतिलिपि अक्टूबर १९२६ ई पाण्डु लिपि ।
भावकल्पद्रुम, श्रीमद् गीताप्रेस गोरखपुर २००८ वि० ।
भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग उत्तरार्द्ध बलभद्र नागरी प्रचारिणी सभा २०१० वि० ।
भारद्वाज डॉ० हरिवंश द भक्ति स्कूल ऑव रामानुज सर शंकर लाल चैरिटि ट्रस्ट नयी दिल्ली १९२९ ई० ।
गो० तुलसीदास की ब्रजभाषा-साहित्य को देन पोद्दार अभिनंदन २०१० वि० ।
भारद्वाज डॉ० रामदत्त
(१) द फिलॉसफी ऑव तुलसीदास आगरा विश्वविद्यालय १९५१ ई० ।
(२) तुलसीदास का परवार द नेशनल इनफ्रमेशन एण्ड पब्लिकेशन बम्बई १९४९ ई० ।
(३) तुलसी चर्चा पं० महदत्त के सहयोग से लक्ष्मी प्रेस कासगंज १९४१ ई० ।
(४) रत्नावली जीवनी और रचना अंगा ग्रंथागार लखनऊ, १९४१ ।
(५) गोस्वामी तुलसीदास संक्षिप्त जीवन चरित तुलसी स्मारक समिति कासगंज २००१ वि० ।
(६) गोस्वामी तुलसीदासजी की धर्मपत्नी रत्नावली (भूमिका) रत्नावली प्रकाशक राजबहादुर कुंवर कंचनसिंह गोरहा जिला एटा १९९५ वि० ।
(७) गो० तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली विशाल भारत, फरवरी १९३९ ई० ।
(८) महाकवि नंददास, विशाल भारत जून १९३९ ई० ।
(९) मूल गोसाईं चरित की प्रामाणिकता सुधा लखनऊ अप्रिल १९४० ई ।

(१०) कुछ प्राचीन वस्तुएँ (गो० तुलसीदास पर प्रचुर प्रकाश) माधुरी, मई १९४० ई०।
(११) गोस्वामीजी के चित्र और प्रतिमाएँ, सुधा मई १९४० ई०।
(१२) मयंक और कर्मफल माधुरी विशेषांक १९४० ई०।
(१३) रत्नावली एवं तुलसीदास इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस लाहौर १९४० ई०।
(१४) तुलसी चरित की अप्रामाणिकता नवीन भारत १८ दिसम्बर १९४०।
(१५) रत्नावली दोहों के आधार बचन नवीन भारत माघ १९४१ ई०।
(१६) पट रामायण की अप्रामाणिकता माधुरी फरवरी १९४२ ई०।
(१७) रत्नावली-तुलसीदास प्राचीन भारत ज्येष्ठ १९९८ वि०।
(१८) ब्रजभारती ब्रजभारती १९९९ वि०।
(१९) गोस्वामी तुलसीदास द डेट ऑव हिज रिलनसिएशन १९०४ वि० एण्ड द वर्क-प्लेस ऑव हिज मदर हुलसी : तारी इन द डिस्ट्रिक्ट ऑव एटा इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस अलीगढ़ १९४६ ई०।
(२०) द हिस्टोरिकल इन्फोटेंस ऑव सूकरखेत और सोरों अतिरिक्त हस्तिनापुर ? द ओरिजिन ऑव चालुक्यज इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस अलीगढ़ १९४३ ई०।
(२१) सोरों-सामग्री (प्रस्तावना) राजस्थानसिरिज १९४८ और नवीन भारत १९४९ ई०।
(२२) 'तुलसी प्रकाश' पर विचार विशाल भारत, १९४८ ई०।
(२३) राजापुर का नामकरण विशाल भारत सितम्बर १९४८ ई०।
(२४) रामचरित मानस : भाषा और पाठान्तर, भारत साहित्य कालगंज एप्रिल १९४२ ई०।
(२५) तुलसी जन्मस्थान सम्बन्धी सोरों-सामग्री के अतिरिक्त अन्य साक्ष्य ब्रजभारती २० १ वि०।
(२६) गोस्वामी तुलसीदास का काव्य सिद्धान्त साप्ताहिक हिन्दुस्तान ३ जनवरी १९६०
(२७) साधारणीकरण क्या और कैसे ? सम्मेलन पत्रिका पौष फाल्गुन शक १८८२
(२८) रामचरित मानस हिन्दी मासिकी १९६ दिल्ली।
(२९) तुलसीदास और मनोविश्लेषण साप्ताहिक हिन्दुस्तान २० अगस्त १९५१।
मनुस्मृति निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९४६।
माधुरी (पत्रिका) १९२१ १९२९ १९२९ ई०।
मानसांक कल्याण गोरखपुर १९९५ वि०।
मानसहंस श्रीमंत पाण्डुरंगराव आवटे अनुवादक डॉ० केशव प्रसाद मालवीय, लोक सेवा ग्रन्थ मायापुर १९८३ वि०।
माहेश्वरी संतदास रामायण का गूढ़ रहस्य स्वामी बाग आगरा, १९५२ ई०।
मिश्र-बन्धु (मनोहर बिहारी श्यामबिहारी, शुकदेवबिहारी)

(१) मिश्रबन्धु विनोद जिल्द १ गंगा पुस्तकमाला लखनऊ, १९८३ वि० द्वितीय संस्करण ।
(२) हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली, प्रयाग १९६७ वि० एवं गंगा पुस्तकमाला १९९५ वि० ।

मिश्र, डॉ० बलदेवप्रसाद
(१) तुलसीदर्शन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९९५ वि० ।
(२) मानस में रामकथा द नेशनल हिन्दी परिषद् कलकत्ता १९५२ ई० ।

मिश्र बाबूराम रामचरितमानस सटीक हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता ।

मिश्र, डा० भवीरत्न तुलसी रसायन साहित्य भवन लखनऊ, १९५४ ई० ।

मिश्र, नारायणप्रसाद गो० तुलसीदास कृत रामायण भाषा टीका, भार्गव पुस्तकालय काशी १९३० ई० ।

मिश्र रामस्वरूप श्री तुलसीदास के काल्पनिक जीवन चरित्र पर एक दृष्टि तुलसीस्मृति अंक सनाढ्य जीवन, इटावा १९१९ ई० ।

मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद गौतम चन्द्रिका में तुलसीदास का वृत्तान्त ना० प्र० पत्रिका २०१२ वि ।

मिश्र, डा० श्यामबिहारी और शुकदेवबिहारी
(१) महात्मा तुलसीदासजी मथुरा १९२३ ई० ।
(२) ट्राइएनियल रिपोर्ट ऑन सर्च फार हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स एवैलेबिल १ १९२४ ई ।

मीतल प्रभुदयाल अन्तःस्थ परिचय अग्रवाल प्रेस मथुरा २००४ वि० और २००६ वि० ।

मुखोपाध्याय, जगदीश सम्पादक आइने अकबरी १८९८ ई ।

मुनरो विलियम वेनट द गवर्नमेंट्स ऑव युरोप मेकमिलन कं० न्यूयोर्क १९३४ ई० ।

मैक्डुगल, डॉ० विलियम चार्ल्स द ये ऑव सेलवेशन इन द रामायण ऑव तुलसी दास युनिवर्सिटी ऑव शिकागो इलिनोइस १९२६ ई० ।

मैकडोनल ए० ए०
(१) वैदिक मिथोलोजी स्ट्रैसबर्ग १८९७ ई० ।
(२) ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर लन्दन १९२५ ई० ।

मैक्ली अ० एम० द रामायण ऑव तुलसीदास और द बाइबिल ऑव नॉदर्न इण्डिया १९३० ई० टी एण्ड टी० क्लार्क एडिन्बरा ।

यजुर्वेद संहिता (शुक्ल) सम्पादक श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, औंध १९८४ वि० ।

याज्ञिक नागाशंकर गो० तुलसीदासजी ना० प्र० पत्रिका १९२७ ई० ।

राधाकृष्णन् डा० सर्वपल्ली
(१) इंडियन फिलॉसफी एलिन एण्ड अनविन १९३१ ई० ।
(२) भगवद्गीता एलिन एण्ड अनविन लन्दन १९४८ ई० ।

रानाडे डॉ० आर० डी० हिस्ट्री ऑव इंडियन फिलॉसफी जिल्द ७ मिलिटरीलिम ।

रामकिशोर शुक्ल रामचरितमानस नवलकिशोर प्रेस १९२३ ई०, प्रथम संस्करण।
रामकिंकर तुलसी कौन तुलसी की माता अथवा पत्नी ? साप्ताहिक हिन्दुस्तान १८ अप्रेल १९५४ ई०।
रामचरण, महन्त रामायण गो० श्री तुलसीदासजी कृत सटीक प्रथम भाग नवल किशोर प्रेस १८९० ई०।
रामचरितमानस (पाठान्तर सहित) गीताप्रेस गोरखपुर द्वितीय संस्करण २००८ वि०।
रामचरितमानस श्री खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९५० वि०।
रामचन्द्र वैद्य शास्त्री
(१) तुलसी समाचार सुधावर्षक प्रेस अलीगढ़ १९८१ ई०।
(२) तुलसी सत्स्वरूप दर्शन अथवा मायाविनाश वही १९५० ई०।
रामजतन प० (बनारस कमिश्नर वाले) श्री तुलसीकृत रामायण मैडिकल हाल प्रेस बनारस १८६९ ई०।
रामनारायण प्रो० ट्रांसलेशन ऑव द अयोध्यामाहात्म्य इंडियन ऐंटिक्वेरी, १८७५ ई०।
रामनारायण मिश्र रामायण सटीक १९३१ ई०।
रामबालक दास रामचरितमानस सटीक सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल वैष्णव पुस्तकालय, अयोध्या।
रामभद्र तुलसीदास कृत रामायण सम्पूर्ण क्षेपक सहित (गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत सहित) जगदीश्वर प्रेस बम्बई, १९२९ वि०।
रामायण लाला प्यारेलाल हिन्दू प्रेस १९२८ वि०।
रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश : खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर, १८९८ ई०।
रामायणांक कल्याण १९३० ई०।
राय विनायक : रामायण सटीक यूनियन प्रेस जबलपुर, १९१२ ई०।
रिकमन, जॉन : ए जैनरल सिलेक्शन फ्रॉम द वर्क्स ऑव सिग्मंड फ्रॉयड किताबिस्तान इलाहाबाद १९४१ ई०।
रैप्सन, ई० जे० ऐंशेंट इण्डिया कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस १९१६ ई०।
रैफ्क, जोसेफ हाउ टु साइकोएनैलाइज योर्सेल्फ।
लाल डॉ० श्रीकृष्ण मानस दर्शन आनन्द पुस्तक भवन वाराणसी कैंट, २००६ वि०।
लक्ष्मीदत्त मेरठ निवासी : रामायण आनन्द प्रकाश अर्थात् श्री गोस्वामी तुलसीदास-कृत श्रीमद् रामायण का विशद सरल भाषा में राम प्रेस, मेरठ १९४४ १९४६ वि०।
वडर डी० एच० : रामायण कालीन स्थान परिचय रामायणांक १९३० ई०।
वर्मा डा० धीरेन्द्र अष्टछाप रामनारायण लाल इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
वर्मा, डा० रामकुमार हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तृतीय संस्करण, रामनारायण लाल इलाहाबाद १९५४ एवं १९५८ ई०।

वर्मा, डॉ० ब्रजेश्वर सूरदास हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय द्वि० सं० १९५० ई०।
वराह पुराण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १९०२ ई०।
ब्रजभाषा सूर कोश लखनऊ विश्वविद्यालय २००७ वि०।
ध्रुवदास नन्ददास ग्रन्थावली ना० प्र० सभा २००६ वि०।
वाल्मीकि रामायणम् निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९२९ ई०।
वाजपेयी नन्द दुलारे
(१) सूर संदर्भ इंडियन प्रेस इलाहाबाद।
(२) महाकवि सूरदास आत्माराम एण्ड संज दिल्ली १९५२ ई०।
वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर
(१) श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत सरस्वती १९४० ई०।
(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास मालवीय पुस्तक भवन लखनऊ।
(३) हिन्दुई साहित्य का इतिहास बार्थ द तासी (अनुवाद) हिन्दुस्तानी एकेडेमी १९५३ ई०।
विद्यार्थी रामचन्द्र तुलसीदास और नन्ददास विद्यालय भारत १९१९ ई०।
विद्यालंकार भूदेव नरहरि विश्वकोष सम्मेलन पत्रिका २००१ २००२ वि०।
विनायक पं० बालकराम : गोस्वामीजी के नामराशि कल्याण अक्टूबर १९३६ ई०।
वियोगी हरि विनय पत्रिका सटीक साहित्य सेवासदन वाराणसी १९८७ वि०।
विलसन एच० एच० स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज नवीन संस्करण रैनहोल्ड रोस्ट द्वारा १८६१ ई०।
विश्वकोष (हिन्दी) कलकत्ता।
वैद्यनाथ दास बाबा मूल गोसाईं चरित गीता प्रेस १९९३ वि०।
वैश्य रामचन्द्र : महाकवि नन्ददास का परिचय ब्रजभारती २००० वि०।
शर्मा, आदित्यनारायण सिंह गोस्वामी तुलसीदास के विषय में कुछ निबन्ध सरस्वती १ १९।
शर्मा और परीख वो० ब्रजभूषण और द्वारकादास दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता हरिराय प्रणीत गुजराती एकेडमी कॉकरोली तीन खण्ड।
शर्मा प्रभुदयाल सम्पादक दोहा रत्नावली इलाहा, १९३९ ई०।
शर्मा भगवत शरण
(१) तुलसी सम्बन्धी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज हिन्दुस्तानी १९४० ई०।
(२) तुलसी चर्चा डॉ० रामदत्त भारद्वाज के सहयोग से नवमी प्रेस बागपत मार्च १९४१ ई०।
(३) सूकरक्षेत्र का वास्तविक स्थान नवीन भारत ८ दिसम्बर, १९४३।
(४) सोरों की सामग्री विद्याभारत १९४८ ई०।
(५) श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के राजापुर की नीव डाली नवीन भारत १९५३।

(६) गोस्वामी जी ने राजापुर बसाया विशाल भारत १९५४ ब्रजभारती १९५४ ई०।
(५) गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित तिथियाँ विशाल भारत १९५४ ई०।
(८) सूकरक्षेत्र ब्रजभारती फाल्गुन २०११ वि०।
(९) तुलसी जन्मभूमि सूकर क्षेत्र (सोरों) श्रीतुलसी समिति सोरों, २०१५ वि०।

शर्मा डॉ० मुंशीराम (सोम)
(१) सूर सौरभ आचार्य सुक्ल साधना मन्दिर कानपुर, २०१३ वि०।
(२) भारतीय साधना और सूर साहित्य साधना मन्दिर कानपुर, २०१० वि०।
(३) वल्लभ भक्ति तथा हिन्दी कालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति १९५६ ई०।

शर्मा डा० हरवंशलाल
(१) सूर काव्य की आलोचना भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़।
(२) सूर समीक्षा हिन्दी निकेतन होशियारपुर २ १२ वि०।
(३) सूर और उनका साहित्य भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़।

शर्मा रामकिशोर
(१) गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्मस्थान विशाल भारत १९४० ई०।
(२) शैव समीक्षा गोस्वामी तुलसीदास के गुरु अथवा गुरुदेव सरस्वती १९५३।

शर्मा विनय मोहन तुलसीदास के महाराष्ट्रीय शिष्य संतजन जसवंत ना० प्र० पत्रिका २ १३ वि०।

शर्मा पं० सुखनारायण रामायण संदेश जे० लाल विश्वकर्मा एण्ड संस मीठापुर पटना १९८८ वि०।

शास्त्रिन्य भक्ति सूत्रम्, पाणिनि आफिस इलाहाबाद १९१२ ई०।

शास्त्री सीताराम संस्कृत साहित्य का इतिहास।

शास्त्री डा सूर्यकान्त
(१) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास।
(२) द इंडेक्स वर्बोरम टु तुलसीदासज रामायण १९३७ ई०।

शास्त्री हीरानन्द मेमोयर्स ऑव द आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया नं० २ द बयल डायनस्टी ऑव रीवा १९२५, मीर भानुदत्त काव्यम्।

शास्त्री रजनीकान्त मानस मीमांसा किताब महल इलाहाबाद १९४९ ई०।

शिवसिंह सेंगर शिवसिंह सरोज नवलकिशोर प्रेस १९२६ ई०।

शुक्ल और मिश्र (प्रो० रामबहोरी और डॉ० भगीरथ) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास हिन्दी भवन १९५६ ई०।

शुक्ल रामचन्द्र
(१) गोस्वामी तुलसीदास काशी ना० प्र० सभा षष्ठ संस्करण २००५ वि०।

(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास १९४० ई० एवं नवीन संस्करण ना० प्र० सभा काशी २००६ वि ।
(३) गोस्वामी तुलसीदासजी (जीवन खंड सहित) ना० प्र० सभा १९८० वि० ।
(४) अर्घ्यांक (अनुवाद), ना प्र० सभा १९२२ ई० ।
(५) अमरपीठ सार, साहित्य सेवा सदन बनारस २००६ वि० ।

गुप्त प्रो० रामबहोरी
(१) तुलसी, हिन्दी भवन इलाहाबाद तृतीय संस्करण १९५२ ई ।
(२) गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान बीघा १९३८ ई० ।

श्री रामचरितमानस संशोधक दास पूरन भक्त श्रीवास्तव भार्गव पुस्तकालय काशी १९८६ वि० ।

श्री वल्लभ विश्वकोष

श्रीवास्तव डॉ० देवकीनन्दन तुलसीदास की भाषा लखनऊ विश्वविद्यालय २०१४ वि० ।
श्रीवास्तव डॉ बदरी नारायण रामानन्द सम्प्रदाय हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय १९५७ ई० ।

षोडश रामायण :
(१) वंगवासी स्टीम मिशन प्रेस कलकत्ता १९०३ ई० ।
(२) खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई १९८८ ई० ।

स्कंद पुराण : संक्षिप्त हिन्दी संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर ।
तृतीय संस्करण १९४६ ई० ।

सम्मेलन पत्रिका १८७२ शक

सहाय गोकुलानन्द :
(१) ट्रू प्रवाउट द लाइफ ऑफ गोस्वामी तुलसीदास लखनाइट १३ मई १६ मई २३ मई, ३ मई ७ जून १३ जून, २० जून १९५४ ई० ।
(२) एस्ट्रोलॉजिकल योगज विथ इनक्वायरी द लाइफ ऑफ गोस्वामी तुलसीदास लखनाइट १६ २५ अक्टूबर १ ८ नवम्बर, १९५३ ई० ।
(३) गो० तुलसीदास और उनकी जीवनियाँ अवस्थिता ।

सहाय शिवनन्दन
(१) श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन चरित बिहारलोर प्रेस १९१६ ई० ।
(२) गोस्वामी तुलसीदास की मापुरी अगस्त १९२२ ई० ।

सावित्री सिन्हा, डॉ० मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली १९५३ ई० ।

सूरदासजी, श्री हापरस वाले सतगुरु श्री तुलसी साहब की बानी और जन्म कथा प्रकाशक गुरु चरन दास लाहौरी, सतगुरु आश्रम अमरावती रोड लाहौर, वर्तमान हापरस तृतीय बार, फरवरी १९३० ई० ।

स्मिथ विंसेंट ए॰ अकबर द ग्रेट मुग़ल ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडन प्रेस, १९१७ ई॰।

सिंह भगवती प्रसाद कुरुक्षेत्र, सरस्वती, जून १९४३ ई॰।

रामभक्ति में दार्शनिक सम्प्रदाय अवध साहित्य मन्दिर बलरामपुर २०९४ वि॰।

सिंह धीरेन्द्रनारायण गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना भाग १ २, ना॰ प्र॰ सभा २००५ वि॰।

सिंह प्रताप : भक्त कल्पद्रुम नवल किशोर प्रेस १९२६ ई॰।

सीताराम) रायबहादुर लाला

(१) तुलसी-कृत रामायण अयोध्याकाण्ड (राजापुर की प्रति) किशोर प्रेस २ ३ मुट्ठीगंज इलाहाबाद, १९२१ ई॰।

(२) क्या राजापुर का रामचरितमानस तुलसीदास के हाथ का लिखा है ? माधुरी १९२३ ई॰।

(३) सिलेक्शंज फ्रॉम हिन्दी लिट्रेचर, १९२३ ई॰ तृतीय पुस्तक।

(४) रामचरितमानस लोकप्रिय होने का कारण कल्याण १९३० ई॰।

(५) सम्पादक नोट्स ऑन तुलसीदास (ग्रियर्सन-कृत) १७ नवम्बर १९२० ई॰।

सीताराम विद्य बो॰ तुलसीकृत रामायण लक्ष्मीपुर बीरी।

सीतारामशरण भगवान् प्रसाद श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९१३ ई॰।

सुकुल चन्द्रमौलि : मानस दर्पण इण्डियन प्रेस प्रयाग, १९१३ ई॰।

सुकिसुधाकर : गीताप्रेस गोरखपुर।

सूरजभान अग्रवाल : रामचरितमानस रामायण टीका सहित।

सूरदास ठाकुर दास दो सौ बावन वैष्णव वार्ता जगदीश्वर प्रेस बम्बई १९४७ वि॰

सूरसागर : नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम संस्करण १९९३ वि॰।

सोलंकी नाहरसिंह सम्पादक : श्री सूकरखेत, (सोरों) माहात्म्य कवि कृष्णदास कृत गोरहा एटा जिला १९३८ ई॰।

हण्टर डब्लू॰ डब्लू॰ इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, जिल्द ११, द्वितीय संस्करण १८८६ ई॰।

हरिप्रसाद भगीरथ रामचरित मानस सटीक कालबादेवी रोड बम्बई १९६० वि॰ सं॰।

हिन्दी शब्द सागर नागरी प्रचारिणी सभा काशी इण्डियन प्रेस १९१६।

हिल डब्लू॰ डगलस पी॰ : द होली लेक ऑफ द ऐन्ट्स ऑफ राम ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५२ ई॰।

हेस्टिंग्स जेम्स एनसाइक्लोपिडिया ऑफ साइकोलोजी न्यूयार्क १९४६ ई॰।

हेस्टिंग्स, जेम्स एनसाइक्लोपिडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, टी॰ एण्ड टी॰ क्लार्क एडिनबरा १९२१ ई॰।

हिस्ट : रिलिजंस ऑफ इण्डिया

त्रिपाठी, रामनरेश

(१) तुलसीदास और उनकी कविता हिन्दी मन्दिर, प्रयाग १९३७ ई० ।
(२) रामचरितमानस (गद्यानुवाद) सटीक बनी १९६- वि० ।
(३) तुलसी और उनका काव्य राजपाल एण्ड संज दिल्ली १९५[illegible] ई० ।
(४) कविता कौमुदी प्रथम भाग हिन्दी मन्दिर प्रयाग १९८८ वि० । संपादन संस्करण ।

त्रिपाठी विजयानन्द

(१) ज्ञान दीपक का व्याख्यात्मक कल्याण जुलाई १९३० ई० ।
(२) श्री गो० तुलसीदास जी की स्वकथित जीवनी श्री रामायणांक कल्याण १९३० ई० ।
(३) श्री रामचरितमानस मराठी भण्डार नीलकर प्रेस १९९३ वि० ।

नामानुक्रम

गंगाराम शर्मा २१७, २२३
गंजनीनन्दन शरण ३६२
गजुल फजल अल्लामी ११३, १६२ २४२, २५४
गयोध्याप्रसाद पाण्डे १३१ १३२
गनम्य १४३ १४४
गम्मुरहीम खानखाना १३ २२, २७ २८६, ३०८
गादित्य नारायणसिंह शर्मा २८७
इन्द्रदेवनारायण १८ ३६
इलियट टी० एस० ३०४
उदयनारायण तिवारी २२६ २३८ २४२
उदयशंकर शास्त्री १७५, १७६
उमादत्त १०५
एटकिंसन एडविन टी० ७४ ९४, १२०, १३० २१२, २३०, ३४०, ३५६
एपिग्राफिस्ट १७१ २३० ३३०
एलिस ईवर्सॉक ४१४
कुंजबिहारीलाल वैद्य २२३
कण्ठमणि शास्त्री पा२०१, २०६
कम्बूविलाई स्वामी ३०७
काका बल्लभजी १६२ २००, २०७ २०८ २४६
कान्हुराय भट्ट १३५
कार्पेण्टर जे० ई० १०२ ३६८ ३६९
काशीनाथ नारायण दीक्षित १८१ २१८
किशनलाल ११९
कीथ विलियम १ १४, २५२
कुमार स्वामी १७६
कृष्णदत्त भारद्वाज ३६१
के एफ० ई० १, ३४०
केशवदास ५२ ५८ ५९, ३११ ३३५
पंचाप्रसाद पा२३४
गांधी महात्मा ३४० ३६९
गजटियर्स १८-२२ ७४, १०६, ११३, १२०, १२२, १३०, १३५ २१२, २४२, २४३, २४६ २५० ३१, २५४
गजेन्द्रबिहारी मिश्र २२
गयाप्रसाद गुप्त २१६
गार्सां द तासी १ १४, १२४, २३८ २४१
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ३७०, ३७६
गुरुमुखदास डे० सूर स्वामी
गुलाबराय ३१०
गोकुलनाथ ५२ ५६ ५८ १६२, २०० २०१, २०६ २०७ २०९ २१० २४८ ३३०
गोकुलानन्द सहाय २८५-२८७
गोपालजी २१८
गोविन्दवल्लभ भट्ट ८४ १३७ १३७, १६३ १६६ १६५, १६७ २१२ २४१ २५४ २५५ ३२१
(कुंवर) गोविन्दसिंह ७१ २४४
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ५५
ग्राउज एफ० एस १ २४ १३, १६, १८ ४५ ६४ १०१ १०२, १२६, २१३ २४४ २५१ ३४०, ३६८, ३६९
ग्रिफिथ ३४०
ग्रियर्सन जॉर्ज ग्राउर १ ४ १८ २४ २७ २८, ३०, ३३ ३५, ३६, पा४३ ४५, ५५, ७४ १०१, १०२, १२५, १३५ १५६ १५८, १७० १७५ १७७, २१३ २४६ २५१ ५२, ३०७ ३२५, ३२८ ३४०,

३३१, ३३३, ३३६, ३६८
मीम्ब, ई० ए १४ १८, ४३, १०१, १०२ १३६, १३७ २४२, २४४, २५४ ३६६, ३६९
चक्रवर्ती, एन० पी० ४८ १७१
चन्दबरदायी ११३, १६२, २४२, २५४
चन्द्रबली पाण्डे २२ ७७ १०६ ११८ १२८ १३०, १३२, १३३ १४१, १४३ १४४ १४६, १४९ १५३, १६१, १६२ १७० २०९, २२६, २३८, २३९ २८२, ३०९, ३६९
चन्द्रमौलि सुकुल २५३
चरक ४१०
चाणक्य ४४८
छक्कनलाल ३२०
छावड़ा ब० चं० १११
छुन्नीसिंह चौधुरी ८१ १४२ १९३ ३३१
जगदीश मुखोपाध्याय १११ ११८
जगन्मोहन वर्मा १६९
जनकराज त्रिवेदीशास्त्र ७५
जयरामदास 'दीन' ३६७
जवाहरलाल चतुर्वेदी २३२
जसवन्त २०० २०९
जानकीदास ३२१
जायसी मलिक मुहम्मद ३४३ ३४४, ३३३ ३६०, ३६१
जैरट, एच० एच० ११३
जैस्पर्स कार्ल ४२०
ज्वालाप्रसाद मिश्र ४५, ४६, १३९ २११ २५२ ३१९
ज्वालाप्रसाद सारस्वत १३९
टैसर ब बाटर पोइट ४३४
ठाकुरदास सूरदास २४९
तुलसीदास कायस्थ ३२२, ३३२
तुलसी साहब ६१ ७५ १७० २४४ २४७
दशरथ साल्वी १६७ १०८, १०९
दयानन्द सरस्वती ४०४ ४२१
दयाराम साहनी ११२ १२२
दास पुरुष भक्त श्रीवास्तव २३१
दासाग्रदास ७५, ७६ ७७
दीनदयालु गुप्त २०६ २०९, २२६, २३३ ३४ २३९ ४० २४७ २४८
दुर्गादत्त त्रिपाठी ७४
दुर्गाप्रसाद पण्डित ४२
देवकीनन्दन श्रीवास्तव २४१ २५५, ३२६
देवीप्रसाद मुंशी ६१ ३०४
द्वारकादास परीख २०१ २२०२, २०९
द्वारकादास पुरुषोत्तम २४८
धीरेन्द्र वर्मा २०९, २३९ २४८
नगेन्द्र ८३७ ४३८
नन्दलाल ३ ११८
नरेश भट्ट ४२, ४३
नाभादास १ ३० ३४ ३५, ६०, ७९, १६१ १६३, १९८ २३३ २४ २४७, ३०३, ३१६, ३४०
नारायणप्रसाद मिश्र २११ २५२
निम्बार्काचार्य १८० १०४
परशुराम चतुर्वेदी ७५
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ३९, ४६ ७५ १२७ १७६ २४४ २४६ ३७०
पुरुषोत्तम वर्मा चतुर्वेदी ४२
प्यारेलाल लाला २११
प्यारेलाल बैस २१८
प्रतापसिंह १४३
प्रतापसिंह (राजा) २४
प्रभुदयाल मीतल २०९
प्रभुदयाल वर्मा २३१ २३३
प्राचीन १६२ १६३ १९९ २०० २४९
प्रियादास ४ १९ १७ ३५ ५१ १९८ २२३ २४, २४९

शिवसिंह सेंगर ४५, ४६ ६०, ७६, १६६, १२५
शुकदेव बिहारी मिश्र २२, २६, ३७ ३८ ७४ १२६
शुकदेवप्रसाद मुंशी ३१६
शेक्सपीयर ४१३, ४१४
श्यामबिहारी मिश्र २२, २६, ७४, १२६, १७७, २४२
श्यामसुन्दर दास २२, २६ ३६, ३६, ४१ पा४३, ४६, ३५, १०२ १०३, १२६, १७६ १७८ २११ २४१ २४४ २५३, १२७-१२६, ३३१ ३३६ ३३१ ३७०
श्रीकृष्णलाल ३७०
श्रीधर पाठक ३६ १२६
सदाशिव शर्मा जोशी ४२
सद्गुरुशरण अवस्थी २२, ३२५, ३३१ ३७०
सरकार, डी० सी० ३३१
सीताराम मिश्र २११, २५२
सीताराम भाला २२, २५, ३६ ३७, १०२, १०३, १०६, १२३ १२७-३८ २११ २३४, ३२० ३२३ ३२५, ३६६
सीताराम चतुरम जोशी ४२
सीताराम शरण भगवान प्रसाद १४, २२ १३६, १३७ २१२ २४२, २४३ २५३
सुखदेव लाल (मुंशी) ३१८
सुधाकर द्विवेदी ४ २७ ३६, २१३ २३२, ३०७ ३२० ३३१ ३३१
सूरजभान अग्रवाल २११, २५२
सूरदास ३२, ३६ ३८ ३३० ३३१ २३२, ३२६ ३४७, ३३६ ३३७ ३३८ ३३६, ३६१, ३६७, ४३८
सूर स्वामी ६२, ७४
सूर्यकान्त शास्त्री ३३३
स्मिथ विंसेण्ट १ ११ १८ ३२ ७०, २४५, ३०४, ३४०
हजारीप्रसाद द्विवेदी १०३ ३४० ३६०
हण्टर डब्ल्यू० डब्ल्यू० २१२
हनुमानप्रसाद पोद्दार १७७ १७८
हरगोविन्द पण्डा ३६७ २२०
हरचंदलाल शर्मा ३३६ ३३८ पा३६१
हरिप्रसाद अधीरज ३१८
हरिराम व्यास ३२, २३१ ३२
हरिराव १६२ २०० २ २, २०६, २१०, २४८
हरिहरनाथ टण्डन २४७
हरिहर भट्ट १११
हीरानन्द शास्त्री ३२३
हीरालाल (बाबू) ३३
हितहरिवंश ३१, ३२, ३३
हिल ३४ ३४०
हेरिंगटन फिलिप सर्रिस पा४२०

३२१, ३२३, ३२३ ३६८
ग्रीस ई० १ १४, १८, ४६, १०१ १०२ १३६ १३७, २४२, २४४, २१४ ३६६, ३६९
चक्रवर्ती एन० पी० ४८ १७३
चन्द्रबरदायी ११३, १९२, २४२, २३४
चन्द्रबली पाण्डे २२ ७७ १०६ ११८ १२८ १३० १३२, १३३, १४१ १४३ १४४, १४६, १४९ १५३ १६१ १६२ १७० २०९, २२६, २३८ २३९, २४२, ३०९, ३६९
चन्द्रमौलि सुकुल २३३
चरक ४१०
चाणक्य ४४८
छक्कनलाल ३२०
छावड़ा ब० चं० १११
छुट्टीसिंह चौधुरी ८१ १४२, ३२३ ३३१
जगदीश मुखोपाध्याय १११ ११८
जयमोहन वर्मा १९९
जनकराज त्रिपोषीशरण ७३
जयरामदास 'दीन' ३६७
जवाहरलाल चतुर्वेदी २३२
जसवन्त २०८ २०९
जानकीनाथ ३२१
जायसी मलिक मुहम्मद १४३ १४४ ३३३ ३६० ३६१
जैरट, एच० एच० ११३
जैसर्ल, कार्ल ४२०
ज्वालाप्रसाद मिश्र ४३, ४६, १२९ २११ २३२, ३३९
ज्वालाप्रसाद सारस्वत १३९
टैमर व काटर बोहट ८३४
ठाकुरदास सूरदास २४९
तुलसीदास कायस्थ ३२२, ३३२
तुलसी साहब ६१ ७३, १७० २४४ २४७
दयाराम शास्त्री १९७ ३०८, ३०९
दयानन्द सरस्वती ४०४, ४२१
दयाराम साहनी ११२ १२२
दास पुरुष भक्त श्रीवास्तव २३३
दासान्यदास ७३, ७६ ७७
दीनदयालु गुप्त २०६ २०९, २२६ २३३ ३४ २३९ ४० २४७ २४८
दुर्गादत्त त्रिपाठी ७४
दुर्गाप्रसाद पण्डित ४२
देवकीनन्दन श्रीवास्तव २४१ २३३ ३२६
देवीप्रसाद मुंशी ६१ ३०४
द्वारकादास परीख २०१ पा२०२, २ ९
द्वारकादास पुरुषोत्तम २४८
धीरेन्द्र वर्मा २०९, २३९ २४८
नगेन्द्र ४३७ ४६८
नन्दलाल दे ११८
नामेश भट्ट ४२, ४३
नाथाराम ३ ३० ३४ ३३, ६० ७९, १६१, १६३ १९८ २२३ २४ २४७ ३०३, ३१६ ३४०
नारायणप्रसाद मिश्र २११ २१२
निम्बार्काचार्य ३८० ३८४
परशुराम चतुर्वेदी ७२
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ३९, ४६ ७३, १२७ १७६ २४४, २४६ ३७०
पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ४२
प्यारेलाल लाला २११
प्यारेलाल वैश २१८
प्रतापसिंह १४३
प्रतापसिंह (राजा) २४
प्रभुदयाल मीतल २०९
प्रभुदयाल शर्मा २३१ २३३
प्रायेग १६२, १६३ १९९-२०० २४९
प्रियादास ४ १६ १७ ३३, ३१ १९८ २२३ २४ २८९

नामानुक्रम

अंगदराम शर्मा २१७ २२३
अंबनीलमणि शरण ३१२
अबुल फजल अल्लामी ११३, १६२, २४२ २५४
अयोध्याप्रसाद पाण्डे १३१ १३२
अलख १४३ १४४
अब्दुर्रहीम खानखाना ११ २२, २७, २७१ ३०८
आदित्य नारायणसिंह शर्मा २८७
इन्द्रदेवनारायण १८ ३९
इलियट, टी० एस० ३०४
उदयनारायण तिवारी २२६ २३८ २४२
उदयशंकर शास्त्री १७३, १७६
उमादत्त १०५
एटकिंसन एडविन टी० ७४ ९४ १२० १३०, २१२ २३० ३४०, ३५९
एपिग्राफिस्ट १७१, २३० ३३०
एलिस हैवलॉक ४१४
कुंजबिहारीलाल वर्मा २२३
कण्ठमणि शास्त्री पा२०१ २०९
कन्हूपिलाई स्वामी ३०७
काका बलमजी १६२ २००, २०७ २०८, २४९
कान्हूराय भट्ट १३३
कार्पेण्टर जे० ई० १०२ ३६८ ३६९
काशीनाथ नारायण दीक्षित १८१, २१८
किशनलाल ११९
कीथ किसैन ए १४, २३२
कुमार स्वामी १७६
कृष्णदत्त भारद्वाज ३६१
के एफ० ई० १, ३४०
केशवदास ५२ ५८, ५९ ३११, ३३५
केसाप्रसाद पा२३४
गांधी महात्मा ३४०, ३६९
गजटियर्स १८ २२, ७४, १०६, ११३, १२०, १२२, १३० १३५ २१२, २४२ २४३, २४६, २५० ३१, २३४
गणेशबिहारी मिश्र २२
गयाप्रसाद गुप्त २१६
गार्सां द तासी १ १४, १२४ २३८, २४१
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी १७०, १७६
गुरुमुखदास दे० सूर स्वामी
गुलाबराय ३१०
गोकुलनाथ ५२ ५६ ५८ १६१ २००, २०१ २०६ २०७ २०९ २१० २४८, ३३०
गोकुलानन्द सहाय २८९-२८७
गोपालजी २१८
गोविन्दवल्लभ भट्ट ८८, १३७, १५७, १६५, १६६, १९५, १९७, २१२ २४१, २३४ २३५ ३२१
(पुत्र) गोविन्दसिंह ७१ २४४
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ३५
ग्राउज एफ० एस० १ २४ १३, १६ १८ ४५, ९४ १०१, १०२, १२५, २१३ २४४, २६१ ३४० ३६८ ३६९
ग्रिफिथ ३४०
ग्रियर्सन जॉर्ज ग्राउंड १, ४ १८ २४ २७ २८ ३०, ३३ ३५, ३६, पा४३ ४५, ५५ ७४ १०१ १०२, १२५, १३५, १३६ १३८, १७० १७५ १७७, २१३, २४६, २५१ ५२, ३०७, ३२५, ३२८, ३४०

१२१ १२३, १३६, १६८
दीक्ष, ई० १, १४, १८ ४५, १०१, १०२ १३६ १३७, २४२, २४४, २५४ १६६, १६६
चक्रवर्ती, एन० पी० ४८, १७१
चन्दबरदायी ११३, १६२, २४२, २५४
चन्द्रबली पाण्डे २२, ७७, १०९ ११८, १२८ १३० १३२, १३३, १४१ १४३, १४४, १४६, १४६ १५३, १६१, १६२, १७०, २०६, २२६, २३८, २३९, २८२ ३०६, ३१६
चन्द्रमौलि शुक्ल २५३
चरक ४१०
चाणक्य ४४८
छक्कनलाल १२०
छावड़ा, ब० चं० १११
छत्रसिंह चौधुरी ८१ १४२, १२३, ३३१
जगदीश मुखोपाध्याय १११, ११८
जगन्मोहन वर्मा १६६
जनकराज किशोरीशरण ७५
जयशंकरदास 'दीन' ३६७
जवाहरलाल चतुर्वेदी २१२
जसवन्त २०८ २०९
जानकीदास १२१
जायसी, मलिक मुहम्मद १४३ १४४ १५३ १६० १६१
जैरट, एच० एच० १११
जैस्पर, कार्ल ४२०
ज्वालाप्रसाद मिश्र ४३, ४६, १३६, २११ २५२ ३१६
ज्वालाप्रसाद सारस्वत १३६
टेमर व वाटर कोट ४३४
ठाकुरदास सूरदास २४६
तुलसीदास कायस्थ १२२, १३२
तुलसी साहब ६१ ७२ १७०, २४४ २४७
दशरथ शास्त्री १६७, ३०८, ३०९
दयानन्द सरस्वती ४०४, ४२१
दयाराम साहनी ११२, १२२
दास पूरण भक्त श्रीवास्तव २५३
दासान्यदास ७५, ७६, ७७
दीनदयालु गुप्त २०६, २०९, २२६, २३३ ३४, २३९ ४०, २४७ २४८
दुर्गादत्त त्रिपाठी ७४
दुर्गाप्रसाद पण्डित ४२
देवकीनन्दन श्रीवास्तव २४१ २५३, ३२६
देवीप्रसाद मुंशी ६१, ३०४
द्वारकादास परीख २०१, पा२०२, २०९
द्वारकादास पुरुषोत्तम २४८
धीरेन्द्र वर्मा २०९ २३९, २४८
नगेन्द्र ४३७ ४३८
नन्ददास ६ ११८
नामेश बहु ४२, ४३
नाभादास १ ३० ५४ ५५, ६०, ७९, १६१ १६३, १६८ २२३ २४ २४७, ३०३, ३१६, ३४०
नारायणप्रसाद मिश्र २११, २५२
निम्बार्काचार्य ३८० ३८४
परशुराम चतुर्वेदी ७५
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ३६, ४६ ७५, १२७, १७६, २४४, २४६, ३७०
पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ४२
प्यारेलाल लाला २११
प्यारेलाल वैद्य २१८
प्रतापसिंह १४३
प्रतापसिंह (राजा) २४
प्रभुदयाल मीतल २०९
प्रभुदयाल शर्मा २३१ २३३
प्रार्थेश १६२ १६३ १६६ २०० २४६
प्रियादास ४ १६, १७ ३५, ३१ ११८ २२३ २४, २४६

प्रेमनारायण टण्डन १५६
फ्रॉयड सिगमण्ड ४१४
बीसनलाल वार्ष्णेय पा४०६
बलदेवप्रसाद मिश्र २२ १२५ १६३, १६६ १६६, ३०१
बहादुरसिंह सिंगी १७७
बाबूराम मिश्र २११ २१५ २१८ २५१
बालकराम विनायक ६२ १६७ २८६
बालकृष्ण २२० २२१
बुचानन फ्रांसिस १२५, १३८
बैजनाथ कुर्मी २५३ ३२१
भगवतीप्रसाद सिंह ७५ १०३
भगवद्दास पा३६८
भगीरथप्रसाद दीक्षित २६
भगीरथ मिश्र १६६ पा१७१
भट्टाजी दीक्षित ४२ ४१
भट्टदत्त शर्मा ८८ ८९ ९३ १०४ १५८ १६१ १६७ २३१ २४१
भवानीदास ७५ ७६ १०-, १०६, १४६ ४७ पा३१७
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ७६ २०० २५३ ३१७
भीमदेव बघेला ११६ ११७
भूदेवशर्मा विद्यालंकार १६ १६ ३१०
भूंधीराम शर्मा पा३६१ ३६३
मदनमोहन शर्मा १७८ १८०
मधुसूदन सरस्वती ८२-८३ ३०३ ३४०
महादेवप्रसाद त्रिपाठी ३७ १०३ १५६ १६५, २५०
महावीरप्रसाद द्विवेदी ५५
माताप्रसाद गुप्त २२, ५६ ६० ६६, ७५ ७७ ७६ पा१०६, १२६ १२७ १३० १३२ १३४ १४०, १५२, १६८ १७१, १६५, पा१६६, २२६ २३६, २४२ २४४ २८८ २६० ३०२ ३०७ ३२०, ३२२, ३२३ ३२५, ३२७-३३४ ३६६, ३६७ ३७१
मायाशंकर याज्ञिक ३८ ५६, १२६ १७७
मिश्र-बन्धु २२ २६ २७ ३२ ३८, ३६, १७७ २४३, २४७ २५२ ३०७ ३२५
मीराबाई ५६ ३१७ ४००
मुनरो विलियम बैनेट पा४५७
मुरारीलाल २११ २३६
मेकडुगल विलियम ३६६
मेवाराम मिश्र ११६
मैकडौनल ए० ए० ४२ ३४०
मैक्फी जे० एम० १३ १०२, २३२
यदुनाथ सरकार ११३
युगलकिशोर पोद्दार २१५
रंगनाथ २३७-३८
रघुवंश शर्मा १६ पा१७३ ३१८
रजनीकान्त शास्त्री १३८ १४१ १७३ २८५ २८७
रतनलाल बैश २४६
राधालदास बन्द्योपाध्याय ११७
राजकुमार 'कुमार' पा ४३८
राजपति दीक्षित ३४१ ३४५, ३५४ ३५५, ३६२
राजाराम २२३
राधाकृष्णदास २५३
राणाडे आर० डी० ३६८
रानी कमल कुँवरिदेव २०६ २५३
रामकिंकर ३०६
रामकिशोर गुप्त ४६ ५६
रामकुमार वर्मा ७१, ३१७ ३२५ ३२८, ३२६, ३३१ ३३३
रामगुलाम द्विवेदी २४ ३३, ३४, १७० ३२०, ३२५
रामचन्द्र द्विवेदी ४६२
रामचन्द्र बैश शास्त्री १६७ १६८ ३०८ ३११ पा३१४ पा३१५, पा ३१७

रामचन्द्र शुक्ल २२ २४ २६ ३२ ३७ ३९ ५२, ५४ ६० ६१ १०२ १०३ ११७ १२६ १२८, २०९, २३८, २४१ २४४ पा३१७, ३२५, ३४० ३४१ ३५१ ३५८ ३५९ ३६०, ३६३ ३६५, ३७० ३७१
रामजसन २५३, ३२१
रामनाथ बोड़ २२, २१२, पा२६७ ३११ ३२० ३५१ पा३६३ ३६९
रामदीन सिंह ४ २५२, ३२० ३५१
रामनरेश त्रिपाठी ४१ ४३ ६० ६१ १२६, १६९ १७६ १९३, १९५ १९६ २१० २४१ २४३ २५३ २५४ ३०९ ३१९, ३२० ३२२ ३२३ ३२५, ३२७-३३३ ३७६
रामनारायण १०५ १०६
रामप्रसाद उस्ताद १७५
रामबहोरी शुक्ल १२५, १२८ १३२ १३३ १३४ पा१७१ पा२११ २४३
रामबासक दास ४६
रामभट्ट ४६
रामरतन भटनागर ३७
रामवल्लभ मिश्र २१५ २१६ २३१
रामस्वरूप मिश्र ४ ४१, १२६
रामानन्दाचार्य २९५ ३६८, ३६९
रामानुजाचार्य ३७०, ३७२ ३८४ ४०१ ४०४
रामेश्वर भट्ट २११ २१२ ३१९ ३२५
रायकृष्णदास १७५ १७० १७८
राहुल सांकृत्यायन २४१
रुस्तम ई जे० पा३६९
लक्ष्मी नारायण सिंह सुधांशु ७१ २४४
लक्ष्मी नागर वार्ष्णेय ७७ ७८ पा२५६
लोबो-प्रभु जे० एम० १०१
वंशीधर पचौरी २१८
वडेर बी० एच ११४
वन ली हैनरी ३७२
वल्लभाचार्य १९० २९५, ३१६ ३६४ ३७२, ३८० ३८४ ३८५, ३८९ ३९० ३९१ ४००, ४०१ ४०३ ४०४
वात्स्यायन ४१४
वाराम्निकोव ९४ ३४० ३६३
वासुदेवशरण अग्रवाल १७५
वासुदेव शर्मा पणशीकर ४२
विजयानन्द त्रिपाठी १२८ १७३ ३०४ ३१९, ३६९ ३७६
विट्ठलनाथ (गोस्वामी) ३४ ५८, ५९ ९६ ११४ २०६ २४८ ३३०
विट्ठलनाथ भट्ट २१० २५०
विद्यापति ३५९, ३६१
विनय मोहन शर्मा पा२०९
विनायक राव ३७६
विमलकुमार जैन ३६७
वियोगी हरि ३७६
विल्सन एच० एच० १ २ ८ १४ १६ १२५ १७०-७१ २४१ २४५ २५१
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ७९ ८१ ८६ २३१
विश्वनाथ भारद्वाज ४२
वेदव्रत शर्मा ८८, ८९ ९३ १६५, १९७ २२० २२३
वेणीप्रसाद ३ ४
व्योहार राजेन्द्र सिंह २२ ३७२
व्रजेश्वर वर्मा ३२
ब्लॉख मूलिस १५३ १५४
शंकराचार्य ३७ ३७१ ३७२, ३७६, ३७८ ३८३ ३८४, ३९१
शम्भुनारायण चौबे १२८ २४० ३२०
शम्भुप्रसाद बहुगुणा ७९
शिवनन्दन सहाय १४ २२ ३८ ४ ४५, १२६ १३६ १४७ २१२ २४२ २४४ २५४ पा३१९
शिवनारायण (लाला) बैजराज २१६

शिवसिंह सेंगर ४५, ४६ ६० ७६, १६६, ३२३
शुकदेव बिहारी मिश्र २२, २६ ५७ ५८, ७४ १२६
शुकदेवलाल मुंशी ३१६
शेक्सपीयर ४१५ ४३४
श्यामबिहारी मिश्र २२ २६, ७४, १२६, १७७ ३४२
श्यामसुन्दर दास २२, २६ ३५, ३६ ४१ पा४३ ४६ ५५, १०२, १०३ १२६, १७६ १७८ २११ २४१ २४४ २५३ ३२७-३२९ ३३१ ३३३ ३५१ ३७०
श्रीकृष्णलाल ३७०
श्रीधर पाठक ५६ १२६
सदाशिव शर्मा जोशी ४१
सद्गुरुशरण अवस्थी २२ ३२५, ३३३ ३७०
सरकार डी० सी० ३३१
सीताराम मिश्र २११ २५२
सीताराम लाला २२, २५, ३६, ३७ १०२ १०३ १०६ १८५ १४७-५८ २११ २५४ ३२० ३२३ ३२५, ३६९
सीताराम जयराम जोशी ४२
सीताराम शरण भगवान प्रसाद १४ २२ ११६ १५७ २१२ २४२ २४३ २५३
सुखदेव लाल (मुंशी) ३१८
सुधाकर द्विवेदी ४, २७ ३६, २१३ २३२, ३०७ ३२०, ३३१, ३५१
सूरजभान अग्रवाल २११, २५२
सूरदास ५२, ५६ ६८, १५०, १५१ २३२ ३२६, ३४७, ३५६ ३५७ ३५८ ३५९, ३६१, ३६७ ४३८
सूर स्वामी ६२, ७४
सूर्यकान्त शास्त्री ३५३
स्मिथ विंसेण्ट १ १३, १८, ६२ ७०, २४५, ३०४ ३४०
हजारीप्रसाद द्विवेदी १०३ ३४० ३६०
हण्टर डब्ल्यू० डब्ल्यू० २१२
हनुमानप्रसाद पोद्दार १७७ १७८
हरगोविन्द पन्ना १६७ २२०
हरचंदलाल शर्मा ३५६ ३५८ पा३६१
हरिप्रसाद अवीरत्न ३१८
हरिराम व्यास ५२, २३१ ३२
हरिराय १६२ २० २०२, २०६ २१० २४८
हरिहरनाथ टण्डन २४७
हरिहर भट्ट ११३
हीरालाल शास्त्री ३२३
हीरालाल (बाबू) ४२
हितहरिवंश ५१ ५२, ५६
हिल ६४ ३४०
हिरियन फिलिप जॉर्ज पा४७०

कुल पावन जीवन जानी रामसीय जस मंगल खानी करन पुनी
उमा मनी हर निज गिरा पावनि करन कारन राम जस तुलसीदास कहो रघुवीर च
रित अपार बारधि पार कवि कौन नेल हो उपवीत बिवाह उछाह मंगल सुनि जे सादर गा
वहीं सोरठा सीय रघुवीर बिवाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तिन्ह कहुं सदा उछाहु
पुलाय तन राम जस सो रठा बाल चरित सति भाउ कवि कीरति सहित बु
जे सरजु पावन परम पुनीत बिचित्र प्रति सोरठा भइ पुरी सुहाव प्रति नि
र्मल बसि बपुरी जहां देहु बिप्र ग्रम सोम महिमा बारनि एक का सोरठा कहै सुनै समु
झै जे जन सकल सो प्रभु गुन गान सीतापति रघुकुल तिलक सदा करहि कल्या
न ॥ इति श्री राम चरित मानस सेस कलि कलुष बिध्वंसनै निमल
मनस बारिनी नाम १ सोपान समाप्त संवत् १६४० [illegible] १५ [illegible]
[illegible] बन्दना सपत्र कृष्णदास हेतु लिखी रघुनाथ दास ने काशीपुरी

रामचरितमानस अरण्य काण्ड १६४६ वि०, पृष्ठ २१९, २२८

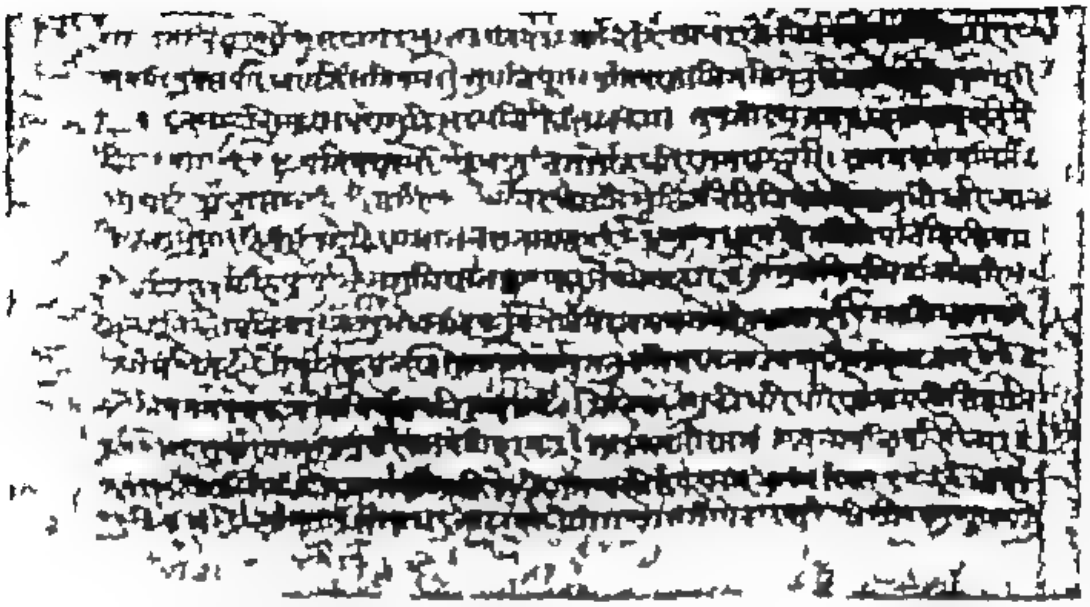

दोहा रत्नावली पदाचर की प्रति १८२६ वि पृष्ठ २१६

श्री गोसाईं जी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता १६८७ वि पृष्ठ २०१

रत्नावली लघु दोहा संग्रह ईश्वरनाथ की प्रति १८७५ वि० — १८

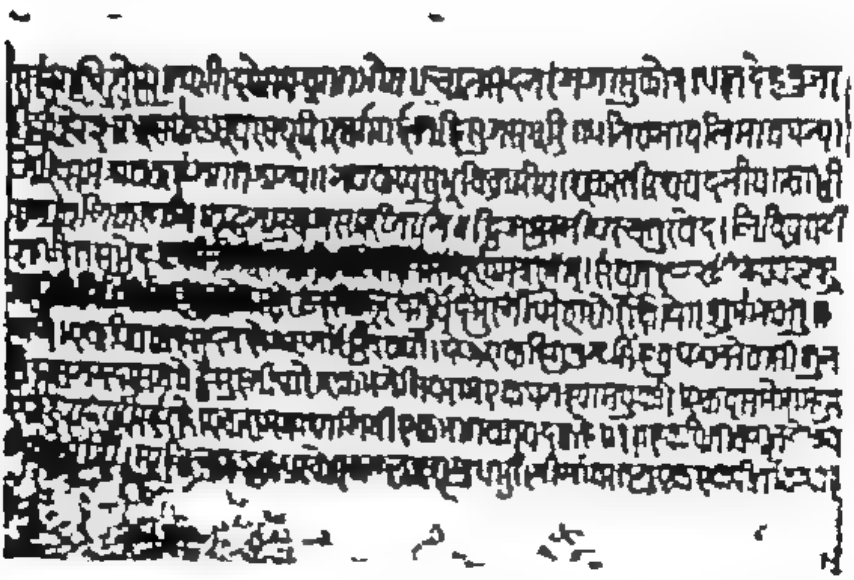

रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८२६ वि० पृष्ठ २१४

श्री वाराह मन्दिर और घाट, सूकरक्षेत्र सोरो (एटा) पृष्ठ १०२

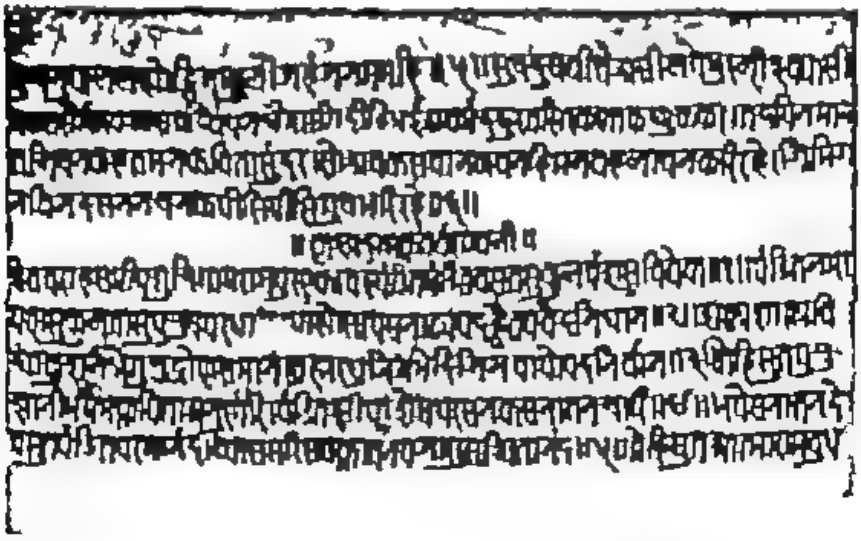

कृष्णदास बंशावली मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८२६ वि० पृष्ठ २२०

सूकरक्षेत्र माहात्म्य (भाषा) मुद्रित १९२७ वि० पृष्ट २४२

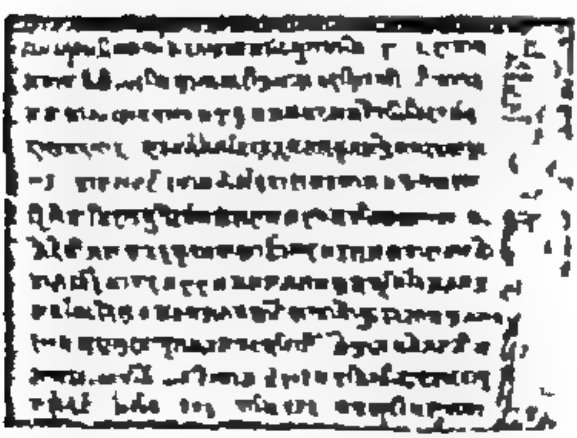

अष्टमगामृत १८६२ वि० पृष्ट १६६

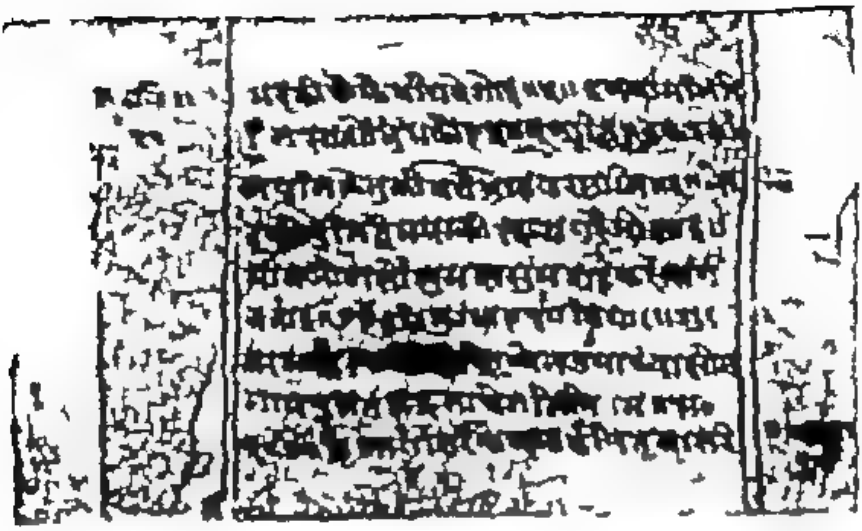

वर्षफल खगाल की प्रति १८७२ वि० पृष्ठ २११

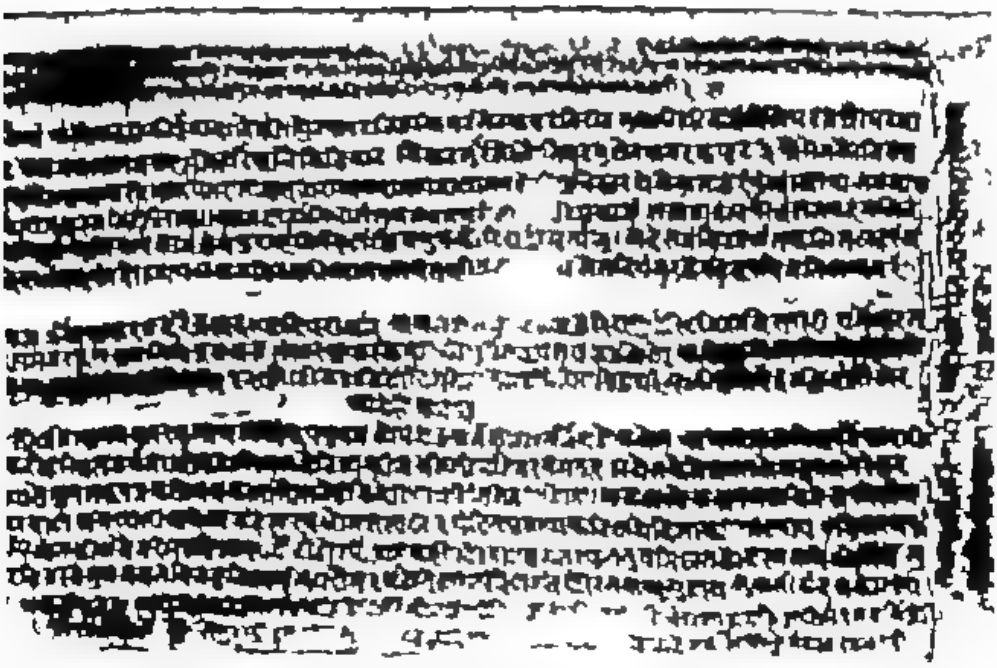

भवतमाल गदाधर की टीका १८६४ वि० पृष्ठ २२३

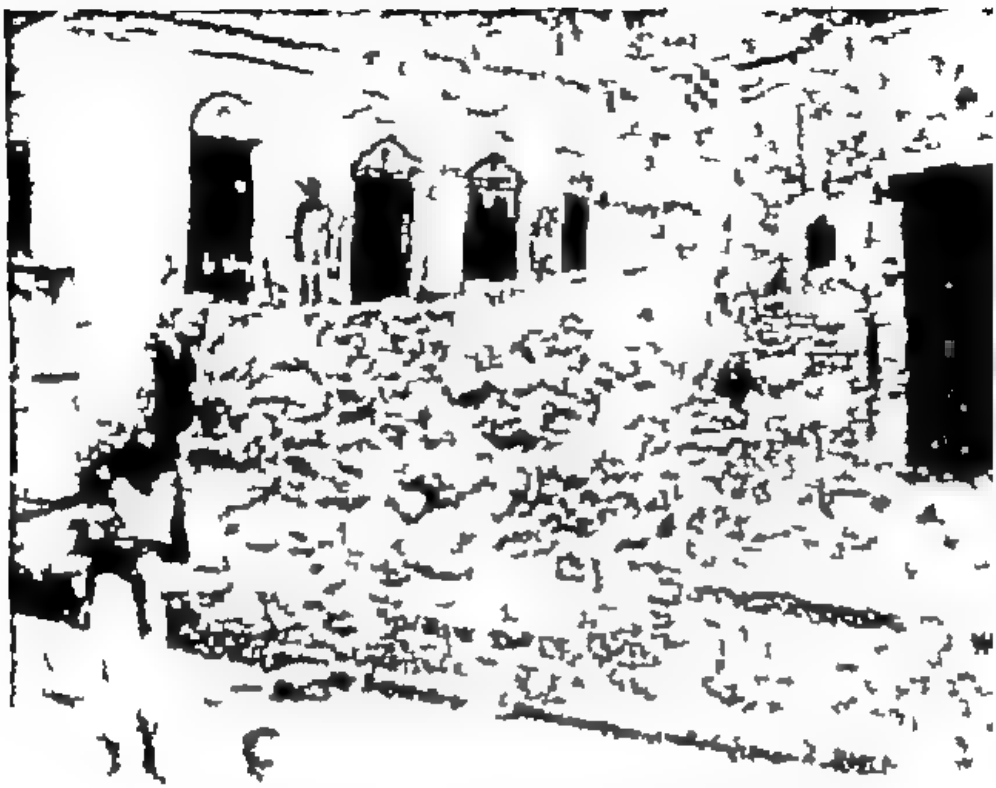

गुरु नरसिंह का विश्रामस्थल जीर्णोद्धार से पूर्व, पृष्ठ १६२

गुरु नरसिंह का विश्रामस्थल जीर्णोद्धार के पश्चात् पृष्ठ १६२

रामपुर के निवासी पृष्ठ १६२

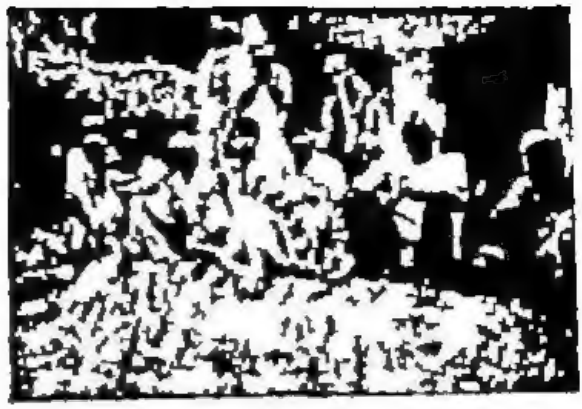

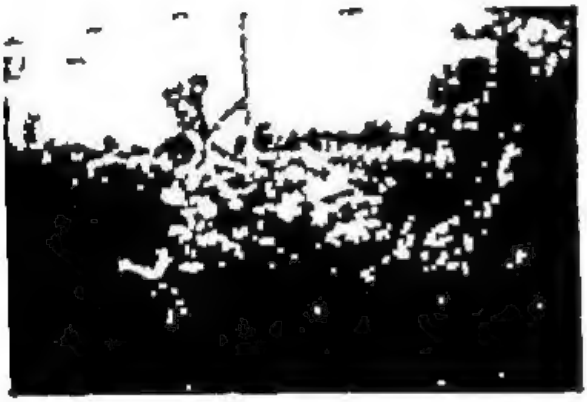

रामपुर (श्यामपुर) की ग्रामदेवी
पृष्ठ १६१

रामपुर के निवासी पृष्ठ १६२

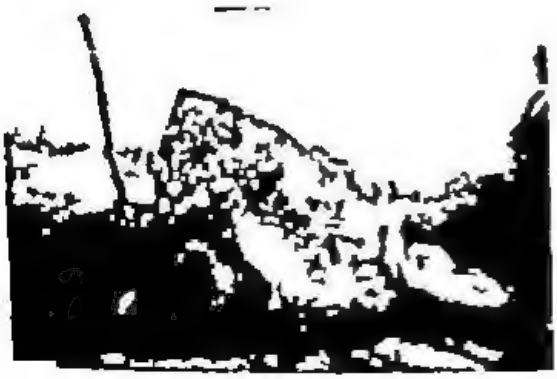

तारी की ग्राम देवी पृष्ठ १२१

तारी का वट और तारी के कुछ निवासी पृष्ठ १४६

नि

तारी का ताल पृष्ठ १५८

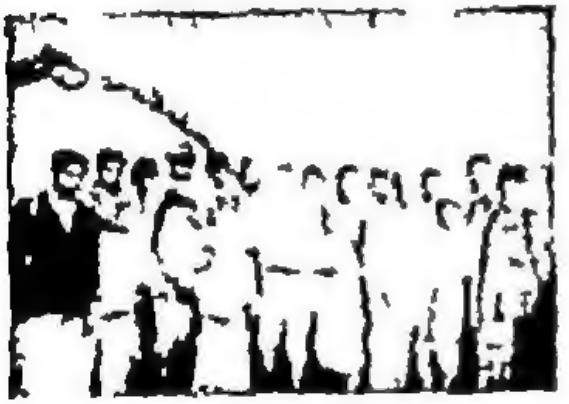

तारी के कुछ निवासी पृष्ठ २५८

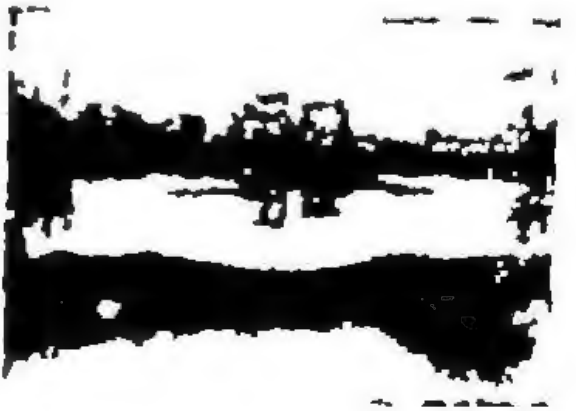

श्यामसर पृष्ठ १६१

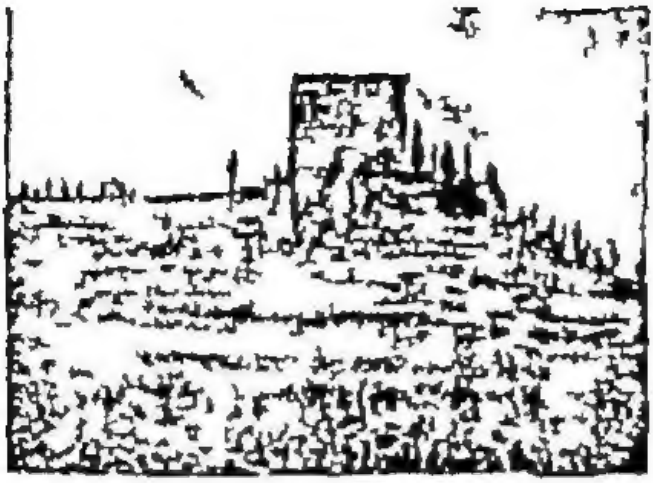

श्यामायन रामपुर पृष्ठ १७१

सीताराम जी का मन्दिर सोंरों
पृष्ठ १९२

तुलसी घर पृष्ठ १९२

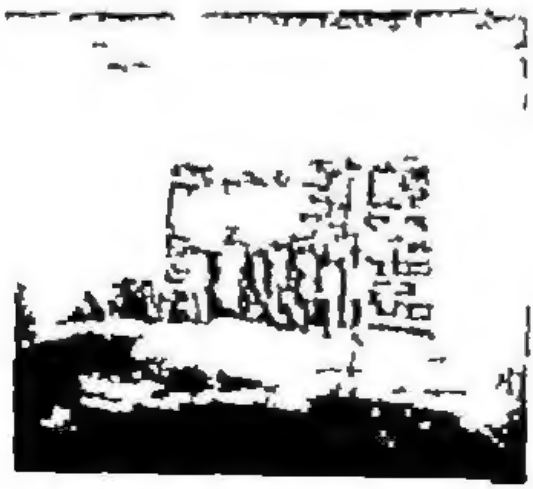

श्यामायन रामपुर पृष्ठ १९१